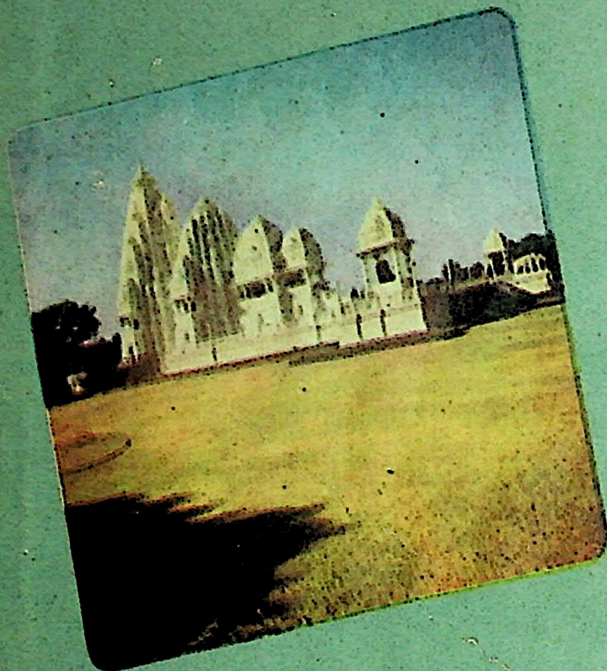
एक बिन्दु : एक सिन्धु

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान - सेवासङ्घ
मथुरा







कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।

एक बिन्दु : एक सिन्धु

6-८

एक बिन्दु : एक सिन्धु

[स्वर्गीय जुगलकिशोर बिरला]

प्रथम पुण्यतिथि

आषाढ़ कृष्ण द्वितीया, संवत् २०२५

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासङ्घ, मथुरा

द्वारा प्रकाशित

परामर्श-मण्डल

श्रीस्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीवियोगी हरि

श्रीजनार्दन भट्ट

डॉक्टर भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'

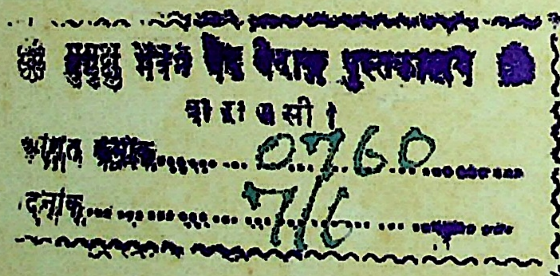
श्रीहितशरण शर्मा

प्रबन्ध-सम्पादक

श्रीदेवधर शर्मा

सम्पादक

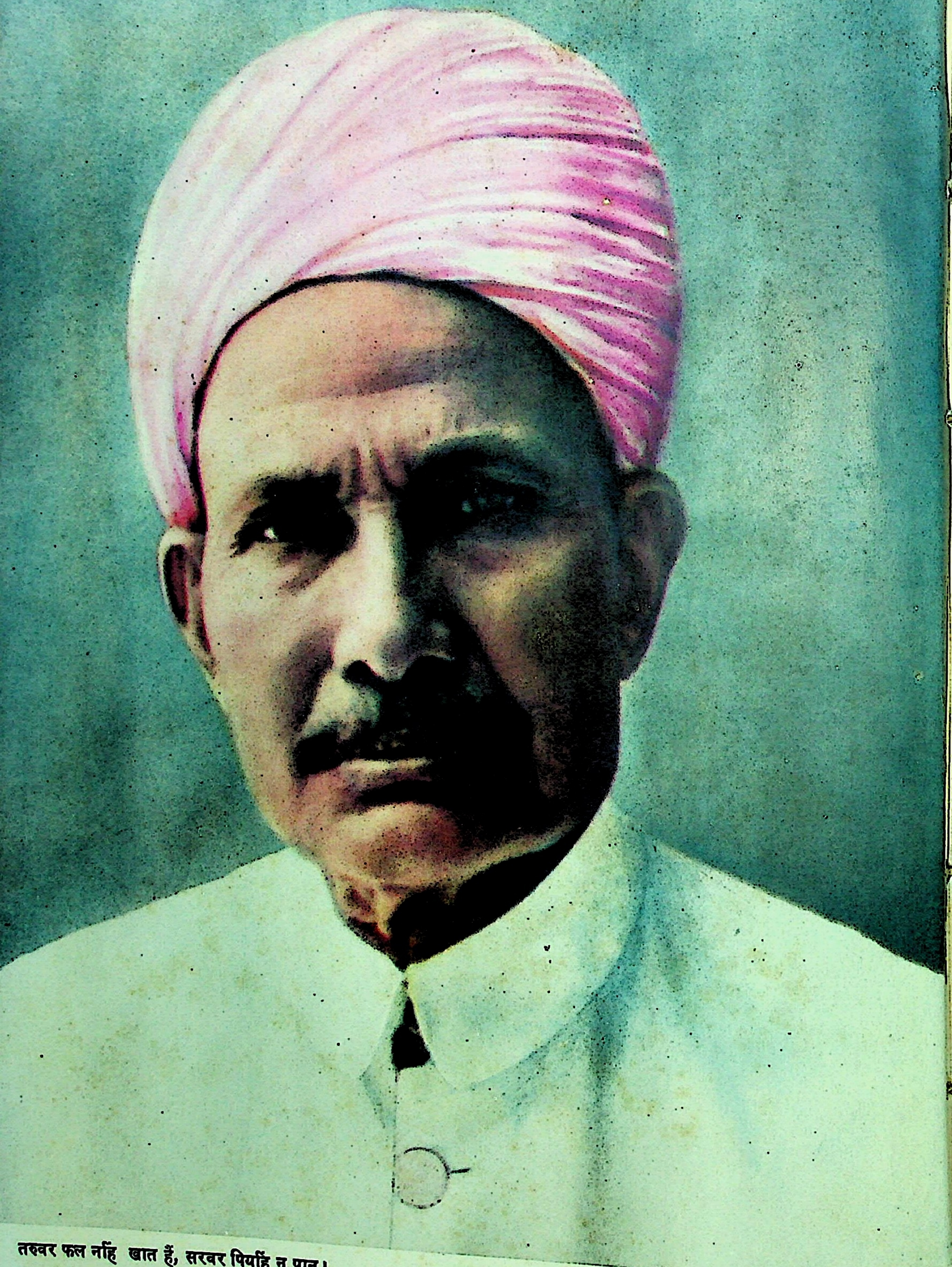
श्रीदेवदत्त शास्त्री



मूल्यः- चालीस रुपये

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

आवरण एवं चित्र
शुचि प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली



तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सचहिं सुजान॥

जन्म : ज्येष्ठ कृष्णा प्रतिपदा, संवत् १९४०
निधन : आषाढ़ कृष्णा द्वितीया, संवत् २०२४

'बिन्दु में सिन्धु समान, को कासों अचरज कहै'

--इस आश्चर्य और रहस्यको

जिसने खोलकर रख दिया था--

उसीकी पावन-स्मृतिमें

श्रद्धाके ये फूल

समर्पित

●

निवेदन



मुझे इस बातकी बड़ी प्रसन्नता है कि श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ अपने संस्थापक स्वर्गीय सेठ श्री जुगलकिशोरजी बिरलाकी प्रथम पुण्य-तिथि पर एक सन्दर्भ-ग्रन्थ प्रकाशित कर उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित कर रहा है।

स्वर्गीय श्री बिरलाजीसे मेरा प्रथम परिचय उस समय हुआ था, जब मैं भारतीय लोकसभाका अध्यक्ष था। उन्होंने मथुरामें महामना मालवीयजीके सहयोगसे श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघकी स्थापना की थी और उसका सर्वप्रथम सभापति तत्कालीन लोकसभाध्यक्ष श्री गणेश वासुदेव मावलंकरजीको बनाया था। उनके निधनके पश्चात् श्री बिरलाजीने मुझे वह स्थान ग्रहण करनेके लिए कहा, जिसे मैं टाल नहीं सका और तबसे मेरा-उनका सम्पर्क बढ़ता गया। वे व्यावसायिक जगत्‌में मूर्द्धन्य और धनाढ्य होते हुए भी अत्यन्त सरल प्रकृतिके व्यक्ति थे। सबके लिए सुलभ, सदा शान्त, प्रसन्न और अनुद्विग्न रहते थे। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त धार्मिक एवं पुण्यवान् था। उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति और अपना सारा जीवन स्वदेश तथा स्वधर्मकी सेवामें लगा दिया। देश-विदेशके श्रद्धावान् तीर्थयात्री उन्हें अतिशय प्रिय थे और वे उनको भारतीय-धर्म एवं दर्शन सम्बन्धी साहित्य भेंट किया करते थे। वैदिक तथा दार्शनिक विद्वानोंके तो आधार-स्तम्भ ही थे, उनका बड़ा आदर करते और बराबर उनकी सेवा-सहायता किया करते थे। वे सब प्रकारसे भारतीय-धर्म एवं संस्कृतिके संरक्षक थे और उनके रोम-रोममें साधुता भरी हुई थी। मैं यह कह सकता हूँ कि अबतक मुझे जितने भी व्यक्ति मिले हैं, उन सबमें वे अधिक सज्जन थे। उनके निधनसे न केवल दिल्लीके जन-जीवनमें, अपितु समस्त हिन्दू-संसारमें एक ऐसी रिक्तता आ गयी है, जिसकी पूर्ति सम्भव नहीं दीखती। उन जैसा धार्मिक, उदार और परोपकारी व्यक्ति मिलना कठिन है।

श्री जुगलकिशोरजीने विभिन्न स्थानों पर देवालयोंका निर्माण करके देशकी जो सेवा की है, उसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। उनके द्वारा निर्मित देवालयोंमें दिल्लीका श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर - जो बिरला मन्दिरके नामसे विख्यात है, सर्वोपरि है। किसी भी दिन उस मन्दिरमें जाकर यह देखा जा सकता है कि वह किस प्रकार देश-विदेशके दर्शकोंको अपनी ओर आकर्षित करता है। बहुतसे भक्तजन तो अपने परिवारके साथ सारा दिन वहाँ व्यतीत करते हैं और मन्दिर तथा उसकी बाटिकामें स्थापित विभिन्न विग्रहों, चित्रों और शिलालेखोंसे प्रेरणा प्राप्त करते हैं। श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिरके एक कक्षमें, जो गीतामन्दिरका सभा-भवन है, वहाँ बराबर विद्वानों द्वारा कथा-प्रवचन चलते रहते हैं। मुझे भी कई बार वहाँ जाने तथा धार्मिक समारोहोंमें सम्मिलित होनेका अवसर मिला है। मैं समझता हूँ कि इसी प्रकारकी लोकोपकारी गति-विधियाँ उनके अन्य देवालयोंमें भी चलती रहती हैं। उनके देवालयोंकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे सदा स्वच्छ और पवित्र रखे जाते हैं।

देवालयोंका निर्माण पूजा-उपासनाके लिए होता है। अतः यहाँ अपने देशमें प्रचलित पूजा-उपासनाके सम्बन्धमें कुछ शब्द कहना अप्रासंगिक नहीं होगा।

वेदान्त सिद्धान्तके अनुसार परमात्मा सर्वातीत भी है और सर्वगत भी है। गीतामें यह कहा गया है कि अनेक जन्मोंके पश्चात् ज्ञानवान् पुरुषको यह बोध प्राप्त होता है कि भगवान् ही सब कुछ हैं और सब भगवन्मय है। ऐसे ज्ञानी महात्माका दर्शन दुर्लभ है। समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड भेद-विभेदसे भरा हुआ है। अतः यहाँ किसी पदार्थ या व्यक्तिमें भेद-विभेद देखनेके लिए न तो किसी प्रयासकी आवश्यकता है और न किसी धर्मशिक्षाके उपदेश की; वह अपने आप दिख जाता है। किन्तु सृष्टिके विभिन्न रूपोंमें एक भगवत्सत्ताका साक्षात्कार करनेके लिए बुद्धि, विवेक, स्वाध्याय और गुरुदीक्षाकी आवश्यकता पड़ती है। गीतामें कहा है कि जो सर्वत्र और सबमें भगवान्को देखता है, उसकी आँखोंसे भगवान् कभी ओझल नहीं होते और न वही कभी भगवान्से ओझल हो पाता है। गीतामें ही कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्तिका यह कर्तव्य है कि वह भगवान्को जानने, उसका साक्षात्कार करने और उसमें ही लवलीन रहनेकी चेष्टा करे।

मनुष्यमें "वसुधैव कुटुम्बकम्"की भावना होनी चाहिए। उसे मनसा, वाचा, कर्मणा - सब प्रकारसे पवित्र बनना चाहिए और यह अनुभव करना चाहिए कि उसकी आत्मा सर्वथा शुद्ध है। मनुष्यमें कामनाएँ उसकी देहासक्तिके कारण ही उत्पन्न होती हैं। यदि उसका अज्ञान निष्काम् कर्म अर्थात् अनासक्त भावसे किये गए कर्तव्योंके द्वारा दूर हो जाय, तो उसे आत्म-साक्षात्कार प्राप्त हो जायगा और समस्त प्राणियोंमें आत्मदर्शन करने लग जायगा। उस अवस्थामें उसे अपने और दूसरोंके मध्य तत्वतः कोई भेद-भाव नहीं दिखायी देगा। वह सभी प्राणियोंके साथ अपने जैसा वर्ताव और आगे चलकर परमात्माके उस तत्वका ज्ञान प्राप्त कर लेगा, जो प्रत्येक जीवात्माके भीतर विद्यमान है और प्राणिमात्रको उसी प्रकार एक-दूसरेके साथ सँजोए हुए है, जैसे एक सूत्र नाना प्रकारकी मणियोंको एक हारमें पिरोए रहता है। उस दशामें मनुष्य सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त एक भगवत्तत्त्वका अनुभव करेगा और उसकी दृष्टिमें प्राणियोंकी सेवा ही भगवान्की पूजा होगी।

भगवत्प्राप्तिके लिए अन्यान्य साधनोंके अतिरिक्त दो प्रकारके साधन बताये गए हैं : प्रथम सर्वत्र और सबमें स्थित निराकार ब्रह्मका ध्यान और द्वितीय साकार ब्रह्मकी उपासना। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको बताया कि वह उनके ऐश्वर्यका दर्शन संसारके किसी भी पदार्थमें कर सकता है और जब अर्जुनने उसकी आकांक्षा प्रकट की, तब उन्होंने अपने विश्वरूपका दर्शन कराया। वस्तुतः निराकार ब्रह्मका ध्यान बड़े-बड़े ऋषि-मुनि और साधु-संन्यासी ही करते आये हैं। वह सर्वसाधारणके लिए सुलभ नहीं है। गीतामें ही कहा गया है कि निराकारकी अपेक्षा भगवान्के किसी साकार रूपका ध्यान और अनुभव करना अधिक सरल है।

हमारे धार्मिक साहित्यमें यह भी बताया गया है कि सर्वशक्तिमान् श्रीमन्नारायण भगवान्ने अपने भक्तोंके लिए कई रूप धारण किये हैं। सर्वप्रथम वे श्रीवैकुण्ठमें परमवासुदेवके रूपमें विराजमान हैं, द्वितीय क्षीरसागरमें व्यूह रूपसे विद्यमान हैं, तृतीय विभव रूपमें श्रीराम तथा श्रीकृष्ण जैसे अवतार धारण करते आ रहे हैं, चतुर्थ उनका हार्द रूप है - जो योगीजनोंके हृदयोंमें अंगुष्ठमात्र आकारमें प्रतीत होता है और पञ्चम अर्चा रूपमें मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित रहते हैं।

देवालय बड़े सुलभ होते हैं और उनसे प्रार्थना-ध्यानमें बड़ी सहायता मिलती है। दक्षिण भारतके आलवार वैष्णवों और शैव सन्तोंने समानभावसे देवालयोंमें पूजा-उपासना की और उन सबको सर्वशक्तिमान् परमात्माका साक्षात्कार हुआ तथा वे उनमें विलीन होकर एकाकार हो गए। उत्तर भारतमें भी सन्त तुलसी-दास आदिने भगवान्के विभव रूप श्रीरामकी तथा मीराँबाई आदिने श्रीकृष्णकी उपासना की। श्री चैतन्य

महाप्रभुके श्रीमुखसे तो निरन्तर श्रीकृष्णका नामोच्चार होता ही रहा, महात्मा गान्धीने भी राम-नामका ऐसा आश्रय लिया कि उसका उच्चारण करते-करते ही उनका प्राणोत्सर्ग हुआ। ये सबके-सब अपने-अपने ढंगकी सगुणोपासना द्वारा पूर्णत्वको प्राप्त हो गए।

जो लोग इस रूपमें भगवान्का प्रार्थना-ध्यान नहीं कर सकते, उनके लिए तीर्थाटनों और पवित्र नदी-सरोवरोंमें स्नान-मार्जनका विधान है।

किन्तु इन सबमें देवालयों और उनमें विराजमान विग्रहोंकी पूजा-उपासना सबसे अधिक सुकर है और इसीलिए उसका अधिक प्रचलन हुआ। दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि मूर्ति-पूजाका हिन्दू-धर्मकी रक्षा तथा भगवद्भक्तिके विकासमें बहुत बड़ा स्थान रहा है। अतः स्वर्गीय श्री जुगलकिशोर बिरलाने देशके विभिन्न स्थानों पर बड़े-बड़े देवालय बनवाकर तथा उनमें भगवान्की पूजा-अर्चाकी व्यवस्था करके हिन्दुस्थान और हिन्दू-धर्मकी बहुत सेवा की है।

यह खेदका विषय है कि स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पश्चात् हमारे नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्योंका ह्रास हुआ है। निःसन्देह हमने धर्म-निरपेक्ष राज्य स्वीकार कर लिया है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हम ईश्वर एवं धर्म पर श्रद्धा-विश्वास करना छोड़ दें। भारतवर्ष अपने दर्शन एवं संस्कृतिके लिए सुविख्यात रहा है। हमारी संस्कृतिका आधार हमारा धर्म है और हमारे धर्मका सार-सर्वस्व है : 'अनेकतामें एकताके दर्शन करना।' आजके युगमें इसीकी महती आवश्यकता है। सार्वभौम समन्वय नहीं तो राष्ट्रीय समन्वय सबका लक्ष्य होना चाहिए। जाति-पाँति, सम्प्रदाय अथवा वर्णके आधार पर मनुष्य-मनुष्यके मध्य कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए और इन भेदभावोंसे सम्बन्धित जितने भी विवाद हैं, उन सबको अविलम्ब दूर किया जाना चाहिए।

समस्त विश्वमें व्याप्त एकताको खोज निकालना और प्रत्येक प्राणीको विराट् भगवान्का अपने समान ही एक अंग मानना, हिन्दू-धर्म एवं दर्शनका लक्ष्य रहा है। हमारी संस्कृतिके मूलभूत सिद्धान्त हैं : सरलता, सेवा और त्याग। हम वैभव अथवा बलके पुजारी नहीं हैं, चारित्र्यके उपासक हैं। हमारा धर्म कहता है कि प्रत्येक आचार-विचार ऊँचा हो और वह मानवताकी सेवा करे तथा सम्पूर्ण विश्वको एक समझे। इस धार्मिक सिद्धान्तको भारतीय जनताके मन-मस्तिष्कमें प्रतिष्ठित करना हमारा कर्तव्य है।

मैं स्वर्गीय श्री बिरलाजीकी प्रथम पुण्यतिथि पर अपने संघकी ओरसे तथा अपनी ओरसे भी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ और भगवान्से प्रार्थना करता हूँ कि उनकी दिवंगत आत्माको शाश्वती शान्ति प्राप्त हो।

मुझे विश्वास है कि यह स्मृति-सन्दर्भ-ग्रन्थ एक उत्कृष्ट जीवन-साहित्यके रूपमें विज्ञ पाठकोंके लिए प्राणद-स्पर्श बनेगा।

आषाढ़ कृष्ण, २
संवत् २०२५

—अनन्तशयनम् आयंगर

⊙ ⊙ ⊙

इष्णन् इषाण,
अमुं म इषाण,
सर्वं लोकं म इषाण।
यजु० ३१।३२

हे शान्तिके आँगनमें खेलनेवाले अनन्त प्राणी!
यदि जीवनमें किसी प्रकारकी इच्छा करते हो, तो
भूमाके लोककी या विश्व-लोककी इच्छा करो!

Wishing, wish yonder world for me.
Wish that the universe be mine

स्वस्ति-कामना



स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन॥
—ऋग्वेद १०, ६३, १५

यह स्मृति-सन्दर्भ-ग्रन्थ विस्तृत अध्ययन-पथके पथिक पाठकोंके लिए सुखकारी हो। मरु-मण्डलमें यह ग्रन्थ वहाँके निवासियोंके लिए आनन्ददायक सिद्ध हो। जल-प्रधान द्वीपों और द्वीपान्तरोंके निवासियोंके लिए सुखकारक हो। गंगा-यमुनाके मैदान तथा दक्षिणके पठारोंके निवासियोंके लिए कल्याणकारी हो। देशके हर गृहस्थके लिए कल्याणप्रद बने। राष्ट्रकी सुख, समृद्धि और एकताकी वृद्धिमें सहायक बने।

श्रद्धा-सूक्त

⊙ ⊙ ⊙

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥
प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥
यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥
श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्य१ याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥
श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निमुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥

—ऋग्वेद मं० १०, सूक्त १५०, मन्त्र १-५

श्रद्धासे ही अग्निहोत्रकी अग्नि प्रदीप्त होती है और श्रद्धासे ही उसमें हवि अर्पित होता है। स्तुति-वाणी द्वारा हम यह बतलाना चाहते हैं कि श्रद्धा ऐश्वर्यके मूर्द्धास्थान पर विराजती है ॥

हे श्रद्धे ! तू दाताके लिए अभिमत फलका दान कर, दान देनेकी इच्छा करने वालोंको प्रिय वस्तु प्रदान कर, जो लोग इष्ट-भोगोंकी प्राप्तिके लिए यज्ञ करते हैं, उनका अभीष्ट पूर्ण कर ॥

जैसे देवासुर-संग्राममें देवोंने अपनी विजय पर पूर्ण श्रद्धा रखकर असुरोंसे संग्राम किया और वे उग्र असुरों पर सोल्लास विजयी हुए, उसी प्रकार हे श्रद्धे ! अपने इष्ट-भोगोंकी प्राप्तिके लिए जो लोग श्रद्धापूर्वक यज्ञ करते हैं, उन्हें तू अभीष्ट भोग प्रदान कर ॥

वायु द्वारा रक्षित याज्ञिक और देव सभी आजीवन श्रद्धादेवीकी उपासना करते हैं और अपने हार्दिक-संकल्पसे श्रद्धाका आराधन कर धन-सम्पत्ति और ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं ॥

प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, सायंकाल हम श्रद्धादेवीका आवाहन करते हैं। हे श्रद्धे ! हमें श्रद्धा-सम्पन्न बनाओ ॥

स्वर्गीय जुगलकिशोरजी बिरलाके विचारोंके

अन्तर्यामी-सूत्र

⊙ ⊙ ⊙

- **एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति** — बहुधा भाव स्वीकृत होने पर सहिष्णुताका जन्म होता है। हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्म सहिष्णुताकी प्राणवायुसे जीवित हैं।
- **समाना हृदयानिवः** — आर्य-हिन्दुत्वकी प्रधान विशेषता समन्वय-भावना है। वसुधैव कुटुम्बकम्‌की भाव-पद्धतिका नाम 'समन्वय' है।
- **ऋतस्य पथा प्रेत** — आर्य-हिन्दू-संस्कृतिको धार्मिक स्वतन्त्रता, सामाजिक स्वतन्त्रता और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता इष्ट है अवश्य; किन्तु इनका उपभोग सत्यके मार्ग पर चलनेके लिए, सत्यका साक्षात्कार करनेके लिए होना चाहिए।
- **ऊर्ध्वं तिष्ठन्ति सत्वस्थाः** — अपने केन्द्रसे मानस-जगत्‌में ऊँचे उठना हिन्दुओंका जीवन-दर्शन है।
- **त्याग एव हि रक्षणम्** — अपने चित्तको स्थिर बनाने और उसे लोकहितमें बाँधनेके लिए, उसमें उदात्त-भावोंको भरनेके लिए त्यागकी भावनाको सामाजिक स्तर पर उतारना आर्य-हिन्दू-जातिकी जीवन-पद्धति है।
- **नहिकश्चित्क्षणमपि जातुतिष्ठत्यकर्मकृत** — हिन्दुओंके जातीय-जीवनका आवश्यक लक्षण कर्म है। कर्मके बिना जीवनकी स्थिति असम्भव है, किन्तु कर्म बिना धर्मके अधूरा है।
- **धारणाद्धर्मं इत्याहुः** — हिन्दू-संस्कृतिके आग्रहका विषय धर्म और जीवनका मेल है। धर्म और सर्वोपरि चैतन्यका धरातल एक है।
- **श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्** — ऋत, सत्य, धर्म, ब्रह्म, चैतन्य - परस्पर अभिन्न हैं। इनकी सत्ता सर्वोपरि है। इन पर अखण्ड निष्ठा और श्रद्धा रखना हिन्दू-संस्कृतिका विषय और हिन्दू-जातिके जीवनका लक्ष्य है।
- **तमेव विदित्वातिमृत्युमेति** — अध्यात्म-साधना हिन्दू-संस्कृतिके आग्रहका विषय है।

●

चरैवेति : चरैवेति

⊙ ⊙ ⊙

नाना श्रान्ताय श्रीरस्ति इति रोहित शुश्रुम।
पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा॥
चरैवेति, चरैवेति।

हे रोहित! सुनते हैं कि श्रमसे जो थका, ऐसे पुरुषको लक्ष्मी नहीं मिलती। बैठे हुए आदमीको पाप धर दबाता है। इन्द्र उसका मित्र है, जो बराबर चलता रहता है। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

◆

पुष्पिण्यौ चरतो जंघे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः।
शेतेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः॥
चरैवेति, चरैवेति।

जो पुरुष चलता रहता है, उसकी जाँघोंमें फूल फूलते हैं, उसकी आत्मा भूषित होकर फल प्राप्त करती है। चलनेवालेके पाप थककर सोए रहते हैं। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

◆

आस्ते भग आसीनस्य ऊर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निषद्यमानस्य चराति चरतो भगः॥
चरैवेति, चरैवेति।

बैठे हुएका सौभाग्य बैठा रहता है, खड़े होनेवालेका सौभाग्य खड़ा हो जाता है। पड़े रहनेवालेका सौभाग्य सोता रहता है और उठकर चलनेवालेका सौभाग्य चल पड़ता है। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

◆

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्॥
चरैवेति, चरैवेति।

सोनेवालेका नाम कलि है, अंगड़ाई लेनेवालेका नाम द्वापर है, उठकर खड़ा होनेवाला त्रेता है और चलनेवाला सतयुगी है। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

◆

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्॥
चरैवेति, चरैवेति।

चलता हुआ मनुष्य ही मधु पाता है, चलता हुआ ही स्वादिष्ट फल चखता है। सूर्यका परिश्रम देखो, जो नित्य चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

●

विषय - तालिका

⊙ ⊙ ⊙

जीवन-जाह्नवी

⊙

स्मृति-मन्दाकिनी

⊙

संस्कृति-सेतु

श्रद्धा

⊙ ⊙ ⊙

सनातनधर्मनिष्ठ गुप्त साधक मनुष्यको ही
भगवत्प्राप्ति, मनुष्यत्वकी सफलता—
गति-क्रिया धारण जहाँ। अपने करणीयसे
अपनी प्राप्तिके लिए निरन्तर प्रयास।
ॐ तत्सत्

—श्री श्रीमाता आनन्दमयी
वाराणसी

⊙ शास्त्रोंके एकमात्र निष्कर्ष 'आत्मा वै जायते पुत्रः'के अनुसार राजा बलदेवदासजी बिरलाके दिवंगत होने पर उनके ज्येष्ठ-श्रेष्ठ आत्मज श्री जुगलकिशोरजी बिरलाने अपनी वंशपरम्पराके अनुसार पितृदायको वहन किया। उनकी दानशीलता, निष्काम कर्मशीलता, सदाचारकी गरिमा, विवेकशीलता, निरभिमानता और जितेन्द्रियता अद्वितीय थी। वह राष्ट्र, धर्म और समाजके कवच बने हुए थे। उनके गोलोक-प्रस्थानसे काशीका विद्वत्समाज अनाथ-सा जान पड़ता है। गोलोकवासी धर्मप्राण बिरलाजीकी प्रथम पुण्यतिथि पर श्रीकाशी-विद्वत्परिषद् अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती है।

—राजनारायण शास्त्री
मन्त्री, श्रीकाशीविद्वत्परिषद्, वाराणसी

⊙ स्वर्गीय श्री जुगलकिशोरजी बिरला निष्काम कर्मयोगी थे। 'नियतं कुरु कर्मत्वं' यह भगवद्वाक्य उनका जीवन-दर्शन था। हिन्दुओंको युगबोध करानेमें, हिन्दूधर्मको परिमार्जित रूपमें विकसित करनेमें उन्होंने एक व्यक्तिके रूपमें जो प्रयास किए हैं, कई संस्थाएँ मिलकर नहीं कर सकतीं। हिन्दू-जातिके विघटन और बढ़ते हुए साम्प्रदायिक रोगकी औषधि उन्हें श्रीमद्भगवद्गीतासे प्राप्त हुई थी। श्रद्धा उनका परमबल और आत्मबोध प्राप्त करना उनके जीवनका ध्येय था। वे संयतेन्द्रिय थे, समत्वयोग सम्पन्न थे; इसलिए समाजमें श्रद्धेय माने जाते थे। ऐसे श्रद्धेयके प्रथम श्राद्धपर्व पर पूज्यमहामना द्वारा प्रवर्तित भारती-परिषद् अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित कर रही है।

—श्रीधर शास्त्री वात्स्यायन
महामन्त्री, भारती परिषद्, प्रयाग

* * *

⊙ **धर्मस्य मूलमर्थः, अर्थस्य मूलं राज्यं, राज्य मूलमिन्द्रियजयः, आचारः प्रथमो धर्मः, यतोधर्मस्ततो जयः।**

हिन्दू-धर्मके इन उपदेशसूत्रोंका चिन्तन-मननकर श्री सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाने अपने जीवनका लक्ष्य निर्धारित किया था। राष्ट्र, धर्म और समाजको इन्हीं उपदेशों पर आचरण करनेके लिए उन्होंने जीवन-पर्यन्त साधना और प्रयत्न किया था, अव वह भौतिक रूपमें यहाँ नहीं हैं; किन्तु उनके गुण तथा उनके आचरण सदैव स्मृत और आचरणीय रहेंगे। उनकी प्रथम पुण्यतिथि पर प्रयाग विद्वत्समिति उनके गुणोंका स्मरण कर अपनी श्रद्धा व्यक्त करती है।

——मन्त्री

प्रयाग विद्वत्समिति, प्रयाग

⊙ सेठ जुगलकिशोर बिरलाका नाम एक महान् हिन्दू-हितैषी और वीर-साहसीके रूपमें सभी हिन्दुओं तथा छोटे-से-छोटे गाँव तकमें प्रसिद्ध है। इस प्रकार इस नामसे मैं भी परिचित हुआ। परन्तु उनके जीवनके अन्तिम चार वर्षोंके भीतर मुझे उनसे कई अवसरों पर व्यक्तिगत रूपसे मिलने का सुअवसर मिला।

मैंने पहले-पहल जब उन्हें देखा, तो मेरे मानस-पटल पर उनका अंकित चित्र पूर्णतः जाता रहा। वे एक ऐसे परिवारके बड़े-बूढ़े थे, जिसका औद्योगिक साम्राज्य न केवल भारतमें, अपितु विदेशों तकमें विस्तृत था। मैं यह कैसे विश्वास कर सकता था कि जो व्यक्ति मेरी टैक्सी तक मेरा स्वागत करने आया था, वह स्वयं सेठ जुगलकिशोर बिरला था। उनकी न तो वेश-भूषा, न उनका आचार-व्यवहार ही उनके प्रभूत धनवान होनेकी तड़क-भड़कका रोब डालते थे; जिसके वे अधिकारी पात्र थे।

सभी विचार-विमर्शोंमें अपने मत पर ज़ोर दिये बिना वे दूसरोंकी बातें धैर्यपूर्वक सुन लिया करते थे। जो भी हो, वे अपने विश्वासोंके प्रति आस्थावान थे, किन्तु दूसरोंकी भावनाओंको वे कभी भी आघात नहीं पहुँचाते थे। कई अवसरों पर उनसे मेरा मतभेद हो जाया करता था और हिन्दू-हितोंके कई कामोंको मैं कर लिया करता था। परन्तु उनके उद्देश्योंसे कायल हो जाने पर उन्होंने अपना सहयोग रोककर कभी बाधा नहीं पहुँचायी।

सेठजीकी महानताका उद्‌घोष न केवल नये मन्दिर, घाट, धर्मशाला आदि करते हैं, अपितु छोटे-से-छोटे गाँवके भग्नोन्मुख मन्दिरोंका जीर्णोद्धार द्वारा संरक्षित अस्तित्व आज उनके संरक्षण द्वारा ही सम्भव हो सका है। अनेक प्रकाण्ड पण्डितों और विद्वानोंने सेठजीकी मृत्युसे अपना संरक्षक तथा पथप्रदर्शक खो दिया है। उनमें मैंने ब्राह्मणकी सच्ची आत्मा पायी थी।

जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैंने एक मित्र, दार्शनिक और पथ-प्रदर्शक खो दिया है। जब मैं कहता हूँ कि आज भारतके सत्ता और सम्पत्तिवालोंको, विशेषत: उनके निजी परिवारवालोंको 'बाबूजी'का पदानुसरण करना चाहिए, तो मैं सामान्य हिन्दू-जनताकी भावनाको मुखर करता हूँ।

——नित्यनारायण बनर्जी

अध्यक्ष, अखिल भारतीय हिन्दू महासभा

⊙ भारत धर्म-प्रधान देश है, इस पावन भूमि पर अनेक विभूतियाँ समय-समय पर आती हैं। भारतका बिरला-वंश भी विश्वमें विख्यात है। इस वंशमें श्री बाबू जुगलकिशोरजी बिरला एक विशिष्ट व्यक्ति थे।

* * *

इनका व्यक्तित्व निराला था। इनकी धर्मनिष्ठा भी विशेष प्रशंसनीय थी। इनका आर्य (हिन्दू) धर्म-सेवासंघ इसका प्रतीक है कि ये विना किसी भेद-भावके धर्म-परायणतासे वरावर वर्ताव करते थे।

उनका नश्वर शरीर आज हमारे मध्य नहीं है, परन्तु उनकी-पावन स्मृतियाँ और अमर कहानियाँ संसारमें सव समय रहेंगी।

—स्वामी गणेशानन्द
प्रधानमन्त्री, श्री सनातनधर्म प्रतिनिधि सभा, पंजाव - नई दिल्ली

⊙ वाबू जुगलकिशोरजी विरलासे मेरा चालीस वर्षोंका सम्वन्ध रहा है। उनके पास वैठना, उनकी वातें सुनना मुझे वहुत अच्छा लगता था। उनका निर्मल स्वभाव था और वह शुद्ध भावसे अपनी वातें कहते थे। उनके वार्तालापमें यही उलहना रहता था कि हिन्दुओंके लिए कुछ नहीं करते। यद्यपि उनकी सभी वातें गले नहीं उतरती थीं, किन्तु उनके हर वाक्यमें सच्चाई रहती थी और उसका प्रभाव पड़े विना नहीं रहता था।

वनस्थली विद्यापीठके लिए उनकी सहायता अविस्मरणीय है। अच्छे कामोंमें अपने सुझाव दिया करते थे, किन्तु उनके सुझावके अनुसार काम न होने पर भी कार्यकी पवित्रता देखकर वह भरपूर सहायता करते थे। वनस्थलीमें मैंने उनसे 'व्रह्ममन्दिरम्'की योजना वतायी, तो वोले : 'विद्यापीठमें सरस्वती-मन्दिरम्का निर्माण अधिक उपयुक्त होगा।' किन्तु जव मैंने व्रह्ममन्दिरम्का ही दृढ़ निश्चय उनके सम्मुख रखा, तव भी उन्होंने उसके निर्माणमें सहायता प्रदान की।

मुझ जैसे छोटेसे आदमीका वह अत्यधिक सम्मान करते थे। मेरी पत्नीको कुलमाता कहा करते थे। वे सरल भावसे हँसते थे और मीठी वाणी वोलते थे। उनकी आँखें पास-पड़ोसके लोगोंको अपनी ओर खींचती हुई मालूम होती थीं। मैं ऐसे महापुरुषकी प्रथम पुण्यतिथि पर अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

—हीरालाल शास्त्री
कुलपति, वनस्थली विद्यापीठ, जयपुर

⊙ स्वर्गीय विरलाजीने आर्य (हिन्दू) धर्म और जातिकी जो सेवाएँ की हैं, वैसा सौभाग्य विरले व्यक्ति ही प्राप्त कर पाते हैं। उनका दिल और उनकी थैली सदैव देश, धर्म और समाजके लिए खुली रहती थी। उनका अभाव पग-पग पर खटक रहा है और चिरकाल तक खटकता रहेगा।

—रामगोपाल शालवाले
मन्त्री, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली

⊙ श्री जुगलकिशोर विरला जैसे व्यक्ति शताब्दियों वाद उत्पन्न हुआ करते हैं। वे हिन्दू-धर्म और हिन्दू-संस्कृतिको पुनः पूर्ववत् विकसित व्यापक रूपमें प्रतिष्ठापित देखना चाहते थे और इसके लिए उन्होंने सव कुछ किया। उनके कार्यों और उनकी धार्मिक सेवाओंके साक्षी देशमें ही नहीं, विदेशों - जापान, कम्वोडिया, इण्डो-

* * *

नेशिया, मारीशस आदिमें हिन्दुत्वके स्मारक विद्यमान हैं - वह अद्वितीय महापुरुष थे। उनकी पुण्य-स्मृतिमें मैं अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

—आचार्य प्रियव्रत
उपकुलपति, गुरुकुल काँगड़ी

⊙ हिन्द-एशियाके बाली द्वीपमें स्वर्गीय बिरलाजीके प्रयासके फलस्वरूप पचास लाख छात्र-छात्राओं द्वारा संस्कृत भाषा एवं साहित्यका अध्ययन सम्भव हो सका। इस महान् अनुष्ठानके लिए सेठजीने अपरिमित धन सहायतार्थ दिया। बाली द्वीपके हिन्दुओंके साथ साँस्कृतिक एवं धार्मिक सम्बन्धोंको सुदृढ़ बनानेमें स्वर्गीय जुगलकिशोरजीने जो योगदान किया, वह अविस्मरणीय है। उनकी निधन-वार्षिकी पर सुदूर बाली द्वीपके आर्यजन उन्हें हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

—मन्त्री
भारत-एशिया साँस्कृतिक संघ, कलकत्ता

⊙ सेठ जुगलकिशोरजी धर्मभीरु, उदारमना और सरलचित्त पुरुष थे। उनका जीवन सात्विक और संयमपूर्ण था। मुझे विश्वास है कि उनकी पुण्यस्मृतिमें प्रकाशित ग्रन्थ उनके जीवनका मानवीय और संवेदनशील पक्ष प्रस्तुत कर हम सबके लिए प्रेरणाका स्रोत बनेगा; यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

—कमलापति त्रिपाठी
अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश काँग्रेस कमेटी, लखनऊ

⊙ स्वर्गीय जुगलकिशोर बिरला एक ऐसे ही सहृदय दानवीर थे, जो अन्तःप्रेरणानुसार जहाँ गुप्तदान द्वारा भी लोकहित सम्पादित करनेकी चेष्टामें संलग्न रहे, वहाँ जब-जब भी किसी अभावग्रस्त विद्यार्थी, कलाकार, देशभक्त, गृहस्थ आदि किसी भी वर्गके व्यक्तिने उन्हें अपनी आवश्यकता बताई, तभी उसकी सहायताके लिए उनका दाहिना हाथ आगे बढ़ा।

पुरुषार्थ द्वारा अर्जित उनका धन स्वदेशी आन्दोलनके साथ ही आर्यसमाज, सनातनधर्म सभा आदि द्वारा चलाये जा रहे धार्मिक आन्दोलनोंमें दोनों हाथोंसे लुटाया जाता रहा। अनासक्त भावपूर्वक अर्थ एवं विचारदानकी स्वस्थ परम्पराका निर्वाह उनका परिवार सदैव करता रहा है।

उनकी जीवनचर्या गीताके सिद्धान्तों पर आधारित थी। प्रज्ञावादियोंको देखते ही पहचान लेते थे, फिर भी ऐसे लोगोंके प्रति वह अनुदार और असहिष्णु कभी नहीं रहे। हिन्दू-जातिको सशक्त, संगठित एवं सब प्रकारसे अभ्युदय तथा विकासकी ओर अग्रसर करानेकी एकमात्र चिन्ता उन्हें सताया करती थी। अपने द्वारा नवधा निर्माण कराये अथवा जीर्णोद्धार कराये मन्दिरों अथवा उनके भागोंको कलात्मक वैभवसे युक्त बनानेके साथ ही उन्होंने सदैव भारतीय-संस्कृतिकी गरिमा, पावनता, समन्वयभावना एवं आध्यात्मिकताके

* * *

प्रतीक रूपमें प्रशस्त कराया। श्रमिकों, शिल्पकारों एवं चित्रकारों आदिके साथ भी उनका बहुत शालीन तथा सहृदयतापूर्ण व्यवहार पाया गया। प्रभु उस कल्याण-मार्गके पथिकको उस लोकमें भी प्रकाश दिखावें; यही प्रार्थना है।

—आचार्य सर्वे

⊙ सेठजीसे मेरा सम्वन्ध सन् १९२२से रहा है, जब मालाबारमें दो हजार मालावारी हिन्दुओंको मोपला विद्रोहियोंने मृत्युके घाट उतार दिया था और ढाई हजार हिन्दुओंको बलात् धर्मच्युत कर दिया था। उस समय हिन्दुत्वकी रक्षाके लिए सेठजीने मुझे और महात्मा हंसराजजीको बुलाकर जब मालावार भेजा और वहाँके हिन्दुओं पर किए गये अत्याचारोंको देखकर हमने आँसुओंसे भीगी हुई रिपोर्ट बिरलाजीके पास भेजी, तो उन्होंने हमें लिखा कि चाहे जितना धन लग जाए, हिन्दुओंका उद्धार किया जाए; विधर्मी बनाए गये लोगोंको हिन्दूधर्ममें पुनः लाया जाए। इस कार्यमें सेठजीकी जो मुक्तहस्त सहायता मिली, उससे न केवल ढाई हजार विधर्मी बने हिन्दुओंको पुनः हिन्दू बनाया गया, बल्कि ५०० वर्ष पूर्व जो बलात् विधर्मी बनाए गये थे; उन्हें भी हिन्दू-धर्ममें दीक्षित किया गया था।

निर्धनतासे पीड़ित आदिवासी भीलोंको अथवा लोभ देकर जब ईसाई मिशन उन्हें ईसाई बना रहे थे, उस समय भी श्री जुगलकिशोरजीने बेशुमार धन देकर भीलोंको ईसाई बननेसे बचाया था।

दक्षिण-पूर्वी एशियाका भ्रमण कर जब मैं स्वदेश लौटा और श्री बिरलाजीने मुझसे वहाँके हिन्दुओंकी दुर्दशा सुनी, तो उसी समय उन्होंने धर्म-प्रचारकोंको विदेशोंमें भेजकर हिन्दुत्वकी रक्षा ही नहीं की, बल्कि हिन्दू-धर्मके विकासके लिए सक्रिय प्रयत्न किये थे। आज उनके न रहनेसे हिन्दूधर्म अनाथ-सा हो गया है। देश, धर्म, समाजके अनन्य हितैषी स्वर्गीय बिरलाजीकी पुण्यतिथि पर मैं अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः !

—आनन्द स्वामी सरस्वती
तपोवन, देहरादून

⊙ धर्मप्राण श्री जुगलकिशोरजी बिरला भगवान् श्रीकृष्णके उपदेश-सन्देशसे अनुप्रेरित थे। लोकसंग्रहार्थ कुशलकर्मको ही धर्म मानते हुए अनासक्त, तन्द्रारहित और सर्वभूतहितकी साधनामें रत रहना, यही जीवन था उनका। वह व्यापक अर्थमें सच्चे हिन्दू और विशाल हिन्दुत्वके अन्यतम पुरस्कर्ता थे। समाजके उत्कर्षके लिए की गई उनकी निःस्वार्थ सेवाओंका मूल्यांकन कठिन है। धनसे राजा और तन-मनसे ऋषितुल्य श्री जुगल-किशोरजी बिरला जैसे महापुरुषका कृतित्व हमको धर्माचरणमें प्रवृत्त करता है और कल्याणकी कुंजी है।

मुक्तात्माको अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए मेरी कामना है कि स्वर्गीय श्री जुगलकिशोर-जी बिरला जैसी विरल विभूतिके सद्गुणोंका लोग अनुकरण करें, उन्हींकी तरह उनकी भावनाएँ तथा कर्म उदात्त बनें तथा प्राणिमात्र कल्याण-मार्ग पर अग्रसर हो।

—गिरिधारीलाल मेहता
कलकत्ता

* * *

⊙ स्वर्गीय श्री जुगलकिशोरजी युगपुरुष महात्मा थे। हिन्दुत्वको नवजीवन देने आए और उसे वह पूरा करके चले गए। उनकी कीर्ति अजर-अमर रहेगी।

—छोटेलाल कानोड़िया
कलकत्ता

⊙ स्वर्गीय विरलाजीने हमारे देश, धर्म, समाज और जातिके सम्मानको आगे वढ़ाया।

—रामेश्वर टाटिया
कलकत्ता

⊙ श्री विरलाजीका जीवन आदर्शमय था - जिसका अनुसरण हम सबको करना चाहिए।

—रामकुमार भुवालका
कलकत्ता

⊙ श्री जुगलकिशोरजी विचारोंसे जितने उच्च थे, रहन-सहनमें उतने ही सादे। वे आडम्वररहित, धर्मात्मा और आस्थावान व्यक्ति थे। 'सादा जीवन उच्च विचार'के प्रत्यक्ष उदाहरण थे। वह अद्‌भुत दानी थे। वह दान देनेका अवसर ढूँढ़ा करते थे, न कि दान पानेवालेकी राह देखते थे। उनका कहना था कि दान दी हुई सम्पूर्ण राशि नहीं, तो अधिकांश ही यदि सत्कार्यमें आ सके, तो दान देनेका उद्देश्य पूरा हो जाता है।

श्री विरलाजीकी मानवता, उनकी विशुद्ध भावना और करुणा उनके अशरीरी महत्वपूर्ण स्मारक हैं। मेरे मतसे वे महात्माओंके महात्मा थे।

—मोतीलाल तापड़िया
वीदररोड, वम्बई

⊙ कई वर्षों तक मैं भाईजी श्रद्धेय जुगलकिशोरजी विरलाके सम्पर्कमें रहा। उनकी वातचीतमें हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जातिके उत्थानकी चर्चा मुख्य विषय होता था। उनके व्यक्तित्वकी एक वहुत बड़ी विशेषता यह थी कि जो कोई भी उनसे मिलता, वह यही समझता था कि भाईजी मुझे सर्वाधिक प्यार करते हैं। वह शिवसंकल्पमय व्यक्ति थे। बौद्धधर्मके पंचशील पर आधारित उनका व्यावहारिक जीवन था। निरन्तर स्वाध्याय, चिन्तन द्वारा उन्होंने इतनी आध्यात्मिक सम्पदा उपार्जित कर ली थी कि उन्हें 'स्थित-प्रज्ञ' कहना सर्वथा उपयुक्त होगा। उनके पास बैठनेसे तन, मन और प्राणोंमें पवित्रताका संचार हुआ करता था। वह जहाँ रहते थे, वहाँके आसपासका वातावरण पुनीत् वन जाता था। वह अलौकिक महापुरुष थे। धर्म, समाज और राष्ट्रको प्राणवान् वनानेके लिए ही उनका अवतरण हुआ था। वह अपने सद्‌गुणोंसे, अक्षय कीर्तिसे और साँस्कृतिक-निर्माण-कार्योंसे सदा अमर रहेंगे। युग-युगों तक उनकी कहानी कही और सुनी जायगी। धर्म और समाजके उस परित्राताकी पवित्र स्मृतिमें मैं हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर अपनेको कृतकृत्य समझता हूँ।

—हनुमानप्रसाद सोढानी

* * *

⊙ स्वर्गीय श्रद्धेय जुगलकिशोरजी विरलासे मेरा सम्पर्क लगभग ३५ वर्षोंका रहा। मैंने अपने जीवनमें ऐसा गम्भीर, प्रशान्त, विवेकशील और सदाचारी व्यक्ति नहीं देखा है। वह शील-सम्पन्न, संयत, संयमी महा-पुरुष थे। दीन-दुखियोंके त्राता और भ्राता थे। हिन्दूधर्मकी सजीव प्रतिमूर्ति थे। वह आप्तकाम थे और जो भी उनके पास गया, वह आप्तकाम होकर लौटा। वह राष्ट्रके लिए उत्पन्न हुए थे और समस्त राष्ट्रमें अपनी ज्योति प्रकाशित कर चले गए। ऐसे महामानवकी प्रथम पुण्यतिथि पर मैं अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

—गंगाप्रसाद बुधिया
राँची

⊙ सेठ जुगलकिशोरजी विरला निश्चय ही एक महान् आत्मा थे। उनकी प्रथम पुण्यतिथि पर मैं अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य
भारतके भू० पू० गवर्नर जनरल, मद्रास

⊙ मैं स्वर्गीय सेठ जुगलकिशोरजी विरलासे भलीभाँति परिचित रहा हूँ। उनके हृदयमें भारतीय-संस्कृतिके प्रति अगाध अभिरुचि थी और उसकी उन्नतिके लिए वे आजीवन तन-मन-धनसे प्रयत्नशील रहे।

—डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्
भारतके भू० पू० राष्ट्रपति

⊙ मैं स्व० सेठ जुगलकिशोरजी विरलाकी प्रथम पुण्यतिथि पर प्रकाशित होनेवाले स्मृति-ग्रन्थकी सफलताके लिए शुभकामनाएँ और स्वर्गीय आत्माके लिए अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

—ज़ाकिर हुसेन
राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली

⊙ स्व० श्री जुगलकिशोरजी विरला हिन्दूधर्म और भारतीय-संस्कृतिके जीवित प्रतीक थे। उनका जीवन और कृतित्व सर्वथा अकलुष और उदार था। सनातन हिन्दू-धर्म पर उनकी अगाध निष्ठा थी। उनका जीवन धर्मसे प्रेरित था। देश और विदेशमें हिन्दू-जातिकी भक्ति-भावनाको पोषित करनेके निमित्त उन्होंने अनेक धर्म-स्तूप तथा देवालयोंका निर्माण कराया। ऐसे महान् व्यक्तिकी पुण्य स्मृतिमें स्मृति-ग्रन्थका प्रकाशन सर्वथा सराहनीय है। हम पुण्यात्मा विरलाजीकी प्रथम पुण्य-तिथि पर अपनी निश्छल भावनाओंसे श्रद्धाप्रसून अर्पित करते हैं।

—विभूतिनारायणसिंह
काशीनरेश

* * *

⊙ स्व० श्री जुगलकिशोरजी बिरलाका हिन्दुत्वके प्रति जो गम्भीर और व्यापक प्रेम था, उसके लिए मेरे मनमें सदैव आदर था। उन्होंने अपने इस प्रेमसे प्रेरित होकर जो कई संस्थाएँ खोलीं, अन्य अनेक संस्थाओं तथा व्यक्तियोंकी सहायता की, वह उनके जीते-जागते संस्मरण हैं।

—सम्पूर्णानन्द
भूतपूर्व राज्यपाल, राजस्थान, वाराणसी

⊙ श्री जुगलकिशोरजी बिरला अब नहीं रहे। सामाजिक कार्योंमें उनके सुझाव न मिलनेसे अब अटकाव पैदा होता है। उनकी सम्मति, उनका सहयोग, उनका भरोसा, अब किससे मिले ! धनवान व्यक्ति तो बहुत हैं, परन्तु हिन्दुस्तानके लिए हितचिन्तन करता हुआ, उसीके लिए जीता हुआ अब कौन दिखता है ! मुझे तो याद आती है उन दिनों की, जब कोई भी काम लेकर मैं बिरलाजीके पास पहुँचता था, तो कितने स्नेहसे मिलते थे, कितना अधिक सम्मान देते थे और देश तथा समाजकी गतिविधियोंकी जानकारी प्राप्त कर सुझाव और सम्मति प्रदान करते थे। जिस प्रयोजनके लिए उनसे प्रार्थना की जाती थी, उसे तत्काल पूरा कर देते थे। यह अनुभव केवल मेरा ही नहीं, बल्कि हिन्दुस्तानके अनेक कार्यकर्ताओंका भी है।

सेठजीकी हिन्दूधर्म पर आस्था और भगवद्भक्तोंके प्रति श्रद्धा तो सर्वविदित है। गुणियों, विद्वानों सन्तों, समाजसेवियों और धर्म-प्रचारकों तथा कलाकारोंको उनसे जो प्रोत्साहन व सम्मान मिलता था, वह अभूतपूर्व था।

प्रभु, हमें शक्ति दो कि हम उनके पदचिह्नों पर चल सकें। इसीमें हिन्दूसमाजका कल्याण निहित है।

—हंसराज गुप्त
महापौर, दिल्ली नगर-निगम

⊙ सम्भवतः भारतका जनसाधारण स्व० जुगलकिशोरजीको एक धनी परिवारके व्यक्तिके रूपमें ही जानता है। एक महान् दानी, धार्मिक प्रवृत्तिके और सभी धर्मोंका समादर करनेवाले व्यक्तियोंके रूपमें बहुत कम लोग जानते होंगे, किन्तु भारतसे बाहर जापान और पूर्वके अन्य बौद्धधर्मानुयायी देशोंकी जनता उन्हें एक महान् भारतीय आत्माके रूपमें जानती है - जिसने सभी धर्मोंके तीर्थस्थानों और मन्दिरोंको दान दिया। यही विचार पश्चिमके देशोंका भी उनके प्रति रहा। दुनियाके सभी देशोंके धार्मिक नेता उनका सम्मान करते थे। वह कलियुगी कर्ण थे। उनके पाससे कभी कोई याचक खाली हाथ नहीं गया - यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी। उनकी पुण्यतिथि पर मैं अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

—सत्यनारायण सिंह
केन्द्रीय मन्त्री, भारत सरकार, नई दिल्ली

⊙ स्व० बिरलाजीने समस्त हिन्दू-समाजको संगठित बनाने तथा सिख, जैन, बौद्ध, सनातनधर्मी आदि हिन्दू-धर्मके सभी सम्प्रदायोंको एकताके सूत्रमें बाँधनेके लिए जीवन-पर्यन्त प्रयास किए।

—विजयकुमार मलहोत्रा
मुख्य कार्यकारी पार्षद्,
दिल्ली नगर-निगम

* * *

⊙ श्रद्धेय जुगलकिशोरजी विरला हमारे देशकी महान् विभूतियोंमेंसे थे। वे अतिशय नम्र, व्यवहार-कुशल, प्रगतिशील विचारक एवं मानवोचित सर्वगुण सम्पन्न व्यक्ति थे। उनकी सरलता और सादगी श्रद्धा-स्पद रही है। उनकी प्रथम पुण्य-तिथि पर मैं अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

—सीताराम जैपुरिया

संसद्-सदस्य, स्वदेशी हाउस, कानपुर

⊙ भव्य प्रासादमें एक साधु जैसा जीवन वितानेवाले भाई श्री जुगलकिशोरजी अपने अन्य भ्राताओंके जीवनसे पृथक् एक साधारण-सा हिन्दू एवं सनातन जीवन व्यतीत करते थे।

उन्होंने अपने जीवनका हर क्षण हिन्दुत्वके कल्याणमें लगाया - वास्तवमें भाईजी एक महान् धर्मात्मा थे। ऐसे महान् क्रियाशील, कर्मठ और सहृदय धर्मात्माके प्रति हम अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

—पदमपत सिंहानिया

कमला टावर, कानपुर

⊙ स्वर्गीय श्री जुगलकिशोर विरला वाणिज्य-संसारके एक शिरोमणि थे। हृदयसे धार्मिक मानवता-वादके पुजारी और अत्यन्त संवेदनशील श्री विरलाने व्यापारी होते हुए भी एक 'साधक'का जीवन व्यतीत किया। उनका मन और मस्तिष्क आध्यात्मिक चिन्तन, साँस्कृतिक उत्थान, समाज-सेवा और देशके लिए समर्पित था। उन्हें अपने हिन्दुत्व और हिन्दू-जीवन-दर्शन पर गर्व था और उन्होंने अपने साधनोंको उपासना, संस्कृतिके उन्नयन और दानमें लगाया। उनका जन्म सम्पन्न परिवारमें हुआ था। व्यवसायमें अग्रणी बनकर उन्होंने सम्पत्ति अर्जित की और जनकल्याणके क्षेत्रमें अग्रणी बनकर उसे व्यय भी किया। श्री विरला यहाँ अपनी कीर्ति और सुयशको छोड़ गये हैं, जिससे अन्धकारमें भटकती मानवताको सदैव प्रकाश मिलता रहेगा।

—विश्वनाथदास

भूतपूर्व राज्यपाल, उत्तर प्रदेश, ब्रह्मपुर (उड़ीसा)

⊙ स्व० श्रीमान् सेठ जुगलकिशोरजी विरलाके प्रति श्रद्धा व्यक्त करनेकी दृष्टिसे स्मृति-सन्दर्भ-ग्रन्थका प्रकाशन अत्यन्त औचित्यपूर्ण है। इस ग्रन्थमें ऐसी सामग्री पाठकोंको मिलेगी, जिससे उनके महान् व्यक्तित्व-का सबको यथार्थ परिचय प्राप्त होगा, उनके प्रति विनम्र समादरका भाव जाग्रत होगा तथा धनवानोंको धनके विनियोगके सम्बन्धमें अपने कर्तव्यका बोध होकर उनके आचरणमें उचित श्रेष्ठता प्रकट होगी।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर उनका असीम प्रेम था। उसीके कारण मुझ पर भी उनका स्नेह था। उनकी स्मृतिमें ये कुछ शब्द लिखे हैं। यह जानते हुए भी कि उनकी महानताको देखते हुए ये शब्द अति तुच्छ हैं, उनके निष्कपट स्नेहके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करनेकी दृष्टिसे यह उपहार समर्पित कर रहा हूँ। 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं'के रूपमें इसे आप मानें, यही आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ। स्व० श्रीमान् सेठ जुगलकिशोरजी विरलाके प्रति श्रद्धा व्यक्त करनेका आपने अवसर दिया, इसलिए आपको कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देता हूँ। इतिशम्।

—मा० स० गोलवलकर

सरसंघसंचालक, रा० स्व० से० संघ, नागपुर

●

⊙ ⊙ ⊙

शीलं व्यलसद् भुवनाभरणं,
विष्वग् विश्व शुभकृदाचरणम्;
निरतं ते नारायण बुद्ध्या—
हिते नराणामन्तः करणम्।
लोके तव नवनवमुपकारं-
सदसि गृणीमो वारं वारम्।

अविरत निर्झरदश्रु निपाता-
रोदिति करुणं भारतमाता;
युगल किशोर! कुतोऽसि गतस्त्वं,
त्वदृते को नु मम स्यात्त्राता?
एवं स्मरति सुपुत्रमुदारं-
सदसि गृणीमो वारं वारम्।

गुणवांस्त्वं गुणिनां संत्राता,
कल्पद्रुमवदनल्पं दाता;
आर्त्तत्राण परः प्रभविष्णु-
र्विष्णुरिवासीर्जगतां पाता।
त्वां पालित सज्जन परिवारं-
सदसि गृणीमो वारं वारम्।

कर्मरतोऽपि फलेषु न सक्तः,
वैभवभागपि भोगविरक्तः;
हरिमनुचिन्त्य समेष्वपि जन्तुषु-
सर्वहिते त्वममूरनुरक्तः।
त्वं सममस्तसमस्त विकारं-
सदसि गृणीमो वारं वारम्।

* * *

विश्रुतकीर्तेर्जगति समस्ते–
वक्तुं विरदं प्रभवः कस्ते;
त्वं सदैव जीवसि चिद्वपुषा-
ततममलं सर्वत्र यशस्ते।
इन्दुकुलायोत्सव दातारं-
सदसि गृणीमो वारं वारम्।

त्वादृशसत्पुरुषैर्धृतसारे-
को न रमेत नरः संसारे?
स्रष्टुः संहर्त्तुः पालयितु-
र्जगदुद्धारपरस्य मुरारे-
र्जन्मभुवोऽपि समुद्धर्त्तारं
सदसि गृणीमो वारं वारम्॥

—पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री,
वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

* * *

⊙ ⊙ ⊙

दाता कर्ण समान, बिरला जुगलकिशोरजी।
मूर्तिमान सम्मान, हिन्दू धर्म महान्के॥
तज अनित्य निज काय, अजर अमर वे नित्य हैं।
करता देश-निकाय-श्रद्धाञ्जलि अर्पित उन्हें॥

—राय कृष्णदास
भारत कलाभवन, काशी

●

कमनीय भक्तिमय भावोंका,
शुचि कान्त मलय मारुत विलास।
मनकी मोहक मञ्जु मधुरिमा,
विमल हृदयतलका मृदु सुहास।
मानवताकी भव्य धरोहर,
चिर-चिन्तनका रुचिर इतिहास।
छीना हमसे क्रूर कालने
श्रद्धा अचल अगाध विश्वास॥

—शिवकुमार मिश्र, 'मयूर'
प्रतापगढ़

●

* * *

जीवन-जाह्नवी

स्वर्गीय जुगलकिशोरजी बिरलाने अहंकारको भक्तिके तरंगाघातसे सँवारकर शालग्राम बनाया। जो भी उनके निकट-जीवनमें आया उसने यही अनुभव किया कि श्री-सम्पत्ति-कीर्तिका त्रिशूलात्मक अहंकार उनकी साधना और तपस्यासे सत्यं-शिवं-सुन्दरंकी प्रतीक त्रिधारा जाह्नवी बन गया और इस जाह्नवीने अपने स्वभावको सुरसरि गंगाकी भाँति ही चरितार्थ किया—

सुरसरिसम सबकर हित होई।

श्रीदेवदत्त शास्त्री

जन्मकाल और क्रमागत परिस्थितियाँ



राष्ट्रीय चरित्र : राष्ट्र और उसके चरित्रका निर्माण जनसमुदायके 'हम एक राष्ट्र हैं'—इस संकल्प और प्रतीतिसे होता है। राष्ट्र जनताकी भावनाओंसे वनता और विगड़ता है। **'राष्ट्रे वय ॐ जागृयामः', 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः', 'यतेमहि स्वराज्ये'**—हम राष्ट्रके लिए सदैव जाग्रत रहें। मातृभूमि हमारी माता है, हम उसकी सन्तान हैं, स्वराज्यकी रक्षाके लिए हम सतत प्रयत्नशील रहें—इस प्रकारकी कर्त्तव्य-शीलता प्रेरित करनेकी शक्ति जव राष्ट्रकी प्रजामें प्रकट होती है, तब राष्ट्र चेतनावान् वनता है। जनतासे ही राष्ट्र वनता है। जनसमुदायकी सामूहिक परम्पराकी विशेषता ही राष्ट्रको वनाती है। यदि जनसमुदायके आचार-विचार व्यवहारमें एकरूपता नहीं होती है तो राष्ट्रीयता छिछली और राष्ट्रके लिए घातक हुआ करती है। उदाहरण-स्वरूप हम पूर्वमध्यकालसे भारतकी स्थितिका सिंहावलोकन करते हैं। जिस समय मुहम्मद गोरीने भारत पर आक्रमण किया था, उस समय हमारे देशमें, सामुदायिक परम्परामें एकरूपता थी। वर्णाश्रम व्यवस्था सर्वत्र मान्य थी। पुराणों, महाभारतके आख्यानों पर आचरण किया जाता था। रामायणसे जन-जनका हृदय आपूर्ण था। सारी जनतामें हिन्दुत्वकी संस्कारिता समान थी, किन्तु राष्ट्रीयताका अभाव था। यही कारण है कि आक्रान्ता गोरीसे लड़नेके लिए जब पृथ्वीराज चौहान जाने लगा तो उसके इस अभियानमें अनेक शक्तिशाली हिन्दू राजाओंने साथ न दिया, इतना ही नहीं बल्कि उसे पराजित कराने, समूल नष्ट करानेके प्रयत्न किए गये। तत्कालीन जनसमुदायमें राष्ट्रीय भावनाका अभाव होनेसे ऐसी लज्जाजनक स्थितिका सामना करना पड़ा।

मध्ययुगमें दशनामी सम्प्रदायके नागा हिन्दूजाति और हिन्दूधर्मके रक्षकके रूपमें विख्यात हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन नागा संन्यासियोंने शताब्दियों तक धार्मिक स्थलोंका संरक्षण किया। किसी एक मन्दिरकी रक्षा करते हुए हजारों नागा योद्धा कट जाते थे। उनमें संस्कारिता मात्र थी, राष्ट्रीयता नहीं थी। इसी-लिए नागा सैनिकोंके एक दलने अवधके नवावकी नौकरी इस शर्त्त पर कर ली थी कि वह हिन्दुओंके धर्म-स्थानोंको भ्रष्ट न करे और उनकी रक्षा करे।

किन्तु १७६३में जब अहमदशाह अब्दालीने भारत पर आक्रमण किया और पेशवाने हिन्दूपत पात-साहीकी रक्षा करनेके लिए पानीपतके युद्ध क्षेत्रमें उस आक्रान्ताका मुकावला किया, तब अवधका नवाव **'हिलाल परचम'**की रक्षाके लिए, इस्लामकी फतेहके लिए, लखनऊसे अपनी नागासेना लेकर मराठोंके विरुद्ध अहमद-शाह अब्दालीके साथ लड़ा। नागा संन्यासी सैनिकोंने लाखों हिन्दुओंका वध कर डाला। हिन्दू सेना तहस-नहस हो गई और पेशवा हार गया। महाराष्ट्रके वीरसेनानी विश्वासराव, सदाशिवराव और सन्ताजी वीर-गतिको प्राप्त हुए।

* * *

युद्ध समाप्त होनेके वाद मुसलमान सैनिकोंने जब मारे गए लाखों हिन्दुओंकी लाशें इकट्ठा कर उन्हें दफ़नाने-जलानेका निश्चय किया तो धर्मरक्षक नागा सैनिक तलवार खींचकर खड़े हो गए और ललकारकर बोले कि 'हिन्दुओंके पवित्र शवोंको हम म्लेच्छोंका स्पर्श नहीं होने देंगे। खूनके दरिया बह जाएंगे अगर किसी म्लेच्छने एक भी हिन्दू शव पर हाथ लगाया।' मुसलमानोंके साथ लड़ते हुए हिन्दुओंका वध करते हुए नागाओंको किसी तरहके पापका अनुभव नहीं हुआ, किसी प्रकारकी लज्जा, ग्लानि नहीं हुई। देशको विदेशियोंके हाथमें सौंपनेमें हिचके तक नहीं, किन्तु हिन्दुओं की चिताओंको भ्रष्ट हो जानेकी उन्हें इतनी अधिक चिन्ता हुई कि एकसे दूसरे जंगके लिए आमादा हो गए। इसका कारण यही है कि उस समयके जनसमुदायमें प्रतिरोध-परायणता नहीं थी, अस्तित्वकी रक्षाके लिए इच्छा-शक्ति नहीं थी, इसलिए वह संस्कारिताको वचा पाए और राष्ट्रीयता उन्होंने गँवा दी। परिणाम यह हुआ कि राष्ट्र न बन पाया।

राष्ट्र, राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय चरित्रका निर्माण तभी हो पाता है **जब सामुदायिक कर्त्तव्य-परायणता एक ही स्मृति पुञ्जकी सार्वभौम प्रेरणासे प्रेरित होती है।** इसके बिना न राष्ट्र टिकता है, न राष्ट्रीय चरित्र टिक पाता है। सन् १८५७के प्रथम स्वाधीनता संग्रामका उदाहरण हमारे सामने है। इतिहास बतलाता है कि हिन्दुओं और मुसलमानोंने मिलकर अंग्रेजोंके विरुद्ध बगावत की थी। उस समय हिन्दू, सिख, मुसलमान तीन जाति और तीन धर्मकी जनताका समुदाय था, किन्तु तीनोंकी सामुदायिक भावनामें एकरूपता नहीं थी। हिन्दुओंके अगुआ बनकर नानासाहव पेशवाने हिन्दूधर्मकी रक्षा करनेकी घोषणा की, मुसलमानोंने दिल्लीमें **'हिलाल परचम'** फहराकर सार्वभौम इस्लाम शासन पुनः स्थापित होनेका संकल्प व्यक्त किया और सिखोंने नागा संन्यासियोंकी तरह अंग्रेजोंका साथ दिया।

सन् १८५७में अंग्रेजोंके विरुद्ध स्वाधीनता संग्राम छेड़नेमें प्रतिकार-परायणता अवश्य थी, किन्तु वह सामुदायिक नहीं थी, वर्गों और स्वार्थोंमें वँटी हुई थी। सामुदायिक राष्ट्रीयताकी प्रेरणाके अभावने उस स्वाधीनता संग्रामको विफल बना दिया।

ऐसे राष्ट्रीय चरित्रकी इस पृष्ठभूमिमें निर्मित वातावरणमें सन् १८८३ ई०में श्री जुगलकिशोरजी जव पैदा हुए, उस समय हिन्दुओं और मुसलमानोंके वीच सामुदायिक एकरूपता नहीं थी, सामुदायिक प्रतिरोध-परायणता नहीं थी। सन् १८५७की विखरी हुई स्वाधीनता प्राप्त करनेकी मात्र संस्कारिता थी। सैकड़ों वर्षसे हिन्दुओं और मुसलमानोंके वीच चला आनेवाला घृणाभाव उस समय भी था। हिन्दू मुसलमानोंको म्लेच्छ कहकर, मुसलमान हिन्दुओंको काफ़िर कहकर एक दूसरेको हिकारतकी निगाहसे देखते थे। हिन्दुओं, मुसलमानों के इस घृणाभावमें दोनोंकी भिन्न आचार पद्धतियाँ, भिन्न सामाजिक परम्पराएँ, भिन्न जीवन-दर्शन, भिन्न साहित्य, शिल्प अभिव्यक्त होते थे और जव कभी राष्ट्रीय संकटकी घड़ी आती, तब इस भिन्नताका नग्न रूप सामने आ जाता था।

सामाजिक चरित्र : अत्यन्त पुरातनकालसे आर्यजाति विभिन्न गुण और कर्मवालोंको विभिन्न वर्णोंमें विभक्त कर वर्णाश्रम व्यवस्थाके माध्यम से सामाजिक चरित्रका निर्माण करती आ रही है। अनार्य चाहे यहाँके हों या विदेशसे आए हुए हों—यदि वे भारतीय बनकर स्थायी रूपसे भारतमें रहना चाहते तो उन्हें एक जाति बनकर ही रहनेकी अनुमति आर्य हिन्दू समाज देता था। इसका उद्देश्य यही था कि अनार्य भी जाति बनाकर आर्य समाजमें प्रविष्ट हो जाता था। जातियाँ बनानेका यह क्रम अति पुरातनकालसे शुरू हुआ और हिन्दू समाजके सामान्य धर्मका पालन वे जातियाँ करती रहीं—धीरे-धीरे हिन्दू बनती गईं और हिन्दू बनी हुई उस अनार्य जातिके देवी-देवता भी हिन्दुओंके तैंतीस करोड़ देवताओंमें शामिल होते रहे। इस प्रकारका समावेश

* * *

राजनीतिक और धार्मिक सीमा तक ही प्रायः सीमित रहता था—सामाजिक समावेश नहीं हो पाता था। इसका मूलकारण हिन्दुओंकी जातिवाह्य विवाहोंके प्रति घृणाभावना ही है। जातिवाह्य रोटी-बेटीका सम्बन्ध करने पर जाति-भ्रष्ट समझा जाया करता था, जाति-भ्रष्टको गाँवसे वाहर निकाल दिया जाता था। और कदाचित् मुसलमान जैसी विधर्मी जातिसे विवाह सम्बन्ध हो जाता था तो वह न केवल जातिच्युत होता था, बल्कि उसे हिन्दुत्वका भी त्याग करना पड़ता था। यदि कोई जाति विधर्मियोंसे रोटी-बेटीका सम्बन्ध रखती तो पूरी जाति धर्मच्युत, जातिच्युत कर दी जाती थी। बोहरा, मेव, मीना, चौहान, किरिस्तान आदि जातियाँ पहले वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण, जातियाँ थीं, वे वादमें मुसलमान वनीं। इसी तरह अनेक जातियाँ और अनगिनत व्यक्ति ईसाई वन गए। आज भारतमें पाया जानेवाला मुस्लिम सम्प्रदाय, सीधा अरव, ईरानके खूनसे उत्पन्न नहीं वल्कि धर्मान्तरणसे वना हुआ है। यदि इस देशमें मुसलमान, ईसाई न आए होते और हिन्दुओंका धर्मान्तरण उन्होंने न कराया होता तो केवल अन्त्यज वर्णकी ही जनसंख्या १५ करोड़से कम न होती।

भारतमें जातियोंके चार वर्ग हैं: विशुद्ध आर्यजाति, आर्यसंकरजाति, आर्य-अनार्य अन्त्यज जाति तथा विशुद्ध अनार्य जाति। इन्हीं चार वर्गोंको मिलाकर भारतीय समाज और उसका भिन्न-भिन्न चरित्र वना है।

हिन्दू समाजमें यह एक अलिखित नियम वहुत पुराने जमानेसे चला आ रहा था कि वाहरसे आई हुई जातियाँ विना जातिबद्ध हुए हिन्दू-समाजके अन्तर्गत स्थायी रूपसे नहीं रह सकती थीं। किन्तु विजातीय आयुधजीवी मुस्लिम जातिने भारतमें प्रवेश किया और वह यहाँ स्थायी रूपमें वस गई। यह एक असम्भव वात है। सामाजिक इतिहासका एक प्रश्न है। इस विजातीय आयुधजीवी संघका परिचय हमें पाणिनि-कालसे मिलता है। पाणिनि और कात्यायन ने अपने सूत्रों और वार्तिकोंमें शक, यवन आदिका नाम लिया हैं। मौर्यकालीन तथा परवर्ती मुद्राओं, शिलालेखोंमें पारसीक, मेद, पह्लव आदि आयुधजीवियोंका उल्लेख पाया जाता है। नन्दवंशके पतनके बाद शकों, यवनों, पर्शुओं, पह्लवों, मेदोंके आगमन, छेड़-छाड़, यहाँके लोगोंके साथ युद्ध, एक दूसरेको सैन्य सहायता देकर राज्योंको उलटने, साम्राज्योंकी स्थापनाके ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। पहले ये लोग किरायेके सैनिकके रूपमें आते थे, बादमें इन्हें जव अपनी शक्ति और साम्राज्यका वोध हुआ तो स्वयं राज्यसत्ताधिकारी बन गए। दक्षिणके सातवाहन राजाओंने इन्हें पराजित किया, खदेड़-कर वाहर किया तथा इनके कारण वर्णव्यवस्थामें जो व्याघात पड़ा था, उसको सुधारा। सातवाहनोंकी शक्ति क्षीण होने पर हूण, शक, पह्लव आदि जातियोंने पुनः आक्रमण कर राज्यसत्ता हस्तगत कर ली और लगभग तीनसौ वर्षों तक स्वेच्छाचारी शासन करते रहे। तीसरी-चौथी शतीमें गुप्त सम्राटों और चालुक्य राजाओंने इन्हें पुनः परास्त किया और चातुर्वर्ण्य व्यवस्थाकी पुनः स्थापना की।

जब हजरत मुहम्मदने इस्लाम धर्मकी स्थापना की, तो यही शक, पह्लव, मेद, पारसीक, हूण, काम्बोज, वाह्लीक आदि इस्लाम धर्म स्वीकार कर तुर्क, मुगल, पठान, ईरानी, अफ़गान, तातारी नामसे विख्यात हुए। निष्कर्ष यह निकलता है कि मुस्लिम समाज धर्मान्तरित शक, हूण, पह्लव आदि आयुधजीवियोंका संघ है। हिन्दू राजाओंकी सेनाओंमें भरती होकर ये युद्ध किया करते थे। धीरे-धीरे ईर्ष्या, द्वेष और ईहा उत्पन्न हुई और इन्होंने जिहादका नारा बुलन्द कर भारतीय क्षत्रिय राजाओंसे शासन-यन्त्र छीन लिया।

मुस्लिम समाजके इस संक्षिप्त इतिवृत्तको समझ लेनेके बाद इतिहासकी दृष्टिसे ही इनके यहाँ स्थायी रूपसे बस जानेके प्रश्न पर विचार किया जाना सम्भव और सरल हो जाता है। ग्यारहवीं शती तक ये लूटमार करते और लौट जाते, किन्तु भारतमें स्थायी रूपसे बसनेका इनका कोई इरादा नहीं था। इसलिए कि ये भड़ैत थे,

लोभी-लालची थे, स्थायी वृत्ति प्राप्तकर जातिबद्ध होकर हिन्दूसमाजका अंग बनकर भारतमें बस जानेकी आवश्यकताका अनुभव इन्होंने किया नहीं। किन्तु शिविरोंमें अस्थायी निवास करनेवाले इन भड़ैत सैनिकोंको धीरे-धीरे यह परिज्ञान हो चला कि आन्तरिक मतभेदोंसे जलते हुए हिन्दुओंकी गृहकलहसे लाभ उठाकर हम कई बार इनका शासन यन्त्र छीन चुके, फिर भी इन्हें चेत नहीं होता है; ये विभ्रान्त होकर आपसकी फूटमें ही मर-पच रहे हैं तो क्यों न इन्हें विजितकर यहाँ स्थायी रूपसे बसकर शासन किया जाए। परिणाम यह हुआ कि बारहवीं शतीसे लेकर सत्रहवीं शती तक उत्तर भारतको और तेरहवीं शतीसे लेकर सोलहवीं शती तक दक्षिण भारतको मुसलमानोंके स्थायी निवासके दुष्परिणाम भोगने पड़े।

इस स्थायी निवासका सामाजिक परिणाम यह हुआ कि चार वर्णोंमेंसे शूद्र वर्ण तथा अन्त्यज और समाज-बहिष्कृत, उपही तथा लोभी, लोलुप, उल्लू किस्मके लोग हिन्दूधर्म छोड़कर मुसलमान बन गए। ब्राह्मण और क्षत्रियोंमेंसे कुछ लोग मजबूर होकर, कुछ लोग धन, राज्यके लोभसे मुसलमान बन गए और विशुद्ध आर्य वंशी वैश्य जाति तो मुसलमानोंके अर्थलोभका शिकार बनकर तहस-नहस हो गई। छत्रपति शिवाजीने जब जाति संस्थाके पुनरुज्जीवनका प्रश्न उठाया तो उन्हें महाराष्ट्रमें वैश्य जाति न मिल सकी थी। दूरदर्शी शिवाजीने महाराष्ट्रके व्यापारको समृद्ध बनाने और समाजमें वैश्यजातिकी पुनः स्थापना करनेके लिए मारवाड़, गुजरातके वैश्योंको आमन्त्रित किया था, उन्हें टिकाया, बसाया था।

इस दुर्द्धर्षकालमें ब्राह्मण वर्णने बहुत बड़े साहसका काम किया। धर्मशास्त्र, कला, विद्या, आचारको जीवित रखने, विकसित करनेमें अपनी सारी ताकत लगा दी। हिन्दू जाति-संस्थाको दृढ़तर बनाए रखनेके लिए बौद्धिक प्रयास किया। तीर्थों, मठों, मन्दिरोंकी महिमाका अत्यधिक प्रचार ब्राह्मणों, सन्तों, आचार्योंने किया। यही कारण है कि अदृढ़जाति संस्थावाले ईरान, अफ़गानिस्तान, बलूचिस्तान इस्लामके तूफ़ान में उड़कर अपनी जाति-संस्थाका अस्तित्व खो बैठे, किन्तु भारतकी सुदृढ़ जाति-संस्था मुसलमानोंके आक्रमण, जुल्म, अन्याय, अत्याचार सदियों तक झेलती रही, टूटी नहीं। भारतमें हिन्दू-संस्कृति अभंग बनी रही।

यद्यपि चारों वर्णोंके अन्तर्गत तथा संकर वर्णोंमें अनेक उपजातियोंका उदय सैकड़ों वर्ष पूर्व मत, आचार तथा प्रादेशिक भिन्नताके कारण हुआ था। प्रारम्भमें अनेक उपजातियोंमें बँट जानेकी अनुमति हिन्दू समाजने इस उद्देश्यसे दी थी कि मतभेद होनेसे व्यर्थका कलह बढ़ता रहेगा, अपनी-अपनी उपजाति बनाकर लोग शान्तिपूर्वक रह सकेंगे, किन्तु यह उद्देश्य मुस्लिम युगमें विकृतिरोहित हो गया। परस्पर वैमनस्य, घृणा, उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। इस घृणा, विद्वेषका मूल कारण समझकर परवर्ती युगके समाज-सुधारकोंने आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज जैसी संस्थाएँ कायम कीं। इनके प्रयत्नसे मतभेद, वर्णविद्वेष, अस्पृश्यास्पृश्यकी भावनामें बहुत-कुछ सुधार हुआ, कमी आई। आगे चलकर गान्धी जैसे राजनीतिज्ञोंने भी यह अनुभव किया कि जबतक उपजातियाँ नष्ट नहीं होंगी; मत, सम्प्रदाय, आचार तथा प्रादेशिक भिन्नतासे पृथक् पड़ी हुई जातियाँ एक नहीं होंगी; उन्हें मूल वर्णमें स्थान नहीं दिया जाएगा; तबतक समाज उन्नतिशील न होगा, राष्ट्रीय एकता कायम न हो सकेगी। इनसे पूर्व रामानन्द, तुलसीदास, कबीर, ज्ञानेश्वर, समर्थ रामदास जैसे सन्तोंने सब जातिके लोगोंको समान रूपसे आत्मोन्नति करनेका पथ-प्रशस्त किया।

जिस समय राष्ट्रीय एकता, जातीय एकताका अनुभव राष्ट्र कर रहा था और धार्मिक, राजनैतिक, साँस्कृतिक सभी प्रकारके नेतागण भावी एकरूपीय एकभाषीय हिन्दू राष्ट्रके निर्माणकी कल्पना, आयोजना कर रहे थे, उस समय श्री जुगलकिशोर बिरला उत्पन्न हुए। बचपनसे ही उन्हें ऐसा वातावरण मिला कि हिन्दू

* * *

जाति, हिन्दी भाषा और भारत राष्ट्रकी एकरूपताके वह स्वप्नद्रष्टा बन गए और उम्र बढ़नेके साथ ही इस स्वप्नको साकार बनानेके लिए वे क्रियाशील होते गए।

राष्ट्र, धर्म, समाज, संस्कृति, कला और साहित्यके विविध क्षेत्रोंमें श्री बिरलाजीके जो ज्ञाताज्ञात कार्य हैं, उन सबके मूलमें यही उद्देश्य निहित था, कि :

१. आर्य हिन्दू जाति और आर्य हिन्दू धर्म भारतमें सार्वभौम अस्तित्व रखते हैं। हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिख परस्पर जाति या धर्मसे भिन्न नहीं, बल्कि हिन्दू जाति और हिन्दूधर्मके सशक्त अवयव हैं।

२. हिन्दू समाजकी उपजातियाँ मत, आचार, प्रदेश-भेद पर अवलम्बित हैं; इन्हें समाप्तकर एक सशक्त सार्वभौम जाति-संस्था कायम की जानी चाहिए।

३. सशक्त जाति-संस्था व्यक्तिको आत्मोन्नतिका अवसर देती है और समाजको चिरजीवी बनाती है।

४. बीज क्षेत्रकी शुद्धता, वंशकी शुद्धता, संस्कृति और आचारकी शुद्धता, जाति-निर्माणके कारण होते हैं; अतएव इन मूलभूत कारणोंकी रक्षा हर प्रयत्नसे करनी चाहिए।

५. मुस्लिम-समाज न एक वंशसे सम्बन्ध रखता है और न किसी एक जातिसे। विभिन्न जातियों, संस्कृतियों, वंशोंका मुक्त मिश्रण उस समाजमें हो चुका है; अतएव यह मिश्रित समाज स्थायी नहीं रह सकता। शास्त्र-सम्पन्न, आचार-सम्पन्न, एक जातीय समाजोंके सामने यह मुश्किलसे टिक पाएगा।

६. हर व्यक्तिका स्वदेश, स्ववेश, धर्म, स्ववर्णमें प्रगाढ़ अनुराग होना चाहिए। राष्ट्रकी स्वतन्त्रता, संस्कृति, धर्म, साहित्य और कलाका पुनरुद्धारकर, जाति-संस्थाको सशक्त बनाकर भारत राष्ट्रको सुदृढ़ और एकताबद्ध किया जा सकता है।

७. राष्ट्रकी रक्षा विपत्तिकालमें जाति-संस्था ही कर सकती है।

इन सूत्रोंको अपने जीवनका लक्ष्य बनाकर श्री बिरलाजीने इनकी पूर्तिके लिए जितने कार्य और प्रयत्न किये हैं, सभी निर्दिष्ट और सफल सिद्ध हुए हैं। इन्हीं लक्ष्योंने उन्हें जीवन-सिद्ध पुरुष बनाया है।

●

* * *

आचार्य श्रीबलदेव उपाध्याय

आर्य संस्कृतिके उन्नायक

⊙ ⊙ ⊙

संस्कृतके एक प्राचीन पद्यमें जिन तीन वस्तुओंकी उपलब्धिके निमित्त भगवान्से प्रार्थना की गयी है, उनमें '**वैभवं दानशक्तिश्च**'का महत्वपूर्ण उल्लेख है। इन दोनोंमें विरोध ही अधिक दृष्टि-गोचर होता है। दोनोंमें मञ्जुल-समन्वयकी सत्ता भगवान्की अलौकिक अनुकम्पाका ही अमृतफल होता है। माननीय सेठ जुगलकिशोर बिरला पर भगवान्की इस विषयमें वस्तुतः बड़ी अनुकम्पा थी। वे अपार सम्पत्तिके साथ-ही-साथ अद्भुत दानशक्तिके अधिकारी थे। इसीलिए भारतीय जनताने उन्हें 'दानवीर' की उपाधिसे विभूषित किया था। अपार लक्ष्मीके अनेक व्यक्ति मालिक हैं, परन्तु उनके हाथसे एक कौड़ी भी दानमें कभी दी नहीं जाती। '**लाभात् लोभः प्रवर्तते**' उक्तिके अनुसार लाभ होनेसे लोभ बढ़ता है, त्याग नहीं। भोग बढ़ता है, पात्रमें दान नहीं। परन्तु बिरलाजी इस चिरविरोधाभासके जीवन्त प्रतीक थे। उनके एक घनिष्ठ मित्रने ठीक ही कहा था कि 'सेठजीका बायाँ हाथ भी नहीं जानता था कि दाहिने हाथने कब कितना दान किन सुपात्रोंको दे डाला है। इसे कहते हैं दान वीरता!!!'

आर्य-संस्कृतिके उदात्त उन्नायक बिरलाजीको 'हिन्दू' शब्दसे बढ़कर 'आर्य' शब्द प्यारा था और उनके मानसके सामने '**कृण्वन्तो विश्वमार्यम्**'की वैदिक प्रार्थनाका साकार रूप सदा झूला करता था। वे उस मंगल-प्रभातके उदयकी प्रतीक्षामें थे, जब समस्त विश्वके मानवोंके कण्ठसे 'हरे राम', 'हरे कृष्ण', 'हरे बुद्ध'की मनोरम वाणी फूट निकलेगी। इस भावनाको साकार रूप देनेके लिए उन्होंने तनसे, मनसे तथा धनसे जिन श्लाघनीय उपायोंको कर दिखाया, वे हमारे लिए तथा भविष्यमें आनेवाली पीढ़ियोंके लिए सत्कार तथा आदरके पात्र हैं। बिरलाजीने इसी उद्देश्यकी पूर्तिकी कामनासे हमारे मित्र डॉ० भीखनलाल आत्रेयजीको समस्त विश्वमें हिन्दू संस्कृतिका सन्देश पहुँचानेके लिए अनेक बार यूरोप, जापान तथा अमेरिका भेजा। इस विषयको भारतमें भी दृढ़ बनानेके लिए उन्होंने बहुव्यय-साध्य रमणीय मन्दिरोंका तथा साथ-ही-साथ धर्म-शालाओंका निर्माण कराया। वे भलीभाँति जानते थे कि निराकार ब्रह्मकी उपासना पण्डितजनोंके लिए भी सुलभ नहीं है, सामान्य जनोंके लिए तो वह एक अचिन्तनीय व्यापार है। भगवान् सर्वशक्तिमान हैं। वे एक ही कालमें निराकार-निर्गुण रह सकते हैं तथा सगुण-साकार भी। उन्हें योगवासिष्ठके इस तथ्य पर पूर्ण आस्था थी कि 'बालकोंको अक्षर-ज्ञान करानेके लिए जिस प्रकार स्थूल पत्थरके गोल टुकड़े दिये जाते हैं, उसी प्रकार शुद्ध, बुद्ध भगवान्की उपलब्धिके निमित्त साधकोंको लकड़ी, मिट्टी (पार्थिव पूजन) तथा पत्थरके बने (शालिग्राम) मूर्तियोंकी पूजाका उपदेश दिया जाता है':

* * *

अक्षरा व गमलब्धये यथा
स्थूल-वर्तुल-दृषत्-परिग्रहः ।
शुद्ध बुद्ध परिलब्धये तथा
दारु-मृण्मय-शिलामयार्चनम् ।।

इसी सिद्धान्तके लिए उन्होंने दिल्लीमें लक्ष्मीनारायण मन्दिरका तथा काशीमें विश्वनाथ मन्दिरका निर्माण कराया। ये मन्दिर केवल उपासनागृह नहीं हैं, अपितु भारतीय संस्कृतिके जीवित प्रभाव-प्रकाश विखेरनेवाले पवित्र संस्थान हैं। मथुराके श्रीकृष्ण जन्मस्थानमें निमीर्यमाण मन्दिरके निर्माणकी कल्पना भी उन्हींकी दृढ़ निष्ठाका एक उज्ज्वल उदाहरण है।

उनका हृदय अतिशय उदार था। संकीर्णतासे सर्वथा मुक्त उनके सामने आर्यधर्मका वह विशाल रूप सदा सन्नद्ध रहता था, जिसमें वैदिक धर्मानुयायी जनोंके साथ-ही-साथ बुद्धके उपासकोंका भी उचित स्थान था, 'श्रीमद्भगवद्गीता'के साथ 'धम्मपद' भी मननीय तथा श्रद्धेय साहित्यका अविभाज्य अंग था। वे हिन्दुओंके साथ-ही-साथ बौद्धोंके भी मंगल-साधनमें सर्वदा संलग्न रहते थे। प्राचीन युगमें वैदिक आर्योंने अपनी सभ्यता और संस्कृतिके प्रसारके लिए नवीन उपनिवेश स्थापित किये। इन उपनिवेशोंकी स्थापनाका लक्ष्य नवीन देशोंके ऊपर अपना राज्य स्थापित करना न था, प्रत्युत अपनी साँस्कृतिक दिग्विजय प्रस्तुत करना था। इन ब्राह्मणोंके उद्योगसे आजके 'बृहत्तर भारत' (अथवा 'द्वीपान्तर')में हिन्दू धर्म, संस्कृत भाषा तथा संस्कृत साहित्यका विपुल प्रचार हुआ, जिसकी छाप आज भी इन देशोंके जनजीवन पर प्रचुर मात्रामें उपस्थित है। संस्कृत यहाँकी राष्ट्रभाषा थी, यहाँके हिन्दू राजाओंने अपने शिलालेखोंमें इसी भाषाका प्रयोग किया है। इसकी पुष्टिके लिए एक-दो दृष्टान्त पर्याप्त होंगे।

बृहत्तर भारतके नाना देशोंमें भगवान् शंकरकी उपासनाका प्रचार खूब था और इसलिए इन देशोंके राजाओंके द्वारा अनेक शिवलिंग स्थापित किये गये हैं तथा उनकी भक्ति-भाव-पूरित कमनीय स्तुतियाँ सस्कृतमें शिलाओंपर उत्कीर्ण हैं।

शंकरकी स्तुतिकी बोधिका यह मालिनी कितनी सरल तथा सरस है:

जयति जितमनोजो ब्रह्मविष्ण्वादि देव-
प्रणतपद-युगाब्जो निष्कलोऽप्यष्टमूर्तिः ।
त्रिभुवनहितहेतुः सर्व-संकल्पहारी
परपुरुष इह श्रीशानदेवोऽयमाद्यः ।।

महादेवका स्वरूप वाणीके अगोचर है। वह अपरिमेय होनेसे विद्वानोंकी बुद्धिको सदैव चमत्कृत किया करता है। उसे यथार्थ रूपसे जाननेवाला व्यक्ति जगत्में कोई भी नहीं है। इसका वर्णन कितनी स्वच्छतासे इस पद्यमें किया गया है :

ऐश्वर्यातिशयप्रदो मुखभुजां यस्तप्यमानस्तपः
कन्दर्पोत्तम-विग्रह-प्रदहनो हिमाद्रिजायाः पतिः।
लोकानां परमेश्वरत्वमसमं यातो नदद्वाहनो
याथातथ्य-विशारदास्तु जगतामीशस्य नो सन्ति हि ।।

* * *

इस पद्यमें विद्यमान विरोधके चमत्कारको तो देखिए। शिव स्वयं तो किसी अर्थके लिए तपस्या करते हैं, परन्तु देवताओंको ऐश्वर्यका उत्कर्ष प्रदान करते हैं। हैं तो पार्वतीके पति, परन्तु कामदेवको भस्म कर डाला है! सवारी तो है बैलकी, परन्तु धारण करते हैं संसारके परमपदको। शिव धन्य हैं, जिनमें इन विरोधी गुणोंका जमघट एक साथ वर्तमान रहता है। महाकवि कालिदासने भी ठीक यही बात कही है : **"न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः"**—शिवके यथार्थरूप तथा गुणको जाननेवाला कोई भी प्राणी जगत्में नहीं है।

बृहत्तर भारतके इन देशोंमें केवल संस्कृत काव्यका ही निर्माण विशेष रूपसे नहीं होता था, प्रत्युत मीमांसा आदि छहों दर्शन तथा बौद्ध-आगमका अध्ययन यहाँ कम नहीं था। काशिकाके साथ व्याकरणमें निपुणता पानेवाले विद्वानोंका विशेष उल्लेख मिलता है। यहाँ तीन प्रकारके आश्रम थे: वैष्णव आश्रम, ब्राह्मण आश्रम तथा सौगत आश्रम। इनमें संस्कृतका अध्यापन कराया जाता था। और एक विशेष पुस्तकालयकी स्थापना प्रत्येक आश्रममें की गई मिलती है; जहाँ दो लेखक, दो पुस्तक-स्थापक तथा छह पत्रकारक रहते थे। पत्रकारकोंका काम था नये ग्रन्थोंका हस्तलेख तैयार करना। पुस्तक-संग्रहका नाम था 'पुस्तकाश्रम', जो आजकल प्रचलित पुस्तकालय शब्दकी अपेक्षा विशेष सुन्दर तथा मनोरम है। मेरे कथनका सारांश यह है कि केवल भारतवर्षमें ही नहीं, प्रत्युत इन बाहरी प्रदेशों तथा द्वीपोंमें संस्कृत भाषाके अध्यापन तथा संस्कृत साहित्यकी समृद्धिके लिए वहाँके शासकोंका उद्योग आज भी हमारे श्लाघा तथा आदरका भाजन है। इन सुदूर देशोंकी जनता संस्कृतको अपनी राजभाषा समझती थी तथा उसके संवर्धनके लिए सदा तैयार रहती थी।

स्वर्गीय बिरलाजी आर्यसंस्कृतिके इस सार्वभौम स्वरूपसे पूर्णरूपेण परिचित थे और इसलिए इसके पुनरुद्धारका कार्य उनके जीवनका महनीय व्रत था। इसमें वे अंशतः सफल हुए हैं। उनके द्वारा आरोपित बीज आर्यसंस्थानके रूपमें आज भी जाग्रत है और भविष्यमें भी जागरूक रहेगा। मैं व्यक्तिगत रूपसे श्री बिरला-जीके महनीय गुणोंमेंसे आर्यधर्मके उन्नायक-रूपको अधिक महत्त्व देता हूँ। वे इस रूपमें यशः शरीरसे अमर हैं और हम सबको प्रेरणा देते रहेंगे। प्रत्येक भारतीयको वह आर्य लक्षण-गुण सम्पन्न देखनेकी कामना रखते थे। वे महाभारतके इस लक्षण पर सदा ही बल देते थे कि आर्य वही है, जो शान्त वैरको कभी जगाता नहीं, गर्व नहीं करता। किसी प्रकार पराजय स्वीकार नहीं करता तथा विपत्ति आने पर भी कभी अकार्य नहीं करता:

> **न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं**
> **न गर्वमारोहति नास्तमेति।**
> **न दुर्गतोऽपीति करोत्यकार्यं**
> **तमार्यशीलं मुहुराहुरार्यः॥**

मुझे पूरा विश्वास है कि हम बिरलाजीकी इस उदार भावनाको चरितार्थ करनेका पूर्ण प्रयत्न करेंगे। तथास्तु।

* * *

आचार्य श्रीकिशोरीदास वाजपेयी

सम्प्रदाय-निरपेक्ष जुगलकिशोर बिरला

⊙ ⊙ ⊙

श्रद्धास्पद, प्रातःस्मरणीय बिरलाजीके नामको हम 'स्वर्गीय' विशेषणके साथ नहीं लिख रहे हैं; क्योंकि **'कीर्तिर्यस्य स जीवति'**—जीवित वह है, जिसकी कीर्ति संसारमें है। और लोग तो केवल साँस लेते हैं, जो पेट भरना मात्र जानते हैं और संसारके लिए भार बने रहते हैं। इसीलिए 'स्वर्गीय पण्डित 'मदनमोहन मालवीय' या स्वर्गीय लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक' जैसे प्रयोग नहीं किये जाते।

मेरे वयस का तिहत्तरवाँ वर्ष चल रहा है और सोलह वर्षका था, तमीसे समाचार-पत्र पढ़ता आ रहा हूँ। इतने दिनोंमें हिन्दू जातिको बल देनेवाले जो शतशः महान् व्यक्ति सामने आये, उनमें दो सर्वोपरि हैं—प्रथम पण्डित मदनमोहन मालवीय और द्वितीय सेठ जुगलकिशोर बिरला। मालवीयजी 'पण्डित' थे और उन्होंने अपने पाण्डित्यको हिन्दू जातिकी सेवामें पूरी तरह लगा दिया था। देश-स्वातन्त्र्य, हिन्दी-अभ्युत्थान ये सब हिन्दू जातिकी ही सेवाके लिए था।

महर्षि मालवीयके जीवनका प्रत्येक क्षण हिन्दू जातिके लिए था। कांग्रेसमें आदिसे अन्त तक वे हिन्दू जातिके उत्कर्षके ही लिए रहे। यह देश हिन्दू जातिका है। और लोग भी रहते हैं, पर है यह 'हिन्दुस्तान'। 'बाहुल्येन व्यपदेशाः'के अनुसार समझिए, चाहे तत्वतः समझिए, है यह हिन्दुस्तान। हिन्दू जाति सबल है, तो हिन्दुस्तान सबल है और हिन्दू जाति निर्बल है, तो हिन्दुस्तान निर्बल है।

श्रद्धेय बिरलाजीकी धर्मसेवा मैं छुटपनसे ही सुनता आ रहा था और सन् १९३३में जब मेरी 'तरंगिणी' प्रकट हुई, तो उसमें एक यह दोहा भी अवतरित हुआ था :

'दान' नाम से सम्पदा, देते फूँक अनेक।
खोले थैली देश-हित, कोई बिरला 'एक'॥

'तरंगिणी'में मालवीय जैसे महान् नेताओंकी वन्दना है; पर श्रीमन्त केवल 'बिरला' वन्दित हुए हैं। जो लोग मेरी प्रकृति-प्रवृत्तिसे परिचित हैं, वे इस दोहेसे ही समझ जायेंगे कि मेरे मनमें उनके लिए तबतक क्या भावना बन चुकी थी। उसके बाद भी उत्तरोत्तर उनकी सेवाएँ पढ़ता-सुनता रहा और मन-ही-मन इस श्रीमन्त सन्तको प्रणाम करता रहा, जीवन भर करता ही रहूँगा।

धर्मवीर जुगलकिशोर बिरला पूर्णतः सम्प्रदाय-निरपेक्ष थे। 'धर्म-निरपेक्ष' कहना तो एक गाली है। धर्म-निरपेक्ष का अर्थ है 'अधर्मी'। वे धर्म-परायण थे। अहिंसा, सत्य, दान, दया, ईमानदारी आदि 'धर्म' के अंग हैं। ये सम्पूर्ण तत्व उनमें थे। परन्तु धर्मके इन सभी अंगोंका पालन विचारसे होता है। सर्वत्र 'अहिंसा' धर्म

नहीं, 'दान' भी सर्वत्र धर्म नहीं। देशके शत्रुओंका विध्वंस ही धर्म है और दुष्टोंको 'दान' देना भी अधर्म है। यह सब धर्मवीर बिरलाजी अच्छी तरह समझते थे।

परिश्रम करके रुपया कमाना और फिर उसे अपने सुख-आनन्दमें व्यय न करके पूरी जातिके अभ्युत्थान में लगाना कितनी बड़ी तपस्या है! यही तो 'कर्म-योग' है।

बिरलाजी सम्प्रदाय-निरपेक्ष थे। सभी मत-मज़हव उनके लिए समान थे—वैदिक, अवैदिक, शैव, वैष्णव, शाक्त, जैन, बौद्ध, सिख आदि सभी सम्प्रदाय उनके लिए समान थे। वे सम्प्रदाय-भेद (मत-मज़हव)के बखेड़ोंसे दूर थे। एक जाति (राष्ट्र)में अनेक मत-मज़हब हो सकते हैं। परन्तु अन्य किसी भी जाति (राष्ट्र)में ऐसी उदारता न मिलेगी जैसी कि हिन्दू जातिमें—हिन्दुस्तानी राष्ट्र या नेशनमें है। अरबमें मुसलमान जनता अपने ही भाई 'यहूदी' लोगोंको नहीं देख सकती। परन्तु हिन्दुस्तानमें हिन्दू जातिमें सवका सहावस्थान है।

हाँ, भेद है तो राष्ट्रीयताका, यानी जातीयताका। भारतका प्राण है भारतीयता। भारतीय भाषामें जो अपने नाम तक नहीं रखते; भारतीय होकर (भारतमें जन्म लेकर और यहींसे पोषित होकर भी) जो लोग इस देशकी भाषामें अपनी सन्तानका नाम तक नहीं रखते, उनसे हमारा वैसा गहरा सम्बन्ध सम्भव नहीं—यह मेरे जैसे लोगोंका मत है। कोई हिन्दुस्तानी चाहे जिस मज़हबको माने, पर हिन्दुस्तानियत तो न छोड़े। जिनका जीवन पूर्णतः बाहरी रंगमें रँगा हुआ है, उनसे भी हम कुछ बचकर रहते हैं। धर्मवीर बिरलाजी भी यह भेद करते थे। यानी जो पूरी तरह हिन्दुस्तानी नहीं, उनसे उनका लगाव न था। वे निर्मल राष्ट्रवादी थे और अपनी इस राष्ट्रभक्तिको वे प्रभु-अर्चना का साधन समझते थे। वे सच्चे वैश्य थे, अतएव धन कमाना और उसको पूर्णतः सदनुष्ठानमें लगाना अपना धर्म मानते थे। उन्हें सिद्धि मिली, 'स्वकर्मणा तपश्चर्या सिद्धिं विन्दति मानवः।' शतशः प्रणाम उस सन्तको!

●

प्राचीनकालसे ही हिन्दूधर्म अन्य धर्मोंके प्रति सहिष्णु रहा है। भगवद्गीतामें भगवान्ने कहा है, 'जो अन्य देवताओंकी श्रद्धासे पूजा करते हैं; वे भी अपने प्रेमके कारण मुझको ही पूजते हैं, यद्यपि उनका मार्ग सही नहीं है।' अशोककी राजाज्ञाएँ सभी धर्मोंका आदर करती थीं। हिन्दुओंके इसी दृष्टिकोणके कारण ही भारतवर्ष विभिन्न धर्मोंका सदन रहा है।

* * *

आचार्य श्रीतुलसी

भारतीय-चेतनाका संवाहक व्यक्तित्व

⊙ ⊙ ⊙

स्वर्गीय जुगलकिशोर बिरला भारतीय चेतनाके संवाहक थे। भारतीयताके प्रति उनके मनमें विशेष अनुराग था, जो घृणा पर आधारित न होकर उसकी मौलिक विशेषताओं पर आधारित था। १९६५में दिल्लीमें मुझसे बिरलाजी मिलने आये। प्रारम्भिक बातचीतके बाद बोले—"महाराज, देशपर चारों ओरसे संकट आ रहा है, यह कब मिटेगा?"

मैंने कहा—"जिस दिन देश शक्तिशाली होगा, संकट अपने-आप टल जाएगा।"

उपर्युक्त प्रश्न उन्होंने एक बार नहीं, बल्कि बार-बार पूछा; जिससे स्पष्ट था कि उनके मनमें देशकी चिन्ता सबसे अधिक थी।

बिरलाजी हिन्दू विचार-धाराके पोषक थे। एक बार उन्होंने मुझे कहा—"देखिए महाराज, आपके जैन लोग अपने-आपको हिन्दू नहीं कहते।"

मैंने उत्तर दिया—"बिरलाजी, इसमें भूल किसकी है? हिन्दूका अर्थ संकुचित दृष्टिसे किया जा रहा है, तब जैन लोग अपने-आपको हिन्दू कैसे मानेंगे?"

बिरलाजीने कहा—"हिन्दूका संकुचित अर्थ क्या है? और उसका व्यापक अर्थ क्या हो सकता है?"

मैंने बताया—"वैदिक धर्मको माननेवाले हिन्दूको हिन्दू मानना उसका संकुचित अर्थ है। इस अर्थके अन्तर्गत जैन लोग हिन्दू नहीं हैं। हिन्दुस्तान में रहनेवाला हिन्दू, यह हिन्दूका व्यापक अर्थ है। इस अर्थमें जैन लोग हिन्दू हैं, वे अहिन्दू नहीं हो सकते।" और इस अर्थमें उनकी पूर्ण सहमति मुझे मिली।

बिरलाजीके मनमें परम्परागत धर्मके साथ-साथ शुद्ध धर्म-चेतना जाग्रत थी। समन्वयकी ओर झुकाव था। जैन और बौद्ध दोनों भारतीय धाराओंके प्रति उनके मनमें श्रद्धाके भाव थे। मैं सन् १९६०में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय गया था। वहाँ संयोगवश बिरलाजी भी पहुँच गये। वे मुझे विश्वनाथ मन्दिर ले गए। मन्दिर दिखाते हुए बोले—"यह मन्दिर समन्वयका प्रतीक है। इसमें वैदिक, जैन और बौद्ध तीनों धाराओं का संगम है।"

मैंने शंका व्यक्त की कि दिल्ली में ऐसा क्यों नहीं? वहाँ आपने बौद्ध मन्दिर बनाया है, जैन मन्दिर नहीं बनवाया।

बिरलाजी कुछ मुस्कराये, फिर बोले: "इसमें हमने पक्षपात नहीं किया है, किन्तु बिछुड़े भाइयोंको जोड़नेकी दृष्टिसे विशेष प्रयत्न किया है।" उनकी भावभंगिमासे मैं उनकी भावनाको भी समझ रहा था।

अणुव्रतके प्रति उनके मनमें काफ़ी निष्ठा थी। वे मुझे एक जैन मुनिके रूपमें नहीं, किन्तु एक सर्वधर्म

समन्वयकारी मुनिके रूपमें देखते थे। एक दिन उन्होंने कहा कि कभी आप पिलानी आइए। सन् १९५७में मैं पिलानी गया। तीन दिन वहाँ ठहरा। शिक्षा-संस्थानोंमें गया। वे तीन दिनतक बराबर मेरे साथ रहे। उनकी विनम्रता, सरलता और सहज सादगीने मुझे बहुत आकृष्ट किया।

१९६५में मैं दिल्ली पहुँचा। वे मिलने आये। उन्होंने पूछा—"महाराज, कब तक ठहरेंगे ?"

मैंने बताया, इस बार चातुर्मास यहीं करना है।

"कहाँ करेंगे ?"

मैंने कहा—"स्थानका निर्णय अभी नहीं हुआ है। पुरानी दिल्लीमें इच्छा नहीं है। नयी दिल्लीके शान्त और स्वच्छ वातावरणमें रहना चाहता हूँ। अच्छा है, कहीं बिरला मन्दिरके आसपास स्थान मिल जाए। क्या हिन्दू महासभा-भवन प्राप्त हो सकता है ?"

बिरलाजीने कहा कि हो सकता है। मैं पूरा पता लगाकर आपको सूचित कर दूँगा। थोड़े समय बाद उन्होंने नागरमलजीके माध्यमसे कहलवाया कि व्यवस्था हो जाएगी। मैं चार मास हिन्दू महासभा भवनमें ठहरा। वे समय-समय पर मिलते रहे और तात्कालिक व दीर्घकालिक चर्चा करते रहते। आनेवाले यात्रियोंके लिए उन्होंने बिरला मन्दिरमें विशेष सुविधा करवा दी। उनके सहयोग व सौहार्दसे भारतके हर कोनेसे आने वाले यात्री बहुत प्रभावित हुए। उनके मनकी करुणा उनकी सहृदयता प्रमाण थी। ऐसे धर्म-निष्ठ व्यक्तिकी परोक्षता सचमुच खलनेवाली होती है। मैं मानता हूँ कि उनकी आत्मा जागरूक थी और जो वर्तमानमें जागरूक होता है, वह भविष्यमें सुषुप्त हो ही नहीं सकता।

●

गुणोंके सागर गुरु-जनोंके सुवचनोंको सुनकर जो बुद्धिमान् साधक मन, वचन, शरीरको संयममें रखता है, उसे जाग्रत-आत्मा और पूज्य मानना चाहिए।

—तीर्थंकर महावीर

* * *

भिक्षु शान्ति शुगेई

बौद्धधर्मके पुनरुद्धारक

⊙ ⊙ ⊙

आज हम याद कर रहे हैं ऐसे एक महान् पुरुषको, जो अपने कृत्योंसे, पवित्र आचरणसे, महान् विचारसे मरकर अमर बन गए।

स्वर्गीय जुगलकिशोरजी बिरला आर्यधर्मके महान् स्तम्भ थे। सनातन-आर्य धर्मके प्रचार व प्रसारके लिए उन्होंने भारतमें अनेक मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा की, प्राचीन ऐतिहासिक कितने ही मन्दिरोंका जीर्णोद्धार किया, धर्मकी स्थापनाके लिए देशान्तरोंमें भी मुक्त-हस्त दान दिया।

उनकी विशेषता यह थी कि किसी विशेष मतवाद या सम्प्रदायके प्रति उनका एकान्तिक आकर्षण नहीं था। वे थे सबके लिए। सब सम्प्रदाय, सब धर्म—उनका अपना था। 'He loved all and lived for all.' —उन्होंने सबको प्रेम किया और सबकी सेवा की।

भारतमें प्रसिद्ध बिरला-परिवारमें एक उज्ज्वल रत्न स्वर्गीय जुगलकिशोरजीकी जीवन-कथा दो चार शब्दोंमें लिखना चाहता हूँ:

वह था १९६२ सालका १७ जून। हम दिल्ली गये थे अणु-अस्त्र विरोधी अधिवेशनमें भाग लेनेके लिए। साथमें थे हमारे जापानके महाभिक्षु निचिदात् फुजीई गुरुजी और शिष्यमण्डली। दोपहरका समय था। हमने देखा उनके मुखमण्डलमें आनन्दकी छटा, भगवन्नाम स्मरणमें उनका अखण्ड अनुराग, सन्तोंके प्रति उनकी आनन्द प्रीति। आध्यात्मिक आलोचनाके बाद जब हम उठने लगे, भोजनके लिए उन्होंने आग्रह प्रकाश किया। हमारे भोजनका प्रबन्ध दूसरे स्थान पर है—यह जानकर वे कहने लगे : "आप अतिथिनारायण हैं। अगर आप अभुक्त रहकर चले जावेंगे, तो हम गृहस्थियोंका अकल्याण होगा।" संसारके इस घोर परिवर्तनके युगमें एक सुप्रसिद्ध धनी सन्तानकी इस प्रकार पवित्र भावनाने हमारे मनमें एक सुदृढ़ रेखांकन किया, जिसे हम आजतक भूल नहीं सके।

स्वर्गीय जुगलकिशोरजीके बारेमें यह कहनेमें अत्युक्ति नहीं होगी—'His heart gave, ere charity began.' दानके पात्रापात्र पर विचार करनेसे पहले ही उनका हृदय द्रवीभूत हो जाता। कलकत्तेके निवास-कालमें जब वे इस मन्दिरका दर्शन करते और रवीन्द्र सरोवरमें घूमनेको आते, तो सैकड़ों आदमी उत्कण्ठित चित्तसे उनकी प्रतीक्षा करते रहते थे। वे सबसे प्रेमपूर्वक मिलते थे व सबको सप्रसन्न दान दिया करते थे। किसी ग़रीब की कन्या अविवाहित है, अर्थाभावसे कोई सन्तानको शिक्षा देनेमें असमर्थ है, किसीके लिए संसार-निर्वाह करना कष्टसाध्य है—इत्यादि प्रार्थना वे सुना करते थे। वे सबकी आशाकी पूर्ति किया करते थे। उनके अभावमें ये सब अनाथ बन गए। उनकी करुण-कहानी सुननेवाले संसारमें कोई बिरला पुरुष होंगे, मानो बिरलाजीकी पूर्ति कोई बिरला पुरुष ही कर सकेगा।

* * *

"द्वे विद्ये वेदितव्ये पराऽपरा च"—यह है वेदवाणी। जीवनको सुन्दरतम बनानेके लिए आध्यात्मिक उत्कण्ठाकी परम आवश्यकता है—इस बातका एक जाज्वल्यमान् दृष्टान्त हैं बिरलाजी। व्यावहारिक सब कार्य बिरलाजी निष्ठाके साथ करते थे, लेकिन उनके हृदय-मन्दिरमें प्रेममय प्रभुकी अनन्त संगीत लहरी सदा ही गूँजा करती थी। कोई उन्हें कहा करते थे राजर्षि, कोई कहते थे महर्षि। लेकिन बिरलाजी एक बिरला पुरुष थे। उनके बारेमें इतना कहना अत्युक्ति नहीं होगी—"बिरला बिरला इव।" यहाँ उपमा और उपमेय एक हो जाते हैं।

व्यायाम व संगीत विद्या पर उनका प्रवल अनुराग था। युवकसमाज चरित्रवान, स्वास्थ्यवान हो—इस पर उनकी विशेष दृष्टि थी। दूरसे स्वास्थ्यवान युवकको देखने पर पास बुला लेते थे और प्रेमपूर्वक बातचीत करते थे। कलकत्तामें "बजरंग व्यायामागार" नामसे एक व्यायामागार उनकी सहायतासे चल रहा है तथा आर्यसंगीत विद्यापीठमें प्राचीन व आधुनिक संगीत विद्याकी चर्चा होती है।

भगवान् बुद्धके प्रति उनकी अत्यन्त श्रद्धा थी। कलकत्तामें, खासकर जापानी बौद्धोंके लिए "सद्धर्म विहार"की प्रतिष्ठा उन्होंने की थी। जापानके महान् भिक्षु फुजीई गुरुजी तथा उनके शिष्य भिक्षु आनन्द मारुयामाजीके आदर्श त्याग, तितिक्षा, एकान्तिक निष्ठा व श्रद्धासे आकर्षित होकर उन्होंने सन् १९३५में इस मन्दिरको बनवाया।

"Men may come and men may go."—कविकी यह कहानी प्रसिद्ध है। नदियोंकी लहरोंके समान मनुष्य आते हैं, जाते हैं। "Only the actions of the just smell sweet and blossom in their dust."—लेकिन महान् पुरुषोंकी सुन्दरतम्, उज्ज्वलतम् कृतियाँ उन्हें मृत्यु-जगत्में अमर बना देती हैं। बिरलाजीकी अमर कहानियाँ संसारमें मनुष्य हमेशा याद करते रहेंगे।

विभिन्न सम्प्रदायोंके बावजूद दर्शनशास्त्रों, धर्मशास्त्रोंमें सर्वत्र एक सिद्धान्त सर्वोपरिरूपसे पाया जाता है—मनुष्यकी आत्मामें विश्वास, आत्मन्—जो हमारे सब सम्प्रदायोंमें समानरूपसे समादृत है और जो संसारकी सम्पूर्ण प्रवृत्तिको ही परिवर्तित कर सकती है। हिन्दुओं, जैनियों, बौद्धोंके साथ वस्तुतः भारतवर्ष एक आध्यात्मिक आत्माकी विचारणा है, जो शास्त्र शक्तियोंका स्रोत है।

—स्वामी विवेकानन्द

* * *

आचार्य श्रीकाकासाहब कालेलकर

जुगलकिशोरजी और बौद्धधर्म

⊙ ⊙ ⊙

भारतीय संस्कृति और राष्ट्रसेवाके क्षेत्रमें बिरला-परिवारका सहयोग विशेष ध्यान खींचता है। गान्धीजीके अनेक कार्योंमें घनश्यामजीकी सहायता सब जानते हैं, लेकिन आज मुझे श्री जुगलकिशोरजीके बारेमें दो शब्द लिखने हैं।

राजनैतिक कार्यकी बातको लेकर जुगलकिशोरजीके पास जब कोई जाता था, तब वे कहते थे "वह क्षेत्र मेरा नहीं है, आप घनश्यामजीके पास जाइये।" लोग जानते थे कि जुगलकिशोरजीकी रुचि धार्मिक और परोपकारके कामोंमें अधिक थी। लेकिन कोई ऐसा न माने कि उनमें साम्प्रदायिक हिन्दुत्व ही था। मैंने एक दफा उनसे उर्दूके एक कोशकी पूर्व तैयारीके लिए कुछ सहायता माँगी। उन्होंने तुरन्त मेरी बात मान ली और एक साल तक माँगी हुई रकम वह भेजते रहे। बात छोटी-सी थी, लेकिन आज मैं उसीके बल पर कह सकता हूँ कि जुगलकिशोरजीमें संकुचित-भावना नहीं थी।

जबतक गान्धीजी थे, मुझे किसीसे सहायता माँगने का कारण नहीं था। यह तो यूँही उनसे मिलने गया था और बात निकली और उन्होंने तुरन्त मदद दी। कितना अच्छा हुआ कि आज उस सहायताका ज़िक्र करनेका मौक़ा मुझे मिला है।

मुझे आज जुगलकिशोरजीके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पण करनी है, उसका कारण दूसरा ही है। और मेरे मनमें वह भारतीय संस्कृतिके लिए अत्यन्त महत्वका है।

हमारा परम्परागत, सनातन वैदिक धर्म दुनियाके प्राचीनतम धर्मोंमें भी एक ज्येष्ठ और श्रेष्ठ धर्म है। उसका दीर्घकालका इतिहास भारतीय संस्कृतिके उत्थान, पतन और पुनरुज्जीवनका इतिहास है। धर्म विकासके सब पहलू इसमें मिलते हैं। यह धर्म सजीवन और वर्धमान इसलिए रहा कि ऋषि-मुनियोंने और धर्मशास्त्रकारोंने समय-समय पर इसके संस्करण किये हैं। कालग्रस्त चीजें हम लोगोंने आदर रखकर भी, हिम्मतपूर्वक दफनाई हैं। उपनिषद्के ऋषियोंने वैदिक विचारोंको अधिक स्पष्ट, उन्नत और विकसित रूप दिया; लेकिन वेदकी अवहेलना नहीं की। एक उन्नत और गहरा विचार देनेके बाद ऋषि कहेंगे: "तद् एतद् ऋचा अभ्युक्तम्।"

इस तरह, समय-समय पर सुधार और विकास करने वाले धर्मकारोंमें भगवान् गौतम बुद्धका सुधार क्रान्तिकारी साबित हुआ। उन्होंने वैदिक, संस्कृत भाषाका सहारा छोड़कर लोकभाषा पालीको अपनाया। संस्कृतिके ठेकेदार त्रैवर्णिकोंके बन्धनसे अपनेको मुक्त रखकर सर्वसामान्य जनता तक धर्मजीवनका सन्देश पहुँचाया। यज्ञ-परम्परामें सुधार करनेवाले दो जगद्गुरु भारतीय संस्कृतिने देखे। श्रीकृष्ण और गौतम

बुद्ध। इन दोनोंका प्रभाव हमारी संस्कृति पर इतना पड़ा कि सनातनी हृदयने दोनोंको जगद्गुरु माना। श्रीकृष्ण विष्णुके आठवें अवतार थे और गौतम बुद्ध नवें। इस नवें अवतार गौतम बुद्धने अपने जमानेमें हिन्दू समाजकी और संस्कृतिकी उत्तम सेवा की और धर्मका संशोधन भी बहुत-कुछ किया। बुद्ध भगवान्‌का असर आसेतु हिमालय भारतवर्षके समाज पर गहरा हुआ और सामान्य जनताने धर्मके क्षेत्रमें भी अपना सिर ऊँचा किया। बुद्ध भगवान्‌ने लोकभाषाओंकी प्रतिष्ठा बढ़ायी और मोक्ष-निर्वाणका रास्ता सभीके लिए खुला कर दिया।

बादमें रूढ़िधर्मी सनातनी लोगोंने बुद्ध भगवान्‌का असर धोनेका प्रयत्न किया। उनकी बहुत-सी अच्छी बातें तो हिन्दूधर्मने हजम ही कर डालीं। यज्ञयागादिके पुराने प्रकार कम हो ही गये। सनातनी लोगोंने वर्ण-व्यवस्थाका और जातिभेदका फिरसे जोर बढ़ाया और जाहिर किया कि बौद्धधर्मका कोई अवशेष अब रहा नहीं।

स्मृतियोंने संन्यास आश्रमको कलिवर्ज्य कहकर बाजू पर रखा था, लेकिन शंकराचार्यने देखा कि बुद्ध और महावीरने भिक्षुओंके द्वारा धर्म-प्रचारका असाधारण काम किया है। इसलिए उन्होंने संन्यास-आश्रमका पुनरुद्धार किया और धीरे-धीरे संन्यासियोंके दस अखाड़े बन गये। चन्द लोग कहने लगे कि शंकराचार्यने बौद्धधर्मको इस भूमिमेंसे हटा दिया। दूसरे लोग कहने लगे कि बुद्ध भगवान्‌की बातें शंकराचार्यने इतनी हजम की हैं कि उनको छुपे बौद्ध (प्रच्छन्न बौद्ध) ही कहना चाहिए। दोनों बातें ठीक थीं।

बौद्धोंने महायान पन्थकी स्थापना की, जो धीरे-धीरे नेपाल, तिब्बत, चीन, मंगोलिया, कोरिया और जापान पहुँचा। बौद्धोंका हीनयान अथवा स्थविरवाद श्रीलंका, ब्रह्मदेश और कम्बोडिया तक पहुँच गया। इस तरह बुद्ध भगवान्‌का धर्मसाम्राज्य एशियाके पूर्वमें और दक्षिणपूर्वमें स्थापित हुआ। उससे हम बड़ा लाभ उठा सकते थे, लेकिन हमारे पुरखोंने बौद्ध धर्मकी उपेक्षा की और एक बड़ा धर्म साम्राज्य खोया।

हमारे जमानेमें कई लोगोंने यह गलती देख ली। इतिहासकारोंने बुद्धकार्यकी सराहना की और अब हम गौतम बुद्धके धर्मकार्यको अपनानेकी कोशिश कर रहे हैं।

श्री जुगलकिशोरजी बिरलाने यह बात समझ ली और अपनेसे जितना हो सका, उतना पूरा परिश्रम करके बौद्धोंको अपनाया। उन्होंने बौद्धोंके लिए अनेक धर्मशालाएँ खोलीं। धर्मानन्द कोसम्बी जैसे विद्वान् और साधुचरित् भारतके बौद्धोंके लिए आश्रम बना दिये और जापान तकके बौद्धोंको बड़े प्रेमसे अपनाया। जुगल-किशोरजीकी इस सेवाका महत्व आजके लोग पूरा नहीं समझ पाये हैं। जैसे दिन जायेंगे, दुनियाका स्वरूप बदलेगा, वैसे जुगलकिशोरजीकी दूर तक देखनेवाली धर्मदृष्टिका महत्व लोग समझेंगे और एशियामें फैले हुए सब बौद्धोंको स्वजन समझकर अपनायेंगे।

सनातनधर्मने बुद्ध भगवान्‌को विष्णुका नवाँ और चालू अवतार माना ही है। जब हम कोई धर्मकार्य करते हैं, तब उसके संकल्पमें स्थल-कालका उच्चारण करते हुए कहते ही हैं, जम्बुद्वीपे (एशियामें) भरतवर्षे बौद्धावतारे...इत्यादि।

केवल धर्मदृष्टि से जुगलकिशोरजी जो बात समझ गये थे, वह हमारे राजनीतिक नेता समझने में देरी लगाते हैं, यह आश्चर्य और दुःखकी बात है। बौद्ध-संस्कृतिको अपनाकर आत्मसात् करना हमारा युगधर्म है।

●

* * *

श्रीरघुनाथसिंह

उनकी अक्षयिणी

⊙ ⊙ ⊙

इस भूतल पर प्राणीका उदय होता है, अस्त होता है। जगत्के प्राणियोंकी यही गति है। यही क्रम पादपोंमें है, वनस्पतियोंमें है, ऋतुओंमें है, संवत्सरोंमें है। इस क्रमसे जड़-पर्वत भी नहीं बचते। तरल समुद्र भी नहीं बचता। यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। कभी रुकता नहीं। इसीका नाम जगत् है।

कोई जन्म-मृत्युका कारण कर्म मानते हैं। कोई उसे दैवकृत मानते हैं। कोई उसे मानव का प्रथम पतन मानते हैं।

इस क्रममें, इस ऋतुमें, एक अनोखी बात है। वह है : एकसमता। जरायुज, पिण्डज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिजादि, चाहे किसीने किसी प्रकारका इस जगत्में जीवन क्यों न धारण किया हो, एकसमता उनमें अविरल मिलती है। यह है चेतना। इस चेतनाके लोपका अर्थ है जड़ता।

तथापि यह चेतना, सब देहमें, सब शरीरमें, एक जैसा कार्य नहीं करती। शरीर-यन्त्रोंको एक जैसा नहीं चलाती। पंच-ज्ञानेन्द्रियोंको, पंच-कर्मेन्द्रियोंको एक जैसा परिचालित नहीं करती। यह कारण होती है : प्राणियोंमें विषमताकी।

युगल सन्तानें एक साथ, एक नक्षत्र, एक कालमें माताके गर्भसे जन्म लेती हैं। उनमें एक महामेधावी होता है, दूसरा होता है मूर्ख। एक बनता है महाधनी और दूसरा दानोंके लिए तरसता मर जाता है।

यह क्रम पशुओंमें, पक्षियोंमें, पादपोंमें भी देखा जाता है। एक ही कुतियाके चार बच्चे चार रंगके होते हैं। चार प्रकारकी उनकी प्रकृतियाँ होती हैं। कोई तेज होता है। कोई सुस्त होता है। कोई कायर होता है। कोई पालतू जानवर जैसा सीधा होता है। एक मुर्गी चार अण्डे देती है। किसीसे हुआ बच्चा बोलता है। कोई बोलता ही नहीं। कोई होते ही मर जाता है। कोई विकलांग बना दुःख भोगता है। चार पौधे एक ही बीजसे उत्पन्न हुए, चार स्थानपर लगाये जाते हैं। एक पानी और खाद देते रहने पर भी सूख जाता है। दूसरा विना खाद-पानी बढ़ता है। तीसरा धीरे-धीरे बढ़ता उकठा जाता है। चौथा आकाश चूमने लगता है।

यह एक प्रश्न है। इस प्रश्नका उत्तर अनेक प्रकारसे वैज्ञानिक देते हैं। दार्शनिक अनेक प्रकारसे स्पष्टीकरण करते हैं। प्रत्येक प्राणी अपने ढंगसे कल्पना करता है। विचार करता है। अपने प्रश्नोंका स्वयं उत्तर देनेका प्रयास करता है।

भारतीय बुद्धिने इसका उत्तर दिया है। वह है : कर्मवाद। भारतके आस्तिक किंवा नास्तिक दर्शन, भक्त किंवा योगी सब इस एक बातमें सम्मत हैं। वेदकी मान्यता न मानने वाले भगवान् बुद्धने भी कर्मवादकी मान्यता मानी है।

प्राणी कर्मानुसार जन्म लेते हैं। कर्म उनके आचरण तथा व्यवहारको एक रूप देता है। उनका संस्कार बनाता है। यह संस्कार मृत्युके पश्चात् प्राणीके प्राणके साथ जाता है। नाना योनियोंमें, नाना रूपोंमें, जन्म देनेका हेतु बन जाता है। इस पूर्व संगृहीत कर्मको, उसके फलको, कुछ लोग भाग्यकी अथवा दैवकी संज्ञा देते हैं।

घटनाएँ घटती हैं—किसी कर्मके कारण। इसी प्रकार मनुष्यके जीवनमें घटना घटती है—किसी कर्मके कारण। मनुष्य रूप धारण करता है—किसी कर्मके कारण। प्राणी फल पाता है—किसी कर्मके कारण। इस परिप्रेक्ष्यमें विचार करना संगत होगा।

कुछ ऐसी बात श्री जुगलकिशोरजीके सम्बन्धमें भी कही जाएगी। वे चार भाई थे। एक ही माता थी। एक ही पिता थे। एक ही वातावरण था। एक ही समाज था। किन्तु वे सब थे भिन्न। उनकी कल्पना थी भिन्न। उनके विचार थे भिन्न। उनकी धारणाएँ थीं भिन्न। यह भिन्नता प्राकृतिक है। यह वैज्ञानिक है।

इस जगत्में एक ही रूपके दो प्राणी आज तक पैदा ही नहीं हुए। युगल बच्चे भी, एक जैसे पैदा नहीं होते। इस विषय पर युगल यम-यमी, जिनमें एक पुरुष तथा दूसरी स्त्री थी; ऋग्वेदमें उनका बड़ा ही उत्तम संवाद वर्णित है। इस भिन्नताका उत्तर मिलता है: कर्मवादके दर्शनमें।

जिस प्रकार यह जगत् किसीकी कल्पना है। जिस प्रकार रेलगाड़ी किसीकी कल्पना है। जिस प्रकार अट्टालिकाएँ किसीकी कल्पना हैं। जिस प्रकार कोई नगर किसीकी योजनाकी कल्पना है। उसी प्रकार मनुष्य किसीकी कल्पना है। अथवा स्वयं अपनी कल्पना है।

जिस प्रकार कोई संकल्प साकाररूप लेता है। जिस प्रकार किसीका संकल्प उसे मूर्तमान् करनेमें स्वयं सहायक होता है। उसी प्रकार प्राणी भी संकल्पका साकार रूप है।

जिसमें कल्पना होगी, जिसमें संकल्प होगा, जिसमें संस्कार होगा, वही उन्हें दे भी सकता है। इन तीनोंका जहाँ सन्तुलित संगम होगा, वहीं मानवता विकसित होगी। यह विकास दूसरोंको विकसित होनेमें सहायक होगा।

यदि कल्पना मानसिक रह गयी, तो वह स्वप्न मात्र है। यदि संकल्प साकार नहीं होता, तो वह मनका विकार मात्र है। यदि संस्कार जीवन रूप देनेमें सहायक नहीं हुआ, तो वह छाया मात्र है।

श्री जुगलकिशोरजीकी भारतीय धर्मके प्रति कल्पना, भारतीय तत्व-प्रसारका संकल्प तथा भारतीय संस्कारके प्रति रुचि, उन्हें एक ऐसे स्तर पर पहुँचा देती है, जहाँ वे एक महान् दाताके रूपमें हो जाते हैं। उनमें अक्षयिणी तुल्य असीमित भण्डार था। जो कभी क्षीण होनेवाला नहीं था और उनके इस जगत्में न रहने पर भी क्षीण नहीं होनेवाला है।

इस भण्डारको लक्ष्मीने नहीं भरा था। लक्ष्मीका भण्डार चञ्चल होता है। यह चञ्चलता एक सीमा तक ले जाती है। एक सीमा तक कुछ देती। वह इस जगत् तक सीमित रहती है। किन्तु जुगलकिशोरजीके दानकी सीमा नहीं है। वह त्रैलोक्यका अतिक्रमण करता चलता रहेगा।

वह दान उनकी कल्पना थी। यह दान उनका संकल्प था। वह दान उनका संस्कार था। द्रव्य दानके आधार पर उनका मूल्यांकन करना उन्हें अत्यन्त छोटे रूपमें उपस्थित करना होगा।

उनके निर्मित मन्दिरोंकी श्रृंखलाएँ, भित्तियों पर बने चित्र, शिलाओं पर उत्कीर्ण मूर्तियाँ, उन पर अंकित सुभाषित, अबोध शिशुसे लेकर वृद्धों तकको अनुप्राणित करते हैं। कुछ देते रहते हैं।

* * *

पठित भी उनसे कुछ लेता है, अपठित भी लेता है। शिक्षित भी कुछ लेता है, अशिक्षित भी लेता है। मूक भी कुछ लेता है, वाचाल भी कुछ लेता है। बधिर भी कुछ लेता है, पापी भी कुछ लेता है, पुण्यात्मा भी कुछ लेता है। वह देते नहीं अघाते। लेनेवाला भी लेते नहीं अघाता। यह न थकना ही, न अघाना ही जीवनका विकास-क्रम है।

लेनेवाला हाथ, फैलानेवालेकी तरह मन मलीन नहीं करता, अपने-आपमें धँसता नहीं, नीचे गिरता नहीं। मनस्तापका पात्र नहीं होता। वह विकसित होता है। प्रफुल्लित होता है। वह अनुभव करता है। अपने जीवनमें जोड़ने योग्य कुछ जोड़ा है।

अपने लिए करना मनुष्यकी प्रकृति है। दूसरेके लिए करना, दूसरोंको ऊपर उठानेकी कल्पना, मनुष्य को देवपंक्तिमें बैठाता है। जो दूसरोंके लिए जीता है, जो दूसरोंके लिए कुछ करता है, जो दूसरोंको उठाता है, वह स्वयं जीवित रहता है। वह स्वयं उठता है।

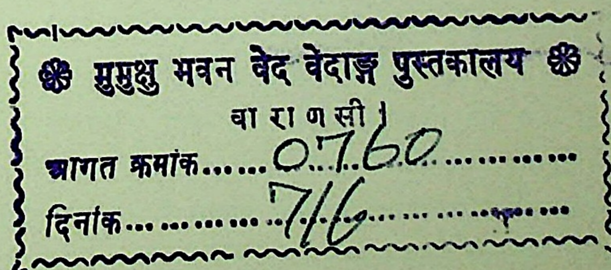
पिलानीका सरस्वती मन्दिर इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। उस मन्दिरमें उन्होंने देवताओंकी मूर्तियोंके साथ बुद्ध, महावीर, ईसा, स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द, गान्धी, लेनिन, केनेडी आदि इस जगत् की उदात्त कल्पना करनेवालोंको रखकर अपने कितने उदात्त निरपेक्ष विचारोंको जगत्के सम्मुख रखा है। क्या इसकी कल्पना सुयोग्य पाठक कर सकेंगे?

एक प्रश्न है : क्या इस जगत्में, धर्म मन्दिरमें, किसीने कभी इस प्रकारका संकल्प कर, उसे साकार कर, सहिष्णुताकी, मानवताकी, धर्मके वास्तविक संस्कारकी, जगत्में सुआख्यान करनेकी कल्पना की थी?

मैं जब काशी विश्वविद्यालय तथा उनके निर्मित अन्य मन्दिरोंमें, मानव मात्रको, केवल मानवस्वरूप, बिना भेदभावके जाता देखता हूँ, उन्हें सुभाषितोंको कागजों पर उतारता देखता हूँ, उन्हें पढ़ता देखता हूँ, उन्हें मननशील देखता हूँ तो यही कहना चाहता हूँ : यह वास्तवमें अक्षयिणी है, जो कभी क्षीण होनेवाली नहीं है। उस कर्ताको शत-शत प्रणाम।

●

कर्म गरुड़ है। जो इस कर्मरूपी गरुड़को अपना वाहन बनाकर, अपनी इच्छानुसार चला सकता है वह नारायण है।



* * *

श्रीनित्यानन्द कानूनगो

आध्यात्मिक जीवनका महान् पथ-प्रदर्शक

⊙ ⊙ ⊙

यह मेरे लिए बड़े दुर्भाग्यकी बात रही है और रहेगी कि स्वर्गीय जुगलकिशोरजी बिरलासे मुझे अपने जीवनके पिछले भागोंमें सम्पर्क हुआ और वह भी बहुत अल्प रूपमें। मेरा जीवन उनसे कैसे प्रभावित हुआ, उस पर मैं विशेष रूपसे प्रकाश नहीं कर सकता। अपने जमानेके भारतके महान् व्यक्तियोंके निजी सम्पर्कमें आनेका मुझे बिरले ही सौभाग्य प्राप्त हुए। हाँ, गान्धीजीने मुझे अवश्य ही सबसे ज्यादा प्रभावित किया, जैसा कि उन्होंने करोड़ों भारतवासियोंको किया और आनेवाली पीढ़ीको भी करते रहेंगे। उनके उपदेशोंने हमें अपने जमानेके महान् व्यक्तियों एवं विगत महान् पुरुषोंको समझनेमें मदद की। अन्य लोगोंकी तरह मैं भी आध्यात्मिकताका एवं उससे भी अधिक धर्मका विरोधी था। जो कुछ भी किताबी ज्ञान मैंने अर्जन किया था, उसका मुझे गर्व था और पाश्चात्य देशोंने भौतिक सभ्यतामें जो यश प्राप्त किया था और उसे अपने समाजमें पानेकी प्रबल उत्कण्ठाका मैं प्रशंसक था। गान्धीजीके उपदेशोंके बावजूद भी विनम्रता मुझमें आसानीसे नहीं आ पायी और शायद इस जिन्दगीमें कभी आयेगी भी नहीं; पर जीवनके चिरन्तन सुखके स्थायित्वका मैंने सूक्ष्म दर्शन किया।

इसके क्रमिक आविर्भावके सिलसिलेमें स्व० जुगलकिशोर द्वारा निर्मित मन्दिरोंके विषयमें जाननेका मुझे अवसर मिला। भारतके शिल्प-सौन्दर्यके पुनरुत्थानकी दिशामें उन्होंने जो मार्गदर्शन किया, उसका तो मैं कुछ हद तक प्रशंसक भी था, पर उनके हिन्दूधर्म, हिन्दूकी पूजनविधि और तौर-तरीके मुझे कतई पसन्द नहीं थे। मेरे जीवनकी उस समयकी अवस्थामें मुझे ऐसा लगा कि उनका यह कदम समाजको अतीतके अन्धकारमें ढकेल रहा हो। उस समयकी यह आवाज कि धर्मको धनीमानी लोग अफीम जैसा मादक औषध बनानेमें व्यवहार करते हैं, मेरे कानोंमें गूँज रहा था। बादमें यह गलतफहमी मेरे मनसे दूर होने लगी और आध्यात्मिकताके सौन्दर्य और महत्वका अनुभव मुझे होने लगा। मैंने बिरला-परिवारके अन्य सदस्योंकी उदारताकी प्रशंसा की है, जिन्होंने शिक्षाके क्षेत्रमें, मानव-संकटोंके निवारणार्थ और राष्ट्रीय हितकी रक्षाके लिए बहुत कुछ किया। उनके परिवारके अन्य सदस्योंने जो कार्य किये, उनसे जुगलकिशोरजीके कार्य भिन्न रहे हैं।

उनकी प्रथम भेंटसे ही मुझमें विनम्रताकी भावना उदित हुई, जो अबतक मैंने कितनी ही पुस्तकें पढ़कर और कितने ही लोगोंके सम्पर्कमें आने पर भी प्राप्त न कर पायी थी। वे अल्पभाषी थे; किन्तु उनकी प्रथम भेंटने ही मुझमें ज्ञानका दीप जला दिया और उसी समयसे मैं आध्यात्मिकताके मूल्यको और हिन्दू जीवनके तौर-तरीके एवं धर्मके महत्वको समझने लगा। बादमें मेरी उनसे हिन्दू-धर्मको अन्य देशोंमें, जहाँ हिन्दू बसते हैं और जो भारतसे सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकते हैं, फैलानेके सम्बन्धमें बातचीत हुई एवं बहुत-सी योजनाओं

* * *

पर भी विचार-विमर्श हुआ। वे मुझे ध्यानसे और चावसे सुनाते थे और मेरे विचारोंमें जो भ्रान्ति थी, उसकी ओर भद्रतासे इशारा कर देते। उस विचारको हासिल करनेके लिए वे और अधिक आसान और सरल तरीके बताते तथा हमेशा मेरा हौसला बढ़ाते। मुझे लगता है कि अपने आध्यात्मिक जीवनका मैंने सबसे बड़ा पथ-प्रदर्शक खो दिया है। उनसे मुझे यह अनुभूति होने लगी थी कि आध्यात्मिक ज्ञान अप्राप्य और संसारके परे नहीं है। जीवनको हर कार्य और हर क्षेत्रमें आध्यात्मिक और उद्देश्यपूर्ण बनाया जा सकता है। मुझे विश्वास है कि मेरे-जैसे अन्य व्यक्ति भी उनके विचारों और उनके कार्योंसे उपदेश ग्रहण करेंगे। जब हिन्दू-धर्मका लोप हो रहा था और सभी ओर इस दिशामें सन्नाटा छाता जा रहा था, जुगलकिशोरजीने हिन्दू-धर्मके सिद्धान्तोंको फिरसे प्रतिपादित करनेका अथक प्रयास किया। उन्होंने इस दिशामें मेरे-जैसे अनेक तमाम लोगोंको रोशनी दिखायी।

●

मनुष्यकी पहचान उसके दैनिक आहार, व्यवहार (भाषण), विहार (रहन-सहन) और व्यवहार (चाल-चलन)से होती है।
विनम्रता, मर्यादा, सभ्यता और बुद्धिमत्ता : ये चारों ही मनुष्यको व्यवहार कुशल बनाते हैं। जीवनमें उन्नतशील बननेके लिए विनम्र होना आवश्यक है। बिना नम्रताके उन्नति सम्भव नहीं।

* * *

सेठ गोविन्ददास

आधिभौतिकता और आध्यात्मिकताके धनी

⊙ ⊙ ⊙

स्वर्गीय जुगलकिशोरजी विरला भारतकी उन इनी-गिनी विभूतियोंमेंसे थे, जिन्होंने जीवनके चरम लक्ष्योंको प्राप्त करनेका प्रयत्न किया है। यही नहीं, उन उपलब्धियोंसे अपनेको समृद्ध भी किया, जिनके लिए मनुष्य प्रयत्न करता है और जो उसका लक्ष्य हो सकता है।

स्वार्थ और परमार्थ इन दो शब्दोंमें सृष्टिका सार समाया हुआ है। पशु-पक्षी, कीट-पतंग सभी स्वार्थसे प्रेरित होते हैं, स्वार्थके वशीभूत रहते हैं। कुछ प्राकृतिक रूपसे ही मनुष्य भी इसी स्वार्थ-भावका सहचर बना जीवन भर भटकता रहता है। अन्य प्राणियोंकी तरह वह भी क्षुधा, पिपासा और अन्य वासनाओंसे पीड़ित होने पर व्याकुल होता है। अपनी व्याकुलताकी शान्ति और शमनके लिए जो भी अवलम्ब उसे मिलता है, उसके द्वारा अपनी स्वार्थ-पूर्ति कर लेता है। अन्य प्राणियों और मनुष्यमें अन्तर केवल इतना है और जो बहुत बड़ा है कि अन्य प्राणियोंकी वासनाएँ जहाँ एक ओर क्षुधा-पिपासा और काम-वासना तक ही सीमित होती हैं, वहाँ मनुष्यकी वासनाका क्षेत्र असीम है। किन्तु इसीके साथ जहाँ अन्य प्राणियोंकी वासनाओंका क्षेत्र संकुचित और सीमित है, वहाँ उनकी शक्ति और सामर्थ्य भी सीमित है। पर यह बात मनुष्यके साथ नहीं है। जिस प्रकार उसकी वासनाका क्षेत्र असीम है, उसी प्रकार उसकी शक्ति-सामर्थ्य भी असीम है। मनुष्यको निसर्गने व्यापक विवेक दिया है, जिसके द्वारा वह अपनी वासनाओंकी न केवल पूर्तिमें तत्पर होता है, अपितु उन्हें अपने साथ परहितके भावमें परिवर्तित कर लोकहितकारी बना देता है।

मनुष्यमें तीन प्रमुख वासनाएँ हैं, जो उसकी चित्तवृत्तियोंका रूप धारण कर लेती हैं: पुत्रेषणा, वित्तेषणा और लोकेषणा। दूरगामी दृष्टिसे यदि हम देखें तो ये तीनों ही भिन्नातीत हैं और इन तीनों वृत्तियोंकी चरम परिणति अथवा गन्तव्य एक ही है और जो वैयक्तिक स्तरसे उठकर लोकहितकारी बनता है तथा व्यष्टि भावसे विकास पाकर समष्टिमूलक हो जाता है। उदाहरणके लिए कोई भी पुत्रवती माता अथवा पिता यह नहीं चाहेगा कि उसका बेटा कुपथगामी बने अथवा अपयश अर्जित करे। इसी प्रकार बड़े-से-बड़ा धनिक या समृद्धिशाली व्यक्ति समृद्धिके सर्वोच्च शिखर पर पहुँचकर भी इस बातका इच्छुक कदापि नहीं हो सकता कि लोग उसे भूखा, नंगा, और कंगाल कहें। इतना ही नहीं, वह इसी अपवादसे बचनेके लिए भले ही स्वभावसे कितना ही कृपण क्यों न हो, अपनी यश-प्रसिद्धिके लिए ऐसे काम करता है, जो उसकी समृद्धिमूलक प्रतिष्ठा के अनुरूप हों। वह दान करता है, बेरोजगारोंको रोजगार देता है, धर्म-पुण्यके काम करता है, जिसमें उसका यश फैले। हम इतिहास पर नज़र डालें, तो हमें ज्ञात होगा कि बड़े-से-बड़े सत्तालोलुप साम्राज्यवादियोंने भी यदि अपनी सत्ता-विस्तारके लिए युद्ध लड़े हैं, नर-संहार जैसे जघन्य पाप किये हैं; तो भी सत्ताको अपनी पीठ पर लाद ले जानेके लिए

* * *

नहीं, अपनी यशवृद्धिके लिए। कहनेका तात्पर्य यह कि पुत्रैषणा और वित्तैषणा दोनोंका लक्ष्य और गन्तव्य एक ही है और वह है लोकेषणा।

लोकेषणासे मुक्त भी एक स्थिति है, जिसे हमारे अध्यात्ममें गुणातीत स्थितिप्रज्ञकी स्थिति कहा गया है। इस स्थितिके अधिकारी अरण्योंमें वास करनेवाले अथवा संसारमें रहकर उससे भी सर्वथा असंस्पर्श और अलिप्त वही महत्‌जन हो सकते हैं, जिनकी साधनाके प्रकाशसे आज भी यह स्थिति प्रकाशित और प्रतिष्ठित है। साधारण और साधारण ही क्या, संसारीके लिए तो यह स्थिति आजके युगमें दुष्कर ही है।

जुगलकिशोरजी विरला मेरे सम्बन्धी थे और जुगलकिशोरजी ही क्या, उनका सारा परिवार हम लोगोंके साथ अनेक सम्बन्धों और रिश्तेदारियोंसे गुथा हुआ है। अतः एक सम्बन्धीके रूपमें जितनी निकटतासे मुझे उन्हें देखने-समझनेका अवसर मिला, कदाचित् उससे अधिक अवसरकी आशा नहीं की जा सकती। मुझे आज उन दिनोंकी याद आ रही है, जब वे एक दक्ष व्यवसायीके रूपमें अपने काममें लगे थे। उन्होंने अपनी दूरदर्शी और कुशाग्र व्यावसायिक बुद्धि, कार्यकुशलता और परिश्रमसे उस जमानेमें भारतके व्यवसायी वर्गमें न केवल धन कमाकर अपनी प्रतिष्ठा और धाक जमायी, वरन् बहुत शीघ्र हर दृष्टिसे देशके व्यावसायिक क्षेत्रमें उनका नाम लिया जाने लगा। समयके साथ दिनोंदिन इस क्षेत्रमें उनकी सफलता, प्रतिष्ठा और प्रभाव बढ़ने लगा और वे विरला-परिवारके सुदृढ़ स्तम्भ बन गए।

श्री जुगलकिशोरजीकी खूबी धन कमानेमें और अपना कारोबार बढ़ानेमें नहीं थी। धन तो बहुतोंने उनके पूर्व कमाया था, आज भी कमा रहे हैं, और कमानेका यह क्रम कभी बन्द होनेवाला नहीं है। किन्तु उनकी खूबी थी धन कमाना और उसका उचित विनियोग करना। गान्धीजीने कहा है कि "धनिक वर्ग अपनेको अर्जित सम्पत्तिका ट्रस्टी समझें।" बापूके इस सिद्धान्तके अनुसार ट्रस्टीरूपसे अपनी ही अर्जित सम्पत्तिके सम्बन्धमें व्यक्तिको सतत् जागरूकतासे यह देखना होता है कि वह सम्पत्तिका कितना हिस्सा किस कार्यमें खर्च करे, उसे कैसे सुरक्षित रखे और उसका प्रवाह तो बन्द नहीं हो रहा है।

जुगलकिशोरजीने इन तीनों दृष्टियोंसे अपनेको ट्रस्टी मान अपने द्वारा ही अर्जित सम्पत्तिका सर्व-साधारणके लिए सम सन्तुलित उपयोग किया है। उन्होंने जो कमाया उसे सदा सुरक्षित रखा। यही नहीं, उस कमाईको अपने परिश्रमसे आगे बढ़ाया, इसीके साथ सर्वसाधारणके कल्याणके लिए उन्होंने अगणित लोकोप-कारी संस्थाओंका निर्माण कराया। जीवनका ऐसा कोई क्षेत्र नहीं हो सकता, जिसमें जुगलकिशोरजीने पीड़ित मानवताके लिए मुक्तदान न किया हो। उनके द्वारा धन-संचयका तो हिसाब लगाया जा सकता है। किन्तु सर्वसाधारणके सेवाभावसे उनके कार्योंका हिसाब बैठाना कठिन है। भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें निर्मित मन्दिरों - जो विरला-परिवारकी आधिभौतिक क्षेत्रकी उपलब्धिके साथ उसके आध्यात्मिक क्षेत्रके प्रेमका ज्वलन्त प्रमाण हैं - की नींव में, उसकी प्राचीरों, प्रकोष्ठों और प्रतिष्ठित देवमूर्त्तियोंमें प्रधान रूपसे जुगल-किशोरजीकी पवित्र आत्माका प्रेम समाया हुआ है। दिल्लीका ही भव्य और विशाल विरला मन्दिर जुगल-किशोरजीके इसी अध्यात्म-प्रेमका प्रमाण है।

फिर जुगलकिशोरजीका यह कार्य केवल मन्दिरोंके निर्माण तक ही सीमित नहीं रहा, उन्होंने भारतीय संस्कृति और अध्यात्मके प्रचारके लिए सुदूर विदेशोंमें भी भारतीय महत्‌जनोंको भेजा, उनकी सहायता की और हमारे सांस्कृतिक आदान-प्रदानमें योगदान किया। जुगलकिशोरजी आधुनिक भारतके एक संस्कृतिनिष्ठ पुरुष और बड़े ही दानशील व्यक्ति माने जाते थे। उनके पास कोई याचक जाकर खाली हाथ नहीं लौटता

था। वे बड़े ही विनयशील, उदार और भविष्यचेता व्यक्ति थे। उनके द्वारा संरक्षित, सहायता प्रदत्त और संस्थापित अनेक साँस्कृतिक और आध्यात्मिक संस्थान उनकी उच्च मनोवृत्ति एवं भव्य व्यक्तित्वका परिचय दे रहे हैं। उन्होंने व्यावसायिक एवं औद्योगिक क्षेत्रमें जो कुछ भी अर्जित किया, उस पर आज उनके पारिवारिक जनोंका स्वामित्व है, किन्तु उनके द्वारा संरक्षित, सहायता प्रदत्त और संस्थापित इन संस्थानोंपर सर्वसाधारणका। स्वार्थ और परमार्थके क्षेत्रमें इससे अधिक सफल साधनाकी एक व्यक्तिके जीवनसे और अधिक क्या आशा की जा सकती है। आधिभौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रोंमें जुगलकिशोरजीके जीवनकी यह उपलब्धि व्यक्तिके स्वार्थ और परमार्थकी चरम परिणति है। और इन्हीं अर्थोंमें उनके जीवनकी चरम सफलता और सार्थकता भी।

भारतके आर्थिक, सामाजिक, साँस्कृतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रमें जुगलकिशोरजीकी जो देन है, उसे भुलाया नहीं जा सकता। उससे भावी पीढ़ियाँ अनुप्रेरित, अनुप्राणित और सदा आत्मगर्वित रहेंगी।

●

स्वामी विवेकानन्द योरोपके किसी नगरमें अपने संन्यासी रूपमें घूम रहे थे। दो सभ्य कहे जानेवाले व्यक्ति आपसमें अपनी भाषामें स्वामीजीका मज़ाक उड़ा रहे थे। उन दोनोंने पास जाकर स्वामीजीसे पूछा : "आप किस देशके नागरिक हैं ?"
वे समझते थे कि स्वामीजी उनकी भाषासे अपरिचित होंगे। स्वामीजीने तुरन्त उत्तर दिया : "हम उस देशके वासी हैं, जहाँ मनुष्यका मूल्यांकन, उसके महत्त्वका निश्चय केवल वेश-भूषासे नहीं, उसके उदात्त चरित्रसे किया जाता है।"

* * *

श्रीभगीरथ कानोड़िया

निर्वैरः सर्वभूतेषु

⊙ ⊙ ⊙

श्रद्धेय बाबूजीके घरानेसे हमलोगोंका बहुत पुराना सम्बन्ध रहा है, लेकिन १९११में मैं पहले-पहल कलकत्ते आया, तब उन्हें निकटसे देखनेका अवसर मिला। बाबू जुगलकिशोरजी पुराने और नये विचारोंकी अच्छाइयोंके एक मूर्त समन्वय थे। जहाँ जो अच्छा मिला, उसे उन्होंने ग्रहण किया; चाहे वह सनातनधर्ममें हो, चाहे आर्यसमाजमें। हिन्दू-समाजमें जो पुरानी रूढ़िवादिता थी तथा जिसके कारण समाजमें अनेक बुराइयोंने घर कर लिया था, उसका उन्होंने सदा विरोध किया। मारवाड़ी समाजमें यों तो सुधार-सम्बन्धी छोटे-मोटे कई आन्दोलन समय-समय पर होते रहे, लेकिन मुख्य आन्दोलन तीन हुए : विदेश-यात्राका, विधवा-विवाहका और सनातनधर्म व आर्यसमाजका। इन तीनों ही आन्दोलनोंमें बाबूजीने सुधार पक्षकी पूरी-पूरी मदद की। धर्म और नीतिके बारेमें वे श्रीमद्भगवत् गीताको अपना लक्ष्य-ग्रन्थ मानते थे। बाबू जुगलकिशोरजी एक अत्यन्त विनम्र स्वभाव और सरल प्रकृतिके उदारमना व्यक्ति थे। अपनी व्यापार-कुशलता और दूरदर्शिताके कारण उन्होंने काफ़ी धन-अर्जित किया। लेकिन जिस तत्परतासे उन्होंने धन अर्जन किया, उससे भी अधिक तत्परतासे उन्होंने उसका सत्कार्यों में उपयोग भी किया।

वे इतने उदार थे कि अगर किसी दिन कोई आदमी किसी अच्छे कामके लिए उनके पास सहायता माँगने नहीं पहुँचता था, तो उन्हें एक तरहकी अकुलाहट होती थी। उन्होंने न केवल दान दिया, वरन् समाजमें दान देनेकी परिपाटी चलायी। लोगोंको वे इस बातकी बराबर प्रेरणा देते थे कि भगवान् तुम्हें कमाई देता है, तो उसमें सबका हिस्सा मानो, दीन-दुखियोंकी सेवा करो। उनकी उदारताको याद रखनेवाले और उनके चले जानेसे अपनेको अनाथ अनुभव करनेवाले आज लाखों व्यक्ति मौजूद हैं। अनेक संस्थाएँ भी ऐसी हैं, जिनके लिए वे एक-मात्र आलम्ब थे। उनके पास आये हुए व्यक्तिको मैंने कभी निराश होकर लौटते नहीं देखा। जो विरोधी विचारोंके आदमी थे तथा जिन्होंने उनका अनिष्ट करनेका भी प्रयत्न किया, वे भी जब तकलीफ़में पड़ गये और उनके पास सहायता माँगने पहुँचे, तो बाबूजीने उतने ही स्नेह और सम्मानसे उन्हें सहायता दी; जितने स्नेह और सम्मानसे वे अपने कहे जानेवाले व्यक्तिको देते थे। उनके स्वभावकी यह खासियत थी कि वे कभी किसीसे वैर नहीं मानते थे। "निर्वैरः सर्वभूतेषु" और "सर्व भूतहित रताः" उनके जीवन-मन्त्र थे। दया और करुणा उनके स्वभावमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। सार्वजनिक क्षेत्रमें काम करनेवाले कार्यकर्ताओंको उनसे सदा प्रोत्साहन और आशीर्वाद मिलता था। बाबू जुगलकिशोरजीका चला जाना देश और समाजके लिए एक ऐसी क्षति है, जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती। मैं उनके चरणोंमें अपनी शतशत श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

●

श्रीपरिपूर्णानन्द वर्मा

देशको अनेक बिरला-परिवार चाहिए

⊙ ⊙ ⊙

बिरला-परिवारसे मेरा कोई परिचय नहीं है। परिचय प्रसंगसे होता है। ऐसा कोई प्रसंग ही नहीं उठा कि परिचय होता। सेठ घनश्यामदास बिरलाको बचपनसे ही देखा है। पण्डित मदनमोहन मालवीयजीसे मेरा निजी सम्पर्क था, उनके पुत्र गोविन्द मालवीय द्वारा। मालवीयजी घनश्यामदासजीकी बड़ी प्रशंसा किया करते थे। कहा करते थे कि "वह केवल दानी नहीं हैं, कार्यकी महत्ताके अनुरूप दान देते हैं।" तबसे मुझे घनश्यामदासजीके प्रति श्रद्धा हो गयी। पर जब कभी उनके निकट आनेका प्रयास किया, निराश होना पड़ा।

निजीरूपमें बहुत थोड़े समयके लिए सेठ ब्रजमोहन बिरलाका सत्संग रहा। उत्तर प्रदेश उद्योग जाँच समितिके वे अध्यक्ष थे और मैं एक सदस्य। जिस स्थिर तथा सौम्य तत्परतासे वे मेरी दलीलें सुनते थे, उससे मुझे उनके प्रति विश्वास तथा आस्था बढ़ी। सबकी बातें सुनना, धैर्यपूर्वक उत्तर देना—यह गुण कम लोगोंमें मिलता है। पर वह बात भी पुरानी हो गयी। पत्र-व्यवहार श्री लक्ष्मीनिवास बिरलासे हुआ है। उन्हें देखा भी नहीं है, पर आजके जमानेमें मनुष्यकी बुद्धि तथा मर्यादाकी परख उसके पत्रोंसे होती है। पत्र तो मेरे पास देश-विदेशसे बहुत बड़ी संख्यामें आते हैं, पर उन पत्रोंमें श्रेष्ठ उपरिलिखित सज्जनके पत्र हैं।

मैं छोटा-सा आदमी बिरला-परिवार पर क्या लिख सकता हूँ। बिरला-भवनमें पैर एक बार रखा था, जब गान्धीजी वहाँ ठहरे थे। हम स्वराज्यके दरवाजे पर खड़े थे। श्रीलालबहादुर शास्त्रीके साथ गया था। गान्धीजी-का कमरा उसी समय देखा था नई दिल्ली में। पर एक चीज बिरला-परिवारकी हर जगह देखी है—यहाँसे लेकर विलायत तक। वह है बिरला-मन्दिर। देवताकी मूर्ति अपने पुजारीकी अन्तरात्माकी ज्योति प्रस्फुटित करती है। मेरा जी नहीं मानता बिना बिरला मन्दिर गये। मुझे वहाँ हिन्दू-सभ्यता, संस्कृति, श्रद्धा, विश्वास तथा पवित्रताका ऐसा समन्वित वातावरण मिलता है, जो नये अमीरोंके मन्दिरोंमें नहीं मिलता। फिर भी जब मैं किसी बिरला मन्दिरमें किसी "धनी तथा बड़े प्रतीत होनेवाले" दर्शनार्थीको पुजारीजी द्वारा प्रसादसे अधिक सम्मानित होते हुए देखता हूँ, तो मुझे ऐसा लगता है कि पुजारी बिरला-परिवारकी आन्तरिक भावनाका अनादर कर रहा है। बिरला-मन्दिर सार्वजनिक श्रद्धाके केन्द्रबिन्दु हैं, न कि ऊँच-नीचके प्रतिबिम्ब।

मेरे विचारसे भारतीय-सभ्यता तथा संस्कृतिके प्रचारके लिए तथा संस्कृत-साहित्यकी शिक्षा तथा रक्षाके लिए जितना कार्य इस परिवारने अकेले किया है, उतना भारतके वर्तमान युगमें किसी अन्यने नहीं।

जिस प्रकार हमें भारतके आर्थिक तथा औद्योगिक विकासके लिए अनेक बिरला चाहिए, उसी प्रकार हमारी सभ्यता तथा संस्कृतिके प्रसारके लिए अनेक बिरला-परिवार चाहिए। जब मैं अपने देशके कतिपय लोगोंको बिरला-परिवार पर कीचड़ उछालते देखता हूँ, तो मुझे मार्मिक क्लेश होता है। मुझे ऐसा लगता है कि

* * *

कृतघ्नता, अवज्ञा, स्वार्थ तथा राजनीतिक गुण्डईकी एक सीमा होनी चाहिए। भारत विरला-परिवारके एहसानको नहीं भूल सकता।

सेठ जुगलकिशोर

मैं जानता नहीं, पर लोगोंको कहते सुना है कि देशमें धार्मिक, सामाजिक तथा साँस्कृतिक कार्यमें विरला-परिवारके इतने योगदानके सूत्रधार थे सेठ जुगलकिशोरजी विरला। मैं काशी-निवासी होनेके नाते उन्हें दूर से कई वार देख चुका हूँ। निकट आनेका प्रश्न ही नहीं उठा। वे विद्वान् पण्डितोंसे घिरे रहते थे। मैं न तो विद्वान् और न ब्राह्मण! वे खुलेहाथों दान करते थे। मैं दान ले नहीं सकता और देनेकी ताकत कभी रही नहीं। पर इतना मैं जानता हूँ कि जव तक जुगलकिशोरजी जीवित थे, काशीके गरीव, अपाहिज, निराश्रित, कंगाल, विद्वान् तथा साथ ही मरणासन्न संस्थाओंको एक वड़ा भारी सम्वल था, सहारा था। कुछ वैसी ही वात थी, जो अवधके एक नवाव वज़ीरके लिए कही जाती थी :

'जिसको न दे मौला, उसे दे आसफ़उद्दौला।'

सेठ जुगलकिशोरजीकी भी यही मर्यादा थी। यही गौरव था। वे स्वर्ग चले गये, पर वाराणसी अनाथ हो गयी। अव जाड़ेमें ठिठुरनेवालोंके लिए या पेट पर ताला दिये घूमनेवालोंके लिए कोई घर नहीं रहा। वे जहाँ भी कहीं होंगे, स्वर्गीय आत्मिक शान्ति प्राप्त कर रहे होंगे, पर उनके नाम पर रोनेवाले एक नहीं, लाखों हैं।

●

सत्पुरुष अपने चरित्रका गठन पूर्वजन्मके अनुभवोंके परिणामसे, पैतृकदाय से, सत्संगतिसे, स्वाध्याय और चिन्तनसे तथा ईश्वरनिष्ठासे करता है। नरमें नारायण देखनेकी भावना उसमें सदा ही रहती है।

श्रीअचलानन्द

बिरलाजीकी आत्मगोपन-प्रवृत्ति

⊙ ⊙ ⊙

जुगलकिशोरजी विरला वह वादल थे, जो विना गरजे ही वरसता है। राम-रावण संग्राम प्रसंगमें रावणका गर्जन-तर्जन भगवान् रामके सम्मुख हुआ। श्री राघवेन्द्रने लंकेशसे स्वयं उसके मुखसे अपनी श्लाघा सुनकर तीन प्रकारके मानव रूप बताये :

संसारमह पुरुष त्रिविध पाटल, रसाल, पनस समा
एक सुमनप्रद, एक सुमनफल, एक फलइ केवल लागहीं
एक कहहिं, कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहतन बागहीं

पहले प्रकारके व्यक्ति गुलाव जैसे होते हैं - जो केवल कहते हैं (करते नहीं)। दूसरे आमके समान फूलने-फलनेवाले होते हैं और कहनेके साथ-साथ करके भी दिखाते हैं। तीसरे कटहलके समान ही हैं अर्थात् वे केवल कर्तव्यपरायण होते हैं, अपने सत्कर्मोंका वखान नहीं करते, प्रत्युत राशि-राशि महत् कर्म करके भी उसकी श्लाघासे वहुत दूर रहते हैं।

श्रद्धेय बाबूजी तृतीय-प्रकारके ही महामानव थे, जो सत्य-शिव-सुन्दर कर्मों के सर्वभावसे नियन्ता, निर्माता होकर भी स्वयंको विश्वात्मा सर्वशक्तिमान् परमात्माका अकिञ्चन सेवक मात्र समझते थे।

आत्मगोपन-प्रवृत्तिशील मानवमें एक दिव्य सद्गुण प्रकाशित होता है, वह है : कृतज्ञता। वावूजीमें कृतज्ञताको साकार होते हुए मैंने स्वयं देखा। गत वर्ष जनवरीके पहले सप्ताहमें सम्मान्य पण्डित देवधरजीकी सूचना पर दिल्ली पहुँचा। सायंकाल वावूजीसे मिला। उस समय वे अत्यधिक अस्वस्थ थे। फिर भी मुख पर सहज प्रसन्नता छायी हुई थी। मिलनेवालोंकी संख्या अधिक होनेसे थोड़े समयमें ही स्वर्गाश्रमस्थ सभी महात्माओं तथा कार्यकर्ताओंकी तरफसे शुभकामना और स्वास्थ्य-कामनाका प्रसून उनके हाथोंमें देकर देखा, वे गद्गद हो गए और हाथ जोड़कर स्वर्गाश्रम-निवासी सभी सन्तोंको प्रणाम किया और स्वभावानुसार सेवाका आदेश दे दिया गया। अत्यधिक सम्पर्कमें रहनेवालोंका कहना है कि बाबूजी जीवनमुक्त थे। वहुधा मुझे भी उनके दर्शनका सौभाग्य मिला है। उनके मन्दस्मित, सहज प्रसन्न और साथ-साथ गाम्भीर्य प्रस्फुटित मुख-मण्डलको देखकर स्थित-प्रज्ञके लक्षणोंकी झाँकी मिलती थी।

प्रश्न उठता है कि क्या प्रसन्नता और गाम्भीर्य एक साथ रह सकते हैं ? हाँ, समुद्रमें अगाधता होती है, पर ऊँचाई नहीं होती। पर्वतमें ऊँचाई होती है, पर अगाधता नहीं। किन्तु महामानवमें अगाधता और ऊँचाई दोनों ही विद्यमान रहती हैं। विरलाजी विभिन्न सद्गुणोंके सामञ्जस्य थे। वे गृहस्थ वेशमें वीतराग सन्त थे।

* * *

अंग्रेजीमें एक कहावत है, जिसका शब्दार्थ है कि 'हो सकता है कि सुईके छिद्रसे ऊँट निकल जाय, लेकिन धनवान्का स्वर्गमें प्रवेश कदापि सम्भव नहीं।'

लेकिन लोकोक्तियोंका सत्य जनसामान्य पर घटित हो सकता है, विशेषजनों पर नहीं; क्योंकि कर्म स्वाभाविक बन्धनका हेतु होता है। लेकिन वही जब प्रभुसमर्पित हो जाता है, लोकहितार्थ होता है; तब वह दिव्यताकी ओर ले जाता है और उसका पर्यवसान प्रभुप्राप्तिमें होता है। इसलिए समझदार लोग अपने कर्मोंको ईश्वरको अर्पित कर निश्चिन्त रहते हैं। बाबूजीके मुख पर सहज प्रसन्नता इस बातकी द्योतक थी।

सुना है कि बाबूजीके सामने ऐसे बहुत प्रसंग आये, जिनमें उन्हें बड़ी-बड़ी उपाधियाँ प्रदान की गयीं, लेकिन उन्होंने सहज-भावसे उन्हें लेनेसे इनकार कर दिया। इसमें कुछ समझनेकी बात है। कामनाशील साधारण व्यक्ति थोड़े-थोड़े प्रलोभनोंके अवसर पर फिसल जाता है, लेकिन जो विचारशील बड़ी वस्तु प्राप्त कर लेता है, उससे छोटी चीज़ें स्वतः छूट जाती हैं और उसमें परोपकार-परायण महात्माओंके दिव्य-गुण जाग्रत हो जाते हैं। वे अपने गुणोंको सुनकर सकुचाते हैं, लेकिन दूसरेके गुणोंको सुननेका जब अवसर आता है; तो बड़े चावसे सुनते हैं। समता, शीलता, न्यायका कभी त्याग न करना, सरल स्वभाव, सभीसे प्रेम रखना। जप, तप, व्रत, दम, संयम और नियम, गुरु, गोविन्द, ब्राह्मणों पर श्रद्धा रखना। क्षमा, मैत्री, दया, मुदिता और प्रभुचरणोंमें निष्कपट प्रेम तथा वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान (परमात्माके तत्वका ज्ञान) और वेद-पुराणोंका यथार्थ ज्ञान रखना और दम्भ, अभिमान, मदसे रहित होकर प्रभुलीलाओंको सुनना-सुनाना, दूसरोंके हितमें लगे रहना - ये सब सुरमुनि वेद-वन्दित दिव्य सद्गुण उनमें स्वतः प्रकट हो जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें :

निजगुन श्रवण सुमन सकुचाहीं। परगुन सुनत अधिक हरषाहीं॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीती॥
जपतप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोविन्द बिप्रपद प्रेमा॥
श्रद्धा क्षमा मैत्री दाया। मुदिता समपद प्रीति अपाया॥
बिरति बिवेक बिनय बिज्ञाना। बोध जथारथ बेद पुराना॥
दम्भमान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला॥
मुनि सुनु साधुन्ह के गुण जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते॥

स्वर्गीय जुगलकिशोर बिरला गीतोक्त कर्मयोगके मूर्तमान् स्वरूप थे। कर्मयोगी अपने स्वार्थके लिए कुछ नहीं करता, उसका सम्पूर्ण कर्म प्रभुसमर्पित होनेसे स्वार्थ-शून्य लोकहितार्थ होता है। कर्ममें अभिनिवेश न होनेसे वह आशा, ममता, सन्ताप-रहित होकर कर्म करता है; क्योंकि प्रभुसमर्पित कर्म-बन्धन-रहित होता है :

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर॥ (गीता)

भगवद् अर्पण किए हुए कर्मके अतिरिक्त कर्म बन्धनका हेतु है। भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा है : हे मानव, आसक्तिसे रहित होकर उस परमेश्वरके निमित्त कर्मका भलीभाँति आचरण कर :

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममोभूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥ (गीता)

* * *

अध्यात्म-चित्तसे सम्पूर्ण कर्मोंको मुझ परमात्मामें समर्पण करके आशा आदिसे रहित होकर युद्ध (कर्म) कर। बिरलाजी इस कर्मयोगके मर्मज्ञ अभिज्ञाता थे। इसमें उनके लोकविख्यात महत् कर्म ही प्रमाण हैं। लक्ष्मीनारायण मन्दिर (दिल्ली), गीता मन्दिर (मथुरा), श्रीकृष्ण-जन्मस्थान (मथुरा), विश्वनाथ मन्दिर (वाराणसी) आदि स्थानोंके निर्माता होकर भी कितने सादे और कितने विनम्र थे वे !

वस्तुतः उनमें भक्ति, ज्ञान, कर्म इन तीनोंका संगम था।

नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरषत दीना॥
ज्ञान मान जहँ एकहु नाहीं। देखत ब्रह्मसमान सब माहीं॥
शम दम शील विरति बहुकर्मा। निरत निरन्तर सज्जनधर्मा॥

श्रुति-स्मृति प्रतिपादित यह क्रमशः भक्ति, ज्ञान, कर्म-रूपी गंगा, सरस्वती, यमुनाकी धाराएँ श्रद्धास्पद बाबूजीमें प्रवाहित होती थीं। तुलसीदासजीके शब्दोंमें : **"राम-भगति जहँ सुरसरिधारा, सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा।"**

बाबूजी हिन्दू-धर्मके लिए तो सब कुछ थे। जब भी कभी किसी उच्च कोटिके साधक या सिद्ध महात्माओंसे मिलते, तो यही जिज्ञासा व्यक्त करते कि हिन्दू-धर्मकी प्रतिष्ठा कब होगी ? और इसके लिए वे सतत् प्रयत्नशील रहे। प्रायः सभी धार्मिक संस्थाओंको उनसे सहायता मिलती थी। संस्कृतके प्रचार-प्रसारमें उनकी हार्दिक सहानुभूति थी। वे समझते थे कि संस्कृतके ज्ञानके बिना हिन्दू-संस्कृतिका वास्तविक बोध सम्भव नहीं। इसलिए संस्कृत प्रचारके लिए संस्कृत पाठशालाओंको आर्थिक सहयोग उनसे सदा मिलता रहता था।

स्वर्गाश्रम ट्रस्ट (बाबा काली कमलीवाले श्री आत्मप्रकाशजीसे सम्बन्धित)के बाबूजी परमाध्यक्ष थे। यहाँ पर हर सम्प्रदायके साधक-सिद्ध निवास करते हैं। ऐसी बहुमुखी संस्थाके प्रबन्धके लिए परम योग्य, प्रतिभा-सम्पन्न श्री देवधर शर्मा-जैसे कार्यकुशल व्यक्तिको बड़े बाबूने नियुक्त किया। शर्माजीकी देख-रेखमें स्वर्गाश्रम ट्रस्ट दिन-दूना, रात-चौगुना उन्नति पथ पर अग्रसर हो रहा है। जब कभी कोई भी इस किस्मकी शिकायत होती थी कि जो साधुजन भजन नहीं करते, ऐसोंको आश्रममें रहनेका क्या अधिकार है ? तो सुना है कि बाबूजी उदारतापूर्वक कहते : 'एक सन्त यदि भजन-साधन करता है, तो उसके सहारे औरोंको भी आश्रममें निवास करनेका अधिकार है।' धन्य है ऐसा गुणग्राही महामानव !—**"परगुण परमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं निज हृदि विकासान्तः सन्ति सन्तः कियन्तः"** अर्थात् दूसरेके थोड़ेसे गुणोंको बहुत समझकर हृदयसे प्रसन्न होनेवाला संसारमें विरला ही कोई होता है।

श्रद्धेय बिरलाजी जब-जब स्वर्गाश्रम पधारे, तब-तब यह बिलकुल ही भान नहीं होने दिया कि वे स्वर्गाश्रम ट्रस्टके अध्यक्ष हैं। यहाँ तक कि जहाँ सामान्य अतिथियोंका स्वागत किया जाता है और स्वर्गाश्रम ट्रस्टकी दर्शनीय गद्दी है, वहाँ तक कभी नहीं गये। इस प्रकारकी अनेक घटनाएँ हैं, जो जुगलकिशोरजी बिरलाकी आत्मगोपन-प्रवृत्ति की साक्षी हैं।

वे वास्तवमें सन्त थे, परोपकार-परायण साधु थे।

●

* * *

आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी

शिव-संकल्पमय सेठ जुगलकिशोर बिरला

⊙ ⊙ ⊙

जिस समय समाचारपत्रोंके अत्यन्त गौण कोनोंमें यह संक्षिप्त समाचार पढ़ा कि सेठ जुगलकिशोर बिरलाका निधन हो गया, तो यह पढ़ते ही मनमें तत्काल यह भावना उठी कि क्या जुगलकिशोर बिरला ऐसे महत्वहीन व्यक्ति थे कि न उनके लिए शोक-सभाएँ हुईं, न समाचारपत्रोंमें उनके निधनके समाचारको कोई महत्व दिया गया और न कोई विशेषांक ही निकाले गये। यह हमारे देशका दुर्भाग्य है कि हमने राजनीति और राजनीतिग्रस्त व्यक्तियोंको इतना अधिक अनावश्यक महत्व दे दिया है कि हमारे सामाजिक और साँस्कृतिक जीवनका कोई पक्ष भली प्रकार विकसित नहीं हो पा रहा है।

सेठ जुगलकिशोर बिरला बड़े ही निश्छल, सरल और शिव-संकल्प व्यक्ति थे। जिस समृद्धि और वैभवके लिए बहुतसे लोग तपस्या करते और सब प्रकारके कुटिल, अकुटिल, कुशल और अकुशल उपायोंका अवलम्ब लेते हैं; उन सबको अपने इंगित पर नृत्य करते देखकर भी उनके प्रति उनके मनमें न तो कभी कोई राग हुआ, न अभिमान। अपने व्यवसायमें उन्होंने जिस कौशलके लिए प्रसिद्धि प्राप्त की थी, उससे कहीं अधिक समाज-सेवाका उन्होंने अनवरत और अप्रेरित कार्य किया। स्थान-स्थान पर उन्होंने अपने पिता-माताके नाम-पर अथवा केवल लोककल्याणकी दृष्टिसे ही अपरिमित द्रव्यका दान किया और न जाने कितनी संस्थाओंकी स्थापना करके उनके पोषणकी शाश्वत व्यवस्था भी कर दी।

वे बड़े कल्पनाशील व्यक्ति थे। शिल्पकला, मूर्तिकला और वास्तुकला के वे अत्यन्त मर्मज्ञ पण्डित और कला पारखी थे। भारतीय-संस्कृतिके सभी पक्षोंका गहन ज्ञान होनेके कारण उनकी सम्पूर्ण निर्माण-प्रवृत्तियोंमें कहीं दोष नहीं आने पाया। रंग, रेखा, रूप, अनुपात सबका उन्हें इतना सूक्ष्म, सहज ज्ञान था कि किसी शिल्पीकी तनिक-सी भी असावधानी उनकी आँखोंमें खटक जाती थी। जिस समय दिल्लीमें लक्ष्मी-नारायणका मन्दिर (जिसे लोग बिरला मन्दिर कहते हैं) बना, उस समय उनके इस कौशलका मुझे बहुत अधिक परिचय प्राप्त हुआ। वे इस प्रकार वहाँके शिल्पियोंको प्रत्येक मूर्ति और जीव-जन्तुओंकी प्रतिमूर्तिके सम्बन्धमें इतनी कुशलता, सूक्ष्मता और अधिकारके साथ समझाते थे, जैसे कोई मूर्तिकला और वास्तुकलाका प्रौढ़ पण्डित प्रवचन कर रहा हो। मैंने उनसे उस समय प्रश्न किया कि आपने यह सब कहाँसे अध्ययन किया, तो उन्होंने अत्यन्त सरल भावसे यही कहा : "आप लोगोंके संगसे सब सीखा है।"

वे बड़े सहृदय और उदार हिन्दू थे। किसी धर्मसे या सम्प्रदायसे उन्हें किसी प्रकारकी कोई घृणा, ईर्ष्या, मत्सर या वैर-भाव नहीं था; किन्तु हिन्दू-धर्ममें—उस व्यापक हिन्दू-धर्ममें उनकी बड़ी प्रबल आस्था थी, जिसके अन्तर्गत ही वे बौद्ध, जैन, सिख तथा उन अन्य मतावलम्बियोंको भी संगृहीत मानते थे, जिनका प्रवर्तन हिन्दू-धर्मकी

ही दार्शनिक वृत्तियोंसे हुआ था। अनेक अवसरों पर जब-जब हिन्दू-समाज पर किसी प्रकारकी कोई विपत्ति आयी या उसे आर्थिक सहायताकी आवश्यकता हुई, तब-तब जुगलकिशोरजीने मुक्त-हस्तसे रुचिपूर्वक आर्थिक सहायता देनेमें कोई संकोच नहीं किया। बीसवीं शताब्दीके तीसरे और चौथे दशकमें भारतके विभिन्न स्थानों पर जो अनेक साम्प्रदायिक दंगे हुए, उनमें पीड़ित हिन्दुओंकी रक्षा और उनकी सहायताके लिए जुगलकिशोर बिरलाजीने अभूतपूर्व कार्य किए। जिन दिनों ईसाइयों और मुसलमानोंने बलपूर्वक या छलपूर्वक अनेक हिन्दुओंको ईसाई या मुसलमान बननेके लिए विवश किया, उन दिनों उन्होंने अत्यन्त व्यवस्थित ढंगसे उनको पुनः हिन्दू-समाजमें ग्रहण करनेके लिए सब प्रकारकी व्यवस्था और सहायता की। इतना ही नहीं, जिन अनेक परिवारोंने कुछ पीढ़ियों पहले बलपूर्वक मुस्लिम-धर्म स्वीकार कर लिया था, उन्हें पुनः हिन्दू-समाजमें ग्रहण करनेके लिए उन्होंने पर्याप्त प्रयत्न किया और यह उनके प्रयत्नोंका ही परिणाम है कि सहस्रों ऐसे परिवार पुनः हिन्दू-समाजकी परिधिमें आ सके।

जुगलकिशोरजी बहुत धीरे और कम बोलते थे। वे जो कुछ कहते थे, वह बहुत महत्वपूर्ण होता था। वे चिन्तनशील अधिक थे, इसलिए किसी प्रकारका निर्णय करनेसे पूर्व अत्यन्त गम्भीरतासे और शीघ्रतासे निश्चय कर लेते थे। विचित्र बात यही थी कि वे जो कुछ निर्णय करते थे, वह सब कल्याणकारी होता था, इसीलिए उनके नामके साथ शीर्षकमें शिव-संकल्प विशेषण लगाया गया है। प्रायः व्यवसायी लोग अपने व्यवसायमें किसी प्रकारकी भी नैतिक परिधिका उल्लंघन करनेमें कोई संकोच नहीं करते; किन्तु जुगलकिशोरजी बिरला इस विषयमें बड़े सावधान रहते थे और कभी कोई ऐसा कार्य करनेकी प्रवृत्ति उनमें नहीं थी, जिससे किसीको भी किसी प्रकारका कोई कष्ट हो या किसीका अहित हो।

बिरला-परिवारका महामना मालवीयजीसे सम्पर्क होना उस परिवार की समृद्धिका सबसे बड़ा कारण रहा है। महामना मालवीयजीकी अनेक बहुमुखी योजनाओंमें बिरला-परिवारने और विशेषतः जुगलकिशोर-जीने पर्याप्त सहयोग दिया और बिरला-परिवारके आर्थिक तथा सामाजिक यशोवर्द्धनमें महामना मालवीयजीका भी प्रचुर योग रहा। स्वयं जुगलकिशोरजी यह बात कई बार व्यक्तिगत रूपसे और सार्वजनिक रूपसे मान चुके थे कि महामना मालवीयजीकी ही कृपासे हमारा उत्कर्ष और अभ्युदय हुआ है।

मेरा उनका अधिक सम्पर्क उस समय हुआ, जब मैं अपने मित्र पण्डित त्रिलोचन पन्त और पण्डित गयाप्रसाद ज्योतिषीजीके साथ हिन्दू विश्वविद्यालयमें निर्मित होने वाले मन्दिरके निमित्त चन्दा एकत्र करनेके लिए कलकत्ता गया था। उस समय महामना मालवीयजीने यह कहा था कि जो स्वेच्छासे और प्रसन्नतासे दे, केवल उसीसे लेना, अन्य किसीसे नहीं। यही भावना सेठ जुगलकिशोर बिरलामें भी थी।

जुगलकिशोरजीको मनुष्यकी बड़ी सच्ची पहचान थी। मैंने कई बार आश्चर्यके साथ यह अनुभव किया कि जिस व्यक्तिके सम्बन्धमें केवल एकबार देखकर उन्होंने जो धारणा व्यक्त की, वह निश्चित रूपसे सही निकली। एक बार काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके व्यवस्था-विभागमें किसी एक सज्जनकी नियुक्ति होने वाली थी। जुगलकिशोरजी उस चुनाव-समितिमें नहीं गये, किन्तु साक्षात्कारके समय वहाँ उपस्थित थे। जब वे सज्जन चले गये, तब महामना मालवीयजीने अन्य सदस्योंके साथ-साथ केवल उपचारवश जुगलकिशोर-जीसे भी पूछा : 'कहिए, आपको यह कैसा लगा ?' जुगलकिशोरजीने तत्काल कह दिया, आदमी तो कुछ अच्छा नहीं मालूम होता। फिर भी उनकी नियुक्ति कर ली गई; किन्तु थोड़े दिनके पश्चात् ही जुगलकिशोरजीकी ही वाणी सत्य हुई और उन सज्जनको वहाँसे हटा देना पड़ा। ऐसे एक नहीं अनेक दृष्टान्त हैं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयका विशाल मन्दिर बनवानेके लिए महामना मालवीयजीका अत्यन्त

* * *

दृढ़ संकल्प था; किन्तु उनका यह संकल्प उनके जीवनकालमें पूर्ण न हो सका। इसकी उन्हें बड़ी व्यथा और कड़क थी। जिन दिनों वे अपनी अत्यन्त जरा अवस्थाके कारण शैयाशायी थे, तो वे निरन्तर सबसे मन्दिर निर्माणके सम्बन्धमें अपनी व्यथा कहते रहते थे। अन्तिम समयमें जुगलकिशोरजीने उनसे अत्यन्त मार्मिक ढंगसे कहा : "महाराज आप मन्दिर बनानेका भार मुझ पर छोड़ दीजिए और यह व्यथा आप लेकर मत जाइए।" महामना मालवीयजीकी आँखोंमें आँसू आ गये और उन्होंने कहा कि "अब मुझे सन्तोष है" और कुछ देर बाद ही वे गोलोकवासी हो गये। जुगलकिशोरजीने महामना मालवीयजीको दिया हुआ वचन पूरा किया और काशी हिन्दू विश्वविद्यालयका विश्वनाथ मन्दिर बनवाकर खड़ा कर दिया, जो भारतीय वास्तुकला, मूर्तिकला तथा मन्दिर-निर्माण-कलाका अद्भुत उदाहरण है।

सेठ जुगलकिशोर बिरला उन थोड़ेसे इने-गिने भारतीयोंमें हैं, जिनपर किसी राष्ट्र, जाति या देशको गर्व हो सकता है। उन्होंने कभी अपना प्रचार नहीं होने दिया और यही कारण है कि लोक-जिह्वाने उनका उतना सम्मान नहीं किया, जितना किसी वन्दनीय लोककल्याणी सत्पुरुषका होना चाहिए।

अशिव विचारोंको शुभमें नियुक्त करना शिवसंकल्प है। दर्शनकी भाषामें इसे शुभीकरण, शोधन अथवा ऊर्ध्वयान कहा जाता है। शिवसंकल्प दो प्रकारका होता है : अभ्युदय और निःश्रेयस। निरन्तर साधु-सेवा और शास्त्र-नियन्त्रणके साथ व्यक्तिकी विवेक-शक्ति बढ़ती है और वह अपने सभी कार्य-व्यापारों, मनोभावोंको संयत रखनेका जब प्रयत्न करता है, तो उसमें तत्व-बुद्धिका जागरण होता है। तत्व-बुद्धि ही मनुष्यको शिव-संकल्पमय बनाती है।

* * *

श्रीभगवानदास भार्गव

तेजस्वी मानव

⊙ ⊙ ⊙

भारतवर्षमें शक्तिशाली हिन्दू शासकोंके शासनमें न्यूनता आ जाने पर विदेशी तथा अन्य धर्मावलम्वी आक्रमणकारियों और कुछ शासकोंने हिन्दूधर्म पर कुठाराघात करना ही अपना परमधर्म मान लिया था। अतः उन्होंने लूटमार और हिंसाके अतिरिक्त हिन्दुओंके देवस्थानोंको नष्ट करना भी बड़े सवाब (पुण्य)का कार्य समझ लिया और जहाँ कहीं अवसर मिला, हिन्दुओंके अनेक देवस्थानोंको नष्ट कर दिया। उनकी धारणा थी कि इस प्रकार हिन्दूधर्म समूल नष्ट हो जायगा, परन्तु ईश्वरका विधान कुछ और ही है। जो धर्म सनातन है, शाश्वत है, उसका नाश सम्भव नहीं। कालान्तरमें ऐसे तेजस्वी महानुभावोंका प्रादुर्भाव होता रहता है, जिनके द्वारा उसका फिर विकास हो जाता है और जो बिगड़े हुए को फिर सुधारनेमें समर्थ होते हैं। सेठ जुगलकिशोरजी बिरला एक ऐसे ही यशस्वी महानुभाव थे।

भगवान् श्रीकृष्णके पावन जन्मस्थान मथुरामें, जो कटरा केशवदेवके नामसे प्रसिद्ध है, अनेक बार विशाल मन्दिर बनाये गये और नष्ट किये जाते रहे। अन्तिम मन्दिर जिसको ओरछा नरेश राजा वीरसिंहदेव बुन्देलाने तैंतीस लाख रुपयेकी लागतसे बनवाया था और जो २५० फुट ऊँचा था, उसको मुगल सम्राट् औरंगजेबने सन् १६६९ ई०में नष्ट कर दिया और उसकी बड़ी कुर्सीके अग्रभागपर एक ईदगाह बनवा दी, जो अब भी विद्यमान है।

यह घटना आजसे ३०० वर्ष पहलेकी है। इस बीच राज्योंमें परिवर्तन हुए। मथुरा प्रदेशमें जाटोंका राज्य हुआ, फिर मराठोंका राज्य हुआ और अन्तमें सन् १८०३ ई०से अंग्रेजोंने राज्य किया; परन्तु इस परम्परागत मान्य वन्दनीय भूमिका पुनरुद्धार कोई न कर सका। यह स्थान खँडहर और उपेक्षित अवस्थामें ही पड़ा रहा।

सेठ जुगलकिशोरजी बिरला एवं महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी ने इस स्थानका निरीक्षण किया, उसकी अत्यन्त दयनीय दशाको देखा और व्यथित-हृदयसे उसके पुनरुद्धारका संकल्प कर लिया। जिस महानुभावने अनेक धर्मशालाएँ तथा देवालयोंका निर्माण व पुराने मन्दिरोंका जीर्णोद्धार देशके अनेक भागोंमें करवाकर जनताको सौंप दिये और आर्य-धर्मको सशक्त बनाया, वह इस पवित्र वन्दनीय जन्मस्थानको दयनीय अवस्थामें कैसे देख सकता था।

मालवीयजीकी मन्त्रणा एवं प्रयाससे सेठजीने सम्पूर्ण कटरा केशवदेवको उसके तत्कालीन स्वामीसे खरीद लिया और उसके पुनरुद्धारकी योजना बनायी।

मालवीयजीके स्वर्गवासके पश्चात् १९५१ ई०में सेठजीने श्रीकृष्ण-जन्मभूमि ट्रस्टके नामसे एक ट्रस्टकी स्थापना की और पुनरुद्धारका कार्य उसके सुपुर्द कर दिया।

* * *

इस ट्रस्ट कमेटीके सदस्योंकी प्रथम वैठक दिल्लीमें तत्कालीन लोकसभाके अध्यक्ष स्वर्गीय गणेश वासुदेव मावलंकरके निवास स्थान पर हुई, जिसमें पदाधिकारियोंका चुनाव किया गया; जो इस प्रकार था :

मावलंकरजी : अध्यक्ष, श्री नरहरि विष्णु गाडगिल : उपाध्यक्ष, श्री वियोगी हरि : मन्त्री, श्री भगवानदास भार्गव : उपमन्त्री। विरलाजी कोई पद स्वीकार न करके साधारण सदस्य रहे।

अन्य सदस्योंके नाम इस प्रकार थे : श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी (वम्वई), श्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती (वृन्दावन), श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र (नागपुर), श्री गोविन्द मालवीय (वाराणसी), श्री भीखनलाल आत्रेय (वाराणसी), श्री गोस्वामी गणेशदत्त (नयी दिल्ली), श्री जनार्दन भट्ट (दिल्ली), श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका (कलकत्ता), श्री द्वारिकानाथ भार्गव (मथुरा), श्री वृजलाल हकीम (मथुरा)।

इस वैठकमें ही मुझको विरलाजीके प्रथम दर्शन और परिचय दोनों प्राप्त हुए। मेरे ऊपर उनकी अहंकाररहित सादगी और सेवाभावका उस प्रथम परिचयमें ही वड़ा प्रभाव पड़ा, जो क्रमशः वढ़ता ही गया।

उसके पश्चात् जव कभी वे कार्य निरीक्षणके लिए मथुरा पधारते थे, अथवा ट्रस्ट कमेटीकी वैठकोंमें उनके दर्शन होते थे, तो मिलने पर वे यह कहकर "भार्गव साहव, आप अच्छी तरहसे तो हैं" सम्बोधित करते थे। उनके यह शव्द वड़े भावपूर्ण और प्रेरणात्मक होते थे। मैंने उनके भाषण भी सुने, जिनमें उनके शुद्ध अन्तःकरणकी झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती थी।

विरलाजी मधुरभाषी, कोमल हृदय, अहंकार-शून्य, मानप्रद, दानवीर और धर्मपरायण व्यक्ति थे। प्रतिभाशाली होते हुए भी स्वभावतः विनीत थे। उनका जीवन **"परोपकाराय सतांविभूतयः"**की उक्तिको पूर्णतया चरितार्थ करता है।

विरलाजीका पार्थिव शरीर पञ्चतत्वोंमें मिल गया; परन्तु उसकी यशःआभा चिरकाल तक रहेगी। हर्षका विषय है कि उनका लगाया हुआ यह पौधा शीघ्रतासे पल्लवित-पुष्पित होता जा रहा है।

●

हमारा देश श्रद्धाका देश है, श्रद्धालुओंका देश है। ईश्वर, धर्म, राष्ट्र, गुरुजन, माता-पिता, तीर्थ, देवता, अपने महापुरुषोंके प्रति श्रद्धा रखना भारतीय-संस्कृतिकी महान् परम्परा है।

पण्डित पद्मकान्त मालवीय

महामना मालवीय और जुगलकिशोर बिरला

⊙ ⊙ ⊙

जिस प्रकार राजनीतिमें महात्मा गान्धीके एकान्तनिष्ठ अनुयायी स्वर्गीय जमनालाल बजाज थे, उसी प्रकार धार्मिक और सामाजिक सेवाक्षेत्रमें महामना मालवीयजीके निष्ठावान् अनुयायी स्वर्गीय जुगलकिशोरजी बिरला थे। बिरलाजीका व्यक्तित्व और कृतित्व अपूर्व रहा। उनके निधनसे उस परम्परा और पीढ़ीका अन्त हो गया, जिसके सञ्चालक, संवाहक पूज्य महामना मालवीयजी, पंजाबकेशरी लाला लाजपतराय और स्वामी श्रद्धानन्दजी थे।

उपर्युक्त तीनों विभूतियोंके जीवन-दर्शनसे सेठ जुगलकिशोरजीका व्यक्तित्व निर्मित हुआ था। स्वर्गीय महामना मालवीयजीको धनबलसे अपने आश्रित बनाना सर्वथा असम्भव था। उन्होंने यौवनके प्रथम प्रभातमें ही श्री-कीर्ति, पद-प्रतिष्ठाका मोह त्यागकर **'कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्'**को अपने जीवनका सिद्धान्त बनाकर देश-धर्म और समाजकी बहुमुखी सेवा जीवन-पर्यन्त की। इसमें सन्देह नहीं कि उनके आर्षचरित्र, उदात्त ब्राह्मणत्वने जुगलकिशोरजीको प्रभावित किया था, आकृष्ट किया था। पूज्य मालवीयजीने जुगलकिशोरजीको जीवन-पर्यन्त पुत्रवत् स्नेह प्रदान किया।

स्वर्गीय जुगलकिशोरजी संस्कारी, प्रतिभावान् व्यवसायी थे। अपने युवाकालमें ही उन्होंने अपनी व्यावसायिक प्रतिभा और सफलताका ऐसा परिचय दिया कि उस समयके प्रमुख भारतीय उद्योगपति और व्यवसायी ही नहीं, बल्कि ब्रिटिश शासनने भी उनकी मौलिक व्यवसाय-नीति और राष्ट्रीय-भावनाका लोहा मान लिया।

जुगलकिशोरजीमें यौवनके उषःकालसे ही धर्म, समाजके उन्नयन और परिष्कारकी भावना निहित थी। मालदीयजीके सम्पर्कमें आनेसे उनकी इस प्रवृत्तिका उत्तरोत्तर विकास हुआ। हिन्दू-धर्म और समाजके उन्नयन और विकासके लिए सर्वप्रथम उन्होंने सार्वजनिक मंच पर काशीमें होनेवाले राष्ट्रीय हिन्दू महासभाके अधिवेशनमें सम्मिलित होकर सक्रिय योगदान दिया था। जुगलकिशोरजी आयुमें, अनुभवमें, विद्या और यशमें मालवीयजीसे न्यूनातिन्यून थे; फिर भी मालवीयजीने उनकी प्रच्छन्न प्रतिभाको परख लिया था और सभा-मंच पर ही वे उनसे हर प्रस्ताव पर, हर समस्या पर परामर्श ले रहे थे। मालवीयजी व्यक्तित्वकी ऊँचाई और गरिमाके बहुत बड़े पारखी थे। वे स्वयं सम्मानके अनिच्छुक थे, किन्तु दूसरोंको अत्यधिक सम्मान दिया करते थे। उनके ऋषितुल्य स्वभाव और आचरणसे जुगलकिशोरजी इतना अभिभूत हो गये थे कि उन्हें अपना गुरु मानकर वे उन पर श्रद्धा और आस्था रखने लगे और मालवीयजी सदा उन पर वात्सल्य-भाव रखते थे। आगे चलकर हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाजके उत्थानके लिए जुगलकिशोरजी मालवीयजीके पूरक बन गये।

जुगलकिशोरजी पहले पूर्णतः आर्यसमाजी विचारधाराके थे। लाला लाजपतराय और स्वामी श्रद्धा-

* * *

नन्दजीके साथ शुद्धि-कार्य और आर्यधर्मके प्रचार तथा हरिजनोद्धारके लिए वे वेहिसाब धन व्यय किया करते थे, जिसका कोई लेखा-जोखा वहीखातोंमें शायद ही हो।

मालवीयजीके स्नेह, संकल्प और प्रभावसे विरलाजीकी आस्था और श्रद्धा शुद्ध सनातन-धर्मकी ओर बढ़ने लगी। पूज्य मालवीयजीके इष्टदेव भगवान् श्रीकृष्ण थे और श्रीमद्भागवत पर उनकी अगाध श्रद्धा और निष्ठा थी। मालवीयजीकी इस आस्थाने विरलाजीको भगवान् श्रीकृष्णकी ओर आकृष्ट किया। निराकार से वह साकारके उपासक बने और भगवान् श्रीकृष्ण ही उनके जीवनके इष्ट एवं आराध्य बने। उनकी विचार-धारामें आया हुआ मोड़ तव प्रकट हुआ, जब दिल्लीमें लक्ष्मीनारायण मन्दिरकी नींव पड़ी। इस मन्दिरके निर्माणकी कहानी भी रहस्यपूर्ण है।

मालवीयजी देश, धर्म, समाजके हितके लिए योजनाएँ वनाते, उनको रूप-आकार देते और फिर सञ्चालन भार दूसरे सुयोग्य व्यक्तियोंके कन्धों पर सौंप देते थे।

कालाकाँकरसे प्रकाशित होनेवाले 'हिन्दुस्थान' पत्रसे अलग होनेके वाद उन्होंने देशमें ऐसे समाचार पत्रोंकी आवश्यकताका अनुभव किया, जो राष्ट्रकी आवाजका समर्थन और प्रसार कर सकें। अवसर आते ही उन्होंने दिल्लीमें 'हिन्दुस्तान टाइम्स'की और प्रयागसे 'लीडर'की स्थापना की और उनका सञ्चालन भार सुयोग्य हाथोंको सौंपकर स्वयं अलग हो गये।

नयी दिल्लीका निर्माण हो चुका था, उसका उत्तरोत्तर विकास हो रहा था। वहाँ चर्च बन गये, मस्जिद बन गयी; किन्तु हिन्दुओंके मन्दिरका न होना मालवीयजीको खल गया। उन्होंने वायसरायसे हिन्दू मन्दिरके लिए भूमि अवाप्त करने की अनुमति ली और फिर गोस्वामी गणेशदत्तजीको वुलवाया। उनसे कहा कि गोस्वामीजी आप कैसे सनातनधर्मी हैं ? दिल्लीमें एक भी सनातनधर्मी हिन्दुओंका अपना मन्दिर नहीं है। हमारी इच्छा है कि एक ऐसा मन्दिर बने, जिसमें सभी वर्गके हिन्दू जाकर भगवान्‌के दर्शन करें। यह कहकर मालवीय-जीने मन्दिरका नक्शा और उसकी पूरी योजना गोस्वामीजीके सामने रख दी। गोस्वामीजीने जब देखा कि योजना पचास लाखकी है, तो वह सन्नाटेमें आ गये और बोले : "महाराज, यह मेरे वशका नहीं।" ढाढ़स बँधाते हुए मालवीयजीने कहा कि काम प्रारम्भ करो। भगवान् पर भरोसा रखो।

गोस्वामीजीने काम प्रारम्भ करा दिया। उन्होंने स्वयं कई लाख रुपये एकत्र किये, किन्तु फिर भी काम आगे नहीं वढ़ सका। बुनियादमें ही सव समा गया। गोस्वामीजी घवराकर मालवीयजीके पास आये। माल-वीयजीने उन्हें फिर ढाढ़स बँधाया और एक दिन वह सेठ जुगलकिशोरजी विरलाके पास जाकर बोले : "जुगल किशोरजी, गोस्वामी गणेशदत्तजी एक मन्दिर वनवा रहे हैं; जाकर देख तो लीजिए, कैसा वन रहा है ? कैसा वनना चाहिए, यह सुझाव भी दे दें। यह मन्दिर एक बहुत बड़े अभावकी पूर्तिके साथ हिन्दू-समाजके उत्कर्षका साधन वनेगा।"

सेठ जुगलकिशोरजी एक दिन घूमनेके बहाने वहाँ पहुँच गये। मन्दिरकी वुनियाद और नक्शा देखकर गोस्वामीजीसे बोले : "गुसाईंजी, क्यों हिन्दू-धर्मकी नाक कटा रहे हो; क्या ऐसा ही मन्दिर बनेगा ?"

गोस्वामीजी बोले : "मालवीयजी महाराजने फँसा दिया है, अब तो जैसे-तैसे बनवाना ही होगा।"

"अच्छा, कल हमसे मिलें"—कहकर जुगलकिशोरजी चले गये और जब गोस्वामीजी उनसे मिलने गये, तो उन्होंने कहा कि हम आपकी और मालवीयजीकी इच्छा पूरी कर देंगे। एक इच्छा हमारी भी है कि यह भव्य मन्दिर हमारे पिताजीके नामसे बने। गोस्वामीजीने सर्वात्मना स्वीकार कर लिया और मालवीयजीको जब सूचित किया, तो मालवीयजीने कहा कि : "जुगलकिशोर अद्वितीय व्यक्ति हैं, उनका संकल्प सर्वथा उचित

है। उन्हें आप सौंप दें।" इस तरह श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर जो आज बिरला-मन्दिरके नामसे ख्यात है, निर्मित हुआ और उसके निर्माण, शिल्प, पूजन-प्रवचन, विधान तथा व्यवस्था-प्रबन्धमें जुगलकिशोरजीकी प्रतिभा और आस्था पूर्णरूपेण प्रस्फुटित हुई है। फिर तो जुगलकिशोरजीने उत्तरोत्तर सनातन-धर्मके प्रमुख तीर्थोंमें मन्दिरों, धर्मशालाओंका निर्माण कराकर अक्षय कीर्ति प्राप्त की। साथ ही भगवान् श्रीकृष्णके प्रति उनकी श्रद्धा और आस्था भी उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। मालवीयजीके सुझाव पर वे प्रतिदिन गीताका पारायण करते थे। श्रीकृष्ण भगवान्का पूजन करते थे।

जुगलकिशोरजी इस समयके कर्ण माने जाते रहे हैं। याचकके लिए उन्हें कुछ भी अदेय नहीं था। उन्होंने किसीकी याचना विफल न करनेका संकल्प-सा कर लिया था। बिरला-बन्धुओंके नामसे विभिन्न क्षेत्रोंमें जो करोड़ों रुपयोंका दान हुआ है, उसका अधिकांश जुगलकिशोरजीका ही दान था; वह सदैव अपना नाम छिपाते रहे हैं। किसीको किसी भी प्रकारकी सहायता देकर उससे प्रतिदानकी आकांक्षा उनमें कभी नहीं हुई। वे विशुद्ध सात्विक दानी थे। राजनीतिसे उनका अधिक सरोकार नहीं रहा।

मालवीयजी हिन्दू-धर्म, हिन्दू-तीर्थों, हिन्दू-जातिके उत्थान और उद्धारके लिए जो भी कार्य करते थे, उन सबमें बिरलाजीका पूर्णतया गुप्त या प्रकट सहयोग अवश्य रहता था। जब मालवीयजीने मथुरा स्थित श्रीकृष्ण-जन्मभूमिका उद्धार करनेका संकल्प किया, तो जुगलकिशोर बिरला उनके इस पुनीत कार्यके दाहिने हाथ बन गये। आज वही जन्मभूमि श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ न्यासके अन्तर्गत देश-विदेशके लोगों द्वारा देखी और पहचानी जा रही है। वहाँ कई लाख रुपयोंकी लागतसे श्रीमद्‌भागवत भवन बनवाया जा रहा है। उसी जन्मस्थानका मुखपत्र "श्रीकृष्णसन्देश" है, जिसके प्रवर्तक स्वर्गीय जुगलकिशोरजी बिरला हैं और आज उन्हींकी पुण्यतिथि पर इस सेवासंघकी ओरसे दिवंगत आत्माके प्रति श्रद्धाकी अभिव्यक्त्यार्थं यह स्मृति-सन्दर्भ-ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

श्रद्धा पर बात आ गयी तो भगवान्का यह वाक्य स्मरण हो आया कि "यो यच्छ्रद्धः स एव सः"। भगवान्के इस कथनका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे उस समय हुआ, जब पूज्य महामना मालवीयजीके प्राण अटके हुए थे। जहाँ पर उनकी शैया थी, ठीक उसीके सामने हिन्दू विश्वविद्यालयमें बनाये जानेवाले विश्वनाथ मन्दिरका काष्ठप्रतिरूप रखा हुआ था। बाबूजीकी दृष्टि उसी प्रतिरूप पर टिकी हुई थी। अड़तालीस घण्टे तक उन्हें लगातार यमयुद्ध करते हुए देखकर हम लोग यही सोचते थे कि बाबू नित्य भगवान् से अनायास मृत्युकी कामना और प्रार्थना जीवन भर करते रहे, फिर इनके प्राण प्रयाण क्यों नहीं कर रहे हैं। हम लोगोंकी समझमें कुछ आ नहीं रहा था। तीसरे दिन अचानक जुगलकिशोरजी पहुँचे। उन्हें देखते ही बाबूजीकी चेतना वापस आ गयी और जुगलकिशोरजी उनके मनोभावोंको तुरत समझकर बोले : "महाराज, मैं वचन देता हूँ कि विश्वनाथ मन्दिर आपकी इच्छाके अनुकूल बनेगा। आप शान्तिपूर्वक प्रस्थान करें।" यह सुनते ही मालवीयजीके चेहरे पर अपूर्व आभा और अद्‌भुत शान्तिका आलोक छा गया और जुगलकिशोरजीके प्रस्थान करनेके बाद इष्टमन्त्र जपते हुए वे गोलोकवासी हुए।

पूज्य महामना मालवीयजी और स्वर्गीय सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाका सम्बन्ध श्रीकृष्ण और अर्जुन जैसा रहा। युग-युग तक उनकी कीर्तिपताका भी वैसी ही फहराती रहेगी।

●

* * *

डॉक्टर भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'

पावन-स्मरण



श्रीमद्भागवतके दसवें स्कन्धके बाईसवें अध्यायमें पैंतीसवाँ श्लोक है, जो मानव-जीवन की चरितार्थता की व्यंजना करता है और वह है :

एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु।
प्राणैरर्थैर्धियावाचा श्रेय एवाचरेत् सदा॥

अर्थात् देहधारियोंके लिए जन्म सफल करनेका एकमात्र उपाय यही है कि वह अपने प्राणोंसे, अर्थसे, बुद्धि-विवेकसे और वाणीसे श्रेयका ही निरन्तर आचरण करें।

इस श्लोक पर जितनी गम्भीरताके साथ सूक्ष्मातिसूक्ष्म चिन्तन किया जाय, ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक युगमें पुण्य-श्लोक पूज्य श्री मालवीयजी महाराज तथा दानवीर श्रद्धेय श्रीमन्त सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाका जीवन इसी श्लोकके साँचेमें ढला हुआ था, उनका जीवन इस दिव्य श्लोकका जीवन्त भाष्य था और उन्होंने वास्तवमें जन्म साफल्य लाभ किया।

इन दोनों महापुरुषोंके प्रथम दर्शन सन् १९२४की जुलाईमें काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें हुए। लगता है, जैसे कलकी बात हो। सन्ध्याका समय था। आर्ट्स कॉलेजके सामने जो एम्फी थियेटर है, उसीके मैदानमें ये दोनों महानुभाव धीरे-धीरे टहल रहे थे और पूज्य मालवीयजी महाराज श्रीमन्त सेठ बिरलाजीका ध्यान बार-बार आर्ट्स और साइन्स कॉलेजोंके ऊपर लगे स्वर्णकलशोंकी ओर ले जा रहे थे। हम मनोहारी दृश्य सतृष्ण दृष्टिसे देख रहे थे। सिरसे पैर तक पूज्य मालवीयजीका शुभ्र वेशं पगड़ी, दुपट्टा, अचकन, पाजामा, जूते, मोजे—सबके सब शुभ्र। सुनहली कान्ति पर मलयगिरि चन्दन कैसा फब रहा था। वह मोहिनी मुसकान! सेठ जुगलकिशोरजी भी अपनी निराली सादगी और जयपुरी वेशभूषामें खूब फब रहे थे—शर्बती रंगकी पेंचवाली शेखावाटी शैलीकी पगड़ी, बन्द गलेका सफेद लम्बा कोट, लाँग बँधी धोती, फलाहारी जूते, हाथमें एक मामूलीसी बेंतकी छड़ी। वह पावन दृश्य कभी आँखोंसे ओझल नहीं होता। फिर तो मैं जैसे-जैसे पूज्य मालवीयजी महाराजके सम्पर्कमें आने लगा, वैसे-वैसे बिरलाजीको भी निकटसे देखने-जाननेका अवसर पाता गया। बिरलाजी जब भी काशी आते और जितने दिन भी काशीमें उनका निवास होता, वे सन्ध्या समय विश्वविद्यालयमें पूज्य मालवीयजी महाराजसे मिलने अवश्य आते और प्रायः दोनोंके विचार-विमर्श और वार्तालापका विषय हिन्दू-जाति तथा हिन्दू विश्वविद्यालयकी समुन्नति और विकास होता। इन दोनों महापुरुषोंके पावन संगमें बितायी अनेक सन्ध्याएँ जीवनमें दिव्य सुरभिका संचार करती रही हैं और करती रहेंगी—लगता है इसी कारण जीवन धन्य हुआ, धन्य-धन्य हुआ!

* * *

क्या आश्चर्य है कि जब कभी महामना पूज्य मालवीयजी महाराजका स्मरण होता है, तो उसी क्षण श्रीमन्त सेठ जुगलकिशोरजीका भी स्मरण हो आता है और जब कभी श्री जुगलकिशोरजीका ध्यान आता है, तो उसी क्षण पूज्य मालवीयजी महाराजका भी स्मरण स्वतः आ जाता है। हिन्दू-राष्ट्रके लिए छत्रपति शिवाजी महाराज और राणा प्रतापके अनन्तर इन दो महापुरुषोंका पावन-स्मरण चिरकाल तक बना रहेगा। हिन्दू-राष्ट्रकी संस्कृति, कला, स्थापत्य, शिक्षा, साहित्य, दर्शन और जीवन शौर्य तथा सौन्दर्यकी पुनर्जागृति के लिए इन दो महापुरुषोंने जितना किया, उतना लाखों-करोड़ों व्यक्ति मिलकर भी नहीं कर सके। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, डॉ० मुंजे, डॉ० अणेका स्वप्न मानो चरितार्थ हुआ।

बिरलाजीके दर्शन सन्ध्या समय कभी-कभी गंगातट पर भी हुआ करते थे। नगवामें बाबू श्री शिवप्रसाद गुप्तकी कोठीके नीचे गंगाजीमें एक नौका पर काशी विश्वनाथ-स्वरूप श्री हरिहर बाबा रहते थे। क्या जाड़ा, क्या गर्मी, क्या बरसात; क्या दिन और क्या रात; वे अवधूत रूपमें नंग-धड़ंग एक नौकाके ऊपर काठके पटरे पर पद्मासन जमाये ध्यानस्थ बैठे रहते थे। उनके शरीरका चमड़ा भैंसेकी तरह काला और मोटा हो गया था। दाढ़ी और शिरके बालोंमें खूब जटाएँ पड़ गयी थीं। शायद जन्मान्ध ही होंगे। बोलते भी बहुत कम। दिन भरमें शायद दो-एक शब्द। सन्ध्या-समय आरतीके पूर्व मेरे मित्र पण्डित रमाकान्तजी त्रिपाठी उन्हें 'योग वाशिष्ठ' और 'पंचदशी' सुनाते थे। वैसी अनेक सन्ध्याओंमें श्री जुगलकिशोरजीको नाव पर बैठे, बाबाके दर्शन और सत्संगका आनन्द लेते देखा है। साधु-सन्तोंके और गौ-ब्राह्मणोंके योगक्षेमकी चिन्ता उन्हें विशेष रहती थी और शायद ही कोई अवसर आया हो, जब वे साधु-महात्माओं और गौ-ब्राह्मणोंकी सेवासे च्युत या विरत हुए हों। उनके जीवनका मानो यह एक महान् अटल व्रत ही था। उसी घाट पर कुछ ऊपर कदम्बके कुछ वृक्ष हैं। वहीं पत्थरकी कुछ पटियाँ हैं। उसी स्थान पर एक संन्यासी महात्मा कहींसे आ गये और उसी पटिया पर ध्यानस्थ बैठे मिलते। श्री जुगलकिशोरजीने उन्हें देखा और जब वे संन्यासी महात्मा अपनी समाधिसे उतरे, तब उनके योगक्षेमके सम्बन्धमें पूछताछ की। आकाश-वृत्तिकी बात सुनकर चिन्तित-से हुए और फिर उनके लिए नियमित रूपसे दूध और फलकी व्यवस्था कर दी, जो बराबर चलती रही। जाड़ेके दिनोंमें सैकड़ों कम्बल, लोई और धुस्से तथा गरम चादरें वे खोज-खोजकर साधुओं-महात्माओंमें बाँटते। जैसे इसका उन्हें नशा हो। साधु-महात्माओंके प्रति, विद्वानोंके प्रति, आचरणशील ब्राह्मणोंके प्रति उनके हृदयमें अपार श्रद्धा थी और उनकी सेवामें वे अपने धनको दोनों हाथ उलीचते थे। सेवामें वे कभी थके नहीं, इति मानी ही नहीं। निरन्तर गंगाके प्रवाहकी तरह उनकी सेवाकी जाह्नवी बहती ही रही, बहती ही रही : क्षण भरके लिए उसमें विराम नहीं। विराम जाना ही नहीं। हजारों ऐसे उदाहरण मेरे सामने हैं, जहाँ जुगलकिशोरजीने साधुसेवामें गुप्त रूपसे, कोई जानने न पाये इस भावसे, अपना धन लगाकर अपनेको धन्य माना। उनकी सेवामें कहीं भी, रंचमात्र भी दानका अभिमान न था, प्रचारकी वासना न थी, धनका मद या अहंकार न था। सेवा स्वीकार की गयी—इसीसे वे अपनेको कृतकृत्य मानते, धन्य मानते। सेवा स्वीकार कर सन्तने इन्हें अनुगृहीत किया, उपकृत किया—ऐसी पवित्र थी उनकी सेवा-भावना। गुप्तसेवामें उन्हें विशेष दिव्य रस मिलता था। अहं तो उन्हें छू तक नहीं गया था—जीवनकी अन्तिम साँस तक वे तपस्याका जीवन जिये और तपस्वीकी तरह ही भगवान् श्यामसुन्दरके ध्यानमें सदाके लिए लीन हो गये।

भरी जवानीमें वे विधुर हुए। इतना विपुल वैभव और प्रशस्त साधन, परन्तु फिर भी पुनर्विवाहका नाम तक नहीं लिया। नाम नहीं लिया, नहीं लिया; परन्तु वासनात्मक वृत्तियोंकी तृप्तिके प्रचुर साधनोंके रहते हुए भी तपोनिष्ठ अखण्ड नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका जीवन बिताया। यह संसारके महान् आश्चर्योंमें एक महत्तम

* * *

आश्चर्य है, जिसे देखते हीं उस महापुरुषके पावन चरणोंमें मस्तक श्रद्धाभक्तिसे स्वयं झुक जाता है। 'वन्दे महा-पुरुष ते चरणारविन्दम्।'

श्री जुगलकिशोरजीके श्वास-प्रश्वासमें महान् हिन्दू-राष्ट्रके विकास और विजयका संकल्प था। सोमनाथके मन्दिरके पुनर्निर्माणसे उन्हें जो प्रसन्नता हुई थी, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। म्लेच्छों द्वारा हिन्दू-मन्दिरों और देवस्थानोंकी पवित्रता भंग किए जानेका उन्हें घोर दुःख था और इस कलंकको मिटानेका उन्होंने जो शतशत प्रयास किया, वह भारतीय-संस्कृतिके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें अंकित होने योग्य है। 'आर्य' शब्द उन्हें विशेष प्रिय था और समस्त सद्‌गुणों, सदाचारों और सद्‌भावोंके प्रतीक रूपमें ही वे 'आर्य' शब्दको ग्रहण करते थे। देशके भिन्न-भिन्न प्रमुख नगरोंमें उन्होंने मन्दिरों और धर्मशालाओंके द्वारा एक नयी ज्योति, नया जीवन और नये संकल्पका संचार किया। उनके समक्ष आर्य शब्द अपनी विशाल व्यापक गरिमामें व्यक्त हुआ; जिसमें समस्त भारतीय प्राचीन इतिहास और संस्कृति मुखरित थी और जिसमें बौद्ध, जैन, सिख आदि सभी एक सूत्रमें आबद्ध थे और इसीलिए उनके द्वारा निर्मित मन्दिरों और धर्मशालाओंकी स्थापत्यकलामें हमारी दिव्य संस्कृति अपने पूर्णतम सौन्दर्य और समन्वयमें अवतरित हुई है। बड़ी ही व्यापक और समन्वयात्मक थी उनकी दृष्टि। मन्दिरोंके निर्माणमें उनकी सौन्दर्य-भावना, जिसमें पवित्रता, सुरुचि, स्वच्छता, विवशता तथा मंगलमयता सन्निहित है; प्रकट हुई है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके केन्द्रमें अवस्थित विश्वनाथ मन्दिरका स्वर्णकलश कुतुवमीनारसे भी ऊँचा है – इसके पीछे पूज्य मालवीयजी और श्रीमन्त सेठ बिरलाजीका उदात्त संकल्प ही चरितार्थ हुआ है। प्राचीन मन्दिरोंके जीर्णोद्धार तथा नये मन्दिरोंके निर्माणमें उन्होंने अहिल्याबाई के समान ही परम उदात्त मिशनरी भावनासे प्रेरणा पायी थी। उनके द्वारा निर्मित मन्दिरोंमें शिव-पार्वती सीताराम, भगवान् श्रीकृष्णके साथ भगवान् बुद्धकी मूर्ति भी विद्यमान है और आदर्शवाक्योंमें गुरुनानक, भगवान् महावीर, भगवान् बुद्धके भी वचन अंकित हैं—सन्तोंमें निर्गुणिये कबीर, दादू, रैदास, सुन्दरदासके साथ मीराँ, दया, सहजो, सूर, तुलसी, रसखान आदिके पद भी अंकित हैं। कितनी विशद, उदार और प्रशस्त थी उनकी दृष्टि; कितना महान् और उदात्त था उनका संकल्प; कितना सरल, निश्छल और साधु था उनका तपोमय जीवन। अपने पर कठोर अंकुश, दूसरोंके प्रति अतिशय उदार। संक्षेपमें कहना चाहें तो कह सकते हैं कि स्वर्गीय जुगलकिशोरजी भारतीय-संस्कृतिके समस्त उदात्त तत्वोंकी जीवन्त प्रतिमा थे और उनके व्यक्तित्वमें भारतीय-संस्कृति, साधना और जीवन साकार हुए। हिन्दू-राष्ट्रके तो वे मानो सूर्य ही थे। काशी, मथुरा, अयोध्या, हरिद्वार, प्रयाग, बदरीनारायण जहाँ जाइये, वहीं जुगलकिशोरजी मिलेंगे: क्योंकि उनका यशः–शरीर अमर है।

जयन्ति ते सुकृतिनो सेवा धर्मसमाहिताः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्॥

●

* * *

डॉक्टर हरिदत्त शास्त्री

विष्णु-सायुज्य-प्राप्त श्री बिरलाजी

⊙ ⊙ ⊙

स जयति गोकुल सदनः, सरसिज वदनः शिशुर्घनश्यामः।
पद-नख-रुचि जितमदनः कृत खल कदनः कृपाजलधिः॥

"वत्स, भक्ति और मुक्ति - इन दोमेंसे तुम्हें क्या अभीष्ट है?" भगवान् द्वारा यह पूछे जाने पर भक्तबालक विष्णु स्वामीने[1] कहा : "प्रभो, मुझे भक्ति चाहिए; मुक्ति नहीं।" उनके इस भक्तिवरण-निर्णयके विषयमें 'भक्तिनिर्णय' ग्रन्थमें लिखा है कि :

सैव प्रौढा विरक्तिः सुचरित रचना सम्प्रयुक्तिः प्रसिद्धा,
सैवान्तः संशयादि क्षयकृदुपनिषत्तत्वविद्या प्रसक्तिः।
बोधव्यक्तिश्च सैव प्रकटित परमानन्द सर्वस्वमुक्तिः,
सैवाद्वैता च मुक्तिः कथमपि कमला कामुके या तु भक्तिः॥

भक्ति शब्दका अर्थ केवल सेवा करना मात्र नहीं। यदि कहा जाय कि 'भज्' धातुका अर्थ श्रवणमननादि सहित सेवा विशेष है, तो ऐसा माननेपर धात्वर्थमें कल्पना-गौरवकी आपत्ति होगी। अतः ऐहिक या आमुष्मिक वस्तुओंमें वैराग्यपूर्वक भजनीय इष्टदेवमें मनोवृत्तिका लगाना ही 'भक्ति' है। वस्तुतः भक्ति ही मुक्तिका द्वार है। नवधा या एकादशधा भेदयुक्त भक्तिकी भाँति है। मुक्तिके भी एकधा या चतुर्धा भेद हैं। एकधावादी जगद्गुरु शंकराचार्य हैं तथा चातुर्विध्यवादी वैष्णव वेदान्त-सम्प्रदायके प्रवर्तक विभिन्न आचार्य हैं। आचार्य रामानुज ईश्वर, जीव और प्रकृति - इन तीन तत्वोंकी नित्य सत्ता मानते हैं। इसलिए उनके मतको 'विशिष्टाद्वैत' कहा जाता है, जिसके अनुसार विशिष्ट या अचिद्विशिष्ट ब्रह्मतत्वका अभेद स्वीकार किया गया है: **"विशिष्टयोरद्वैतं विशिष्टाद्वैतम्"**।

द्वैताद्वैत मतके प्रवर्तक वैष्णव दार्शनिक निम्बार्काचार्यके मतसे "जीवमें भोक्तृत्व ही रहता है, नियन्तृत्व नहीं और ईश्वरमें केवल नियन्तृत्व ही है भोक्तृत्व नहीं; प्रकृति भोग्य ही है, यह तत्वत्रय नित्य है।" द्वैताद्वैतका अर्थ धर्म-धर्मीका भेदाभेद है, उसी प्रकार है : जैसे सूर्य प्रकाशसे अभिन्न है, प्रकाशस्वरूप है तथा प्रकाशाश्रय

---

१. पुष्टिमार्गके आद्य आचार्य।

* * *

होनेसे भिन्न भी है। द्वैताद्वैत सम्प्रदायमें भोग्य तत्व (अचित्) तीन प्रकारका है : प्राकृत, अप्राकृत और काल। सांख्य शास्त्रोक्त चौबीस तत्व प्राकृत हैं। भगवान्के मुखमण्डलके चारों ओर बना तेजोमण्डल, भगवान्का लोक और उनके शंख आदि अलंकार अप्राकृत हैं; काल भी एक पृथक् अचित् पदार्थ है। नियन्ता भगवान्के चार व्यूह हैं : वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। मोक्षका मार्ग प्रपत्ति या शरणागति है।

पुष्टिमार्गका मत है कि जगत्में सद्रूप है, जीवमें सद् और चैतन्य रूप है, ब्रह्ममें सत्, चित्, आनन्द तीनों रूप हैं। आर्यसमाजके प्रवर्तक ऋषि दयानन्दजी भी यही तत्वत्रय मानते हैं; किन्तु ब्रह्मके तीनों धर्मोंमेंसे एक-एकका तिरोभाव होता जाता है : यह नहीं मानते। सम्भवतः मथुरामें रहनेके कारण और गुजराती ब्राह्मण होनेके कारण उन पर यह प्रभाव पड़ा हो। श्री वल्लभाचार्य शुद्धाद्वैतवादी हैं। इनके मतसे ज्ञान और कर्म दोनों ही मोक्षके साधन हैं। इसका भी समर्थन ऋषि दयानन्द करते हैं। आचार्य वल्लभका पुष्टिमार्ग विष्णुस्वामीकी परम्परामें है। "कृष्ण! तवास्मि" इस पंचाक्षरी मन्त्रकी दीक्षा स्वयं भगवान् कृष्णने वल्लभाचार्यको दी थी। पुष्टिमार्गके अनुसार विष्णु या कृष्णका दर्शन ही मुक्ति है। उनके ही साथ वैकुण्ठमें निवास करना 'सालोक्य' मुक्ति है, उनके पार्षद् बनकर उनकी सेवा करना 'सामीप्य' मुक्ति है। भगवान्का विग्रहका धारण करना, उनके गुणोंको अपनाना 'सारूप्य' मुक्ति है और जिसके बिना भगवान्को चैन न पड़े, जिसका ध्यान वे भी रखें, ऐसा भक्त सायुज्य-मुक्ति-प्राप्त कहलाता है। समान ऐश्वर्य प्राप्त करना 'सार्ष्टि' मुक्ति है। ऋग्वेदके :

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया,
समानं वृक्षं परिषस्वजाते॥

मन्त्रमें सयुजा शब्द 'सायुज्य-मुक्ति' की ओर संकेत कर रहा है। किन्तु 'सायुज्य'का अर्थ ऐक्य नहीं है। क्योंकि श्री वेंकटनाथाचार्यने 'तत्वमुक्ताकलाप'में लिखा है कि :

सालोक्यादि प्रभेदाः ननु परिपठिताः क्वापि मोक्षस्य नैवम्।
सायुज्यस्यैव तत्वात्तदितर विषये मुक्ति शब्दस्तु भाक्तः॥
तस्मिंस्तेऽपि त्रयः स्युस्तदपि च सयुजोर्भाव इत्यैक रस्यम्।
युक्साम्यं लोकसाम्यादिवदपरधियां तावतैक्यमोहः॥

—तत्वमुक्ताकलाप २।६७

अर्थात् उक्त पाँचों प्रकारकी मुक्तियोंमें सायुज्य ही मुक्तिका वास्तविक रूप है। अन्य चार तो साम्य मात्रसे गौण रूप हैं। यहाँ यह भी जानना चाहिए कि 'सयुक' शब्द एकत्ववाचक नहीं है। श्रीमद्भागवतके :

सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्यैकत्वमायुत।
दीयमानं न गृह्णन्ति बिना मत्सेवनं जनाः॥

—श्रीमद्भागवत ३।२९।१३

इस श्लोककी टीका करते हुए श्रीधर स्वामीने 'एकत्व' पदसे सायुज्य भक्तिका ही ग्रहण किया है तथा 'सार्ष्टि' भेदको मिलाकर उन्होंने मुक्तिके पाँच भेद माने हैं। पर मेरी समझमें यहाँ भी 'एकत्व' पदकी एक-

रूपता अर्थात् भगवत् साम्य मानना चाहिए। एवं 'सार्ष्टि' पद सह आसम तत्र ऋष्टिः 'सृष्टिः' भोगेश्वैर्याणां यत्र सा मुक्तिः, समोक्षो वा सार्ष्टिः' इस प्रकार विग्रह करके समानैश्वर्यवाचक मानना चाहिए। इस तरह सार्ष्टि पद भी सायुज्य परक माना जा सकता है। क्योंकि मुक्तिके चार भेद ही अधिक प्रसिद्ध हैं, पाँच नहीं। शास्त्रानुसार जो व्यक्ति मन्दिर-निर्माण कार्य कराता है, वह निष्पाप बन जाता है :

देवागारं करोमीति मनसायस्तु चिन्तयेत्,
तस्यकायगतं पापं तदह्ना विप्र नश्यति।
कृतेनु किं पुनस्तस्य प्रासादे विधिमैवतु।

—श्रीहयशीर्ष पांचरात्र

और जो जीर्णमन्दिरका उद्धार कराता है, वह विष्णु-सायुज्य प्राप्त करता हैं।

पतितस्य च यः कर्ता पतमानस्य रक्षिता,
विष्णोरायतनस्येह स नरो विष्णु लोकभाक्।

—श्री विष्णु रहस्यम्

भवेद् बहुविधं तस्य वेश्म तत्र स्वशक्तितः।
शास्त्रानुसारतः कुर्यादेवं वासोचितं प्रभोः॥

—श्री हरिभक्तिविलास

उक्त शास्त्र प्रमाणानुसार यह असन्दिग्ध है कि स्वर्गीय श्री जुगलकिशोरजी बिरला निष्पाप, निष्कलंक भगवद्भक्त थे। मन्दिरोंका निर्माण करवाकर, प्राचीन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार करवाकर उन्होंने मानव-जीवनका लक्ष्य सायुज्य-पद प्राप्त किया।

व्रताचरणसे मनुष्यको दीक्षा – उन्नत-जीवनकी योग्यता प्राप्त होती है। दीक्षासे दक्षिणा – प्रयत्नकी सफलता प्राप्त होती है। दक्षिणासे अपने जीवनके आदर्शों तथा लक्ष्य पर श्रद्धा प्राप्त होती है और श्रद्धासे सत्य – जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त होता है।

* * *

श्रीप्रकाशवीर शास्त्री

पद्मपत्रमिवाम्भसा

⊙ ⊙ ⊙

राज तो अपना हो गया। शासन सम्हालनेवालोंमें हिन्दुओंकी संख्या भी अधिक है। पर हिन्दू-राज नहीं बन सका। यह थे वह शब्द, जो मृत्युसे कुछ दिन पूर्व श्री जुगलकिशोर बिरलाने बड़े भरे हुए मनसे कहे। उनका गला कहते-कहते रुँध-सा गया। बोले : बस, यही एक इच्छा जीवन में रह गई, अब तो आप लोग ही इसे देखें। हिन्दू-सभ्यता और संस्कृतिको कैसे व्यापक बनाया जाय? इन्हीं बातोंको सोचनेमें उनके जीवनका एक-एक क्षण व्यतीत होता था। हिन्दुओंको कहीं चोट लगनेकी बात सुनते तो तिलमिला उठते। लेकिन उनकी उन्नतिकी बात और अभ्युदयके समाचार सुनते, तो फूले न समाते। एक बार इण्डोनेशियासे एक पत्र उनके पास आया, जिसमें लिखा था कि पचास हजार लोगोंने हिन्दू-धर्मकी दीक्षा ली है। उनसे जो भी मिलने जाता, झट उसे वह पढ़कर सुनाते और कहते इसी गतिसे हिन्दू-धर्मके प्रचारका काम चलना चाहिए।

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयकी छाप उनके विचारों और जीवनमें स्पष्ट दृष्टिगोचर होती थी। मालवीयजी जिस तरह हिन्दू मात्रको एक झण्डेके नीचे खड़ा करना चाहते थे, वही कल्पना बाबू जुगलकिशोर-जीकी भी थी। दिल्लीके श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिरका निर्माण भी उन्होंने इसी भावनासे कराया है। मन्दिरके पिछले भागमें उन वीर पुरुषोंकी प्रस्तर प्रतिमाएँ हैं, जिन्होंने देश और धर्मके लिए अपना बलिदान किया। श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिरके पास भगवान् बुद्धका भी एक अच्छा मन्दिर बना है। मन्दिरमें जैन तीर्थंकरों, साधु-सन्तों आदिके आदर्श वाक्य भी इसी दृष्टिसे उन्होंने लिखवाये। बौद्ध-धर्मका प्रारम्भ भारतसे ही हुआ। विश्वके कई देशोंमें आज उसका प्रसार है। बुद्ध-मतके अनुयायी भारतको अपने मतका उद्गम स्थान मानते हैं। श्री जुगलकिशोर बिरला इस ओर भी पर्याप्त प्रयत्नशील थे कि किसी तरह वह भी अपनेको हिन्दू-धर्मका ही एक अभिन्न अंग मानें और जो इस शृंखलामें कहीं कमजोरी आ गई है, उसे मजबूत बनाया जाय। इसके लिए विदेशोंमें उन्होंने कुछ अच्छे विद्वान् और प्रचारक भी भेजे। अर्थ-सम्पन्न व्यक्तियोंमें प्रायः ऐसे भाव कम देखे जाते हैं। परन्तु वह उसका अपवाद थे। कुछ दिन पहले उन्हें कहींसे पता चला कि अण्डमान-निकोबारमें कोई हिन्दू-मन्दिर नहीं है। इसीसे वहाँ ईसाई लोग अपना भ्रम-जाल आसानीसे फैला रहे हैं। बस, फिर क्या था; उन्होंने तत्काल वहाँ मन्दिर बनवानेके लिए उस समयके पुनर्वास-मन्त्री श्री महावीर त्यागीको लिखा। नेफा और नागालैण्ड आदि सीमावर्ती क्षेत्रोंमें भी वह कुछ निष्ठावान् प्रचारकोंको भेजनेकी बात व्यापक स्तर पर सोच रहे थे। इस ओर कुछ काम बढ़ा भी।

भारतमें उन्होंने अपनी ओरसे जो भी धर्म मन्दिर बनवाए हैं, उनका पृथक् ही आकार-प्रकार है। उनकी बनावट देखकर ही आसानीसे यह समझा जा सकता है कि इनमें सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाका धन लगा है।

* * *

अंग्रेजोंके समय भोपाल और हैदराबाद यह दो ऐसे केन्द्र थे, जहाँ हिन्दुओंको उनके अपने धार्मिक कृत्योंके निर्वाहमें पर्याप्त बाधा उपस्थित की जाती थी। पर उन दोनों राज्योंके भारतमें विलय होनेके बाद स्थिति कुछ बदली। बस फिर क्या था, उन्होंने दोनों ही नगरोंमें सबसे ऊँचे स्थानों पर अच्छे भव्य मन्दिरोंका निर्माण करानेका संकल्प ठाना। भोपालमें तो वह बनकर तैयार भी हो गया। 'हैदराबादमें भी भोपालकी तरह ही एक ऊँची पहाड़ी पर ऐसा ही एक मन्दिर बनाने वह जा रहे थे। भारतमें किसी एक व्यक्तिने, जिसने इतने बड़े पैमाने पर धर्म-मन्दिरोंका जाल फैलाया हो; वह जुगलकिशोरजी ही थे।

अयोध्यामें मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजीके जन्मस्थानको बाबरने मस्जिदके रूपमें बदल दिया था। परन्तु कुछ दिन पूर्व वहाँ फिर कुछ भक्तोंके प्रयाससे मूर्तिकी स्थापना हो गई। उन्हें इस समाचारसे जहाँ सन्तोष मिला, वहाँ मथुराके श्रीकृष्ण-जन्मस्थान पर औरंगजेब द्वारा निर्मित मस्जिदको देखकर वह दुखी भी होते रहते थे। कई बार कहते थे : वह कौनसा दिन आयेगा, जब यह ऐतिहासिक धर्मस्थान उसके ही अपने अनुयायियोंके हाथमें होगा ?

दान देनेमें भी उनकी अपनी ख्याति देशमें अद्वितीय थी। परन्तु दान देनेसे पूर्व पात्र-कुपात्रकी जाँच वह अवश्य करना चाहते थे। उपयोगी काममें कभी उन्होंने हाथ नहीं खींचा। पर कभी-कभी कुछ लोग उनकी दानवीरताका अनुचित लाभ भी उठा लेते थे। इतिहास मध्ययुगमें इस अपने ढंगके अद्भुत दाताको कभी नहीं भुला सकेगा। दिल्लीका बिरला-भवन, जहाँ पीछे कुछ समय तक राजनीतिक गतिविधियोंका केन्द्र रहा, वहाँ श्री जुगलकिशोर बिरलाका निवास-स्थान होनेसे वह साँस्कृतिक गतिविधियोंका भी केन्द्र रहा। लक्ष्मीपुत्र होते हुए भी उन्होंने जलमें कमलकी तरह रहकर सदा धार्मिक और सामाजिक कार्योंमें ही रुचि ली। श्वेत वस्त्र-धारी यह साधु देर तक देशके इतिहासमें अमर रहेगा।

निरन्तर चिन्तन-मनन द्वारा अन्तिम सत्य तक पहुँचना हिन्दू-धर्मका प्रधान उद्देश्य है। यद्यपि अन्य धर्म भी अपने अनुयायियोंको सत्यकी खोज करनेकी शिक्षा देते हैं, किन्तु वे अन्य धर्मोंकी तर्कविहीनताको दिखाते हैं, अपनेको ही श्रेष्ठ कहकर दूसरे धर्मोंको हीन बताते हैं। इसलिए वे धर्म अन्धविश्वास और अन्धश्रद्धाके घेरेमें बँध जाते हैं। 'धर्मस्य गहना गतिः' कहकर हमारे आचार्यों ने बताया है कि 'धर्मको केवल वही जान सकता है, जिसने विचार और तर्क द्वारा उसका अध्ययन किया है।'

आर्य (हिन्दू धर्म) की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह हर कथनको पहले सत्यकी कसौटी पर कसता है, तदनन्तर कहता है :

'सत्यान्नास्ति परोधर्मः।'

* * *

श्रीहरदयाल देवगुण

हिन्दू-समाजके भविष्य-निर्माता

⊙ ⊙ ⊙

स्वर्गीय सेठ जुगलकिशोरजी विरलासे मुझे केवल दो बार मिलने और विचार-विनिमय करनेका अवसर मिला था। इस अल्प-परिचयमें ही मैंने अनुभव किया कि वे केवल उद्योगपति ही, नहीं अपितु एक हिन्दुत्वाभिमानी और अपने धर्म तथा संस्कृतिकी सेवामें समर्पित व्यक्ति भी थे। मुझे प्रतीत हुआ कि सम्भवतः धनार्जन करनेमें उनकी इतनी रुचि नहीं थी, जितनी इस वातमें थी कि हिन्दू-समाज संगठित हो, शक्तिशाली वने और खोये हुए गौरवको पुनः प्राप्त करे। उनका तन, मन, धन इसी ध्येयकी साधनामें समर्पित था। वे कट्टर राष्ट्रवादी हिन्दू थे। उनकी धारणा थी कि वर्तमान भारतको हिन्दू-राष्ट्र मानकर हिन्दू-धर्मको इसका राज्य-धर्म घोषित करना चाहिए। वीर सावरकर तथा डॉक्टर हैडगेवारकी भाँति वे सनातनी, आर्यसमाजी, जैनी, वौद्ध और सिखोंको हिन्दू-समाजका ही अंग मानते थे और इसलिए इन सबको हिन्दुत्वकी लड़ीमें गुम्फित देखना चाहते थे। हिन्दू-समाजको संगठित करनेके उद्देश्यसे कार्य करने वालोकों उनका उदार समर्थन सदैव प्राप्त रहा। वे राजनीतिमें सक्रिय भाग नहीं लेते थे, परन्तु धार्मिक तथा साँस्कृतिक क्षेत्रमें सदैव अग्रणी रहे। गत पचास वर्षमें हिन्दुओंका शायद ही कोई ऐसा धार्मिक, सामाजिक तथा साँस्कृतिक प्रयास हो, जिसमें विरला-परिवार और विशेषकर स्वर्गीय श्री जुगलकिशोरजी विरलाका प्रमुख योगदान न रहा हो। देशके प्राचीन धर्मस्थानोंका जीर्णोद्धार, आदर्श धर्मसंस्थानोंका निर्माण, शिक्षा-केन्द्रोंकी स्थापना, अछूतोद्धार, शुद्धि, संगठन तथा धर्म-प्रचार उनकी अपूर्व तथा निःस्वार्थ हिन्दुत्व-सेवाके जीते-जागते उदाहरण हैं।

सिक्ख तथा सिक्खेतर हिन्दुओंमें वैमनस्य दिखाई देने पर उनका हृदय व्यथित हो उठता था और यदि कोई हिन्दू दबाव या प्रलोभनसे विधर्मी बन जाता, तब तो उनकी उद्विग्नताकी सीमा ही नहीं रहती थी। वन-वासियों तथा दलित जातियोंको ईसाई मिशनरियोंके चंगुलसे वचानेके लिये उन्होंने 'अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघ' स्थापित किया और विदेशियों तथा बच्चोंको हिन्दुत्वके वास्तविक स्वरूपका बोध करानेके लिए विशेष पुस्तकें तैयार करायीं। ऐसे सुन्दर, भव्य तथा आकर्षक मन्दिर खड़े किये, जिनमें जाने पर केवल हिन्दुओंमें ही धर्मके प्रति श्रद्धा नहीं बढ़ती, प्रत्युत विदेशी भी हिन्दुत्वसे प्रभावित हुए विना नहीं रहते। जहाँ उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि हिन्दू अपने धर्म और संस्कृतिके वास्तविक रूपको पहचानें और उसके अनुरूप आचरण बनाएँ, वहाँ वे इस धर्म और संस्कृतिसे पूरे संसारको प्रभावित करनेकी महत्वाकांक्षा भी रखते थे। हिन्दुओंको एक साझे मंच पर खड़ा करने तथा संसार-भरमें हिन्दू-धर्मकी महानताका शंखनाद करनेके उद्देश्यसे उन्होंने अनेक बार विश्व हिन्दू सम्मेलनोंके आयोजनके लिए प्रेरणा दी अथवा सक्रिय योगदान दिया। इन सम्मेलनोंमें जहाँ संसारके अनेक भागोंमें बिखरे हिन्दुओंमें बन्धुत्वकी भावनाका निर्माण हुआ, वहाँ दक्षिण-

* * *

पूर्व एशियाके बौद्धोंके साथ भारतीय हिन्दुओंकी घनिष्ठता भी बढ़ी। उनकी यह महती आकांक्षा थी कि भारतके हिन्दुओं और एशियाके बौद्धोंका संसारमें एक शक्तिशाली संगठन स्थापित हो।

हिन्दुओंके भविष्यकी उन्हें कितनी चिन्ता थी, इसका गहरा आभास भी मुझे अपनी दो संक्षिप्त मुलाकातोंमें ही हो गया। १९६१की जनगणनाके आँकड़ोंसे जब यह पता चला कि हिन्दुओंकी अपेक्षा इतर धर्मावलम्बियोंकी संख्या-वृद्धि अनुपाततः अधिक हुई है, तो वे चिन्तित हुए। इसी कारण वे परिवार-नियोजनके भी विरुद्ध थे। उनका कहना था कि परिवार-नियोजनका प्रभाव केवल हिन्दुओं पर होगा, इतर धर्मावलम्बियों पर नहीं। इस विषयका स्पष्टीकरण करते हुए वे चेतावनी दिया करते थे कि "यदि यही दशा रही, तो सौ-दो-सौ वर्षोंमें हिन्दू अपने देशमें अल्पसंख्यक हो जाएँगे और भारतीयता नष्ट हो जाएगी।" मैं समझता हूँ कि उनकी यह चेतावनी निराधार नहीं थी।

मुझे दुःख है कि हिन्दुत्वका इतना बड़ा सेवक आज हमारे बीचमें नहीं है। आशा है, बिरला-परिवारका कोई महानुभाव उनका स्थान लेगा।

मेरे लिए तो केवल एक धर्म है। वह है हिन्दू-धर्म। मैं अपनेको हिन्दू कहलाकर अभिमान करता हूँ। मैं हिन्दू-धर्मको जिस प्रकार समझता हूँ, तदनुसार वह अत्यन्त व्यापक है। उसमें अन्य धर्मोंके लिए समभाव है, आदर है।

—राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी
[सितम्बर १९२०, शान्ति-निकेतनमें व्यक्त किए गए उद्‌गार]

* * *

श्रीमन्मथकुमार, विधिविशेषज्ञ

सन्तमना बड़े बाबू

⊙ ⊙ ⊙

पञ्चतन्त्रके भाग्यवादी नीतिकारने कहा है: 'सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति'। भौतिक सम्पन्नताको अति महत्व देनेवाली यह सूत्र-सूक्ति अद्वैत-वेदनाके प्रवर्तक आद्य शंकराचार्यको अर्थहीन प्रतीत हुई और उन्होंने "अर्थमनर्थं भावय नित्यम्"के उद्घोषसे अर्थप्रधान-जीवनकी निस्सारता सिद्ध करनेके लिए तत्व-विवेचनका सहारा लिया। इन परस्पर विरोधी विचारधाराओंका समन्वित प्रवाह बड़े बाबूके विमल जीवनकी भूमिका है। मानवीय सभ्यताको समृद्ध और सम्पन्न बनानेमें समाजमें अर्थनीतिका निस्सन्देह महत्व है। इस ज्वलन्त तथ्यसे इनकार नहीं किया जा सकता। पुरुषार्थ-चतुष्टयका एक लक्ष्य अर्थसाधनोंका अवलम्बन भी माना गया है। प्राचीन भारतीय साहित्यमें धनके गुण-दोषोंका विवेचन बड़ी रोचक शैलीमें किया गया है और यह विवेचन अर्थशून्य अथवा भ्रान्तिमूलक नहीं है। दिवंगत श्री जुगलकिशोरजीने असीम अर्थ-साधनोंके नियोजक होते हुए भी आचरण संहिताके स्वर्ण सूत्रोंसे अर्थ-शब्दको सार्थक बनाया और विशाल मानव-परिवारको आत्म-सञ्चित सम्पत्तिका अधिकारी समझकर गान्धी द्वारा निर्देशित सार्वजनिक सम्पदाका अपने-आपको न्यासी मान-कर ही सन्तोष किया। अर्थनीतिको कभी उन्होंने धर्मनीति पर हावी नहीं होने दिया। यह एक असाधारण उपलब्धि है; जो एकान्त साधना, गम्भीर चिन्तन और गहरी निष्ठाके लोकोत्तर मार्गसे ही सम्भव है।

भारतीय-संस्कृति और हिन्दू-दर्शनके प्रति उनकी श्रद्धा और आस्था एक विनम्र सेवक और व्रतधारीके रूपमें व्यक्त हुई। संस्कृति-प्रसारमें उनका योगदान प्राचीन इतिहासके किसी भी चक्रवर्ती राजनेतासे कम नहीं आँका जा सकता। बड़े बाबूके जीवन-प्रासादका सर्वोच्च शिखर विशाल हिन्दुत्वकी कल्पना है। उनका विशाल हिन्दुत्व सार्वभौम मानवताका दूसरा नाम है। मानव-मात्रके प्रति उनका करुणामय स्नेह और सद्-भावनाका अखण्ड स्रोत उनको इतिहासके स्वर्ण पृष्ठोंमें अधिष्ठित कर देता है। उनके विचार, विश्वास और व्यवहारमें हिन्दू शब्द किसी संकीर्ण जातीयता, सम्प्रदाय अथवा वर्गका बोधक नहीं; प्रत्युत वृहत्तर मानव-परि-वारके सुसंस्कृत और विकसित स्वरूपका ज्योतित प्रतीक है। बुद्ध और अशोकके पदचिह्नोंपर अनुगमन करने वाले बड़े बाबूके जीवनका व्रत (मिशन) था : 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'! मानव-धर्मके चक्रका प्रवर्तन जुगल-किशोरजीने विविध प्रवृत्तियोंके माध्यमसे किया। उनका सन्देश दूरगामी, व्यापक और प्रभावशील सिद्ध हुआ। संस्था-संगठन, साहित्य-प्रकाशन, साँस्कृतिक प्रतिनिधित्वका संयोजन, भारत-स्थित विदेशी राजदूता-लयोंमें अधिकारी विद्वानोंको भेजकर मौलिक और मानवता-प्रतिपादक हिन्दुत्वके सिद्धान्तोंका सम्यक् प्रचार आदि विविध माध्यमोंसे बड़े बाबूने कितना रचनात्मक कार्य किया; उसका सही अनुमान कर लेना कठिन है। इस महान् अभियानके मूलमें साध्य क्या था? भारतीय-संस्कृतिके प्रसार द्वारा विश्व-बन्धुत्वका जागरण।

 * * *

हिन्दू-संस्कृतिके सर्वश्रेष्ठ तत्वोंसे पथ-विमुख मानवताको वे सन्मार्ग पर लाकर अनुप्राणित करना चाहते थे। वे स्वयं आर्य-संस्कृतिके मूल तत्वोंसे प्रेरित थे।

उसके वास्तविक स्वरूप और रहस्यको उन्होंने जीवनमें उतारकर परख लिया था। इसलिए अपने सुदीर्घ जीवनमें उस पथसे कभी विचलित नहीं हुए। हिन्दू अथवा भारतीय-संस्कृतिको विश्व-संस्कृतिमें रूपान्तरित करनेका वह स्वर्णिम स्वप्न बड़े बाबू जैसे देशभक्तके अन्तरमें ही आश्रय पा सकता था। पिछले पचास वर्षोंमें उन्होंने हिन्दू-समाजके अन्तर विग्रहको समाप्त करनेका जो कठोर प्रयास किया, वह कितना महिमामय है। उनकी कल्पना मात्रसे प्रेरणा और उद्बोधनके मधुस्रोत प्रवाहित होने लगते हैं। सत्तापहरणकी राजनीति जिस घृणित रूपमें आज राष्ट्रके कलेवरको जर्जरित करती जा रही है, उससे तो केवल विषाक्त वातावरण, नग्न अवसरवाद और सिद्धान्तहीनताकी काली छाया भारतके विमुक्त आकाश पर पड़ती नज़र आ रही है। यद्यपि बड़े बाबूने राजनीतिसे अपने-आपको सदैव पृथक् रखा, किन्तु समय-साधक और मौका-परस्त राजनयिकोंकी मनोवृत्तिकी वे सदैव भर्त्सना करते रहे। सामाजिक और राजनीतिक प्रवृत्तियोंको उन्होंने सदैव साधन मानकर व्यवहार किया। उनकी प्रतिभा देशभक्त और संस्कृतिनिष्ठ धनवानोंको अपने मिशनकी ओर आकर्षित करनेमें एक बहुत बड़ी सीमा तक सफल हुई है। अपने व्यक्तिगत आचरण और उदाहरणसे आजीवन उन्होंने यह सिद्ध करनेका प्रयास किया कि एक सच्चा साधक किसी भी जाति, सम्प्रदाय और वर्गके प्रति द्वेष और तिरस्कारकी भावना नहीं रखता। उनके हृदयकी वेदना समाजमें विभेद उत्पन्न करनेवाली प्रवृत्तियोंसे असह्य हो उठती और इन विघटनकारी तत्वोंको उन्मूलित करनेके लिए ही उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी थी। इस प्रयत्नको बल देनेके लिए उन्होंने अखिल भारतीय स्तरके एक लोक-सेवा संगठनकी स्थापना की, जो अखिल भारतीय-हिन्दू-आर्य-सेवासंघके नामसे प्रसिद्ध है। यह संस्था पिछले २५ वर्षोंसे कार्यरत है। इस विशाल संगठनकी धाराएँ भारतसे प्रवाहित होकर जापान और सुदूर दक्षिण-पूर्वी एशियाके हिन्दू-संस्कृति प्रभावित उन सभी प्रदेशोंमें अपने कार्य-कलापका प्रसारण करती हैं, जहाँ भारतकी प्राचीन संस्कृतिके अवशेष आज भी दर्शनीय रूपमें विद्यमान हैं और उस स्वर्णिम युगकी आभा बिखेरते हैं, जब राजकुमार महेन्द्र और राजकुमारी संघमित्राने अपने 'देवानामप्रिय' जनक अशोकके सन्देशवाहक बनकर धर्मचक्रके प्रवर्तनमें अपने-अपने जीवनको सर्वात्मना समर्पित कर दिया था।

कानपुरमें सन् १९४२-४३में हिन्दू-महासभाके मंचसे बोलते हुए उन्होंने हिन्दू-धर्मकी जो हृदयग्राही व्याख्या की, वह मानवताके अटूट प्रेमसे ओतप्रोत थी। उस व्याख्यामें एक मौलिक विचार-क्रान्तिके बीज विद्यमान हैं। और इस विचार-क्रान्तिके लिए वे राजनीतिज्ञोंका निरन्तर आवाहन करते रहे। राम, कृष्ण, गौतम बुद्ध, तीर्थंकर महावीर, भगवान् शंकराचार्य, गुरुनानककी जन्मभूमि और लीला-भूमिमें स्वतन्त्रता और सुख-साधनोंका उपभोग करनेवाले इस देशके नागरिक इन महापुरुषोंके प्रति श्रद्धा और सम्मानकी भावना न रखें तो यह भारतीयता और राष्ट्रीयताका नंगा उपहास और भारतीय-संस्कृतिकी परिसमाप्ति नहीं तो और क्या है? बड़े बाबूकी मान्यता थी कि भारतकी पावन मिट्टीसे पलनेवालोंको इस महान् देशकी साँस्कृतिक धरोहरके प्रति विद्रोहकी भावना रखनेका रंचमात्र भी अधिकार नहीं है और यदि कुछ भ्रान्त देशवासी राजमदसे उन्मत्त होकर इस संस्कृति-उन्मूलक विद्रोहको प्रोत्साहन देते हैं, तो वे सर्वथा उपेक्षणीय हैं। सार्वभौम मानवका साम्राज्य, विश्व-मानवकी कल्पना और सर्वसम्मत आचार-संहिताका मधुर स्वप्न तभी साकार होगा, जब भारतकी आर्य-संस्कृति द्वारा प्रतिपादित विश्व-बन्धुत्वके सिद्धान्तोंको मानव-कल्याणके लिए सभी राष्ट्र और वर्ग लोक-सद्भावना, विवेक और सहृदयताके साथ अपनाएँ। इस पुनीत लक्ष्यकी सिद्धिके लिए उन्होंने

* * *

दक्षिण-पूर्वी एशियाके अनेक बौद्ध देशोंमें संस्कृति-प्रसारणके लिए विद्वानों और धर्म-प्रचारकोंको प्रेरित किया।

वड़े बावूकी कतिपय उल्लेखनीय उपलब्धियोंमें एक महान् सुकृति हैं : सामाजिक उत्थानके साथ-साथ व्यक्तिका उन्नयन। इस दिशामें उन्होंने निरन्तर संगठित प्रयास किया। बंगाल, उत्तर प्रदेश, राजस्थानके अनेक विद्या-विज्ञान केन्द्रों और विश्वविद्यालयोंमें उन्होंने युवकोंके शारीरिक गठन और व्यायाम-सम्बन्धी प्रवृत्तियोंको महत्वपूर्ण ढंगसे प्रोत्साहन दिया। दिल्ली और उत्तर प्रदेशके अनेक जिलोंमें आज भी अखाड़ोंके प्रेमी (उस्ताद और शागिर्द) गुरु और शिष्य उन्हें 'बिरला महाराज' के सम्मानपूर्ण सम्बोधनसे याद करते हैं। वाराणसी और कलकत्ताकी सैकड़ों व्यायामशालाओंका इतिहास बड़े बावूकी उदारता और दानशीलताकी ही गौरवगाथा गा रहा है। व्यायाम-प्रतियोगिताओंके विजयी अनेक बंगाली युवक अखिल भारतीय प्रतियोगिताओंमें विजयश्री वरण करनेका श्रेय 'बड़े बावू'की कृपाका प्रसाद मानते हैं। उन्हें बलकी उपासना अत्यन्त प्रिय थी। स्वयं भी नियमपूर्वक आसन, व्यायाम, प्राणायाम और परिभ्रमणके अभ्यासी थे।

शक्तिपूजाको जीवनकी सफलताके लिए अनिवार्य मानकर चलनेवाले युवकोंके लिए वे सदैव मुक्त-हस्त वरदाता सिद्ध हुए। इन पंक्तियोंके लेखकका यह सौभाग्य रहा कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके अपने छात्र-जीवनमें बड़े बावूकी छत्रछाया प्राप्त कर शारीरिक शान्तिके क्षेत्रमें अनेक बार उल्लेखनीय सफलताओंके दर्शन किये। महामना मालवीयजीके सम्पर्कमें जबसे बड़े बावू आये, तबसे लेकर जीवनपर्यन्त "शक्तिशाली राष्ट्रका आधार बलशाली युवक" यह आदर्श उनके मानस-पटल पर अंकित रहा। शक्तिशाली राष्ट्रकी यह कल्पना उनके जीवनमें निरन्तर विकसित होती चली गयी और देशव्यापी अभियानके रूपमें व्यायाम-हेतु और अखाड़ोंकी प्रस्थापनामें ही फलवती होकर सामने आयी। व्यायामको जीवनकी सर्वतोमुखी सफलताका आधारभूत तत्व माननेवाले बड़े बावूको यह मन्त्रदीक्षा महामनासे ही मिली थी। इस सम्बन्धमें मालवीयजी द्वारा रचित एक संस्कृत पद्यका स्मरण हो आता है, जिसे महामना विश्वविद्यालयके छात्र-समाजको उद्बोधित करनेके लिए बार-बार दोहराया करते थे। वह पद्य है :

सत्येन, ब्रह्मचर्येण, व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्यात्मत्यागेन, सम्मानार्होसदा भव॥

बड़े बावू व्यक्तित्वका सम्पूर्ण स्वरूप और उसका चरम विकास एक सुन्दर, स्वस्थ, सुपुष्ट और सुगठित शरीर में ही देखते थे। राजस्थानीमें एक कहावत है : बल बिना बुध बापड़ी (बलके बिना बुद्धि असहाय है), जिसे बड़े बाबू प्रत्येक विद्यार्थीको प्रेरणा देनेके लिए सुनाया करते थे। उनके व्यायाम-प्रेमके अनेक उद्बोधक प्रसंगोंकी चर्चा तो एक स्वतन्त्र लेखका विषय है।

बड़े बावूका व्यक्तित्व निःसन्देह विशाल रहा है, किन्तु उनकी कर्मप्रवीणता तो आजकलकी प्रदर्शन-प्रियतासे, चमक-दमकके मोहसे सर्वथा दूर थी। एक सच्चे कर्मयोगीकी तरह उन्हें विज्ञापन-बाजीसे विरति ही नहीं, नफ़रत थी। उनका पावन यश तो अविनश्वर है, यद्यपि उनका विनश्वर देह भगवती यमुनाके पुनीत तट पर अनन्त विश्राममें विलीन हो गया। धर्मसिद्ध इस महामानवका कीर्तिकलेवर भारत और विश्वके प्रांगणमें विराट् ज्योति-शिखर बनकर क्षय-मरणके भयसे विमुक्त सदैव चमकता रहेगा। महामानवको शत-शत अभिवादन!

●

* * *

श्रीयशपाल जैन

अविस्मरणीय व्यक्तित्व



सामान्यतया धनिकोंके प्रति आमलोगोंकी बड़ी विचित्र-सी धारणा होती है। वे उन्हें कुछ भिन्न वर्गका मानते हैं और उनसे दूरी अनुभव करते हैं। उनके बीच किसी प्रकारका सम्बन्ध न रहता हो, ऐसी बात नहीं। सम्बन्ध तो रहता है, लेकिन उसका आधार मुख्यतः आर्थिक होता है, मानवीय नहीं। इसके कारणोंके विस्तारमें जानेकी आवश्यकता नहीं, पर वस्तुस्थिति यही है। अधिकांशतः देखने में आता है कि पैसेवाला पैसा देता है, पर अपनेको नहीं। उसक हाथ ऊपर रहता है। दूसरी ओर लेनेवाले को लगता है कि उसका हाथ नीचा है और वह हीन है। इस तरह दोनों वर्गोंके बीच एक प्रकारकी खाईं बनी रहती है।

सौभाग्यसे इसमें कुछ अपवाद भी पाये जाते हैं। सेठ जुगलकिशोरजी विरला उन्हीं अपवादोंमेंसे थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने धन कमाया और धनिक वर्गमें उनकी गणना हुई, लेकिन अपने मानवको उन्होंने प्रायः धनके ऊपर रखा। वे ऐसा इसलिए कर सके, क्योंकि वे मूलतः धर्मपरायण व्यक्ति थे। आर्य-संस्कृति पर उनकी अटूट श्रद्धा थी। उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया था कि इस सर्वहितकारी संस्कृतिका उद्गम धन नहीं, मानव-धर्म है। तभी तो उनके सामने सदा मानवका कल्याण रहा और वे इस बातके निरन्तर आकांक्षी रहे कि मानवका चरित्र ऊँचा हो, उसे विकासका अवसर मिले और उनके हाथों मनुष्यका जो भी हित हो सके, करें।

अपने इस उद्देश्य की पूर्तिके लिए उन्होंने मन्दिर वनवाये, लोक-कल्याणकारी संस्थाओंको आर्थिक सहायता प्रदान की और विद्यार्थियोंको छात्रवृत्तियाँ दीं। मुझे स्मरण है कि ऐसे अनेक अवसर आये, जब सत्कार्योंमें अपेक्षा न होते हुए भी उन्होंने स्वेच्छासे आगे आकर अपना योग दिया।

हम लोगोंने दो-तीन बार दिल्लीके कोटला फ़िरोजशाह मैदान में रामनवमीके पर्व पर रामायण-पाठकी व्यवस्था की थी। एक बार नवाह्न पाठ कराया, दूसरी बार पन्द्रह दिन या एक महीनेका वही क्रम चला। सुबहके समय पाठ होता था और शामको प्रवचन होते थे। सेठजी उसमें बराबर आते थे। मुझे स्मरण है कि एक बार उन्होंने स्वयं यह इच्छा प्रकट की कि वे पाठ करनेवाले ब्राह्मणोंको कुछ देना चाहते हैं। जब यह बात हमारे सामने आयी, तो हमने कहा : इसकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उन ब्राह्मणोंको सब सुविधाएँ पहलेसे ही दी जा रही हैं। लेकिन वे नहीं माने, क्योंकि उस अनुष्ठानमें अपना हविर्भाग अर्पित करनेसे वे अपनेको रोक नहीं सके।

सेठजीको देखनेका मुझे कई बार अवसर मिला, लेकिन कुशलक्षेत्रके अतिरिक्त मैंने उनसे कभी किसी विषय पर विस्तारसे चर्चा नहीं की। पर उनकी दो बातोंने मुझे विशेष रूपसे प्रभावित किया। पहली यह थी

* * *

कि दूसरेको पीछे धकेल कर स्वयं आगे आनेको मैंने उन्हें कभी आतुर नहीं पाया। यह नहीं कि वे कभी आगे आते नहीं थे। अनेक धार्मिक सम्मेलनोंमें वे अध्यक्षके निकट बैठे दिखायी देते, लेकिन मंच पर या माइकके सामने प्रयत्नपूर्वक आये हों, ऐसा कोई भी अवसर मुझे याद नहीं। दूसरे यह कि वे पैसा बड़ी हार्दिकतासे देते थे। कई घटनाएँ याद आती हैं। एक युवक क्षयरोगसे ग्रस्त होकर भुवाली सेनीटोरियममें पड़ा था। उसने मुझे पत्र लिखा कि मैं उसके लिए कुछ पैसेकी व्यवस्था करा दूँ। मैंने वह पत्र इस अनुरोधके साथ सेठजीके पास भेज दिया कि वे उसकी कुछ सहायता कर दें। सोचता था कि ऐसी माँगें तो उनके पास बहुत आती होंगी, लेकिन मेरे हर्षका ठिकाना न रहा, जब मुझे उस युवकका पत्र मिला कि उसे सेठजीसे सहायता मिल गयी और उसका तात्कालिक आर्थिक संकट दूर हो गया।

श्री अरविन्दका गीता-सम्बन्धी निबन्धोंका एक सज्जनने हिन्दीमें अनुवाद किया था, जिसे वे छपवाना चाहते थे। गीता पर इतनी पुस्तकें निकल चुकी थीं कि उसे छापनेके लिए शायद ही कोई प्रकाशक तैयार होता। उन सज्जनने मुझे लिखा। मैंने वह पत्र सेठजीके पास भेज दिया। सेठजीने उन्हें पाँचसौ रुपये भिजवा दिये।

हालका ही एक और दृष्टान्त है : एक नौजवान क्षयसे पीड़ित वृन्दावन के सेनीटोरियममें रह रहा है। उसकी जब चिट्ठी आयी, तो मैं तनिक द्विविधा में पड़ा। आखिर सेठजीको हैरान करनेकी भी एक सीमा होती है। दो-तीन दिन मैं सोचता रहा। अन्तमें मेरा मन न माना और मैंने रोगीके पत्रकी प्रतिलिपि सेठजीको भेजते हुए लिखा कि वे सहज भावसे कुछ भिजवा सकें तो भिजवा दें।

परिणाम जो होना था, वही हुआ। उन्होंने तत्काल कुछ रुपये भिजवा दिये। उन्होंने कभी एक बार भी यह जाननेकी इच्छा नहीं की कि जिनको मैं सहायता दिलवाता हूँ, वे कौन हैं और उनके साथ मेरा सम्बन्ध क्या है? उन्हें जैसे ही किसी दुखीकी पुकार सुनायी दी, कि उन्होंने सहायता भेजी।

विनोबाजी अपनी माताजीके बारेमें कहा करते हैं कि वे बड़ी धर्मपरायणा थीं। जब कभी उनके दरवाजे पर कोई भिखारी आता था, तो वे उसकी आवाज सुनते ही अन्दरसे आटा लेकर दौड़ती थीं। एक बार विनोबाजीने उनसे कहा : "माँ, तुम भी कैसी हो। दरवाजे पर जो भी आवाज लगाता है, तुम उसीकी मदद करती हो। कभी यह नहीं देखतीं कि वह पात्र है, सुपात्र है या कुपात्र है।"

माँने कहा : "तू बड़ा मूर्ख है। अरे, मेरे दरवाजे पर जो आता है, वह भगवान्का भेजा होता है। मैं कौन हूँ, जो इसका पता लगाऊँ कि वह पात्र है या अपात्र या कुपात्र। मेरे लिए तो वह भगवान्का भेजा हुआ है।"

यही बात सेठजीके साथ थी। उन्होंने जरूरतमन्द आदमीको ईश्वरका प्रतिनिधि माना और जो कुछ सेवा हो सकी, की।

इससे उन्हें स्वयं बड़ा लाभ हुआ। वह अहंकारसे बचे रहे। ईश्वरको कुछ अर्पित करके कोई भी व्यक्ति अभिमान नहीं कर सकता। सेठजी भी कैसे कर सकते थे?

उनका रहन-सहन सादा था। उनके पास धनकी कमी नहीं थी, पर अनावश्यक रूपमें उन्होंने अपने ऊपर एक पाई भी खर्च नहीं की, न अपने इधर-उधर किसी प्रकारका आडम्बर ही रखा।

कुछ लोग मानते हैं कि वे हिन्दू-संस्कृतिके पक्षपाती थे और चाहते थे कि भारत केवल हिन्दुओंका हो। यह बात गलत है। जैसा मैंने कहा, वे आर्यसंस्कृतिके पुजारी थे, अर्थात् वे चाहते थे कि उस पुरातन संस्कृतिमें जो उदात्त है, वह उनके देशवासियोंके जीवनमें दिखाई दे। उनके लिए कोई भी वर्ग वर्जित नहीं था। ऐसी बहुतसी मिसालें हैं, जब कि उन्होंने अन्य धर्मावलम्बियोंको उसी मुक्त हृदयसे सहायता दी, जिस मुक्त हृदयसे वह हिन्दुओंको देते थे।

* * *

दिल उनका बड़ा था। एक बार वचन दे देने पर सदैव उसका पालन करते थे। एक बार स्वप्नमें महात्मा गान्धीको कुछ रुपये देनेकी बात कही। सवेरे उठने पर उन्हें रुपये भेजनेकी चिन्ता हुई। परिवारके अन्य व्यक्तियोंको मालूम हुआ, तो उन्होंने समझाया कि वह तो स्वप्नकी बात थी, पर सेठजी नहीं माने। चाहे स्वप्नमें ही वायदा क्यों न किया गया हो, पर वायदा तो वायदा है। उसका पालन होना ही चाहिए।

देकर उन्होंने कभी प्रतिफलकी आशा नहीं रखी। आमतौर पर जो देता है, वह हिसाब लगाकर देखता है कि बदलेमें उसे कितना मिलेगा। सेठजीने ऐसा हिसाब कभी नहीं रखा। जब और जितना देना था, दिया। जाने कितनोंको देकर याद भी नहीं रखा कि दिया भी या नहीं। ऐसे दानकी वास्तवमें बड़ी महिमा है। उसमें देनेवाला और लेनेवाला, दोनों धन्य होते हैं। दोनोंका जीवन सार्थक होता है।

सेठजीके निधनसे जाने कितनोंका सहारा उठ गया। अब जब किसी अभाव-पीड़ित व्यक्तिका पत्र आता है, तो मैं क्षणभरको सोचमें पड़ जाता हूँ कि उसके लिए किससे सहायता माँगूँ। यों देनेवालोंकी संख्या कम नहीं है, पर ऐसे कितने हैं, जो बाइबिलके इन शब्दोंको मानते हों कि : "दान दानदाताके बिना व्यर्थ है।"

ऐसे अविस्मरणीय व्यक्तित्वको मैं अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

●

मनुष्य क्या है ? यह एक मौलिक प्रश्न यहाँ उभरता है। जिस जातिने जिस रूपमें इस प्रश्नका उत्तर समझा है, उसी रूपमें उस जातिका इतिहास ढला है। मनुष्य और उसके स्वरूप पर चिन्तन करते हुए भारतीय विचारकोंने मनुष्यमें अन्तर्हित चेतनांश पर ही अधिक ध्यान केन्द्रित किया है। भारतीय विचारकोंकी दृष्टिमें मनुष्य ज्ञान-भावना और क्रियासे युक्त एक चेतन सत्ता है, जो चैतन्यके पूर्णतत्त्व - ब्रह्म का सनातन अंश है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने भी 'ममैवांशोजीवलोके जीवभूतः सनातनः' कहकर बताया है कि 'मनुष्यमें जो जीवात्मा है, वह पूर्णात्माका - ब्रह्मका सनातन अंश है।'

भारतीय दार्शनिकोंने सर्वसम्मत सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि ब्रह्म सत्, चित, आनन्दमय है। तत् सत् वह सत् है : अविनाशी है। वह चित् है : अतुल ज्ञानका भण्डार है। वह आनन्दस्वरूप है। अतएव मनुष्यमें स्थित ब्रह्मके अंश आत्मामें अतुल ज्ञान, चेतना और आनन्द प्रच्छन्न रूपमें निहित रहता है। मनुष्यमें पूर्णतत्व विद्यमान होनेसे वह पूर्ण है। मनुष्यकी पूर्णताका बोध प्राप्त कर महर्षि वेदव्यासने महाभारतके शान्ति पर्वमें कहा है कि : 'समस्त सृष्टिमें मनुष्यसे श्रेष्ठ कुछ नहीं है'। क्योंकि सारे प्राणि-जगत्में उसी एकका अस्तित्व है, जो आधिभौतिकसे अधिक आधिदैविक है। उसकी भौतिक और आध्यात्मिक क्षमताएँ समान नहीं हैं। उसके स्थूल और सूक्ष्म मनकी शक्ति, प्रज्ञा और उसकी क्षमताएँ सृष्टिकी मूलधाराकी तरह अनन्त हैं। उसके संकल्प और पुरुषार्थकी कोई इयत्ता निर्धारित नहीं की जा सकती। इसीलिए अपनी समस्त शक्तियों, क्षमताओंके साथ मनुष्य एक रहस्य है, जो सृष्टिके रहस्यके समान अज्ञात और दुस्तर है।

* * *

श्रीवृन्दावनदास

महान् निर्माता

⊙ ⊙ ⊙

श्रद्धेय जुगलकिशोरजी बिरला देशके उन महान् निर्माताओंमेंसे हैं, जिनका नाम इतिहासमें उनके निर्माण-कार्योंके कारण अमर रहेगा। अपने महान् निर्माण-कार्योंके पीछे बिरलाजीका उद्देश्य केवल हिन्दू-संस्कृति का संरक्षण, संवर्द्धन और उन्नयन था। बिरलाजी द्वारा निर्मित अनेक विशाल भवन अपने निर्माताकी उत्कृष्ट धार्मिक-भावनाके द्योतक तो हैं ही, वे हिन्दू-संस्कृतिके वैभवके भी सजीव स्मारक हैं। भारतीय इतिहासमें मौर्य, सातवाहन, गुप्त और पुष्यभूति-वंशीय हिन्दू सम्राटोंके निर्माण-कार्योंका पुष्कल उल्लेख प्राप्य है। बिरलाजीके निर्माण-कार्य तुलनामें उपर्युक्त किसी भी सम्राट्के निर्माण-कार्योंके समकक्ष ठहराये जा सकते हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा निर्मित पाटलिपुत्रका राजाप्रासाद; अशोकके अनेक स्तम्भ, स्तूप चैत्य और विहार; सातवाहन सम्राटोंके गुहा-विहार और गुहा चैत्य; गुप्त सम्राटोंकी अजन्ता और एलौराकी गुफाएँ ऐतिहासिक महत्वके निर्माण-कार्य हैं। प्राचीन भारतके ये निर्माण-कार्य अपनी सरलता, वास्तविकता और सजीवताके कारण प्रसिद्ध थे। पाटलिपुत्रके राजप्रासादका गुण था उसकी सुन्दर मूर्तियाँ और चित्रकलाका प्रदर्शन; अनेक स्तूपों और स्तम्भोंका विशेष गुण था उन पर उत्कीर्ण लेख तथा धर्मोपदेश; गुहा-विहार और गुहा-चैत्योंका गुण था उनकी यन्त्रकला और भवन-निर्माण-शैली तथा अजन्ता और एलौराकी विशेषता है उनकी छतोंकी सजावट और दीवारों पर चित्रकारी। बिरलाजीकी अद्यतन कृतियोंमें इन समस्त गुणोंका बड़ा सुन्दर समन्वय है। वे अपनी शालीनता और सजीवतामें गुप्तकालीन स्थापत्यकलासे सादृश्य रखती हैं।

पूर्व मध्ययुगीन स्थापत्य और मूर्तिकलामें गुप्तयुगकी सरलता और जीवन नहीं पाया जाता, यद्यपि उसमें लालित्य और हस्तकौशलकी कमी नहीं है। उदाहरणके लिए चन्देल राजाओंके बनवाये हुए खजुराहोके मन्दिरों तथा कोणार्कके सूर्यमन्दिरमें अलंकार और साज-सज्जाकी पराकाष्ठा हो गयी है। मूर्तियाँ साधारणतया अलंकारोंसे लदी हुई हैं। ऐसा अनुभव होता है कि कलाका हृदय बाह्य उपकरणोंके बोझसे दबा दिया गया है। बिरलाजीकी भवन-निर्माण-शैलीमें यह दोष नहीं पाया जाता। यद्यपि कोणार्क और खजुराहोकी शैलियाँ वास्तुकलाके उत्कृष्ट उदाहरण हैं और उनके पीछे दार्शनिक चिन्तन भी है। बिरलाजीकी शैली वैज्ञानिक और आधुनिकतम है।

बिरलाजीने अपनी कृतियोंमें हिन्दू-संस्कृतिके उत्कृष्ट अंगोंका चित्रमय जगत् ही उपस्थित कर दिया है। उनके भवन हिन्दू-संस्कृतिके उन्नयनके लिए वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करते हैं। बिरलाजीके भवनोंकी मूर्तिकला और चित्रकला अत्यन्त सुन्दर और दर्शनीय है। किसी भवनमें सम्पूर्ण गीता उत्कीर्ण है, तो किसीमें सम्पूर्ण रामायण। अनेक भवनोंमें भगवान्की विविध लीलाएँ, पौराणिक उपाख्यान तथा महाभारत आदिके

* * *

पुष्कल उद्धरण चित्रित हैं। वेदवाक्य, महर्षियों और मुनियोंके उपदेश, दर्शनशास्त्र एवं इतिहासकी उत्तम सामग्री सर्वत्र ही अंकित पायी जाती है। विरलाजीके मन्दिरोंमें जो कुछ प्रतिष्ठापित, अंकित, चित्रित और उत्कीर्ण है; वह हिन्दू-संस्कृतिका सजीव रूप प्रस्तुत करता है। हिन्दू-संस्कृतिके संरक्षण, संवर्द्धन और उन्नयनकी यह वैज्ञानिक प्रणाली है। विरलाजीके भवनोंमें पहुँचकर दर्शकको ऐसा लगता है, मानो वह हिन्दू-सभ्यता और संस्कृतिके चित्रमय जगत्‌में प्रवेश कर गया हो। वेद, वेदांग, उपनिषद्, श्रुति, स्मृति, सूत्र, दर्शन आदिके अनेक आध्यात्मिक उद्धरणोंको पढ़कर उसके ज्ञानमें वृद्धि होती है। राम, कृष्ण, शिव आदि अनेक देवताओं और ऋषियों-मुनियों आदिकी सुन्दर छवियोंके दर्शन करके उसे महान् प्रेरणा प्राप्त होती है। पण्डितजन भी उन स्थानोंमें विचरकर अपने ज्ञानको दोहराते हैं। सुभाषित और नीतिवाक्योंको पढ़कर नैतिक उत्थानकी जड़ें गहरी होती हैं। बहुतसे अंशोंमें विरलाजीकी भवन-निर्माण-शैली प्राचीन और मध्ययुगीन शैलियोंसे उन्नत प्रतीत होती है।

पिछली तीन-चार शताब्दियोंमें हिन्दू-संस्कृतिके उन्नयनके दृष्टिकोणसे जयपुरके राजा मानसिंह और ओरछा नरेश वीरसिंहदेवके निर्माण-कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। जुगलकिशोरजी विरला इन महान् निर्माताओंसे भी एक कदम आगे बढ़ गये हैं। विरलाजीने अपने महान् कार्योंसे न केवल इतिहासमें अपना स्थान बना लिया है, अपितु अपने यशः-शरीर से अमर-जीवन भी प्राप्त कर लिया है।

●

पितृऋणसे उऋण होनेके लिए स्वधाके द्वारा अर्थात् ग़रीबों व अनाथोंको भोजन, वस्त्र आदि देना चाहिए। माता-पिता तथा अन्य पूर्वजोंकी स्मृतिमें विद्यालय, अन्नसत्र, मन्दिर, धर्मशाला, कुएँ, तालाब, पुस्तकालय आदि खुलवाकर पूर्वजोंके उपकारका बदला चुकाना चाहिए।
देवताओंके ऋणसे उऋण होनेके लिए स्वाहाके द्वारा अर्थात् सिंचाईकी व्यवस्था, नदी उतरनेके लिए नाव या पुलकी व्यवस्था, पुष्पवाटिका के निर्माण द्वारा देवयज्ञ करना चाहिए।
भूत-प्राणियोंके ऋणसे उऋण होनेके लिए बलिवैश्वके द्वारा अर्थात् पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों, चींटियों की रक्षा करना तथा पदार्थमात्र का सदुपयोग समाज की सेवामें करने का आयोजन करना। इसे भूतयज्ञ कहते हैं।
अन्नदान, अतिथि-सत्कार करना; भूखोंके लिए सदावर्त्त चलाना; ग़रीबों, बेरोज़गारोंके लिए छोटे-छोटे औद्योगिक केन्द्र खोलना आदि अतिथि यज्ञ है। ऊधो ये जो देव, ऋषि, पितर, गुरु, मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि हैं; सब मेरे ही रूप हैं। इनकी पूजा, इनका सत्कार करना मेरी पूजा, मेरा ही सत्कार है। गृहस्थ को चाहिए कि यही भावना रखकर नित्य इन प्राणियोंकी पूजा द्वारा मेरी पूजा किया करे।

* * *

श्रीकन्हैयालाल मिश्र

वाराणसीको बिरलाजीकी देन

⊙ ⊙ ⊙

विश्वमें समय-समय पर कुछ ऐसे विशिष्ट महापुरुषोंका अवतरण होता रहा है, जो देश-विदेश तथा काल-विशेषकी परिधिमें सीमित नहीं होते और स्वार्थमयी भावनासे ऊपर उठकर निरन्तर परोपकारके कार्योंमें रत रहकर मानव समाजकी बिखरी हुई साँस्कृतिक, धार्मिक एवं नैतिक कड़ियोंको फिरसे शृंखलाबद्ध कर देते हैं। ऐसी ही एक महान् विभूति स्वर्गीय श्री जुगलकिशोरजी बिरला थे, जिन्होंने देशके धार्मिक एवं साँस्कृतिक गगनमें सूर्यके समान प्रकाशमान होकर देशवासियोंकी सुप्त आत्माको स्फूर्ति एवं उत्साहसे भर दिया।

उनके अपूर्व त्याग, अभिमानशून्य स्वभाव, दानवीरता, धर्म एवं कर्तव्यपरायणता तथा संयमित कर्मनिष्ठ जीवनने उन्हें उच्च श्रेणीमें पहुँचा दिया था। भूमिके आकाश पर वे शान्तिके शरद् शशि थे। वे जहाँ जाते, स्वागतमें आँखोंके सितारे बिछ जाते। बोलते तो मौन मुखर हो उठता। निश्चय ही वे इस युगकी महान् विभूति थे।

देशके इस महान् सपूतके परोपकारी कार्योंकी गणना एक दुःसाध्य कार्य है। उनके द्वारा निर्मित विविधि संस्थाएँ देश-विदेशमें उनकी विजय-पताका फहरा रही हैं।

भारतीय सनातन संस्कृतिकी ध्वजाओंसे आच्छादित मन्दिरों एवं शिक्षालयोंकी नगरी काशी भी इस महान् सन्तकी ऋणी है। यहाँ उन्होंने जो रचनात्मक कार्य किए हैं, वे उनकी दानवीरता एवं धर्मपरायणताके ज्वलन्त प्रमाण हैं। जहाँ तक उनकी स्थानीय कृतियोंके सम्बन्धमें मेरी जानकारी है, उन पर प्रकाश डाल देना काशीवासी होनेके नाते सामयिक होगा।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

काशीमें उनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान काशी हिन्दू विश्वविद्यालयको मिला। विश्वविद्यालयके प्रारम्भ कालमें जब देश स्वतन्त्र नहीं था, उस समय विश्वविद्यालय जैसी राष्ट्रीय संस्थाके लिए विदेशी सरकारसे द्रव्य मिलना कठिन था। महामना मालवीयजी जैसे अनुपम-अद्वितीय, साहस-सम्पन्न व्यक्तिने किसी प्रकार विश्वविद्यालयके लिए धनराशि प्राप्तकर विश्वविद्यालय स्थापित किया, किन्तु मालवीयजीके मनोरथको पूर्ण करनेके लिए श्रीबिरलाजीने जिस प्रकारका उदार दान दिया, वह अत्यन्त सराहनीय है। जब कभी मालवीयजी अर्थसंकटमें पड़ते थे, उनकी दृष्टि बिरलाजी पर जाती थी और वे अपने उदार दानसे सहायता करते थे। वास्तविक बात तो यह कि यदि मालवीयजीकी सहायता करनेवालोंमेंसे श्री बिरलाजीको निकाल दिया जाय, तो उनके कार्यक्रमोंके पूरा होनेमें सन्देह रह जाता है।

बिरलाजीने हिन्दूधर्मके प्रचार-प्रसार तथा उत्थानके लिए जितना कार्य किया, उतना इस शतीमें कोई

नहीं कर सकता। उन्हें हिन्दू-धर्मके अच्छे उपदेशकोंकी कमी बहुत खलती थी। इसको दूर करनेके लिए उन्होंने विश्वविद्यालयमें ७५,००० रुपयेकी राशि दी थी, जिसके माध्यमसे वे चाहते थे कि यहाँ हिन्दू-धर्मके ऐसे प्रशिक्षक तैयार किए जायँ; जो देश-विदेशमें हिन्दू-धर्मका प्रचार करें। उसीके अन्तर्गत सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेजमें भारतीय-धर्म एवं दर्शन-शास्त्रका विभाग खोला गया। इसके प्रारम्भिक कालमें छात्रोंको उचित छात्रवृत्ति भी दी जाती थी। आज भी भारतीय-धर्म एवं दर्शनका विभाग भारती महाविद्यालयमें चलता है। जिसके भूतपूर्व महाविद्यालयाध्यक्ष डॉक्टर भीषमलाल आत्रेयको उन्होंने धर्म-प्रचारके लिए अपने व्ययसे विदेशोंमें भेजा।

गीता समिति

गीता उनकी प्रिय पुस्तक थी। उनका जीवन गीतामय था। उन्होंने गीताके प्रचार एवं प्रसारके लिए अर्थराशि देकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें गीता-समितिकी स्थापना की। वह राशि वर्तमानमें एक लाख बारह हजार रुपये है। इसके माध्यमसे विश्वविद्यालयमें तथा इसके बाहर गीता-धर्मके प्रचारका कार्य हो रहा है। मुख्यरूपसे प्रत्येक रविवारको विशिष्ट विद्वानोंके प्रवचन होते हैं। भारतीय-संस्कृति, धर्म एवं दर्शन विषयों पर भाषण होते हैं। इसके अतिरिक्त गीता-परीक्षाएँ ली जाती हैं। विश्वविद्यालयके बाहर भी अनेक केन्द्र है। ऊँचे स्तरकी परीक्षा होती है। कुलपति द्वारा उत्तीर्ण लोगोंको पुरस्कार एवं प्रमाण-पत्र दिये जाते हैं।

१६ रुपये मासिककी २१ छात्रवृत्तियाँ परीक्षाके आधार पर गीता पढ़नेवाले योग्यतम विद्यार्थियोंको प्रतिवर्ष दी जाती हैं। इससे छात्रोंमें गीताके प्रति अनुराग बढ़ा है।

संस्कृत महाविद्यालय

संस्कृत भाषाके प्रति उनका असीम स्नेह था। वे इस आर्यभाषाके प्रचार, प्रसार एवं विकासके आकांक्षी थे, अतः सन् १९४६में काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें ८-९ लाख रुपयेकी लागतसे संस्कृत महाविद्यालय भवनका निर्माण कराया। यह विद्यालय भवन सुन्दर भारतीय शिल्पकलाका परिचायक है। इसकी दीवारोंपर अंकित संस्कृतके श्लोक **'सर्वेषामेव दानानां विद्यादानं प्रशस्यते'** उक्तिका साक्षात् प्रतिबिम्ब बनकर इसके निर्माताकी जयध्वनि करते हैं। इस विद्यालयके छात्रोंको छात्रवृत्ति दिये जानेकी भी व्यवस्था है।

बिरला-छात्रावास

छात्रोंके आवासकी कठिनाईको दृष्टिमें रखकर उन्होंने साढ़े तीन लाख रुपयेकी राशि व्यय करके बिरला-छात्रावासका निर्माण कराया, जिसमें सभी सुख-सुविधाओंसे युक्त लगभग ४०० कमरे हैं। सन् १९२६में उन्होंने राजपूताना होस्टल तथा महिला-छात्रावासका भाग भी निर्मित कराया।

विश्वनाथ मन्दिर

हिन्दू-धर्मके प्रति उनकी प्रगाढ़ आस्था थी। धर्मसे ही समाज मर्यादित रहता है और धर्म ही समाजका मार्गदर्शक है, इसी भावसे प्रेरित होकर धर्मप्राण हिन्दू-संस्कृतिके पुजारी श्रीबिरलाजीने देश-विदेशमें भव्य

* * *

देव-मन्दिरोंका निर्माण कराया। विश्वविद्यालयमें महामनाकी अभिलाषाकी पूर्ति एवं अन्तिम समय दिये गये वचनका पालन करने हेतु स्वर्गीय विरलाजीने विश्वविद्यालय क्षेत्रमें विश्वनाथ मन्दिरके निर्माण-कार्यको लाखों रुपये व्यय कर पूरा कराया। आज यह मन्दिर अद्वितीय वस्तु बन गया है, जो हर आगन्तुकको वचनका पालन करनेका सन्देश आगामी सहस्रों वर्ष तक विश्वके कोने-कोनेमें प्रसारित करता रहेगा। यह मन्दिर भारतीय कलाका उत्कृष्ट नमूना है। मूर्तिकला, चित्रकला, भवन-निर्माण सबका प्रतिबिम्ब है। स्थापत्यकला मोहक है। इसका २५२ फुट ऊँचा शिखर जो कुतुबमीनारसे भी १९ फुट ऊँचा है, अपनी अपूर्व कलाकृतिके साथ अध्यात्मका उद्घोष करता है। भित्तियों पर वेद, शास्त्र एवं महापुरुषोंके वचन तथा सम्पूर्ण गीता अंकित है। मन्दिरमें नर्मदेश्वर, पञ्चमुखी, पार्वती, गणेश, हनुमान, ध्यानावस्थित शिव, शान्ताकार लक्ष्मीनारायण एवं सिंहवाहिनी दुर्गाकी प्रतिमाएँ द्रष्टव्य हैं। ऊपरके भागमें प्राकृतिक कलश दर्शनीय हैं, जिसमें कलश एवं ॐकी रेखाएँ स्वतः प्रस्फुटित हुई हैं। वाटिका भी भव्य है। मनमोहक फव्वारे दर्शकोंका अभिषेक करते हैं। एक ओर विश्रामशाला तथा दूसरी ओर यज्ञशाला है, जहाँ नित्य हवन होता है। बिना किसी जाति-भेद-भावके सबका प्रवेश है। यह मन्दिर वास्तवमें वह मन्दिर है, जहाँ पर भक्त ईश प्रार्थनामें लीन होकर दीन-दुनियाको विस्मृत कर देता है।

संगीत विद्यालय एवं अन्य विभाग

विश्वविद्यालयके संगीत महाविद्यालयका जो विकसित रूप आज है, इसका बीजारोपण दिवङ्गत बिरलाजीने आजसे अनेक वर्ष पूर्व पण्डित शिवप्रसाद जी गायनाचार्य तथा अन्य अध्यापकोंको रखकर किया था। इसके अतिरिक्त बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी प्रेस, आयुर्वेद अनुसन्धानशालाकी स्थापनामें भी उनका योगदान रहा है। शिवाजी हॉलमें व्यायाम-शिक्षकोंका वेतन भी स्वर्गीय बिरलाजी ही देते थे। कमच्छा पर टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज उन्हींकी देन है।

छात्रवृत्तियाँ

गरीब छात्रोंके वे अवलम्ब थे। विश्वविद्यालयके प्रारम्भिक कालमें १५) रुपये मासिककी १०० छात्रवृत्तियाँ विभिन्न कॉलेजोंमें अध्ययन करनेवाले निर्धन छात्रोंको कई वर्ष तक प्रदान करते हुए अन्न-वस्त्रकी भी सहायता उन्होंने छात्रोंको प्रदान की।

मालवीयजी पर प्रतिमास होनेवाले एक हजार रुपयेका व्ययभार वही वहन करते थे। जब मालवीय-जी राजनीतिक कार्यसे इंग्लैण्ड गए, तो वहाँका भी समस्त व्यय उन्होंने वहन किया।

विश्वविद्यालयके अतिरिक्त उन्होंने नगरमें भी उल्लेखनीय कार्य किए। वे उन व्यक्तियोंमेंसे थे, जिनका कार्य ठोस होता है और जो नाम और कार्यका विज्ञापन नहीं करते। उन्होंने किसी निर्माण-कार्यमें अपना नामांकन नहीं कराया। वस्तुतः वे वीतरागी थे। वे निष्काम कर्म करते थे, कीर्तिके लिए नहीं। नगरमें उनकी मुख्य कृतियाँ ये हैं :

बिरला आयुर्वेदिक चिकित्सालय

आयुर्वेदके प्रति उनकी गहरी निष्ठा थी तथा इस चिकित्सा-प्रणाली पर उनका अटूट विश्वास था। अतः निर्धन-असहाय लोगोंकी चिकित्सा हेतु मच्छोदरी, वाराणसी पर सन् १९४१में उन्होंने बिरला आयुर्वे-

दिक चिकित्सालयका निर्माण कराया, जिसका उद्घाटन महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीके करकमलोंसे हुआ था। चिकित्सालयकी भित्तियों पर चरकके श्लोक अंकित हैं। आयुर्वेदके प्रधान अनुभवी चिकित्सक पण्डित वंशीधर जोशीके निर्देशनमें यह विभाग प्रारम्भकालसे उत्तरोत्तर प्रगतिपथ पर है। वर्षमें लगभग ८० हजार रोगी आयुर्वेद चिकित्सासे लाभान्वित होते हैं। शल्य चिकित्साकी भी व्यवस्था है। आँख, कान, नाककी चिकित्साके अतिरिक्त सफल ऑपरेशन भी होते हैं। रोगियोंके निःशुल्क आवास, चिकित्सा, भोजन, दूध आदिकी व्यवस्था चिकित्सालयकी ओरसे होती है।

मणिकर्णिका विश्रामस्थल

मणिकर्णिकाघाट काशीका मुख्य श्मशान है। काशीमें मरणोपरान्त मोक्षकी प्राप्ति होती है, ऐसा सर्वसाधारणका विश्वास है। अतः काशीके बाहर निवास करनेवाले लोग भी अन्तिम समय मरनेकी इच्छासे यहाँ आकर निवास करते हैं और मोक्षकी प्राप्ति करते हैं। इस प्रकार यहाँ मरनेवालोंकी संख्या अधिक है। चौबीस घण्टेमें एक क्षण भी ऐसा नहीं होता है, जब कि घाट पर शव न जलता मिले। इन शवोंके साथ उनके आत्मीयजनोंका आगमन स्वाभाविक है; किन्तु उस स्थान पर ऐसा कोई स्थल नहीं था, जहाँ लोग २-३ घण्टे बैठकर वर्षा, धूप, सर्दीसे बचाव कर पाते। इस स्थान पर आवश्यकताको दृष्टिगत रखकर स्वर्गीय बिरलाजीने एक धर्मशालाका निर्माण कराया, जो शव-यात्रियोंका विश्राम-स्थल है।

बेनिया प्रसूतिगृह

वाराणसीमें निरन्तर जनसंख्यामें अभिवृद्धि होती जा रही थी, जिससे नगरमें एक प्रसूतिगृहकी कमी बहुत खल रही थी। नगरके कुछ गण्यमान्य व्यक्ति उनसे मिले और इस आवश्यकताकी ओर उनका ध्यान आकर्षित किया। फलस्वरूप सन् १९४०में बेनिया पर अपनी माताजीके नाम पर 'रानी योगेश्वरीदेवी बिरला मातृमन्दिर' नामसे एक प्रसूतिगृहका निर्माण कराया और उसे नगर महापालिकाको अर्पित कर दिया।

आर्यसमाज भवन

स्वर्गीय बिरलाजी आर्य धर्मावलम्बी थे। उनका आर्यधर्म वह धर्म था, जिसमें सनातनी, बौद्ध, जैन, सिख, आर्यसमाजी सभी सम्मिलित थे। उनके विचारोंके अनुसार ये सभी आर्य (हिन्दू) धर्मके अंग हैं। उन्होंने जीवन भर इनके संगठन और उसके सभी अंगोंके विकास एवं उत्थानके लिए कार्य किया। इसी दृष्टिसे नगरके प्रख्यात मार्ग बुलानाला पर आर्यसमाज-भवनका निर्माण करवाकर आर्य-समाजियोंको व्यवस्था हेतु प्रदान किया। भवन बड़ा और आकर्षक है। एक विशाल सभा-कक्ष है, जिसमें सत्संग-प्रवचन आयोजित होते हैं। भवनमें दूकानें हैं, जिनसे समाजको अच्छी आय होती है।

डॉक्टर भगवानदास पुस्तकालय

काशीमें भारतमाताके विख्यात मन्दिरके पास काशी विद्यापीठके अन्तर्गत डॉक्टर भगवानदास पुस्तकालय भवनका निर्माण कराया तथा भारतमाताके मन्दिरके चारों ओर सुरक्षाकी दृष्टिसे चहारदीवारीका निर्माण कराया, जिसमें कई सहस्र रुपये व्यय हुए।

* * *

वौद्ध आश्रम

भारतमाताके मन्दिरके समीप ही सिगरा पर उन्होंने वौद्ध-आश्रमका निर्माण कराया, जिसमें भगवान् बुद्धके उपदेश अंकित हैं। एक बड़ा आकर्षक सभा-कक्ष है तथा आवास आदिकी सुव्यवस्था है।

काशी मुमुक्षु भवन सभा

स्वर्गीय विरलाजीको साधु-संन्यासियोंमें प्रगाढ़ आस्था थी। उनके निवास हेतु वनाये गये काशी मुमुक्षु भवनमें उनका योगदान अविस्मरणीय है। इसमें संन्यासियोंके आवास, आहार, दूध आदिकी व्यवस्था संस्था करती है। दण्डी स्वामियोंके अतिरिक्त इसमें ऐसे सद्गृहस्थोंके आवासकी भी व्यवस्था है, जो गृहस्थीसे विरक्त होकर भगवत् भजन करना चाहते हैं। वृद्ध महिलाओंके आवासके लिए अतिथिशाला है। इसके अन्तर्गत वेदवेदाङ्ग संस्कृत पाठशाला है, जिसके विकसित स्वरूपका श्रेय स्वर्गीय विरलाजीको ही है। उन्हींकी प्रेरणासे विद्यालयको लगभग आठ हजारकी वार्षिक सहायता सुलभ हो सकी। वैसे भी जव कभी संस्थाको आर्थिक सङ्कटकी अनुभूति हुई, बिरलाजीने उदारतासे सहयोग दिया।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा

हिन्दीके प्रचार, प्रसार एवं विकासके कार्योंमें संलग्न देशकी प्रसिद्ध संस्था काशी नागरी प्रचारिणी सभाकी भी अच्छी आर्थिक सहायता की। अध्यात्म दर्शन योगके सर्वोत्तम ग्रन्थ पर पुरस्कार दिये जानेकी व्यवस्था की। सभाके अन्तर्गत सत्यज्ञान निकेतनको भी अर्थराशि प्रदान की।

बिरला धर्मशाला (सारनाथ)

सारनाथ ऐतिहासिक दृष्टिसे देशका प्रमुख स्थान है। साथ ही वौद्ध-धर्मकी दृष्टिसे भी इसका बहुत महत्व है। भगवान् बुद्धने यहाँ अपना उपदेश दिया था। देश-विदेशसे सैकड़ों व्यक्ति इस स्थलके अवलोकनार्थ नित्यप्रति आते रहते हैं। इस स्थलके महत्वको देखते हुए जनसुविधाकी दृष्टि एवं विश्रामस्थलकी नितान्त आवश्यकताका अनुभव कर उन्होंने वहाँ पर विशाल विरला धर्मशालाका निर्माण कराया, जो सभी आधुनिक सुख-सुविधाओंसे सुसज्जित है। न केवल देशके अपितु विदेशके यात्री इसमें ठहरकर सुखानुभूति करते हैं। इसका निर्माण करवाकर इसे महावोधि सभाकी व्यवस्थाके अन्तर्गत कर दिया, किन्तु आज भी मरम्मत, रँगाई आदिका काम इन्हींके ट्रस्ट द्वारा होता है।

दन्त-चिकित्सालय

काशीमें पहले दन्त-चिकित्साकी कोई व्यवस्था नहीं थी। जब विशिष्ट नागरिकोंके एक शिष्ट-मण्डलने उनसे भेंटकर इस अभावकी ओर उनका ध्यान आकर्षित किया, तो सन् १९२७में शिवप्रसाद गुप्त चिकित्सालय, कबीरचौरा में दन्त-चिकित्सालय हेतु भवन बनवाकर शासन-व्यवस्थाको प्रदान कर दिया।

मारवाड़ी महिला निवास, नीलकण्ठ

काशीवासकी दृष्टिसे राजस्थानसे आयी हुई वृद्ध महिलाओंके निवास हेतु अपनी माता के नामसे सन् १९४०में नीलकण्ठ पर एक भवनका निर्माण कराया, जिसमें वृद्ध महिलाएँ निवास करती हैं।

* * *

राणामहल चौसठी घाट

दशाश्वमेघ घाटके समीप चौसठी घाट पर उदयपुरके राणाओंका महल तथा अनेक भवन थे। उन्हीं भवनोंमेंसे एक भवन चौसठी मठ कहलाता है। यह सम्पत्ति जब राजस्थान सरकारके हाथमें आयी, तो उसने इसका विक्रय आरम्भ किया और उस भवनको भी बेच दिया, जिसमें दण्डीस्वामी निवास करते थे। स्वामियोंने अपने भावी आवासके कष्टकी ओर इंगित करते हुए एक पत्र बिरलाजीको लिखा। बिरलाजीने तत्काल उनके आवासकी व्यवस्थाका आदेश दिया और उन्नीस हजार रुपयेमें राणामहलका एक भाग क्रय कर स्वामियोंके आवासकी व्यवस्था कर दी।

घाटोंकी मरम्मत

काशी अपने मनोरम घाटोंके लिए प्रसिद्ध है। प्रायः सभी घाटोंका निर्माण राजा-महाराजाओंके द्वारा कराया गया है। क्रमशः ये घाट जीर्ण होते जा रहे हैं। सरकारने इस ओर इधर कुछ ध्यान दिया है। इससे पूर्व कई घाटोंकी दयनीय दशा देखकर उनकी मरम्मत बिरलाजीने करायी, जिनमें तुलसीघाट, बूँदीघाट, मणिकर्णिकाघाट व लालघाट उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त उल्लेखनीय कार्योंके अतिरिक्त अन्य बहुतसे सराहनीय कार्य उस मनीषी द्वारा कराये गये। अनेक मठ-मन्दिरोंका जीर्णोद्धार कराया, जिनमें काशीका प्रसिद्ध दुर्गाजीका मन्दिर, पाण्डेयघाटका उच्चशिखर बालामन्दिर तथा लालघाटका गौरीशंकर महादेवका मन्दिर भी सम्मिलित है। इसके साथ ही काशीमें निर्धन ब्राह्मणोंके निःशुल्क आवास हेतु भवनोंका निर्माण कराया। अनेक साधु-संन्यासी तथा गरीबोंका उनके द्वारा पालन होता था। उनके आश्रित निर्धन व्यक्ति तो कहते सुने जाते हैं कि बड़े बाबू क्या मर गये, निर्धन-वर्ग जीवित ही मर गया। स्वामी सुखानन्द, औघड़बाबा, मौनीबाबा आदि काशीके महात्माओंकी भिक्षा, दूधकी व्यवस्था उनके द्वारा होती थी, सो आज भी वही क्रम जारी है।

स्वर्गीय बिरलाजीकी गौरवगाथा काशीमें अथवा पत्र-पत्रिकाओंके पृष्ठों पर ही नहीं है, वरन् देश-विदेशमें निर्मित मन्दिरों, धर्मशालाओं, विद्यालयों एवं चिकित्सालयोंके रूपमें पृथ्वी पर भी अंकित है। उनका जीवन प्रकाश-स्तम्भ है। देशमें ही नहीं, अपितु नेपाल, हिन्द-एशिया, बर्मा, श्रीलंका, जापान आदि देशोंमें भी उनका नाम बड़े आदरके साथ लिया जाता है।

ऐसे महापुरुषके अवतरणसे धरा धन्य है। सत्यं-शिवं-सुन्दरम्का वह मूर्तरूप आज हमारे बीच नहीं है, पर उनका वरद् इतिहास अमर है। उनका आदर्श चरित्र शाश्वत सत्यकी तरह ज्वलन्त है। वे अपने पीछे आनेवाली पीढ़ीके लिए जीवन्त प्रेरणाओंका प्राणवान् सन्देश छोड़ गये हैं, जिसका अनुसरण कर मानव अपना और विश्वका कल्याण कर सकता है।

धरती माँ अपने इस सपूतके गीत गा रही है और गाती रहेगी।

●

* * *

श्रीभगवद्दत्त 'शिशु'

ज्योंकी-त्यों धर दीन्हीं चदरिया



आज जब मैं लक्ष्मीनारायण मन्दिर (बिरला मन्दिर) में दर्शन करने गया, तो वहाँकी देव-प्रतिमाओंके दर्शनसे भक्तिविभोर हो गया। भित्तिचित्रोंसे झरती भक्तिभावनाने अपनेमें निमग्न कर लिया। वहाँके शुद्ध वातावरणने अन्तस्तलको आध्यात्मिक रससे भर दिया। तभी मन्दिरके निर्माताका ध्यान आया। कितना पावन अन्तर था वह, जिसमें उसने भगवान् को प्रतिष्ठित किया था। साधनामें कितना लीन रहा होगा वह हृदय, जिसमें उसने सन्तों और महात्माओंको स्थान दिया होगा। कितनी शुद्ध होगी वह देह, जिससे सतत् शीतल सुरसरिता बहती होगी। तभी रामायणका एक प्रसंग याद आया:

भगवान् राम भरद्वाज मुनिके आश्रममें विराजमान हैं। सन्ध्याका समय है। सभी आश्रमवासी बैठे हैं। राम मुनिसे पूछ रहे हैं: "मुनिराज! ऐसा स्थान बताइये, जहाँ हम शान्तिपूर्वक वनवासका समय व्यतीत कर सकें?"

मुनि रामका प्रश्न सुनकर आनन्दावस्थामें मग्न हो कहने लगे:

"काम क्रोध मद मान न मोहा, लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।
जिनके कपट दम्भ नहीं माया, तिनके हृदय बसहु रघुराया॥"

सचमुच मन्दिर-निर्माणके पूर्व निर्माताने हृदयमें रामको बसानेके लिए काम, क्रोध, लोभ, मद, अहंकार, राग, द्वेष, कपट, मोह आदि असद्वृत्तियोंका परित्याग अत्यन्त कठिन तपश्चर्या करके किया होगा और नर-समूहमें भक्तिरस भरनेके लिए आर्त्त हो उठा होगा वह और तभी मन्दिरकी सृष्टिकी होगी उसने। उस पावन मन-मन्दिरकी कल्पना करके तन पुलकित और मन रसविभोर हो गया। कुछ कहते नहीं बना।

ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे सैकड़ों वर्ष पश्चात् देवार्चनाकी रक्षा करनेके लिए प्रत्यूषाकी अरुणिमा उदित हुई हो।

एक दिन उनके दर्शन करने गया। वे उस समय मन्दिरकी मूर्तियोंमें स्वरूप-भावनाकी कल्पनासे कलाकारोंको अवगत करा रहे थे। मैंने उन्हें प्रणाम किया। फिर वे बात करते-करते यज्ञ-मण्डपके पास आ गये। मैंने कहा कि एक अन्य धर्मावलम्बी लड़की हिन्दू-धर्म स्वीकार करना चाहती है।

उन्होंने उस लड़कीके सम्बन्धमें विस्तारसे पूछा। मैंने सविस्तर उसकी कहानी कह सुनायी।

बोले: "धर्म परिवर्तन यदि आस्थाके साथ और समझ-बूझकर करती है, तो ठीक है। नहीं तो आज

* * *

हिन्दू, कल कुछ और परसों कुछ और, यह तो धर्मका उपहास होगा। तुम इस सम्बन्धमें अभी कुछ दिनोंके लिए मौन हो जाओ, तो अच्छा है।"

कुछ दिनोंके पश्चात् फिर उन्होंने पूछा : "उस लड़कीका क्या हुआ ?" मैंने कहा कि वह समझ-बूझकर हिन्दू-धर्म स्वीकार कर रही है। और यह भी उन्हें बताया कि वह तो विवाह भी एक हिन्दू लड़केसे करना चाहती है।

उन्होंने पूछा : "ठीक है, इस कार्यको कौन सम्पन्न करायेगा ?"

"एक मन्दिरमें मैं स्वयं इस कार्यको कराऊँगा।"

"ठीक है, तब तो अच्छा ही रहेगा, और मैंने पहले जो कहा था कि धर्मके प्रति आस्था हो, तभी धर्म टिकता है। नहीं तो यदि वह किसी हेतुसे परिवर्तन किया जाता है, तो वह स्थिर नहीं रहता। उसे कुछ धार्मिक साहित्य दे देना और विवाहका जो व्यय लगे, वह भी दे देना।"

एक सप्ताह पश्चात् वे दम्पति जब उनसे मिले और हिन्दू-धर्मके प्रति अपनी भावना प्रकट की, तो वे आह्लादित हो उठे।

सम्मानका ध्यान

एक दिन उनका दर्शन करने घर पर चला गया। उस समय उनके पास उनके परिवारके सभी लोग बैठे थे। मैंने उन्हें प्रणाम और उनके पासकी कुर्सियों पर जो बैठे थे, उन्हें नमस्कार किया और नज़दीक ही एक कुर्सी पर बैठ गया।

थोड़ी देर बाद उन्होंने अपने पास बैठे व्यक्तिसे कहा : "तुमने इनको नमस्कारका प्रत्युत्तर नहीं दिया ?"

उन्होंने कहा : "भाईजी, मैंने तो इन्हें पहले ही नमस्कार किया था।"

मैंने भी उनका समर्थन किया, क्योंकि उनसे मेरा अच्छा परिचय था। मैंने अनुभव किया कि इन्हें दूसरोंके सम्मानका कितना ध्यान रहता है। ऐसा न हो, कहीं उनके व्यवहारसे किसीके चित्तको ठेस पहुँचे। इस अवसर पर रामायणकी एक चौपाई याद आयी :

"अस कपि एक न सैना माँही, राम कुसल जेहि पूछी नाही।"

कितना मृदुल अन्तस्तल था वहाँ, जो सतत् दूसरोंके मान-सम्मानका ध्यान रखता था और जो किसीके भी मनको ठेस पहुँचानेमें डरता था।

दानवीर

एक बार एक सज्जन मेरे पास आये और कहने लगे, मुझे सेठजीके दर्शन करने हैं। मैंने कहा कि शामको मन्दिर चले जाना, वे नियमित वहाँ आते हैं।

बातों-बातोंमें वे सज्जन कहने लगे कि जब पाकिस्तान नहीं बना था, तो हमारे कस्बेवालोंने एक मन्दिर बनानेका निर्णय किया था। एक कमेटी बनाकर मुझे उसका एक अधिकारी बना दिया। मन्दिर-निर्माणके लिए चन्दा किया गया, पर वह धन इतना कम था कि उससे मन्दिर कैसे बनता। मैंने बहुत सोच-विचारके पश्चात् सेठजीको एक पत्र लिखा और उसमें लिखा कि 'आप जब समय दें, तो हम लोग आपके पास आने को तैयार हैं।' आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब कुछ दिन बाद उनका रजिस्टर्ड लिफाफा मिला। उसमें लिखा था कि 'आप लोगोंके दिल्ली आने-जानेमें जो व्यय हो, उसे आप मन्दिरके कार्यमें ही लगायें। इस पत्रके साथ पाँच हजारका चैक भेज रहा हूँ।'

* * *

पत्र पढ़कर और आशासे अधिक रुपया पाकर आनन्दका ठिकाना न रहा। सारा कस्बा खुशीसे फूला न समाया। बिरलाजीके दानकी महिमा और मन्दिरोंके प्रति अगाध श्रद्धाकी चर्चा सर्वत्र फैल गयी। फिर मेरी ओर मुखातिब होकर कहने लगे: 'इसे कहते हैं दान, जो व्यक्ति हमें नहीं जानता, हमसे जिसका कोई मतलब नहीं और केवल हमारे पत्र पर ही जितना हम चाहते थे, उससे अधिकाका चैंक भेज दिया। भला, इस प्रकार वे दान न दें, तो हम जैसोंका क्या होगा?'

तब राजा भोजके सम्बन्धमें कहे गये इस श्लोककी याद आ गयी:

किसलयानी कुतः कसुमानि वा
क्व च फलानि तथा वन वीरुधाम।
अस्य कारण कारुणिको यदा
न तरतीह पयांसि पयोधरः॥

यदि करुणामय मेघ जल न बरसाये, तो वन-वृक्षोंको भला कोंपलें, पुष्प और फल कैसे प्राप्त हो सकते हैं? अतः धन्य है उनका मेघ-सा दयापूर्ण हृदय, जिसके कारण मन्दिर-संस्कृति फल-फूल रही है।

उनके दानकी चर्चा भारतके गाँव-गाँव और घर-घरमें फैली हुई है। सचमुच दानकी महत्ता ही सर्वोपरि है:

संग्रहैकपरः प्रायः समुद्रोऽपि रसातले।
दातारं जलदं पश्य गर्जन्तं भुवनोपरि॥

जल-दान करनेवाला बादल ऊँचा होकर गरजता है और संचय करनेवाला समुद्र सदैव रसातलमें ही रहता है। लोग तो सदैव जल देनेवाले मेघको ही चाहते हैं।

"पयच्छननकांक्षते लोकैर्वारिदो न तु वारिधिः" इस उक्तिके अनुसार उनका सुयश सदैव स्मरण किया जायगा।

उनका जीवन ऐश्वर्यसे अलिप्त, भोगोंसे विरक्त तथा त्यागमय था। जीवनभर वे जलमें कमलपत्रकी तरह रहे। कभी अपनेपर भोगोंका अधिकार नहीं होने दिया। उन्होंने, सदा भगवान्‌का स्मरण, धर्मका व्रत ही धारण किया जो राह पकड़ी, उसी पर जीवनभर चलते रहे, कभी उससे भटके नहीं और दूसरोंको भी उसी धर्म-मार्गपर चलनेकी प्रेरणा दी।

उन्हें लोग 'दानी', 'सेठजी', 'बाबूजी' कहकर पुकारते थे। परिवारके अथवा अत्यन्त समीपके लोग 'भाईजी' कहकर उनका स्नेह प्राप्त किया करते थे।

और अन्तमें, भाईजी, सेठजी, दानवीर, बाबूजी, बिरलाजी आदि अनेक सम्बोधनोंसे विभूषित, जुगलकिशोरजी बिरलाने कबीरके शब्दोंमें अपनी देह रूपी 'ज्योंकी-त्यों धर दीन्हीं चदरिया।'

●

* * *

डॉक्टर कृष्णदत्त वाजपेयी

भारतीय-ललितकलाओंके उन्नायक

⊙ ⊙ ⊙

भारतीय-संस्कृतिके प्राचीन मूर्तरूप इस देशके विस्तृत भू-भागमें देखे जा सकते हैं। ये मूर्त अवशेष प्राचीन मन्दिरों, मूर्तियों, स्तूपों, पुण्यशालाओं आदिके रूपमें उपलब्ध हैं। भारतकी भौगोलिक सीमाओंके बाहर इन कलावशेषोंको श्रीलंका, वर्मा, हिन्दचीन, हिन्द-एशिया, नेपाल, तिब्बत, जापान आदि देशोंमें भी देखा जा सकता है। विदेशोंमें उपलब्ध भारतीय देवी-देवताओंकी वहुसंख्यक कलाकृतियाँ इस वातकी प्रमाण हैं कि भारतीय-संस्कृतिका दीर्घकाल तक उन देशोंमें व्यापक प्रसार रहा। मौर्य सम्राट् अशोकके समयसे लेकर लगभग वारहवीं शती तक भारतीय विद्वानों तथा कलाकारोंका विदेशोंके लिए प्रयाण जारी रहा। भारतीय विद्वान् विदेशोंकी भाषाओंमें अथवा संस्कृत या पालिमें साहित्यका वहुविध सृजन-कार्य करते थे। कलाकार मन्दिरों, स्तूपों, विहारों आदिके निर्माणमें योग देते थे और भारतीय-ललितकलाओंका प्रसार करते थे।

सम्राट् अशोकके बाद वैरोचन, काश्यप, मातंग, धर्मरक्ष, कुमारजीव, शान्तरक्षित, दीपंकर, श्रीज्ञान आदि विद्वानोंने चीन, जापान और तिब्बतमें भारतीय-संस्कृतिका प्रचार वड़ी लगनके साथ किया।

सर ऑर्लस्टाइनके द्वारा मध्य-एशियामें किये गए शोध-कार्यसे फ़रात नदीके काँठेमें दो हिन्दू मन्दिरोंके अवशेष प्राप्त हुए। ईसवी पूर्व प्रथम शतीमें मध्यएशियाके खोतन राज्यका शासक विजयसम्भव था। उसने अर्हत वैरोचन नामक बौद्ध भिक्षुसे दीक्षा ग्रहण की। उसके वंशमें विजयवीर्य, विजयजय, विजयधर्म आदि शासक हुए। उनके राज्यकालमें मध्य-एशियामें बौद्ध-स्तूपों तथा विहारोंका निर्माण अनेक स्थानों पर हुआ। खोतन नगरके निकट एक वड़ा बौद्ध विहार बनवाया गया, जिसका नाम 'गोश्रृंग विहार' था।

हिन्दचीन तथा हिन्द-एशियाके विभिन्न भागोंमें भारतीय स्थापत्य एवं मूर्तिकलाके सैकड़ों अवशेष मिले हैं। वर्मामें प्रोम, थतोन आदि स्थानोंमें प्राचीन बौद्ध स्तूपों एवं शैव तथा वैष्णव मन्दिरोंके चिह्न मिले हैं। भारतीय कारीगरोंने ११०० ईसवीके लगभग वर्माके प्रसिद्ध आनन्द-मन्दिरका निर्माण किया। मन्दिरकी वहुसंख्यक मूर्तियोंमें बौद्ध जातक-कथाओंका रोचक चित्रण है। कम्बोडिया (प्राचीन कम्बुज) में गुप्तकालसे लेकर १२वीं शती तक अनेक हिन्दू और बौद्धमन्दिरोंका निर्माण हुआ। वहाँ अंकोरवटका प्रसिद्ध मन्दिर कम्बोडियाके शासक सूर्यवर्मा द्वितीयके राज्यकालमें ११२५ ई०में निर्मित हुआ। इस विशाल मन्दिरमें रामायणकी सारी कथा मूर्तियोंमें दिखायी गयी है। इसके अतिरिक्त महाभारत और पुराणोंकी अनेक रोचक कथाएँ वहाँके शिलापट्टों पर उत्कीर्ण हैं। कम्बोडियाके अंकोरथम स्थानके एक अन्य मन्दिरमें भारतीय वास्तुकलाके शास्त्रीय पक्ष पर विशेष ध्यान दिया गया है। मन्दिरमें हिन्दू और बौद्ध मूर्तियाँ साथ-साथ प्रतिष्ठापित मिली हैं।

सुमात्रा तथा जावामें शैलेन्द्र नामक राजवंशका आधिपत्य ईसवी सातवीं शतीसे प्रारम्भ हुआ।

* * *

शैलेन्द्र लोग भारतके कलिंग प्रदेशसे वहाँ गए थे। शैलेन्द्र शासक वालपुत्र देवने नालन्दामें एक बड़ा बौद्ध विहार निर्मित कराया। शैलेन्द्रोंके शासन-कालमें आठवीं शतीके अन्तमें जावाके प्रसिद्ध वारोबुदुर-स्तूपका निर्माण हुआ। यह भव्य इमारत नौ खण्डोंकी वनायी गयी। इमारत पर लगे हुए १५००से ऊपर शिलापट्टोंमें भगवान् बुद्धकी सम्पूर्ण जीवन-गाथा उत्कीर्ण है। नवीं शतीमें जावाके परम्बनम् नामक स्थान पर ब्रह्मा, विष्णु और शिवके तीन मन्दिरोंका निर्माण किया गया। सिंहल या श्रीलंका द्वीपमें भी भारतीय वास्तु तथा मूर्तिकलाके अनेक उदाहरण आज भी देखे जा सकते हैं।

भारतीय साँस्कृतिक परम्पराको जीवित रखने तथा प्राचीन ललितकलाओंके उन्नयनकी दृष्टिसे स्वर्गीय जुगलकिशोर बिरलाने देशके विभिन्न भागोंमें विशेष प्रकारकी धार्मिक तथा लौकिक इमारतोंका निर्माण-कार्य आरम्भ करने का संकल्प किया। महामना मालवीयजीकी तरह बिरलाजीका यह दृढ विश्वास था कि चारुत्व तथा उपयोगिता दोनों दृष्टियोंसे भारतीय वास्तुकला संसारमें अद्वितीय है। मालवीयजीने काशी विश्वविद्यालयकी विभिन्न इमारतोंके निर्माणमें प्राचीन भारतीय वास्तुको प्रमुख स्थान दिया। विश्वविद्यालय-की ये इमारतें प्राचीन भारतीय स्थापत्यकलाके ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित करती हैं।

स्वर्गीय बिरलाजीने भारत तथा विदेशोंकी अनेक इमारतोंको स्वयं देखा। प्राचीन भारतीय शिल्प-शास्त्रकी विशेषताओंसे वे वहुत प्रभावित हुए। शास्त्रीय आधार पर निर्मित अनेक प्राचीन कलाकृतियोंको उन्होंने देखा-परखा। उत्तर-भारतकी जो वास्तुशैली 'नागर शैली' नामसे प्रसिद्ध थी, उससे बिरलाजी विशेष प्रभावित हुए। देशके विभिन्न भागोंमें उनके द्वारा वनवाये गये मन्दिर तथा अन्य इमारतें विशेषतः नागर शैलीके ही अनुरूप हैं। इमारतोंमें मूर्तिकला तथा चित्रकलाको प्रतिष्ठित करनेके लिए उनका वह उदात्त रूप उन्होंने पसन्द किया, जो उत्तर तथा दक्षिण-भारतकी कलाका समन्वित रूप है।

सम्राट् अशोककी तरह बिरलाजीका भी यह विचार था कि स्तम्भों तथा शिला-फलकों पर भारतीय साहित्यके आप्त-वाक्योंको अभिलिखित कराया जाय। भारतके सभी प्रमुख धर्मोंमें उनकी आस्था थी। इसी कारण वैदिक, जैन, बौद्ध, वैष्णव, शैव तथा शाक्त मतों तथा सभी प्रमुख आचार्योंकी प्रेरक वाणियोंको उन्होंने इन इमारतोंके शिलापट्टों पर खुदवाया। सम्पूर्ण गीताको उच्च स्तम्भोंपर खुदवाकर उन्हें मन्दिरोंके पास लगवाया गया। ये गीता-स्तम्भ हमें प्राचीन गरुड़ध्वज-स्तम्भों का स्मरण कराते हैं।

भारतीय-संस्कृतिको जनसाधारण तक पहुँचानेके लिए प्राचीन कालमें वास्तु, मूर्ति तथा चित्रकलाका आश्रय लिया गया था। बिरलाजीने भी यही किया। भारतीय ललितकलाओंकी परम्पराको जीवित रखनेमें उन्होंने सराहनीय योग दिया। उनके द्वारा बनवाये गये मन्दिरोंके शिखर और गीता-स्तम्भ चिरकाल तक उस मनीषीकी कीर्तिको अक्षुण्ण वनाये रहेंगे।

●

श्रीरामचन्द्र शर्मा

कला, संस्कृति और शिल्पके पुनरुद्धारक

⊙ ⊙ ⊙

डगमगाती आस्थाओं, परिवर्तित मान्यताओं, जीवनोद्देश्यके बदले हुए दृष्टिकोण, भारतीय-संस्कृति, भाषा एवं कलाकी विलुप्तोन्मुखी दुर्दशाके तिमिरतोममें आज वह भास्वर नक्षत्र न जाने किस लोकको आलोकित कर रहा है। भारतके आकाशमें स्वर्गीय श्री जुगलकिशोर विरला एक ऐसे नक्षत्र थे, जो यत्र-तत्र बिखरे खण्डित ज्योति-कणोंको एकत्र ज्योतिपिण्ड बनाकर ऐसा प्रकाश देते रहे कि उसकी लीक भी बहुत समय तक आलोक देती रहेगी। प्राचीनताके पोषक, नवीनताके अन्वेषक, भारतीयताके मूर्त प्रतीक, मूक निष्काम कर्मयोगी, अपनी सम्पूर्ण शक्ति, सामर्थ्यको भारतीय कला, संस्कृति और शिल्पके लिए समर्पित कर देनेवाले श्री बिरलाजीके समान विरले ही दिखाई पड़ते हैं।

बाह्याडम्बर-विवर्जित सीधा-सादा सरल निष्कलुष जीवन तथा उसीके अनुरूप राजस्थानी शैलीकी धोती-कुर्ता, बन्द गलेका लम्बा कोट तथा उष्णीकसे परिवेष्ठित प्रभावशाली वपुष। हिन्दू-संस्कृतिके कण-कणको बटोर कर मातृ-मन्दिरमें प्रतिष्ठित करनेवाला; सत्य, निष्ठा, त्याग तथा साधनाका उदाहरण प्रस्तुत करनेवाला कर्मयोगी; भारतीय कला, स्थापत्य एवं शिल्पके ढहते खँडहरोंका पुनरुद्धारक विश्वकर्मा; हिन्दी, हिन्दूका प्रबल समर्थक और पोषक; लक्ष्मी और सरस्वतीका समान कृपापात्र वरदानी पुत्र!

हिन्दू-संस्कृति के पोषक : वर्ष प्रतिपदा २००० विक्रमीकी बात है। वर्ष ही नहीं, अपितु शताब्दी भी बदली थी उस दिन। दिल्लीके गान्धी मैदानमें इस महत्वपूर्ण तिथिके उपलक्षमें एक विशाल सभाका आयोजन किया गया था। विद्वानोंके भाषण हुए। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकारके ओजस्वी भाषणके पश्चात् श्री जुगलकिशोर विरलाके नामकी घोषणा हुई। कुछ आवाजें आयीं कि ये सेठ लोग क्या भाषण करेंगे, किन्तु जब पीली पाग बाँधे इकहरे शरीरके सहज सरल श्री बिरलाजीने धाराप्रवाह प्राञ्जल हिन्दीमें हिन्दू-संस्कृति तथा महाराज विक्रमादित्यकी गौरव-गाथाएँ सुनायीं तो विपुल करतलध्वनिसे वातावरण गूँज उठा। प्रथम बार मैंने बिरलाजीको उसी सभामें देखा था। मैं इतना प्रभावित हुआ कि वह दृश्य मेरे हृदय-पटल पर अंकित हो गया।

हिन्दुओंकी कुछ समस्याओंके सम्बन्धमें स्वनामधन्य पण्डित श्री रामचन्द्र शर्मा 'वीर'को जयपुर राज्यके तत्कालीन दीवान श्रीमिर्जा इस्माइलने आन्दोलन करनेसे रोक दिया और राज्यमें उनके प्रवेश करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। श्री वीरजीने पुण्यतोया यमुनाके निगम बोध तट दिल्लीमें ५४ दिनका अनशन किया था। वे केवल यमुना जल ग्रहण करते और तख्त पर लेटे-बैठे रहते थे। जनता उनके दर्शनार्थ जाती रहती। सबकी यही इच्छा थी कि किसी प्रकार श्रीवीरजीके प्राणोंकी रक्षा हो जाए। चिन्ताकी लहर दौड़ी हुई थी। कुछ समाजसेवी विद्यार्थियोंकी टोली नित्य ही वीरजीके पास जाती और फिर श्री बिरलाजीके पास जाती।

* * *

श्री बिरलाजी उनकी बातें बड़ी तत्परतासे सुनते और सान्त्वना देते। विश्वास भी दिलाते कि हम भरसक प्रयत्न कर रहे हैं कि कोई हल निकल आए। अगले दिन फिर वही क्रम, भावना ही भावना। पकी बुद्धि तो थी नहीं, दौड़ पड़े बिरला-भवनको। किन्तु श्री बिरलाजीका धैर्य कितना अडिग था कि वे कभी उकताये नहीं। भला कौन व्यक्ति इस प्रकार नित्य ही अपना समय नष्ट करनेको तैयार होगा? परन्तु यह मनीषी तो इन लोगोंके हिन्दुत्व-प्रेमको बढ़ावा दे रहा था। उसकी आँखोंमें उस समयकी असुविधाका नहीं, उस भविष्यकी आशा-का चित्र झाँक रहा था, जब कि ये बच्चे बड़े होकर सही रूपमें भारतीय बनेंगे, हिन्दू बनेंगे। मालीको पौधेका भविष्य न दिखायी दे, तो क्यों दो पत्तों वाले डण्ठलमें पानी दे?

विराट् भारतीय-संस्कृति के द्रष्टा : श्री बिरलाजीने बृहद्-भारतका चित्र अपने हृदयमें बना रखा था और उस संस्कृतिका जो अरब, काबुल तथा अन्य दूरस्थ देशों तक फैली हुई थी। उन्होंने उस चित्रको अपने बिरला-मन्दिर (दिल्लीका लक्ष्मीनारायण मन्दिर) में मूर्त रूप देनेका प्रयास किया। पहले अरब देशोंमें हिन्दू-धर्म ही प्रचलित था। हजरत मोहम्मदके चाचा उमर बिन हश्शाम हिन्दू-धर्मको बचानेके लिए लड़े और युद्धमें मारे गये थे। वे प्रसिद्ध कवि थे। उनकी भगवान् शंकर तथा भारतभूमिकी पवित्रताकी प्रशस्तिमें लिखी एक कविता अरबीके सुप्रसिद्ध काव्यग्रन्थ "सेअरुल ओक़ूल"के पृष्ठ २३५ पर संगृहीत है। यह बिरला-मन्दिरकी यज्ञशालाके लाल पत्थरमें एक स्तम्भ पर अंकित है। कविता यह है:

क़फ़ाविनक जिकरामिन उलूमिन तब असेरू।
क़लूवन अमातत्तुल हवा व तज़क्करू॥१॥
न तज़केरोहा ऊदन एललवदए लिलवरा।
वलुक़याने ज़ातल्लाहे यौम तब असेरू॥२॥
व अह लोलहा अज़ह अरमीमन महादेव ओ।
मनाज़ेल इलमुद्दीने मिनहुम व सयत्तरू॥३॥
व सहबी क्रेयाम फ़ीम क़ामिलहिंदे यौमन्।
व यक़ुलून लात हज़न फ़इन्नक तवज्जरू॥४॥
मयस्सयरे अख़लाक़न हसनन् कुल्लहुम्।
नजूमुन् अज़ाअत सुम्म ग़ाबुल हिंदू॥५॥

अर्थात्

१. वह मनुष्य जिसने सारा जीवन पाप व अधर्ममें बिताया हो; काम, क्रोधमें अपने यौवनको नष्ट किया हो।
२. यदि अन्तमें उसको पश्चात्ताप हो और भलाई की ओर लौटना चाहे, तो क्या उसका कल्याण हो सकता है?
३. एक बार भी सच्चे हृदयसे वह महादेवजीकी पूजा करे तो धर्म-मार्गमें उच्चसे उच्च पदको पा सकता है।
४. हे प्रभु! मेरा समस्त जीवन लेकर केवल एक दिन भारतके निवासका दे दो, क्योंकि वहाँ पहुँच-कर मनुष्य जीवन-मुक्त हो जाता है।

* * *

५. वहाँकी यात्रासे सारे शुभ कर्मोंकी प्राप्ति होती है और आदर्श गुरुजनोंका सत्सङ्ग मिलता है।

प्राचीन अरब देशके लोग आर्य (हिन्दू) धर्मके अनुयायी थे। श्री बिरलाजीको यह बृहत्तर भारतकी सीमा वहाँ तक दिखाई देती थी। उपर्युक्त कविताके साथ ही उसी यज्ञशालाके दूसरे लाल पत्थरके स्तम्भ पर अरबी भाषामें अरबी कविकी वेद भगवान् सम्बन्धी कविता भी अंकित है। वह इस प्रकार है :

अया मुबारेकल अरज़ युशैये नोहा मिनल हिंदे।
व अरादकल्लाहः मञ्योनज्ज़ेल ज़िकर तुन ॥१॥
वहल तजल्लीयतुन ऐनाने सहबी अख अतुन ज़िकरा।
वहा ज़ेही योनज़्ज़ेलुर्रसूल मिनल हिन्द तुन ॥२॥
यक़ूलूनल्लाहः या अहलल अरज़ आलमीन कुल्लहुम।
फ़त्त बेऊ ज़िकरतुल वेद हुक्कुन मालम योनज़्ज़ेलतुन ॥३॥
व होवा आलमुस्साम वल यजुर मिनल्लाहे तन ज़ीलन।
फए नोमा या अख़ीयो मुत्तबेअन योबश्शेरीयो न जातुन ॥४॥
वइस नैन हुमारिक अतर नासेहीन क अ-ख़ुव तुन।
व असनात अलाऊदन व होवा मशाए-रतुन ॥५॥

अर्थात्

१. हे भारतकी पुण्यभूमि! तू धन्य है क्योंकि ईश्वरने अपने ज्ञानके लिए तुझको चुना।
२. वह ईश्वरका ज्ञान-प्रकाश, जो चार प्रकाश स्तम्भोंके सदृश सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाशित करते हैं, वह भारतवर्षमें ऋषियों द्वारा चार रूपमें प्रगट हुए।
३. और परमात्मा समस्त संसारके मनुष्योंको आज्ञा देता है कि वेद जो मेरे ज्ञान हैं, इनके अनुसार आचरण करो।
४. वह ज्ञानके भण्डार साम और यजुर हैं, जो ईश्वरने प्रदान किये। इसलिए हे मेरे भाइयो! इनको मानो, क्योंकि ये हमें मोक्षका मार्ग बताते हैं।
५. और दो उनमेंसे रिक् अतर (ऋग् अथर्व) हैं, जो हमको भ्रातृत्वकी शिक्षा देते हैं, जो इनके प्रकाशमें आ गया; वह कभी अन्धकारको प्राप्त नहीं होता।

कविका नाम "लबी बिने अख़तब बिने तुर्फ़ा" है, जो मोहम्मद साहबसे २३०० वर्ष पूर्व हुआ था।

जिस भारतकी चर्चा हम कर रहे हैं, वह पश्चिममें अरब देशोंसे भी आगे तक था तथा पूर्वमें सुमात्रा, जावा, बाली आदि तक था। काबुल, कन्धार, (गान्धार) तो उसके भीतर ही थे। यहाँके घोड़े भारतकी वाहिनीमें प्रसिद्ध थे। इस इतिहासको बिरलाजीने एक प्रतिमाके माध्यमसे पुनः प्रस्तुत किया है। वाटिकामें नाट्यशालाके बायीं ओर एक मानवाकार प्रतिमा है। उस पर यह अंकित है : २००० वर्ष पूर्व काबुलके महाराज गजसेन भाटी, जिन्होंने अपने नाम पर गजनी नगर बसाया। इसकी आधारशिला युधिष्ठिर सम्वत् ३००८ बैशाख-सुदी रविवारको रखी गयी। इनके वंशज जाट-राजपूत पंजाब तथा राजस्थानमें हैं।

* * *

संस्कृति तथा इतिहासका नवीन प्रस्तुतीकरण : श्री बिरलाजीने भारतीय-संस्कृति तथा इतिहासको इस ढंगसे मूर्त रूप दिया है कि विचारशील व्यक्तिको भारतका इतिहास मूर्त रूपमें दिखाई पड़ता है। अनपढ़ और इतिहासके अल्पज्ञ लोगोंको भी ये मूर्तियाँ न केवल आनन्द देती हैं, बल्कि एक चेतनाका प्रस्फुरण भी करती हैं। वाटिकाके अन्तिम भागमें नहरके दोनों ओर ऊँचे भागमें दो प्रतिमाएँ हैं। दक्षिण हाथकी ओर धर्मराज युधिष्ठिर महाराजकी। इसके नीचे अंकित है कि ब्राह्मण कौन है तथा संसारमें सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? इसे हिन्दू-दर्शनका एक सूत्र कह सकते हैं। बाएँ हाथकी ओर महान् सम्राट् चन्द्रगुप्तकी प्रतिमा है। इसके नीचे अंकित है वह गौरवपूर्ण घटना, जिसके कारण यवन सम्राट्ने अपनी पुत्री हेलेनका इनके साथ विवाह करके भारतसे मित्रता की। नीचे उतरकर तथा आगे मन्दिरकी ओर बायीं तरफ़ हिन्दू-धर्म-रक्षक महाराणा प्रतापसिंहकी प्रतिमा आज भी शत्रुओंको ललकार रही है। चित्तौड़के शासक-राजपूत सरदारोंके मुग़लोंसे निरन्तर ५०० वर्षके युद्धका इतिहास तो प्रस्तुत करती ही है। इधर हिन्दू-धर्मरक्षाका एक पृष्ठ है, तो दाएँ हाथको एक पृष्ठ भारतकी सीमा - जो काबुल तक थी - की पुनः स्थापनाका खुला हुआ है। और यह है महाराजा रणजीतसिंहकी प्रतिमा। यज्ञशाला तथा रथके मध्य भागमें हिन्दू-धर्म-रक्षक यादव-वंशी जाट वीर भरतपुरके महाराजा सूरजमल लाल किला आगरेकी विजयका गौरवमय पन्ना प्रस्तुत करते हैं, तो उपहारगृहके निकट 'हिन्दुन की चोटी, रोटी, माला गलेमें रखने वाले' महाराज छत्रपति शिवाजी भी विजय सन्देश दे रहे हैं। सम्राट् विक्रमादित्य तथा अशोक बुद्ध-मन्दिरके सामने वाटिकामें सुख शान्ति दे रहे हैं। कहीं पेशवा बाजीराव हैं तो कहीं गुरु गोविन्द सिंह, बन्दा बैरागी आदि सभी धर्मरक्षक वीर सेनानी भारतका गौरवमय चित्र प्रस्तुत करते दिखायी पड़ते हैं।

भूलों से बचना आवश्यक है। इतिहासकी भूलोंको भूल ही मानकर उनसे बचनेका प्रयत्न करना जातिकी उन्नतिके लिए अनिवार्य होता है। अतीतके बुरे और अशिवको शिव नहीं कहा जा सकता। आत्मवंचना किसी औरको हानि पहुँचाये या नहीं, किन्तु निजको अवश्य ही पहुँचाती है। श्री बिरलाजी ऐसे प्रसंगोंसे शिक्षा ग्रहण करनेकी बात कहते हैं। जी हाँ, यदि महाराज पृथ्वीराज चौहान मोहम्मद ग़ौरीको परास्त कर बार-बार क्षमा न करते, तो आज भारतका रूप कुछ और ही होता। महाराज पृथ्वीराजजीकी प्रतिमा पर यही तो लिखवाया है कि ये परम वीर थे, किन्तु घमण्डी और विलासी थे और इन्होंने १७ बार ग़ौरीको छोड़कर अविवेकपूर्ण उदारता बरती, जिसका परिणाम हिन्दू-जातिको भोगना पड़ा।

हिन्दुओंकी सभी शाखाओंका समन्वय : श्री बिरलाजीने आर्य हिन्दू-धर्मकी सनातनधर्म, आर्य-समाज, जैन, बौद्ध तथा सिख आदि सभी शाखाओंका समन्वय करनेका ठोस प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने 'आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघ' नामसे एक संस्थाकी स्थापना की। इसके द्वारा उन्होंने निरन्तर ह्रासमान हिन्दुओंकी दशा सुधारने तथा उन्हें ईसाई और मुस्लिम बननेसे रोकनेके प्रयत्न किये। इस संस्था द्वारा साहित्य भी प्रकाशित किया गया, जिसमें आँकड़े दे देकर बताया गया कि किस प्रकार जबरन तथा प्रलोभन देकर अशिक्षित तथा आदिवासी हिन्दुओंको ईसाई बनाया जा रहा है। दूसरी ओर परीक्षाओंका भी क्रम रखा। पाठ्य-क्रममें हिन्दुओंकी सभी शाखाओंकी जानकारी और साहित्यके ग्रन्थ रखे। ये सब कार्य अब भी हो रहे हैं।

इस समन्वयके अन्तर्गत उन्होंने उपर्युक्त मन्दिरमें भी सभी बातोंका ध्यान रखा है। बुद्ध मन्दिर तो स्वतन्त्र रूपमें ही विशाल मन्दिर है। जैनियोंके तीर्थंकर श्री ऋषभदेवजी महाराजकी सुन्दर मूर्ति श्रीलक्ष्मी-नारायण मन्दिरके पार्श्वकक्षमें दी गयी है। जैन आचार्योंके उपदेश भी नीचे अंकित हैं। परिक्रमा-दीर्घामें श्री गुरु गोविन्दसिंह, रैदास, कबीर, तुलसीदास, मीराँबाई, सहजोबाई आदि अनेक सन्त महापुरुषोंके चित्र

और वाणियाँ अंकित हैं। गीता भवनकी ओर श्री गुरु नानकदेव तथा तेग़बहादुरजीके चित्र उत्कीर्ण हैं तथा सुखमनी आदिके अंश भी उद्धृत हैं। यज्ञशालामें महर्षि दयानन्द, वल्लभाचार्य, रामानन्दाचार्य, गौरांग महाप्रभु, स्वामी विवेकानन्द, भास्कराचार्य आदि अनेक सन्त, आचार्य और भक्तोंके चित्र अंकित हैं। वेद, पुराण, उपनिषद्, आयुर्वेद, सन्त-साहित्यके अंश तो प्रायः स्थान-स्थान पर अंकित हैं।

पद और नामके विज्ञापनसे उदासीन : जीवनभर हिन्दू धर्मके लिए उद्योगशील तथा न जाने कितने व्यक्तियों एवं संस्थाओंको दान देनेवाले इस कर्णने कभी अपने-आपको जनाया नहीं, सदा छिपाये ही रखा। कौन-सा नगर होगा, जहाँ उनकी धर्मशाला न हो। तीर्थस्थान हो अथवा व्यापार-केन्द्र, बिरला-धर्मशाला तो निश्चित होगी; और हाँ, औषधालय तथा मन्दिर भी हो सकते हैं। यह सब कुछ करते हुए भी नामके विज्ञापनसे दूर। लगभग २२ वर्ष पूर्व ग्राम अण्डला जिला अलीगढ़के दो व्यक्ति, जो उस समय वहाँ निजी रूपमें एक विद्यालय चलानेका उद्योग कर रहे थे, दिल्ली मेरे पास आये और चन्दा करनेका उद्योग करने लगे। वे बिरलाजीके पास गये; मैंने मना तो नहीं किया, पर मैं अन्दर बिरलाजीके पास नहीं गया। मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब वे भीतरसे १०१ रुपये लेकर निकले। कोई परिचय नहीं, प्रमाण नहीं। विद्यालय का नाम 'बिरला विद्यालय' रखनेके सुझावको भी उन्होंने नहीं माना और अपनी ओरसे सुझाव दिया कि मालवीयजीके नाम पर रखना ठीक रहेगा। आज वह विद्यालय मालवीय इण्टरकॉलेजके नामसे प्रसिद्ध है। उन्होंने तो लन्दनमें भी मन्दिर बनवाया कि वहाँ रहने वाले भारतीय अपने हिन्दू-धर्मके अनुसार वहाँ रहकर भी पूजा-पाठ कर सकें।

भारतीय शिल्प और कलाके पुनरुद्धारक : यह तो अब साधारण बात हो गयी है कि किसी भवनके विशिष्ट पीले और लाल रंग, द्वार तथा मुंडेरी पर विशिष्ट शैलीके स्तूप तथा स्तम्भ आदि देखकर कोई भी कह देता है कि यह बिरलाजीकी बिल्डिंग प्रतीत होती है। यह उनकी विशेष छाप बन गयी है। उनके मन्दिरमें यत्र-तत्र-सर्वत्र स्वस्तिक चिह्न और जंजीरमें लटकते हुए घण्टे दिखाई देते हैं। यह शुद्ध भारतीय कलाकी शैली है। महरौलीमें योगमायाके मन्दिरके भग्नावशेषोंमें ये जंजीरमें लटकते घण्टे बहुत अधिक हैं। बिरलाजीने सारनाथ, साँची, राजस्थान तथा विजयनगर आदिकी हिन्दू-शैली तथा प्राचीन मन्दिरोंकी शैलीका समन्वित रूप अपनाया है, ऐसा मैंने विद्वानोंसे सुना है। इनके मन्दिरोंका अनुकरण प्रायः नवनिर्मायमाण बड़े-बड़े मन्दिरोंमें किया जा रहा है। कानपुरमें सेठ जुग्गीमल कमलापतके श्री राधाकृष्ण मन्दिरमें यही कला दिखाई देती है; हाँ, उसका रंग सफेद है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उन्होंने बृहत् भारतका जो भव्यचित्र अपने अन्तरमें रखा था, वह नयी दिल्लीकी पहाड़ी पर बने बिरला मन्दिरके विभिन्न अंगोंमें मूर्त हो उठा। ह्रासमान हिन्दुओंकी घटती संख्याको रोकनेके अनेक उद्योग उन्होंने किये। प्राचीनकला, संस्कृति और शिल्प का उन्होंने पुनरुद्धार किया। हम आज उस महान्-हिन्दू-धर्म-रक्षक, मूक कर्मयोगी, विद्यानुरागी, धर्मप्राण, इस युगके कर्णको श्रद्धाञ्जलि भेंट करते हैं। उनका पार्थिव शरीर आज भले ही न रहा, पर वे यशः-शरीरसे अमर हैं।

●

* * *

श्रीमणिलाल राय इञ्जीनियर

भारतीय-स्थापत्यकलामें युगान्तर

०००

गान्धीजीके आन्दोलनका वह मध्ययुग था। उस समय भारतके कोने-कोनेमें विदेशी वस्तुओंका वर्जन तथा स्वदेशी वस्तुओंका उपयोग बढ़ रहा था। भाषा, साहित्य, शिल्पकला, संगीत, स्थापत्य आदि सभी दिशाओंमें जवाहरलाल, सुभाष बोस जैसे देशप्रेमियोंके द्वारा नवचेतनाकी वाणी फैल रही थी। देशकी जब ऐसी स्थिति थी, तो ऐसे ही समयमें एक बंगाली स्थापत्यकार श्री श्रीशचन्द्र चटर्जीने भारतीय ढंगसे वासगृह, मन्दिर एवं नगर-निर्माण आदिके माध्यमसे भारतीय-स्थापत्यकलाके पुनरुद्धार का संकल्प किया और वह भारतके स्थान-स्थानमें भाषण देने लगे, समाचारपत्रोंमें निबन्ध लिखने लगे। स्वर्गीय डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद जैसे प्रमुख नेतागण एवं राजा-महाराजाओंने उनके इस शुभ उद्देश्यको अभिनन्दित कर श्री चटर्जीसे भारतीय ढंगके स्थापत्यकलाकी विराट् प्रदर्शिनीके आयोजनके लिए अनुरोध किया।

सन् १९३४के दिसम्बरका महीना था। स्वर्गीय श्यामाप्रसाद मुकर्जीके नेतृत्वमें कलकत्ता विश्व-विद्यालयके सिनेटहॉलमें प्राचीन भारतीय-स्थापत्यकला प्रदर्शिनीकी व्यवस्था की गई। प्रदर्शिनीमें भारतके विभिन्न स्थानोंके स्थापत्य और शिल्पकलाका सुन्दर समावेश हुआ। हैदराबादके निजामके संग्रहालय से एलोरा और अजन्ताकी गुफाओंके बड़े-बड़े आलोकचित्र एवं गुफाओं के प्राचीन चित्रोंकी रंगीन प्रतिकृतियाँ बड़े ही आग्रहके साथ भेजी गईं। पुरी, भुवनेश्वर, खजुराहो, एलिफेण्टा, आबूपहाड़, जयपुर, जोधपुर, बनारस, सार-नाथ, बोधगया आदि उत्तरी-भारतके प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिरोंके चित्रोंका सुन्दर समावेश था। दक्षिण-भारतके मन्दिरोंके भी दर्शन यहीं हुए। काञ्जीपुरम्, महाबलीपुरम्, तंजौर, त्रिचुरापल्ली, रामेश्वरम्के द्राविड़ कलाओंके अनेक मनोरम फोटो प्रदर्शिनीकी शोभाके कारण हुए। चालुक्यभूमिके सोमनाथपुरा केशव मन्दिर होयेसलेश्वरके मन्दिरादि की अवर्णनीय चारुकलाको देख दर्शक मन्त्रमुग्ध हो गए। हजारों मन्दिरोंके समावेशसे प्रदर्शिनीने महान्तीर्थका रूप ले लिया। यह भारत मन्दिरोंका देश है। हजारों मन्दिरोंसे सजी हैं इसकी नगरियाँ, इसके ग्राम, इसके वन-उपवन और शैल-शिखर। भारतीय शिल्पियोंकी युग-युगकी शिल्प-साधनाकी मोतियोंसे बनी है यह शिल्प-माला।

एक दिन इसी प्रदर्शिनीने महान् अनुभवी स्थापत्य-प्रेमी सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाको अपनी ओर आकृष्ट किया। बिरलाजी प्रदर्शिनीके अनुपम सौन्दर्यमें अपने-आपको खो बैठे और शायद उसी क्षण उन्होंने अपने तन-मन-धनको हिन्दू-स्थापत्यकलाके पुनरुद्धारमें न्योछावर कर दिया। धर्म पर आस्था रखनेवाले सेठ जुगलकिशोर सभी धर्मोंपर श्रद्धा रखते थे। बौद्ध या जैन-धर्म साकार हो या निराकार, देशी हो या परदेशी; सभी धर्मावलम्बी उनके लिए समान आदरणीय थे। सर्वधर्म-समन्वयवादी रामकृष्ण परमहंस पर उनकी अधिक श्रद्धा थी।

* * *

एक जापानी बौद्ध भिक्षु कलकत्तामें एक बौद्ध मन्दिरकी स्थापनाके उद्देश्यसे सेठ जुगलकिशोरजीकी शरणमें आये। सेठजीने तत्क्षण जापानी बौद्धोंके लिए मन्दिर-निर्माणका भार सहर्ष स्वीकार कर लिया। हिन्दूस्थापत्य-विशारद श्री चटर्जीने अपने सहकारी, प्रस्तुत प्रबन्धके लेखकको उस मन्दिर-निर्माणकार्यमें सहायताके हेतु सेठ जुगलकिशोरसे परिचय करवाया। उस समय सेठजी ने कहा था : 'प्राचीन भारतीय मन्दिरोंकी चारुकला कितनी ही उन्नत ढंगकी क्यों न हो, कुसुममें कीटकी भाँति उसमें त्रुटियाँ भी अनेक हैं। अत्यधिक मात्रामें शिल्पकलाके प्रयोगसे मन्दिर बोझिल हो उठता है। इस कारण मन्दिरोंमें यथेष्ठ रोशनी एवं मुक्त वायुका अभाव रहता है। चमगादड़ और कबूतर इसमें अपना घर बसाकर मन्दिरकी पवित्रताको नष्ट करते हैं। अतः आधुनिक रचनामें पवित्रताका पूरा ख्याल रखते हुए आधुनिक रुचि, आधुनिक माल-मसालेके साथ-साथ इन्जीनियरिंग ढंगका प्रयोग चाहिए। संस्कृत भाषा उन्नत भाषा है, इसमें कोई सन्देह नहीं। फिर भी वर्तमान भाषाके बहते नीरके साथ कदम रखनेमें वह असमर्थ है। उसी प्रकार प्राचीन कला मनोरंजक होते हुए भी आधुनिक युगमें अपांक्तेय है। हमारे शिल्पी किसी भी कालमें स्थितिवादी नहीं रहे, जिसके कारण युग-युगमें विभिन्न स्थापत्यकलाका नव-नव विकास सम्भव हो सका। किसी भी मन्दिरका दोहराया जाना उचित नहीं है, नहीं तो शिल्पकलाकी स्रोतस्विनीकी धारामें अटकाव पैदा हो जाता है। बीसवीं सदीके निर्मित मन्दिर विगत शताब्दियोंके प्रभावसे मुक्त रहेंगे। साथ ही वर्तमान निर्माण-पद्धतिका अनुसरण कर उन्नतिके शिखर पर पहुँचेगा। मन्दिर केवल मात्र सम्प्रदायप्रधान न होकर सार्वजनिक होना चाहिए।'

नवनिर्माणमें बिरलाजीकी यह एक उल्लेखनीय भावना थी। साथ ही उनकी धार्मिक दृष्टि भी कुछ निराली ही थी। बौद्धधर्मकी विशेषताओं : आत्मसंयम, वैराग्य और अहिंसावाद पर उनका पूर्ण विश्वास था। महात्मा गान्धी, तिलक एवं महर्षि अरविन्दकी तरह वे भी श्रीमद्भगवत् गीताके प्रति श्रद्धाशील थे। आपत्तिके समय मन जब विक्षिप्त रहे या जब अपने कर्तव्योंके निरूपणमें अपनेको असमर्थ समझे, तब उन्होंने गीताकी शरण आनेको कहा है। आधुनिक भारत कुसंस्कार और अज्ञानतासे पूर्ण होकर निश्चेष्ट और निर्वाक् है। कार्यके प्रति गीताका ज़ो सन्देश है, उसके प्रति प्रत्येक भारतवासीको सचेतन करना होगा। कार्य करते जाना है, फलके लिए व्याकुल नहीं होना है। गीता किसी विशेष सम्प्रदाय मात्रके लिए नहीं है, न ही केवल चिन्ताशील प्रगतिवादी व्यक्ति-विशेषके लिए है। इसका आदेश सार्वजनीन है और सब जग-हिताय है। सेठजीको राधाकृष्णकी प्रेमलीलासे प्रीति न थी। उन्हें तो मुरलीधर कृष्णकी अपेक्षा चक्रधारी कृष्ण अधिक प्रिय थे। उपर्युक्त भावधाराओंको ही उन्होंने अपने नवनिर्मित मन्दिरोंमें साकार रूप दिया।

इस लेखककी सहायता पाकर उन्होंने पहले जापानी मन्दिरका निर्माण किया। फिर सारनाथमें बौद्धोंके लिए धर्मशाला बनवायी। बौद्धधर्म हिन्दूधर्मकी ही एक शाखा मात्र है, अतः उन्होंने बौद्ध-कला और हिन्दू-कलाके मिश्रणसे मन्दिरादि बनाने को कहा।

इसके बाद पटनामें एक मन्दिर तथा धर्मशालाका निर्माण करवाया। इस मन्दिरमें एक मुख्य मन्दिरके साथ दोनों ओर छोटे-छोटे मन्दिर और बनाये गए। प्रधान मन्दिरमें लक्ष्मीनारायणकी मूर्ति स्थापित की गई, जबकि इसके पासके एक मन्दिरमें बुद्ध और दूसरी ओर वाले मन्दिरमें शिव मूर्ति रखी गई। बुद्ध-मूर्ति ब्रह्म देशकी बनी हुई है। मन्दिरके बीचका शिखर उड़ीसाके मन्दिरोंके शिखरके डिज़ाइनके अनुकरणमें बनाया गया और आसपासके मन्दिर-शिखर बौद्ध शिल्पानुसार स्तूपके आकारमें हैं। मण्डपकी दीवालोंमें वेद, उपनिषद्, गीताके उपदेशके साथ-साथ बुद्धकी वाणीका भी विचित्र समावेश हुआ है। एक ही मन्दिरमें एक

* * *

ओर श्री लक्ष्मीनारायणके रूपमें धन-वैभव-ऐश्वर्यकी पूजा और दूसरी ओर शिव और बुद्धकी मूर्तिमें त्याग, वैराग्य और अहिंसाकी कल्पना, सेठ जुगलकिशोरजीके व्यक्तिगत जीवनमें भी ऐश्वर्य और त्यागके समन्वयकी निदर्शना है।

पटनाके मन्दिरके उपरान्त उन्होंने बोधगयामें एक स्तूप और धर्मशाला बनवायी। भगवान् बुद्धने जिस स्थानमें निर्वाण प्राप्त किया था, उसी कुशीनगरमें उन्होंने एक बौद्ध-मन्दिर और शिव-मन्दिर बनवाया। यहाँ पर उनकी त्याग और अहिंसाकी भावना प्रमुख रही हैं।

इसके पश्चात् मन्दिरों, स्तूपों व चैत्यों, विहारोंके निर्माणकी अजस्र शृंखला ही बन गयी, जिनका निर्माण एवं प्रतिष्ठापन बिरलाजीके जीवनकालमें बराबर चलता गया। इस सम्बन्धमें यह कहना भी अनुचित न होगा कि भारतीय-स्थापत्य-शैलियोंका निर्बाध पालन करते हुए मन्दिरों, स्तूपों आदिमें समय-समयपर युगानुकूल परिवर्तन एवं संशोधन होते गये, जो विविध भवनोंके देखनेसे सहज ही स्पष्ट हो जाते हैं।

आज समस्त विश्व भौतिकताके पदाघातसे प्रताड़ित है। हाहाकारग्रस्त पाश्चात्य देशोंके लोग जब यहाँ पर आते हैं और इस मन्दिरकी छायामें सच्चिदानन्दके वास्तविक ज्ञान-सागरमें निमज्जित हो जाते हैं, तब उनकी सतोगुणी भावना उभर आती है और वे मन्दिरके आध्यात्मिक वातावरण तथा कला-सौन्दर्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगते हैं। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

1. "May the work of this temple convey on the spirit of Mahatma Gandhi's life as he lived—an inspiration to all Humanity regardless of sects."

2. The electric light in Birla temple came from West. Its inner light is the East's and without it the West may or rather will be lost.

ARTHUR ISENBERG
V.N.C.I.
Secretariat, New York

3. If God is one, this world ought to be one, mankind ought to be one. To contribute to this idea, we delegates of the world Pacifist meeting of Santiniketan, have come to India. We are glad to find at our arrival so big a temple devoted just to this idea of universal unity. May it always be looked at as such.

24th November, 1949

A VISITOR FROM BERLIN
Sd. Illegible

* * *

4. It would seem that the message of the temple is

"O" man, affirm in your thinking,
Affirm in your living,
Oneness of life,
Oneness of country,
Oneness of freedom,
Oneness of truth,
Oneness of beauty,
Oneness of bread.

27th Nov., 1949

Sd./ HEBERTS M. SEIN,
Mexico.

5. I wish this temple was on wheels, so that it could be taken round the universe to extract the stability of peace it focuses.

Sd./ Illegible

6. I came here thirsty in body and in spirit, seeking after a quiet place under the shade of Bodha tree, and found a fountain of cool water under the perfume of Jasmine flowers, and fountain of love under the shade of a man—who is Birla.

19th Dec. 1949.

Sd./ TOMIKO W. KORA, M.A., PH. D.
Tokyo, Japan.

7. This is the first Indian temple I have ever seen. I wished that all the people would follow the laws and the secred ordinances laid down in their own religion. So that this world which is full of miseries and calamities could be cured and that people could live a happier life.

This is what can be done by the Creator only.

23rd Oct., 1950.

A VISITOR FROM IRAN
Sd. Illegible

* * *

श्रीराधाकृष्ण कानोड़िया

प्रेरणाप्रद व्यक्तित्व

⊙ ⊙ ⊙

पूज्य बाबू जुगलकिशोरजी बिरला अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धिवाले, दूरदर्शी और परोपकारी पुरुष थे। सुविख्यात बिरला-परिवारके वरिष्ठ सदस्यके रूपमें आपने न केवल व्यापारिक एवं औद्योगिक क्षेत्रमें ही ख्याति प्राप्त की, हिन्दू-धर्म और संस्कृतिके पुनरुत्थानके लिए भी ऐसे ठोस एवं रचनात्मक कार्य किए, जो कभी भुलाए नहीं जा सकते। भारतीय-संस्कृतिकी कल्याणकारी परम्पराओंके वे कट्टर समर्थक थे। हिन्दू-धर्मके लोकहितकारी आदर्शोंके प्रचार-प्रसारके लिए उन्होंने देश-विदेशकी संस्थाओंको मुक्तहस्तसे दान दिया। उन्होंने जगह-जगह नये मन्दिरोंका निर्माण करवाया और सैकड़ों जीर्ण-शीर्ण मन्दिरोंका उद्धार किया।

बाबू जुगलकिशोरजी बिरलाके साथ अनेक प्रेरणास्पद स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं। उनका व्यापारिक ज्ञान अद्‌भुत था। अन्यान्य व्यापारके अलावा वे बदलेका व्यापार करनेमें अत्यन्त पटु थे। बदलेका अर्थ है किसी एक वस्तुको एक जगह बेच देना तथा दूसरी जगह खरीद लेना। इस तरहके क्रय-विक्रयके द्वारा लाभ प्राप्त करनेके लिए आवश्यक है कि व्यापारीको इस बातकी जानकारी हो कि उस वस्तुके भाव दुनियाकी किन-किन जगहोंमें किस समय क्या-क्या हैं, जिससे भावोंका जो अन्तर हो, वह लाभके रूपमें उसे मिल सके। बिरलाजीको इस बातकी जानकारी रहती थी कि अमुक वस्तु हमारे देशमें और विश्वमें कहाँ-कहाँ होती है, उसके गुणमें कितना फ़र्क रहता है और उसके भाव क्या रहते हैं। किस मौसममें कहाँ ये भाव ऊँचे रहने चाहिए, कहाँ नीचे; इसका उन्हें पूरा ध्यान रहता था और तब वे उस वस्तुको एक जगह वायदेमें खरीद लेते थे और दूसरी जगह वायदेमें ही बेच देते थे। एक ही वस्तुको एक साथ खरीदने और बेच देनेसे व्यापारिक खतरा बहुत ही कम रहता था। एक जगह घाटा होता, तो दूसरी जगह मुनाफ़ा हो जाता। जहाँ भाव कम होते थे, वहाँ वे वायदेमें खरीद कर लेते थे; जहाँ भाव ऊँचे रहते थे, वहाँ वायदेमें वे उस वस्तुको बेच देते थे और ठीक समय जो भाव जहाँ जैसे रहने चाहिए; वे प्रायः वैसे ही हो जाते थे। इस तरह वे जिन-जिन चीजोंमें बदलेका व्यापार करते, प्रायः सबमें ही बिना किसी खतरेके रुपये कमा लेते थे। कभी-कभी वे विदेशमें ही एक जगह खरीद कर लेते थे और वहीं कहीं दूसरी जगह बेच देते थे। सौदा पूरा होने पर विदेशसे रुपया आ जाता था।

बदलेके व्यापारके कारण बाबू जुगलकिशोरजीने विदेशोंमें बहुत नाम कमाया। वहाँके लोगोंको आश्चर्य होता था कि कोई व्यक्ति बिना किसी खतरेके इतना रुपया कैसे कमा लेता है। विदेशी लोग अक्सर कहते थे कि जुगलकिशोरजी जैसी तीव्र व्यापारिक बुद्धि बहुत कम लोगोंमें होगी।

उस समय हमारे देशमें अंग्रेजोंका बोलबाला था। जितना भी व्यापार होता था, उसमेंसे अधिकांश ब्रिटेनसे सम्बद्ध रहता। कपड़ेका आयात भी ब्रिटेनसे ही होता था। बाबू जुगलकिशोरजीने यह अनुभव

किया कि ब्रिटेनवाले यहाँ राज्य तो करते ही हैं, व्यापारको भी उन्होंने अपने हाथमें ले रखा है। किसी तरह यदि योरोपके बजाय एशियाई देशोंसे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किये जा सकें, तो अच्छा रहे। ऐसा सोचकर उन्होंने जापानसे कपड़ा आयात करनेका निश्चय किया। बिरलाजी हमारे देशके सबसे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने जापानसे कपड़ा आयात करना प्रारम्भ किया। उन्होंने जापानी कपड़ेको लोकप्रिय बनानेकी भरसक कोशिश की और जापानियोंसे कहा कि हिन्दुस्तानमें धोती बहुत बड़ी मात्रामें बिकती हैं, इसलिए वे धोती बनाएँ। बिरलाजीने यहाँसे धोतियोंके नमूने भेजे। जापानसे धोतियाँ बनकर हमारे देशमें आयीं, किन्तु वे अच्छी किस्मकी न होनेके कारण यहाँ उन्हें नीचे भावोंमें बेचना पड़ा। फलस्वरूप बिरलाजीको घाटा हुआ, लेकिन वे हतोत्साहित नहीं हुए। वे तरह-तरहकी विलायती धोतियोंके नमूने भेजते रहे और वहाँसे धोतियाँ मँगाते रहे तथा उस समय तक घाटा सहन करते रहे, जबतक जापानी धोतियोंका स्तर ठीक नहीं हो गया। आखिरकार अच्छी किस्मकी धोतियाँ बनने लगीं और उनकी लागत भी बहुत कम बैठी। नतीजा यह हुआ कि ब्रिटेनको प्रतिस्पर्द्धा में आना पड़ा और हमारे यहाँ जापानी धोतियोंका काफ़ी प्रचलन हो गया।

बिरलाजी शुरूसे ही बड़े दयावान और धार्मिक प्रवृत्तिके व्यक्ति थे। किसीको कोई तकलीफ़ होती, वे उसे दूर करनेका प्रयत्न करते थे। इससे उनकी ख्याति देशके कोने-कोनेमें फैली। मारवाड़ी रिलीफ़ सोसाइटीके नामसे कौन परिचित नहीं है? इस सुप्रसिद्ध संस्थाकी स्थापना बिरलाजीके द्वारा ही हुई थी। आजसे ५५ वर्ष पूर्व कलकत्ताकी सूतापट्टीमें एक मकानका निर्माण हो रहा था, वहाँ एक आदमी गिर गया और उसे काफ़ी चोट लगी। कई लोग बिरलाजीके पास उनकी मल्लिक स्ट्रीट स्थित गद्दीमें गये और उस आदमीके घायल होनेकी सूचना देते हुए बताया कि उसके इलाजका कोई भी प्रबन्ध नहीं हो सका है, क्योंकि उस समय आसपासमें इस तरहकी कोई भी व्यवस्था नहीं थी। बिरलाजीने उसी समय उस व्यक्तिके इलाजका प्रबन्ध करवाया। साथ ही उन्होंने अपने मित्रोंसे इस सम्बन्धमें विचार-विमर्श किया और मारवाड़ी सहायता समितिके नामसे एक औषधालय खुलवाया। वही औषधालय आज मारवाड़ी रिलीफ़ सोसाइटीके भव्य रूपमें प्रतिष्ठित है। वे उस औषधालयकी पूरी देखभाल किया करते थे। यद्यपि पिछले कई वर्षोंसे उन्होंने सोसाइटीको प्रत्यक्ष रूपसे देखना छोड़ दिया था, फिर भी उसके बारेमें हम लोगोंसे बराबर पूछते रहते थे, कार्यकर्ताओंको सुझाव देते रहते थे और आर्थिक सहायता प्रदान करते रहते थे। वे कहा करते थे कि रुपयोंके लिए सोसाइटीका काम कभी अधूरा नहीं रहेगा।

बिरलाजीने अपने जीवनमें कई अस्पतालों, दवाखानों और धर्मशालाओंका निर्माण करवाया। वे अत्यन्त सरल एवं दयालु स्वभावके थे। उनकी सदैव यही इच्छा रहती थी कि किसी भी व्यक्तिको कोई तकलीफ़ न हो। जब वे घरसे आफ़िस आते थे, तो लिफ़्टके लिए लाइनमें खड़े लोग आपके लिए पीछे हट जाते थे। किन्तु आप सीढ़ियोंसे ही ऊपर चले जाते और किसीको भी लाइनसे नहीं हटने देते थे। ऐसी थी उनकी सहृदयता!

बाबू जुगलकिशोरजी बिरलाका पार्थिव शरीर हमारे बीचमें नहीं है, किन्तु उनकी ख्याति और उनके सत्कार्य हमें हमेशा उनकी याद दिलाते रहेंगे और उनके जीवनसे भावी पीढ़ियोंको पग-पग पर प्रेरणाएँ मिलेंगी।

●

* * *

गोस्वामी डॉक्टर गिरधारीलाल शास्त्री

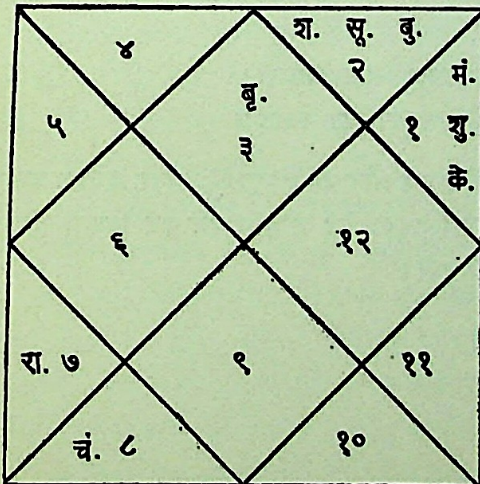
कुलं पवित्रं जननी कृतार्था

⊙ ⊙ ⊙

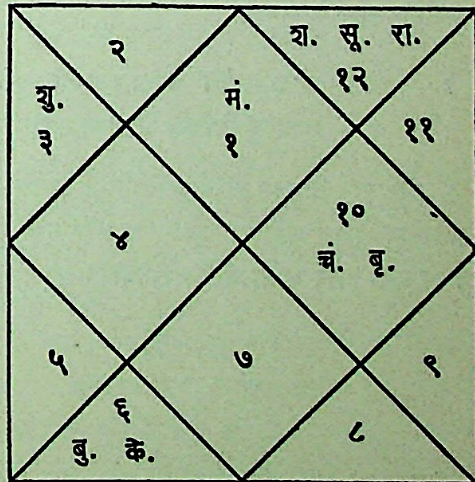
स्वर्गीय विरलाजीके जन्म और कर्म लोकोत्तर थे, वे लोकोत्तर गुण लेकर उत्पन्न हुए थे। उनका जन्म और निधन, दोनों उन्हें युगपुरुष, महापुरुष सिद्ध करता है और इसका अन्तरंग साक्ष्य हमें उनकी जन्मकुण्डलीसे प्राप्त होता है। उनके जन्मकालीन ग्रहोंकी स्थिति एवं पंचाङ्ग-विवरण इस प्रकार हैं :

तिथि : ज्येष्ठ कृष्ण प्रतिपदा, बुधवार संवत् १९४०; जन्मस्थान : पिलानी (राजस्थान) अक्षांश २८।१२ रेखांश ७५।३२ पल ६।२३, तिथि १ घ० ७.४४ प० ज्येष्ठा नक्षत्र घ० ४८ प० ५ सिद्धयोग घ० ४० प० १६ कौलवकरण घ० ७ प० ४४ जन्मसमय ८ बजकर २८ मिनट प्रातःकाल जन्मेष्टघटि पल ७।१४ लग्न मिथुन अंश २० घटी १५ दशम मीन अंश ८ घटी २५ लग्नकी होरा कर्क, द्रेष्काण सप्तमांश तुला, नवमांश मेष, द्वादशांस कुम्भ, त्रिशांश मिथुन। इस प्रकार लग्नकी परिस्थितिमें सूर्य वृष अंश ९ घटी २३, चन्द्रमा वृश्चिक अंश २० घटी ३९, मंगल मेष अंश २ घटी २८, बुध वृष अंश २८ घटी २, बृहस्पति मिथुन अंश ११ घटी १७, शुक्र मेष अंश ७ घटी ४६, शनि वृष अंश ७ घटी ३५, राहु तुला अंश १८ घटी २, केतु मेष अंश १८ घटी २। अंग्रेजी तारीख २३ मई, सन् १८८३ ई०। तदनुसार—

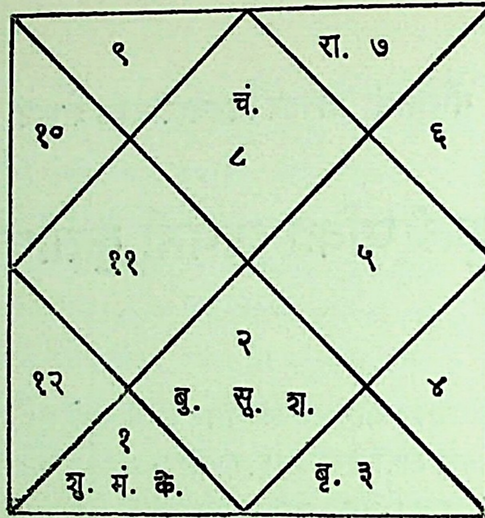
जन्माङ्ग चक्र



नवांश चक्र



चन्द्र कुण्डली



इन तीन कुण्डलियोंके आधार पर ही फलादेश कहनेका सिद्धान्त महर्षियोंने निरूपित किया है। इनकी कुण्डलीमें सबसे बड़ा योग है कर्मेश और सप्तमेश बृहस्पतिका केन्द्रस्थ होकर लग्नमें होना। इस महापुरुषको धर्मकार्योंमें सर्वोपरि दानवीर होना प्रकट करता है। बृहस्पति पुण्यकार्य, धर्म, सदाचार एवं त्याग व तपका स्वामी है। इसीलिए इस व्यक्तिका सदाचार, दान, तप, अनुकरणीय रहा है। समृद्धिशाली, सम्पत्तिशाली होते हुए भी युवाकालमें ही पत्नीके दिवंगत हो जाने पर पुनर्विवाह न करना; दीन, दुखियों, अनाथ व विधवाओं का पालन-पोषण करना; धर्म-संस्कृति, साहित्य और राष्ट्रकी बहुमुखी उन्नतिके लिए सतत् उद्योग करना; अपनी समस्त सम्पत्ति लोकोपकारमें लगा देना; मन-वचन और कर्मसे केवल पुण्यकार्य ही करना जिनकी जीवन-चर्या थी—यह सब दिव्य-गुण और कर्म उन्हें पुर्वजन्मका योगी सिद्ध करते हैं।

चन्द्रकुण्डलीमें षष्ठ, सप्तम व अष्टम स्थानमें सब ग्रहोंका होना महान् चन्द्राधियोगको प्रकट करता है। ज्योतिषशास्त्रके अनुसार :

चन्द्राधियोगे बहुशास्त्रकर्ता विद्या विनीतश्च बलाधिकारी।
मुख्यस्तु निष्कापटिको महात्मा लोके यशोवित्तगुणान्वितः स्यात् ॥

तदनुसार निश्चय ही चन्द्राधियोगमें उत्पन्न बिरलाजी शास्त्र और धर्मके रहस्यके ज्ञाता, विनीत, प्रभावशाली, उदार चरित महात्मा, लोकप्रिय और गुण-शीलसम्पन्न महापुरुष थे। उन्हें उत्पन्न कर बिरला-परिवार पवित्र हो गया और माता योगेश्वरीदेवीकी कोख कृतार्थ हो गयी।

●

* * *

श्रीविद्याधर कुलश्रेष्ठ

एक महान् क्रान्तदर्शी

⊙ ⊙ ⊙

पिछले सौ सालके भारतीय इतिहासके ऊपर दृष्टि डालने पर हमें ऐसा "सर्वतोमुखी क्रान्तदर्शी" व्यक्तित्व अन्यत्र नहीं दिखायी देता, जैसा निष्काम कर्मयोगी श्री जुगलकिशोर बिरलाका रहा है। उनकी अन्तश्चेतनामें तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था, राजनीतिक परिस्थिति, आर्थिक एवं वित्तीय दशा और धार्मिक रूढ़िवादिता आदि जीवनके विविध आयामोंके वर्तमान और भविष्यके प्रति सचेष्ट दृष्टि, नवसृजनकी भावनाका उद्रेक सहज स्वभाववश हुआ। उन्होंने अपने सीमित साधनोंसे सम्पूर्ण राष्ट्र ही नहीं, अपितु विश्वके लगभग एक तिहाई भागमें एक सक्रिय क्रान्तिका बीजारोपण किया। भारतमें तो इस परिवर्तनके पौधेको अपने रक्त-माँससे उन्होंने इतना सींचा कि वह पनपकर एक विशाल वटवृक्षका रूप धारण कर गया, जिसकी असंख्य जड़ें इस विशाल भूखण्डके विविध अञ्चलोंमें गहरी उतरकर शताब्दियों तक उसे हरा-भरा रखने का संकल्प ले बैठीं।

माहेश्वरी वैश्य परिवारमें जन्म लेनेके कारण श्री बिरलाजीको जो सहज-सुलभ व्यापारिक सूझ-बूझ और विवेक-बुद्धि अपने स्वनामधन्य पिता राजा बलदेवदास बिरलासे विरासतमें मिली थी, उसके बलपर सर्वप्रथम उन्होंने व्यापारी संसारमें एक नयी चेतना और एक नूतन क्रान्तिका सूत्रपात कर दिया। अट्ठारह वर्षीय नवयुवकने अपने पिताका साहचर्य त्यागकर बम्बईसे कलकत्ता प्रयाण किया और बीस वर्षकी अपरिपक्व अवस्थामें ही अपने अनवरत अध्यवसाय, परिश्रम, लगन और विवेकसे अपने पिताकी फ़र्मोंका वहाँ मुख्यालय स्थापित किया। इसी कार्यालयमें बैठकर उन्होंने भारतके तत्कालीन शासकोंके विरुद्ध व्यापारिक क्षेत्रमें एक नया अभियान छेड़ दिया और जापानी साड़ियों-धोतियों, अन्य वस्त्रों तथा सामग्रियोंका प्रथम बार आयात करके अंग्रेज वणिकोंको सफल चुनौती दी। भारत-श्रेष्ठि जुगलकिशोर बिरलाके मनमें फिरंगी सरकार तथा व्यापारियोंके प्रति व्याप्त घोर विद्रोहकी भावनाने ही उन्हें इस पुनीत राष्ट्रवादी अनुष्ठानके लिए सतत् प्रेरित किया। इसके साथ ही पाश्चात्य देशोंके - विशेषकर साम्राज्यवादी ब्रिटेनके प्रति बिरलाजीके हृदयमें जो अनास्था और इसके विपरीत अन्य एशियाई देशों - जापान, चीन, मलाया आदिके प्रति जो सहज भ्रातृत्वका भाव था, उसकी चरम परिणति ही उनके इस प्रयोगकी आधार-शिला थी।

तत्कालीन हिन्दू-समाजमें वर्णाश्रम धर्मको स्वीकार करनेके बावजूद वे मानव-मानवमें ऊँच-नीचके भेदभावके प्रबल विरोधी थे। महात्मा गान्धीके हरिजनोद्धार आन्दोलन तथा स्वामी श्रद्धानन्दके शुद्धि-अभियानमें श्री बिरलाजीने सदैव ठोस, सक्रिय सहयोग दिया; अछूतों, दलितों और पीड़ितोंको अपने गले लगाया तथा सामाजिक जीवनकी हर कक्षामें उन्हें बराबरीका स्थान प्रदान किया। बिरलाजी द्वारा बनवाये गये आर्य (हिन्दू एवं बौद्ध) मन्दिर, विहार आदि ही इस शतीके सर्वप्रथम ऐसे प्रतिष्ठान हैं, जिनके द्वारा हरिजन

ही नहीं; अपितु अन्य धर्मावलम्बियों, यहाँ तक कि ईसाई और किसी सीमा तक मुसलमानों तक के लिए खुले छोड़ दिए गए हैं। नई दिल्लीके श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिरका उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपिता बापूने अपने भाषणमें उस मन्दिरकी इस विशेषताका उल्लेख करते हुए बिरला-परिवारकी इस उदारता एवं विशाल हृदयताकी भूरि-भूरि सराहना की थी।

आज इस तथ्यसे सम्भवतः कोई देशवासी अपरिचित नहीं है कि गान्धीजीके नेतृत्वमें अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने देशको विदेशी दासतासे मुक्ति दिलवानेके लिए जो राष्ट्रव्यापी आन्दोलन छेड़ा था, उसे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपसे बिरला-परिवारकी ओरसे अपरिमित, ठोस सहयोग प्रदान किया गया और इसके प्रेरणास्रोत बाबू जुगलकिशोर थे। राजनीतिक क्रान्तिमें सक्रिय सहायता देकर सेठ जुगलकिशोर बिरलाने राष्ट्रीय इतिहासमें अपने परिवारका एक परम प्रतिष्ठित स्थान सुरक्षित करवा लिया है।

ब्रिटिश शासनकालमें भारतकी आर्थिक दुर्दशासे स्वर्गीय बिरलाजी सदैव चिन्तित रहा करते थे और देश-विदेशमें विविध उद्योग-धन्धे खोलकर भारतके प्राचीन, आर्थिक एवं वित्तीय गौरवको पुनः अर्जित करवानेके लिए सतत् प्रयत्नशील रहे, लेकिन स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद भी भारतकी आर्थिक अकिञ्चनता और राष्ट्रीय सरकारकी सदोष अर्थ-व्यवस्थाके प्रति उन्हें घोर असन्तोष रहा। देशको प्रशासनिक एवं वित्तीय दृष्टिसे सबल बनानेके महान् अनुष्टानमें अधिकाधिक योगदान करनेके लिए वे अपने परिवारके हर सदस्यको ही नहीं, वरन् अन्य उद्योगपतियोंको भी अपनी अन्तिम साँस तक प्रोत्साहित करते रहे।

राजस्थानके झुंझुनू जिलेके अन्तर्गत पिलानी ग्राममें ज्येष्ठ कृष्ण प्रतिपदा, संवत् १९४० विक्रमी अर्थात् २३ मई, १८८३को प्रातः ८ बजकर २८ मिनट पर राजा बलदेवदास बिरलाकी साध्वी पत्नीकी कोखसे एक पुत्र-रत्नने जन्म लिया। राजासाहबके पिता श्रीशिवनारायणने वैष्णवोंमें भगवान्‌के युगल (युग्म रूप)की उपासनासे प्रभावित होनेके कारण अपने इस ज्येष्ठ पौत्रका नाम जुगलकिशोर रखा। बादको राजा बलदेवदासके तीन पुत्र और हुए, जिनका नाम क्रमशः रामेश्वरदास, घनश्यामदास और ब्रजमोहनदास रखा गया। ये सभी नाम बिरला-परिवारकी भगवान्‌में अटूट आस्थाके परिचायक हैं। जुगलकिशोरजीकी माताका नाम **श्रीमती योगेश्वरीदेवी** था। बड़े बाबूका जन्म उस समय हुआ, जब शिवनारायण-बलदेवदास नामक व्यापारिक फ़र्म बम्बईमें स्थापित हुई थी।

बिरलाजन मूलतः क्षत्रिय हैं। आठवीं शताब्दीमें वैष्णव धर्मने भगवान् बुद्धको भी अवतार मान लिया और सभी वैश्यजन बौद्ध-धर्म छोड़कर धीरे-धीरे पुनः वैष्णव होने लगे। जगद्गुरु शंकराचार्यके समयमें वैश्योंके पुनः वैष्णव होनेका क्रम ज़ोर पकड़ता गया। इसी समय अनेकानेक क्षत्रियवर्ग भी वैश्यवृत्तिको स्वीकार करनेकी ओर प्रवृत्त हो रहे थे। इन्हीं नये वैश्यधर्मियोंसे प्रतिहारोंके "माहेश्वरी आस्पद"का प्रादुर्भाव हुआ। सम्भवतः राजस्थानी वैश्योंकी यह श्रेणी भगवान् माहेश्वरकी उपासक रही होगी। मूलरूपमें ७२ क्षत्रिय शूरवीरोंने माहेश्वरी श्रेणीका सूत्रपात किया था। इनमेंसे पँवार वंशके एक **बेहड़सिंहजी** थे, जो कालान्तरमें राजस्थानी उच्चारण परिपाटीके अन्तर्गत 'बेहड़ा', 'बेहड़ला,' 'बेड़ला' और अन्तमें 'बिड़ला' या 'बिरला' नामसे पुकारे जाने लगे। इन बिरलाओंका गोत्र 'शाण्डिल्य' है।

बिरलाओंका मूल गण राजस्थानके बुधौली ग्राममें (नवलगढ़) स्थित था, जहाँसे इनकी तीन-चार शाखाएँ अन्य कस्बों और गाँवोंमें फैलीं। इनमेंसे एक शाखा पिलानी आयी। राजा बलदेवदासजीका परिवार चार पीढ़ियोंसे पिलानी या पिलाणीमें निवास कर रहा था। पिलानीकी स्थिति शेखावाटीके अन्तर्गत रावशेखाके समयसे ही है। राजा बलदेवदासजीके जन्मके समय पिलानी सवा-डेढ़ हजारकी जनसंख्यावाला गाँव था,

* * *

जिनमें वैश्योंके लगभग सौ घर थे। इन वैश्योंमें अग्रवालोंका प्राधान्य था। बिरलाओंका केवल एक ही घर था, जिसके कारण उनकी जातीय रीतियाँ-नीतियाँ अग्रवालोंसे मिलती-जुलती पनपीं।

पिलानीमें बिरलाओंके पूर्वज सेठ भूधरमलजी थे। उनके तीन पुत्र हुए : उदयराम, माणकराम और रामसुखदास। माणकराम और रामसुखदास अन्यत्र चले गये। पिलानीका मूलवंश उदयरामजीकी सन्तानोंसे विकसित हुआ। उनके तीन पुत्र थे : शोभाराम, रामधनदास और चुन्नीलाल। चुन्नीलालजी निस्सन्तान रहे। रामधनदासजीके पुत्रादि ग्वालियर जाकर बस गये।

सन् १८५७में प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम छिड़ा, जिसे अंग्रेजोंने 'ग़दर'की संज्ञा दी। १८५८में शोभारामजीका अजमेरमें देहान्त हो गया। उस समय उनके १६ वर्षीय पुत्र शिवनारायणजी थे। पिताके देहान्तके बाद वे पिलानी लौट आये और वहींके एक वैश्य सज्जनके साथ मिलकर साधारण रोज़गार-धन्धा करने लगे। कुछ दिनों बाद उन्हें छोटे-मोटे धन्धोंमें रुचि नहीं रह गयी। वे कहीं अन्यत्र अपनी बुद्धि और भाग्यकी परीक्षा करना चाहते थे। फलतः ऊँट पर राजस्थानसे चलकर बड़ौदामें रेल पकड़ी और बम्बई पहुँच गये।

शिवनारायणजीने वहाँ पहुँचकर सट्टा खेलना शुरू किया और शीघ्र ही वह फाटकेके एक कुशल गणितज्ञके रूपमें प्रसिद्ध हो गये। उनके पुत्र बलदेवदासजी दो वर्षकी अवस्थामें अपनी माताके साथ बम्बई आये; लेकिन नौ वर्षकी अवस्थामें यज्ञोपवीत संस्कारके लिए पिलानी वापस चले गये। बारह वर्षकी अवस्थामें बलदेवदासजीका विवाह चुरूमें हुआ।

सेठ शिवनारायणजीके परिवारमें धार्मिकताका प्रभाव और वातावरण उनके पिताके समयसे ही था। इसी प्रभावके कारण शिवनारायणजी घरके किसी बच्चेके अस्वस्थ होनेपर उसकी दवा-दारू करनेके पूर्व ब्राह्मणोंको दान और भोजनकी व्यवस्था करने लगते थे। यही क्रम सेठ बलदेवदासजीका भी रहा।

राजवंशी क्षत्रिय होनेके नाते और वैश्य-वृत्ति स्वीकार करनेके बाद भी माहेश्वरी वैश्य अपनी दूकानों और फ़र्मोंमें अपने बैठनेके स्थानको 'गद्दी'की संज्ञा देते रहे, जिसका अनुकरण आज तक सभी वैश्य करते हैं।

बलदेवदासजीके परिश्रम और लगनने बिरला-परिवारको श्री, कीर्ति एवं सम्पत्तिशाली बनाना शुरू कर दिया, लेकिन जितना अधिक धनागम उनके यहाँ होने लगा, उतनी ही अधिक विनम्रता और दानशीलता उनके अन्दर आती गयी। उन्होंने व्यापारका फैलाव करते हुए काञ्चनकी सात्विक प्रवृत्तियों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया और अपने सुपुत्रोंको भी वे इसी मन्त्रका रहस्य समझाते रहे। उन्हें यह देखकर परम हर्ष होता था कि उनका ज्येष्ठ पुत्र जुगलकिशोर बाल्यावस्थासे ही सेवा-परायणता और निस्पृह कामनाका अनुसरणीय मार्ग ग्रहण करता जा रहा था।

१ जनवरी, १९१८को वायसराय चेम्सफ़ोर्डकी ओरसे सेठ बलदेवदासजीको "रायबहादुर"की उपाधि मिली। इसके लगभग सात वर्ष बाद २० फरवरी, १९२५को बिहार व उड़ीसाके गवर्नर एच० ह्वीलरने उन्हें "राजा"की उपाधिसे अलंकृत किया। उस समय राजासाहब क्षेत्र-संन्यास ले चुके थे और काशीवास कर रहे थे।

सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाने १९०३में कलकत्तेकी "बलदेवदास-जुगलकिशोर" फ़र्म खोली। बम्बई और कलकत्तेकी फ़र्में कुछ ही दशकोंमें विकसित होकर "बिरला-ब्रदर्स" नामक भारत-प्रसिद्ध फ़र्मके रूपमें विस्तार पा गयीं।

बालक जुगलकिशोरको वाणिज्य-व्यापारके काम लायक पाटी-गणित मुनीम पन्नालालने पढ़ायी थी। काठकी पाटी पर ही आँकी लिखकर जुगलकिशोरने दो अक्षर सीखे थे। यद्यपि रामेश्वरदास और घनश्यामदासको

* * *

अपनी ही स्थापित पाठशालामें बलदेवदासजीने प्राथमिक अंग्रेजी शिक्षा भी दिलवायी, तथापि उनका निश्चित मत था : 'उतना ही पढ़ो, जितना व्यापारमें काम आये। विद्वान् व्यक्ति व्यापारी नहीं हो सकता।'

ग्यारह वर्षकी अवस्थामें जुगलकिशोरजीका विवाह हुआ। बारात साठ मील दूर फ़तेहपुर गयी। वंश द्वारा पिछले तीन दशकोंमें अर्जित प्रतिष्ठाके अनुरूप बारातका साज-शृंगार हुआ। चार सौ बराती थे। एक हाथी, दस रथ, बीस घोड़े और भारी संख्या में ऊँट सजाये गये। उन दिनों ऊँटवाले मुफ़्तमें ही बारातियोंको ढोते थे, क्योंकि उनका विश्वास था कि हर जाड़ेमें यदि तीन बारातें करनेको मिल जायँ, तो उनकी खातिरदारीमें इतने लड्डू खानेको मिल जाते थे कि जिनकी ताक़तसे पूरा साल बड़े मज़ेमें व्यतीत किया जा सकता था। जिस धूम-धामसे यह बारात गयी, उसने **'पिलानीकी सेठाई'**में चार चाँद लगा दिये।

'बलदेवदास-जुगलकिशोर' फ़र्मकी स्थापनाके बादसे बड़े बाबू स्थायी तौरपर कलकत्तेमें ही रहने लगे। १९०१में विशुद्धानन्द विद्यालयको मासिक चन्दे पर चलानेकी व्यवस्था हुई। १९०४में रामदेव चोखानीजी इस विद्यालयके मन्त्री बनाये गये। उनके कार्यकालमें विद्यालयको विस्तृत रूप देनेका निश्चय किया गया, जिसके लिए दो लाख रुपये चन्दा एकत्र करनेका काम लगभग नौ मासमें पूरा हुआ। बलदेवदास-जुगलकिशोर फ़र्मने भी चन्दा दिया। सार्वजनिक क्षेत्रमें बिरला-परिवारका यह पहला आर्थिक सहयोग था, जिसमें सेठ जुगलकिशोरकी भावी दानशूरताके अंकुर स्पष्ट परिलक्षित हो गये। अन्तरंग साक्ष्यके आधार पर कहा जाता है कि इससे पूर्व बाबू जुगलकिशोरजीने अपनी कमाईके एक लाख रुपएका गुप्तदान कलकत्ताकी एक गोशालाको दिया था।

प्रवासियोंके सामाजिक नियमादि विशृंखलित हो जाया करते हैं। कलकत्तेके मारवाड़ी समाजमें अनेक कुरीतियाँ जड़ पकड़ गयी थीं, जिनके विरुद्ध जातीय शुभचिन्तकोंने आवाज़ उठायी। मारवाड़ी एसोसिएशनकी एक समितिने समाज-सुधार सम्बन्धी २६ नियम बनाये, जिनका पालन अनिवार्य रूपसे स्वीकार किया गया। इसके लिए बड़ा बाजारके सभी राजस्थानी भाइयोंकी १९०८में एक महती सभा हुई, जिनमें इन नियमों पर विचार किया गया। अपना नैतिक समर्थन देने के लिए नवयुवक जुगलकिशोरजी इस सभामें शामिल हुए। सम्भवतः यह उनकी सर्वप्रथम सामाजिक गोष्ठी थी, जिसमें समाज-सुधारकी आवश्यकता पर बल देते हुए उन्होंने अपने संक्षिप्त भाषणसे सभीको प्रभावित कर दिया।

बिरला-बन्धुओंके सम्बन्धमें स्वर्गीय राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादजीने लिखा था : "गान्धीजीकी शिक्षाओंमें एक यह भी उपदेश था कि धनी लोग अपनेको धनका ट्रस्टी (संरक्षक) समझें और ट्रस्टकी सम्पत्तिकी तरह अपने धनका उपयोग दूसरोंके लाभके लिए करें।"

"देशके विभिन्न भागोंमें जो बहुसंख्यक शिक्षा-संस्थाएँ, धार्मिक मन्दिर, धर्मशालाएँ या अस्पताल हैं, जिनके केन्द्र पिलानी और दिल्लीमें हैं, वे इस बातके प्रमाण हैं कि बिरला-बन्धुओंने गान्धीजीकी शिक्षाके इस भागको कुछ कम मात्रामें ग्रहण नहीं किया है। उन्होंने खूब धन कमाया और उसी तरह उदारतापूर्वक प्रत्येक सदुद्देश्यके लिए मुक्त-हस्तसे धन व्यय किया। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि कोई भी ऐसा अच्छा कार्य कठिनाईसे मिलेगा, जिसके लिए उनसे सहायताकी प्रार्थना की गयी हो और उसका शीघ्र ही स्वीकारात्मक उत्तर न मिला हो।"

सेठ जुगलकिशोर बिरलाके मन-मस्तिष्कमें अपने उपार्जित धनका ट्रस्टी मात्र होनेकी भावना पारिवारिक संस्कारवत् प्रारम्भसे ही थी, जिसकी प्रारम्भिक अभिव्यक्ति दरभंगाके बाढ़पीड़ितोंको दी गयी सहायतामें हुई थी। कलकत्तेकी बलदेवदास-जुगलकिशोर फ़र्मके उनके निजी कक्षमें कुछ मारवाड़ी युवकों की

* * *

विचार-गोष्ठी हुई; जिसमें अनाथों, पीड़ितों और अनाश्रितोंको सहायता देनेके लिए स्थायी व्यवस्था करनेका निर्णय किया गया। २ मार्च, १९१३को मारवाड़ी सहायता समितिके नामसे एक संस्था बनी, जिसके प्रथम अध्यक्ष बड़े बाबू मनोनीत किये गये। इस संस्थाने उसी वर्ष दरभंगाकी बाढ़में बड़ा काम किया और समाजको दानवीर बिरलाजीकी सेवा-परायणताका परिचय मिला।

सन् १९११में महामना मदनमोहन मालवीय कलकत्ते गये। विशुद्धानन्द विद्यालयमें जाकर उन्होंने अपने भाषणमें विद्यालयके नये भवनकी आवश्यकतापर बल दिया। छह कार्यकर्ताओंने तत्काल संकल्प किया कि जब तक भवन नहीं बनेगा, तब तक वे पगड़ी धारण नहीं करेंगे। इस महान् कार्यके लिए तीन लाख रुपयेकी जरूरत थी, जिसे पूरा करनेके लिए बलदेवदास-जुगलकिशोर फ़र्मने मुक्तहस्तसे दान दिया।

महामनाके सम्पर्कमें आकर सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाकी दानी प्रवृत्तिको विशेष प्रोत्साहन मिला और उनका दृष्टिकोण दानके क्षेत्रमें इतनी व्यापकता प्राप्त कर गया कि देश-विदेशका समस्त हिन्दू-समाज अभूतपूर्व रूपमें उससे लाभान्वित हुआ। उन्होंने देशके सभी महत्वपूर्ण धार्मिक स्थानोंमें मन्दिर, धर्मशालाएँ और अस्पताल बनवाये। उनकी उदार दानशीलताने देशभरके अन्य मन्दिरोंको भी लाभ पहुँचाया। उनके द्वारा संस्थापित 'बिरला जनकल्याण ट्रस्ट'ने देशभरमें पुराने जीर्ण-शीर्ण मन्दिरोंका उद्धार और पुनर्निर्माण किया। उनके द्वारा काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके हातेके भीतर बनवाया गया विश्वनाथ मन्दिर और दिल्लीका श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर अपने-आपमें उत्कृष्ट और भव्य कलाकृतियाँ हैं।

बड़े बाबूके पिता राजा बलदेवदास बिरला उनके लिए कहा करते : 'सन्त है, महात्मा है, दानी है। लोकसेवा, परोपकारमें इतना लगा रहता है कि कभी-कभी खुद तंग हो जाता है। दिल्लीका मन्दिर, वृन्दावनका मन्दिर, काशी विश्वविद्यालयका मन्दिर और तमाम धर्मशालाएँ उसने बनवायीं और सभी जगह मेरा नाम देता है। मैं कहता हूँ, तब भी अपना नाम नहीं लिखाता।'

२३ फरवरी, १९२८को लेजिस्लेटिव असेम्बलीमें अपने भाषणमें लाला लाजपतरायने कहा था: "...बहुत-सी हिन्दू संस्थाओंने पिछड़ी जातियोंके विद्यार्थियोंको केवल साधारण स्कूलोंमें शिक्षा प्राप्त करने तथा उनके विरुद्ध प्रचलित विधि-निषेधों या आपत्तिजनक क़ानूनके हटानेमें प्रयत्न ही नहीं किया है, वरन् इसके लिए विशेष स्कूल खोलने और विशेष छात्रवृत्तियोंकी व्यवस्था करनेका भी प्रयत्न किया है। मैं एक व्यक्तिको जानता हूँ, जो गत पाँच-छह वर्षोंसे पिछड़ी जातियोंकी शिक्षाके लिए प्रतिमास पन्द्रहसे बीस हजार रुपये तक व्यय कर रहा है। और वह व्यक्ति मेरे मित्र श्री घनश्यामदासजी बिरलाके बड़े भाई हैं।"

एक ओर बिरलाजी महामना जैसे कट्टर सनातनपन्थी वैष्णवके मित्र और अन्तरंग सहायक थे, जिनकी इच्छापूर्तिके लिए उनके स्वर्गवासके बाद काशी विश्वविद्यालयके विश्वनाथ मन्दिरका निर्माण कराया, तो दूसरी ओर वे हरिजनोंके मुक्तिदाता राष्ट्रपिता बापूके भी घनिष्ट मित्र और वास्तविक सहायक थे। वस्तुतः बड़े बाबूमें सामाजिक अन्याय और पाखण्डके विरुद्ध गहरा विद्रोह था। आजसे तीन-चार दशक पूर्व हिन्दू-समाजमें अस्पृश्य माने जानेवाले लोग सामाजिक दान-दक्षिणा और अन्य लाभोंसे वंचित रह जाते थे। हरिजनों-को सामान्य स्कूलोंमें शिक्षा ग्रहण करनेका अधिकार नहीं था। उनके लिए मन्दिरोंमें प्रवेश-निषेध था ही, यहाँ तक कि वे सामान्य कुओं-तालाबोंसे पानी भी नहीं भर सकते थे। हिन्दू-समाजमें इस आन्तरिक भेदके विरुद्ध अन्य समाज-सुधारकोंके समान बिरलाजीने भी आवाज बुलन्द की; लेकिन साथ-ही-साथ उनकी तात्कालिक सहायतार्थ अछूतोंके लिए स्कूल खोले, कुएँ-तालाब बनवाये, छात्रवृत्तियाँ जारी कीं और उनके अलग मन्दिर भी बनवा दिये, जिनमें कोई हरिजन पुजारी ही आरती-वन्दन करता था।

* * *

सेठजी विशाल हिन्दू-बन्धुत्वके समर्थक थे। पण्डित मदनमोहन मालवीयजीकी प्रेरणासे काशीमें हुए हिन्दू महासभाके अधिवेशनमें वे शामिल हुए और बादको इस संगठनको बराबर गुप्त या प्रकट रूपसे दान देते रहे। फिर भी श्री जुगलकिशोरजी बिरलाका धार्मिक-आन्दोलन पुराणपन्थी और संकीर्ण कभी नहीं बना।

काशीमें होलीके दिन बिरला-भवनके तमाम कर्मचारी अबीर-गुलाल लेकर बड़े बाबूके पास पहुँचे। उनका स्वागत करते हुए उन्होंने एकाएक पूछ लिया : "झमकुआ नहीं आया क्या? उसे बुलाओ।"

झमकुआ कोठीका मेहतर था। उसे खोजकर लाया गया। बाबूजीने उसके माथे पर टीका लगाया और अपने मस्तक पर भी उससे टीका लगवानेके बाद वह उससे गले मिले।

एक मेहतरने तो बाबूजीको एक बार सात सौ रुपयेमें बेच ही दिया। बात पिलानीकी है। वहाँ कोठी पर एक वृद्ध मेहतर सफाईके लिए आता था। उसकी जगह एक दिन एक युवक मेहतरको देखकर सेठजीने उससे पूछा कि पुराना सेवक कहाँ गया। युवकने बताया कि मैंने आपकी बड़ी सराहना सुनी थी और इससे आपकी सेवा करनेका इच्छुक था। जब उस पुराने मेहतरसे मैंने अपनी इच्छा व्यक्त की, तो उसने इसके लिए सात सौ रुपये माँगे। मैंने रुपया दे दिया और आपकी सेवाका अवसर मुझे प्राप्त हो गया।

इसके बाद बड़े बाबूने पुराने मेहतरको बुलवाया। उसे प्रेमसे मीठी फटकार सुनाकर कहा : "मुझे काम तुम्हींसे करवाना है। रुपयेकी जरूरत थी, तो मुझसे कहना चाहिए था।" उस मेहतरको उसी समय एक हज़ार रुपये बिरलाजीने अपनी ओरसे दिए।

सन् १९२९में अपनी धर्मनिष्ठ और सेवापरायण पत्नीके देहान्तके बाद उन्होंने अनेक परोपकारी ट्रस्ट स्थापित किये और उनमें तथा अन्य सार्वजनिक परोपकारी कार्योंमें स्वोपार्जित सारी सम्पत्तिको लगाकर गान्धीजीके उपदेशको व्यावहारिक रूप प्रदान किया। उनकी धर्मपत्नीकी स्मृतिमें स्थापित 'गृहविज्ञान कॉलेज' आज कलकत्तेमें अपने ढंगकी सबसे अग्रणी संस्था है। यद्यपि उनके पारिवारिक सदस्य तथा मित्र-सहयोगी चाहते थे कि वे दूसरा विवाह कर लें, लेकिन लौकिक आमोद-प्रमोदसे विरक्त बीसवीं शताब्दीके इस विदेहने अपने जीवनका चरम लक्ष्य तो समाज, देश और धर्मकी सेवा बना लिया था, अतः घर-द्वार, पत्नी-परिवारसे उसे क्या लेना-देना! पत्नी-वियोगके बाद उन्होंने कठोर ब्रह्मचर्यव्रतका पालन किया। यों लोकाचारकी दृष्टिसे अपने अनुज श्री घनश्यामदास बिरलाकी प्रथम स्वर्गीया पत्नीसे उत्पन्न एकमात्र पुत्र लक्ष्मीनिवासजी बिरलाको उन्होंने गोद लेकर और अपना धर्मपुत्र बनाकर अपने वानप्रस्थ-जीवनकी सम्पूर्ण विरासत उनके नाम लिख दी।

बिरलाजीने उदात्तता, उदारता और विशाल हृदयताको सृजनात्मक जीवनमें एक ठोस और भावात्मक अर्थ प्रदान किया। उन्होंने जीवनमें धर्मको जिस व्यवस्थित ढंगसे अर्जित और आत्मसात् किया था, वैसा बहुत कम देखनेको मिलता है। सच्ची गीतोक्त भावनासे उन्होंने अपने समस्त कार्य अनासक्त होकर किये। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि वे गीताके मूर्तिमान भाष्य थे, आत्म-विज्ञापन और प्रदर्शनके कोलाहलसे सर्वथा मुक्त अपने लघुतम रूपमें एक महामानव!

भारत-श्रेष्ठि जुगलकिशोर बिरला विविध भारतीय आर्य हिन्दू-धर्मोंके विराट् समन्वय थे। ऐसे सभी लोगोंको जिनके धर्मका मूल उद्गम स्थान भारत था; उन्हें वे अनिवार्यतः हिन्दू मानते थे और इस प्रकार सनातनी, आर्यसमाजी, जैन, सिख, बौद्ध आदि सभी जनोंको आर्य हिन्दू-धर्मके एक सूत्रमें बाँधनेके लिए वे आजीवन क्रान्तिकारी प्रयत्न करते रहे।

व्यापार-जगत्में बिरलाजी अपनी आयुके उषःकालमें ही अपनी तीक्ष्ण विद्रोही बुद्धिसे विख्यात हो चुके थे। मैनचेस्टर और लिवरपूलके वस्त्रोंका बहिष्कार करके उन्होंने जापानसे वस्त्रादि आयात किये; यद्यपि

* * *

इस क्षेत्रमें लाखों रुपयोंका घाटा उन्हें उठाना पड़ा। इस कार्यकी पृष्ठभूमिमें तत्कालीन ब्रिटिश शासकोंके प्रति उनकी विद्रोह-भावना और उत्कट राष्ट्रप्रेम था, जिसने उन्हें अंग्रेज वणिकोंसे घृणा करनेके लिए प्रेरित कर विकसित पड़ोसी एशियाई देशोंकी ओर हाथ बढ़ानेके लिए प्रेरित किया।

चीन उस समय रहस्यके आवरणमें लिपटा हुआ था। भारतमें तब उस देशके सम्बन्धमें शायद ही कोई कुछ जानता हो। चीनकी एक बहुत बड़ी संस्था बौद्ध थी। इसलिए स्वर्गीय जुगलकिशोरजीने दो व्यापारिक दूतोंको चीन भेजा। यद्यपि बाहरसे यह व्यापारिक मिशन था, तथापि भीतरसे उनका उद्देश्य चीनके साथ हार्दिकतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना था।

और आषाढ़ कृष्ण २ सं० २०२४ की रात्रिको १२ बजकर ४५ मिनटपर इस शताब्दीके महानतम मानवसेवीने अपने कीर्तिमय शरीरसे विद्यमान रहते हुए पाञ्चभौतिक शरीरका त्याग किया - अपने आराध्य भगवान् श्रीकृष्णको अन्तिम प्रणामाञ्जलि अर्पितकर।

अपनी मृत्युके सम्बन्धमें तपःपूत बिरलाजीको कुछ पूर्व ज्ञान-सा था। सन् १९६१में नगवामें गंगातट पर विराजमान स्वामी सुखानन्दजीसे बिरलाजीने पूछा : "भगवन्, मैं कितने दिन और जिऊँगा?" स्वामी जीने उत्तर दिया : "आप तो अमर हैं सेठजी!"

इस उत्तर पर जुगलकिशोरजी हँस पड़े। लेकिन दूसरे ही क्षण उन्होंने गम्भीर स्वरमें कहा : "ऐसी बात नहीं है; जो आया है, उसे तो जाना ही होगा। बाकी अभी पाँच वर्ष तक मन्दिर निर्माणकार्यमें लगेंगे, मैंने मालवीयजीको वचन दिया है, उसे पूरा करना है, सो मेरी आत्मा कहती है कि पाँच वर्ष तक कुछ होनेको नहीं, बादकी नहीं कह सकता।"

उनके देहान्तके बाद दूसरे दिन दिल्लीमें यमुनाके निगम बोध घाटपर उनके पुत्र श्री लक्ष्मीनिवास बिरलाने उनका और्ध्वदैहिक-संस्कार सम्पन्न कर दूसरे दिन रविवारको अवशेष संचित किया और हरिद्वारमें ले जाकर उन्हें गंगाजीमें प्रवाहित कर दिया।

श्री जुगलकिशोरजीका जीवन जाह्नवीके समान अकलुष और लोकोत्तर गुण-सम्पन्न रहा। उन्होंने बिरला-परिवारमें अवतरित होकर वंशको समुन्नत और समृद्ध बनाकर नीतिकारोंके 'सजातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्' - इस वचनको सार्थक सिद्ध कर दिया।

●

आर्य (हिन्दू) धर्ममें सत्य और तर्कको केवल सिद्धान्त रूपमें ही नहीं बल्कि क्रियात्मक रूपमें स्वीकार किया गया है। इस क्रियात्मक रूपका सबसे बड़ा उदाहरण भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें प्रस्तुत किया है।
स्व० श्री जुगलकिशोरजी बिरलाने स्वाधीनचिन्तन और सत्यान्वेषणकी प्रेरणा गीताके चिन्तन, मननसे प्राप्त की थी।

* * *

श्रीकेदारनाथ शर्मा अग्निहोत्री

बड़े बाबू

⊙ ⊙ ⊙

आज एक ऐसे महान् पुरुषका पावन-स्मरण किया जा रहा है; जो अगाध है, अनेक लेखनियों द्वारा भी उसका अंकन अपूर्ण ही रहेगा। यदि उनके सम्पर्कमें रहनेवाले सभी एक तन्त्रेण प्रयास करें, तो सम्भव है उस महान् व्यक्तित्वका सम्यक् पूर्णाङ्कन हो सके।

स्वर्गीय बड़े बाबूका आचरण कर्मयोग, त्याग एवं अहंकार-शून्यतासे पूर्ण और गीता तथा उपनिषद् वाक्यार्थोंसे ओतप्रोत था। उनके कार्योंको देखने मात्रसे वाक्यार्थ स्फुट प्रतीत होते थे। युगोंके सन्त, विद्वान्, नेता और महापुरुषोंकी सतत् सेवाके द्वारा उनके उपदेशोंको श्रद्धा एवं विश्वाससे ग्रहणकर वे अपनेको तदनुरूप बनाते हुए सदैव कारुण्य-दैन्यभावसे उनसे अपनी अपूर्णता ही सूचित करते थे। मेरा हृदय यह कहनेको बाध्य हो रहा है कि बड़े बाबू अपने अटल विश्वासके कारण गीताके भावसे भावित थे।

उनका जन्म ऐसे माता-पिताके द्वारा हुआ था, जो (स्वर्गीय राजा बलदेवदासजी बिरला, स्वर्गीया श्रीमती रानी योगेश्वरीदेवीजी) बिरला-परिवारके ऐश्वर्य, समृद्धि और सत्कीर्तिके मूल वृक्ष थे। उनको चार सुयोग्य पुत्र-रत्न और तीन पुत्रियोंके माता-पिता होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अपने जीवनमें व्यापारको समुद्रकी भाँति बढ़ाते हुए भी मानवजीवनकी सार्थकताके लक्ष्यकी पूर्ति वे लोग अपने जीवनका प्रधान अंग समझते थे। व्यवहारमें अत्यन्त कड़े होते हुए भी चित्तमें सदैव दया रहती थी। अपने परिवार तथा अपने सम्पर्कमें रहनेवालोंके साथ ऐसा निग्रहानुग्रह पूर्ण व्यवहार करते थे, जो योग्य बन जाता था। जब इन लोगोंने काशीमें निवास प्रारम्भ किया, तब ऐसा संयमित कार्यक्रम बनाया कि आहार-विहार, स्नान-उपासना और दान-परायणता अन्तिम क्षण तक एक रूपसे चलती रही। उसी प्रकार राजासाहबकी धर्मपत्नीका भी, जो शतायु होने पर भी, देहावसानके एक दिन पूर्व तक गंगास्नान, गौरीशंकर महादेवजीका दर्शन और अन्नदान देकर चिरशय्या पर गयीं। दिव्य-दम्पतिकी दिनचर्या सदैव विद्वानों, छात्रों एवं अनाथोंको सन्तुष्ट करनेमें ही व्यतीत होती थी। सभी कार्योंका उनका समय निश्चित था। किसी बृहत् आयोजनके समय उनके दैनिक कार्योंमें कोई परिवर्तन नहीं होता था। उद्यानकी उनकी विद्वत्-गोष्ठीमें जानेवाली गाड़ी नगरवासियोंके लिए घड़ीका काम देती थी।

ऐसे आदर्श पिताके द्वारा जन्म लेकर बड़े बाबूने अपनी पितृभक्तिका जैसा निर्वाह किया, वह कल्पनातीत है। उनके स्वास्थ्यमें जब दौर्बल्य आ गया, तब उनको अधिक प्रवास हानिकारक होता था, फिर भी माता-पिताका सदैव दर्शन, उनकी सेवा एवं आज्ञापालनसे कदापि अपनी सेवाकी सम्पूर्ति नहीं मानते थे। उनका काशी-आगमनका कार्यक्रम बना ही रहता था। कब आ रहे हैं, इसका उत्तर केवल एक ही होता था, जब भी

* * *

स्वास्थ्यमें सुधार हो जाये। यही यहाँसे जानेका कारण भी होता था। वे अपने सारे जीवनका लक्ष्य निष्काम भावनासे स्वदेश तथा विदेशोंमें भारतीय-धर्म और संस्कृतिकी रक्षा, नूतन निर्माण, संरक्षण और उसके प्रचारमें ही मानते थे। किसी भी कर्मफलका उससे सम्बन्ध न हो, अतः उनका उद्देश्य "तत्कुरुष्वमदर्पणम्" था। कदाचित् कोई कर्मफल लिप्त होनेके लिए बाध्य करता था तो ईश्वरार्पण बुध्या ही पूज्य माता-पिताके चरणोंमें उसे समर्पण कर देते थे। यही कारण था कि अनेक सांस्कृतिक, शैक्षणिक भवन, देवमन्दिर, तीर्थ-आश्रम, धर्मशालादिका निर्माण-कार्य किया, जो ऐतिहासिक दृष्टिसे कई शताब्दियों तक अपनी तुलनामें अद्वितीय ही सिद्ध होगा, किन्तु कहीं भी अपने नामका सम्पर्क नहीं होने दिया। बल्कि सभीको माता-पिताके नामसे ही कीर्तिमान किया।

उन्होंने अपने जन्मदाता पिताके अतिरिक्त स्वनामधन्य महामना मदनमोहन मालवीयजीकी सेवा एवं आज्ञापालन उनके जीवन-काल पर्यन्त की।

जब महामनाका अन्तिम समय आया, तब बाबूजी काशीमें ही थे। नित्य दर्शनार्थ जाया करते थे। मालवीयजी बहुधा अचेतावस्थामें ही थे। अनेक प्रकारकी परिचर्यामें सहयोग देते हुए निरन्तर सेवामें रहनेवाले सज्जनोंसे बड़े बाबू यही पूछते थे कि 'पूज्य बाबूजी जब चैतन्य होते हैं, तब कुछ कहते भी हैं।' जब बड़े बाबूको महामनाका अन्तिम वाक्य कर्णगोचर हुआ कि 'सब कार्य भगवान्ने पूरा कराया, केवल विश्वनाथ-मन्दिरका संकल्प अधूरा रह गया।' तो यह सुनते ही बड़े बाबूने कहा कि 'जब चैतन्य हों, बाबूजी (मालवीयजी) को हमारा सन्देश कह दीजियेगा कि उसकी चिन्ता न करें, उनका संकल्प उनके आशीर्वादसे हम पूरा कर देंगे।' बड़े बाबूने उस संकल्पको अपने जीवनकालका एक महत्वपूर्ण लक्ष्य बना कर पूरा कर दिया।

विश्वविद्यालयमें विश्वनाथ मन्दिर निर्माण-कमेटी थी। बहुत-सा कार्य बड़े बाबूको उसकी आज्ञासे करना पड़ता था। कभी-कभी मतभेदके कारण अधिक कठिनाई होती थी। कई बार प्रासाद एवं मूर्तिनिर्माणमें महत्वपूर्ण परिवर्तन करना पड़ा। जब मूर्तिस्थापनाके विषयमें विचार-विनिमय चला, तब स्वर्गीय गोविन्द मालवीयने कहा कि पिताजीकी ऐसी इच्छा थी; तो बड़े बाबूके नेत्रोंसे अश्रुधार बहने लगी। बड़े विनीत स्वरोंमें उन्होंने कहा कि : 'गोविन्दजी, आप उनके पुत्र अवश्य हैं, किन्तु यदि धृष्टता न समझें; तो उनके वाक्योंका समादर मेरे हृदयमें आपसे कम नहीं है।' मूर्ति-प्रतिष्ठामें जो कठिनाई हुई, उसे बड़े बाबूने अपने अगाध धैर्यके बल पर अविकृत रूपेण सम्पादित किया। केवल यही अभाव उनको रहा कि इतना बड़ा कार्य जिस समारोहसे होना चाहिये, नहीं हो सका।

●

सदाचारी पुरुष एकान्तप्रिय, एकाग्रचित्त, एकनिष्ठ होता है। उसका एकाग्रतापूर्वक किया हुआ विचार असम्भव को सम्भव कर देता है। सच्ची आवश्यकताका बोध कर देता है और आवश्यकताकी पूर्तिका मार्ग भी बना देता है।

* * *

श्रीब्यौहार राजेन्द्रसिंह

आदिवासियोंके हितैषी बिरलाजी

⊙ ⊙ ⊙

स्वर्गीय जुगलकिशोरजी बिरलाका धर्म-प्रेम अनुपम था। उनकी विशेषता यह थी कि उनका धर्म-प्रेम सेवा-रूपमें प्रकट होता था। बौद्ध, जैन तथा सनातनी : समीको वे आर्य-धर्मके सम्प्रदाय समझते थे और समीसे प्रेम करते थे। उनके बनवाये हुए मन्दिरोंमें समीके प्रवर्तकों तथा आचार्योंके भित्ति-चित्रों, वाणियोंका अंकन इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। वे धर्मके सिद्धान्तोंका केवल प्रचार ही नहीं करते थे, अपितु उनकी रक्षा करनेमें भी पूरा योगदान करते थे। आर्यधर्मके प्रति उनकी महत्वबुद्धि इतनी अधिक थी कि उसका त्याग या धर्म-परिवर्तन वे किसी प्रकार सहन नहीं कर सकते थे। यदि लोभ, भय या प्रमादवश कोई व्यक्ति या समाज धर्म का परित्याग या परिवर्तन करने पर बाध्य हो जाता था, तो इस प्रवृत्तिको रोकने और धर्म-परिवर्तन करनेवालोंको शुद्ध कर मूल धर्ममें वापिस लानेके लिए वे व्याकुल हो उठते थे।

वनवासी-सेवा मण्डलके उपाध्यक्षके नाते मुझे मध्यप्रदेशके वनवासियों और पिछड़ी जातियोंके सम्पर्कमें आनेका अवसर काफी मिलता था। हरिजन-सेवक-संघ (महाकोशल)के अध्यक्षके नाते हरिजनोंके भी सम्पर्कमें आता था। वनवासियों और हरिजनोंको प्रलोभन या सुविधाएँ देकर धर्म-परिवर्तन करनेका संगठित रूपसे प्रबल प्रयत्न किया जा रहा था और इस कार्यके लिए विदेशोंसे प्रचुर धन-राशि आती थी, जो आज भी जारी है। मध्यप्रदेशके पिछड़े और जंगली भागोंमें यह कार्य बहुत सरलतासे हो सकता था, क्योंकि वे रेल-पथ और सड़कोंसे दूर होनेके कारण जनताकी दृष्टिसे ओझल और शासन द्वारा भी उपेक्षित रहते थे। बहुतसे ईसाई मिशनरी इन स्थानों पर डेरा डालकर पड़े हुए थे और रोगियोंके लिए अस्पताल तथा विद्यार्थियोंके लिए पाठ-शालाएँ और छात्रावास खोलकर उन्हें भोजन-छाजन आदिका प्रलोभन देकर ईसाई बनानेका कार्य व्यापक परिमाणमें चलाते थे। श्री एलविन तथा उनके साथी जनजातियोंके अनुसन्धान-कार्यका बहाना लेकर इन दुर्गम स्थानोंमें रह रहे थे और आदिवासी स्त्रियोंसे शादी-ब्याह तक कर उनमें घुलमिल गये थे। एलविनने पाटनगढ़ नामक स्थान (जिला मण्डला)में अपना केन्द्र बनाया था।

वनवासियों और हरिजनोंके हितैषी श्री अमृतलाल ठक्कर बापाका ध्यान इस ओर गया। उन्होंने गुजरातमें भील-सेवा-मण्डलकी स्थापनाके बाद मध्यप्रदेशमें गोंड-सेवा-मण्डलकी स्थापनाकी इच्छा प्रकट की। उनके साथ मुझे भी मण्डलाके अन्तरङ्ग भागोंकी यात्रा करनेका अवसर मिला। गमनागमनकी सुविधाएँ न होते हुए भी ठक्कर बापाने वृद्धावस्थामें भी डण्डी पर तथा मैंने घोड़े द्वारा इन स्थानोंकी यात्रा की। तब पता लगा कि सिझौरा सरीखे जिला-केन्द्रसे पचासों मील भीतर मिशनरियों द्वारा नार्मल स्कूल स्थापित किया गया है, जिलेके शासनकी ओरसे सहायता भी मिल रही है। उक्त स्थान पर पहुँचने पर देखा कि विशाल भवन खड़े

* * *

हुए हैं, जिसमें सैकड़ों शिक्षक प्रशिक्षित किये जा रहे हैं तथा हजारों विद्यार्थी छात्रावासोंमें रहकर भरपेट भोजन पा रहे हैं और सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित हैं। यह सब देखकर तो प्रसन्नता हुई, किन्तु जब उनका नाम पूछा तो किसीने डेविड और किसीने फिलिप्स बतलाया और धर्म पूछने पर कहा कि वे 'कैथोलिक' हैं। ध्यानसे देखा तो उनके गलेमें मरियमके चित्र और क्रूससे अंकित लॉकेट लटक रहे हैं; यह सब देख-सुनकर सारा रहस्य खुल गया और शिक्षाके नाम पर धर्म-परिवर्तनका कार्य रोकनेका निश्चय कर लिया। लौटते ही शासनसे लिखापढ़ी करके इन संस्थाओंको मिलनेवाला अनुदान बन्द कराया। कांग्रेसका मन्त्रिमण्डल बन चुका था, किन्तु वह धर्मपरिवर्तन रोकनेमें अशक्त तथा उदासीन था।

इस कार्यके लिए मैंने हिन्दूधर्मके प्राण पण्डित मदनमोहन मालवीयकी सलाह लेना उचित समझा। वे उस समय प्रयागमें बीमार पड़े थे। सारी बातें ध्यानसे सुननेके बाद उनका कोमल हृदय दहल उठा और उनकी आँखें छलक उठीं। रुग्णावस्थामें भी उन्होंने एक पत्र लिख मेरे हाथ में दिया। उस पत्रपर अंकित था: "श्री जुगलकिशोरजी बिरला।" मैंने वह पत्र ले जाकर काशीमें बिरलाजीको दिया और सारा हाल सुनाया। उनकी भी वही दशा हुई, जो मालवीयजीकी हुई थी। उनके व्यथित हृदयसे निकले हुए ये शब्द मुझे आज तक याद हैं :

"यह तो बहुत भयंकर बात आपने सुनायी। यह काम तुरन्त बन्द होना चाहिए। इस कार्यके लिए पैसेकी चिन्ता मत कीजिए। गरीब वनवासियोंके लिए औषधालय और पाठशालाएँ खोलनेमें जो रुपया लगे, मुझसे लीजिये; पर एक काम और कीजिये, धर्म-परिवर्तन बन्द करना ही काफी नहीं है। जो लोग विधर्मी हो गये हैं, उनकी शुद्धि कर फिरसे सनातनधर्ममें लाना जरूरी है। इस कामके लिए जगह-जगह प्रचारक नियुक्त कर दीजिये।"

सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। आशातीत सफलता मिल जानेसे उत्साह बढ़ गया। वनवासी-सेवा-मण्डलकी ओरसे अधिक शालाएँ और आश्रम खोलनेका कार्य प्रारम्भ कर दिया गया। इनके अतिरिक्त कई स्थानों पर प्रचारक भी नियुक्त कर दिये गये। यह कार्य एक वर्षसे अधिक चलता रहा। अधिकांश पाठशालाएँ शासनको हस्तान्तरित कर दी गयी हैं और संस्थाका नाम भी 'वनवासी-सेवा-मण्डल' हो गया है।

बिरलाजी द्वारा सहायता मिलनेका फल यह हुआ कि धर्म परिवर्तनके कार्यमें बहुत कुछ रुकावट आ गयी और बहुतसे लोगोंने पुनः हिन्दू-धर्म ग्रहण कर लिया; किन्तु जातिबन्धनके कारण अपनी जातियोंमें वे सम्मिलित नहीं हो सके। मिशनरियों द्वारा धर्म-प्रचार-कार्यकी जाँच करनेके लिए एक कमेटी भी स्थापित की गई। फिर भी शासनकी तथाकथित 'धर्मनिरपेक्षता' तथा जनताकी उपेक्षाके कारण मिशनरियोंका प्रचार-कार्य वनवासी-क्षेत्रोंमें फिरसे जोर पकड़ रहा है। अतः आज फिर जुगलकिशोर बिरला-जैसे धर्म-प्रेमीका स्मरण हो आता है और उनके प्रति श्रद्धा जाग उठती है।

●

श्रीहरिमोहन मालवीय

विशाल हिन्दुत्वके स्वप्नद्रष्टा

⊙ ⊙ ⊙

विश्व-हिन्दू-परिषद्के विगत कुम्भके अवसर पर प्रयागमें आयोजित विशाल सम्मेलनका सफलता-पूर्वक समापन हुआ। परिषद्के मंचपर हिन्दू-धर्मके विविध सम्प्रदायोंके आचार्य और प्रमुखोंका यह अद्‌भुत समवाय कभी भुलाया नहीं जा सकता। सारे संसारके हिन्दुओंका हित-संरक्षण करनेवाली इस प्रकारकी संगीतिका स्वप्न कई बार देखा गया था, लेकिन उसे प्रभावी और मूर्तिमान रूप यह परिषद् ही दे पायी। सक्रिय कार्यकर्ता होनेका सौभाग्य प्राप्त कर उस आयोजनको निकटसे देखनेका अवसर मुझे मिला था। परिषद्के कार्यके सफल संचालनमें अनेक कर्मठ नेता और कार्यकर्ता लगे थे। मैं भी उसके प्रचार विभागसे सम्बद्ध था। परिषद्की सफल आयोजनाओंका श्रेय अनेक उन अज्ञात प्रेरकों और कर्मठ कार्यकर्ताओंको ही दिया जा सकता है, जिन्होंने विशाल हिन्दू-धर्मके लिए अपनेको समर्पित तो किया; लेकिन वे नींवके पत्थर ही सदैव बनते रहे। मुझे उसी समय इस बातका पता चल गया था कि इस महान् आयोजनकी पृष्ठभूमिमें विशाल हृदय दानवीर सेठ जुगलकिशोरजीं बिरलाका भी हाथ है। परिषद्की कार्यवाहियोंमें सक्रिय भाग लेनेवाले अनेक कार्यकर्ताओंको स्वर्गीय वासुदेवशरणजी अग्रवाल द्वारा लिखित मूल्यवान् ८ दर्जनों पुस्तकें भेंट स्वरूप दी गई थीं। ये सुन्दर पुस्तकें केवल उन्हीं व्यक्तियोंके लिए थीं, जिन्होंने अहर्निशि श्रम करके इस आयोजनको सफल बनानेका प्रयास किया। पुस्तकें तो स्वर्गीय अग्रवालजी द्वारा भेजी गयी थीं, लेकिन उन वितरित पुस्तकोंके लिए धनदाता थे स्वर्गीय जुगलकिशोरजी बिरला। यद्यपि उनके सदृश लक्ष्मीपुत्रके नामके साथ कुछ हजार रुपयोंकी इन पुस्तकोंकी भेंटका रहस्योद्‌घाटन कोई विशेष महत्व नहीं रखता। लेकिन इससे यह तो अवश्य ज्ञात हो जाता है कि विश्व-हिन्दू-परिषद्के इस आयोजनमें स्वर्गीय सेठजीका भी महत्वपूर्ण योगदान अवश्य था। क्योंकि सेठजीने इस प्रकारके विश्वव्यापी हिन्दू-संगठनका स्वप्न स्वयं बहुत वर्षों पहले ही देखा था। उन्होंने इसका नाम 'आर्यधर्मियोंका सम्मेलन' कल्पित किया था और उसके सम्बन्धमें लिखा था : "ऐसे सम्मेलनोंकी योजना करते समय दो बातोंपर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। सर्वप्रथम ऐसे सम्मेलनके मंचपर आर्य-धर्मकी सभी भारतीय शाखाओं-यथा सनातनधर्मी, आर्यसमाजी, बौद्ध, सिख और जैन आदिको आयोजित किया जाय तथा कार्यक्रम इस प्रकारका प्रस्तुत किया जाय कि जिससे पारस्परिक अभिज्ञता और सद्भावकी वृद्धि हो। विवादास्पद विषय ऐसे सम्मेलनमें न उठाये जायें। दूसरी बात यह है कि बाहरके आर्य धर्मावलम्बी देशोंके-जैसे चीन, जापान, बर्मा, स्याम, तिब्बत, नेपाल, श्रीलंका, बाली, जावा, सुमात्रा, भूटान और सिक्किम आदिके भी प्रतिनिधि ऐसे सम्मेलनमें बुलाये जायें।...ऐसा यत्न करते रहने से वह समय शीघ्र ही आ सकेगा, जब पूर्व एशियाके ८० कोटि आर्य-धर्मावलम्बी एक ही उद्देश्यसे अर्थात् आर्यधर्मके प्रसार

* * *

द्वारा अखिल विश्वमें चिरशान्तिके लिए परस्परका सन्देह और अविश्वास मिटाकर बन्धुताके अविच्छिन्न स्वर्ण-सूत्रमें आवद्ध हो जायेंगे : संसार के लिए वह समय कल्याणमय होगा।" (विशाल हिन्दुत्व, पृ० ७३-७४)।

सेठजीने यह कल्पना सम्वत् १९९७ (१९४० ई०)के पहले ही व्यक्त की थी। सन् १९६५में ६से १२ दिसम्बर तक इसी प्रकारका सम्मेलन 'विश्व-हिन्दू-सम्मेलन'के नामसे भी आयोजित हुआ था और उसके वाद कुम्भके पावन पर्व पर उसका आयोजन प्रयागमें हुआ था। इन दोनों सम्मेलनोंकी स्वरूप-रचनामें भी सेठजी द्वारा निर्देशित व्यापकताका समावेश न हो सका। तिव्वत और चीन साम्यवादी शिकंजेमें जकड़ चुके हैं, फिर भी भारत बौद्ध मतावलम्वी दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशोंकी विशाल जनताको एक सूत्रमें बाँधकर उनका संरक्षण कर सकता है, राजनीतिकी यह नयी दिशा अव स्पष्ट होती जा रही है। सेठजीने हिन्दू-धर्मके अंगीभूत बौद्ध सम्प्रदायके साथ साँस्कृतिक समन्वय एवं एकताका पक्ष ही प्रस्तुत किया था, लेकिन साँस्कृतिक एकताकी इस कड़ीको यदि पहलेसे सतर्कतापूर्वक सुदृढ़ आधार मिलता रहता तो आज पड़ोसी देशोंकी असीम सद्भावना संकट और शान्तिकाल दोनोंमें मिलती। वास्तवमें इस प्रकारका दृष्टिकोण भारतीय नेता कभी विकसित नहीं कर पाये और आज भी उनकी दृष्टि साँस्कृतिक स्तर पर निरपेक्षता और तटस्थतासे आक्रान्त है, जिसके कारण हिन्दू-धर्मके बृहत्तर फैलावसे अर्जित होनेवाली शक्तिका पुंजीभूत स्वरूप प्रकट नहीं हो पा रहा है।

एकताकी आवश्यकता

हिन्दू-धर्मकी श्रेष्ठता और उसके द्वारा विश्वकल्याणकी कामना करते हुए श्री बिरलाजीने अपने जीवनका वहुत-सा समय इसके अभ्युत्थानकी चिन्तामें व्यतीत किया था। वे चाहते थे : **"हिन्दूमात्रमें सब प्रकारसे ज्ञान-विज्ञानकी वृद्धि करते हुए और परस्पर प्रेमको बढ़ाते हुए हिन्दू जातीय संगठन बनानेकी और मनुष्य मात्रमें इस पवित्र हिन्दू-धर्मका ज्ञान फैलानेकी आवश्यकता है।"**

(विशाल हिन्दुत्व, पृ० ३४-३५)

जिस समय सेठ जुगलकिशोर बिरला अन्य हिन्दू नेताओं महामना मालवीय, ला़ला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, भाई परमानन्द आदिके साथ इस प्रकारके संगठनका अभियान हिन्दू महासभाके माध्यमसे चला रहे थे, उस समय भी इस हिन्दुत्वके आन्दोलनको भारतीय मुसलमानों द्वारा चलाये गये **'पान इस्लामिज्म'** आन्दोलनकी प्रतिक्रिया समझा गया था। आज भी हिन्दू-संगठनके सम्बन्धमें इसी प्रतिक्रियावादी दृष्टिके साथ विचार किया जाता है। क्योंकि मुस्लिमलीगके नेतृत्वमें संगठित मुसलमान सम्प्रदायकी संकुचितताके कारण देशके विभाजन तक कटुतम परिस्थिति निर्मित हुई और उस साम्प्रदायिक और संकुचित संगठनकी मूल भावनाके साथ हिन्दू-संगठनकी आधार भूमिको एक ही मापदण्डसे नापनेकी मनोवृत्तिके कारण राजनीतिक नेता हिन्दू-संगठनके महत्वको नहीं समझ पाये हैं। हिन्दू-संगठनका अर्थ जिनके मस्तिष्कमें केवल मुस्लिमविरोध ही है, वे इस आयोजनाके मूल उद्देश्यसे ही अनभिज्ञ हैं। हिन्दू-संगठनका उद्देश्य किसी सम्प्रदायके प्रति विद्वेष और घृणा उत्पन्न करना नहीं, क्योंकि इस प्रकारकी प्रतिक्रियासे संगठन तात्कालिक ही हो सकता है। हिन्दू-संगठनकी कल्पनामें कभी भी यह संकुचित भाव किसी भी विचारकका नहीं रहा। उसकी मूल प्रेरणा हा रचनात्मक है और उसके पीछे एक ही पीड़ा और तद्जनित लक्ष्य रहा है कि स्वाभिमान एवं विकासमान समाजके रूपमें हिन्दू विश्वमें अपनी अस्मिता बनाये रख सकें और हिन्दू-समाज पारस्परिक सद्भाव और सहयोग के

* * *

वातावरणमें विकसित एवं सम्पन्न बनकर विश्वकल्याणमें अपनी प्रभावी भूमिका प्रस्तुत कर सकें। जातीय संगठनकी यह कल्पना मुस्लिम या ईसाई विरोधके तन्तुओंसे सुदृढ़ नहीं हो सकती। हाँ, यह बात अवश्य है कि हिन्दुओंके सुदृढ़ होनेपर साम्प्रदायिक उन्मादसे ग्रस्त किसी भी सम्प्रदायके लोगोंको पीड़ा हो सकती है, जो हिन्दू-समाजकी असंगतियों और दुर्बलताओंका लाभ उठाते हुए इसकी शक्तिको क्षीण करना चाहते रहे हैं। हिन्दुओंकी दुर्बलता, अशक्तता और विघटनके क्रोड़में अन्य सम्प्रदायोंको फूलने और प्रभावी बनने का सुअवसर सुलभ होता है। संगठनके मूर्त होने पर यह स्थिति समाप्त होने लगती है। यदि अन्य समाज अपने साम्प्रदायिक आग्रहोंको हिन्दू-समाज पर थोपनेका षड्यन्त्र समाप्त कर दें, तब हिन्दू-संगठनसे उद्भूत तेजस्विता उनके लिए कष्टकर नहीं हो सकती; क्योंकि हिन्दू-समाजका सर्वश्रुत गुण है उसकी सहिष्णुता। लेकिन इस सहिष्णुताके साथ-साथ दुर्धर्ष आक्रान्ताओंके लिए हिन्दुओंने अपनी जयिष्णुताका भी परिचय अतीतमें दिया था। जयिष्णुताके स्थान पर सहिष्णुताका वही भाव गुलामीके कालखण्डमें कायरतामें परिणत हो गया, जिसके कारण हिन्दू-समाजकी अधोगतिका दृश्य आज भी दिखाई पड़ रहा है। सेठ जुगलकिशोर बिरला-जैसे विचारकों और हिन्दू-धर्मके वैतालिकोंने इस महिमा-मण्डित समाजके संरक्षण और संवर्धनके लिए ही संगठनका घोष निनादित किया था।

हिन्दू-संगठनकी आवश्यकताकी अनुभूति करनेवाले चिंतकोंकी परम्परा विवेकानन्द, तिलक, सावरकर, मालवीयजी, हेडगेवार आदिके साथ आगे बढ़ती रही। इस सरणिके चिन्तकोंके सामने हिन्दू-संगठनका कोई प्रतिक्रियावादी स्वरूप नहीं था। ये हिन्दूजातिके शक्ति-संवर्धन और सुधारके पक्षधर ही थे। लेकिन महात्मा गान्धीके द्विराष्ट्रवाद पर आधारित विचारधाराके कारण हिन्दू राष्ट्रवादियोंको पाकिस्तान समर्थक मुस्लिम सम्प्रदायिवादियोंके समकक्ष ही सदैव समझा गया। राष्ट्रीय आन्दोलनके प्रवाहमें इस वर्गका वर्चस्व था, अतएव भारतीय जनमानस इसी वर्गसे बहुत समय तक प्रभावित रहा। लेकिन पाकिस्तान निर्माण करानेकी विवशताने इस वर्गके समन्वय और एकताके प्रयासकी विफलताका दृश्य देखा है, जिसके कारण अब तो देशका बहुत बड़ा वर्ग सांस्कृतिक आन्दोलनोंको प्रबल करनेकी दृष्टिसे हिन्दू-संगठनके महत्वको समझने लगा है। फिर भी अभी आर्थिक आधार पर देशकी समस्त समस्याओंका निदान करनेका नारा लगानेवाले राजनीतिज्ञ हिन्दू-संगठनमें बहुसंख्यकोंकी साम्प्रदायिकता देखते हैं। हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रश्न पर भी सेठजीका विचार था कि "३० कोटि हिन्दुओंको बलि चढ़ाकर मुस्लिम नेताओंसे एकताकी आशा करना निरी मूर्खता है। देश हमारा है, जन-संख्या भी हमारी ही अधिक है; इसलिए भी हमारी उन्नति पर ही देशकी उन्नति नहीं कही जा सकती है।...उस सच्चे सनातनधर्मका प्रचार होनेसे और हिन्दुओंकी उन्नति होनेसे समूचे संसारका भी मंगल होनेकी सम्भावना है।" (विशाल हिन्दुत्व, पृ० १७)।

एकताकी आवश्यकताकी अनुभूति करते हुए सेठजीने लिखा है कि 'हमारी जनसंख्या, योग्यता और जीवनी-शक्ति इस तेजीसे घट रही है कि यदि हम लोग सजग नहीं हुए, तो कुछ वर्षोंमें यह आर्यावर्त म्लेच्छावर्त हो जायगा।" (वही, पृ०१२)। सेठजीको विधर्मी धर्मप्रचारकोंकी सक्रियतासे होनेवाले कुप्रभावकी चिन्ता थी। ईसाइयोंने पहाड़ी जन-जातियोंको उभाड़ कर उन्हें भारतसे पृथक् करनेका मन्त्र दिया है। यदि बहुत पहले ही इन मिशनरियोंके काण्डोंपर निगरानी रखी गयी होती, तो आज जो राजनीतिक खेल ये मिशनरी विदेशी धनसे खेल रहे हैं; वह सम्भव न हो पाता। स्वर्गीय बिरलाजीने मार्मिक शब्दोंमें इस षड्यन्त्रकी ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा था कि "अपने लिए यह कितनी लज्जाकी और खेदकी बात है कि आर्यधर्मियोंकी संख्या अनेक प्रकारसे घटाई जा रही है और हम लोग चुपचाप आँखें बन्द किये बैठे हुए हैं।

* * *

गाँवोंमें बीमारियोंके समय विदेशी और विधर्मी दो खुराक दवा देकर अथवा धोखा देकर हमारे भाइयोंको अपनी संख्यामें मिला लेते हैं। इस प्रकार प्रतिवर्ष हमारे ६-७ लाख बन्धु आर्यधर्म छोड़ते जा रहे हैं।" ये संख्यायें ३० वर्ष पूर्वकी हैं। यदि उस समयसे हिन्दू-समाज जाग उठा होता और हिन्दू-सेवी-संगठन अपने धर्म-बन्धुओंके रक्षार्थ निकल पड़ते, तो आज इतनी बड़ी संख्यामें हिन्दुओंका धर्मान्तिरण न हो पाता और ईसाई प्रचारकोंकी प्रेरणासे पृथक् राज्यकी मांग नागा न करते।

ईसाइयों द्वारा हिन्दुओंके धर्मान्तिरणका सबसे बड़ा कारण था कि द्विज वर्णोंकी शूद्रों या अछूतोंके प्रति उदासीनता एवं अपमानजनक दृष्टि। सेठजीने इस समस्या पर भी उदार चिन्तककी भाँति विचार किया था। उन्होंने छुआछूत और मन्दिरोंमें इस वर्गके प्रवेश आदिके प्रश्नोंपर प्रगतिशील दृष्टिकोण रखा था। उन्होंने लिखा है : "अपनेको धर्मशास्त्रके जानकार माननेवालोंको भी यह पता नहीं कि अछूतोंमें किसकी गणना करनी चाहिए। क्या कारण है कि नासिक और पूनामें, उन शिक्षितों और वीर जातियोंको जो शिवाजीके सिपाही थे, लोग अछूत मानते हैं और उन्हींकी जातिवालोंको दूसरे प्रान्तमें अछूत नहीं मानते ? एक जाति एक प्रान्तमें अछूत है और दूसरेमें नहीं। सौ वर्ष पहले जिनको अछूत मानते थे, उनको अब नहीं और अन्यको मानने लग गये। यह कोई नहीं सोचता-विचारता कि अछूत कितने और कहाँ हैं तथा क्यों और कैसे बन गये ? लोग यह भी नहीं सोचते कि इन चोटीधारी रामके भक्त स्वधर्मियोंको नीच और चोटी कटाने पर ऊँचा क्यों समझते हैं ? 'न नीचों यवनात् परः' महापुरुषोंका यह उपदेश होते हुए भी यह अन्धेर क्यों ?" (वही, पृ० १६)।

मन्दिरोंमें हरिजन-प्रवेशकी समस्याके सम्बन्धमें भी सेठजीका मन प्रगतिशील था। उनका कहना था कि "यदि मूर्तिमें देवता और भगवान्की भावना रखते हो तो वह अपवित्र हो ही नहीं सकती और यदि भगवान्की भावना नहीं, तब उसका क्या अपवित्र होगा।" (वही, पृ० १४)। सेठजीके अनुचिन्तनमें आर्य-समाजके सुधा - वादकी छाप थी। इसीलिए हिन्दूके साथ आर्य जोड़ना वे नहीं भूलते थे। उनके हृदयमें आर्यसमाजके लिए ममता थी: लेकिन इस आन्दोलनकी शिथिलताके कारण उन्हें पीड़ा रहती थी; इसीलिए उन्होंने एक अवसर पर कहा था : "केवल वार्षिक उत्सव कर लेने या वैदिक धर्मकी जय बोलकर अपने प्राचीन समयके महान् गौरव-को याद कर लेनेसे ही काम नहीं चलेगा।" उन्होंने आर्यसमाजके प्रचण्ड आन्दोलनसे हिन्दू-समाजकी कुरीतियों-को भस्मीभूत होते देखा था। सेठजीके सम्मुख आर्यसमाज द्वारा चलाये गये अनेक आन्दोलनोंका स्पष्ट स्वरूप था। उन्होंने लिखा कि "वेदादि शास्त्रोंका पठन-पाठन, संस्कृत तथा हिन्दी-भाषाका प्रचार, हिन्दू-संगठन, अन्त्यजोद्धार, प्राचीन आर्य जातिकी गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था, ब्रह्मचर्य तथा बाल-विवाह निषेध आदि रचनात्मक और पाखण्ड मत खण्डन आदि अनेक आन्दोलन आर्यसमाज द्वारा संचालित हैं।" आर्यसमाजके लोग अपना क्षेत्र सीमित न कर लें, इसलिए उन्होंने उन्हें आगाह किया था कि "आर्यसमाजियोंको याद रखना चाहिए कि हमारा ध्येय आर्यधर्मकी रक्षा करना है। आर्यसमाज कोई शाखा सम्प्रदाय नहीं है। यह तो अनादि आर्य-धर्मकी रक्षा करनेवाली संस्था है। उस समय आर्यधर्मकी शाखाओंके ही सनातनी, बौद्ध, जैन और सिख आदि नाम पड़े हैं।"

साम्प्रदायिक एकता

हिन्दू-समाजके विविध सम्प्रदायोंकी एकताका प्रयास भी सेठजीने अपने ढंगसे किया था। बौद्ध और सिख-समाजको भी हिन्दू-समाजका ही अंग बनाकर चलनेकी उनकी इच्छा थी। यद्यपि राजनीतिक एवं ऐति-

हासिक कारणोंसे ये दोनों भारतीय सम्प्रदाय अपने पृथक् अस्तित्वकी घोषणा करने लगे थे। भारतमें बौद्धोंको प्रभाव-क्षीणताके बाद भी विदेशोंमें उसकी सुदृढ़ स्थितिके कारण बौद्ध सम्प्रदायके लोगोंको पृथक् समझनेका भाव हिन्दू-समाजमें काफी मात्रामें जड़ जमा चुका था। इस भावको मिटानेका प्रयास अतीतमें शंकराचार्यने किया था; इसीलिए कई विचारकोंने भगवान् आद्य शंकराचार्यको प्रच्छन्न बौद्ध तक कहनेका साहस किया था। उनका विचार था कि "हमारे जितने ऋषि-मुनि, अवतारी पुरुष या महात्मा हुए हैं; उन्होंने एक ही सनातन या आर्यधर्मका उपदेश दिया है। देश, काल और परिस्थितिकी भिन्नताके कारण उनके उपदेशों तथा कार्योंमें कई जगह ऊपरी भिन्नताका-सा आभास होता है, किन्तु भूतमें और अन्तमें कुछ अन्तर नहीं रहता, जिसको आप उनके ग्रन्थोंसे देख सकते हैं।" (वही, पृष्ठ १०-११)।

सेठजीके अनुसार गीतामें वर्णित मनुष्योंके कल्याणके लिए जो साधन अध्याय १७के श्लोक १४-१५ और १६में वर्णित हैं, उन्हींमेंसे पाँचको प्रधान मानकर योग दर्शनमें यम और बौद्ध तथा जैन शास्त्रोंमें पंचशील या पंचमहाव्रत कहा गया है। भगवान् बुद्धके बौद्धधर्मके लोपकी कल्पनाको भी सेठजी स्वीकार नहीं करते थे। उनका कहना था कि बौद्धधर्म तो आर्य-धर्मसे उद्‌भूत हुआ था, अतएव हिन्दू-समाजने उन्हें अवतारोंमें स्थान देकर उनको पूजनीय स्थान दे दिया था; अतएव जो यह समझते हैं कि बौद्ध-धर्मका भारतमें विलोप हो गया था, वे भू ? करते हैं। इसी भाँति सिखोंको भी हिन्दू-समाजका अंग मानते थे। उन्होंने स्थान-स्थानपर खालसा पन्थके संस्थापक गुरु गोविन्दसिंहकी यह वाणी उद्धृत की है :

सकल जगत में खालसा पन्थ गाजै। जगै धर्म हिन्दू सकल दुन्द भाजै।।

इसमें जब दशमेशकी वाणीमें ही हिन्दू-धर्मके अभ्युदयका उल्लेख है, तब सिखोंके पृथक् अस्तित्वकी बात झूठी सिद्ध हो जाती है।

हिन्दू-समाजके विभिन्न सम्प्रदायोंकी एकताको दर्शाते हुए सेठजीने लिखा है कि "सभी सम्प्रदाय प्रणव-वाचक ॐका जाप करते हैं। सभी 'आचार प्रभवोधर्म' का सिद्धान्त मानते हैं। सभी आर्यधर्मी हिन्दू सम्प्रदायोंको यह विश्वास है कि उपासनाका यही मार्ग नहीं है, जिसे हम करते हैं।

आकाशात् पतितंततोयं यथा गच्छति सागरं। सर्वदेव नमस्कारं केशवं प्रति गच्छति।।

सबका पुनर्जन्ममें विश्वास है। सभी कर्म फलके विश्वासी हैं। मोक्ष या निर्वाणका सिद्धान्त आर्य-धर्मके भीतर ही है।" (विशाल हिन्दुत्व, पृ० ३२-३३)।

इस तात्विक एकताके अतिरिक्त उन्होंने समस्त सम्प्रदायोंकी जननी भारत धरतीके प्रति श्रद्धाके भावको संगठनका आधार माना था। उज्ज्वल अतीतसे अनुप्रेरित और आधुनिक आवश्यकताओंके लिए तत्पर और विकसित हिन्दू-समाजके माध्यमसे सेठजी विश्व-कल्याणकी कामना करते थे। इसके लिए उन्होंने प्रचुर साहित्यका प्रणयन और प्रकाशन भी कराया था उनके द्वारा पोषित अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघ द्वारा प्रकाशित प्रमुख साहित्य है हिन्दू गौरव गान, हिन्दू-धर्म-प्रवेशिका, सिखोंके दशगुरु, गीता-सार, तुलसीरामायण संग्रह, परमात्मासे विनय-विवाद, आर्य-संस्कृति, गौरव ज्ञान, ध्रुवोपाख्यान, परमात्मा क्या है? तथा भगवान् बुद्धावतार। इसी भाँति 'हिन्दू कल्चर इन ग्रेटर इण्डिया' और 'ह्वाट इन सुप्रीम बींग' पुस्तकें अंग्रेजीमें भी सेठजीकी प्रेरणासे प्रकाशित हुई थीं।

सेठजीके मनमें भारतीय सन्त परम्पराके प्रति आदरका भाव था, लेकिन उन्होंने पाखण्डी मठाधीशोंकी सदैव भर्त्सना की थी। भारतकी अध्यात्म-सम्पदाका बखान करते हुए भी उन्होंने लौकिक अथवा भौतिक प्रगतिके लिए शिल्पकारिताको महत्व दिया था। उनके व्यावहारिक सुझावोंकी विस्तृत चर्चा न करते हुए

* * *

अन्तमें केवल उन्हींके प्रेरक शब्द प्रस्तुत कर रहा हूँ; जिसमें उन्होंने कहा है कि "आवश्यकता इस समय तन, मन और धनसे विचारपूर्वक कार्य करनेकी है। हम लोग ऋषि-मुनियोंके ज्ञानके उत्तराधिकारी हैं। उसकी रक्षा और प्रचार करना हमारा परम कर्तव्य है। यह हमारे ऊपर उन महात्माओंका ऋण है। उस सच्चे सनातनधर्मका प्रचार होनेसे और हिन्दुओंकी उन्नति होनेसे समूचे संसारका मंगल होनेकी सम्भावना है।" (विशाल हिन्दुत्व, पृ० १७)। उनके समान भारतीयता और हिन्दुत्वके प्रति निष्ठा निर्माण करके ही इस सनातन-समाजको हम अक्षुण्ण रख सकेंगे।

संगच्छध्वं संवदध्वम्।

—आर्यगण! तुम परस्पर मिलकर चलो और अपनी उन्नतिके लिए सत्य तथा प्रिय भाषण करो।

धर्मो रक्षति रक्षितः

—रक्षा किया हुआ धर्म ही समाजकी रक्षा करता है।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः

—यह आत्मा (आत्मिक उन्नति) दुर्बल मनष्योंको प्राप्त नहीं हो सकती।

अवहितं देवा उन्नयथा पुनः

—हे विद्वज्जन! तुम धर्मसे पतित हुएको उठाओ?

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

—माता तथा मातृभूमि स्वर्गसे भी अधिक सुखकर और वन्दनीय है।

* * *

श्रीब्रह्मदेव शास्त्री

दिवा

⊙ ⊙ ⊙

शरीराध्याससे मुक्त चित्तदेशमें भगवान् कृष्णकी छवि बसी हुई है, सभी इन्द्रियोंके साथ जैसे मन सिमट आया है, चेतना जैसे चन्द्रज्योत्स्नामें विचर रही है, स्निग्ध आलोक कुछ क्षणके लिए परिमित हो जाता है:

पृष्ठात्पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहम्
अन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्यातिरगामहम् ॥

—अथर्व

"यह कैसा स्वप्न है?"

मधुर ज्योतिकी वर्षा आरम्भ हुई और मैं जैसे किसी नक्षत्राकर्षणसे ऊपर उठ गया। चारों ओर ज्योतिका अलात्-चक्र चल रहा है। भाँति-भाँतिके वाद्य-वीणा, मृदंग, मुरज, झाँझ, शंख, भेरी, पटह, वंशी और अज्ञात-देशीय स्वप्न-यन्त्र भिन्न-भिन्न मीड़-मूर्च्छनामें बज रहे हैं।

"मैं जैसे अपनी सीमित चेतनामें अनुभव कर रहा हूँ कि किसी ग्रह नक्षत्रसे उच्छिन्न होकर अन्तरिक्षके पथसे पार हो रहा हूँ। मेरे प्राणोंमें जैसे प्रभुका नाम उगा हुआ है और केवल उसीके विश्वासके बल पर यह मधुर आघात सहता जा रहा हूँ।

"मैं जैसे देख रहा हूँ—सामने किसी घूर्णित पद-चापकी झंकारती घुँघरू-मालिका चंचल होती हुई चमक रही है। स्फटिक जैसे पारदर्शक, अस्पर्श्य, अस्तित्वविहीन-से वस्त्र हवामें चक्राकार उड़ रहे हैं। आगे-पीछे देवियाँ गा रही हैं। ओह, मधुरिमा भी इतनी तीखी और भयावह हो सकती है! यह कैसी अकल्पनीय और असह्य स्थिति है। कालने जैसे अपने सम्पूर्ण वेगसे अपना रथ चला दिया हो और मैं वज्रगतिसे इस निविड़ वृत्तलोकमें जीवन, मृत्यु और प्रलयका छन्द बना बहा जा रहा हूँ: जाग्रत, स्वप्नशील और निद्रित! यह कैसा स्वप्न है!"

एक ध्वनि

"यह तुम्हारी करुणा और भक्तिकी तीव्रानुभूति है, जो तुम्हें कुछ ही क्षणोंमें आलोकके तट तक ले जायगी।"

* * *

"चितिके विस्तारमें लगता है – चारों ओर क्षितिज तक प्रभातका आलोक बिखरा है और मन जैसे आश्वस्त हो गया है। मर्त्य संसार तिरोहित हो गया है; किन्तु यहाँ स्मृति और संकल्पसे जैसे सब-कुछ उपलभ्य है।"

"यह देश वायव्य है। फिर भी यहाँ चला जा सकता है। यहाँ किस नन्दन-काननके प्रकाश-रेणु बिछे हैं? लगता है, स्वजनोंका दल इसी मार्गसे गया है, यहाँ अतीतकी ध्वनियाँ जैसे स्पष्ट सुनायी पड़ रही हैं और स्मृति जिसे चाहे, उसको निकट ला सकती है।"

"धरतीके सभी मनोरम दृश्य यहाँ किस अरुणाभासे दिव्य हो गये हैं। मैं यहाँ जैसे किसी महातीर्थ पर आ गया हूँ। लगता है, जैसे पास ही किसी शान्त, मधुर प्रांगणमें महात्मा गान्धीकी प्रार्थना-सभा हो रही है। दूसरी ओर स्वर्णिम मेघोंकी पृष्ठभूमि वाले आश्रम-कुलायोंके आगे जैसे मेरे परम परिचित धर्म-मेघ ब्राह्मणका प्रवचन हो रहा है और जैसे एक ओर यज्ञोंके उद्यानसे वीणाकी मधुर ध्वनि आ रही है और कोई श्वेत कमलोंकी माला पहने मूर्त राग-रागिनियोंके साथ प्रार्थना-तटको जा रहा है!"

"क्या ये सचमुच ही मेरे मर्त्य-गुरुजन हैं, सहचर हैं? क्या यह धरतीका ही स्वप्न-लोक है?"

"ओह, एक ओर योद्धाओंके उद्दाम स्वर सुनायी पड़ रहे हैं। लगता है, जैसे इतिहासके सभी परिचित वीर अपने शरीर पर अस्त्र-शस्त्रोंके क्षतोंकी शोभासे मण्डित हो, मुझे आश्चर्य और करुणासे देख रहे हैं। इनमें कुछ रथ पर हैं, कुछ गजारूढ़ हैं, कुछ तेजस्वी अश्वोंपर सवार हैं और कुछ पैदल हैं। इनके अस्त्र-शस्त्रों और कवचोंसे रह-रहकर किरणें कौंध रही हैं। श्रद्धासे मेरी आँखें गीली हैं। मैं जहाँ तक देख रहा हूँ, ये सभी मेरे परिचित हैं। मैं आह्लाद-गद्‌गद अन्तरसे इन्हें नमन कर रहा हूँ।"

"यह कौन-सा मधुर स्पर्श मेरे हृदयको छूकर चला गया है। यह किसका मृदुल स्पर्श मेरे मस्तकको शीतलता प्रदान कर रहा है। यह किसका चम्बन मेरे कपोलोंसे आ जुड़ा है। ओ माता, ओ पिता! लगता है जैसे आप दोनों मेरे समीप आ गये हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। ओह, मेरे पीछे यह कैसी शीतल छाया पड़ रही है? यह किसका स्फुट स्वर है और यह किसकी किंकिणी मेरे निःशब्द चरणोंका अनुसरण कर रही है? ओ तरल स्नेह! तू इस महापथमें कैसे साथ आ लगा? मैं इस अरुण लोकमें खोया जा रहा हूँ, मेरे आगे चल और मेरा मार्ग दर्शन कर!"

"ये सुवर्णके शिखरों वाले, प्रभातकी अरुणाभासे आरंजित मन्दिरोंकी पंक्तियाँ हैं, ये कितनी परिचित हैं! मैं यहाँ किस स्फटिक-कक्षमें आ गया हूँ। यहाँ ये दिव्य गन्धर्व जैसे मेरे ही प्रिय लगनेवाले भजन गा रहे हैं। क्या मर्त्यको पवित्र करनेवाले कवि-सन्तोंका अमृत-कण्ठ यहाँ भी गूँज रहा है? क्या मेरे ही प्रार्थना-कक्षके वे सभी गन्धर्व यहाँ अपने दिव्यरूपोंमें विद्यमान हैं? लगता है, जैसे मैं अपने सम्पूर्ण वैभवके साथ यात्रा कर रहा हूँ और मेरे काल-दिग्‌का सम्पूर्ण आयाम दिव्य संगीत और आलोकसे झंकृत-आरंजित हो उठा है।"

"मैं प्रभातकी अरुणिमामें जैसे रत्नोंकी भूमि पर चल रहा हूँ। सामने सप्तर्षियोंका स्निग्ध लोक दिखायी पड़ रहा है। ये कृष्ण-सार मृग छलाँगें भरते हुए जैसे क्षितिजमें ओझल होने जा रहे हैं। लगता है, श्रोत्रियोंका मंगल मन्त्रोच्चार जैसे अभी-अभी समाप्त हुआ है। क्या ये स्वर सप्तर्षियोंकी दिशासे आ रहे हैं? ओ ज्योतिर्मय स्वरो! मैं तुम्हें नमन करता हूँ। मैं धन्य हूँ, जो तुम्हें श्रवण कर सकता हूँ और तुम्हें देख भी सकता हूँ।"

प्रथम स्वर

"पुत्र, यह द्युलोककी भूमि है। आगे यह पथ ऋतुओंके उपवन तक जायगा। निर्भय होकर आगे

* * *

बढ़ो। यह लो, तुम्हारी श्रद्धाके बदले यह ज्योतियोंकी माला है। इसकी दिव्य-गन्धमें तुम्हें क्लान्ति न होगी और दिग्भ्रम न होगा।"

द्वितीय स्वर

"पुत्र, केवल धरित्री पर ही नहीं, तुम्हारी यात्रा अगणित बार इन नक्षत्र लोकों पर भी हुई है। दूरसे देखो, इन अगणित लोकोंमें तुम्हारे असंख्य परिचित तुम्हारे मुखकी आभासे पुलकित हो उठे हैं और तुम्हारे अभिनन्दनमें अनेक दिशाओंसे दिव्य संगीतकी लहरियाँ बह-बहकर आ रही हैं। इनमें प्रेम और विरहकी कैसी तीव्र वेदना मुखरित है।"

तृतीय स्वर

"पुत्र, यह तुम्हारे पीछे तुम्हारी सुदक्षिणा संगिनी है, यह शीतल छाया-सी तुम्हारा अनुसरण कर रही है। यह मर्त्यमें तुम्हारी दानशीलता बनकर तुम्हारे अन्तरमें निवास कर रही थी। यह तुम्हारे अनन्त जीवनकी तपस्या है। यह तुमसे कभी वियुक्त नहीं होगी।"

चतुर्थ स्वर

"पुत्र, ये तुम्हारे अनेक जन्मोंके जननी-जनक और गुरुजन हैं। तुम्हारे हृदयमें इनके ही उदार स्वर मन्त्रके समान झंकृत होते थे। इनके ही संलापमें तुम्हारा एकान्त मन्दिरके समान पवित्र हो जाता था। तुम्हारे हृदयमें इनका ही आशीर्वाद उत्साह बनकर उमड़ता था।"

पंचम स्वर

"पुत्र, ये तुम्हारे अनेक जन्मोंके पुण्य हैं, जो तुम्हारे मर्त्य जीवनमें यश और वैभव बनकर उगे थे। ये तुम्हें नाना रूपोंमें मिलते थे। साधु-सन्तों, दीन-असहायों, त्यागी-तपस्वियों, स्वजनों, अतिथियों, गुरुजनों, परिजनों और वीरोंके मुखपर तुम अपने इन्हीं पुण्योंके दर्शन करते थे।"

षष्ठम स्वर

"पुत्र, तुम्हारे पूर्वजन्मकी कृतियाँ इन लोकोंमें भी बिखरी हैं। तुम्हारे तपकी स्मृतियाँ, तुम्हारे धर्मकी पताकाएँ अनेक लोकोंमें लहरा रही हैं। तुम एक बार उन समस्त तीर्थोंके तटसे जाओ। वहाँ पहुँचनेपर तुम्हारे विगतके सारे बिछुड़े मित्र मिलेंगे और तुम्हारे पथको संगीतमय बना देंगे।"

सप्तम स्वर

"पुत्र, तुम्हारे पूर्वजन्मोंके कलुष, संशय, काम, क्रोध, लोभ, मोहके संस्कार जो तुम्हारे मर्त्य जीवन पर कभी अन्धकारके समान छा जाते थे, यहाँ स्वप्नके समान बिखर गये हैं और तुम्हारी चेतन मुस्कानसे दिशाएँ प्रकाशित लगने लगी हैं। बहुत दूर आगे इस स्वर्गके सुखमय तटसे चलकर तुम आत्म-ज्योति प्राप्त करोगे। वहाँ तुम्हें ऋतुओंका अभ्रवन दिखायी पड़ेगा। वहाँ कामना ऋषिकुमारोंका वल्कल बन गयी है। वहाँ वाणी मृगोंकी आँखोंमें सो गयी है। वहाँ तुम्हारे अहम्‌की सीमा प्रकाशके अनन्त सिन्धुमें डूब जायगी और तुम परम

* * *

पुरुषके महासंकल्पके साथ एकाकार हो जाओगे। फिर तुम्हारे लिए कुछ भी प्राप्तव्य न रह जायगा। तुम्हारी निखिल यात्रा उस प्रलयके महातीर्थमें निमज्जित हो जायगी।"

(शरीरका पार्थिव तत्व जलमें, जल-तत्व अग्निमें और अग्नि-तत्व मरुतमें विलीन हो गया है। मरुत्तत्व आकाशसे तथा आकाश चित्तसे एकाकार हो गया है। चित्ताकाश एक प्रकाश-खण्ड-सा द्यु-लोकमें तिरता जा रहा है।)

"यह आग्नेय लोक है!"

"मेरी स्मृति कितनी कज्जल हो उठी है! क्या मेरा एक जीवन यहाँ भी व्यतीत हुआ है! क्या उस समय यहाँ अगणित योद्धा निवास करते थे। कालने जैसे अपना रथ मोड़ लिया है और मैं अपने पूर्व जीवनमें आ गया हूँ। क्या ये वीर-वीराङ्गनाएँ मुझसे परिचित हैं? यह स्वर्णधूलिसे पटी पगडण्डी मुझे कहाँ लिये जा रही है? मैं अश्व पर सवार हूँ। मेरे शरीर पर यह कैसा स्वर्ण-कवच कसा हुआ है और मेरी दृढ़ मुट्ठीमें यह लम्बा भाला कितना हलका लग रहा है। मेरी भवें तनती जा रही हैं और मेरा वक्ष जैसे उत्साहसे फूला जा रहा है। ओह, जिन वीरोंकी प्रस्तर-मूर्तियाँ मैंने मर्त्यके आँगनमें बड़ी श्रद्धासे खड़ी की थीं, वे मेरे आगे-पीछे चलते से लग रहे हैं। क्या मैं इस आग्नेय लोकका तेजस्वी पुत्र हूँ? ओ पिता! तुम्हें बार-बार नमन है।"

(सिन्दूर जैसे रंगके मेघोंसे कढ़कर चित्तका रथ क्रमशः पाटल फिर पीत रश्मियोंसे स्नात हो उठता है।)

"सामनेके इस पीत तट पर कौन प्रशान्त आकृति चली आ रही है? ओह, भगवान् तथागत, भिक्षु संघ, सम्राट् अशोक, कनिष्क, हर्षवर्द्धन और यह क्या—इनके पीछे क्या मैं स्वयं अपनी ही आकृति देख रहा हूँ। पृष्ठभूमिमें मन्दिरों, विहारों, स्तूपोंके अनगिनत शान्त शिखरोंसे जैसे आकाश चित्रित हो उठा है। क्या मैं सम्यक्-सम्बुद्धोंके लोकमें धर्म-संघका अनुसरण कर रहा हूँ। ओ शान्त स्वप्न, ओ किंजल्क-रंजित कमल-वन, ओ करुणाके अनन्त सिन्धु! मेरी समस्त चेतनाको अपनेमें डूब जाने दो!"

(आलोक ही पावन समीर बनकर वह रहा है और उसमें शंखोंकी ध्वनि तिर रही है। उसमें सुप्त अणुओंका उद्बोधन हो रहा है और यज्ञ-धूम्रकी मधुर गन्धसे उनका उज्जीवन। यह बृंहणका लोक है—चित्त जैसे एक तपोवनमें प्रवेश कर रहा है।)

"ये सन्तोंके आश्रम हैं। प्रतीत होता है, धरित्रीके लोकमें मेरे सम-सामयिक सभी सन्त, योगी, विद्वान् यहाँ विद्यमान हैं। लगता है, मैं इन आश्रमोंका सदा सेवक रहा हूँ और मेरी अञ्जलिमें उपहारकी दिव्य सामग्री भरी पड़ी है। मैं एक युवा राजकुमार-सा लग रहा हूँ। मेरे हृदयमें कितनी श्रद्धा उमड़ी पड़ रही है। प्रतीत होता है, जैसे यहाँ जीवन अमृतका छन्द बना हुआ है। ओ प्रज्ञा-लोक! तुम्हें शतशः नमन है।"

(रश्मियोंके पीत सिन्धुसे निकलकर जैसे चिति एक शुभ्र धारामें आ गयी है।)

"मेरी ग्रीवामें यह ज्योतिकी माला कितनी तीक्ष्ण है और कितनी शीतल! मैं जैसे किसी श्वेत हाथी पर आरूढ़ हूँ और मेघोंके वनसे पार हो रहा हूँ। यहाँ विद्युतके पुष्प खिले हैं, जिनकी गन्धसे दिशाएँ झूम उठी हैं। यहाँ जराकी शिथिलता नहीं है, यहाँ मृत्यु नहीं है। लगता है, जैसे ब्रह्माण्डकी परिक्रमा कर लौटा आ रहा हूँ।"

"अरे, मेरे स्फटिक-प्रासादके आँगनमें यह कैसा श्वेत कमलोंका तड़ाग दीख पड़ रहा है! ओह, क्या यह जिन-देवोंकी शान्ति-गोष्ठी है? मुझे इनके चरणों पर बिछने दो, मेरे रत्नोंकी राशिसे इनका व्रजन-पथ मण्डित होने दो। लगता है, जैसे मैं आनन्दकी विद्युत-रेखा बनकर दिगन्त तक कौंधता चला जा रहा हूँ।"

* * *

(शुक्रलोकसे निकलकर चित्त शनिके मेघोंसे टकराता है। दूर पर राशि-राशि नक्षत्रोंके पुंज निरवधि काल-दिग्में विलीन होते दिखायी पड़ रहे हैं। असंख्य प्रकाश-वर्षोंसे चले हुए उनके हाहाकारका स्वर जैसे सामनेके मन्थर ज्योतिष्क लोकोंका स्पर्श कर लौटा जा रहा है। लगता है, जैसे कोई स्वर्गीय तट निकट बहता हुआ आ रहा है।)

"ज्योतिकी धाराओं पर तैरते हुए ये दिव्य गन्धर्व क्या गा रहे हैं? पारिजात-केसरसे पुते हाथोंमें सुरा-पात्र लिए तरुण यक्षोंके युग्म अपनी तरंगायित दृष्टिसे किस दिशाकी ओर देख रहे हैं? ज्योति-पुष्पोंकी माला पहने, मरुतके अश्वों पर सवार देव-पुत्रों और श्वेत मेघोंके गज-दल पर मन्थर गतिसे कढ़ता हुआ देव-दम्पतियोंका सुख-लोक यह किस नील तट पर आ लगा है? दिगन्तरालसे यह किसका अट्टहास फूट रहा है? क्षण भरमें ही जैसे स्वर्गका सुखमय संगीत एक बार तीव्रतम हो उठा है और पछाड़ खाकर लौटती हुई लहरोंके समान दूरके पृष्ठ देशमें विलीन होता जा रहा है। अब यह सम्पूर्ण दिव्य दृश्य अन्धकारमें डूबते हुए किसी विदलित कमल-वनके समान दीख रहा है। ओह, ये ध्वनियाँ कितनी वेधक हैं!"

"आह, मैं अपने आलोकित नक्षत्रसे टूटकर कहाँ गिरा जा रहा हूँ? मेरे हाथकी वह दिव्य वीणा कहाँ छूट गयी?"

"मेरा वह अमृत कण्ठ-रव क्या हुआ, क्या मैं एक ही क्षणमें जरा-शीर्ण हो गया?"

"अरे, मेरे दिव्य अंगोंमें यह कैसा अंगार पुत आया, जैसे कोई अन्धी ज्वाला मेरे प्राणोंसे लिपटी जा रही है।"

"हाय, मेरे आलिंगनमें बँधी मेरी प्रेयसी क्षणभरमें ही द्रवित होकर कहाँ बह गयी? मेरे शरीरको किस अन्धकारकी तीक्ष्ण धाराने मुझसे छीन लिया?"

"मेरे हाथके सुरा-पात्र क्या हुए और मेरे हृदय पर झूलने वाली ज्योतियोंकी माला कहाँ टूटकर गिर गयी?"

"मेरे अश्वोंके पंख क्षण भरमें ही क्योंकर टूट गये और वे किस झंझाकी चीखोंमें विलीन हो गये?"

"मेरा स्वर्ण-मुकुट कहाँ गिर गया और मेरा वह गज-दल देखते-ही-देखते तुषार-खण्ड-सा कैसे गल गया?"

(एक ओर अप्सराओंके हिलते कर्ण-कुण्डल, आलुलायित दिव्य वस्त्र, फूलोंसे ग्रथित सुगन्धित वेणी और अरुणाभ चरणोंकी शिथिल पंक्तियाँ ऊर्ध्व नीहारमें तिरोहित होती जा रही हैं और दूसरी ओर उनसे बिछुड़े तरुणोंकी मालाएँ जैसे उनके वक्षपर जल उठी हैं, उनके मुख आँसुओंसे मलिन हो गये हैं और वे अन्धकार में डूबे जा रहे हैं।)

"सामनेका फैला हुआ स्वर्गलोक डूब गया - वह किस अन्धकारमें डूब गया? क्या उसका पुण्य-काल समाप्त हो गया था? ये स्वर्गोंके अवशेष जैसे महाकालकी मालामें गुँथते जा रहे हैं। ओ शनि! क्या तू भी किसी महा-स्वर्गकी धूलि है? स्वर्गोंकी भस्म धारणकर तू कबसे तप रहा है?"

"ओह, यहाँ मेरा दिव्य शरीर भी जैसे म्लान पड़ गया लगता है, जैसे स्वर्गका वह सुखमय तट लाँघ आया मैं। प्रभु, मेरे हृदयमें तुम्हारा नाम उसी प्रकार उगा है। काल भस्म बनकर मेरे शरीर पर पुत आया है और दिग् मेरी श्रद्धाका रूप ग्रहण कर मेरे हाथका कमण्डलु बन गया है। प्रभु, मैं निःस्व और एकाकी रह गया हूँ, मुझे आनेका पथ बतलाओ।"

(चित्त रश्मियोंसे घूर्णि-वातके सहारे जैसे एक महाआलोकके सम्मुख होता है। चित्त इस प्रकाशमें जलने लगता है, किन्तु यह ज्वलन दाहक नहीं, अमृतके सिंचनके समान है।)

* * *

"ओ सूर्य, मुझे तप्त स्वर्णकी आभा दो और अपनी किरणोंकी गतिमें भरकर उस महा अभ्रवनके पार पहुँचा दो, जहाँ काल अपने पंख समेटकर सोया पड़ा है, जहाँ दिशाओंका स्वप्न नहीं जगा है। जिस ओर ये सम्पूर्ण नक्षत्र-निचय एक प्रणति बनकर झुके जा रहे हैं, जहाँ ये सभी दीप्तियाँ निर्वासित होने जा रही हैं, जहाँ निखिल यात्रा विश्राम बनकर थम गयी है। ओ सूर्य, ओ पिता, ओ गुरु! मुझे अपनी अमृत रश्मियोंमें गूँथकर उस परम विरामके चरणोंमें अर्पित कर दो।"

(मन्त्र-स्वर सुनायी पड़ते हैं):

"हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः॥

"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र-तारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

"ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चात्
ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं य प्रसृतं ब्रह्मैवेदं
विश्वमिदं वरिष्ठम्॥"

(चित्त मन्त्र-स्वरोंके साथ सूर्यद्वारसे उस परमपुरुषके अव्यय-अमृत लोकमें उत्क्रमित हो जाता है।)

●

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्य-
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति

—सख्य और सायुज्ययक्त दो पक्षी एक ही वृक्षका आश्रय लेकर बैठे हैं, उनमें एक तो सुस्वादु अश्वत्थ फलका भक्षण करता है, और दूसरा बिना कुछ खाये साक्षिरूपसे अवस्थित है।

अनन्तं शाश्वतं दिव्यं
तद्धाम सततं भजे
यतो यात्रा प्रवृत्तोऽहं
यत्र गन्तास्मि चान्तत॥

—मैं निरन्तर उस अनन्त शाश्वत दिव्य धाम (सायुज्य)को भजता हूँ, जहाँसे मेरी यात्रा प्रवृत्त हुई है और जहाँ मुझे अन्तमें जाना है।

* * *

श्रीजनार्दन भट्ट

बिरला-महापुरुष

⊙ ⊙ ⊙

हिन्दू-धर्म और उसके साथ हिन्दू-जाति कितनी प्राचीन है और उसका इतिहास कबसे प्रारम्भ होता है, यह निश्चित और अन्तिम रूपसे कोई नहीं कह सकता। हाँ, इतना अवश्य निश्चित है कि जहाँ संसारकी अनेक प्राचीन जातियाँ और सभ्यताएँ - चैल्डियन, वेबीलोनियन, एसीरियन, सुमेरियन, मिस्री, यूनानी, ईरानी, रोमन आदि - संसारके रंगमंच पर अपना खेल दिखाकर सदाके लिए लुप्त और नष्ट हो गयीं, वहाँ हिन्दू-जाति और हिन्दू-सभ्यता, जो इन सबसे पुरानी है; आज भी जीवित है और उसके अस्तित्वको मिटा देने पर तुली हुई विरोधी शक्तियोंसे टक्कर ले रही है। इसका कारण यह है कि हिन्दू-जातिको जगाने, उठाने तथा उसकी रक्षा करनेके लिए अनेक अलौकिक विभूतियाँ, सन्त, संन्यासी, महात्मा, सुधारक, वीर, योद्धा तथा दानवीर त्यागी महापुरुष समय-समय पर इस जातिमें होते आये हैं। इन्हीं महापुरुषोंमें हमारे पूज्य श्री जुगलकिशोरजी बिरला भी थे।

घोर संकट

प्राचीन कालसे लेकर अबतक हिन्दू-जातिपर विधर्मियों और बर्बर जातियोंके कितने आक्रमण और प्रहार हुए, कोई गिनती नहीं है। विशेषकर पिछले आठ-नौ सौ वर्षोंमें हिन्दुओं पर कितने आक्रमण हुए, कैसे-कैसे भीषण अत्याचार किये गए, कितने मन्दिर और तीर्थस्थान नष्ट-भ्रष्ट किये गए, कितनी मूर्तियाँ तोड़ी गयीं, कितने बूढ़े-जवान, स्त्री-पुरुष तलवारके घाट उतारे गए, कितने हिन्दुओंका जबर्दस्ती तलवारके जोरसे धर्म बदला गया, कितनी हिन्दू स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट किया गया, इसकी दर्द-भरी कहानी इतिहासके रक्तिम पृष्ठोंपर अंकित है। किन्तु उस समय आजकी तरह हिन्दू बिलकुल मुर्दा नहीं हो गए थे। उनमें हिन्दुत्वकी भावना थी और हिन्दू-धर्मपर अटूट श्रद्धा थी। लोग हिन्दू-धर्मके लिए बलिदान करना जानते थे। उस समय न जाने कितनी हिन्दू स्त्रियाँ अपने धर्म और सतीत्वकी रक्षाके लिए चितामें जल गयीं, न जाने कितने वीर योद्धा शत्रुओं और विधर्मियोंसे लड़ते-लड़ते धर्म पर न्योछावर हो गए; किन्तु आज तो हालत बिलकुल बदल गयी है। आज हिन्दुओंमें हिन्दुत्वकी भावना नहीं रही। हिन्दू-धर्म पर श्रद्धा और उसके लिए मर-मिटना तो दूर रहा, आज हिन्दू अपनेको हिन्दू कहता हुआ शर्माता और लजाता है। हिन्दू-धर्म और हिन्दू-संस्कृतिकी खिल्ली गोबरकी सभ्यता कहकर उड़ायी जाती है, हिन्दुओंको साम्प्रदायिक कहकर कोसा जाता है। आज हिन्दू चारों ओरसे शत्रुओंसे घिरा हुआ है। पाकिस्तान हमें हड़पनेके लिए तैयार है।

* * *

चीन अलग आँख दिखा रहा है। योरोप और अमेरिकासे आये हुए अटूट साधन और धनके बल पर ईसाई मिशनरी अलग हमारी जन-संख्याकी लूट मचाये हुए हैं। आज हिन्दू बिलकुल असहाय और अनाथ हो रहा है। इस असहाय और अनाथ दशामें हिन्दुओंका केवल एक सहारा और रक्षक था। किन्तु विधिके कुटिल विधानने वह भी हमसे छीन लिया। हमारा तात्पर्य स्वर्गीय सेठ जुगलकिशोरजी बिरलासे है।

एकला चलो रे...

अकेला एक व्यक्ति धनसे, मनसे, तनसे तथा हर प्रकारसे हिन्दू-जातिके लिए कितना कर सकता है, इसके सेठजी एक जीते-जागते उदाहरण थे। उन्होंने हिन्दुओंको एक स्थान पर लाकर संगठित करने तथा हिन्दू-धर्मकी उन्नति और उत्थानके लिए कितने मन्दिर, कितने बौद्ध विहार, कितने गुरुद्वारे, कितनी धर्मशालाएँ, कितने आर्यसमाज मन्दिर, कितने सनातन-धर्म भवन बनवाये, कितनी व्यायामशालाएँ, कितनी पाठशालाएँ और कितनी संस्थाएँ स्थापित कीं, उनकी गिनती अँगुलियों पर नहीं की जा सकती।

चतुर्मुखी चेष्टा

हिन्दू-धर्म तथा हिन्दू-जातिके लिए उनकी चेष्टा व्यापक और चतुर्मुखी थी। धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक, मानसिक और शारीरिक कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है; जो उनके व्यापक कार्य-क्षेत्र और उदार दानकी परिधिसे बाहर रहा हो। यदि स्वामी श्रद्धानन्दके द्वारा मलकानोंकी शुद्धिके लिए आन्दोलन चलाया गया तो उसमें स्वर्गीय सेठजीका सहयोग सबसे आगे था। उस महान् शुद्धि-आन्दोलनमें स्वामी श्रद्धानन्दका उद्योग और श्रीमान् सेठजीका धन-दोनों एक दूसरेके पूरक थे। इस शुद्धि-आन्दोलनमें बिरला-जीने कितना धन व्यय किया, कोई कह नहीं सकता। कहते हैं, यह धन-राशि लाखोंमें थी। यदि मालाबार में मोपलोंके आक्रमण और अत्याचारसे हिन्दू सताये गये, तो उसकी सहायताके लिए श्रीमान् सेठजीका सहायताका हाथ सबसे पहले था। यदि अछूतोद्धारका आन्दोलन चला, तो उसमें भी श्री सेठजीका दान तथा सम्पूर्ण सहयोग अग्रिम था। यदि असहाय और भोले-भाले आदिवासियोंको ईसाई मिशनरियोंके कुचक्रसे बचानेकी बात चली, तो श्री सेठजीने कोई कसर उठा न रखी। यदि कहीं साम्प्रदायिक दंगे हुए और उनमें अनुचित रूपसे हिन्दू सताये गये और उन पर मुकदमे चले, तो श्री सेठजी उनकी रक्षा और बचावके लिए सब प्रकारसे सहायता करनेके लिए तैयार रहते थे। यदि कहीं प्रकृतिका प्रकोप हुआ, बाढ़ आयी, भूकम्प आया, अकाल पड़ा अथवा भुखमरीकी घटना घटी, तो उनका दयार्द्र हृदय पीड़ित हिन्दुओंकी सहायताके लिए बेचैन हो उठता था।

आन्तरिक प्रेरणा

कितने दयालु हृदय थे वे! किसीको कष्टमें देखकर उनका हृदय व्याकुल हो जाता था। इसीसे प्रत्येक शीतकालमें ठण्डसे ठिठुरते हुए गरीबोंकी ठण्डकसे रक्षा करनेके लिए स्थान-स्थान पर हजारों रजाइयाँ बँटवाते थे तथा गंगोत्री, उत्तरकाशी, ऋषीकेश, हरिद्वार आदि भयानक ठण्डे स्थानोंमें तपस्यामें लगे हुए साधु-सन्तों और गरीब भाइयोंको वस्त्र बँटवाते थे और उनके अन्न क्षेत्रका भी प्रबन्ध करते थे। उनके दानके और

* * *

भी कई अनूठे ढंग थे। उनको समय-समय पर आन्तरिक प्रेरणा होती थी। उसी आन्तरिक प्रेरणासे प्रेरित होकर वे हिन्दुओंकी सेवामें लगी हुई देशभरकी अनेक आर्यसमाजी, सनातनी, बौद्ध, सिख, जैन आदि सार्वजनिक संस्थाओंको कभी बाइसिकल बँटवाते थे, कभी जूटके गलीचे वितरित करते थे, कभी हजारों रुपयेके मूल्यकी हिन्दू-धर्म-सम्बन्धी पुस्तकें बँटवाते थे।

अ. भा. आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघ

उन्होंने हिन्दू जातिकी उन्नतिके लिए, उसके उद्धार और रक्षाके लिए कितना दान दिया, कितना रुपया खर्च किया, इसकी कोई सीमा नहीं है। उनका दान लाखोंमें नहीं, करोड़ोंमें आँका जाता है। उन्होंने हिन्दू-जातिकी सेवा, रक्षा, उन्नति तथा उत्थानके लिए, भिन्न-भिन्न उद्देश्योंके अनुसार, लाखों-लाखों रुपयेके कितने ट्रस्ट स्थापित किये, वे भी अँगुलियों पर नहीं गिने जा सकते। उन्हीं ट्रस्टोंमें सम्भवतः सबसे बड़ा और सबसे सक्रिय ट्रस्ट अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघ है, जो लाखों रुपयेकी सम्पत्तिके दानसे स्थापित किया गया था। उसको स्थापित हुए २५ वर्षसे ऊपर हो चुके हैं। इन २५ वर्षोंमें उस स्वर्गीय महा-पुरुषने हिन्दू-जातिके लिए जो सहायताके कार्य किए, जो दान दिये, हिन्दू-धर्म और जातिके लिए भिन्न-भिन्न समस्याओं और प्रश्नोंके सम्बन्धमें अपने जो विचार और मन्तव्य प्रकट किये, विदेशियोंसे और सरकारी अधिकारियोंसे अनेक प्रश्नोंके सम्बन्धमें जो पत्र-व्यवहार किये, वे प्रायः इसी संघके द्वारा किये गए। एक प्रकारसे इस संघके द्वारा स्वर्गीय सेठजीका किया हुआ कार्य ही हिन्दू-जातिका विगत २५ वर्षोंका इतिहास है, ऐसा कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। सेठजीका यह कार्य-कलाप इस संघकी पुरानी फाइलोंमें निबद्ध और निहित है। इन फाइलोंकी जाँच-पड़तालसे पिछले २५ वर्षोंके हिन्दू-जातिके इतिहासकी प्रचुर सामग्री मिल सकती है और उस पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सकता है। इन फाइलोंसे कुछ सामग्री लेकर नीचे स्वर्गीय महा-पुरुषके अलौकिक-जीवन पर कुछ प्रकाश डाला जा रहा है। यों तो उस महापुरुषके सम्बन्धमें जितना लिखा जाय, थोड़ा है। केवल यही लिख कर समाप्त करता हूँ:

विरला जानन्ति गुणान् विरला कुर्व्वन्ति निर्धने स्नेहम्।
विरला पर-कार्यरताः परदुःखेनापि दुःखिताः विरलाः॥

अद्वितीय

स्वर्गीय श्री बिरलाजी एक ऐसे सेठ थे, जो गुणियोंके गुणोंकी कदर करते थे और उनका सत्कार करते थे। बिरलाजी ही एक ऐसे धनी थे, जो निर्धन, दीन-हीन, गरीबों पर अपनी दयाकी वर्षा करते थे। बिरलाजी ही एक ऐसे परोपकारी दानी थे, जो दूसरोंके उपकारमें सदा रत रहते थे। बिरलाजी ही एक ऐसे दयालु थे, जो दूसरोंके दुःखसे दुखित और द्रवित होते थे। उनकी तुलना कौन कर सकता है? जैसा कि अंग्रेजीके महाकवि शेक्सपियरने अपने एक नाटकके एक पात्रके सम्बन्धमें लिखा है:

His life was gentle and the elements so mixed in him that nature might stand up and say to all the world—'This was a man !'

उनका जीवन दयालु, उच्च और महान् था। उनके पाञ्चभौतिक शरीरके पाँच तत्व इस प्रकार एक

* * *

दूसरेसे संगठित और सम्मिश्रित थे और उनका पार्थिव शरीर समस्त सद्गुणोंका ऐसा आगार था कि प्रकृति स्वयं खड़ी होकर समस्त संसारसे पुकार-पुकार कर कहे कि "वास्तवमें महापुरुष था तो वह था!"

समय-समय पर स्व० श्री बिरलाजीने हिन्दुओंकी सम्प्रदायगत अनेकतामें निहित एकता पर तथा धर्म-संस्कृति आदि पर जो विचार और मन्तव्य लेखों भाषणों और वक्तव्यों द्वारा तथा पत्राचार द्वारा व्यक्त किए थे; उनका सार-मर्म उन्हींके शब्दोंमें प्रस्तुत किया जा रहा है:

हिन्दुओंकी अनेकतामें निहित एकता

"आजकल प्रायः आर्यधर्मियोंमें धर्म-सम्बन्धी अज्ञानका कारण धार्मिक शिक्षाका अभाव है। इस अभाव-की वजहसे हिन्दू-जाति छिन्न-भिन्न होती चली जा रही है। हिन्दू चाहे सनातनधर्मी, आर्यसमाजी, बौद्ध, जैन अथवा सिख कोई भी हो, सब एक ही जातिके सदस्य हैं।

'महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा'से लेकर हरिश्चन्द्र, राम, कृष्ण, गौतम बुद्ध, ऋषभाचार्य, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, नानक देव, विक्रमादित्य, अशोक, चन्द्रगुप्त, शालिवाहन, हर्ष, शिवाजी और गुरु गोविन्दसिंह आदि सभी हिन्दू थे और हिन्दू लोग इन्हें अपना पूर्वज मानते हैं। इस प्रकार सब एक जातिके हैं और जातिकी रक्षाके लिए सब एक हो सकते हैं।"

"यद्यपि हिन्दुओंमें आज अनेक सम्प्रदाय हैं; लेकिन सबके सिद्धान्त और लक्ष्य एक ही हैं, जो प्राचीन आर्यधर्म पर आधारित हैं। किसी हिन्दू-सम्प्रदायका अपना कोई अलग धर्म नहीं है। वास्तवमें हर सम्प्रदायके प्रवर्तकोंने समयानुसार हिन्दू रीति-रिवाजों और विधियोंमें सुधार किया, ताकि मौलिक धर्म युगके अनुरूप होकर अनुगमनीय बना रह जाय। इन प्रवर्तकोंका अभीष्ट पृथक् धर्म चलाना कभी नहीं रहा है। इस सन्दर्भमें जैन और बौद्ध सम्प्रदायोंकी चर्चा आवश्यक है। जैन और बौद्ध सम्प्रदायोंके प्रति सामान्य धारणा है कि वे अवै-दिक हैं, अतएव हिन्दू-धर्मसे पृथक् हैं; लेकिन वास्तविकता इसके विपरीत है। इन दोनों सम्प्रदायोंका मूल-मन्त्र है अहिंसा, जो मूलतः वैदिक-धर्मकी आधारशिला है। वेदने "अहिंसापरमोधर्मः" प्रतिपादित किया है। तब ये दोनों सम्प्रदाय अवैदिक कैसे माने जा सकते हैं? सच तो यह है कि इन सम्प्रदायोंके संस्थापकों एवं समर्थकों-ने वेदों अथवा वैदिक-धर्मकी निन्दा कभी नहीं की, बल्कि वेदके नामपर जो अधर्म होने लगा था, उसकी निन्दा की थी। महात्मा बुद्धको सभी हिन्दू आज भी भगवान्का अवतार मानते हैं। परम कृष्णभक्त जयदेवने भक्ति-पूर्ण मधुर रागमें गाया है:

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्।
सहृदय हृदय दर्शित पशुघातम्।
केशव धृत बुद्ध शरीर जय जगदीश हरे!

कुछ लोग अज्ञानवश सिख-सम्प्रदायको भी हिन्दू-धर्मसे अलग माननेकी धृष्टता कर बैठते हैं, जबकि सिखोंके खालसा-पन्थके संस्थापक गुरु गोविन्दसिंहकी वाणी **'सकल जगतमें खालसा पन्थ गाजै, जगै धर्म हिन्दू सकल द्वन्द भाजै'** सिख-सम्प्रदायका वास्तविक उद्देश्य प्रकाशित करनेके लिए पर्याप्त है।

सभी हिन्दू-सम्प्रदायोंकी एकता इस तथ्यसे भी व्यक्त होती है कि सारे सम्प्रदाय पुनर्जन्मके सिद्धान्त और मुक्ति अथवा निर्वाणमें आस्था रखते हैं। मुक्तिका एकमात्र उपाय मनुष्यके सत्कर्म हैं, जिनपर गीता ही नहीं, अपितु हर हिन्दू-धर्म-ग्रन्थ बल देते हैं।

* * *

भारतमें जितने भी हिन्दू साम्प्रदायिक धर्म आज मौजूद हैं, उन सबकी जन्मभूमि भारतवर्ष ही है। जो धर्म या सम्प्रदाय बाहरसे आये और अपना आवरण उतारकर आर्य-धर्ममें तिरोहित नहीं हो गए, वे हिन्दू सम्प्रदाय नहीं हैं और ऐसे धर्मावलम्बियोंके लिए यह भारतभूमि 'स्वर्गादपिगरीयसी' न पहले कभी रही और न आज ही हुई जान पड़ती है। अतएव भारतभूमि हिन्दूकी जन्मभूमिके साथ-साथ धर्मभूमि भी है और इस भूमिकी रक्षाके लिए सब हिन्दू एक हो सकते हैं। कहना न होगा कि हिन्दू-जातिकी ही संस्कृति प्रत्येक हिन्दू-सम्प्रदायकी संस्कृति है और भारतीय-इतिहास सबका इतिहास है। उस संस्कृति और इतिहासके गौरवकी रक्षा हिन्दू-मात्रका कर्तव्य है।

सत्य अपने मूलरूपमें एक है, यद्यपि उसके कलेवर अनेक हो सकते हैं। प्राचीन ऋषि-मुनियों तथा दार्शनिकों : यथा वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, कपिल, पतंजलि और व्यास आदिसे लेकर भगवान् बुद्ध, महावीर, गुरु नानक, कबीर आदि पिछले सन्त-महात्माओंके उपदेशोंमें वही ज्ञान-गाथा अनेक रूपोंमें ओतप्रोत है, जिसे सांख्य, योग, वेदान्त, उपनिषद्, गीता आदि या धम्मपद तथा सन्तवाणीको विचारके साथ पढ़ने और सुननेसे अनुभव किया जा सकता है। इन सभी ग्रन्थोंमें निहित एक ही सत्य अनेक कलेवरोंमें आवेष्ठित हमें दीख पड़ता है। इतिहास इसका साक्षी है कि भारतकी तरह संसारके किसी भी देशमें आध्यात्मिक तत्वज्ञानका ऐसा साक्षात्कार नहीं किया गया। यही भारतीय-संस्कृतिकी विशेषता है तथा महत्ता है। यद्यपि सांसारिक या भौतिक सुख-समृद्धिमें भी प्राचीन-भारत उस समय किसीसे पीछे नहीं था।

यह सही है कि पश्चिमी देशोंने इस समय भौतिक ज्ञानमें उन्नति कर ली है और शायद वहाँ विज्ञानकी सहायतासे सांसारिक सुख-सुविधाकी वृद्धि भी हो गयी है, लेकिन यह सांसारिक सुख क्या उस आध्यात्मिक आनन्दका मुकाबला कर सकता है; जो हमारे धर्मग्रन्थोंके वताये मार्गों पर चलकर हम हिन्दुओंको मिल सकता है?

आर्य-धर्मका अन्तिम ध्येय परमपद अथवा आवागमनके बन्धनसे मुक्त होकर निर्वाण-पद प्राप्त करना है, ताकि जन्म-मृत्यु, दैहिक व्याधियों और बुढ़ापा आदि कष्टोंसे सदा-सर्वदाके लिए छुटकारा मिल जाय, जिसके लिए निष्काम कर्म और भक्ति द्वारा अनेक उपायोंसे चित्तको निर्मल एवं निष्काम वनानेकी आवश्यकता होती है। ऐसा करने पर अनेक जन्मोंके वाद ही मोक्ष-प्राप्तिकी आशा रहती है।

हिन्दुत्वके इतिहासमें त्यागका महत्व व्यक्त करनेवाले अनेक उदाहरण हैं। भगवान् बुद्धके समय आम्रपाली नामक वेश्या, जो तथागतको अपने यहाँ एक दिन भिक्षाका निमन्त्रण देकर जा रही थी, उस भोजनके निमन्त्रणको एक दिनके लिए स्थगित करनेके हेतु वैशाली नगरीके राजकुमारके आग्रह करने तथा सम्पूर्ण वैशाली नगरीका राज्य देनेके प्रलोभन पर भी तैयार नहीं हुई थी। इसके अतिरिक्त चाणक्य जैसा कूटनीतिज्ञ भी त्यागके आदर्शको आगे रखता है।"

सिख हिन्दू ही हैं, फिर एकताकी समस्या क्यों?

एक वार अकाली सिख-नेता मास्टर तारासिंहने दिल्लीमें भाषण करते हुए कह डाला था कि सिख हिन्दुओंसे पृथक् हैं। उनके इस कथनसे बिरलाजीके हृदयको बड़ा धक्का लगा था और एक वक्तव्य जारी करते हुए उन्होंने कहा था :

"यदि मास्टर तारासिंह साम्प्रदायिकताकी संकुचित दृष्टिको छोड़कर उदार दृष्टिसे सिख-पन्थके उदय और उत्थानके इतिहासका अध्ययन करें तो उन्हें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सिख भी हिन्दू ही हैं। सिख-धर्म

* * *

आर्य हिन्दू-धर्मकी ही एक शाखा है। इसका जन्म ही हिन्दू-धर्मकी रक्षाके लिए हुआ था। जिस प्रकार वेद आदि ग्रन्थ 'ओ३म्'से प्रारम्भ होते हैं, उसी प्रकार गुरुग्रन्थ साहबका आदि 'ओ३म्'से ही होता है। हिन्दुओं और सिखोंकी एक ही संस्कृति, एक ही रक्तमाँस, एक ही रीति-रिवाज, एक ही रहन-सहन और एक ही त्योहार और उत्सव हैं। सिखोंका एक बहुत बड़ा सम्प्रदाय नामधारी सिखोंका है, जो अपनेको हिन्दू ही कहता है। वैवाहिक सम्बन्ध भी हिन्दुओं और सिखोंमें होते रहते हैं। सिख भाइयोंकी वह कौन-सी संस्कृति है जो हिन्दुओंसे पृथक् है? सिखोंका वह कौन-सा इतिहास है, जिसे हिन्दू अपना इतिहास नहीं मानते? सिखोंकी वह कौन-सी भाषा है, जिसे हिन्दू अपनी भाषा नहीं समझते? सिखोंके वे कौन-से महापुरुष और पूज्य गुरु हैं, जिन्हें हिन्दू अपना गुरु नहीं मानते तथा श्रद्धा और आदरकी दृष्टिसे नहीं देखते? उनकी गुरुमुखी लिपि भी शारदा लिपिका ही बिगड़ा हुआ स्वरूप है। पंजाबमें सिखोंकी चार बड़ी रियासतें : पटियाला, नाभा, जीन्द और संगरूरमें राज्य द्वारा बनवाये हुए बड़े-बड़े प्राचीन राजमन्दिर हैं, जिन पर राज्यकी ओरसे बड़ी-बड़ी जागीरें लगी हुई हैं। इन चारों रियासतोंमें राजज्योतिषी, राजपुरोहित और राजगुरु भी सदा सनातनी हिन्दू ही होते आये हैं, जिनकी दरबारमें बड़ी प्रतिष्ठा रही है। इन चारों रियासतोंके राजघरानोंके शादी-सम्बन्ध भी हिन्दू राजपूत और हिन्दू जाट-परिवारोंके साथ होते हैं। पंजाबके प्रसिद्ध महाराजा रणजीतसिंहकी समाधिमें अष्टभुजाकी मूर्ति विराजमान है और महाराजा रणजीतसिंहके राजगुरु, राजपुरोहित और राजज्योतिषी सभी सनातनी हिन्दू ही होते थे, जिनके वंशके लोग आज भी विद्यमान हैं। सिख-पन्थके संस्थापक गुरु नानकजी भी हिन्दू माता-पिताकी सन्तान थे और सनातनी हिन्दू थे।

संग साथ सब तज गये, कोउ न निभयो साथ।
कह नानक यहि विपद में एक टेक रघुनाथ॥

कौन कह सकता है कि रघुनाथ (राम) पर टेक रखनेवाले गुरु नानकदेव हिन्दू नहीं थे।"

"...जब तक सिख लोग 'ओ३म्'का स्मरण और उच्चारण करते रहेंगे और गुरु ग्रन्थसाहबकी पूजा और पाठ करते रहेंगे, तब तक मास्टर तारासिंह चाहे अपनी पीठ पर मोटे-मोटे अक्षरोंमें लिखकर यह बिल्ला लटकाये फिरें और चिल्ला-चिल्लाकर कहें कि हम हिन्दू नहीं हैं; तब भी सिख हिन्दू ही रहेंगे और अलग होना चाहें, तब भी हिन्दू-धर्मसे अलग नहीं हो सकते।"

सेठजीने कोरा वक्तव्य ही नहीं दिया है, बल्कि उन्होंने जगह-जगह तमाम गुरुद्वारे बनवाये, सिख छात्रोंके लिए छात्रवृत्तियाँ प्रदान कीं, हिन्दू-सिख एकताकी पुष्टिके लिए अनेक सम्मेलन आयोजित करवाये : ये सब आखिर उन्होंने क्यों किये? बिरलाजीके समान अन्य हिन्दुओंका कहना भी है कि सिख हिन्दू हैं और इसलिए दोनोंकी एकता स्वाभाविक है।

हिन्दू-सिख एकताके प्रबल पोषक सनातन-धर्मी नेता गोस्वामी गणेशदत्तजीके सहयोगसे जुगलकिशोर बिरलाने लाहौरमें किसी समय एक हिन्दू-सिख सम्मेलन भी आयोजित किया था, जिसमें हिन्दुओं और सिखोंके अनेक नेता सम्मिलित हुए थे और उसमें एकता सम्बन्धी कई प्रस्ताव स्वीकार किये गए थे। एकता सम्बन्धी प्रयत्नोंको सक्रिय रूप देनेके लिए सेठजीने साठ हजार रुपयेकी राशि इसलिए दी थी कि उससे पंजाबके सिख और हिन्दू-छात्रोंको छात्रवृत्तियाँ दी जायँ तथा हिन्दू-सिख एकताको सुदृढ़ बनाया जाय। इसके अतिरिक्त उन्होंने अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघ ट्रस्टके कोषमें भी एक अच्छी निधि अर्पित की और उससे उन सिख छात्र-छात्राओंके लिए छात्रवृत्तियोंका प्रबन्ध किये जानेका आदेश दिया, जो संस्कृत विषय लेकर

* * *

बी० ए०, एम० ए० अथवा प्राचीन पद्धतिसे अध्ययन करना चाहते हैं। इस कोषसे अब भी २५ छात्रोंको छात्रवृत्तियाँ दी जा रही हैं, जिनमें १५ सिख छात्राएँ भी शामिल हैं।

इसके अतिरिक्त बिरलाजीने नयी दिल्लीके श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिरके कक्षों, दीवारों और प्रांगणमें जगह-जगह सिख गुरुओंकी वाणी और उपदेश शिलापट्टों पर अंकित करवाये तथा सिख गुरुओंके सुन्दर चित्र संगमरमरकी पटरियोंपर उत्कीर्ण करवाये। मन्दिरमें महाराजा रणजीतसिंहकी विशाल प्रस्तर प्रतिमा भी प्रतिष्ठित करवायी है।

अछूतोद्धार और हरिजन-समस्या

स्वर्गीय सेठ जुगलकिशोर बिरला 'हिन्दुत्व' शब्दकी बड़ी व्यापक परिभाषा करते थे। भारतके सभी हिन्दू-सम्प्रदायोंके साथ-साथ योरोपकी आर्य-जातियोंको भी वे आर्य (हिन्दू) जातिकी ही शाखाएँ मानते थे।

एक समय था जब डॉ० अम्बेदकरने हरिजन-समस्याको लेकर देशव्यापी आन्दोलन छेड़ रखा था और अन्तमें उन्होंने हरिजन भाइयोंकी एक बड़ी तादादके साथ विधिवत् बौद्ध-धर्म स्वीकार भी कर लिया। इसके बावजूद अम्बेदकरजीकी संकीर्ण दृष्टिमें हिन्दू-धर्म सदैव हेय बना रहा और समय-समय पर वे हिन्दुओंकी कटु आलोचना करनेसे बाज नहीं आये। स्वर्गीय बड़े बाबू अक्सर उन्हें समझाते-बुझाते रहते थे कि हरिजन भाई भी विशाल हिन्दू-जातिके ही अंग हैं।

लोकसभामें उन दिनों हिन्दू कोडबिल पर बहस चल रही थी, जिसके दौरान डॉ० अम्बेदकरने अपने भाषणमें कह दिया कि हिन्दुओंमें शूद्रोंकी संख्या ९० प्रतिशत है। उनकी इस तथ्यहीन बातको लेकर बादको स्वर्गीय सेठजीने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि :

"डॉ० अम्बेदकरका कथन न केवल असत्य है, वरन् शरारतसे भरा हुआ तथा हिन्दुओंमें परस्पर विरोध फैलाने वाला है। अम्बेदकरजीने यह आँकड़ा कहाँसे पाया, यह वही बता सकते हैं; लेकिन वास्तविकता बिलकुल इसके विपरीत है। वास्तवमें शूद्र कहे जानेवालोंकी संख्या तो हिन्दू-समाजमें बहुत थोड़ी है। शूद्रोंकी बात जाने दें, जो अछूत कहे जाते हैं, उनकी संख्या भी उतनी नहीं है, जितनी सरकारी आँकड़ोंमें दिखायी गयी है। यह तो अंग्रेजी राज्यके दिनोंसे हिन्दुओंको छिन्न-भिन्न करके उनके राजनीतिक महत्वको घटानेकी सरकार-की कुटिल नीतिका परिणाम था कि अछूतोंकी संख्या जनगणनामें पाँच करोड़ दिखायी गयी। अब ऐसा लगता है कि डॉ० अम्बेदकर भी शूद्रोंकी संख्या ९० प्रतिशत बताकर पारस्परिक विद्वेषकी भावना उभारकर हिन्दुओं-से अपना चिरसंचित बदला लेना चाहते हैं।"

"हिन्दू-जातिके विघटनके दिनोंमें अज्ञानतावश हिन्दुओंमें एक वर्गने दूसरे वर्गके साथ खान-पान, शादी-ब्याह बन्द कर दिया, यह सत्य अवश्य है; किन्तु यह कहना कि ऊँचे वर्णके लोग अपनेसे नीचे वर्णके साथ खाते-पीते नहीं, इसलिए निम्न वर्णके जितने लोग हैं, सभी शूद्र हैं, सत्यका गला घोंटना है। यही नहीं, डॉ० अम्बेदकर जिन्हें शूद्र कहते हैं, उनके भी गोत्रादि वही हैं; जो ब्राह्मण आदि वर्णोंमें पाये जाते हैं। थोड़ी-सी जातियोंको छोड़कर शेष सभी जातियाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णोंमें आ जाती हैं और अपनेको ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य कहनेमें गर्व करती हैं। उदाहरणार्थ तन्तुवाय, कोइरी, काछी, खटिक, कलवार, माली, सैनी, शिल्पकार, तमोली, बरई, तेली, ताँती आदि अनेक जातियाँ ऐसी हैं, जो अपनेको वैश्य मानती हैं। इसी प्रकार बढ़ई, लुहार आदि अपनेको विश्वकर्मा लिखते हैं तथा ब्राह्मण वर्णका अविभाज्य अंग बताते हैं। इन सब बातोंको देखते हुए यह कहना कि हिन्दुओंमें शूद्रोंकी संख्या ९० प्रतिशत है, सिवाय शरारतके और क्या है?"

* * *

डॉ० अम्बेदकरने जब बौद्ध-धर्म स्वीकार कर लिया, तो स्वर्गीय बाबूजीने अपनी प्रतिक्रिया इन शब्दों में व्यक्त की थी :

"यह जानकर प्रसन्नता है कि श्री अम्बेदकरजी अब अन्तिम और निश्चित रूपसे बौद्ध-मतको स्वीकार कर भगवान् तथागतकी शरणमें आ गये हैं। इसके लिए हम अम्बेदकरजीको बधाई और धन्यवाद देते हैं। पर बौद्धमतको वे बिना हिन्दू-धर्मको कोसे और गाली दिये हुए भी ग्रहण कर सकते थे। इस सम्बन्धमें हिन्दू-धर्मके प्रति जो शब्द उन्होंने व्यवहृत किये थे, उनसे केवल उनकी अज्ञानता, पक्षपात और द्वेष-दग्ध भावनाका ही परिचय मिलता है।"

अपनी प्रतिक्रियामें धर्मप्राण बिरलाजीने आगे कहा था : "यह आश्चर्यकी बात है कि डॉ० अम्बेदकर जैसा विद्वान् यह नहीं जानता या जानना नहीं चाहता कि बौद्ध-धर्म आर्य हिन्दू-धर्मसे पृथक् वस्तु नहीं है और प्राचीन हिन्दू-धर्मका ही एक अंगमात्र है। सनातन आर्य (हिन्दू) धर्म और बौद्धमत दोनोंके मूलभूत और आधार-भूत सिद्धान्त एक ही हैं। बौद्ध-मतका कोई भी मौलिक सिद्धान्त ऐसा नहीं हैं, जो आर्य (हिन्दू) धर्मसे न लिया गया हो। कर्म, पुनर्जन्म, मोक्ष (निर्वाण), यम, नियम, अहिंसा आदिके सिद्धान्त जो बौद्ध-धर्मकी विशेषताएँ हैं, सब आर्य हिन्दू-धर्मसे ही लिये गये हैं. . . ।"

"डॉ० अम्बेदकर हिन्दुओंके जात-पाँतके भेद तथा छुआछूतके कारण ही हिन्दू-धर्मके सबसे अधिक विरोधी प्रतीत होते हैं। परन्तु जात-पाँतका भेद, छुआछूत और अन्य सामाजिक रूढ़ियाँ वास्तवमें हिन्दू-धर्म नहीं हैं। रीति-रिवाज समयकी आवश्यकताके अनुसार पैदा होते हैं और जब उनकी आवश्यकता नहीं रहती, आप ही आप लोप हो जाते हैं अथवा लोगोंकी चेष्टासे हटा दिये जाते हैं . . . ।"

"आर्य हिन्दू-धर्मका वर्ण-विभाजन जन्मके आधार पर नहीं, वरन् गुण-कर्मके आधार पर किया गया था। इसके लिए गीताके इस वाक्यका ही प्रमाण पर्याप्त है कि **'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः'** और मनुका यह वाक्य भी प्रमाणरूपमें उद्धृत किया जा सकता है कि **'जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते।'** प्राचीनकालमें तो शूद्रसे शूद्र और चाण्डालसे चाण्डाल व्यक्ति भी अपने गुण-कर्मकी वजहसे उच्चसे उच्च ब्राह्मणकी पदवी धारण कर सकता था। वाल्मीकि, वेदव्यास, सूत, विदुर आदि इसके अनेक उदाहरण हैं। आज भी डॉ० अम्बेदकर एक ब्राह्मण कन्यासे विवाह कर सकते हैं और आधुनिक मनुकी पदवी धारण कर सकते हैं। यह हिन्दू-धर्मकी उदारता और विशालताका ही परिणाम है। साथ ही आर्य-समाज आदि हिन्दुओंकी अनेक शाखाएँ हैं, जो जन्मसे नहीं, वरन् गुण-कर्मसे ही वर्ण विभाग मानती हैं।"

स्वर्गीय जुगलकिशोरजी बिरला हरिजन-समस्याको हिन्दुओंकी एक निजी समस्या मानते थे और उसे राजनीतिक रूप देनेके प्रबल विरोधी थे। उनका कहना था कि : 'अंग्रेजोंने हिन्दुओंमें फूट डालने और उनकी संख्याको घटानेके निश्चित उद्देश्यसे इस समस्याको राजनीतिक रूप देनेका कुचक्र रचा। सेठजीको इस बातका और अधिक खेद रहा कि आजादीके बाद भी वोटों, पदों तथा नौकरीके लिए राजनीतिक रूपमें इस समस्याको अधिक जटिल बना दिया गया। नौकरियों और पदोंमें विशेष सुविधाएँ प्राप्त होनेके कारण बहुतसे सवर्ण भी इस समय हरिजन होनेको तैयार हैं।'

अपने एक लेखमें स्वर्गीय सेठजीने लिखा था : "हरिजन-समस्याके सम्बन्धमें एक बात ध्यान देने योग्य है कि हरिजनोंमें अधिक कष्ट उन लोगोंको ही है, जो भंगीका काम करते हैं। वास्तवमें असली हरिजन वही हैं, भंगियोंको हरिजन माननेका प्रधान कारण उनका कार्य था, जिसका सम्बन्ध स्वच्छता और स्पर्शास्पर्शके विचारसे था। परन्तु भारत भरमें भंगियोंकी संख्या ५० लाखसे अधिक नहीं है। उनसे उतरकर दूसरा नम्बर

* * *

उन हरिजनोंका है, जो चमड़ा उतारनेका काम करते हैं। उनके कामसे भी स्वच्छता, अस्वच्छता तथा स्पर्शा-स्पर्शके विचारका सम्बन्ध होनेसे वे भी हरिजन गिने गये। परन्तु इनको छोड़कर मोची, खटिक, नायक, धोबी आदि अनेक जातियाँ हैं, जिन्हें सरकारी सूचीमें हरिजन माना गया है, यद्यपि यथार्थमें वे अछूत या हरिजन नहीं हैं। इस प्रकार बढ़ाते-बढ़ाते हरिजनोंकी संख्या आज ५० लाखसे ५ करोड़ कर दी गयी है, अन्यथा वास्तव में हरिजनोंकी संख्या उतनी नहीं है; जितनी कि बतायी जाती है। यदि आज हरिजनोंको दी जानेवाली विशेष राजनीतिक सुविधाएँ हटा ली जायँ, तो बहुत कम जातियाँ ऐसी होंगी, जो अपनेको हरिजन कहलाना पसन्द करेंगी।"

"हरिजन-समस्याके सम्बन्धमें एक बात ध्यान रखने योग्य यह भी है कि हरिजनोंके साथ छुआछूतका विचार घृणामूलक नहीं, वरन् स्वच्छता-अस्वच्छताकी भावना पर आधारित है। इसमें दूसरी प्रकारकी कोई घृणाकी भावना नहीं है। इसके विपरीत सवर्णों द्वारा हरिजनोंके एक सम्मिलित परिवारके अंगकी तरह आर्थिक दृष्टिसे पालन-पोषण किया जाता था। राजस्थानमें अब भी प्रत्येक गृहस्थके द्वारा ब्राह्मण, भंगी, नाई आदिको अलग-अलग रोटी देकर तब भोजन करनेकी प्रथा है। विवाह, जापा, उत्सव, पर्व आदिमें भंगी आदिके लिए नेग-परोसा आदि बँधा रहता था और इस प्रकार उनको कोई आर्थिक कष्ट नहीं होने पाता था तथा वे हिन्दू-जातिके एक अंग बने हुए सन्तुष्ट रहते थे। बोलचालमें भी उनके साथ कुटुम्ब-का-सा बर्ताव होता था। ब्राह्मणके बालक भी बड़े-बूढ़े हरिजनोंको ताऊ, चाचा आदि कहकर सम्बोधित करते थे।"

यद्यपि आज आमतौर पर हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशकी समस्यामें कोई जटिलता नहीं रह गयी है, लेकिन कुछ वर्षों पूर्व यह प्रश्न समाजमें पर्याप्त विकराल रूप धारण किये हुए था। यह समस्या कैसे और किन हाथोंने सुलझायी, यदि हम इस बातकी खोज-बीन करें, तो हमें दिखायी देगा कि इसमें भी प्रमुख हाथ ब्रह्मलीन बिरलाजीका ही था।

महात्मा गान्धीजीने इस समस्याके निराकरणका समाधान जनमनको साथ लेकर खोजा था, किन्तु बड़े बाबूने क्रियात्मक और व्यक्तिगत रूपसे इस दिशामें ठोस प्रयास किया। नयी दिल्लीमें श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिरमें हरिजनोंके प्रवेशके लिए स्व० बिरलाजीकी ओरसे जो नियम बनाया गया, वह इस प्रकार है: "**स्वच्छता से आनेवाले हरिजनों समेत सभी हिन्दुओंको मन्दिरमें प्रवेशकी अनुमति है।**' मन्दिरका उद्‌घाटन महात्मा गान्धीने किया था। यह भारतका प्रथम मन्दिर है, जिसमें प्रारम्भसे ही मन्दिरका प्रवेश-द्वार हरिजनोंके लिए खोल दिया गया।

मन्दिरोंमें हरिजनोंके प्रवेशके समर्थनमें प्रमाण स्वरूप स्वर्गीय बिरलाजी धर्मग्रन्थोंसे कुछ उदाहरण भी दिया करते थे:

कृष्णालयसमीपस्थान् कृष्णदर्शनलालसान्।
चाण्डालान्पतितान्व्रात्यान् स्पृष्ट्वा न स्नानमाचरेत्॥
—यतिधर्म संग्रहः

—भगवान् श्रीकृष्णकी दर्शनकी इच्छासे मन्दिरमें आनेवाले चाण्डालों, पतितों अथवा व्रात्योंसे छू जाने पर स्नान नहीं करना चाहिए।

सर्वे विप्रसमाज्ञेयाः श्वपचाद्याः न संशयः।
ये कुर्वन्ति दिने विष्णोर्जागरं गीतकीर्तनम्॥
—निम्बार्कव्रतनिर्णयः

* * *

—एकादशीके दिन जागरण और कीर्तन करनेवाले श्वपचों (भंगीका काम करनेवालों) को ब्राह्मणोंके समान पवित्र समझना चाहिए।

कृष्णोत्सवसमायातान् दृष्ट्वा हरिजनान् क्वचित्।
नैव कार्याऽशुचैः शंका पुण्यास्ते भक्तिसंयुक्ताः॥
—निम्बार्कव्रतनिर्णयः

—श्रीकृष्णके दर्शनार्थ आये हुए किसी भी हरिजन अर्थात् भगवान्के भक्तको देखकर अपवित्रताकी शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वे भक्तियुक्त होनेके कारण पवित्र हो जाते हैं।

उत्सवे वासुदेवस्य यः स्नाति स्पर्शशंकया।
स्वर्गस्थाः पितरस्तस्य पतन्ति नरकेऽशुचौ॥
—धर्मप्रदीपः

—भगवान् श्रीकृष्णके उत्सवमें जाकर हरिजनोंके छू जानेकी शंकासे जो स्नान करता है, उसके स्वर्ग गये पितर भी अपवित्र नरकोंमें जा गिरते हैं।

भाति यस्य जगत् बुद्धौ सर्वमप्यनिशमात्मतयैव,
स द्विजौऽस्तु भवतुश्वपचौ वा वन्दनीय इति मे दृढ़निष्ठा।
या चितिः स्फुरति विष्णुमुखे सा पुत्तिकावधिषु सैव सदाऽहम्,
नैव दृश्यमिति यस्य मनीषा पुल्कसौ भवतु वा स गुरुर्मे॥
—जगत्गुरु आद्यशंकराचार्यः

—जिस ज्ञानी और दृढ़ बुद्धि पुरुषके लिए यह सम्पूर्ण विश्व सदा आत्मरूपसे प्रकाशित होता है, वह चाहे ब्राह्मण हो, चाहे श्वपच हो, वन्दनीय है, यह मेरी दृढ़ निष्ठा है। जो चैतन्य विष्णु आदि देवताओं में स्फुरित होता है, वही चैतन्य कीड़े-मकोड़े जैसे क्षुद्र जीवों तकमें भी स्फुरित होता है। वही चैतन्य 'मैं हूँ'—जिसकी ऐसी बुद्धि है, वह चाण्डाल भले ही हो, मेरा गुरु है।

जाति-उत्थान प्रमाणपत्र

हरिजनोंके उत्थानके लिए बड़े बाबूने **'जाति-उत्थान प्रमाणपत्र'** भी प्रचारित किये थे। इन प्रमाण-पत्रों द्वारा उन व्यक्तियोंको, जो नीची श्रेणीमें गिने जाते हैं; धर्मशास्त्र, पुराण और परम्पराके आधारपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यकी पदवी दी जाती है। प्रमाणपत्र पानेवालों पर इसका प्रभाव बहुत अच्छा पड़ता है और वे हीनभावनासे मुक्त हो जाते हैं।

हिन्दुओंका धर्म-परिवर्तन

जहाँ मुगल शासनकालमें बलप्रयोग द्वारा लाखों हिन्दू मुसलमान बना लिये गये और उसके बाद भी यह कार्य चलता ही रहा, वहीं ब्रिटिश हुकूमतमें विविध ईसाई मिशनरियोंने तरह-तरहके प्रलोभन देकर दक्षिण भारत, असम, बंगाल व बिहारकी गरीब जनता और अपढ़ आदिवासियोंका भारी संख्यामें धर्म-परिवर्तन कर-

* * *

वाया। मिशनरियोंको इस काममें तत्कालीन और सरकारका आशीर्वाद प्राप्त होनेके कारण साधारण लोगोंमें इसका विरोध करनेका साहस ही नहीं था।

मिशनरियोंका यह घृणित काम स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद भी पूर्ववत् चलता रहा और जहाँ-तहाँ अब भी चल रहा है। खेदका विषय है कि हमारी धर्म-निरपेक्ष सरकार इस दिशामें कोई ठोस, सुदृढ़ क़दम नहीं उठा रही है।

अंग्रेजी शासनमें ईसाई मिशनरियोंकी गतिविधियाँ प्रायः देशके हर प्रान्तमें चलती रहीं। पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान और गुजरातमें इन मिशनरियोंको इतनी अधिक सफलता नहीं मिली, जितनी कि अन्य प्रान्तोंमें सहज उपलब्ध हो गयी, क्योंकि इन प्रान्तोंमें आर्यसमाजका काफी जोर रहा तथा यहाँकी हिन्दू-जनताने स्वयं जागरूक होकर अपने रीति-रिवाजोंमें समयानुकूल परिवर्तन कर लिये।

हिन्दू-जातिके उन्नायक स्व० जुगलकिशोर बिरला हिन्दुओंके बलात् धर्म-परिवर्तनके घोर विरोधी थे। बंगालके खुलना जिलेमें मिशनरियों द्वारा वहाँके निर्धन आदिवासियोंको प्रलोभन देकर ईसाई बनानेके सम्बन्धमें उन्होंने शान्ति निकेतनमें रह रहे दीनबन्धु सी० एफ़० एण्ड्रूजको एक पत्र सन् १९३७में लिखा था, जिसमें उक्त धर्म-परिवर्तनके कार्यका विनम्र किन्तु घोर विरोध किया था।

इस पत्रके उत्तरमें एण्ड्रूज महोदयने स्वर्गीय बिरलाजीकी भावनाओंसे सहमति व्यक्त करते हुए इस कार्यकी जाँच-पड़तालका आश्वासन दिया था।

ब्रिटिश भारतके अलावा त्रिवांकुर, कोचीन, कुर्ग और मैसूर जैसा हिन्दू रियासतोंमें भी मिशनरियोंका बड़ा दबदबा था। विविध मिशनोंकी ओरसे स्कूल-कॉलिज, अस्पताल, अनाथालय आदि खोले गये। वहाँकी गरीब जनताको और भी तमाम किस्मके प्रलोभनादि दिये गए। हिन्दुओंमें जातिगत असमानताके शिकार हरिजन और आदिवासी वर्ग सहज ही ईसाइयोंके चंगुलमें फँस जाते थे। उस समय त्रिवांकुर राज्यकी आबादी ६० लाख थी, जिसमेंसे २० लाख लोगोंने बपतिस्मा ले लिया था।

इस राज्यमें जब सर सी० पी० रामास्वामी अय्यर दीवान नियुक्त हुए, तो वहाँ हिन्दू धार्मिक आन्दोलन-को बड़ा बल मिला। उनके सत्प्रयत्नसे सभी हिन्दुओंके लिए मन्दिरोंके द्वार राजाज्ञासे खोल दिये गए, फलतः ईसाई बननेवालोंकी संख्या घट गयी।

सर सी० पी० रामास्वामी अय्यरने एक बार सेठ जुगलकिशोरजी बिरलासे भेंट करके सुझाव रखा था कि यदि सेठजीकी ओरसे त्रिवांकुरमें हिन्दुत्वके प्रचारके लिए कोई संस्था खोली जाय, तो राज्यके देवस्वम् बोर्डकी ओरसे एक हजार रुपये तक मासिक सहायता उस संस्थाको दी जा सकती है। उन्होंने इस प्रस्तावको स्वीकार कर लिया और फलस्वरूप त्रिवांकुरमें आर्य-सेवासंघकी स्थापना हुई। इस संघकी ओरसे बहुसंख्यक प्रचारकोंने हिन्दू-जातिकी वहाँ सेवा की। यह संस्था आज भी मौजूद है और इसकी ओरसे एक **आर्यकुमार** आश्रमका संचालन और प्रचार-कार्य चल रहा है।

इसी प्रकार दक्षिणमें ईसाईधर्म प्रचारके निराकरणार्थ **हैदराबाद सेवकसंघम् मनकडको** बड़े बाबूकी ओरसे एक विशेष वार्षिक अनुदान प्रतिवर्ष हिन्दू-सम्मेलन आयोजित करनेके लिए दिया जाता रहा है।

अंग्रेजी शासनकालमें डच मिशनरी मध्यप्रदेशमें आदिवासी गोंडोंको स्कूल, औषधालय आदि स्थापित करनेके अतिरिक्त जुआ, शराब आदिके असामाजिक कार्योंके लिए पैसा देकर ईसाई बनानेके लिए निरुपाय एवं बाध्य करते थे। सूचना मिलने पर सेठ जुगलकिशोर बिरलाकी प्रेरणा एवं सहायतासे अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघकी ओरसे गोंडोंके उस इलाकेमें २५ प्राइमरी स्कूल तथा बहुसंख्यक औषधालय खोले

* * *

गये और उनको वर्षों तक हजारों रुपयेकी सहायता दी जाती रही। संघके अतिरिक्त ठक्कर बापाने भी हरिजन सेवक-संघकी ओरसे २५ स्कूलोंका संचालन श्री बिरलाजीकी प्रेरणासे किया।

इसी प्रकार बिहारके राँची जिलेमें भी उराँव, मुण्डा, खरिया और कोरवा आदिवासियोंके बीच ईसाई पादरियोंने अपना डेरा जमाया और सार्वजनिक सेवा करते हुए ईसाई-धर्मका प्रचार व्यापक पैमाने पर शुरू कर दिया। फलस्वरूप वहाँ तीन लाख आदिवासी ईसाई बन गये। यहाँ तक कि गंगापुर स्टेटकी जन-जातियोंका बच्चा-बच्चा ईसाई बना लिया गया।

इस क्षेत्रमें बड़े बाबूने अनेक संस्थाएँ खुलवाकर ईसाई-धर्मका प्रचार-प्रसार रोका। राँचीमें हिन्दू-धर्म-रक्षक संघका गठन किया गया। आदिवासी छात्रोंके निवासके लिए '**राजा बिरला हिन्दू, मुण्डा, उराँव छात्रावास**' स्थापित किया गया। इसके अतिरिक्त रामगढ़ और सरगुजा अंचलके आदिवासियोंके लिए जगदलपुरमें '**कल्याण आश्रम**' बनानेके लिए सेठजीने पर्याप्त आर्थिक सहायता प्रदान की। राँचीमें उनके साथ-साथ 'बिरला ब्रदर्स'की सहायतासे '**संस्कृति विहार**' नामक एक और संस्था स्थापित की गयी, जो अब तक बिहारके छोटा नागपुर, मध्य प्रदेशके कई भागों तथा उड़ीसाके राउरकेला आदि क्षेत्रोंमें अपने कार्यका विस्तार कर चुकी है।

इस प्रकार ईसाई मिशनरियोंका एक बहुत बड़ा जाल अंग्रेजी हुकूमतमें ही भारतके प्रायः सभी भागोंमें फैल चुका था। द्वितीय विश्व-युद्धके बाद यहाँ अमेरिकी ईसाई मिशनरी और अधिक संख्यामें आने लगे और भारतकी स्वतन्त्रताके बाद तो जैसे उनकी गति-विधिपर कोई अंकुश ही नहीं रह गया। आजाद भारतमें ईसाई प्रचार एवं प्रसारकी भयावह स्थितिको देखकर भारत-स्थित अमेरिकी राजदूत के नाम श्री बिरलाजीने २३ नवम्बर, १९५४को एक पत्र लिखकर आग्रह किया कि 'अमेरिकी ईसाई मिशनरियोंके कार्यकलापों तथा उनके अनुचित उपायोंसे धर्म-परिवर्तनके कामों पर अमेरिकी सरकार रोक लगाये।' इस सन्दर्भमें सेठजीने इस तथ्यपर विशेष रूपसे बल दिया कि 'योरोप और एशियाके उन देशोंमें जहाँ ईसाइयतका प्रभाव प्रबल रूपसे हो रहा है, ईसाई मत कम्युनिज्मके प्रचार एवं प्रसारको रोक पानेमें बुरी तरह विफल रहा है। उदाहरणतः रूस ईसाई मतका प्रबल गढ़ था। ईसाई मतका प्रभाव वहाँ सर्वोपरि और सर्वव्यापी था, परन्तु ईसाई मत रूसको कम्युनिस्ट होनेसे न रोक सका। इसके विपरीत हिन्दू स्वभावतः ईश्वरभक्त, धार्मिक तथा आध्यात्मवादी होता है। हिन्दू-धर्म संसारमें सर्वाधिक उदार, सहिष्णु और मानवीय धर्म है। अतएव हिन्दू ही एक ऐसा धर्म है, जो भारत और कम्युनिज्मके बीच खड़ा हुआ कम्युनिज्मको भारतमें फैलनेसे रोक रहा है।'

अमेरिकी दूतावाससे ५ जनवरी, १९५५को श्री बिरलाजीके इस पत्रका उत्तर प्रेषित किया गया, जिसमें नेहरूजी द्वारा विदेशी पादरियोंके नाम लिखे गए एक पत्रका उल्लेख करते हुए बताया गया कि प्रधान-मन्त्री नेहरूके कथनानुसार 'प्रत्येक धर्मको भारतमें पूर्ण और बराबरकी स्वतन्त्रता है। मानवीय हित और विद्या-प्रचार सम्बन्धी कार्यका सदा स्वागत है। यद्यपि कोरे धर्म-प्रचार सम्बन्धी कार्यकी ओर हमारा उत्साह नहीं है, तथापि हम इसके मार्गमें रुकावट नहीं डालना चाहते हैं।'

दूतावासने जवाहरलाल नेहरूके इस पत्रकी दुहाई देते हुए सेठजीको सूचित किया कि अमेरिकी मिशनोंको अमेरिकी सरकारकी ओरसे किसी किस्मकी सहायता या प्रोत्साहन नहीं दिया जाता, अतएव सरकार उनकी गति-विधियोंपर किसी प्रकारका अंकुश लगानेमें सर्वथा असमर्थ है।

दिसम्बर, १९५५में सेण्ट टॉमसके भारत आगमनकी वर्षगाँठ ईसाइयोंकी ओरसे मनायी गयी थी। इस अवसर पर हुए समारोहमें तत्कालीन केन्द्रीय उद्योगमन्त्री श्री टी० टी० कृष्णामाचारीने भी सम्मिलित

* * *

होकर भाषण किया था, जिसपर आपत्ति करते हुए स्वर्गीय जुगलकिशोर बिरलाने कृष्णामाचारीजीको जो पत्र लिखा था, उसमें विनम्रतापूर्वक इस बात पर मन्त्रीजीका ध्यान आकर्षित किया गया था कि 'उनके भाषणका ईसाई मिशनरी प्रमाण-पत्रके रूपमें उपयोग करेंगे और बलात् धर्म-परिवर्तनका जो क़ाम वे लोग कर रहे हैं, उसमें उन्हें विशेष प्रोत्साहन प्राप्त होगा।'

मध्य प्रदेशमें ईसाई मिशनरियोंकी जाँचके लिए भारत सरकारकी ओरसे जो नियोगी कमेटी बैठाई गई थी, उसकी रिपोर्ट प्रकाशित होने पर धर्मप्राण बिरलाजीने तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, गृहमन्त्री पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त, उत्तर प्रदेशके मुख्य मन्त्री डॉ० सम्पूर्णानन्द, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष श्री ढेबर तथा उपराष्ट्रपति सर्वपल्ली डॉ० राधाकृष्णन्‌के पास पत्र भेजकर अनुरोध किया कि 'ईसाई मिशनरियों द्वारा जो स्कूल, अस्पताल, अनाथालय आदि संस्थाएँ देशके विविध अंचलोंमें खोली गयी हैं, उनपर सरकारी नियन्त्रण रखा जाय और उनके द्वारा धर्म-परिवर्तनका जो कार्य अबाध गतिसे हो रहा है, उस पर रोक लगायी जाय। इसके अतिरिक्त ईसाई-धर्मके प्रचार-प्रसार में लगे हुए विदेशी मिशनरियोंको भारत छोड़कर चले जानेका आदेश दिया जाय।'

विश्व ईसाई सम्मेलनमें भाग लेनेके लिए जब पोप पॉल षष्ठम् बम्बई पधारे, तो स्वर्गीय सेठजीने उनके पास एक पत्र भेजकर धर्म, न्याय और सत्यके नाम पर तथा हिन्दुओं और ईसाइयोंके बीच मैत्री तथा शुभकामनाको दृष्टिमें रखकर उनसे आग्रह किया था कि 'वे योरोप और अमेरिकाके भिन्न-भिन्न देशोंके ईसाई मिशनोंपर अपना नैतिक प्रभाव डालें, ताकि वे अपनी-अपनी मिशनरियोंको भारतसे वापस बुला लें और प्रलोभनों तथा अन्य धर्म-विरुद्ध अनुचित उपायोंसे धर्म परिवर्तित करानेका जो अनीतिपूर्ण और भ्रष्ट कार्य हो रहा है, उसे तुरन्त बन्द कर दें।'

ईसाई मिशनरियोंके निन्दनीय कार्योंके विरुद्ध जनमत तैयार करनेके लिए स्व० बिरलाजीने देशके प्रबुद्ध वर्ग विशेष रूपसे पत्रकारोंसे भी अनुरोध किया था। यशस्वी पत्रकार दुर्गादासजीको ३ नवम्बर, १९५८को एक पत्र लिखकर उन्होंने इस सम्बन्धमें 'हिन्दुस्तान टाइम्स' नामक अँग्रेजी दैनिकमें लेख लिखनेका निवेदन किया था।

भारत ही नहीं, अपितु अन्य देशोंमें बौद्ध धर्मावलम्बियोंके बीच ईसाई मिशनरियों द्वारा चलनेवाले प्रचार कार्यका भी स्व० बिरलाजीने जोरदार विरोध किया था। उन्हींकी प्रेरणा पर द्वितीय विश्वयुद्धके बाद पराजित जापानमें बढ़ते हुए मिशनरियोंके आतंकके विरोधमें हिन्दू और बौद्ध जनताकी ओरसे जापानमें संयुक्त सेनाके सुप्रीम कमाण्डर जनरल डगलस मैकाँर्थरके पास एक ज्ञापन भेजा था, जिसमें कहा गया कि 'अनेक एशियाई देशोंमें कम्युनिज्मका प्रचार बड़ी तेजीसे फैलता जा रहा है। उसको रोकनेमें यदि कोई वस्तु सफल हो सकती है, तो वह उन देशोंमें प्रचलित बौद्ध-धर्मका प्रचार ही है। इन देशोंकी जनताको उसके प्राचीन धर्मसे डिगना नहीं चाहिए। ईसाइयतके प्रचारसे तो उल्टा वहाँ कम्युनिज्मका प्रचार बढ़ता जा रहा है और बढ़ेगा। इसलिए जापानमें ईसाई मिशनरियोंके प्रवाहको अविलम्ब रोका जाय।'

शुद्धि-आन्दोलनमें स्वर्गीय सेठजीका योगदान

मुस्लिम शासन-कालमें, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा उसके आसपासके क्षेत्रोंमें बहुसंख्यक हिन्दू मुसलमान बना लिए गये थे। इनमें जाट, गूजर, मलकाने, मेव, जादव आदि अनेक जातियाँ थीं। शासनकी ओरसे प्रलोभन पाकर भी कुछ क्षत्रियोंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था।

* * *

ब्रिटिश शासनकालमें भी मुसलमानोंके साथ विशेष रियायत बरती जाती थी और नीची जातियोंके हिन्दू प्रायः मुसलमान बना लिए जाते थे, यद्यपि इसका कोई संगठित प्रयास नहीं होता था। कोकोनद काँग्रेस अधिवेशनमें मौलाना मुहम्मद अलीने बड़े गर्वके साथ कहा था कि 'मेरे एक मित्र हैं, जो हरिजन-समस्याको एकदम समाप्त कर सकते हैं।' उस समय उनकी बात लोग नहीं समझ सके, लेकिन कालान्तरमें ज्ञात हुआ कि उनके मित्र हजरत अहमद शाह आगा खाँ थे, जो भारतके अछूतोंको अपने मतमें सम्मिलित कर हरिजन-समस्याको हल करनेके लिए विकल थे।

हजरत आगा खाँने गुजरातके आनन्द ग्राममें अकलंक आश्रम स्थापित कर हरिजन पुरोहितोंको अपनी गद्दीका प्रलोभन देकर उनको मुस्लिम बनानेका विशाल आयोजन कर दिया। थोड़ी ही अवधिमें गुजरातके साठ हजार हरिजन इस्मायली मुसलमान बन गए। आगा खाँ गुजरात आये और उनको अकलंक अवतार के रूपमें पुजवाया गया। एक लाख हरिजनोंने उनका 'दीदार हासिल' (दर्शन) किया। उनके भोजन-वस्त्रका प्रबन्ध आगा खाँकी ओरसे हुआ और सुन्नत कराने पर उनके बच्चोंको १० रुपया छात्रवृत्ति देनेका आयोजन हुआ।

आगा खाँके प्रयत्नोंको रोकनेके लिए भारतीय हिन्दू सभाको लिखा गया, लेकिन उसकी ओरसे असमर्थता प्रकट कर दी गयी। जब स्वनामधन्य स्व० सेठ जुगलकिशोर बिरलाको इस्मायली आन्दोलनका पता चला, तो उन्होंने उसकी रोकथामके लिए बम्बई प्रदेश हिन्दू सभा और बड़ौदाकी आर्यकुमार सभाको चौदह सौ रुपया मासिक देना स्वीकार कर लिया। सेठजीकी सहायता वर्षों तक चालू रही। व्यापक शुद्धि-आन्दोलन द्वारा साठ हजार मुसलमान शुद्ध किये गए और साथ ही पन्द्रह हजार ईसाई भी शुद्ध हो गए।

बादको इसी क्षेत्रमें **'आर्यकुमार आश्रम'**, **'अबला आश्रम'**, **'भीलाश्रम'** आदि संस्थाएँ खोली गयीं, जिनमें अनाथ, अबला, विधवा हिन्दू महिलाओं तथा बच्चोंकी रक्षा की गयी।

अवढर दानी बिरलाजी एक बार बड़ौदा गए। जहाँ उन्होंने बड़ौदा राज्यको पचास हजार रुपयेका अनुदान इसलिए दिया कि उसके व्याजसे हरिजन छात्र-छात्राओंको गीता पढ़ायी जाय और हिन्दू-धर्मके ऊपर निबन्ध लिखने वालोंको पारितोषिक दिये जायँ। यह काम आजतक गुजरात सरकारका शिक्षा-विभाग कर रहा है।

पञ्चमहालके भीलोंमें भारतीय शुद्धि सभाका केन्द्र स्व० सेठजीके अनुदानसे चलता रहा। उन्होंने भील केन्द्रोंमें हरिजनोंके लिए राम मन्दिरोंका निर्माण कराया।

यहाँ एक ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख आवश्यक है। मालाबारके पालघार ग्रामके इडवा हरिजन ब्राह्मणोंके मुहल्लेमें रथयात्राके अवसर पर पीटे गए। इसके फलस्वरूप दो लाख हरिजनोंने जातीय सभा करके मुस्लिम या ईसाई बन जानेका निर्णय किया। इस निर्णयकी खबर 'हिन्दुस्तान टाइम्स'में प्रकाशित होते ही वहाँके हिन्दू धार्मिक संगठनोंके पास धर्म-परिवर्तनकी रोक-थामके लिए स्व० बिरलाजीने २५ हजार रुपये तत्काल भेज् दिये, जिससे उन हरिजनोंको आर्यसमाजी बनाकर ब्राह्मण मुहल्लोंमें ले जाया गया। इस प्रकार हरिजनोंका रोष और ब्राह्मणोंका विरोध-भाव तिरोहित हो गया।

शुद्धि-आन्दोलनको अधिकाधिक सक्रिय रखनेके लिए स्व० बिरलाजी अनेक आर्यसमाजी संस्थाओं और संगठनोंको प्रतिवर्ष लाखों रुपये अनुदान स्वरूप दिया करते थे। लाला लाजपतराय और स्वामी श्रद्धानन्दजीके प्रति उनकी विशेष निष्ठा थी। स्वामीजीके शुद्धि-आन्दोलन तथा गुरुकुलके लिए उदारमना सेठजीने कितना दिया और किस-किस रूप में दिया, इसका लेखा-जोखा आज कोई नहीं दे सकता।

राजस्थानके अलवर क्षेत्रमें स्वामी श्रद्धानन्द और स्व० जुगलकिशोर बिरलाकी प्रेरणासे शुद्धि-

* * *

आन्दोलनको व्यापक रूप प्राप्त हुआ। सेठजीने इस कार्यके लिए मुक्त हस्तसे सहस्रों रुपये दान दे कर हिन्दू-जातिकी रक्षा की। इस क्षेत्रमें सबसे पहले सन् १९२१में 'रायमा' ग्राम शुद्ध हुआ। उसके बाद इस अभियानका प्रसार और कई गाँवोंमें हुआ। स्वामीजीने सेठजीकी सहायतासे 'तसई' गाँवके मुसलमानोंकी शुद्धि कराके उन्हें आर्य (हिन्दू) बना लिया। इस महान् अनुष्ठानके लिए महात्मा हंसराज और आगरेके आर्य पण्डित वहाँ गए थे। तसई गाँव में उस समय तीन सौ परिवार मुस्लिम थे, जो शुद्ध हो गए। आज उनकी संख्या ४०० से भी ऊपर है। शुद्ध हुए हिन्दुओंके लिए आगरा शुद्धि सभाके प्रधानमन्त्री बा० नाथमलजीके आग्रह पर धर्मप्राण जुगलकिशोरजीने सन् १९२८ में एक मन्दिर बनवाया।

भरतपुर, आगरा, भिण्ड, मथुरा और अलवर क्षेत्रोंमें शुद्ध किये गए प्रमुख ग्रामोंमें खड़वई, बनवारी, डीग, जतीपुरा, आनोर, साँधन, नवगाँव, फतेहपुर, बसैया, सालनगर, भाईगुतला, बैरीपरकम, कबूलपूरा, सगेसा, महरमपुर और मनपुर इत्यादि हैं। इन्हीं दिनों अलवरकी तहसील किशनगढ़में भी सात सौ राँगण लोग शुद्ध किये गए।

सन् १९४७-४८में अलवरमें मेवोंकी शुद्धि सम्पन्न हुई। मेवोंके अतिरिक्त अलवरमें कई हजार मुसलमान जोगी बसते थे, जो अपने को इस्मायली सम्प्रदायका बतलाते थे। स्व० सेठजीकी प्रेरणा पर इन योगियोंकी शुद्धि सन् १९४७में श्री महिपाल शास्त्रीने सम्पन्न की।

दानवीर स्व० बिरलाजीने तीन हजार रुपयेकी सहायता देकर लालदासजीके समाधि-मन्दिरका जीर्णोद्धार करवाया तथा उन्हींने भक्त लालदासजीकी वाणी नामक एक पुस्तिका प्रकाशित करवाकर शुद्ध हुए मेवोंके बीच निःशुल्क वितरित करवायी।

शुद्धि-कार्यका श्रीगणेश करनेके लिए सर्वप्रथम आगरामें राजपूतोंका एक विराट् सम्मेलन हुआ, जिसमें देशके अनेक गण्यमान्य राजा भी सम्मिलित हुए। उसमें यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया कि जो भाई किसी कारणवश हिन्दू-धर्मसे बिछुड़कर मुसलमान हो गए हैं, उनको पुनः हिन्दू-धर्ममें वापस लिया जाय। स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा हंसराजके साथ-साथ श्रद्धेय सेठजीने भी उसमें सक्रिय भाग लिया और शुद्धि-कार्यके लिए धनसे पूरी सहायता करनेका आश्वासन दिया।

सन् १९३१में एटा जिलेके 'नगला अमरसिंह' ग्राममें एक बड़ी पंचायत हुई, जिसमें डॉ० माधोसिंह, श्रीचाँदकरणजी शारदा, राजा सूर्यपाल सिंह (अवागढ़) महाराज सरनऊ आदिने भाग लिया। स्व० सेठजी इस पंचायतमें दो दिनों तक सम्मिलित होते रहे। पंचायत में सेठजीके आनेसे आम जनताके साथ-साथ विशेष प्रभाव उन लोगोंपर पड़ा, जो शुद्धिमें विश्वास नहीं रखते थे। पंचायतसे उस क्षेत्रमें शुद्धि-कार्यकी ऐसी जड़ जमी कि गाँवके गाँव मलकाने शुद्ध होने लगे। नगला अमरसिंह भी उसी समय शुद्ध हुआ। आजकल उस क्षेत्र में शुद्धि-कार्य सुचारु रूपसे चल रहा है। वहाँके निर्धनोंको स्व० बिरलाजीने आर्थिक सहायताएँ दीं, मलकानोंके शुद्धि संस्कारों पर बड़े-बड़े सहभोज कराये और अपार धन व्यय किया। सेठजीने शुद्धि कार्यके लिए फर्रुखाबाद, हरदोई, शाहजहाँपुर, गोरखपुर आदि अनेक जिलोंमें स्वामी श्रद्धानन्दजीके साथ दौरा किया, पंचायतें करवायीं और शुद्धि अभियानको हर रूपमें सफल बनानेके लिए पूरी सहायता दी।

भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा, दिल्लीका सम्बन्ध सेठ जुगलकिशोर बिरलाके साथ सन् १९२३से बराबर रहा। विदेशसे आनेवाले गैरहिन्दुओंके समाचारसे बिरलाजी हरदम चौंक उठते थे। इस सम्बन्धमें एक घटना उल्लेखनीय है। दिसम्बर, १९६०में बड़े बाबू १०४° डिग्री बुखारसे ग्रस्त होने के बावजूद एक दिन तत्कालीन गृह राज्यमन्त्री श्री बी० एन० दातारके पास आग्रहपूर्वक गए। श्री दातारसे उन्होंने इस बात पर

* * *

चिन्ता व्यक्ति की कि असममें अवैध रूपसे पाकिस्तानी मुसलमान घुस रहे हैं, इससे वहाँ हिन्दू जनसंख्या न्यून पड़ जायगी। दातारजीने भी उनकी बातोंको स्वीकार किया और वादमें लोकसभामें इस राजनीतिक समस्याकी चर्चा की।

बौद्ध-देशोंसे सद्भावनाके प्रयत्न

संसारके प्रमुख बौद्ध-देश जापानके साथ भारतीय उद्योग जगत्के कर्णधार सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाका प्रथम सम्बन्ध उस समय स्थापित हुआ, जब कि ब्रिटिश शासन कालमें मैनचेस्टर और लिवरपूलके सूती कपड़ोंसे प्रतिस्पर्धा करते हुए उन्होंने जापानी मिलोंसे सम्पर्क करके भारतके लिए सूती वस्त्र विशेषकर अच्छे किस्मकी धोतियाँ-साड़ियाँ बनानेके लिए प्रोत्साहित किया। प्रारम्भमें जापानसे आनेवाली धोतियाँ अच्छी कोटिकी सिद्ध नहीं हुईं। लेकिन उन्होंने बराबर जापानी मिल-मालिकोंसे इंग्लैंण्डसे निर्यातित मालके कोटिके कपड़े तैयार करनेके लिए हर तरहसे उकसाया और अन्ततः इस कार्यमें उन्हें सफलता मिल गयी।

ब्रिटेनकी तुलनामें जापानसे कपड़ोंका आयात करना वास्तवमें सेठजीकी अंतःप्रेरणाका विषय था, क्योंकि वे ईसाई मतावलम्वी शोषक ब्रिटेनके मुकाबलेमें महात्मा बुद्धके अनुयायी जापानके साथ भारतका भावनात्मक सम्बन्ध मानते थे।

द्वितीय विश्वयुद्धकी समाप्तिके बाद जापानके युद्धकालीन मन्त्री जनरल तोजोको अमेरिकी अधिकारियोंने फाँसी देनेका निर्णय किया। इस निर्णयसे स्व० बिरलाजीके हृदयको गहरा आघात पहुँचा। फलस्वरूप उन्होंने एशियाके हिन्दुओंकी प्रतिनिधि संस्थाओं-आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघ, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, सनातनधर्म प्रतिनिधि सभा, बुद्धिस्ट सोसाइटी, सिखपन्थ-आदिकी ओरसे नयी दिल्ली-स्थित अमेरिकी कौंसल जनरलके नाम एक पत्र लिखवाकर भेजा, जिसमें जनरल तोजोके मृत्युदण्डका विरोध करते हुए अमेरिकी शासनसे आग्रह किया गया कि उन्हें क्षमा प्रदान की जाय।

अमेरिकी दूतावासने १५ दिसम्बर, १९४८के अपने पत्रमें सेठजीके उस पत्रकी प्राप्ति स्वीकार करते हुए उसकी एक-एक प्रति वाशिंगटन और जापान भेजे जानेका आश्वासन दिया।

लेकिन समस्त भारतीय और एशियाई जनमतकी उपेक्षा करके जनरल तोजो और उनके सहयोगियोंको मृत्युदण्डसे मुक्त नहीं किया गया और उनको फाँसी दे दी गयी। इस संसारसे विदा लेते हुए फाँसीके तख्तेपर झूलनेसे पूर्व जनरल तोजोने कहा था : "मैं विदा होता हूँ। पहाड़ोंके ऊपर होता हुआ भगवान् बुद्धकी गोदमें जा रहा हूँ। मैं प्रसन्न हूँ।"

जापानी बौद्ध बन्धुओंकी प्रेरणा पर बड़े बाबूने अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघकी ओरसे 'नन्दिनी' व 'कल्याणी' नामक दो भारतीय गायें तथा 'धर्म' नामक साँड़ प्रेमोपहार स्वरूप जापान भिजवाये थे। जिस जहाज में ये गायें और साँड़ भेजे गए थे, उसके जापानी तट पर पहुँचते ही इन प्रेमोपहारोंका जापानियों द्वारा सम्मानके साथ भव्य स्वागत किया गया।

जापानकी राजधानी टोकियोमें गायोंके सम्मानमें एक बड़ा जुलूस निकाला गया और उनके स्वागतार्थ एक विराट् सभा की गयी, जिसमें ५० हजार जापानियोंने भाग लिया।

टोकियोमें गायोंको एक बौद्ध-मन्दिरमें रखा गया, जहाँ उनके दर्शनके लिए प्रतिदिन लोगोंका मेला लगा रहता था। चार दिनों तक टोकियोमें रखनेके बाद उन्हें जैंगकोजी नगरके सबसे प्राचीन बड़े बौद्ध-मन्दिरमें भेज दिया गया।

* * *

एक अन्य जहाज़ पर सेठजीने 'सुखमंगल' नामक एक भारतीय हाथी भी जापान भिजवाया। हाथीका भी स्वागत असाधारण धूमधामसे हुआ।

इसी समय भारतीय दर्शन-शास्त्री श्री भीखनलाल आत्रेयको भी स्वर्गीय बिरलाजीने बड़े आग्रहपूर्वक जापान भेज कर जापानवासियोंको आर्य (हिन्दू) धर्म, आर्य-संस्कृति और भारतीय-दर्शनका शुद्धज्ञान करवाया। आत्रेयजीने जापानमें जगह-जगह घूमकर हिन्दू और बौद्ध-दर्शन पर व्याख्यान दिए और इस प्रकार जापान और भारतकी मैत्री और अधिक सुदृढ़ हुई।

पुण्यश्लोक जुगलकिशोरजी बिरलाके इन सत्प्रयासोंके फलस्वरूप जापानियोंके मनमें भारतीय हिन्दुओंके प्रति भ्रातृ-भाव जाग्रत हुआ। कोरा नामक एक जापानी विदुषी महिला १९५२में शान्ति निकेतन आयी। उसने वहाँसे जनवरी मासमें ही एक पत्र लिखकर बिरलाजीको जापानमें भेजे गए उपहारों (गायें और हाथी) के लिए हार्दिक आभार व्यक्त किया। साथ ही पत्रमें डॉ० आत्रेयजीके विशद् ज्ञानकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। अन्तमें उसने सेठजीसे सम्पूर्ण एशियाके कल्याणके लिए उनकी ठोस सहायताकी अपेक्षा की और जापान आनेका निमन्त्रण दिया।

इस पत्रके उत्तरमें स्व० बिरलाजीने सम्भ्रान्त जापानी महिला और जापानके उदार भावोंके प्रति आभार व्यक्त किया और साथ ही तत्कालीन चीनमें बौद्ध-धर्मके प्रति बरती जानेवाली उपेक्षा तथा रूसी प्रभाववश वहाँ कम्युनिज़्मके उत्तरोतर प्रचार एवं प्रसारके प्रति चिन्ता व्यक्त की। अपने पत्रमें उन्होंने इस आस्थाको भी अभिव्यक्त किया कि 'अन्ततः सत्यकी विजय निश्चित है, अतएव चीनमें कतिपय प्रमादी व्यक्तियोंके दुराग्रहके बावजूद स्थिति एक दिन सुधर जायेगी; क्योंकि भौतिकवादकी अस्थायी चकाचौंधसे मुक्त होनेपर सच्चे आध्यात्मिक सिद्धान्तों पर आधारित होनेके कारण बौद्ध-धर्मका वहाँ सदाके लिए लोप होना असम्भव है।'

एक अन्य जापानी महिला रयोजू किचूचीने जापानसे सेठजीके नाम एक पत्र भेजकर डॉ० आत्रेय जैसे विद्वान्को जापान भेजने जैसे महान् कार्यके लिए कृतज्ञता ज्ञापित की और उनके प्रोत्साहक आशीर्वादकी आकांक्षा व्यक्त की। अपने उत्तरमें बिरलाजीने इस महिलाको 'बहन' शब्दसे सम्बोधित करते हुए धर्मके लिए किये गए दानके महत्वको बताते हुए कहा कि 'वह आदिमें सुखकारक, मध्यमें सुखकारक और अन्तमें भी सुखकारक ही हुआ करता है।' इस सन्दर्भ में उन्होंने सम्राट् अशोकके एक धर्मलेखके इन शब्दोंका उल्लेख किया कि 'ऐसा कोई दान नहीं है, जैसा धर्मका दान है। ऐसी कोई मित्रता नहीं है, जैसी धर्मकी मित्रता है। ऐसी कोई उदारता नहीं है, जैसी धर्मकी उदारता है। ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसा धर्मका सम्बन्ध है।'

जापानमें धर्मप्राण स्व० जुगलकिशोरजी बिरलाके प्रोत्साहन पर विश्वशान्ति सम्मेलनका आयोजन हो रहा था। इस अवसर पर जापानी भिक्षु इमाईने उन्हें २८ जनवरी, १९५४को एक पत्र लिखकर आग्रह किया कि विश्वशान्ति सम्मेलनके लिए बिरलाजीका सन्देशमात्र पर्याप्त नहीं होगा, अतः वे अपना एक प्रतिनिधि उसमें अवश्य भेजें।

सम्मेलनमें जो सन्देश सेठजीकी ओरसे भेजा गया, उसमें उन्होंने भगवान् तथागतसे शान्ति सम्मेलनकी पूर्ण सफलताके लिए प्रार्थना की।

इसी प्रकार जापानके अनेक गण्यमान्य प्रबुद्ध नागरिकोंके समय-समय पर बिरलाजीके पास पत्र आते रहते थे, जिनमें श्री हन्यूजी, शुसेताऊ, श्री एजो सावा, भिक्षु तेन्जोवातानबे, श्री गेनज़ू इवाजीके नाम प्रमुख रूपसे उल्लेखनीय हैं। इन सभीके पत्रोंका उत्तर देते हुए स्वर्गीय बिरलाजी धर्ममें आस्था चिरस्थायी बनानेकी प्रेरणा देते रहते थे।

* * *

जापानकी राजधानी टोकियोमें जो विश्व बौद्ध-महासम्मेलन हुआ था, उसमें बिरलाजी तथा आर्य हिन्दू-धर्म सेवासंघकी ओरसे काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके दर्शनाचार्य डॉ० आत्रेय तथा नालन्दा-पालि विश्वविद्यालयके विद्वान् भिक्षु जगदीशजी काश्यप भारतका प्रतिनिधित्व करनेके लिए भेजे गए थे। भिक्षु काश्यपको उक्त सम्मेलनका उपप्रधान भी चुना गया था, जो भारतके लिए अति गौरवकी बात थी।

इस सम्मेलनके लिए प्रातःस्मरणीय दानशूर बिरलाजीने व्यक्तिगत रूपसे ४,००० रुपये तथा अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवा-संघ द्वारा २,५०० रुपये भेंटस्वरूप भेजे थे।

चीनकी भूतपूर्व राष्ट्रीय सरकारके प्रमुख मन्त्री **ताई-ची-तावने** १२ अगस्त, १९४४को भारतको भेजे अपने सन्देशमें भारत और चीनके अधिकाधिक सांस्कृतिक विकासकी मंगलकामना करते हुए उभय देशोंमें पारस्परिक सहयोग, आदर और प्रेमकी वृद्धिकी आकांक्षा अभिव्यक्त की थी।

चीना भवन, विश्वभारतीके लिए स्व० जुगलकिशोर बिरला द्वारा दिए गए अनुदानके प्रति शान्ति निकेतनसे चीनी प्रोफेसर **तान युन शानने** १० सितम्बर, १९४४को सेठजीको लिखे अपने पत्रमें कहा था: "मुझे यह जानकर परम प्रसन्नता हुई है कि आपकी कृपासे अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघने मेरी प्रार्थनापर विश्वभारती चीना भवनके लिए पण्डित विधुशेखर शास्त्रीकी दक्षिणाके लिए दो सौ रुपया मासिक प्रदान करनेका निश्चय किया है। इसके अतिरिक्त आपको ज्ञात ही होगा कि संघने चीना भवनमें अध्ययन करने वाले दो छात्रोंके लिए भी सौ रुपये मासिक भेजनेकी व्यवस्था की है। इसके लिए मेरी कृतज्ञता और धन्यवाद स्वीकार करें।"

इस सन्दर्भमें नेशनल कॉलेज ऑव ओरिएण्टल स्टडीज़ चेंगकाँग, कुनमिंग, युन्नान, चीनके अध्यक्षका वह पत्र भी उल्लेखनीय है, जिसमें उन्होंने सेठजीकी कृपासे अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघ द्वारा दो चीनी छात्रोंको भारतमें विशेष अध्ययनके लिये छात्रवृत्तियां प्रदान किये जानेके लिए हार्दिक आभार व्यक्त किया था।

चीनी विद्वान् **श्री चाऊ सियांग क्वांगने** भारत आकर दिल्लीमें परम सन्त श्रद्धेय बिरलाजीके दर्शन किये थे और बादको स्वदेश लौट कर उन्होंने बाबूजीके पास जो पत्र भेजा था उसमें लिखा था कि "मैंने नयी दिल्लीमें आपके दर्शनकर जैसे सच्चे भारतके दर्शन कर लिए। आपका आतिथ्य-सत्कार, सज्जनता और उदारता विख्यात है। अतिथि-परायण भारत आपमें प्रतिबिम्बित...।"

नवम्बर, १९५५में सेठजीके आदेश पर आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघ की ओरसे चीनके प्रधानमन्त्री **चाउ-एन-लाईके** नाम नयी दिल्ली-स्थित चीनी दूतवासके माध्यमसे एक पत्र भेजा गया, जिसमें बौद्ध धर्मकी महानताको स्वीकार करते हुए तत्कालीन चीनकी अनिश्चित धार्मिक स्थितिका संकेत किया गया था।

उक्त पत्रमें लिखा गया था कि "पिछले कुछ वर्षोंसे लोगों (भारतीयों)को चीनमें बौद्ध-मन्दिरों तथा बौद्ध-साधुओंकी स्थिति क्या है, इसकी जानकारी नहीं रही थी, किन्तु पिछले कुछ दिनोंसे यह जानकर हिन्दुओंको बहुत प्रसन्नता हुई है कि चीनमें बौद्ध-मन्दिरों तथा प्राचीन साहित्यकी रक्षाके लिए आपकी गवर्नमेण्टकी उतनी ही सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि है, जितनी कि वह देशकी प्राचीन संस्कृतिकी रक्षाके लिए है।...।"

जिस समय चीनकी कम्युनिस्ट सरकारने तिब्बतको चीनका अंग घोषित कर उसपर आधिपत्य करना प्रारम्भ किया तो समदर्शी माननीय बाबूजीने चीनियों-तिब्बतियोंके सम्बन्धोंमें कटुताका समावेश होते देखकर भारत स्थित चीनी राजदूतके नाम एक पत्र लिखकर तिब्बतमें बौद्ध-मठों और मन्दिरोंमें आगजनीकी घटनाओं पर गहरी चिन्ता व्यक्त की। उन्होंने पत्रमें आगे कहा कि "चीनी और तिब्बती एक ही संस्कृति (बौद्ध)के नाते

* * *

भाई-भाई हैं। उनके बीच इस प्रकारकी कटुता और संघर्ष अवांछनीय है। हम भारतीय हिन्दू और बौद्ध चीन सरकारसे विनम्र निवेदन करते हैं कि वह अपने तिब्बती भाइयोंकी भावनाका समादर करते हुए उनके साथ पूर्ण उदारता, स्नेह और सहानुभूतिका बर्ताव करें।"

तिब्बतवासियोंके साथ बड़े बाबूका सम्बन्ध बड़ा पुराना था। २७ जनवरी, १९४६को यूकिंग तक् नामक एक तिब्बतीने ल्हासासे उनके पास एक पत्र लिखा था, जिसमें उसने अपने बनारस प्रवासकी चर्चा और उस समय बड़े बाबूकी ओरसे किये गए उनके सम्मानके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की। पत्रमें आशा व्यक्त की गयी कि जो तिब्बती भविष्यमें बौद्ध-तीर्थोंमें जायेंगे, उन लोगोंको भी आपके द्वारा सुख-सुविधाकी व्यवस्था की जायेगी।"

हनोई (उत्तर वियतनाम) स्थित तत्कालीन भारतीय कौन्सुलेट जनरल श्रीआनन्द मोहन सहायके पास स्वर्गीय सेठ जुगलकिशोर बिरलाने एक पत्र भेजा था, जिसके उत्तरमें राजदूत महोदयने १३ जुलाई, १९५५ सेठजीको लिखा कि 'वियतनाम'के अधिकांश लोग बौद्ध हैं। कुछ ही लाख व्यक्ति रोमन कैथोलिक धर्मके अनुयायी हैं। अधिकांश मन्त्री भी बौद्ध-धर्मके माननेवाले हैं। कुछ लोगोंके मनमें यह मिथ्या धारणा-सी बैठ गयी है कि कम्युनिस्ट देशोंमें कोई भी धार्मिक प्रवृत्ति वर्जित है। यहाँ सरकारकी ओरसे धार्मिक कृत्योंपर किसी प्रकारका भी प्रतिबन्ध नहीं है। सत्य तो यह है कि चीनकी सरकार पर यहाँकी सरकारकी भाँति प्राचीन बौद्ध-मन्दिरोंके जीर्णोद्धार आदिके कार्योंमें रुचि लेने लगी है।...मैंने आकर यह अनुभव किया कि भारतकी ओरसे यहाँ बहुत कुछ करनेको पड़ा है। यहाँ सांस्कृतिक प्रचारका बहुत बड़ा क्षेत्र है। यहाँके लोग प्रकृति-से भारत और भारतीयोंके प्रेमी हैं।..."।

श्रीबिरलाजीने कम्बोडियाके कतिपय बौद्ध-छात्रों और भिक्षुओंको जो आर्थिक सहायता तथा अनुदान दिया था, उसके प्रति आभार प्रकट करते हुए वहाँसे भिक्षु थितप्पंजोने स्व० बिरलाजीको कम्बोडियाकी बौद्ध-जनताकी ओरसे पत्र लिखकर हार्दिक धन्यवाद दिया था।

बरमामें मेजर जनरल कासिमके नेतृत्वमें मुसलमानोंने विद्रोहका झण्डा बुलन्द कर दिया। यह दल 'मुजाहिद' कहलाता था। ये मुसलमान और गैरमुसलमानों, विशेषरूपसे बौद्ध हिन्दुओंके ऊपर बड़ा अत्याचार कर रहे थे। बंगाल तथा अन्य प्रान्तोंके लाखों मुसलमान बरमामें बसे हुए थे। वे बरमी स्त्रियोंसे शादी करके मुस्लिम सन्तान पैदा करते थे। इन सन्तानोंको वहाँ 'जहरबादी' कहा जाता है। इन जहरबादियोंकी संख्या पहले दो लाख थी जो कालान्तरमें बढ़कर दस लाख हो गयी थी।

अखिल बरमा बौद्ध-महासंघके सुप्रीम कौंसलर श्री यथानाबो यू ज़गाराने एक पत्र लिखकर बड़े बाबूको स्थितिसे अवगत कराया। इस पत्रके उत्तरमें सेठजीने उन्हें लिखा कि "बरमाके बौद्ध और भारतके हिन्दू वस्तुतः एक ही परिवारके सदस्य होनेके नाते भाई-भाई हैं; अतएव बरमी बौद्ध-भाई जो तीर्थयात्राके लिए भारत आते हैं, उनका स्वागत सत्कार हम भारतीयोंका कर्तव्य है।"

जहरबादियोंकी बढ़ती हुई संख्याके प्रति सेठजीने चिन्ता व्यक्त करते हुए लिखा कि 'यह बरमाके राष्ट्रीय हितके विरुद्ध है। भारत-विभाजनमें भारतीय मुसलमानोंकी जो मनोवृत्ति थी, उसी प्रकारकी मनो-वृत्ति जहरबादियोंकी भी हो सकती है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। आप लोगोंको अपनी सरकार-पर जोर डालकर ऐसा कानून बनवाना चाहिए कि बरमाके मुसलमान बौद्ध-महिलाओंसे विवाह न कर सकें और बौद्ध-स्त्रीसे उत्पन्न सन्तान बौद्ध ही मानी जाय। ज़हरबादियोंको शुद्ध कर पुनः बौद्ध-धर्ममें दीक्षित करनेका आन्दोलन भी चलाया जाना चाहिए।"

इस पत्रके अतिरिक्त स्वर्गीय सेठजीकी प्रेरणासे १९ फरवरी १९५२को आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघ

* * *

की ओरसे तत्कालीन बरमी प्रधानमन्त्री थाकिन् यूके नाम भी एक पत्र इसी सिलसिलेमें लिखा गया, जिसमें आशंका व्यक्त की गयी कि भारतके समान ही जहरबादियों द्वारा बरमाको भी विभाजित करनेकी योजना है; अतएव उनकी बढ़ती हुई आबादीको रोकना बरमी सरकारका प्रथम कर्तव्य है। इस सम्बन्धमें भारतके हिन्दू विशेषरूपसे चिन्तित हैं। बरमा सरकारको चाहिए कि वह इस सम्बन्धमें कुछ कड़े कानून बनाकर उन्हें पालन करनेके लिए बाध्य किया जाए तो मेजर जनरल कासिमकी पृथक् मुस्लिम बरमाकी माँगकी बुनियाद ही मिट जाए।

श्रीलंकाके अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध-केन्द्रसे २४ सितम्बर, १९५५ को केन्द्रके सम्मानित अवैतनिक मन्त्री हरबर्ट वीरपुराने सेठजीके नाम एक पत्र लिखा, जिसमें संकेत किया था कि कोलम्बोमें बुद्ध-जयन्ती-समारोहके अवसर पर उक्त अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध-केन्द्रकी औपचारिक स्थापना होने जा रही है। इसकी आधारशिलाके प्रतिष्ठापनके लिए आप जैसे महान्तम मानव-सेवी पुरुषको आमन्त्रित करनेका सर्वसम्मतिसे निश्चय हमने किया है।

विख्यात समाजसेवी बिरलाजीने इस प्रेमपूर्ण आमन्त्रणको ७ अक्टूबर, १९५५को भेजे गए अपने पत्र द्वारा हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन अड़चनोंका उल्लेख किया, जिनके कारण श्रीलंका जानेमें वे असमर्थ थे।

जब चीन और जापानके बीच युद्ध छिड़ गया था, उसके परिणामस्वरूप शंघाईमें जो चीनी निराश्रित हो गए, उनको बिरलाजीकी ओरसे हजारों मन चावल वितरित किया गया था।

द्वितीय विश्वयुद्धके फलस्वरूप लगभग ७० बरमी, चीनी, श्रीलंकाई, तिब्बती आदि निराश्रित बौद्ध-भिक्षुओं, छात्रों और बौद्ध-मन्दिरोंको मासिक आर्थिक सहायता लगातार कई वर्षोंतक सेठजीकी ओरसे दी गयी।

स्वर्गीय सेठजीकी परोपकार-वृत्ति में **'परोपकारायसतां विभूतयः'** उक्ति अक्षरशः चरितार्थ होती है।

धर्मके प्रति उनका दृष्टिकोण नितान्त व्यापक, सूक्ष्म और गहन अध्ययन-पूर्ण था। उनके इस दृष्टिकोणका परिचय एक जर्मन महिलाको २७ दिसम्बर, १९५१को लिखे गये निम्नांकित पत्रसे मिलता है:

प्रिय बहिन,

ईसाकी अनुयायिनी होनेके नाते आप ईसाको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखती हैं, यह आपके लिए स्वाभाविक है। परन्तु हम भी ईसाको सन्त, महात्मा और ईश्वर-भक्त होनेके नाते आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। सन्त, महात्मा और महापुरुष, किसी भी देशके हों, हमारे लिए आदरके पात्र हैं। हमारा धर्म हमें सबके साथ प्रेम, केवल बुराईको छोड़कर, किसीके साथ घृणा न करनेकी शिक्षा देता है। प्राचीन संस्कृतके ग्रन्थ आर्य (हिन्दू) धर्मकी उदार और व्यापक शिक्षाओंसे भरपूर हैं। उनमेंसे सिर्फ़ दो श्लोक आपको भेंटके रूपमें उद्धृत किये जाते हैं:

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्॥

उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम्॥

* * *

द्वीपान्तरमें हिन्दू संस्कृतिका पुनरुद्धार

जम्बु-द्वीपके भारत, नेपाल, गान्धार, शूलिक, तुरुष्क, पारस्य, ताजक, भोट, चीन, मोंगोल, मञ्जु, उदयवर्ष, सिंहल, सुवर्णभू, श्याम, कम्बुज और चम्पा राष्ट्रोंमें सहस्रों वर्ष पूर्वसे भारतीय-संस्कृति, साहित्य और धर्मके अस्तित्व का पुनर्मूल्यांकन करते हुए स्वर्गीय श्री जुगलकिशोरजी बिरलाने **'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः, स्वं स्वं चरित्रंशिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः'**—मनु के इस सन्देशको पुनरुज्जीवित किया था, द्वीपान्तरोंमें धर्माचार्यों, धर्मोपदेशकों, मनीषियोंको भेजकर हिन्दू-संस्कृति-साहित्यकी पुनर्प्रतिष्ठाके लिए। अण्डमन, निकोबर द्वीप-समूहोंमें मन्दिरोंका निर्माण कराकर, जापानमें बौद्ध भिक्षुओं और विद्वानोंका मिशन भेजकर, बाली स्थित 'भुवन सरस्वती'को विपुल आर्थिक सहायता प्रदान कर, मारिशसमें हिन्दू देवी-देवताओंकी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठापित कराकर श्री बिरलाजीने भारतके प्राचीन ऋषियों, मुनियों, आचार्यों तथा अशोक, विक्रम, मूल-वर्म्मन जैसे राजाओंकी परम्परा को पुनरुज्जीवित किया।

श्रद्धेय श्री बिरलाजी द्वीपान्तर (इन्दोनेशिया) में भारतीय-संस्कृति और साहित्यके प्रचार-प्रसारके लिए अत्यधिक प्रयत्नशील रहे। इसलिए कि सहस्राब्दियों पूर्वसे बाली, जावा, सुमात्रा आदि द्वीपोंके निवासियोंने भारतीय ऋषियोंके सत्यानुभवोंका साक्षात्कार कर आध्यात्मिक तृप्ति प्राप्त की थी। वहाँका साहित्य और जनजीवन भारतीय संस्कृतिसे ओतप्रोत था और अब भी इन्हींसे अनुप्राणित और प्रभावित है। इस समय भी बाली द्वीप और लाम्बोकमें सती-प्रथा का प्रचलन है। वर्णाश्रमधर्मका पूरा प्रचार है। भारतके मद्रास प्रान्तकी तरह वहाँ भी 'पचम' अथवा 'पैरिआ' जाति पायी जाती है। यहाँका हिन्दू-धर्म इस समय बौद्ध-धर्मसे सम्मिश्रित है। रामायण, महाभारतकी कथाओंका प्रचलन अब भी इन द्वीपोंमें है।

द्वीपान्तरमें हिन्दूधर्म के प्रवेशकालके सम्बन्धमें विभिन्न इतिहासकारोंने अपने-अपने विचार व्यक्त किये हैं। जावाके प्रधान नगर बटेवियाके एक डच विद्वान् प्रोफेसर लावर्टनने सन् १९१२ ई०में 'रायल एशियाटिक सोसायटी' के जर्नलमें प्रकाशित अपने लेखमें यह सिद्ध किया था कि "ईसवी सन्के ८००वर्ष पहले सर्वप्रथम भारतीय-संस्कृति और साहित्यके चरण-चिह्न जावामें अंकित हुए थे। उसके बादसे हिन्दू राजाओंके राज्य-शासन स्थापित हुए। वेद, पुराण, दर्शन, रामायण, महाभारत आदि सभी विद्याओं, सभी शास्त्रोंका वहाँ पूर्ण प्रचार हुआ और यह संस्कृति-साहित्य-प्रचार ईसाकी ग्यारहवीं शती तक बराबर जारी रहा।"

डॉ० लावर्टनके इस शोधको आगे बढ़ाया है आधुनिक भारतके अद्वितीय महाप्राज्ञ डॉक्टर रघुवीरने और उनके बाद उनके पुत्र, उनकी कन्या और उनकी पुत्रवधू इस कार्यको मिशनरी ढंगसे अग्रसारित कर रहे हैं।

महाप्राज्ञ डॉ० रघुवीरकी विदुषी पुत्री डॉ० सुदर्शना सिंहल डी० लिट्०ने द्वीपान्तर (इण्डोनेशिया) के शैवमतके प्रतिपादक ग्रन्थ 'गणपति तत्त्व' का सम्पादन करके बहुत बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। गणपति तत्त्वकी ताड़पत्र पर लिखी मूल पाण्डुलिपि स्व० डॉ० रघुवीरके दिल्ली स्थित 'सरस्वती-विहार' में सुरक्षित है। इस ग्रन्थमें संस्कृतके ६० श्लोक हैं और कविभाषामें द्वीपान्तरकी मनीषाका विस्तृत भाष्य है।

बालीद्वीपके धर्मग्रन्थ अधिकतर 'कविभाषा'में लिखे जाते हैं। यह भाषा प्राचीनकालमें यवद्वीप (जावा) में प्रचलित थी। भाषाशास्त्रवेत्ताओंने इस भाषाका पूरा नाम 'बसकवी' निर्धारित किया है, जो कविभाषाका अपभ्रंश है और जिसका अर्थ विद्वानोंकी बोली है। अब भी इसी भाषामें ताड़-पत्रों पर ग्रन्थ लिखनेका रिवाज बालीद्वीपमें है।

प्राचीनकालमें द्वीपान्तरमें संस्कृत भाषा और वैदिक धर्मका पूर्ण प्रभाव रहा है। 'कोईटई'में महाराज मूलवर्म्मनके कई 'यूप' पाए गए हैं, जिनपर लेख भी खुदे हुए हैं। इन लेखोंके साक्ष्य पर यह निश्चित किया

* * *

गया कि प्राचीनकालमें यहाँ अनेक वैदिक यज्ञ किये गए थे। यूप (खम्भा) खड़े किये गये थे और उच्चकोटि-के वैदिक विद्वानोंने यज्ञ करवाए थे, जिन्हें 'भूरि-दक्षिणा' प्रदान की गई थी।

अनेक ऐतिहासिक शोधों, ताम्रपत्रों, शिलालेखों तथा अगणित साहित्य, मन्दिरों, चैत्यों एवं आचार-विचारसे यह सिद्ध किया गया है कि बाली-द्वीप, जावा और सुमात्रा भारतके राजनीतिक और सांस्कृतिक अंग थे। इस अंगको पुनः अपनानेके लिए स्व० श्री जुगलकिशोरजी बिरलाने अथक प्रयास किए थे।

विदेशों तथा प्रवासी भारतीयोंके बीच सेवाकार्य

तपःपूत, धर्मप्राण स्वर्गीय बिरलाजीका कार्यक्षेत्र सम्राट अशोकके समान ही अपने देशतक ही सीमित न रहकर अन्य हिन्दू एवं गैरहिन्दू देशोंतक फैला हुआ है। जिस प्रकार सम्राट अशोकने शिला-स्तम्भों, स्तूपों, मन्दिरों और संघारामोंका निर्माण करवाके भारतके अतिरिक्त अन्य देशोंमें भी बौद्धधर्मका प्रचार-प्रसार किया तथा यहाँसे अनेक विद्वान् प्रचारक अन्यत्र भेजे, उसी प्रकार बिरलाजीने भी अनेक स्तम्भों, स्तूपों, मन्दिरों, आश्रमों, धर्मशालाओं, पाठशालाओं और बौद्ध-विहारोंका निर्माण करवानेके अलावा हिन्दू और बौद्धधर्मके विद्वान् आचार्य और दर्शनशास्त्री अनेकानेक देशोंमें भेजे। इन प्रचारकोंके साथ हिन्दुओं-बौद्धोंकी बहुसंख्यक धर्म-पुस्तकें, वेदमन्त्रोंसे उत्कीर्ण शिला-पट्ट और देव-प्रतिमाएँ आदि विदेशोंमें प्रवासी भारतीयों अथवा उन देशोंके हिन्दुओंके लिए निःशुल्क भिजवायीं। इनके अलावा हिंन्दू-संस्कृतिके प्रति प्रेम, जाग्रत करनेके लिए भारतीय वस्त्रादि उपहारस्वरूप भेजे, जिनमें भारतीय साड़ियोंकी निःशुल्क आपूर्ति विशेष उल्लेखनीय है।

प्रथम विश्वयुद्धके बाद महामहिम बिरलाजीने प्रसिद्ध आर्यसमाजी विद्वान् पं० अयोध्याप्रसादको कुछ अन्य विद्वानोंके साथ एक मिशनके रूपमें दक्षिण अमेरिका, ट्रिनिडाड, ब्रिटिश गायना, फीजी, डच गायना आदि उपनिवेशोंके प्रवासी भारतीयोंको आर्यधर्मका मूल सन्देश सुनानेके लिए भेजा।

स्वामी सदानन्द नामक एक संन्यासीको बाली, जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया आदिकी यात्रा पर भेजा। वहाँ पहुँचकर स्वामीजीने इन द्वीपोंमें आर्यसंस्कृतिके अमर चिह्नोंपर साहित्य तैयार किया।

स्व० बिरलाजीने विद्वान् सन्त स्वामी सत्यानन्दको थाईलैण्ड भेजा। वहाँके तत्कालीन नरेशने स्वामी-जीका अभूतपूर्व स्वागत किया, तथा उन्हें गुरुवत् स्वीकार किया। स्वामी सत्यानन्दजीके नाम पर वहाँ कई संस्थान मौजूद हैं। आज भी वे वहाँ बड़े सम्मानके साथ स्मरण किये जाते हैं।

इसी प्रकार पंजाबके प्रसिद्ध विद्वान् और प्रचारक पण्डित ऋषिरामको सेठजीकी आज्ञासे आर्य (हिन्दू) धर्म-सेवासंघकी ओरसे ट्रिनिडाड और ब्रिटिश गायना भेजा गया। इन देशोंके बाद पं० ऋषिरामजी मारीशस भी गये। मारीशसकी कुल जनसंख्याका साठ प्रतिशत भाग हिन्दू है। मारिशसके बाद पण्डितजी धर्म-प्रचारके लिए केनिया (पूर्वी अफ्रीका) और मोम्बासा भी गये।

कलकत्तेके भारत सेवाश्रम संघके संन्यासी प्रचारकोंका एक दल दक्षिण अमेरिका गया, जिसे बड़े बाबूके आग्रहपर आर्य (हिन्दू) धर्म-सेवासंघकी ओरसे पर्याप्त सहायता दी गयी।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके भूतपूर्व दर्शनाचार्य डॉ० भीखालाल आत्रेयको अमेरिका भेजा गया। वहाँ उन्होंने विभिन्न स्थानों पर बिरला-विजिटिंग-प्रोफेसरकी हैसियतसे हिन्दूधर्म और दर्शन पर अनेक व्याख्यान दिये। वापसीके समय श्याम, चीन और हवाई द्वीपमें भी हिन्दूधर्म और दर्शन पर उनके अनेक भाषण आयोजित किये गये।

बालीद्वीपमें आज लगभग बीस लाख हिन्दूधर्मावलम्बी हैं, जो वहाँके मूल निवासी हैं। बालीद्वीप-

* * *

में हिन्दूधर्म सम्बन्धी साहित्य प्रकाशित एवं प्रचारित करवानेके लिए दो सौ रुपये मासिक अनुदान सेठजीकी ओर-से कई वर्षोंतक 'भुवन सरस्वती' नामक संस्थाको दिया जाता रहा। इसके अलावा हजारों पुस्तकोंकी सहायता भी कई बार प्रदान की गयी। वहाँकी हिन्देशियाई भाषाके माध्यमसे संस्कृत सिखानेके लिए 'संस्कृत प्राइमर' तथा 'संस्कृत प्रवेशिका' नामक दो पुस्तकें भी यहाँसे छपाकर भेजी गयीं।

ट्रिनिडाडमें कई लाख भारतीय पीढ़ियोंसे बसे हुए हैं। भारतके साथ बहुत कालसे उनका सम्पर्क न रहनेके कारण वहाँके भारतीय अपने धर्म, संस्कृति, वेश-भूषा और भाषासे अनभिज्ञ हो गये हैं। उनकी स्त्रियाँ भी विदेशी परीधान धारण करती हैं। बिरलाजीने भारतसे उन महिलाओंके लिए साड़ियाँ भेजीं, जिन्हें तत्कालीन भारतीय हाई कमिश्नर श्री आनन्दमोहन सहायने प्रवासी महिलाओंमें वितरित करवाया।

इसी प्रकार हिन्दीके प्रचारके लिए अंग्रेज़ीके माध्यमसे हिन्दी सिखानेके लिए आर्य (हिन्दू) सेवासंघ-की ओरसे एक 'हिन्दी प्राइमर' छपवाकर भेजी गयी, जिसपर दो हजार रुपये उस समय व्यय हुए।

मारीशस द्वीपमें इस समय लगभग तीन लाख हिन्दू रहते हैं। उनके अनुरोध पर सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाने एक हजार रूपये मूल्यकी धार्मिक पुस्तकें निःशुल्क वितरणार्थ भेजीं और धर्मप्रचारके लिए पण्डित ऋषिरामजीको भी वहाँ भेजा। इस द्वीपमें कई धार्मिक संस्थाएँ भी हैं, जिनमें श्री कल्याणनाथ सनातन धर्म टेम्पिल एसोसियेशन प्रमुख है। इस एसोसियेशन की ओरसे बनवाये गए एक मन्दिरके लिए दानवीर बिरलाजीने संगमरमरकी आठ बहुमूल्य प्रतिमाएँ तथा हिन्दू-देवी-देवताओंके अनेक चित्र और कई शिला-पट्ट भिजवाये, जिनपर मन्त्र उत्कीर्ण थे।

डरवन (दक्षिण अफ्रीका)के आर्य-समाज-मन्दिरके लिए वेद-मन्त्र अंकित कई शिला-पट्ट भेजे गए तथा पूर्वी अफ्रीकामें धर्म-प्रचारके लिए आर्य-समाजके अग्रणी नेता कुँवर चाँदकरण शारदा को भेजा गया।

प्रशान्त सागर स्थित फीजी द्वीपकी आबादी लगभग चार लाख सत्तर हजार है। उसमेंसे दो लाखसे अधिक लोग हिन्दूधर्मके अनुयायी हैं। वहाँ लगभग ५०० रामायण-मण्डलियाँ हैं, जिनके द्वारा धर्मका प्रचार बराबर होता रहता है। वहाँके सामाबूला नगरका रामायण-मन्दिर द्वीपमें सनातन धर्मकी केन्द्रीय संस्था है। इस मन्दिरके लिए सेठजीने राम, लक्ष्मण, सीता और हनुमानकी बड़ी-बड़ी मूर्त्तियाँ भारतसे बनवाकर भेजीं, जिनका वहाँ जोरदार स्वागत हुआ।

इनके अलावा जमैका, सूरिनाम आदिमें बसे प्रवासी भारतीयोंसे बिरलाजीने सदैव सम्पर्क रखा, और उनकी समस्याओंको समय-समय पर हल किया। डच गायनासे काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें अध्ययनार्थ आए छात्रोंको छात्रवृत्ति दी गयी।

मिस्रके रफेह नामक स्थानमें भारतीय सुरक्षा-दलकी प्रार्थना पर भगवान् कृष्णकी संगमरमरकी प्रतिमा बिरलाजीने भिजवायी और सीमाक्षेत्र पर तैनात जवानोंके आग्रहपर उन्हें पूजाकी सामग्री भिजवायी गयी।

निकोबार द्वीपमें वहाँकी नेता श्रीमती रानी चंगाके अनुरोधपर कचाल नामक स्थानपर मन्दिर-निर्माणके लिए पुण्यश्लोक बिरलाजीने आठ हजार रुपये का अनुदान दिया और अण्डमन तथा निकोबार द्वीप-समूहमें हिन्दू मन्दिरोंके जीर्णोद्धार तथा प्रबन्ध आदिके लिए वहाँके कमिश्नरके पास पन्द्रह हजार रुपये सहाय-तार्थ भिजवाये गए।

जनजातियोंकी निःस्पृह सेवा

इस विशाल देशके विभिन्न अंचलोंमें अनेक आदिवासी और वन्य मानवपुत्र आज भी मौजूद हैं, जिनमें

* * *

शिक्षा और सभ्यताका सर्वथा अभाव है। इन भोले-भाले मनुष्योंको ईसाई मिशनरियोंने सदैव अपने प्रलोभनोंका शिकार बनाया। सेठ जुगलकिशोरजी बिरला स्वयं एक कर्मठ राष्ट्रवादी होनेके नाते इन आदिवासियोंकी करुण अवस्था तथा मिशनरियों द्वारा उन्हें पथभ्रष्ट किये जानेको देखकर उनके उत्थानके लिए प्रयत्नशील हुए। उनकी प्रेरणासे अनेक ऐसे कार्य सम्पन्न हुए, जिनसे इन निरीह भारतवासियोंमें लोकचेतना और आशावादिताने जन्म लिया।

राजस्थानके इन्दौर, बाँसवाड़ा क्षेत्रमें बसे भीलोंकी सेवाके लिए बामनियामें श्री बालेश्वरदयालु द्वारा स्थापित भील-आश्रमको आर्थिक सहायता दी गयी। बामनियामें ही सेठजीने एक पहाड़ी पर श्रीराम-मन्दिर बनवाया। रावटी और दोहद क्षेत्रमें श्री देवप्रकाशको वहाँके वनवासियोंके बीच धर्म-प्रचारके लिए भारी वित्तीय सहायता प्रदान की गयी। अन्य क्षेत्रके भीलोंमें प्रचारके लिए कुँवर चाँदकरण शारदा और आर्य-प्रतिनिधि-सभाको आर्थिक सहायता दी गयी।

गुजरात और महाराष्ट्रमें पिछड़े वर्गोंकी उन्नतिके लिए महादानी बिरलाजीने हजारों रुपये बड़ौदाके आर्य-कन्या-महाविद्यालयके संचालक श्री आनन्दप्रियको दिये।

राँची (बिहार) में सेठजीकी सहायतासे हिन्दूधर्म-रक्षक-संघकी स्थापना हुई, जिसने छोटा नागपुर क्षेत्रमें बसी पहाड़ी और वनवासी जातियोंके बीच अच्छा प्रचार-कार्य किया और आज भी कर रहा है। राँचीमें ही एक संस्कृति-विहार नामक संस्था भी खोली गयी, जिसकी ओरसे स्कूल, ग्राम-मन्दिर, व्यायामशाला, भजन-मण्डली, गीता-रामायण-प्रचार आदि कार्यक्रम सफलतापूर्वक चलाये जा रहे हैं। राँचीमें राजा बिरला-हिन्दू-उराव-मुण्डा-छात्रावास बनवाया गया, जिसमें लगभग सौ आदिवासी छात्र निवास करते हैं।

यशपुरनगर (रायगढ़) में बड़े बाबूने कल्याण-आश्रमके भवन-निर्माणके लिए भारी धनराशि प्रदान की। आश्रमकी ओरसे एक हाईस्कूल और छात्रावास संचालित हो रहे हैं, जिनसे आदिवासी लाभान्वित हो रहे हैं। इसी क्षेत्रमें कार्य करनेवाले श्री रामेश्वर गुरु गहिरा नामक एक सन्त-प्रचारकको उनकी ओरसे दो सौ रुपये मासिक सहायता भेजी जा रही है।

मध्यप्रदेशके माण्डला, बिलासपुर, छत्तीसगढ़ आदि कई जिलोंके विस्तृत क्षेत्रमें लगभग पचास प्राथमिक विद्यालय वहाँके वनवासी छात्रोंके लिए खोले गये और इस समय वे सभी विद्यालय सरकारको सौंप दिये गए हैं।

उड़ीसाके सुन्दरगढ़ और राउरकेला क्षेत्रमें स्थापित वैदिक आश्रमको बिरलाजीकी ओरसे तीन सौ रुपया मासिक सहायता दी जा रही है। इसके संचालक स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती आदिवासियोंकी अच्छी सेवा कर रहे हैं।

बंगालके नमःशूद्रोंके लिए धर्मप्राण बिरलाजीकी ओरसे मन्दिर-निर्माण कराया गया और उनके बीच धर्म-प्रचारके लिए भारत-सेवाश्रम-संघको प्रचुर आर्थिक सहायता दी गयी।

कचाल, निकोबार, अन्दमन द्वीपोंमें बसे आदिवासियोंकी सेवा और लाभके लिए बिरला-परिवारकी ओरसे कई मन्दिर बनवाये गए।

दक्षिण भारतमें धर्म-सेवाश्रम, वनगुले, रत्नागिरिको आदिवासियोंके बीच प्रचार-कार्यके लिए वित्तीय सहायता आज तक दी जा रही है। कोनूरकी सद्गुरु-सर्वसमरस-संगम नामक संस्थाको नीलिगिरि-क्षेत्रके आदिवासियोंमें प्रचारके लिए बिरलाजीकी ओरसे सहायता जारी है।

जो आदिवासी ईसाई या मुसलमान हो गये हैं-उनके शुद्धिकरणका अभियान प्रमुख रूपसे जिन संगठनों-

* * *

की ओरसे हो रहा है, उन्हें सेठजीका सहज ही आशीर्वाद प्राप्त है। इन संगठनोंमें से प्रमुख हैं—बम्बईका मसूराश्रम, दिल्लीकी भारतीय हिन्दू-शुद्धि-सभा, आगराकी शुद्धि-सभा, हैदराबादकी आर्य-प्रतिनिधि-सभा, नयी दिल्लीकी सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि-सभा, नगीना-आर्य-समाज, मथुराकी आर्य-उपप्रतिनिधि-सभा और जालन्धरकी आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा।

साहित्यकारों, कलाकारों और पहलवानोंको प्रोत्साहन

बड़े बाबूकी शिक्षा यद्यपि किसी स्कूल-कालेजमें नहीं हुई थी, तथापि अनुभव, अध्ययन, मनन तथा सत्संगसे जो ज्ञान वे उपार्जित कर चुके थे, वह किसी विश्वविद्यालयके धुरन्धर आचार्यमें भी सरलतासे नहीं मिलेगा।

आर्य-हिन्दू-संस्कृति, साहित्य, संगीत, कला, दर्शन आदि विषयोंके विद्वानोंको खुले अनुदानोंके अतिरिक्त जाने कितने गुप्तदान उन्होंने दे दिये। वेदोंके प्रकाण्ड पण्डित सातवलेकरजीके वे आजीवन प्रशंसक रहे। स्व० डॉक्टर रघुवीर, डॉ० भीखालाल आत्रेय, स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल आदिके दर्शन, धर्म और संस्कृति सम्बन्धी ग्रन्थोंके मुद्रण और प्रकाशनमें बड़े बाबूका ठोस आर्थिक सहयोग रहा।

हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक स्व० मास्टर जहूरबख्शको आपत्कालमें बरसों तक दो सौ रुपये मासिककी सहायता सेठजीकी ओरसे प्राप्त होती रही। उनका मकान जल जाने पर नया मकान बनवानेके लिए अलगसे आर्थिक सहायता भी दी गयी।

स्वर्गीय जुगलकिशोरजी संगीत और संगीतज्ञोंके बड़े प्रेमी थे। युग-प्रवर्त्तक विष्णु दिगम्बरजीके प्रति उनकी बड़ी श्रद्धा थी और बम्बईके गन्धर्व महाविद्यालयकी स्थापनामें उन्होंने पर्याप्त सहायता भी उन्हें दी थी। इसी प्रकार काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयमें पण्डित शिवप्रसाद गायनाचार्यके लिए उन्होंने एक संगीत-विभागकी स्थापना करायी। इसके अलावा जहाँ-जहाँ बिरलाजीने मन्दिर बनवाये, वहाँ-वहाँ उनमें भजन-कीर्तनकी समुचित व्यवस्था भी करवा दी।

संगीतके समान ही अभिनय और नाट्यकलाके भी वे प्रोत्साहक थे। 'सिकन्दर' नामक फिल्ममें पृथ्वीराज कपूरको उनके उच्चकोटिके अभिनयके लिए उन्होंने एक स्वर्णपदक भेंट किया था। आकाशवाणीके वन्दना आदि कार्यक्रम तथा भक्त-कवियोंके गीतोंके प्रसारण बहुत-कुछ उन्हींके प्रयासोंके परिणाम हैं।

चित्रकारों, स्थापत्य-विशारदों आदिको भी उनसे प्रेरणा मिलती थी। चित्रकला और स्थापत्यमें स्वयं उनकी रुचि बड़ी सुसंस्कृत एवं उच्चकोटिकी थी, जिसका परिचय उनके द्वारा बनवाये गए विविध हिन्दू और बौद्ध-मन्दिरोंमें सहज ही मिलता है।

परमसन्त बिरलाजीको जहाँ दर्शन और अध्यात्ममें रुचि थी, वहीं वे शरीर-सम्पत्ति और उत्तम स्वास्थ्यको भी मान्यता देते थे।

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयमें शिवाजी-व्यायामशाला और अखाड़ेमें व्यायाम करनेवाले छात्रोंको जाकर वे स्वयं देखते थे और उनके लिए घी, बादाम तथा पुरस्कारोंकी व्यवस्था भी करते थे। राजस्थानके मन्मथकुमार तथा डॉ० आत्रेय के सुपुत्र महात्मा आत्रेयकी कुश्ती देखकर वे बड़े गद्‌गद होते और उन्हें खूब प्रोत्साहित करते।

एक बार हिन्दू-विश्वविद्यालयके दीक्षान्त-समारोहके अवसरपर बड़े बाबूकी निगाह दो बंगाली कसरती युवकोंपर पड़ गयी। उनमें उन्होंने एकको लक्ष्मीनारायण मन्दिरमें व्यायाम-शिक्षकके पदपर नियुक्त कर लिया और दूसरेको विश्वविद्यालयमें ही फिजिकल इन्स्ट्रक्टर बनवा दिया।

* * *

कलकत्तामें सेठजीने बजरंग व्यायामशालाकी स्थापना करवायी थी।

दिल्लीमें केवल एक घटनासे न जाने कितने अखाड़े एक ही दिनमें खुल गए। सन् १९४०की बात है। एक हिन्दू-नवयुवक उन्हें दिल्लीकी बाउंटा पहाड़ी पर विश्वविद्यालय-क्षेत्रमें कसरत करता दिखायी पड़ा। उसके व्यायाम-प्रेम और स्वास्थ्यको देखकर सेठजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उस नवयुवकको १५०० रुपयेका एक पर्चा लिखकर देते हुए कहा कि बिरला-मिलसे यह रुपया ले लेना। उस नवयुवकको इस प्रकार प्रोत्साहित करनेका यह परिणाम हुआ कि उस समय हर हिन्दू-नौजवानको कसरत करनेकी धुन सवार हो गयी और एक ही दिनमें दिल्लीमें सैकड़ों व्यायामशालाएँ खुल गयीं।

उन्हीं दिनों यमुना-तट पर कुदसिया घाटमें एक दंगलका आयोजन किया गया था। आयोजकोंने दंगल पर टिकट लगा रखा था। बिरलाजी भी कुछ साथियोंके साथ दंगल देखने गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने दंगल निःशुल्क करा दिया और उसका सारा व्यय अपने ऊपर ले लिया। जिन लोगोंने टिकट खरीद लिये थे, उन्हें पैसे लौटवा दिये। इस दंगलमें हर पहलवानको १०० से ५०० रुपयेतक नकद पुरस्कार भी बिरलाजीकी ओरसे दिये गए जबकि दंगलमें ५० जोड़ पहलवानोंकी कुश्ती हुई थी।

बड़े बाबू हिन्दू-पहलवानोंको हरदम पुरस्कृत करते रहते थे। ज्ञानप्रकाश, रामधन, मुख्तियार सिंह, सूरजभान, रामस्वरूप नामक पहलवानोंको बाबूजीने पाँच-पाँच सौ रुपये दिये। रूस जाते समय ओमप्रकाशको २५ सौ रुपये दिये गए।

भारत-विभाजनके बाद विश्वविजयी गामा पहलवान जब रोगग्रस्त था और उसके इकलौते पुत्रकी मृत्यु हो चुकी थी, उस समय सेठजीकी ओरसे ३०° रुपये मासिककी सहायता उसे दी गयी, जो उसके अन्तिम समयतक प्राप्त होती रही।

यूरोपके चैम्पियन और रूसी राकेट पहलवानको अन्तर्राष्ट्रीय-कुश्ती-प्रतियोगितामें पछाड़ने पर बिरलाजीने १ फरवरी १९६१को बिरला-ब्रदर्स कार्यालयमें आयोजित एक समारोहमें रुस्तमेहिन्द दारासिंहको सम्मानित करते हुए एक हजार रुपये की थैली भेंट की थी।

दिल्लीके सुप्रसिद्ध पहलवान गुरु हनुमानने बड़े बाबूकी मल्लविद्या और मल्लोंके प्रति आस्था तथा उनके विकाससे सम्बद्ध संस्मरण सुनाते हुए बताया :

> दिल्जीके जिस दंगलकी पहले चर्चा की गयी है, उसी दिनकी बात है कि वहाँ अधेड़ उम्रका आदमी, जिसके एक ही हाथ था, मुझसे कहने लगा कि मैं एक बहुत गरीब आदमी हूँ, मेरी लड़कीकी शादी है, मेरे पास किसीका सहारा नहीं । मुझे दया आयी और मैंने उससे कहा कि तुझे दंगलके बाद बाबूसे मिलाऊँगा। यह बात श्रीमान् बाबूजीने सुन ली और मुझसे बोले कि यह क्या कह रहा है। मैंने निवेदन किया कि यह अपाहिज गरीब आदमी है, इसकी लड़कीकी शादी है। इस पर बाबूने कहा कि इसको १०१) रु० दे दो। वह अपाहिज आदमी १०१) रु० लेकर चला गया। इधर दंगल खत्म हो गया। दंगल खत्म होने पर बाबूने पूछा कि उस अपाहिज आदमीको क्या दिलाया। मैंने १०१) रु० दिलाने की बात कही। इस पर बाबूने कहा कि "१०१) रु०में शादी कैसे हो जायगी, उसको २५००) नकद दिला दो, मिल से कपड़ा दिला दो।" पाँच-सात दिन बाद कहीं वह अपाहिज मिल पाया। उसे ढूँढ़नेमें पाँच-सात सौ रुपये लग गये।
>
> एक दिन बाउंटेकी तरफ फिर बाबू घूमने आये। अचानक एक गुण्डा अपने ताँगे पर हिन्दू-

* * *

सवारीको लेकर आया और उसका सामान छीनने लगा। बाबूने यह देख लिया और उन्होंने तुरन्त ही कुछ हिन्दू नौजवानोंको बुलवाया और उसकी जान बचायी। उसके बाद श्रीमान् बाबूने मुझको, चिरंजी पहलवानको तथा कुछ हिन्दू नेताओंको बुलाकर कहा कि गुण्डोंने बहुत ही हद कर रखी है। इसका यही इलाज है कि हिन्दू ताँगे वाले होने चाहिए। उसी वक्त ५०० हिन्दू ताँगे बनवानेकी व्यवस्था करायी गयी। उन दिनों बहुतसे मुसलमान हमारी माँ-बहनोंको चूड़ियाँ पहनाते थे, बाबूजीने हजारों हिन्दू मनिहारीकी दुकानें खुलवायी।

सन् १९३५में दंगलके लिए अच्छे अखाड़े नहीं थे। कुछ हिन्दू लोगोंने कहा, एक अच्छा हिन्दू अखाड़ा होना चाहिए। इस पर बाबूने तत्काल ही कुदसिया घाट पर एक अच्छा अखाड़ा बनवानेकी व्यवस्था करा दी, जो आज भी मौजूद है। एक १५ वर्षीय सुदेशकुमारको श्रीमान् बाबूजीके पास ले गए और बताया कि यह लड़का होनहार है और अच्छा पहलवान बनेगा। बाबूने उसके लिए २००) माहवार बाँध दिया, जो उसे अभी भी मिल रहा है। यह लड़का अभी-अभी हरियाणाके दंगलमें फ्लाई वेटमें चैम्पियन रहा और उसे पदक प्राप्त हुआ है।

हिन्दू स्थापत्यकलाके संस्कर्ता

भारतीय-स्थापत्यकलामें भारतीय-संस्कृति और भारतीय जीवन-दर्शनका सर्वोच्च लक्ष्य मुखरित हुआ है। सुप्रसिद्ध कलाविद् रायकृष्णदासकी मान्यता है कि **'मन्दिर-स्थापत्यका विकास स्वतन्त्र रूपसे और अशोकसे पहिले हुआ जान पड़ता है।'** कौटलीय अर्थशास्त्रमें नगर-निर्माण प्रकरणमें देवायतन बनानेका प्रशस्त विधान है। पाणिनिकी अष्टाध्यायीमें श्रीकृष्ण-पूजाका उल्लेख होनेसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मन्दिर-स्थापत्य-कलाका विकास अशोकसे बहुत पूर्व, चाणक्य और पाणिनिके कालसे भी पूर्व हो चुका था।

हिन्दू-शिल्प-कला प्राचीन कालमें ब्राह्मण-सम्प्रदायसे प्रसिद्ध थी। बौद्ध, जैन तथा विदेशी शिल्प-कला पर ब्राह्मण-सम्प्रदायकी कलाका पूर्ण प्रभाव है।

हिन्दू-शिलपकला के प्रतीक

१. स्वस्तिक
२. कमल
३. अमलक
४. शंख
५. हस्ती

कालक्रम

शुंगकालमें ब्राह्मण-सम्प्रदायकी स्थापत्य-कलाकी प्रचुरता रही। इसी कालमें हिन्दू-शिल्पसे बौद्धोंने चैत्य, स्तूप, विहार आदि बनवाये। कुषाण-सातवाहनकालमें कुषाण-वंशी राजाओंने हिन्दू-मन्दिरोंके स्थान-पर चैत्य, एड्रूक बनवाये।

भारशिव—वाकाटक कालमें नाग-शैलीके मन्दिरोंका निर्माण हुआ। वे सादे होते थे, उनके छेकन और शिखर चौकोर होते थे जो क्रमशः ऊपरकी ओर सँकरे होते जाते थे।

* * *

शकोंके बाद शुंगकालीन शिल्प फिर विकसित हुआ। मन्दिरोंके अलंकरणमें खजूर-वृक्ष (नाग-चिह्न)का अलंकरण प्रचलित हुआ। भारशिवोंके कालसे ही मन्दिरोंके तोरण-द्वारों पर नदी-देवियोंकी प्रतिमाएँ उत्कीर्ण होने लगीं। भूमरा और देवगढ़के मन्दिर इसी शैलीके हैं।

वाकाटक काल हीमें शिवके एकमुखी और चतुर्मुखी लिंगोंकी स्थापना हुई। इस युगमें शिल्प-विकास और अलंकरण-विकास अधिक हुआ। भारशिव-कालके चौकोर शिखरोंमें चारों ओर कैलास-शिखरोंके से पट्टे बढ़ा दिये गये। इस युगमें पर्वतीय मन्दिरोंमें हिमालय-सूचक अभिप्राय मिलने लगे। इस प्रकारके मन्दिर भूमरा और नचना (मध्य प्रदेश) में हैं। नाग-बाकाटकोंके मन्दिर शैव सम्प्रदायके हैं और गुप्त वंशियोंके मन्दिर वैष्णव सम्प्रदायके हैं। सम्प्रदाय-भेद होते हुए भी शैलीमें साम्य है।

इसके बाद पूर्वमध्यकालके ब्राह्मण-सम्प्रदायके मन्दिरोंमें इलोराके मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इस युगकी कलाका दूसरा केन्द्र हाथी-गुम्फा है। कांचीके पास माम्मलपुरम्‌में भी विशाल मन्दिर-रथ इसी समय बनाये गये थे।

उत्तर मध्यकालकी शिल्पकलामें वास्तुकी अलंकृत शैलीके दर्शन होते हैं। इस समयका शिल्प तीन प्रकारका रहा :

१. चालुक्य प्रणाली
२. आर्य प्रणाली
३. द्रविड़ प्रणाली

उत्तरमध्यकालका शिल्प व्यापक रहा है। उड़ीसा, मध्यप्रदेश, गुजरात, राजस्थान, तमिलनाड, काश्मीर, बंगाल, बिहार और नेपाल तक फैला हुआ था।

उड़ीसाके मन्दिरोंका शिल्प पाँच प्रकारका रहा :

१—एकरथ, २—त्रिरथ, ३—पंचरथ, ४—सप्तरथ, ५—नवरथ।

उड़ीसामें बनाये गये इस कालके मन्दिरोंमें भुवनेश्वर, परसुरामेश्वर, भास्करेश्वर, लिंगराज, वेताल मन्दिर, पुरीका जगन्नाथ मन्दिर, कोणार्क मन्दिर अधिक प्रसिद्ध हैं।

मध्यप्रदेशके मन्दिरोंमें निनोराताल, खजुराहो और शिवसागरमें किसी समय ८५ मन्दिर थे। उनमेंसे अब २० ही शेष रह गये हैं। इनमें सभी शिल्पकलाके उत्कृष्ट निदर्शन हैं। चौसठ योगिनियोंका मन्दिर, कंडरिया महादेवका मन्दिर, लक्ष्मण मन्दिर, मतंगेश्वर मन्दिर, हनुमान मन्दिर, जवारि मन्दिर, दूलादेव मन्दिर शिल्पकलाके अद्वितीय प्रतिमान हैं।

ग्वालियरमें सास-बहूका मन्दिर, तेलीका मन्दिर, उदयपुर (भिलसा)का महादेव मन्दिर इसी शैलीके उत्कृष्ट नमूने हैं।

गुजरात, राजस्थानके अन्तर्गत जोधपुर, मुटेरा, डभोई, सिद्धपुर-पाटनके मन्दिर प्रसिद्ध हैं। ओसिय (जोधपुर) में १२ सूर्य-मन्दिर हैं। गिरिनार और पालीताणामें तो मन्दिरोंके ही नगर बसे हुए हैं।

सोमनाथमें सोमेश्वर शिवका मन्दिर द्वादश ज्योतिर्लिंग होनेके कारण गौरवशाली है।

तमिलनाडमें हिन्दू कलाका नवीन, निखरा हुआ रूप मिलता है। तिरुवल्लूर, श्रीरंगपट्टन, चिदाम्बरम्, रामेश्वरम्, मदुरा, वेल्लूर, पेरूर, विजयनगरके मन्दिर अद्‌भुत, अप्रतिम अलंकरण और अद्वैत सौंदर्यसे पूर्ण हैं।

काश्मीरके मन्दिर विस्तृत, विशालकाय नहीं हैं फिर भी शैली, शिल्प और वास्तुकलाके अप्रतिम प्रतिमान

* * *

बने हुए हैं। मार्तण्ड मन्दिर और अवन्तिपुरके मन्दिर अपनी अमृतकलाके कारण कलामर्मज्ञोंके आकर्षण बने हुए हैं।

बंगाल-बिहारके मन्दिर-शिल्पको मुगलशासनने ध्वस्त और अस्तित्वहीन वना दिया, जो कुछ शिल्प है, वह मूर्तियोंके रूपमें सुरक्षित है। कन्तनगर (दीनाजपुर)का नौ विमानोंवाला मन्दिर प्रसिद्ध अवश्य है, किन्तु उसमें आधुनिकताका पूरा प्रभाव है।

नेपालके मन्दिरोंकी रचना चीन, जापानकेप गोडा मन्दिरोंके ढंगकी हैं। अधिकांश शिव-मन्दिर ही हैं। खजुराहोके मन्दिरोंके समान एक कृष्ण मन्दिर है, जो शिल्प-शैली, कला और अलंकरणकी दृष्टिसे अपने-आपमें पूर्ण है। शताब्दियोंतक जिस भारतीय मनीषाने तपः स्वाध्याय निरत रहकर स्थापत्य-कला, शिल्प और सौन्दर्यको वाङ्मयके रूपमें, मन्दिरों, मठोंके रूपमें प्रतिष्ठापित किया है, उसे आज हम श्रद्धापूर्वक वास्तुकलाके आचार्यके नामसे स्मरण करते हैं। वास्तु-शिल्पके आचार्योंके स्थापत्य-शिल्पमें देश, काल और अध्यात्मका पूर्ण प्रभाव होनेसे भिन्न-भिन्न शैली, सम्प्रदाय और परम्पराके नामसे विख्यात हुई। वास्तु-शिल्पके प्राचीन आचार्यों, उनकी शिल्प-परम्परा, कलाकार-वर्गका परिचय, उनकी कलाके मान और प्रतिमान, उनके साहित्य तथा उनके द्वारा निर्मित कलामण्डपोंका गहन और व्यावहारिक अध्ययन करके श्री जुगलकिशोरजी बिरला मन्दिर-निर्माण और प्राचीन मन्दिरोंके जीर्णोद्धारकी दिशामें प्रवृत्त हुए थे। देश और विदेशमें उनके द्वारा निर्मित सैकड़ों मन्दिर और धर्मशालाएँ हैं। शतः जीर्ण-मन्दिरोंका उन्होंने नव संस्कार कराया।

—सम्पादक

श्री बिरलाजी द्वारा निर्मित देवालय

दिल्ली

१. **श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर, नयी दिल्ली :** श्री बिरलाजी द्वारा निर्मित यह मन्दिर हरिजन-समेत समस्त हिन्दू मात्रके लिए तथा हिन्दूधर्म और संस्कृतिके प्रेमियोंके लिए खुला हुआ है। यह आधुनिक दिल्लीका एक आकर्षण-केन्द्र ही नहीं, प्रत्युत समस्त भारतके हिन्दू, बौद्ध, जैन, सिक्ख, सनातनधर्मियों और आर्यसमाजियोंका तीर्थ और सांस्कृतिक केन्द्रका रूप ग्रहण कर चुका है। बौद्ध-देशोंके अतिरिक्त यूरोप-अमेरिका आदि अनेक देशोंके सहस्रों यात्री और पर्यटक प्रतिवर्ष मन्दिरमें दर्शनार्थ आते हैं और इस प्रकार इस मन्दिरकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी है। यह मन्दिर भारतीय स्थापत्य-कलामें एक नया अध्याय बनकर हिन्दूधर्म और संस्कृतिके इतिहास और गौरवका प्रतिनिधि स्मारक है। यह मन्दिर आर्य-धर्म और संस्कृतिका प्रस्तरमय सन्दर्भकोष है।

मुख्य मन्दिरसे संलग्न गीता-मन्दिरमें प्रवचन, व्याख्यान और कथा-कीर्तनकी व्यवस्था है। मन्दिरके पीछे मनोहारी सुसंस्कृत इन्द्रप्रस्थ-वाटिका है, जहाँ स्थान-स्थान पर हिन्दुओंके ऐतिहासिक पुरुषोंकी विशाल प्रस्तर-मूर्तियाँ स्थापित हैं, साधु-सन्तोंके उपदेश, वेदमन्त्र आदि प्रस्तर-शिलाओंमें उत्कीर्ण हैं। यज्ञशाला, व्यायामशाला, नाट्यमन्दिर, क्रीड़ापर्वत, प्रपात आदि विभिन्न प्राकृतिक सौन्दर्यके बीच सहस्रों नर-नारी, युवा बाल-वृन्दोंसे अनुरंजित, संसेवित, गुंजित मन्दिर वाटिका सहित भारतका मंगलायतन बना हुआ है। श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिरके पार्श्वभागमें स्थित बुद्धमन्दिर है, जिसका निर्माण कराकर श्री बिरलाजीने महाबोधि सोसाइटीकी व्यवस्थाके अन्तर्गत समर्पित कर दिया है; यहाँ भारतके अतिरिक्त एशियाके समस्त बौद्ध देशोंके यात्री दर्शनार्थ आते हैं। मन्दिरसे संलग्न भिक्षुओंके लिए एक विहार बना हुआ है।

* * *

श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिरसे संलग्न एक धर्मशाला है। यहाँ देश-विदेशके यात्रियों तथा अतिथियोंके ठहरनेकी उत्तम व्यवस्था है।

२. आर्यसमाज मन्दिर, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली : श्री बिरलाजीकी आर्थिक सहायतासे निर्मित हुआ है।

३. आर्यसमाज मन्दिर, बिरला लाइन्स, दिल्ली : श्री बिरलाजीके धन-दानसे बना यह आर्यसमाज मन्दिर दिल्लीमें अपना प्रमुख स्थान रखता है।

४. शुद्धि-सभा भवन-बिरला लाइन्स, दिल्ली : यह भवन शुद्धि-संगठनके कार्यको सुचारु रूपसे सञ्चालित करनेके लिए श्री बिरलाजीने निर्मित कराकर भारतीय शुद्धि-सभाको समर्पित कर दिया है।

५. दिल्ली में गुरुद्वारे : दिल्ली स्थित अनेक गुरुद्वारोंके निर्माण तथा सञ्चालन हेतु श्री बिरलाजीकी ओरसे पर्याप्त सहायता दी गयी है।

६. मन्दिरोंका जीर्णोद्धार : दिल्लीके अनेक हिन्दू मन्दिर बड़ी जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें पड़े थे। श्री बिरलाजीकी ओरसे उनका जीर्णोद्धार किया गया और उनके मुख्य द्वार, प्राचीर आदिको कलात्मक रूप प्रदान किया गया।

७. वाल्मीकि-मन्दिर, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली : यह मन्दिर हरिजन भाइयोंके लाभके लिए श्रीमान् बिरलाजी द्वारा बनवाया गया है। महात्मा गान्धी भी यहाँ ठहरे थे और प्रातः-सायं प्रार्थना-सभा किया करते थे।

८. हिन्दू महासभा-भवन, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली : यह भवन महामना मालवीयजी तथा लाला लाजपतरायजीकी प्रेरणासे श्री बिरलाजी द्वारा निर्मित कराकर हिन्दू महासभाको हिन्दू-संगठन तथा हिन्दू जातिकी सेवाके लिए प्रदान कर दिया गया।

९. बरवाधा ग्राम मन्दिर : यह मन्दिर दिल्लीके समीप एक गाँवमें वहाँके लोगोंके अनुरोध पर श्रीमान् बिरलाजी द्वारा निर्मित कराया गया है।

उत्तरप्रदेश

१. श्री भगवद्गीता मन्दिर, वृन्दावन रोड, मथुरा : मथुरा और वृन्दावनके बीच, मार्ग पर बना यह मन्दिर मथुरा-वृन्दावनकी धार्मिक और सांस्कृतिक भूमिको एक नयी ज्योति दे रहा है। इस मन्दिरके निर्माणके बाद श्री बिरलाजीकी प्रेरणा और सहयोगके फलस्वरूप श्रीकृष्ण जन्मस्थानका पुनरुद्धार हुआ और श्रीमद्-भागवत मन्दिरका निर्माण हो रहा है। श्रीमद्भगवद्गीता मन्दिरके साथ एक बिरला धर्मशाला भी बनी हुई है। भगवान् बालकृष्णका ज्योतिर्मय विग्रह श्री बिरलाजी द्वारा बनवाए गए मन्दिरमें प्रतिष्ठित है। यह देश-विदेशके दर्शनार्थियोंके आकर्षणका केन्द्र बना हुआ है।

२. श्री गीतामन्दिर, हरिद्वार : हरिद्वारमें श्रीसनातनधर्म-प्रतिनिधि-सभा, पंजाबके तत्वावधानमें निर्मित श्री गीतामन्दिरमें श्री बिरलाजीका पूर्ण योगदान रहा है। मन्दिरके साथ एक धर्मशाला भी है और इससे सम्बद्ध सनातन-धर्म महावीर दल नामकी संस्था भी है, जिसे श्री बिरलाजीका सहयोग सदैव प्राप्त रहा है।

३. सप्तर्षि आश्रम : यह स्थान हरिद्वारसे कुछ ही मीलकी दूरी पर है और इसका निर्माण भी सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा, पंजाबके तत्वाधानमें हुआ है। इसके लिए भी श्रीमान् बिरलाजीकी ओरसे पर्याप्त धन-राशि प्रदान की गयी है।

४. श्री हनुमान मन्दिर, कैंची, नैनीताल : श्री नीमकरोली बाबाके अनुरोध पर श्रीमान् बिरलाजीकी उदार सहायतासे इस मन्दिरका निर्माण कराया गया है।

* * *

५. भारद्वाज आश्रम, प्रयाग (इलाहाबाद) : श्रीमान् बिरलाजीकी प्रेरणासे और उदार दानसे इस प्राचीन तीर्थस्थलको सुन्दर रूप दिया जा रहा है। यहाँका निर्माण-कार्य अभी चालू है।

६. श्रीविश्वनाथ मन्दिर, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी : महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीको दिये गये वचनके अनुसार श्री बिरलाजीने इस विशाल मन्दिरका निर्माण-कार्य पूरा करा दिया है। यह मन्दिर भारतका सबसे विशाल मन्दिर है और इसके निर्माणमें लाखों रुपये लगे हैं। इतनी बड़ी धनराशि मन्दिरके लिए प्राप्त करना और किसीके वशकी बात नहीं थी। यह श्री बिरलाजीके उदार दान और उनकी ही प्रेरणाका फल है कि इस मन्दिरके लिए आवश्यक अर्थकी सहजमें ही व्यवस्था हो गयी। मन्दिर जैसा विशाल है वैसी ही उसकी भव्यता है और यह बिरला-स्थापत्यका एक उज्ज्वल नमूना है। इससे हिन्दू विश्वविद्यालयकी शोभा बहुत बढ़ गयी है और इस मन्दिरके साथ आशा है, यह विश्वविद्यालय वही गौरव प्राप्त करेगा जो कभी नालन्दा, विक्रमशिला और तक्षशिला जैसे विद्यापीठोंको प्राप्त था।

७. मूलगन्ध कुटी विहार, सारनाथ : भगवान बुद्ध द्वारा धर्म-चक्र-प्रवर्तन के स्थान पर जो विशाल बुद्ध-मन्दिर बनाया गया है, उसके लिए भी श्री बिरलाजीने अपना पूर्ण योगदान प्रदान किया।

८. बिरला धर्मशाला, सारनाथ : सारनाथमें देश तथा विदेशके बौद्ध-यात्रियोंकी सुविधाके लिए तथा सर्वसाधारणके लिए बिरलाजी द्वारा एक भव्य और विशाल धर्मशाला बनवायी गयी है।

९. बुद्ध-मन्दिर, कुशीनगर, देवरिया : भगवान बुद्धके निर्वाण स्थल कुशीनगरमें श्री बिरलाजी द्वारा बुद्ध-मन्दिरका निर्माण कराया गया है।

१०. राजा बिरला हिन्दू-बौद्ध-धर्मशाला, कुशीनगर : कुशीनगरमें श्रीमान् बिरलाजीकी ओरसे यह धर्मशाला बनवायी गयी है। बौद्ध-देशोंसे आये हुए यात्रियोंकी सुविधाकी यहाँ पूर्ण व्यवस्था है।

११. वेद-मन्दिर, गुरुकुल काँगड़ी, हरिद्वार : गुरुकुल कांगड़ीमें बने इस वेद-मन्दिरके निर्माणमें बिरला-जीकी ओरसे उल्लेखनीय सहायता दी गयी है।

१२. यज्ञशाला, गुरुकुल, एटा : गुरुकुल एटाके संस्थापक श्री ब्रह्मानन्द दण्डीस्वामीके अनुरोध पर श्री बिरलाजीकी ओरसे सहस्रों रुपये लगाकर यह यज्ञशाला निर्मित करायी गयी है।

१३. साँधन ग्राम मन्दिर, अछनेरा, आगरा : सांधन ग्राम तथा आसपासके पुन: हिन्दूधर्ममें दीक्षित भाइयोंके लाभके लिए श्री बिरलाजी द्वारा इस मन्दिरका निर्माण कराया गया है। मन्दिरके साथ एक दातव्य औषधालय भी है, जिसका सञ्चालन श्री बिरलाजीकी सहायतासे हो रहा है।

१४. खड़वई ग्राम मन्दिर, जिला आगरा : यह मन्दिर भी हिन्दूधर्ममें दीक्षित भाइयोंके लाभके लिए श्री बिरलाजीकी ओरसे बनवाया गया है।

१५. श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर, तिवारीपुर, जिला आजमगढ़ : पण्डित शिवप्रसादजी गायनाचार्यजीके गाँवमें इस मन्दिरका निर्माण किया गया है। गायनाचार्यजीके लिए श्री बिरलाजीकी ओरसे बराबर सहायता दी जाती रही है और वाराणसीमें उनके द्वारा स्थापित शिव-संगीत-विद्यालय को भी श्री बिरलाजीकी सहायता प्राप्त होती रही है।

इनके अतिरिक्त स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) का विख्यात गीता-मंदिर और तपोवन अयोध्याका निर्मायमाण मन्दिर-धर्मशाला, भारतीय संस्कृतिके संदेशवाहक हैं। ब्रजभूमि, काशी तथा अन्यान्य स्थानोंके सैकड़ों जीर्ण मन्दिरोंका उद्धार श्री बिरलाजीने कराया है।

* * *

बिहार

१. श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर, पटना : यह मन्दिर उड़ीसाके भुवनेश्वर मन्दिरकी स्थापत्य-शैलीके आधार पर निर्मित हुआ है, जो पाटलिपुत्रकी सांस्कृतिक गरिमाका प्रतिष्ठापक सिद्ध हुआ है। यहीं पर बिहार सनातन-धर्म प्रतिनिधिसभाका भी कार्यालय है, जो श्री बिरलाजीकी आर्थिक सहायता पर सञ्चालित है। मन्दिरसे संलग्न एक बिरला-धर्मशाला भी है।

२. बुद्ध-स्तूप और धर्मशाला, बोध गया : प्रसिद्ध बौद्ध-तीर्थ बोधगया में श्री बिरलाजीकी ओरसे एक बुद्ध-स्तूपका निर्माण कराया गया है और एक बिरला धर्मशाला बनवायी गयी है, जहां देश-विदेशके यात्री ठहरते हैं।

३. गौतम धारा, राँची : राँचीके रमणीक पर्वतीय भागमें गौतमधारा नामक स्थानपर श्रीमान् बिरलाजीकी ओरसे एक बुद्ध-मन्दिरका निर्माण कराया गया है। यह स्थान अब राँचीके सुन्दर पर्यटन-स्थानोंमें एक है।

४. मन्दार हिल मन्दिर, भागलपुर : मन्दार पर्वतकी तलहटीमें यह मन्दिर श्रीबिरलाजीकी सहायता-से बनवाया गया है। इसकी व्यवस्था मन्दार विद्यापीठके अन्तर्गत है।

५. बिहारके आरा जिलेमें एक मन्दिर श्रीमान् बिरलाजीकी ओरसे निर्मित कराया गया है और उसके लिए नियमित सहायता भेजी जा रही है।

६. सोहं विद्या-मन्दिर, छपराके संचालक श्री भरतजी मिश्रको श्री बिरलाजीकी ओरसे नियमित सहायता भेजी जा रही है।

७. बोधगया हाई स्कूल, बोधगया : इस स्कूलके भवन-निर्माणके लिए श्री बिरलाजीकी ओरसे सहस्रों रुपयेकी सहायता प्रदान की गई है। इसके अतिरिक्त स्कूलके सुरक्षित कोष तथा चालू खर्चके लिए भी श्री बिरलाजीकी ओरसे प्रचुर धनराशि प्रदान की गयी है।

८. सन्थाल-पहाड़िया सेवा-मण्डल के तत्वाधानमें १०,०००) रु० लगाकर कई छोटे-छोटे मन्दिर श्री-मान् बिरलाजीकी ओरसे बनवाये गए हैं। ये मन्दिर सन्थाल परगनाके पहाड़ी सन्थालोंके लाभके लिए निर्मित कराए गए हैं। इसके अतिरिक्त राजा मानसिंह द्वारा निर्मित एक प्राचीन मन्दिरका भी जीर्णोद्धार कराया गया है।

बंगाल

१. जापान-बुद्ध-मन्दिर, ६० लेक रोड, कलकत्ता : यह मन्दिर जापानके बौद्ध भाइयोंके लाभके लिए श्री बिरलाजी द्वारा बनवाया गया है। मन्दिरके साथ अतिथिगृह भी है। मन्दिरमें पूजा-अर्चाका कार्य भारतीय और जापानी बौद्ध-भिक्षुकों द्वारा सम्पादित होता है।

२. आर्य धर्म-निवास, ६० लेकरोड, कलकत्ता : श्री बिरलाजी द्वारा लेकरोड पर बनवायी गयी धर्मशाला है।

३. धर्मांकुर विहार, कलकत्ता : बौद्ध-भिक्षुओंके निवास तथा विश्रामके लिए बिरलाजीके दानसे यह विहार बनवाया गया है। यहाँ भी देश-विदेशके बौद्ध-भिक्षु और बौद्ध-यात्री ठहरते हैं।

४. शिव मन्दिर, कलकत्ता : कलकत्तामें एक शिव-मन्दिर श्री बिरलाजी द्वारा बनवाया गया है।

५. आर्य समाज मन्दिर, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता : श्री बिरलाजी द्वारा इस मन्दिरके निर्माणमें पर्याप्त सहायता दी गयी है। श्री बिरलाजीने अपनी माताजीके नामसे एक आर्यकन्या पाठशालाकी स्थापना इसीके अन्तर्गत करवायी है। विद्यालयका अपना छात्रावास भी है।

६. माहेश्वरी विद्यालय, कलकत्ता : इस विद्यालयकी स्थापनामें श्री बिरलाजीका विशेष योगदान रहा है। यह विद्यालय कलकत्ता नगरकी एक सर्वोत्कृष्ट शिक्षा-संस्था है।

* * *

आसाम

१. **आर्य-धर्म मन्दिर, लाइमुखरा, शिलांग :** श्री बिरलाजी द्वारा निर्मित इस भवनमें एक कन्या पाठ-शाला चलायी जा रही है जो वहाँके आर्यसमाजके प्रवन्धमें है।

दार्जिलिंग

१. **यंगमेन्स बुद्धिस्ट एसोसिएशन, भूटिया बस्ती, दार्जिलिंग :** यहाँ स्व० भिक्षु जिनोरसके आग्रह पर श्रीमान् बिरलाजीकी ओरसे बौद्धोंके लिए एक स्कूलकी स्थापनाके लिए यह भवन बनाया गया था और स्कूलके सञ्चालनके लिए आर्थिक सहायता प्रदान की गई थी।

मध्यप्रदेश

१. **श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर, भोपाल :** एक पहाड़ी पर बने इस मन्दिरकी अनुपम छटा दर्शनीय है। भोपाल नगरके लिए यह एक अभिनव धार्मिक और साँस्कृतिक केन्द्र बन गया है। मन्दिरमें कथा, प्रवचन आदिका समुचित प्रवन्ध है। मन्दिरके साथ अतिथिशाला भी है।

२. **बामनियामें श्री राम-मन्दिर :** वामनिया, इन्दौर क्षेत्रमें निवास करनेवाले भील भाइयोंके लाभके लिए एक पर्वत-खण्ड पर यह सुन्दर राम-मन्दिर बनवाया गया है। श्री बिरलाजीकी ओरसे यहाँकी जनसेवी संस्था भीलाश्रम, वामनियाको भी सहायता दी जाती है। यहाँ एक औषधालय भी बिरलाजीके सहयोगसे खोला गया है।

३. रीवाँके निकट एक पहाड़ीके पास श्री हनुमान-मन्दिरका निर्माण हो रहा है। मध्यप्रदेशके अनेका-नेक मन्दिरोंका जीर्णोद्धार करवाया गया है।

हरियाणा

गीता मन्दिर, कुरुक्षेत्र : यह मन्दिर कुरुक्षेत्रमें बनवाया गया है। मन्दिरके साथ ही अतिथिगृह और संस्कृत पाठशाला भी है।

राजस्थान

१. **श्री सीताराम-मन्दिर, पिलानी :** यह मन्दिर श्री बिरलाजीके परिवार द्वारा निर्मित सम्भवतः सर्वप्रथम मन्दिर है। पिलानीमें बिरला-परिवार द्वारा जो धार्मिक, सांस्कृतिक और शिक्षा तथा विज्ञान सम्बन्धी संस्थाओंकी प्रतिष्ठा की गयी है, उसकी ख्याति देशकी सीमा लाँघ चुकी है।

२. **सरस्वती मन्दिर, पिलानी :** यह मन्दिर बिरला-परिवारकी एक अनुपम देन है। मन्दिरका स्था-पत्य खजुराहोके कन्दरिया महादेव मन्दिरकी स्थापत्य-शैली पर है और अपनी विशेषताओंके लिए भारतमें एक ही है। इसमें मानवजातिके उद्धार-कर्त्ताओं, साधु-सन्तों, ऋषि-मुनियों, विद्वानों, साहित्यकारों, नेताओं, चिन्तकों, वैज्ञानिकों और लोकसेवकोंकी परिचायक मूर्तिकारी भी है।

३. **बिरला अतिथि-निवास तथा छात्रावास :** पिलानीमें बिरला-बन्धुओं द्वारा निर्मित एक अतिथि-निवास है, छात्रोंके लिए अनेकों छात्रावास हैं, सुन्दर उद्यान हैं, और अनेक शिक्षा-संस्थान हैं, जिनसे राष्ट्रकी अनुपम सेवा हो रही है।

* * *

४. बादलगढ़, जिला झूंझुनू : श्री बिरलाजीकी ओरसे एक वीर राजपूत-योद्धा राजा शार्दूलसिंहकी स्मृतिमें उनकी एक विशाल प्रस्तर-प्रतिमा स्थापित की गयी है, तथा बादलगढ़में एक मन्दिरका भी निर्माण तथा गढ़का पुनरुद्धार कराया गया है।

५. लोहार्गल मन्दिर : राजस्थानके पवित्र धार्मिक स्थान लोहार्गलमें श्री बिरलाजी द्वारा एक मन्दिरका निर्माण कराया गया है।

६. चिड़ावा : मगनिया जोड़ामें श्री बिरलाजी द्वारा एक (सिद्धकी) छतरी बनवायी गयी है। यहाँ पर महिलाओंके लिए आधुनिक समस्त सुविधाओंसे युक्त अस्पताल भी बिरला-परिवारकी ओरसे चलाया जा रहा है।

७. तसई ग्राम मन्दिर, अलवर : अलवरके तसई ग्राममें, वहाँके हिन्दूधर्ममें दीक्षित भाइयोंके लिए एक मन्दिर श्री बिरलाजीकी ओरसे बनवाया गया है।

८. लालदासकी समाधि : अलवर राज्यमें सन्त लालदासकी समाधिकी अवस्था जीर्णशीर्ण थी, श्री बिरलाजीकी सहायतासे उसका जीर्णोद्धार हुआ है।

बम्बई

१. जापान सद्धर्म बिहार, वर्ली, बम्बई : जापानसे आए हुए बौद्धोंके लिए श्री बिरलाजीकी ओरसे यह बिहार निर्मित कराया गया है।

२. कल्याण बिठोवा-मन्दिर : यह मन्दिर बिरला-बन्धुओंकी ओरसे श्वेत मर्मर पत्थरसे निर्मित हुआ है। इसका स्थापत्य सोमनाथकी शिल्प-शैलीसे लिया गया है और इसका निर्माण-कार्य भी सोमनाथके निर्माता शिल्पियोंकी वंश-परम्परा द्वारा सम्पादित हुआ है। मन्दिरकी भव्यता, तक्षणकार्य, मूर्तिकारी तथा शिल्प-शैली भारतीय स्थापत्यका वैभव प्रकट करनेवाली है।

कार-निकोबार

१. अण्डमनका एक उपद्वीप कार-निकोबार है। वहाँकी हिन्दू-नेता रानी शुभश्री चंगाके अनुरोध पर एक मन्दिरके निर्माणके लिए बिरलाजी द्वारा एक अच्छी राशि प्रदान की गयी है।

२. इसके अतिरिक्त अण्डमन द्वीपके अनेकों मन्दिरोंकी व्यवस्था और जीर्णोद्धारके लिए भी श्रीमान् बिरलाजी द्वारा हजारों रुपयेकी सहायता दी गयी है तथा कई मन्दिरोंके लिए संगमर्मरकी बनी हुई भव्य मूर्तियाँ भी प्रदान की गयी हैं।

बाली, इण्डोनेशिया

यहाँ भुवन सरस्वती नामकी संस्थाके प्राण श्री बिरलाजी ही थे। इस संस्थाके माध्यमसे द्वीपान्तरमें हिन्दूधर्मकी पुनः प्रतिष्ठा करानेका श्रेय बिरलाजीको है।

* * *

संरक्षित शिक्षण-संस्थाएँ

१. पिलानीमें संस्कृत विद्यालय।
२. बिरला संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी।
३. विश्वनाथ संस्कृत विद्यालय, उत्तरकाशीके निर्माण तथा संचालनमें सहायता।
४. बोधगया हाई स्कूल, बोधगया, भवन-निर्माण तथा सञ्चालनमें सहायता।
५. हिन्दू-धर्म-सेवा-संघ हाई स्कूल, बुनियादगंज, गयामें स्कूलको नियमित सहायता।
६. सोहं विद्या-मन्दिर, छपराको नियमित सहायता।
७. प्राच्य महाविद्यालय, हिन्दू विश्वविद्यालय काशीके भवन-निर्माणकी सहायता।
८. बिरला छात्रावास, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी।
९. आर्य शिल्प-विद्यालय, कानपुर।
१०. कल्याण आश्रम, जसपुरनगर, जिला रायगढ़के भवन-निर्माणमें तथा नियमित सहायता।
११. यंगमेन्स बुद्धिस्ट एसोसिएशन मिडिल स्कूल : भवन-निर्माण तथा कई बार सहायता।

विदेशोंमें भारतीय प्रवासियोंके लिए मूर्तियोंका अनुदान:

१. श्री कल्याणनाथ टेम्पल महासभा, गुड लैण्ड्स, मारीशसको मूर्तियोंका अनुदान।
२. आर्यसमाज, डरबन, दक्षिण अफ्रीका, मन्त्रांकित शिला-पट्ट भेजे गये।
३. लिवरपूल, इंगलैण्डके एक मन्दिरके लिए श्रीकृष्णकी मूर्ति भेजी गयी।
४. फीजीके एक राम-मन्दिरके लिए राम, सीता, लक्ष्मण और हनुमानकी मूर्तियाँ भेजी गयीं।
५. मिस्रमें भारतीय संयुक्त राष्ट्र सुरक्षादलके सैनिकोंके लिए मूर्तिका दान।
६. सीमापर नियुक्त भारतीय सैनिकोंके लिए पूजा-अर्चाकी सामग्री भेजी गयी।

स्वर्गीय सेठ जुगलकिशोरजी बिरला द्वारा संस्थापित धार्मिक-न्यास

बिरला-बन्धुओंके द्वारा कितने ट्रस्ट और कितनी परोपकारी सार्वजनिक संस्थाएँ अबतक स्थापित की गयी हैं, उनकी कोई गिनती नहीं है। किन्तु यहाँ केवल स्व० सेठ जुगलकिशोरजीके द्वारा संस्थापित ट्रस्टोंकी नामावली दी जा रही है:

१. सीताराम-मन्दिर ट्रस्ट, पिलानी : यह ट्रस्ट पिलानी में स्थित श्री सीताराम-मन्दिरकी सेवा-पूजा तथा पिलानी और राजस्थानमें संस्कृत विद्यालय और अन्य उपयोगी परोपकारी कार्योंमें सहायता देनेके लिए स्थापित किया गया है।

२. आर्य (हिन्दू) धर्म-सेवासंघ, दिल्ली : जैसा कि इसके नामसे ही प्रकट है, यह ट्रस्ट आर्यधर्मी संस्थाओं, व्यक्तियों तथा समस्त आर्य (हिन्दू) जनकी सेवा तथा सहायताके लिए स्थापित किया गया है।

३. अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म-सेवासंघ ट्रस्ट, दिल्ली : लाखों रुपयोंका यह ट्रस्ट, भारतवर्ष तथा विदेशोंमें आर्यधर्मकी उन्नति एवं प्रचारके लिए स्थापित किया गया है। इस ट्रस्टके अनुसार आर्य-धर्मकी परिभाषामें सनातनधर्मी, आर्यसमाजी, बौद्ध, जैन, सिख, ब्रह्मसमाजी तथा सभी हिन्दू सम्प्रदाय सम्मिलित हैं।

* * *

४. **अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म-सेवासंघ :** यह संघ इसी नामके ट्रस्टके अन्तर्गत है और जिस उद्देश्यके लिए उक्त ट्रस्ट स्थापित किया गया है, उसी उद्देश्यके अनुसार यह संघ भी काय कर रहा है।

५. **हिन्दू बुद्ध धर्मशाला ट्रस्ट, कुशीनगर :** यह ट्रस्ट कुशीनगरमें स्व० सेठजीके द्वारा निर्मित हिन्दू बुद्ध धर्मशालाकी देख-भालके लिए तथा उसमें आकर ठहरनेवाले बौद्ध-यात्रियोंकी सेवा-सत्कारके लिए स्थापित किया गया है।

६. **श्री सनातनधर्म सभा लक्ष्मीनारायण मन्दिर ट्रस्ट, नयी दिल्ली :** यह ट्रस्ट नयी दिल्ली स्थित श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिरकी देख-भाल, प्रबन्ध और रक्षाके लिए स्थापित किया गया है।

७. **बजरंग व्यायामागार, कलकत्ता :** यह ट्रस्ट कलकत्तेमें व्यायाम-प्रचारके लिए स्थापित किया गया है।

८. **राजपूताना विद्या-प्रचारिणी-ट्रस्ट :** यह ट्रस्ट राजपूतानामें विद्याके प्रचारके लिए स्थापित किया गया है। इसके द्वारा मलसीसरमें एक उच्च विद्यालय भी चलाया जा रहा है।

९. **यंगमेन्स बुद्धिस्ट एसोसिएशन, दार्जिलिंग :** यह ट्रस्ट दार्जिलिंगमें बौद्ध नवयुवकोंमें धर्मके प्रति श्रद्धा और भक्ति जाग्रत करनेके लिए बनाया गया था। इस ट्रस्टके द्वारा एक भवनका निर्माण कराया गया था, जिसमें बौद्ध बालकोंका एक स्कूल भी चलाया जा रहा है।

१०. **जापानीज़ बुद्ध-मन्दिर-बिहार-ट्रस्ट, बम्बई :** यह ट्रस्ट वर्ली, बम्बईमें जापानी बुद्ध-मन्दिर तथा विहारकी देख-भालके लिए बनाया गया है। यह बुद्ध-मन्दिर मुख्यतः जापानी बौद्धोंके लिए तथा साधारणतः बौद्ध समेत हिन्दू मात्रके लिए खुला हुआ है।

११. **शिव मन्दिर ट्रस्ट, मन्दार हिल :** यह मन्दिर भागलपुर जिलेके सन्थाल-पहाड़िया आदि आदिवासियोंके लिए निर्मित किया गया है।

१२. **श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा :** महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीके अनुरोध पर सेठ जुगलकिशोर बिरलाने श्रीकृष्ण-जन्मभूमि नामक स्थान खरीद कर एक ट्रस्टके सुपुर्द कर दिया, जो इसकी देख-भाल तथा रक्षाके लिए प्रयत्नशील है। श्रीकृष्ण-जन्मभूमिका पुनरुद्धार-कार्य हो रहा है और इस स्थान पर एक भव्य श्रीमद्भागवत-भवन निर्मित किया जा रहा है। श्रीकृष्ण-मन्दिरमें भगवान् बालकृष्णका विग्रह प्रतिष्ठापित हो चुका है।

१३. **बंगाल हिन्दू वेलफ़ेअर ट्रस्ट, कलकत्ता :** यह ट्रस्ट बंगालके हिन्दुओंकी सेवा और उन्नतिके कार्योंके लिए स्थापित किया गया है।

१४. **बंगाल बुद्धिस्ट एसोसिएशन, कलकत्ता :** यह ट्रस्ट बंगालमें बौद्धधर्मके प्रचार और प्रसारके लिए स्थापित किया गया है।

१५. **राजस्थान भील-सेवक-संघ, बामनिया :** यह ट्रस्ट राजस्थानमें भीलोंकी सेवा, शिक्षा और उन्नतिके लिए स्थापित किया गया है। इस ट्रस्टके द्वारा बामनियामें एक पहाड़ी पर श्रीराम-मन्दिर भी निर्मित कराया गया है।

१६. **हिन्दू महासभा ट्रस्ट, पटना :** यह ट्रस्ट पटनामें हिन्दू महासभा-भवनकी देख-भालके लिए स्थापित किया गया है।

१७. **हिन्दू शिल्पशाला, कलकत्ता :** इस ट्रस्टके द्वारा हिन्दुओंके लिए एक शिल्पशाला कई वर्षोंसे संचालित है और यहाँसे अनेकों विद्यार्थी भिन्न-भिन्न प्रकारके शिल्प सीख कर अपनी जीविका कमा रहे हैं।

१८. **जापानी बुद्ध-मन्दिर ट्रस्ट, लेक रोड, कलकत्ता :** यह बुद्ध-मन्दिर लेक रोड, कलकत्तामें मुख्यतः जापानी बौद्धोंके लिए और साधारणतया सभी आर्य-हिन्दुओंके लिए स्थापित किया गया है।

* * *

१९. स्टोर रोड शिव-मन्दिर ट्रस्ट, कलकत्ता : यह ट्रस्ट स्टोर रोड, कलकत्तामें श्री बिरलाजी द्वारा निर्मित शिव-मन्दिरकी रक्षा तथा देख-मालके लिए स्थापित किया गया है।

२०. बहुजन बिहार ट्रस्ट, बम्बई : यह ट्रस्ट बम्बईमें बहुजन बिहार नामक संस्थानकी देख-माल तथा समुचित प्रबन्धके लिए स्थापित किया गया है।

२१. बुद्ध-मन्दिर ट्रस्ट, राँची : यह ट्रस्ट राँचीमें गौतम-धाराके निकट सेठ जुगलकिशोरजी द्वारा निर्मित बुद्ध-मन्दिरके प्रबन्धके लिए स्थापित किया गया है।

●

राजाने पूछा, 'पवित्र नागसेन, श्रद्धाके क्या लक्षण हैं?"

'शान्ति और आशा, हे राजन्!'

'शान्तिके लक्षण किस प्रकार हैं?'

'हे राजन्, जब हृदयमें श्रद्धाका उदय होता है, तो पाँच बाधाएँ दूर हो जाती हैं : काम, ईर्ष्या, आलस्य, आध्यात्मिक अभिमान और सन्देह; इन विघ्नोंसे मुक्तहृदय पवित्र, शान्त और निर्बाध हो जाता है।'

'दूसरे लोगोंने मुक्तिकी प्राप्ति किस प्रकार की, इस प्रकार प्रयत्न करता हुआ एक संन्यासी जैसे फलकी आशा करता है, इस महान् राहमें वह एक, दो, तीन प्रयत्न करता है और उस प्राप्तिके लिए अपनेको उन्मुख करता है, जिस तक वह अभी पहुँच नहीं पाया है, जिस अनुभवकी उसने अभी प्रतीति नहीं की है, जिस प्रतीतिको उसने अभी प्रतीत नहीं किया है—इस प्रकार वह आशा ही है, जो श्रद्धा का लक्षण है।'

—मिलिन्दप्रश्नसे

श्रीबिरलाजी द्वारा

विदेशोंमें धर्मचक्र-प्रवर्तन

⊙ ⊙ ⊙

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धीने 'हरिजन'में प्रकाशित अपने एक लेखमें कहा था : "हिन्दुत्वने भयसे हमारी रक्षा की है, हमें नष्ट होनेसे बचाया है। यदि हिन्दुत्व हमारी रक्षाके लिये न होता, तो आत्मघातके अतिरिक्त मेरे लिये कोई दूसरा मार्ग न था। मैं हिन्दू इसीलिये हूँ, क्योंकि हिन्दुत्व एक ऐसा स्वर्ग है, जो संसारको रहने योग्य बनाये हुए है। हिन्दुत्वसे ही बौद्ध-धर्मकी उत्पत्ति हुई है। वर्तमान समयमें हिंन्दू-धर्मका जो स्वरूप हम देखते हैं, वह हिन्दुत्व नहीं है। अधिकांशतः उसका उपहास है, अन्यथा हिन्दुत्वकी प्रशंसामें किसीको कुछ कहनेकी आवश्यकता न होती। वह स्वयं बोलता। हिन्दुत्व मुझे यह शिक्षा देता है कि मेरा शरीर, मेरी अन्तरात्माको सीमित करनेवाला एक बन्धन है।

"जिस प्रकार पाश्चात्य देशोंने भौतिक पदार्थोंके आश्चर्यजनक आविष्कार किये हैं, उसी प्रकार हिन्दुत्वने उनसे भी अधिक विलक्षण आविष्कार धर्म, जीव तथा आत्माके सम्बन्धमें किये हैं। किन्तु ऐसे महान् एवं सुन्दर आविष्कारोंको देखनेके लिए हमारे पास यन्त्र नहीं हैं। पाश्चात्य विज्ञान द्वारा की हुई भौतिक उन्नतिसे हमारी आँखें चौंधिया गयी हैं। मैं उस उन्नतिसे प्रभावित नहीं हूँ। वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वरने अपनी बुद्धिमानीसे उस दिशामें उन्नति करनेके लिए भारतको रोक दिया है, जिससे बढ़ते हुए भौतिकवादको रोकनेके लिए अपने विशेष उद्देश्यमें वह सफल हो सके। हिन्दुत्वमें ऐसी कोई बात अवश्य है, जो अबतक उसे जीवित रखे हुए है। इसने बेबीलोन, सीरिया, फारस और मिस्र देशकी सभ्यताओंका पतन देखा है।

"अपने चारों ओर दृष्टि डालिये। रोम कहाँ है? और कहाँ है ग्रीस? क्या गिबन की इटली या प्राचीन रोमका - क्योंकि रोम भी इटलीमें ही था - आप आज कोई चिह्न पा सकते हैं? यूनानको लीजिए, वह संसार-प्रसिद्ध सर्वोच्च सभ्यता कहाँ गयी? अब भारत आइए। यहाँका अति प्राचीन कोई ग्रन्थ या वर्णन पढ़िये और फिर चारों ओर दृष्टि डालिए, तो आपको विवश होकर कहना पड़ेगा कि हाँ, प्राचीन सभ्यता यहाँ अब भी जीवित है। यह सत्य है कि यत्र-तत्र कूड़े-करकटके ढेर भी हैं, किन्तु उसके नीचे अतुल भण्डार दबा पड़ा है। भारतीय-सभ्यताके जीवित रहनेका एकमात्र कारण यही है कि भारतका लक्ष्य भौतिक उन्नति नहीं, वरन् आध्यात्मिक उन्नति था।"

राष्ट्रपिताके इन विचारोंमें हिन्दू-धर्म और हिन्दुत्वकी महानताका स्पष्ट परिचय मिलता है। हिन्दू जहाँ कहीं भी है, किसी भी देशका निवासी है, वह अपनी दार्शनिक संस्कृतिसे अनुबद्ध रहते हुए आज भी भौतिकताका विरोधी है। संसारकी लगभग एक-तिहाई जनसंख्या आज भी आर्य हिन्दू-धर्मका पालन करती

* * *

है। सनातन हिन्दुत्व तो केवल भारत और नेपालमें ही मिलेगा, लेकिन बौद्ध हिन्दुत्व बर्मा, मलाया, इण्डोनेशिया, हिन्दचीन, बाली, सुमात्रा, जावा, चीन, तिब्बत, जापान आदि अनेक एशियाई देशोंमें भारी संख्यामें फैला हुआ है। पिछले पाँच दशकोंसे प्रवासी हिन्दुओंपर सम्बन्धित देशोंकी विजातीय सरकारों अथवा बाह्य शक्तियोंने भौतिकता लादनेकी बराबर चेष्टाएँ की हैं और उन्हें अपनी शताब्दियों पुरानी महान् संस्कृति और दर्शनका परित्याग कर देनेके लिए भाँति-भाँतिसे प्रलुब्ध किया है, लेकिन उन देशोंके इन आर्य बौद्धोंमें अपनी प्राचीन परम्पराओंके प्रति जो निष्ठा रही है, उसके कारण शत्रुओंके अधिकांश प्रहार निराकृत ही होते गये हैं। संकटके ऐसे अवसरोंपर इन प्रवासी हिन्दुओंने बराबर अपने आदिदेश भारतकी ओर सहायताके लिए निगाह उठायी है और उन्हें बराबर ही सहायता और सहयोग प्राप्त होता रहा है।

'भक्त पर भीर पड़ने पर भगवान् उसकी रक्षाके लिए नंगे पाँव दौड़ पड़ते हैं,' इस आस्थाको व्यावहारिक रूपमें चरितार्थ करनेवाले स्वर्गीय श्री जुगलकिशोरजी बिरलाने एशियाई हिन्दू-देशोंकी जनतासे बराबर सम्पर्क रखा और उन्हें अपनी ओरसे हर प्रकारकी सहायता दी। संसद् सदस्य श्री एन० सी० चटर्जीने बिरला जीके निधनपर ठीक ही कहा था : "स्व० जुगलकिशोर बिरला न केवल दानवीर थे, प्रत्युत हिन्दू-धर्मके दीवाने थे। देश-विदेशमें हिन्दू-धर्मके प्रचारके लिए जितना काम उन्होंने किया, उतना और किसीने नहीं किया।"

चटर्जी महाशयके स्वरमें स्वर मिलाते हुए संसद् सदस्य श्री रामगोपाल शालवालेने कहा था : "बिरलाजीके हृदयमें हिन्दू-धर्मकी रक्षाके लिए ज़बरदस्त तड़प थी। उन्होंने विदेशोंमें हिन्दू-धर्मके प्रचारके लिए सब तरहका सहयोग दिया।"

यह 'दीवानगी' यह 'ज़बरदस्त तड़प' आखिर हिन्दुत्वकी रक्षाके लिए ही क्यों थी, इसका सहज स्पष्टीकरण महात्मा गान्धीके विचारोंसे हो जाता है।

विशाल हिन्दू-धर्मको एक सूत्रमें सतत् आबद्ध रखनेके उद्देश्यसे अन्य हिन्दू देशोंमें उन्होंने मन्दिर, स्तूप, विहार आदि बनवाये, भारतकी ओरसे बहुमूल्य उपहार भेजे और साथ-ही-साथ उन देशोंके विविध हिन्दू-नेताओं और समाज-सेवियोंके साथ अपने निजी दूतों और पत्रों द्वारा बराबर सम्पर्क बनाये रखा। अपने पत्राचारमें वे हर हिन्दूको अपने आर्य-धर्म और आर्य-संस्कृतिको अक्षुण्ण बनाये रखनेका बार-बार आग्रह करते रहते थे।

प्रवासी भारतीयोंमें धार्मिक जागरणके प्रयास

एक समय था जब आर्यावर्त गान्धारसे लेकर कामरूप तक तथा कश्मीरसे लेकर कन्याकुमारी तक एक अखण्ड सत्ताके रूपमें विद्यमान था। इस पुण्यभूमिमें कितनी महान् विभूतियाँ अवतरित हुईं, उनका प्रकाश विश्वमें कहाँ तक फैला, यह सब इतिहासकी वस्तु है। भारतीय राष्ट्रके मौर्यकाल और गुप्तकाल जैसे स्वर्णिम युग रहे हैं। भारतीय-संस्कृतिका वह स्वर्णयुग था, जब भारतीय-संस्कृतिका सौरभ विश्वके दूर-दूर देशों तक पहुँचा था। उस समय आजके समान यात्रा-साधन उपलब्ध नहीं थे। फिर भी भारतके सन्देशवाहकोंने अपनी प्रगाढ़ निष्ठा और उत्साहसे समुद्रकी लहरोंको चीरकर, दुर्लंघ्य पर्वतमालाओंको लाँघकर, भारतका मैत्री-सन्देश एवं धर्मका पवित्र उपहार एशियाके देशों और द्वीपोंके दूरवर्ती भागों तक पहुँचाया था। आज उन्हीं धर्मदूतोंके प्रयासका फल है कि विश्वकी एक-तिहाई जन-संख्या आर्य-धर्मकी मानने वाली हो गयी है। इसके फलस्वरूप भारत केवल अपनेमें ही सीमित न रहकर बृहत्तर भारतका रूप ले चुका है। इसी युगमें सम्राट् अशोक-जैसे महान् धर्मप्रेमी महापुरुषका जन्म हुआ, जिन्होंने उस बौद्ध-धर्मका प्रचार संसारके कोने-कोनेमें किया जो हिन्दू-धर्मका ही एक अंग है।

* * *

इस दिशामें बिरलाजीका जीवन सम्राट् अशोकके जीवनसे बहुत कुछ मिलता है। सम्राट् अशोकने शिला-स्तम्भों, स्तूपों, मन्दिरों, और संघारामोंका निर्माण करके बौद्ध-धर्मका प्रचार किया, उसी प्रकार बिरला-जीने भी अनेक शिला-स्तम्भों, स्तूपों, मन्दिरों, आश्रमों, धर्मशालाओं, पाठशालाओं और बौद्ध-विहारोंका निर्माण कराया।

श्रीबिरलाजीका धर्म-प्रचार सम्राट् अशोकके समान ही अपने देशकी सीमा लाँघ चुका था। उन्होंने विश्वके दूर देशोंमें बसे भारतीय प्रवासियोंके बीच विद्वान् प्रचारक भेजे, उनके लिए हिन्दू-धर्म, दर्शन और संस्कृति सम्बन्धी ग्रन्थ भेंट किये, उनके मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित करानेके लिए भारतसे सुन्दर संगमर्मरकी देव-प्रतिमाएँ और वेदमन्त्रोंसे उत्कीर्ण शिला-पट्ट भिजवाये और उनमें अपनी संस्कृतिके प्रति प्रेम जगानेके लिए भारतीय वस्त्रोंका उपहार भेजा। बिरलाजीका यह महान् प्रयत्न हमारे जातीय इतिहासकी धरोहर बन गया है।

प्रथम विश्व युद्धके बाद बिरलाजीने प्रसिद्ध आर्यसमाजी विद्वान् पण्डित अयोध्याप्रसाद तथा कुछ अन्य व्यक्तियोंको एक मिशनके रूपमें दक्षिण अमरीकाके ट्रिनिडाड, ब्रिटिश गायना, फीजी, डच गायना आदि उपनिवेशोंमें भेजकर प्रवासी भारतीयोंमें धार्मिक जागरणकी ज्योति जलाई।

बिरलाजीने स्वामी सत्यानन्द संन्यासीको बाली, जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया आदि पूर्वी द्वीपोंमें भेजा, जहाँ उन्होंने उन सभी द्वीपोंमें भ्रमणकर वहाँके भारतीय और हिन्दू-संस्कृति-चिह्नों, मन्दिरों, उत्सवों, नाटकों तथा सामाजिक जीवन-स्थितियों पर प्रामाणिक साहित्य प्रस्तुत किया। उनके उस साहित्यसे वहाँके सम्बन्ध-में भारतको पर्याप्त परिचय प्राप्त हुआ। अंकोरवट, बोरोबुदरका विशाल मन्दिर, रामायण-महाभारत पर आधारित उनके नृत्य-नाट्य, मन्दिरोंमें हिन्दू-मन्त्रोंका पाठ, अर्जुन, भीम, कर्ण आदि चरित्रोंके प्रति उनकी लोकरुचि - यह सब सिद्ध करते हैं कि वहाँ हिन्दू-धर्म अब भी अपने पवित्र रूपमें विद्यमान है।

बिरलाजीकी प्रेरणा और सहायता प्राप्त विद्वान् संन्यासी स्वामी सत्यानन्दजी जब थाइलैण्ड गए, तो वहाँके राजाने उनका अभूतपूर्व स्वागत कर तथा उन्हें राज्यका राजगुरु पद प्रदान किया। आज भी स्वामी सत्यानन्दजीके नाम पर वहाँ कई संस्थान स्थापित हैं, वहाँ उन्हें सम्मानके साथ स्मरण किया जाता है।

पंजाबके प्रसिद्ध विद्वान् और धर्म-प्रचारक पण्डित ऋषिरामजीको बिरलाजीने ट्रिनिडाड, ब्रिटिश-गायना और मारीशस भेजा। जहाँ उन्होंने उन द्वीपोंके प्रवासी हिन्दू-भाइयोंके बीच धर्म-प्रचार किया। मारीशस-में हिन्दुओंकी जनसंख्या ६० प्रतिशत है। वे सभी हिन्दू-धर्म और सस्कृतिके प्रति सजग निष्ठावान् हैं। वहाँसे पण्डित ऋषिरामजीने मोम्बासा और केनिया (पूर्वी अफ्रीका) में जाकर हिन्दू-धर्मका प्रचार किया।

इसी समय भारत सेवाश्रम संघ कलकत्ताके संन्यासी प्रचारकोंके एक दलको दक्षिणी अमेरिकाके निकट ट्रिनिडाड, ब्रिटिश गायनामें धर्म-प्रचारके लिए बिरलाजीने भेजा था।

इससे पहले अमेरिकामें हिन्दू-धर्म, संस्कृति तथा वेदान्तका प्रचार करनेके लिए बनारस हिन्दू विश्व-विद्यालयके भूतपूर्व दर्शनाचार्य डॉ० बी० एल० आत्रेयको श्रीबिरलाजीने बिरला विजिटिंग प्रोफेसरके रूपमें भेज दिया था। वहाँ उन्होंने भिन्न-भिन्न स्थानोंमें हिन्दू-धर्म और दर्शनपर अनेक व्याख्यान दिये। वहाँसे लौटते समय उन्होंने स्याम, चीन तथा हवाई द्वीपमें धर्म, संस्कृति और दर्शनपर कई व्याख्यान दिये थे।

बाली द्वीपमें अभी भी २०,००,००० बीस लाख हिन्दू-धर्मावलम्बी निवास करते हैं, जो वहाँके असली निवासी हैं। बाली द्वीपमें हिन्दू-धर्म-सम्बन्धी साहित्य छपाने तथा प्रचारके लिए "भुवन सरस्वती" नामक संस्थाको नियमित रूपसे आर्थिक सहायता दी जाती रही है। पचासों हजारकी पुस्तकें भेजकर बालीमें वितरित

कराई गईं। वहाँकी इण्डोनेशियन भाषाके माध्यमसे संस्कृत सिखानेके लिए बिरलाजीने 'संस्कृत प्राइमर "स्वर-व्यंजन संस्कृत' तथा 'संस्कृत प्रवेशिका' नामक पुस्तकें यहाँसे छपवाकर इण्डोनेशियामें धर्मार्थ वितरित कराईं।

ट्रिनिडाडमें कई लाख भारतीय पीढ़ियोंसे बसे हुए हैं। भारतके साथ उनका लगातार सम्पर्क न होनेके कारण वहाँके भारतीय अपने धर्म, संस्कृति, वेश-भूषा तथा भाषासे पराङ्मुख हो गये थे। उनकी महिलायें भी साड़ी पहनना भूलकर विदेशी वेश अपना चुकी थीं। इन भारतीय महिलाओंको स्वधर्म, स्ववर्ण, स्वदेश, स्ववेशके प्रति अनुराग उत्पन्न करनेके लिए श्रीबिरलाने वहाँके भारतीय हाई कमिश्नर श्री आनन्दमोहनसहायके माध्यमसे ट्रिनिडाड स्थित भारतीय महिलाओंमें साड़ियाँ बँटवाईं, जिन्हें उन महिलाओंने बड़ी रुचिसे स्वीकार किया।

मारीशस द्वीपमें लगभग तीन लाख हिन्दू निवास करते हैं। उनकी आस्था बढ़ानेके लिए श्रीबिरला जी द्वारा धार्मिक तथा साँस्कृतिक पुस्तकें धर्मार्थ वितरण कराई गयीं। मारीशसमें कई धार्मिक संस्थायें भी कार्य कर रही हैं। उनमें श्री कल्याणनाथ सनातनधर्म टेम्पल एसोसिएशनकी ओरसे बनाये गये एक मन्दिरके लिए श्रीबिरलाजीने संगमर्मरकी आठ मूर्तियाँ भिजवायीं तथा भारतीय देवी-देवताओंके अनेक चित्र और वैदिक मन्त्रोंके अनेक शिलापट्ट भी भिजवाये।

डरबन (दक्षिणी अफ्रीका)के आर्यसमाज मन्दिरके लिए वेद-मन्त्र खुदे हुए कई शिला-पट्ट भेजे गये तथा पूर्वी अफ्रीकामें धर्म-प्रचारके लिए आर्यसमाजके प्रसिद्ध नेता कुँवर चाँदकरणजी शारदाको भेजा गया।

प्रशान्त महासागर स्थित फीजी द्वीपकी ४,६९,०००की जनसंख्यामें दो लाख हिन्दू हैं। फीजीके हिन्दू अपने धर्ममें अटल विश्वास रखते हैं। वहाँ लगभग ५०० रामायण मण्डलियाँ हैं, जिनके द्वारा धर्मका प्रचार बराबर होता रहता है। वहाँके सामाबूला नामक नगरका रामायण-मन्दिर फीजीमें सनातनधर्मकी केन्द्रीय संस्था है। इस सामाबूला मन्दिरके लिए श्रीबिरलाजीकी ओरसे राम, लक्ष्मण, सीता और हनुमानकी बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ भारतसे बनवाकर भेजी गयीं, जिनका वहाँ श्रद्धासिक्त भव्य स्वागत हुआ।

इसके अतिरिक्त जमाइका, सूरिनाम आदि देशोंमें बसे हुए भारतीयोंके साथ सम्पर्क स्थापित किया गया। डच गायनासे हिन्दू विश्वविद्यालयमें अध्ययनार्थ आये हुए छात्रोंको छात्रवृत्ति प्रदान की गई।

लन्दन स्थित हिन्दू एसोसिएशनके भवन-निर्माणके लिए तथा संस्था पर चढ़े हुए ऋणको चुकानेके लिए बिरलाजीकी ओरसे हजारों रुपयोंकी सहायता दी गयी तथा लिवरपूलमें हिन्दू-मन्दिरमें प्रतिष्ठाके लिए भगवान् कृष्णकी एक संगमर्मरकी सुन्दर प्रतिमा बनवाकर भेजी गयी।

मिस्रके रफेह नामक स्थानमें भारतीय सुरक्षा-दलकी प्रार्थना पर भगवान् कृष्णकी संगमर्मरकी मूर्ति भेजी गयी। इसी प्रकार सीमा क्षेत्र पर तैनात भारतीय जवानोंके आग्रह पर उन्हें पूजाकी अनेक आवश्यक सामग्री भिजवायी गयी।

निकोबार द्वीपमें वहाँकी नेता रानी शुभश्री चंगाके अनुरोध पर कचाल नामक द्वीप पर एक मन्दिर निर्माणके लिए श्रीमान् बिरलाजीकी ओरसे ८,००० रु०का अनुदान दिया गया और अण्डमन तथा निकोबार द्वीप समूहमें हिन्दू-मन्दिरोंके जीर्णोद्धार तथा प्रबन्ध आदिके लिए भी वहाँके हाई कमिश्नरके माध्यमसे १५,००० रुपयेकी सहायता भिजवायी गयी।

इस प्रकार श्रीबिरलाजी द्वारा प्रवासी भारतीयोंमें धर्म-प्रचार तथा उन्हें अपने धर्म, संस्कृति, दर्शन, साहित्यके माध्यमसे भारतीय परिवारके रूपमें संगठित करनेका भरसक प्रयत्न किया गया, जो भारत और हिन्दू-जातिके इतिहासमें एक गौरवपूर्ण अध्याय माना जायगा।

—सम्पादक

* * *

नेपाल

[नेपाल बौद्ध-संघके श्री धर्मरत्न यमिका पत्र]

दानवीर सेठ जुगलकिशोर बिरलाजी,

अमिताभ तथागतकी अनुकम्पासे आपकी बौद्ध-हिन्दू एकताकी आकांक्षा सफल हो। प्राचीन नेपालकी एक संस्कृत स्वयंभू धर्मधातु महाचैत्य विहारकी स्तुति है "शैव सौगत (बौद्ध), शास्त्र वैष्णव शैरि कारक कारणम्।" इस स्तुतिका साक्षात् सर्वधर्म-समन्वय नेपालमें ही पायेंगे। इस भारत-नेपालके सर्वधर्म-समुच्चयको विगत राणा-शासनमें अँग्रेजोंके वहकावेमें आकर ब्राह्मणोंने बिलकुल कट्टर जाति-भेद तथा छुआछूत-प्रधान धर्मको आगे बढ़ाया है। जिसका परिणाम आज नेपालका क्षेत्र है, जिसका फायदा आज योरोप, अमेरिका और मुसलमान भी अन्दर-ही-अन्दर उठा रहे हैं। नेपालका सर्वधर्म-समुच्चय ही साइबेरिया, चीन, मंगोलिया, जापान, कोरियामें लामा सम्प्रदायके रूपमें फैला है, जिसके बलसे थेरवाद बौद्ध-धर्मसे निकलकर हिन्दू धर्मावलम्बी, महायान बौद्ध सम्प्रदायसे मेल खा सकता है। नेपाल ही नहीं, सारा लामा सम्प्रदायवाद ही शिवको वाङ छोङ्ग छेन, बुद्धकी सांगेय-शक्तिको ल्हमो और विष्णुको चैन रे सि, कहकर मानते आये हैं। हिन्दू और महायानी बौद्धोंकी एकताकी खोज आजतक किसीने नहीं की। विश्वमें बौद्धोंकी संख्यामेंसे महायानी बौद्ध ही अधिक पायेंगे। तीन नवम्बरको नयी दिल्ली पहुँचकर आपके मन्दिरको देखनेका मैंने अवसर प्राप्त किया था। उसे देखकर मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हुआ। भारत और नेपालके कट्टर हिन्दू बौद्धको म्लेच्छोंका धर्म मानते हैं। यह बड़े अफसोसकी बात है, जिसको मिटाना हमारा धर्म है। खासकर इस धर्मको भारतमें ईसाई मिशनरी और मुसलमानोंसे बचाना है और खासकर भारतके उत्तरी खण्डोंको तो और बचाना है। समूचे हिमालयमें बसे लद्दाख, हिमाचल प्रदेश, नेपाल, सिक्किम, भूटान और असमके पहाड़ोंमें महायान बौद्धोंकी प्रधानता है, जिसे आज ईसाई मिशनरी खतम करने पर तुली हैं। नेपालमें उनके पैर जमते जा रहे हैं, जिससे बचानेके लिए आप-जैसे दानवीरकी जरूरत है। यहाँ तो धनी-मानी पढ़े-लिखे लोग खुद ईसाइयतको बढ़ावा देना चाहते हैं। बेचारे भोले-भाले निरीह लोगोंको क्या कहें? यही तत्व नेपालमें भारत-विरोधी भावना फैलानेमें सफल हो रहा है। यहाँका अवशेष सामन्त (राणा) सनातन धर्मके बचावके नामपर, विदेशी प्रभावको, जो भारत-विरोधी है, आगे बढ़ाना चाहता है। उसको बन्द करनेके लिए आपसे सहयोगकी अपेक्षा रखता हूँ।

भवदीय,

धर्मरत्न यमि

[श्री यमिका यह पत्र श्री रामचन्द्र शर्माके इस पत्रके साथ आया था]

प्रिय सेठजी,

जयगोपाल। मुझे विश्वास है कि मेरा पिछला पत्र आपको मिला होगा। इस पत्रके साथ एक बौद्ध कार्यकर्ता श्री धर्मरत्न यमिका पत्र भी है।

* * *

आपने करोड़ों रुपया हिन्दू-धर्मके लिए खर्च किया। परन्तु यह मानना ही होगा कि हम लोगोंकी कट्टरताके कारण अधिक सफलता न मिल सकी। जिस तरह एक अछूत मुसलमान होते ही समाजमें प्रतिष्ठित हो जाता है, और स्पृश्य बन जाता है, वैसे ही मुसलमान, ईसाई तथा सनातनी अछूत भी बौद्ध बनते ही प्रतिष्ठित बन जाता है। वह सभी देव-मन्दिरोंमें प्रवेशकर सकता है और उसके हाथका पानी वैसे ही चलता है जैसे एक क्षत्रिय, वैश्य या ब्राह्मणके हाथका।

फिर हम लोग इसी कार्यको क्यों न अपने हाथमें लें? यहाँके बौद्ध कार्यकर्ता तैयार हैं। जिस प्रकारसे एक व्यक्ति मुसलमान होते ही अपनी राष्ट्रीयता खोकर अरब, मक्का और मदीनेका हो जाता है, उसी प्रकार बौद्ध होकर वह भारतीय-संस्कृतिका पुजारी हो जाता है और भारतका भक्त बन जाता है। हमें देशको अराष्ट्रीय भावनासे बचाना है। क्या नेहरूजीकी आँखें असमके नागा आन्दोलन और पाकिस्तान तथा भारतके मुसलमानोंकी कार्यवाहियोंकी ओर नहीं जातीं? आप वास्तविक स्थितिको समझें।

हमारे समाजके अछूत यदि बौद्ध होते हैं तो कोई हर्ज नहीं। वे विशाल हिन्दू-परिवारके अंग बने रहेंगे। यहाँ पर बौद्धों और सनातनियोंमें विवाह सम्बन्ध होता है और कानूनन जायज होता है। इसमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं।

इस पत्रके साथ अंग्रेजी भाषामें टाइप किया गया एक स्मरण-पत्र भेज रहा हूँ, जिसकी एक प्रति श्रीनेहरूजीको भी भेजी है। आप सालमें करोड़ों रुपयोंका टैक्स देते हैं, क्या वे अथवा राजेन्द्र बाबू आपकी राष्ट्रीयतासे ओतप्रोत एक योग्य सुझाव न मान सकेंगे? आप उनसे मिलकर इस योजनाको स्वीकृत कराकर धर्म और देशकी एक बड़ी सेवा करेंगे। आपसे इस सम्बन्धमें मिलकर खुलकर बात करनेकी इच्छा होती है। देखें, ऐसा संयोग कब मिलता है।

चावहिल, काठमाण्डू,
३-१२-५५

आपका अपना ही,
रामचन्द्र शर्मा

[श्री बिरलाजीका उत्तर]

प्रिय महोदय,

आपका ३-१२-१९५५का कृपा-पत्र मिला, धन्यवाद। आपने ठीक लिखा है कि बौद्ध और हिन्दू दोनों एक ही वृक्षकी दो शाखाएँ हैं और सहोदर भाईके समान हैं। नेपालमें बौद्ध और हिन्दू इस तरह घुल-मिल गए हैं कि बहुत कालसे दोनोंमें विवाह-सम्बन्ध होता आया है। अतएव जो लोग स्वार्थवश बौद्धों और हिन्दुओंको अलग करना चाहते हैं, वे दोनोंके ही शत्रु हैं और दोनोंको हानि पहुँचानेवाले हैं। नेपालके हिन्दुओं और बौद्धोंसे मेरा निवेदन है कि वे दोनों भाईचारे और एकताके साथ रहते हुए मुसलमानों और ईसाइयोंकी ओरसे जो भयंकर आक्रमण उनपर हो रहे हैं, उनका सामना करें। अन्यथा दिन प्रतिदिन ईसाइयों और मुसलमानोंकी संख्या बढ़ती जायगी और हिन्दुओं और बौद्धों - दोनोंको हानि उठानी पड़ेगी। आप कृपया हिन्दुओं और बौद्धोंको संगठित करके नेपाल-सरकार पर दबाव डालें, जिससे ईसाइयत और इस्लाम - दोनोंका अनुचित प्रचार वहाँ बन्द हो जाय। आशा है आप इस पर ध्यान देंगे।

भारत-सरकार के धर्मनिरपेक्ष होनेसे कोई प्रभाव उसपर पड़ना सम्भव नहीं है। आप लोग वहींसे नेपालकी परिस्थितिके सम्बन्धमें भारत-सरकारको लिखें, तो उचित होगा। विशेष कृपा-भाव।

बिरला हाउस
९-१२-५५

भवदीय,
जुगलकिशोर बिरला

* * *

बर्मा

बर्माके अराकान प्रान्तमें मेजर जनरल कासिम नामके किसी मुसलमानके नेतृत्वमें मुसलमानोंके एक दलने बर्मा सरकारके विरुद्ध खुला विद्रोह कर दिया था। इस दलके लोग "मुजाहिद" कहे जाते हैं। गैर मुसलमानों पर इतने अत्याचार और हिंसात्मक कार्यवाहियाँ वहाँ दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही थीं, इनका उद्देश्य बर्मामें और पाकिस्तानका निर्माण करना था। बंगाल तथा अन्य प्रान्तोंके मुसलमान वहाँ लाखोंकी संख्यामें बसे हुए थे। वे वहाँ बर्मी महिलाओंसे विवाह कर लेते हैं और अपनी सन्तति बढ़ाते रहते हैं। इस प्रकार मुसलमान पिता और बर्मी मातासे जो सन्तान पैदा होती है, वह बौद्ध न रह कर मुसलमान बन जाती है। ऐसे मुसलमानोंको वहाँ 'जहरबादी' कहते हैं। पहले इन जहरबादियों की संख्या केवल दो लाख थी, परन्तु बादको कुछ वर्षोंके अन्दर ही इनकी संख्या बढ़कर १० लाख हो गयी है।

इस सम्बन्धमें एक पत्र श्री यथानावों यू जगारा, सुप्रीम काउन्सिल ऑफ ऑल बर्मा बुद्धिस्ट महासंघका श्री बिरलाजीको प्राप्त हुआ था। उसके उत्तरमें उन्होंने यह उत्तर भेजा :

नई दिल्ली
१५-२-५२
फाल्गुन कृष्णा ५, सं० २००८

प्रिय महोदय,

नमो बुद्धाय। आपका कृपा-पत्र मिला, इसके लिए अनेक धन्यवाद। बौद्ध-धर्म तथा हिन्दू धर्म एक ही प्राचीन धर्मकी दो शाखाएँ हैं। अतएव बर्माके बौद्ध हमारे भाईके समान हैं। राजनीतिक रूपसे दोनों भिन्न-भिन्न होते हुए भी धार्मिक और साँस्कृतिक रूपसे बर्माके बौद्ध और भारतके हिन्दू एकही परिवारके दो सदस्यके समान हैं। अतएव बर्माके बौद्ध भाई जो तीर्थ यात्राके लिए भारतमें आवें, उनका स्वागत-सत्कार करना हमारा अवश्य कर्तव्य है।

यहाँ पर हम आपका ध्यान बर्मामें उत्तरोत्तर बढ़ती हुई जहरबादियोंकी संख्याकी ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। कुछ वर्ष पहले जहरबादियोंकी संख्या बहुत थोड़ी, अनुमानतः दो-तीन लाखसे अधिक नहीं थी। परन्तु इधर ऐसी सूचना मिली है कि उनकी संख्या बढ़कर अब दस लाख तक पहुँच गई है। यदि ऐसी बात है तो यह बर्माके लिए बहुत ही हानिकारक और अहितकर सिद्ध होगी। भारतका उदाहरण आपके सामने है। मुसलमानोंने अपनी संख्या बढ़ाते-बढ़ाते देशको विभाजित कर, पाकिस्तान बना लिया है। यदि आपके देशके मुसलमानोंकी भी संख्या बढ़ती गयी तो एक दिन बर्मामें भी पाकिस्तान बनने का भय खड़ा हो जायगा। अतएव आप लोगोंको इस सम्बन्धमें विशेष सतर्क और सावधान रहनेकी आवश्यकता है। आप लोगोंकी अपनी सरकार पर जोर डाल कर ऐसे कानून बनवाने चाहिए कि जिससे जहरबादी तथा अन्य मुसलमान बर्मी बौद्ध महिलाओंसे विवाह न कर सकें तथा बौद्ध स्त्रीसे उत्पन्न सन्तान बौद्ध ही मानी जाय। जहरबादी मुसलमानोंको शुद्ध कर पुनः बौद्ध बनानेका आन्दोलन भी वहाँ चलाना चाहिए। आशा है, इन सब बातोंकी ओर आप समुचित ध्यान देकर उचित कार्यवाही करनेकी चेष्टा करेंगे।

भवदीय,
जुगलकिशोर बिरला

* * *

वर्मामें जहरवादी आन्दोलनके सम्बन्धमें वहाँके तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री थाकिन-न्यूके नाम श्री विरलाजी-के आदेशानुसार आर्य (हिन्दू) धर्मसेवासंघ द्वारा प्रेषित पत्र:

दिल्ली
१९-२-१९५२

माननीय महोदय,

हम भारतके हिन्दू और बौद्ध बर्माके लोगोंको अपने परिवारके समान ही मानते हैं। भारत और वर्माके धार्मिक और साँस्कृतिक सम्बन्ध, जो शताब्दियों पुराने हैं, सर्वथा अटूट हैं। साँस्कृतिक दृष्टिसे बर्मा और भारत एक ही राष्ट्र हैं, यद्यपि वे दो विभिन्न शासित क्षेत्रोंमें विद्यमान हैं। अतएव कोई भी ऐसा दुष्प्रयत्न और षड्यन्त्र, जिसका लक्ष्य दोनों देशोंके साँस्कृतिक सम्बन्धोंको विघटित करना है; हम लोगोंके लिए गम्भीर चिन्ताका विषय है। इस विश्वासके साथ मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूँ कि यदि जहरवादियोंकी बढ़ती हुई संख्या को समय रहते रोकनेकी समुचित चेष्टा न की गई, तो बर्मामें भी वही स्थिति आ सकती है, जिससे अभी-अभी भारतको गुजरना पड़ा है। जहरवादी जहाँ तक ज्ञात हुआ है, मुसलमान पिता और वर्मी मातासे पैदा हुए लोग हैं, जो अपनेको मुसलमान कहते हैं। जहरवादी आन्दोलनसे बर्मा दो विभिन्न देशोंमें विभाजित हो जायगा। इनके द्वारा बर्मी लोगों की उदारता, उनकी सहज धार्मिक भावना तथा विश्वबन्धुत्वकी दृष्टि-का अनुचित लाभ उठाया जा रहा है। मुसलमानों द्वारा धर्म-परिवर्तन करानेकी गतिविधियाँ जो अब तक परोक्ष रूपसे चल रही थीं, अब अनेक देशोंमें उग्र रूप धारण कर रही हैं और वहाँके मूल निवासियोंके साँस्कृतिक जीवनको अस्तव्यस्त करने लगी हैं। इसलिए बर्माकी सरकारके लिए यह एक संकटका समय है, जब उसे इस गम्भीर स्थिति पर विचार करना चाहिए और अपने कानून तथा शासनतन्त्रसे इस आन्दोलनको समय रहते रोकनेका यत्न करना चाहिए। इसका एक उदाहरण अभी हालमें मुसलिम संगठनके नेता मेजर जनरल कासिम द्वारा बर्मामें एक अलग मुसलिम राज्यकी माँग है। यह बर्माके लिए चेतावनी है, और यदि इसकी उपेक्षा की गई, तो आपके देशके लिए एक बड़ा खतरा उपस्थित होगा।

मैं आशा करता हूँ कि बर्मी जनताके धर्म और संस्कृतिको संकटमें डालने वाले इस आन्दोलनको आप अपने वर्तमान पद और प्रभावके द्वारा यथाशक्य रोकनेका यत्न करेंगे।

अन्त में, मैं आपको धन्यवाद देता हूँ और धर्मकी सेवामें अपने पूर्ण सहयोगका विश्वास दिलाता हूँ।

संयुक्त मन्त्री
अ० भा० आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघ

तिब्बत

[एक चीनीका पत्र]

ल्हासा, तिब्बत २७–१–१९४६

प्रिय सेठ जुगलकिशोरजी,

सादर प्रणाम।

हम लोग अच्छी तरहसे हैं, आशा करते हैं कि आप भी अच्छी तरहसे होंगे। हम लोग आपसे बहुत दूर

हैं, लेकिन आपने हम लोगोंके लिए बनारस रहते समय जो दया की है, उसको कभी भूलने वाले नहीं हैं।

ल्हासा बौद्धमतका एक बड़ा केन्द्र-स्थान है। यहाँ बड़े-बड़े मठ हैं, जहाँ हजारों लामा (बौद्ध भिक्षु) रहते हैं। इन मठोंमें बहुतसी पुस्तकें भी हैं, जिनको भारतवर्षके विद्वान् पण्डित अपने साथ लाये थे। इन पुस्तकों-को यहाँके निवासी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। ल्हासाके बहुतसे निवासी, जो भारतवर्षमें तीर्थ करने जाते हैं, यहाँ लौट कर आपका शुभ नाम लेते हैं और आपकी प्रशंसा करते हैं। आपकी कृपासे वहाँ तीर्थ करने वालोंको आराम मिलता है।

यहाँ आजकल काफी सर्दी है। बहुतसे लोग भारतवर्षको जा रहे हैं। आशा करते हैं जो लोग तीर्थमें जायेंगे, उन लोगोंको भी आपके द्वारा आराम मिलेगा।

हम लोग जब भारतको लौटेंगे, तब आपका दर्शन करनेकी आशा रखते हैं।

आपका शुभ चाहनेवाला,
यूकिंग तक

चीन

[चीनमें हिन्दी-भाषाके प्रोफेसर श्री कृष्णकिंकरसिंहका पत्र]

मान्यवर श्री बिरलाजी,

प्रणाम।

चुंकिंगका प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही सुन्दर है। यह शहर दो नदियोंके संगम पर ठीक प्रयागराजके समान ही बसा हुआ है। यहाँ गर्मीमें कठिन गर्मी और सर्दीमें भयंकर सर्दी पड़ती है। मैं चुंकिंग तथा चुंकिंगके आस-पास ८० किलोमीटरके भीतर सभी प्रसिद्ध ऐतिहासिक, साँस्कृतिक तथा बौद्ध-स्थानोंका भ्रमण और उन स्थानोंमें रहनेवाले प्रसिद्ध विद्वानोंसे मिल आया हूँ।

खास चुंकिंगमें सबसे प्रसिद्ध स्थान लोहान मन्दिर है। यहाँ एक बड़े हॉलके अन्दर प्राचीन चीनके ६०० प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षुओंकी प्रतिमाएँ हैं। यह प्रतिमाएँ मिट्टीकी बनी हुई हैं और आकारमें हर प्रतिमा लगभग ६ फुट ऊँची तथा जमीनकी सतहसे ४ फुट ऊँची वेदीपर स्थापित है। युद्धके कारण इस बड़े मकानको काफी क्षति पहुँची है तथा बहुत-सी प्रतिमाएँ टूट-फूट भी गई हैं। जो कुछ भी बचा हुआ है, उसकी इस मन्दिरके अध्यक्ष ध्यानपूर्वक रक्षा करनेमें संलग्न हैं। इस हॉलसे सटे पत्थरोंमें खोदी हुई छोटी-छोटी गुफाएँ हैं, जिनमें भगवान् बुद्धके महायान सम्प्रदायके कुछ देवी-देवताओंकी प्रतिमाएँ अंकित हैं। पूजा-पाठ नियमित रूपसे होता है। इस मन्दिरके अध्यक्ष चुंकिंग म्युनिसिपल तथा बौद्ध-संघके सभापति हैं। यह भिक्षु बड़े ही योग्य तथा मिलनसार हैं। इन्होंने मेरी बड़ी आवभगत की। भारतकी बौद्ध-धर्म-सम्बन्धी बातोंको पूछा। मैंने यथाशक्ति उन्हें बताया कि हिन्दू-धर्म और बौद्ध-धर्म मूलतः एक ही धर्म हैं। भारतीय आर्य-धर्म सेवासंघके उद्देश्य तथा कार्योंकी भी जानकारी उन्हें कराई। सभी बातें सुनकर उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और धन्यवाद दिया। हिन्दू-धर्म सम्बन्धी सूक्तियोंके चीनी अनुवादको मन्दिरोंमें टँकवानेकी बात उन्हें पसन्द आई।

चुंकिंगसे लगभग ८० किलोमीटरकी दूरीपर पेपे नामक एक बड़ा ही रमणीक स्थान है। इस स्थानके

* * *

पासके एक पहाड़ पर बहुत प्राचीन कालका बना एक बौद्ध मन्दिर और विहार हैं। चीन बौद्ध-संघके अध्यक्ष तथा चीनके सबसे बड़े भिक्षु महास्थविर भदन्त थाई सु गर्मीके दिनोंमें इसी मन्दिरमें रहते हैं। उनसे मिलनेके लिए मैं इस पर्वत पर गया। भदन्त थाई सु चीन सरकार द्वारा प्रेषित बौद्ध-धर्म मिशनके अध्यक्ष होकर भारत, श्रीलंका, बर्मा आदिका भ्रमण कर आये हैं। इन देशोंमें उन्हें जो चीजें भेंटमें मिली थीं, वे सभी इस मन्दिरसे संलग्न एक संग्रहालयमें रक्खी हुई हैं। यह स्थान बड़ा ही रमणीक और सचमुच तपोवन-सा लगता है।

भदन्त थाई सु बड़े ही विद्वान् हैं और बरावर इस प्रयत्नमें लगे हुए हैं कि किस प्रकार चीनमें बौद्ध-धर्मकी उन्नति हो और भगवान् बुद्धके वास्तविक उपदेशोंसे लोग लाभ उठा सकें। यह इस बातके लिए भी प्रयत्नशील हैं कि चीनमें बौद्ध-धर्ममें जो बुराइयाँ घुस गई हैं, उन्हें किस प्रकार समूल मिटाया जाय। इस मन्दिरसे संलग्न जो तिव्वती, चीनी कॉलेज हैं, वहाँ पर विद्यार्थियोंको चीनी और तिव्वती भाषा तथा दोनों देशोंमें प्रचलित बौद्ध-धर्मकी शिक्षाएँ और बौद्ध-दर्शन की बातों के अलावा धर्ममें घुसी हुई बुराइयोंको किस प्रकार हटाया जाय, इस बातकी भी शिक्षा दी जाती है। मुझे इस कॉलेजके अध्यक्षके दर्शन करनेका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह भिक्षु भी बड़े भद्र और मिलनसार हैं। मैंने अध्यक्ष महोदयसे विनम्र निवेदन किया कि हीनयान सम्प्रदायकी बौद्ध-धर्म सम्बन्धी बातोंको जाननेके लिए पालि भाषा और महायानके लिए संस्कृत भाषाकी पढ़ाईका भी प्रबन्ध अगर इस कॉलेजमें हो, तो बड़ा अच्छा रहेगा। अध्यक्षने बताया कि वे लोग इस सम्बन्धमें विचार कर रहे हैं।

भदन्त थाई सुने जैसे ही सुना कि एक भारतीय उनसे मिलने आया है, तुरन्त मुझे अपने कमरेमें बुला भेजा। मैंने उन्हें भारतकी जनता और खासकर आर्य-धर्म अनुयायियोंकी ओरसे प्रणाम निवेदन किया और उन्होंने शुभकामना प्रकट की। उनसे लगभग दो घण्टे तक बौद्ध-धर्म तथा हिन्दू-धर्म सम्बन्धी बातें हुईं। उन्होंने भारतके कितने ही साँस्कृतिक और धार्मिक स्थानोंके बारेमें पूछा। उनसे भी मैंने आर्य-धर्म सेवा-संघके उद्देश्यों और कार्योंको बताया। बिरलाजीका नाम सुनते ही उन्होंने अपनी कोठरीसे एक लॉकेट लाकर मुझे दिखाया, जिसपर भगवान् बुद्धकी छवि अंकित है। उन्होंने बताया कि यह लॉकेट बिरलाजीने उन्हें कलकत्तेमें भेंट किया था, जब वे चीन सरकारके मिशनके अध्यक्ष होकर भारत आये थे। भदन्त थाई सुके तत्वावधानमें एक मासिक पत्रिका चीनी भाषामें निकलती है, जिसमें धार्मिक, साँस्कृतिक और दर्शन सम्बन्धी बातें रहती हैं। यह पत्रिका बहुत अच्छी और प्रसिद्ध है। संघकी बातोंको सुनकर उन्होंने मुझे आज्ञा दी कि आर्य-धर्म सेवासंघकी उत्पत्ति, संगठन, उद्देश्य, कार्य आदि पर मैं एक लेख अंग्रेजीमें लिखकर उन्हें दूँ। वे उसका अनुवाद चीनी भाषामें कराकर अपनी पत्रिकामें प्रकाशित करेंगे। मैंने उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली है।

सभी काम समाप्त कर अन्तमें मैं डॉ० ताई ची ताव से मिला। डॉ० ताई ची ताव चीन सरकारके सबसे बड़े पाँच अधिकारियोंमें से एक हैं। ये बौद्ध धर्मावलम्बी और निरामिषहारी है। इनके नैतिक चरित्र तथा विद्वत्ताकी धाक चीनमें सभी प्रकारके लोगों पर समान रूपसे है। यह बड़े धार्मिक रूपसे तथा सादगीमें रहते हैं। चीन और भारतके बीच साँस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए ये बराबर प्रयत्नशील रहते हैं। उनसे मिलकर कोई भी आदमी बिना मुग्ध हुए नहीं रह सकता। इतने बड़े सरकारी अधिकारी होकर भी इनमें घमण्ड छू तक नहीं गया है। मैंने उनके पुत्रके साथ जैसे ही उनके कमरेमें प्रवेश किया, वे पहिलेसे ही चीनी पोशाकमें, हाथमें माला लिए हुए खड़े थे। मुझे देखते ही उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़ लिए और मैंने भी हाथ जोड़कर तथा सिर नवा कर भारतीय ढंगसे नमस्कार किया। उनका सारा कमरा सादगी का नमूना था और कोई भी आदमी बिना यह अनुभव किये नहीं रह सकता कि वह किसी धार्मिक वातावरणमें आ गया है। कमरे में एक तरफ भगवान्

* * *

बुद्धकी प्रतिमा स्थापित है। इनसे तीन घण्टेसे भी अधिक समय तक बातें हुईं। इन्होंने शान्ति-निकेतन, सारनाथ तथा और भी कितने ही बौद्ध तथा हिन्दू तीर्थस्थानों और साँस्कृतिक स्थानोंके बारमें पूछताछ की। कितने ही धार्मिक तथा साँस्कृतिक विद्वानोंके बारेमें पूछा। मैंने उन्हें बताया कि किस प्रकार भारतके लोग चीनके साथ साँस्कृतिक सम्बन्ध स्थापति करनेके लिए उत्सुक हैं। इनसे भी मैंने संघके उद्देश्य और कार्यका उल्लेख किया। उन्हें यह जानकर कितनी प्रसन्नता हुई कि संघ बौद्ध-धर्मको हिन्दू-धर्मसे अलग नहीं मानता है। इन्होंने भारतकी जनता तथा विद्वानोंके नाम एक लम्बी चिट्ठी मुझे दी है। यह पत्र चीनी भाषामें है।

सन् १९४०-४१में वे चीन सरकारके सद्भाव मिशनके अध्यक्ष होकर भारत गए थे और उस अवसर पर उन्होंने बहुतसे तीर्थस्थानोंका भी भ्रमण किया था। उन्होंने दुख भरे शब्दोंमें कहा था कि उनकी पत्नीकी भारत जाकर तीर्थ स्थानोंके भ्रमण करनेकी बड़ी इच्छा थी। परन्तु दो वर्ष पहले वे अपनी इच्छाको लिए हुए ही चल बसीं। डॉ० ताइ ची तावने मुझे यह बताया कि वे युद्धके बाद पुनः भारत जाना चाहते हैं, क्योंकि बहुतसे स्थानोंकी उन्होंने पहली बार यात्रा नहीं की थी। मैंने नम्र स्वरमें निवेदन किया कि यह तो हम भारतवासियोंके लिए सौभाग्यकी बात होगी कि आपके सत्संगका पुनः अवसर हम लोगोंको मिल सकेगा।

१० सितम्बर, १९४५

आपका,
कृष्णकिंकर सिंह

[चीनकी भूतपूर्व राष्ट्रीय सरकारके प्रमुख मन्त्री माननीय डॉ० ताई ची तावका पत्र]

"मैं भारत तथा चीनके अधिकाधिक साँस्कृतिक विकासके हेतु हार्दिक प्रार्थना करता हूँ। मैं यह भी प्रार्थना करता हूँ कि दोनों देशोंके लोग अपनी-अपनी संस्कृतिके प्रति गहरा विश्वास रखें, संसार तथा मनुष्य जातिकी मुक्तिके लिए चेष्टा करें तथा पारस्परिक सहयोग, पारस्परिक आदर और पारस्परिक प्रेमकी वृद्धिके लिए मनुष्यमात्रकी अन्तरात्माको जाग्रत करें। इस प्रकार संसारके समस्त प्राणी सदाके लिए दुख, कष्ट, पीड़ा, अत्याचार तथा ईर्ष्या-द्वेषके पाप कर्मोंसे मुक्त होकर सदाके लिए सुख और शान्तिमय जीवन व्यतीत करनेमें समर्थ होंगे और अपने हृदयोंमें एक ऐसे आत्मज्ञानकी ज्योतिका अनुभव करेंगे, जो दूसरोंके हृदयोंमें भी सच्चे आत्मबोधकी ज्योतिको प्रकाशित कर सकेगी।"

"मैं यह सन्देश प्रोफेसर कृष्णकिंकर सिंह द्वारा भेज कर भारत के लोगोंके सुख, स्वास्थ्य और सफलताकी कामना करता हूँ। इसके अतिरिक्त मैं सच्चे हृदयसे युद्धकी समाप्तिके पश्चात् जब संसारके लोग उत्सुकताके साथ अपने मध्यमें शान्तिके सुख और आनन्दका स्वागत करेंगे, उस समय पवित्र गंगा और सिन्धु नदियोंके तट पर पुनः अपने प्रिय और आदरणीय भारतीय मित्रोंसे मिलनेकी इच्छा और आशा प्रकट करता हूँ।"

"मैं पुनः शान्तिनिकेतन विश्वभारती विश्वविद्यालयके अत्यन्त प्रिय तथा आदरणीय अध्यापकों तथा छात्रोंके प्रति अपनी उत्तम शुभ कामनाएँ प्रेषित करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि विश्वभारती सम्पूर्ण सफलता और सर्वोच्च उन्नतिको प्राप्त करे, जिससे कि मनुष्यमात्र तथा प्राणिमात्रके प्रति प्रगाढ़ प्रेमका जो उच्च आदर्श स्वर्गीय गुरुदेव टैगोर महोदयने संसारके सामने रखा था, उसे सफल बनानेमें तथा उसको अधिक बढ़ानेमें यह विश्वविद्यालय सफल-मनोरथ हो सके।"

१२ अगस्त, १९४४

(मूलपत्र चीनी भाषामें है)

* * *

[प्रो० तान युन-शानका चीनी छात्रोंकी छात्रवृत्तियोंके निमित्त पत्र]

शान्तिनिकेतन, (बंगाल)
सितम्बर १०, १९४४

प्रिय श्री सेठ बिरलाजी,

मुझे यह जानकर परम प्रसन्नता हुई है कि आपकी कृपासे अ० भा० आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघने मेरी प्रार्थना पर विश्वभारती चीना भवनके लिए पं० विधुशेखर शास्त्रीकी दक्षिणाके निमित दो सौ रुपया मासिक प्रदान करनेका निश्चय किया है। इसके अतिरिक्त आपको ज्ञात ही होगा कि संघने चीना भवनमें अध्ययन करने वाले दो छात्रोंके लिए भी १००) रु० मासिक भेजनेकी व्यवस्था की है।

इसके लिए कृपया मेरी कृतज्ञता और धन्यवाद स्वीकार करें।

भवदीय,
तान युन-शान

[चीनके नेशनल कॉलेज ऑफ ओरियण्टल स्टडीज़, कुनमिंगके प्रेसिडेण्टका पत्र]

प्रिय महोदय,

आपके १८ दिसम्बर '४४के पत्रके लिए धन्यवाद। मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि श्री सेठ जुगलकिशोर बिरलाकी कृपासे अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघने इस कॉलेजके दो चीनी छात्रोंको भारतवर्षमें विशेष अध्ययनके लिए दो छात्रवृत्तियाँ प्रदान करनेकी कृपा की है।

जैसा कि आपको विदित है, भारत और चीनके बीच साँस्कृतिक सम्वन्ध हमारे प्राचीन पूर्व पुरुषोंने लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व ही स्थापति किया था, परन्तु कई कारणोंसे वह सम्वन्ध कुछ पिछली शताब्दियोंसे विच्छिन्न हो गया था। परन्तु इस विच्छिन्नता और विभिन्नताके बीच भी हमारे पारस्परिक सम्वन्धके चिह्न पाये जा सकते हैं और अव समय आ गया है कि न केवल हमारे निजके लाभके लिए अपितु शान्ति तथा अन्तर्राष्ट्रीय हितके लिए भी हमारे अपने प्राचीन सम्बन्धको पुनर्जीवित करनेके लिए भरपूर चेष्टा करनी चाहिए। यह तभी हो सकता है जव दोनों देशोंकी संस्कृतियाँ एक दूसरेके साथ सम्मिश्रित हों। इस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए यह आवश्यक है कि हम एक दूसरे की संस्कृतिका अध्ययन और अन्वेषण सहानुभूतिके साथ करें।

जहाँ तक मुझे ज्ञात है वर्तमान युगके इतिहासमें यह पहला उदाहरण है, जब कि आपके संघ जैसी भारतकी एक गैर-सरकारी सार्वजनिक संस्थाने चीनी छात्रोंको भारतमें जा कर हिन्दी-भाषा और हिन्दू-संस्कृतिका अध्ययन करनेका अवसर प्रदान किया है। मैं सच्चे हृदयसे विश्वास करता हूँ कि आपका यह कार्य भारत और चीनके बीच साँस्कृतिक सम्वन्धको दृढ़ करनेमें सहायक होगा। मैं आपकी सफलता सच्चे हृदयसे चाहता हूँ।

आपका दूसरा पत्र चीनी सरकारके शिक्षा मन्त्रीको प्रेषित कर दिया गया है। दोनों चीनी छात्रोंको ज्योंही पासपोर्ट प्राप्त हो जायगा, त्योंही वे भारतवर्षके लिए प्रस्थान कर देंगे।

भवदीय,
प्रेसीडेण्ट
नेशनल कॉलेज ऑफ ओरियण्टल स्टडीज़ चेंगकांग,
कुनमिंग, युन्नान (चीन)

* * *

[चीनी विद्वान् श्री चाऊ सियाँग-क्वाँगका पत्र]

प्रिय श्री बिरलाजी,

मैंने नयी दिल्लीमें आपके दर्शन कर जैसे सच्चे भारतके दर्शन कर लिए। आपका अतिथि-सत्कार, सज्जनता और उदारता विख्यात है। आतिथ्य-परायण भारत आपमें प्रतिबिम्बित मिलता है। आप जैसे व्यक्तिने अपने धार्मिक संस्कार, उत्साह और अपनी असीम दानवृत्तिसे मानवजातिके कल्याण कार्यको आगे बढ़ाया है। यह बहुत ही स्फूर्तिदायक है।

अनेक संस्थाएँ, संगठन और विभिन्न स्थानोंके लोग आपके उदार दानका लाभ प्राप्त कर रहे हैं। ऐसे व्यक्तिको मेरा शतशः नमस्कार है। जब मैं भारतसे विदा होऊँगा, तो अपने साथ आपके सान्निध्यमें व्यतीत किये कुछ आनन्दप्रद दिनोंकी स्मृति लेता जाऊँगा।

भवदीय,

चाऊ सियाँग-क्वाँग

[श्री बिरलाजीका उत्तर]

प्रिय श्री चाऊ सियाँग-क्वाँग,

कलकत्तासे भेजे गए आपके पत्रके लिए अनेक धन्यवाद। मुझे ज्ञात नहीं कि भारतमें आपके प्रवासकालमें मेरे द्वारा कौन-सी सेवा हो सकी है। फिर भी आपने अपने पत्रमें जो प्रेम और सौहार्दकी भावना प्रकट की है, उससे मैं बहुत अभिभूत हुआ हूँ। भारतके हिन्दू और चीनके बौद्ध दोनों एक ही प्राचीन आर्य-धर्मकी दो शाखाओंके अनुयायी हैं। विदेशसे एक ऐसे बौद्ध धर्मावलम्वी भाईके भारत आनेपर मेरी ओरसे जो स्वागत-सत्कार किया गया है, वह तो केवल साधारण कर्तव्यकी पूर्ति है।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि भारतके हिन्दू और चीनके बौद्ध अपने आध्यात्मिक दृष्टिकोण और सबल धार्मिक निष्ठाके आधार पर एक हो सकते हैं और निखिल मानव-जातिके लिए शान्तिका पथ प्रशस्त कर सकते हैं। चीन और भारतके सम्मिलित प्रयत्नोंसे विश्वमें शान्ति और सुखका साम्राज्य सम्भव है।

दोनों देशोंके बीच मैत्री-भावना दृढ़ करनेके आपके प्रयत्न सफल हों, इस भावना और आदरके साथ।

भवदीय,

जुगलकिशोर बिरला

* * *

[प्रधानमन्त्री चाऊ एन लाईके नाम पत्र]

निम्नलिखित पत्र श्रीमान् बिरलाजीके आदेशानुसार या उन्हींके विचारोंको लेकर आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघकी ओरसे भेजा गया था :

"आपका और हमारे देशका बहुत प्राचीन कालसे मित्रताका सम्बन्ध रहा है, परन्तु महात्मा बुद्धके पश्चात् तो यह सम्बन्ध और भी घनिष्ठ हो गया है। भगवान् बुद्धका उपदेश मैत्री और करुणाको लेते हुए सबके लिए सेवा करनेका था और भिक्षुओंको आदेश था कि वे 'बहुजनहिताय बहुजन सुखाय' भ्रमण करें। बुद्ध एक बड़े महात्मा थे और विश्वके बड़ेसे बड़े सेवक थे। करुणा और मैत्रीका उनका सन्देश समस्त प्राणिमात्रके लिए था। यद्यपि आज भारतमें बौद्धधर्मका ऊपरी चिह्न उतना दिखायी न पड़ेगा, किन्तु भगवान् बुद्धके उपदेशको यहाँके हिन्दू इतना आत्मसात् कर चुके हैं कि प्रत्येक विचारशील हिन्दू बौद्ध ही है। उसके अन्तःकरणमें भगवान् बुद्धका स्थान पूर्ण बना हुआ है। यहाँके राष्ट्र-ध्वजमें बौद्ध-सम्राट् अशोकका धर्म-चिह्न अंकित है तथा यहाँका प्रत्येक हिन्दू अपने शुभ और मंगल कार्योंमें भगवान् बुद्धका स्मरण करके ही कार्यका आरम्भ करता है।

"हालमें कुछ वर्षोंसे लोगोंको चीनमें बौद्ध मन्दिरोंकी तथा बौद्ध साधुओंकी स्थिति क्या है, इसकी जानकारी नहीं रही थी और तरह-तरहकी अफवाहें फैल गयी हैं। किन्तु पिछले कुछ दिनोंसे यह जानकर हिन्दुओंको बहुत प्रसन्नता हुई है कि चीन में बौद्ध मन्दिरोंकी तथा प्राचीन साहित्यकी रक्षाके लिए आपकी गवर्नमेण्टकी उतनी ही सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि है, जितनी कि वह देशकी प्राचीन संस्कृतिकी रक्षाके लिए है। इससे अब यह धारणा होती है कि चीनमें भविष्यमें ईसाई चर्चों और मुसलमानी मस्जिदोंकी तुलनामें वहाँके बौद्ध मन्दिरों और बौद्ध मठोंकी स्थिति उपेक्षित न रहेगी, प्रत्युत उनकी अवस्था अच्छी रहेगी। चीनके अभ्युदयसे भारतके हिन्दुओंको अतीव प्रसन्नता है, यह सर्वथा स्वाभाविक है। आज भारतके हिन्दू चीनके साथ अपने साँस्कृतिक सम्बन्ध तथा मैत्री-भावनाको सर्वाधिक रूपसे सुदृढ़ बनानेकी कामना रखते हैं। आशा है, आपका देश तथा आपकी सरकार हिन्दुओंकी इस सद्भावनाको उसी प्रकार ग्रहण करेगी, जिस प्रकार पुरातन कालमें हमारे यहाँकी सद्भावना और मैत्री-सन्देशको आपके देशने अपने उदार और प्रेमपूर्ण हृदयमें स्थान दिया था।

"अभी हालमें डॉ० रघुवीर चीन गए थे। आपकी कृपासे उन्होंने वहाँ कई मन्दिरोंके दर्शन किये; वे वहाँसे अनेक हस्तलिखित पुस्तकें और वस्तुएँ साथ लाये। यहाँ उन पुस्तकोंकी प्रदर्शिनी की गई; उसे देखकर हिन्दू भाइयोंको बड़ी प्रसन्नता हुई तथा इससे चीनके प्रति हिन्दू भाइयोंकी सद्भावना तथा भ्रातृ-भावमें वृद्धि हुई। इसके लिए हम लोग आपके अतीव कृतज्ञ हैं।"

[चीनी दूतावास, नयी दिल्लीसे पत्रकी पहुँच इन शब्दोंमें मिली]

१७ नवम्बर, १९५५

प्रिय महोदय,

आपने प्रधानमन्त्री श्री चाऊ एन लाईके नाम लिखा हुआ जो पत्र भेजा सो मिल गया है। इसके लिए धन्यवाद। सूचनार्थ निवेदन है कि आपकी इच्छानुसार आपका पत्र श्री प्रधानमन्त्रीके पास यथाविधि भेज दिया गया है।

भवदीय,
चेन लू-चिह्न
थर्ड सेक्रेटरी

* * *

[चीनी राजदूतको श्री बिरलाजीका पत्र]

माननीय महोदय,

सविनय निवेदन है कि भारत तथा चीनका मैत्री-सम्बन्ध बहुत ही पुरातन है। यह सम्बन्ध विशुद्ध धार्मिक और साँस्कृतिक है, इसमें किसी भौतिक या राजनैतिक स्वार्थका स्थान नहीं रहा है। हिन्दू-धर्म और बौद्ध-धर्म एक ही आर्य-धर्मकी दो शाखाओंके समान हैं। इसकी छत्र-छायामें दोनों देशोंकी युग-पुरातन संस्कृतियाँ फूली और फली हैं। सहस्रों वर्षोंका इतिहास हमारे पारस्परिक बन्धुत्वका साक्षी है। हम सदा सहोदर भाईके समान रहे हैं। आज इसी नाते हम तिब्बतके सम्बन्धमें आपसे कुछ निवेदन करते हुए क्षमा चाहते हैं।

जिस प्रकार चीनी हमारे धर्म-भाई हैं, उसी प्रकार तिब्बती भी हमारे धर्म-भाई हैं - भारत चीन और तिब्बतको एक ही परिवारके रूपमें देखता रहा है। किन्तु अभी तिब्बतमें जो घटनाएँ घटी हैं और उनसे चीनी तथा तिब्बती भाइयोंमें जो कटुता और द्वेषका वातावरण उत्पन्न हुआ है, इससे भारतके हिन्दुओं और बौद्धोंमें बहुत चिन्ता और क्षोभका उदय हुआ है।

चीनी तथा तिब्बती एक ही संस्कृतिके नाते परस्पर भाई-भाईके समान हैं। उनके बीच इस प्रकारकी कटुता और संघर्ष सर्वथा अवांछनीय है। इससे चीन और तिब्बतके सम्बन्ध पर स्थायी प्रभाव पड़े बिना न रहेगा। अतः हम भारतके हिन्दुओं और बौद्धोंकी ओरसे सविनय निवेदन करते हैं कि चीनी सरकार अपने तिब्बती भाइयोंकी भावनाका समादर करती हुई उनके साथ पूर्ण उदारता, स्नेह और सहानुभूतिका बर्ताव करेगी तथा जो कटुता और द्वेषकी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी है, उसे शीघ्रसे शीघ्र दूर करनेकी चेष्टा करेगी।

यह सुनकर और भी खेद है कि इस अशान्तिके वातावरणमें तिब्बतके कई मठ और मन्दिर आगकी भेंट हो गए हैं और उनमें संचित दुर्लभ वस्तुएँ भस्मसात् हो गयीं। तिब्बतके मठ और मन्दिर साहित्य, कला और संस्कृतिके रत्न-भाण्डार हैं। उनमें हस्तलिखित ग्रन्थों, चित्रों तथा अन्य कलावस्तुओंका अलभ्य संग्रह है। चीनी सरकारसे हमारी प्रार्थना है कि वह इन रत्न-कोषोंकी किसी भी प्रकारकी क्षतिको रोकेगी और उनकी रक्षाका समुचित उपाय करेगी।

विनीत,
जुगलकिशोर बिरला

जापान

जापानको श्री बिरलाजीका साँस्कृतिक उपहार

जापानके बौद्ध भाइयोंकी प्रेरणा पर श्री जुगलकिशोरजी बिरलाकी उदार कृपासे अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवा-संघकी ओरसे दो गाय, एक साँड़ और एक हाथी भेंट और प्रेमोपहारके रूपमें जापान भेजे गए थे। दोनों गाय जिनका नाम 'नन्दिनी' और 'कल्याणी' तथा साँड़ जिसका नाम 'धर्म' रखा गया था, सुरक्षित जापान पहुँचे। जापानके तट पर जहाजके पहुँचते ही गायोंका बड़े आदरके साथ जापानियों द्वारा भव्य स्वागत किया गया। उपरान्त जापानकी राजधानी तोक्योमें गायोंके सम्मानमें एक बड़ा जुलूस निकाला गया और उनके स्वागतार्थ एक बड़ी सार्वजनिक सभा की गयी, जिसमें कमसे कम ५० सहस्र जापानी इकट्ठा हुए थे।

* * *

तोक्योमें गायोंको एक बौद्ध मन्दिरमें रखा गया, जहाँ उनके दर्शनके लिए प्रतिदिन दर्शकोंका मेला-सा लगा रहता था। सब आते थे और गायोंको बड़ी भक्तिके साथ प्रणाम करते थे। तोक्योमें चार दिन वितानेके बाद दोनों गाय और साँड़ जापानके सबसे प्राचीन, सबसे बड़े और प्रसिद्ध मन्दिरमें भेज दिए गए; जो जापानके जैंकोजी नगरमें स्थित है।

हाथी जिसका नाम 'सुखमंगल' रखा गया, एक दूसरे जहाजके द्वारा जापान पहुँचा। हाथीका स्वागत भी असाधारण धूमधाम और उत्साहके साथ किया गया और उसका जुलूस भी विशेष समारोहके साथ निकाला गया। उस समारोहमें जापानके राजघरानेके प्रिंस ताकामात्सू, नगरके मेयर तथा अन्य बड़े-बड़े लोग भी सम्मि-लित हुए। हाथीको कुमामोटो नामक स्थान पर समारोहके साथ रखा गया।

इन पशुओंके रूपमें जो सजीव प्रेमोपहार जापानको भेंट किया गया है, उसका जापानी भाइयोंपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा है। यह एक आकस्मिक घटना है कि आज जब कि भारतसे जापानको यह प्रेमोपहार भेंट किया गया है, उसके ठीक १४०० चौदह सौ वर्ष पूर्व जापानमें बौद्ध-धर्मका प्रवेश प्रथम बार हुआ था और तब इसी प्रकार बुद्ध भगवान्‌की एक मूर्ति भारतसे जापानको समर्पित की गयी थी।

—सम्पादक

[उपहार ले जानेवाले श्री भरतराजसिंह द्वारा प्रेषित पत्र की प्रतिलिपि]

पूज्य बाबू जुगलकिशोरजी बिरला,

आपके तावेदार भरतराजसिंहका राम-राम। आगे समाचार विदित हो कि गाय जैंकोजी पहुँच गयी है। गायके साथ बड़ी धूमधाम से जुलूस निकाला गया है। अच्छी तरहसे स्वागत किये हैं। आपके नामको गुरुजी मरियामा साधुजी जापानमें कोने-कोने तक फैला दिये हैं। जापानी लोग बहुत ही खुश हैं। हिन्दुस्तानके साथ अच्छी तरहसे प्रेम रखना चाहते हैं। हम लोगोंकी खातिर जिस तरहसे कर रहे हैं कि उसका वर्णन नहीं कर सकते हैं, सो आपको प्रोफेसर साहबसे विदित हो जायगा। जापान बहुत ही सच्चा देश है, बहुत ही सुन्दर बना हुआ है, बहुत जगह गया, लेकिन सब जगहमें एक समान आदमियोंमें प्रेम देखा है। हाथीके साथ भी बहुत बड़ा जुलूस निकला था ता० २४को और २५को। टोकियोसे राजा साहेबके भाई जुलूसमें गए थे, भाषण भी दिए हैं। आपका दर्शन मिले तो हमारा जीवन सुफल हो जायगा और अपनेको बहुत बड़ा भाग्यवान् समझेंगे। आपको सब जापानी नमस्कार करते हैं। इसीवाशी साहेब, नीस साहेब, गुरुजी मरियामा ये सब अच्छी तरहसे स्वागत किये हैं। आपका नाम सारे जापानमें प्रसिद्ध है। इति शुभ।

आपका तावेदार,

ह० भरतराज सिंह

* * *

[एक जापानी महिलाका पत्र]

श्रद्धेय विरलाजी,

नूतन वर्षका अभिवादन सादर ग्रहण करें। मैं आशा करती हूँ कि आपका स्वास्थ्य अभी अच्छा होगा, क्योंकि मैंने डॉ० आत्रेयजीसे सुना है कि आपको गिरनेसे चोट आ गई है। पर आशा करती हूँ कि आप अभी पूरी तौरसे अच्छे होंगे। मैं इतनी प्रसन्न हूँ कि आपने डॉ० आत्रेयजीको जापान भेजा। इससे जापान और भारतवर्षकी मित्रता बढ़ेगी और दोनों देश एक-दूसरेको समझेंगे।

हम जापानी इतने भाग्यवान् हैं कि आपने पिछले वर्ष तीन चीजें हमें भेजीं - १. बड़ा हाथी और असली, २. तीन श्वेत गायें और बैल, ३. डॉ० आत्रेयजी जैसेदार्शनिक, समालोचक तथा ज्ञानी। जापानी संस्कृतिके वारेमें उनके विचार लोगोंको बहुत ही पसन्द आये। अभी हमें इतना आनन्द आ रहा है कि आपकी जान-पहचान वाला भारतीय चित्रकार कृपालसिंह मेरे लिए आपको पत्र लिख रहा है। मेरे लिए अभी पूरा आराम हो गया है कि आपको हमेशा सीधी हिन्दीमें पत्र भेज सकूँगी। पिछले साल हमने दो जापानी जवानोंको भारत भेजा था, जो कि भारतके नवनिर्माणका कार्य कर रहे हैं - एक हैं **श्री माइये सेइजी,** ये असममें स्कूल बना रहे हैं जो कि भूकम्पसे गिर गया था। अभी उत्तरी असम स्थित लखीमपुरमें ठहरे हैं और वहाँ दो साल तक रहेंगे। दूसरे हैं **श्री चूमरा थाकूरो** जो कि कराँची में हैं, पर अगले महीने गान्धीजीके आश्रम अहमदावादमें जा रहे हैं। हम लोग भारतको जापानी नवयुवक, हमारी संस्था **'ग्रीन क्रॉस सोसाइटी'**की मारफत भेज रहे हैं और यह संस्था भी **'जापानी-भारतीय-संस्कृति संस्था'**की ही अंग है। हम लोग और भी कई युवक और युवतियों को इसके मारफत भेजना चाहते हैं। जहाँ भी मुझे बोलनेका मौका मिला है, मैं आपका नाम नहीं भूल सकी हूँ और अपने देशवासियोंको बताया है कि आप इस देशको कितने आदरसे देखते हैं तथा हमारे दुःखको अपना दुःख समझते हैं। यद्यपि जापानके लिए अब समय आ गया है कि वह शीघ्र ही शान्ति सन्धि करेगा, पर आपको इतने दुःखसे लिख रही हूँ कि अमेरिकाका अधिकार तो अभी तक बना ही रहेगा, न जाने कब पिण्ड छूटेगा। अब इस देशमें बड़े ही जोरकी क्रान्ति फैल रही है, और भी जोर होगा। यह क्रान्ति पूर्वी ढंगकी होगी और पूर्वी संस्कृतिको आगे लेकर चलेगी। इस समय देशके बड़े-बड़े राजनीतिक नेतागण और व्यापारी समुदाय एशियाके लोगोंसे सहारा चाहते हैं, बढ़ावा चाहते हैं कि किस तरहसे देश, धर्म और संस्कृतिकी रक्षा हो सके। यद्यपि हमारी यह संस्था अभी तक बहुत बड़ी और ताकतवर नहीं हो सकी है; पर मैं आशा करती हूँ कि आगामी चुनावमें हम सफल रहेंगे। उसके लिए हम लोग तैयारी कर रहे हैं। हम सभी विश्वास करते हैं कि एशिया (जम्बूद्वीप) एक है।

मैं **श्री रीरी नाकायामा**को साहस दिला रही हूँ कि जापानमें पूरे संसार भरके बौद्ध धर्मावलम्बियोंकी सभा की जाय। यह शीघ्र ही होगा, शायद गर्मियोंमें हो। मैं आपको पूरी भक्तिके साथ लिख रही हूँ कि आप आयें, तो बहुत ही अच्छा रहे। डॉ० आत्रेयजी भी साथ रहें और आप अपनी आँखोंसे यहाँकी हालत देख सकें। **भिक्षु श्री फूजी और भिक्षु श्री मारूयामा** हम लोगोंके साथ ही काम कर रहे हैं। हम लोग चीनकी पुरानी मित्रताको भी फिरसे प्रचारित कर रहे हैं। सिर्फ धर्मकी सहायतासे ही हम चीन तक पहुँच सकते हैं। यदि आप जापान आयें, तो यह एशियामें एक ऐतिहासिक घटना होगी। हमारा ही नहीं पूरे एशियाका भला होगा। धर्म और संस्कृतिकी रक्षाका उपाय बता सकेंगे। तरह-तरहके लड़ाई-झगड़ोंका अन्त होगा और शान्ति फैलेगी।

शायद आप जानते होंगे कि मैंने गुरुदेवको चीनसे जापान बुलाया और पाँच बार उनकी दुभाषिया रही।

* * *

गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथका विचार चीन, भारत और जापानको एक दूसरेके नजदीक ही लानेका नहीं था, बल्कि एक ही बना डालनेका था। प्रत्येक बार ही उन्होंने इन पूर्व-वासियोंको नई प्रेरणा दी है और पथ दिखलाया है। गान्धीजी हम पूर्ववासियोंके लिए नए पथप्रदर्शक थे। बड़ा दुःख है कि ये महापुरुष अब नहीं रहे। अब हमारी आशा है कि पूर्वके लोगोंको आप रास्ता दिखायें और उस पुराने पथके प्रदर्शक बनें।

मैं अपनी भारत-यात्राकी पुस्तक लिख रही हूँ और दूसरी पुस्तक है गान्धीजी और गुरुदेवकी स्मृतिकी। पर मैं अभी सोचती हूँ कि इन पुरानी बातोंका क्या होगा, जबकि पूरे एशिया भरके लोग अभी दुःख पा रहे हैं। लोग शक्ति ग्रहण कर लेते हैं और फिर दूसरोंको दुःख देते हैं। हम लोग अपने दिलोंमें सोच रहे हैं कि अपनी आत्माको खोजें; चाहे राजनीति हो चाहे व्यापार। नहीं तो जापान भी विदेशी राज्यकी कालोनी बन जाएगा और आनेवाली जापानी सन्तान अपनी संस्कृतिको भूल जाएगी या वे लोग कम्युनिस्ट बन जाएँगे। अब हम एशियाके लिए आपकी ही सहायता चाहते हैं।

आपके स्वास्थ्यके लिए भगवान्से प्रार्थना करती हूँ। आप शीघ्र ही अच्छे हों और जापान आ सकें।

पत्रोत्तरकी आशामें।

आपकी

कोरा

[श्री बिरलाजीका उत्तर]

बिरला हाउस, नई दिल्ली, ११-१-५२

पौष शुक्ला १५, सं० २००६

श्रीमती कोरा,

आपका १ जनवरी, १९५२का कृपा पत्र श्री कृपालसिंहके द्वारा प्राप्त हुआ। इसके पूर्व जो पत्र आपने भेजा था, वह भी यथासमय मुझे मिल गया था। दोनों पत्रोंके लिए अनेक धन्यवाद! जापानी बौद्ध भाइयोंने हाथी और गायके रूपमें हमारी स्नेह भेंटका अभिनन्दन किया तथा डॉ० आत्रेयकी यात्रा जापान तथा भारतके बीच भ्रातृभावका सम्बन्ध घनिष्ठ करनेमें सहायक हुई, यह जानकर प्रसन्नता हुई।

आपका यह लिखना ठीक है कि रूस और चीन, जो पड़ोसी देश हैं; उनके साथ मित्रताका सम्बन्ध स्थापित करना नितान्त आवश्यक है। परन्तु दुर्भाग्यसे रूस कट्टर साम्यवाद और भौतिकवादका प्रबल गढ़ बना हुआ है। धर्म एक प्रकारसे वहाँसे निष्कासित और बहिष्कृत है। चीन भी रूसके प्रभावमें आकर उसीका अनुसरण कर रहा है। चीनमें बौद्ध-धर्मकी स्थितिके सम्बन्धमें परस्पर-विरोधी बातें सुननेमें आती हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि चीनमें साम्यवादका प्रचार होने पर भी बौद्ध-धर्म तथा अन्य धर्म अभी तक किसी प्रकार टिके हुए हैं, उनमें कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाता। परन्तु कुछ लोगोंका कहना है कि रूसके समान वहाँ भी धर्मको बहिष्कृत किया जा रहा है और बौद्ध-धर्म वहाँसे लोप हो रहा है। वास्तविक सत्य क्या है, इसके सम्बन्धमें आप लोगोंको सम्भव है कुछ जानकारी होगी। परन्तु बौद्ध-धर्म अटल, ध्रुव और सत्य आध्यात्मिक सिद्धान्तोंके आधार पर स्थित है। उसका सदाके लिए लोप होना सर्वथा असम्भव है। भौतिकवादकी चकाचौंधमें उसका प्रकाश कुछ समयके लिए तिरोहित हो सकता है, परन्तु अन्तमें विजय सत्यकी ही होती है; यह अटल सिद्धान्त है।

* * *

भारतने सैनफ्रॉन्सिसको-सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं किये, क्योंकि भारत जापानको पूर्ण स्वाधीन देखना चाहता है और उक्त सन्धिसे जापानकी पूर्ण स्वाधीनतामें बाधा पहुँचनेका भय है, ऐसा वर्तमान सरकार तथा नेहरूजीका मत है। पर यह कहाँ तक ठीक है, इसके सम्बन्धमें कुछ कहना कठिन है। अस्तु, जो भी हो, वर्तमानमें कुछ समयके लिए जापान दबा रह सकता है; परन्तु जापानी जाति एशियामें सर्वश्रेष्ठ, उद्योगी, साहसी और सुसभ्य जाति है। वह बहुत दिनोंके लिए दबी नहीं रह सकती। उसका भविष्य उज्ज्वल और उसका उत्थान निश्चित रूपसे होगा, ऐसा हमारा अटल विश्वास है।

भारतवर्षमें जापानके समान घरेलू उद्योग-धन्धोंके विकासकी परम आवश्यकता है। इसके लिए जापानके कारीगरोंका सहयोग भी नितान्त आवश्यक है। परन्तु इस समय भारतकी आर्थिक स्थिति और विशेष करके खाद्य पदार्थोंकी स्थिति बड़ी कठिन और संकटापन्न है। दो वर्ष लगातार अनावृष्टिके कारण अकालकी-सी परिस्थिति हो रही है। इस परिस्थितिके शीघ्र सुधर जानेकी भी कोई आशा नहीं है। जापानियोंके समान हम लोग उद्योगशील और साहसी भी नहीं हैं, क्योंकि शिक्षाका यहाँ प्रबल अभाव है। १००मेंसे केवल १० अभी तक शिक्षित हो पाये हैं, तथापि भारत सरकारका झुकाव घरेलू उद्योग-धन्धोंको प्रोत्साहन देनेकी ओर है और यथासाध्य कुछ कर भी रही है।

आपने लिखा कि एशियाकी सब जातियोंको एक साथ मिलना चाहिए, यह ठीक है। परन्तु एशियामें हिन्दू और बौद्ध देशोंके अतिरिक्त अरब, फारस आदि कई मुस्लिम देश भी हैं, जिनके साथ सहयोग होना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। क्योंकि गैर-मुसलमानोंके साथ मुसलमानोंकी सच्ची मित्रता न कभी हुई है और न कभी हो सकती है। मुसलमानी मज़हब कट्टर अन्धविश्वासके आधार पर स्थित है और उसी पर फला-फूला है तथा उसमें गैर-मुसलमानोंके लिए कोई स्थान नहीं है। पाकिस्तानका उदाहरण सामने है। वह मुस्लिम कट्टरता और मदान्धताके आधार पर खड़ा किया गया है। पाकिस्तानसे लाखों हिन्दू मारकर भगा दिए गए हैं। उनकी करोड़ोंकी सम्पत्ति छीन ली गयी। न जाने कितनी हिन्दू-स्त्रियोंका सतीत्व अपहरण किया गया। लाखों बूढ़े, जवान और बच्चे तलवारके घाट उतार दिए गए। अभी भी जो हिन्दू वहाँ रह गए हैं, उन पर जो अमानुषिक अत्याचार हो रहे हैं, वह वर्णनके बाहर है। अतएव केवल बौद्ध और हिन्दू देशोंके बीच ही घनिष्ठ सम्बन्ध सम्भव हैं। परन्तु इस विषयमें चीनकी परिस्थिति आगे क्या रहती है, इस पर बहुत कुछ निर्भर है। संसार भरके बौद्ध धर्मावलम्बियोंकी महासभा जापानमें बुलानेके सम्बन्धमें आपके प्रस्तावका मैं समर्थन करता हूँ। मैं आपके इस प्रयत्नकी सफलता चाहता हूँ।

आपने मेरे स्वास्थ्यके सम्बन्धमें चिन्ता प्रकट की है, इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। अब मैं स्वस्थ हूँ और चलने-फिरनेके योग्य हो गया हूँ।

अन्तमें मैं फिर आपके पत्रके लिए धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि आप स्वस्थ और प्रसन्न होंगी।

भवदीय,
जुगलकिशोर बिरला

[श्री बिरलाजीको एक धर्म-प्रेमी जापानी महिलाका पत्र]

प्रिय श्री बिरलाजी,

मैं एक अपरिचित होते हुए भी आपको पत्र लिखनेका साहस कर रही हूँ, इसके लिए कृपया क्षमा करें।

वर्तमान सभ्य संसार अन्धविश्वासमें जकड़ा हुआ और अनादि सनातन सत्य अर्थात् धर्मके प्रति आँख बन्द करके दुःखके सागरमें निमग्न है। आजका मनुष्य-जीवन उन मछलियोंके जीवनके समान है, जो एक विषैले तालाब में तैर रही हैं। आप चाहे एक-एक करके उन मछलियोंको तालाबसे निकाल कर उनको बचानेकी चेष्टा करें। परन्तु वे पुनः उस तालाबमें कूद पड़ेंगी और आपका प्रयत्न व्यर्थ जायगा। यही हाल मनुष्यका भी है। वर्तमान सभ्य संसारमें मनुष्य भी दुःखोंके विषैले सागरमें तैर रहे हैं। दुःखोंसे उनका छुटकारा तब तक सम्भव नहीं है, जब तक वह स्रोत ही बन्द न किया जाय; जहाँसे दुःख रूपी विषका उद्‌गम होता है। असत्य और मिथ्या भ्रममें फँसा हुआ मनुष्य जीवन-दुःखके आवर्तसे तभी छूट सकता है, जब जड़से ही उसकी चिकित्सा की जाय। मनुष्योंकी विचार-प्रणाली और जीवन-प्रणालीको आमूल पवित्र और शुद्ध बनानेकी आवश्यकता है। दूसरे लोग मनुष्योंको विषैली गैससे बचानेके लिए ऑक्सिजन प्रदान करनेकी चेष्टा करते हैं, तो इसमें कोई आपत्तिकी बात नहीं है। परन्तु संसार मात्रके समस्त बौद्ध धर्मावलम्बियोंका यह कर्तव्य है कि जिस स्रोतसे विष उत्पन्न होता है, उस उद्‌गम स्थानको ही जड़-मूलसे उखाड़ फेंका जाय।

मैं एक बौद्ध-परिवारमें और एक बौद्ध-मन्दिर में पैदा हुई थी, जहाँ तीस पीढ़ीसे मेरे परिवारवाले पुरोहित होते हुए चले आ रहे हैं। बचपनसे मुझे ऐसी शिक्षा मिली और ऐसे वातावरणमें मैं पाली-पोसी गयी कि संसारके बाह्य प्रभावसे मैं अछूती बची रही और सौभाग्यसे भगवान् बुद्धकी सच्ची शिक्षाओंके प्रकाशमें मैं प्रकृतिके प्रगट और गुप्त स्वरूपको देखनेमें समर्थ हो सकी। इस प्रकार मेरा एकमात्र प्रयत्न गत बीस वर्षोंमें ऐसे साहित्यका निर्माण करना रहा है, जिसमें धर्मका दिग्दर्शन एक व्यक्तिके जीवनमें मिलता है।

एक महिला होनेके नाते अभी तक मैं समाजके सक्रिय रंगमंच पर आनेसे हिचकती थी और इसीलिए केवल साहित्यिक कार्यमें लिप्त थी। परन्तु धर्मके चक्षुसे मैंने देखा कि संसारका वर्तमान संकट इतना गम्भीर और आवश्यक ध्यान देने योग्य है कि अलग बैठ कर केवल साहित्यिक कार्य करनेका समय नहीं रहा। मैंने यह अनुभव किया कि अब समय आ गया है कि जो कुछ मैंने लिखा है, उसको जोरसे पुकार कर कहा जाय और उसके अनुसार जीवनमें आचरण भी किया जाय।

अपने जीवनके ऐसे क्षणमें डॉ० आत्रेय-जैसे व्यक्तिसे मिलनेका अवसर पाकर मुझे बड़ा प्रोत्साहन मिला। इसके लिए मैं आपके धार्मिक प्रेम और उत्साहकी कृतज्ञ हूँ कि आपने यह अवसर प्रदान किया। आशा है आप उन लोगोंको इसी प्रकार प्रोत्साहन देते रहेंगे, जो अविद्यान्धकारमें पड़े हुए लोगोंको सत्यका प्रकाश दिखानेके लिए धर्मका दीपक प्रज्ज्वलित रखनेमें सहायक हो रहे हैं।

मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, यदि आप कृपा करके अपने सुख-स्वास्थ्यका समाचार देकर तथा अपनी बहुमूल्य सम्मतिसे मुझे प्रोत्साहित करेंगे। वह दिन मेरे लिए बड़े सौभाग्यका होगा, जब मैं आपका दर्शन या तो भगवान् बुद्धकी जन्मभूमि भारतमें अथवा जापानमें कर सकूँगी। भगवान् बुद्धसे प्रार्थना है कि वह आपको और आपके परिवारको सुखी रखे।

भवदीया,

र्योजू किवूची

* * *

[श्री बिरलाजीका उत्तर]

बिरला हाउस, नई दिल्ली; जनवरी ३, १९५२
पौष शुक्ला ६, सं० २००८

प्रिय बहन जी,

नमो बुद्धाय। आपका कृपा-पत्र मिला, अनेक धन्यवाद। आपके पत्र द्वारा आपके धार्मिक विचार जानकर प्रसन्नता हुई। आपने धर्मके सम्बन्धमें जो बातें लिखी हैं, बिलकुल सत्य हैं। धर्मका दान सब दानोंमें श्रेष्ठ हैं। क्योंकि धर्मके दानसे जो देने वाला है, उसको भी और जो पाने वाला है, उसको भी सुख और शान्ति मिलती है। यह आदिमें सुखकारक, मध्यमें सुखकारक और अन्तमें सुखकारक है। संसारमें रहता हुआ मनुष्य जीवनके कार्योंको करता रहे, परन्तु उसको कभी न भूलना चाहिए कि उसका ध्येय सदा धर्मका पालन और धर्मकी सेवा करना है, जिससे इस जन्ममें और जन्मान्तरमें वह सुख और शान्ति लाभ कर सके। धर्मदानकी महिमा संसारके सबसे महान् पुरुष भगवान् बुद्धने इस प्रकार धम्मपद में गायी है :

सब्बदानं धम्मदानं जिनाति, सब्बं रसं धम्मरसो जिनाति।
सब्बं रती धम्मरती जिनाति, तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति॥

धर्मका दान सारे दानोंसे बढ़कर है। धर्मरस सारे रसोंमें प्रबल है। धर्ममें रति सब रतियोंसे बढ़कर है। तृष्णाका विनाश सारे दुःखोंको जीत लेता है।

यो च बुद्धञ्च संघञ्च सरणं गतो। चत्तारि अरियसच्चानि सम्मप्पञ्ञायपस्सति॥
दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च-अतिक्कमो अरिञ्चट्ठंगिकम् मग्गं दुक्खूपसमगामिनं।
एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं एतं सरणामगम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति।

जो बुद्ध, धर्म और संघकी शरण गया, जिसने चार आर्य सत्योंको दुख, दुखकी उत्पति, दुखसे मुक्ति और मुक्तगामी आर्य आष्टांगिक मार्ग सम्यक् प्रज्ञासे देख लिया है, यही रक्षादायक शरण है। इसी शरणको प्राप्त कर वह सभी दुखोंसे मुक्त हो जाता है।

धम्मं चरे सुचरितं न तं दुच्चरितं चरे। धम्मचारी सुखं सेति अस्मि लोके परम्हि च॥

धर्मका सदाचरण करे, दुराचरण न करे। धर्माचरण करनेवाला इस लोक और परलोक दोनों जगह सुखपूर्वक रहता है।

धम्मपीती सुखं सेति विप्पसन्नेन चेतसा। अरियप्पवेदिते धम्मे सदा रमति पंडितो॥

धर्ममें आनन्द मानने वाला, अत्यन्त श्रद्धायुक्त चित्तसे सुखपूर्वक विहार करता है। पण्डितजन धर्ममें सदा रत रहता है।

प्राचीन भारतके महान् बौद्ध सम्राट् अशोकने भी धर्मदानके बारेमें अपने धर्मलेख में लिखा है :

"ऐसा कोई दान नहीं है, जैसा धर्मका दान है। ऐसी कोई मित्रता नहीं है, जैसी धर्मकी मित्रता है। ऐसी कोई उदारता नहीं है, जैसी धर्मकी उदारता है। ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसा धर्मका सम्बन्ध है। जो धर्मके अनुसार आचरण करता है अर्थात् इस प्रकार धर्मदान करता है; वह इस लोकको भी सिद्ध करता है और परलोकमें उस धर्मदानसे अनन्त पुण्यका भागी होता है। धर्मके अनुसार पालन करना, धर्मके अनुसार सुख देना और धर्मके अनुसार रक्षा करना : यही विधि शासनका सिद्धान्त है।"

* * *

यह तो आपको विदित ही है कि ईसाई मतमें यद्यपि ईश्वर-भक्तिके सम्बन्धकी कुछ बातें हैं, परन्तु दर्शन (फिलॉसोफ़ी) उसमें कुछ भी नहीं है और न पुनर्जन्म तथा निर्वाणकी बातें उसमें हैं। अतएव धर्मकी दृष्टिसे यह नितान्त अपूर्ण है। परन्तु भगवान् बुद्धका बताया हुआ मार्ग सच्चे धर्मका मार्ग है। जो सत्य सनातनधर्म अतीत कालसे चला आ रहा था, उसीको भगवान् बुद्धने मनुष्योंको समझानेके लिए एक सुगम मार्गके रूपमें प्रचार किया था। कुछ लोगोंका यह विचार है कि भगवान् बुद्धका उपदेश केवल कर्मप्रधान है, भक्तिका उसमें स्थान नहीं है। परन्तु यह यथार्थ नहीं है। यम-नियम आदिके द्वारा मनकी स्थिरता प्राप्त हो जाने पर सत्य अथवा ब्रह्मका दर्शन होता है। वेदान्त भी यही कहता है। बौद्ध-धर्मके महायान मार्गमें भी यही बात प्रतिपादित की गयी है। वास्तवमें वेदान्त और महायान् दोनोंमें बहुत कम अन्तर है। बौद्ध-धर्मके त्रिरत्न बुद्ध, धर्म और संघमें जो धर्म है, वही ब्रह्म सत्य या परमात्माका दूसरा नाम है। यद्यपि श्रीलंका तथा बर्मामें हीनयान बौद्ध-धर्मका प्रचार है, जो सांख्य दर्शनके बहुत सन्निकट है; परन्तु चीन और जापानमें महायानका प्रचार है, जो वेदान्त दर्शनसे मिलता-जुलता है। इस प्रकार हिन्दू-धर्म और बौद्ध-धर्म एक दूसरेसे मिलते-जुलते हैं और मूलमें एक ही आर्य-धर्मकी दो शाखाएँ हैं। यह जान कर प्रसन्नता है कि आप भगवान् बुद्धके मार्गका प्रचार वहाँ कर रही हैं। यह पवित्र कार्य निःसन्देह आपके लिए और दूसरोंके लिए परम कल्याणकारी है। भगवान् बुद्धसे प्रार्थना है कि वह आपको अपने उद्देश्यसे अधिक सफलता प्रदान करे।

भवदीय,
जुगलकिशोर बिरला

[जापान-विश्वशान्ति-सम्मेलनकी ओरसे भिक्षु ईमाईका पत्र]

जापान सद्धर्म विहार,
नमभ्योहोरेंगे क्यो ६० लेक रोड, कलकत्ता
श्रीमान् सेठ जुगलकिशोरजी बिरला, जनवरी २८, १९५४

दिल्लीमें आपके साथ मिलकर मुझे बहुत आनन्द हुआ। मैं ११ तारीखको यहाँ पहुँचा। जापानमें जो विश्वशान्ति-सम्मेलन होगा; उसके सदस्य बनानेके लिए यहाँ पर एक कमेटी बनवायी। इसके लिए मुझे यहाँ पर बहुत काम करना पड़ा। आपने कहा था कि उस सम्मेलनमें आप एक मैसेज (सन्देश) भेजेंगे। मेरे विचारमें आपकी तरफसे एक सदस्य भेजना अच्छा है, क्योंकि आप जापानमें बौद्ध-धर्मकी रक्षाके लिए बहुत सहायता देते आ रहे हैं। जापानके बौद्ध लोग आपका विशेष आदर करते हैं।

मैं सदस्योंको भेजनेके लिए जापानी जहाजका बन्दोबन्त कर रहा हूँ। ब्रिटिश जहाजोंसे जापानी जहाजमें खर्चा कम लगेगा। इस सम्मेलनमें धीरानन्दजी भी जानेके लिए प्रयत्न कर रहे हैं। यह उचित भी है, क्योंकि जापानके बौद्ध-धर्मकी नवीन परिस्थिति उन्हें देखनी चाहिए।

श्री नेहरूजीने भिक्षु मारूयामाजीको जापानकी शान्ति रक्षाके लिए भगवान् बुद्धका जो पवित्र अस्थि-अवशेष दिया था, वह अभी तक मेरे पास है; क्योंकि बम्बईमें मन्दिर-स्थापनाके समयमें उस अस्थिको रखना चाहिए। मन्दिर-स्थापनाके बाद जापानमें इसे भेजनेका विचार था, लेकिन जापानके इस महा सम्मेलनमें पवित्र अस्थि ले जाना चाहिए, इसलिए मैं भी पवित्र अस्थि लेकर जापान एक बार जाना चाहता हूँ।

* * *

इस समय बम्बई मन्दिरमें मातूया नामके एक जापानी साधु हैं। वे ही मन्दिर देखते हैं। मन्दिरके लिए कुछ चिन्ता नहीं है। मुझे जो आपसे पैसा मिलता है, उसको खर्चाके लिए सब उन्हें देता हूँ। दो-तीन महीनेके अन्दर और एक साधु आयेंगे। उनका नाम वातानाबे है। वे पहले बम्बईमें जब रहते थे, उस समय मैंने विहार बनवाया था। जब वातानाबेजी आयेंगे, तब मातूयाजी बदली करेंगे।

अन्त में मेरा सादर नमस्कार आप स्वीकार करें। इति।

आपका,
भिक्षु ईमाई

[श्री बिरलाजीका उत्तर]

बिरला हाउस,
नई दिल्ली

प्रिय महोदय,

आप लोगोंके उद्योगसे जापानमें विश्वशान्ति-सम्मेलनका जो आयोजन हो रहा है, उसकी पूर्ण सफलताके लिए भगवान् तथागतसे प्रार्थना है। शान्ति निःसन्देह वांछनीय और सराहनीय वस्तु है। किन्तु कभी-कभी संसारकी दशा ऐसी बिगड़ जाती है और ऐसे-ऐसे अनर्थ, अनाचार और अत्याचार होने लगते हैं, तब युद्ध अनिवार्य हो जाता है और युद्धसे ही विश्वमें सुधार होनेकी सम्भावना होने लगती है। सम्भवतः संसारके इतिहासमें वह युग आगया है, ऐसा बहुतसे लोगोंका अनुमान है। अन्तमें मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ स्वीकार करें।

भवदीय,
जुगलकिशोर बिरला

[जापानके श्री हन्यूजी शुसेताउका पत्र]

माननीय श्री बिरलाजी,

आपको पत्र लिखते हुए मैं अपना गौरव अनुभव करता हूँ। यह मेरे लिए बड़े खेदकी बात है कि चाहता हुआ भी तथा आपके स्वास्थ्य और प्रसन्नताकी कामना करता हुआ भी आपको बहुत अरसेसे पत्र न लिख सका। मैं यहाँ प्रसन्न हूँ और अपनी कलाके माध्यमसे बुद्ध-धर्मके प्रचारमें संलग्न हूँ।

आपको एक दुःखद समाचार देता हूँ कि पिछले वर्ष आपने जो गाएँ भेजी थीं, उसमेंसे एक रोग-पीड़ित होकर मर गयी।

नन्दिनी नामकी गाय और उसकी दो सन्तानें शशीची और समागा जोची बिलकुल ठीक हैं। जैंकोजी (नागानों नगर) में हैं और वहाँ आनेवाली जनता उन्हें बहुत प्यार करती है। वे सचमुच ही शान्तिकी प्रतीक हैं और जापान-भारत मैत्रीको प्रगाढ़ बनानेवाली हैं। भगवान् बुद्धको शतशः नमन हो।

कृपया मेरी हार्दिक शुभ-कामनाएँ स्वीकार करें।

भवदीय,
हन्यूजी शुसेताउ

* * *

[श्री एज्रोसावा का पत्र]

१५६ यामातेचो, अशिया, ह्योगो-केन, जापान
३१ मार्च, १९५६

श्रीमान् सेठजी,

नमस्ते। मुझे शब्द नहीं मिलते, जिनसे आपकी कृपाओंका पूरे तौरसे धन्यवाद दे सकूँ। आपकी अपरम्पार दयासे मुझे अवसर मिल गया कि मैंने आपके देशको फिर दोबारा पैंपूरे तीस वर्षके बाद देखा और बड़े आराम और सहूलियतके साथ। मैं आपकी इस कृपाको जीवनभर नहीं भूल सकता।

मैं फरवरीकी १३ ता०को कलकत्तेसे एक जापानी कार्गो बोटसे रवाना होकर कोबे इस महीनेकी २३ ता०को कुशलताके साथ पहुँच गया।

ओसाका, जापान

एज्रोसावा

[भिक्षु तेन्जोवातानाबेका पत्र]

जापान सद्धर्म बिहार
६० लेक रोड, कलकत्ता

श्रीमान् सेठ जुगलकिशोरजी बिरला,
५-२-६०

सादर नमस्कार।

वहुत दिनोंके वाद आपके साथ मिलनेसे चित्तमें बहुत प्रसन्नता हुई।

देहलीमें आपके साथ हिमेजी शान्तिस्तूपके सम्बन्धमें बातचीत हुई थी। आप उस शान्तिस्तूपके लिए भगवान् बुद्धकी एक मूर्ति भेजनेको कह रहे थे। कलकत्ता महाबोधि सोसाइटीके श्री देवप्रिय बलिसिंहके साथ हिमेजी शान्तिस्तूपके बारेमें आलाप करते समय उन्होंने बताया कि श्री के० सि० पालने साँचीके लिए भगवान् बुद्धकी मूर्ति बनाते समय दो मूर्तियाँ बनायीं थीं। उसमेंसे एककी साँचीमें प्रतिष्ठा हुई है। दूसरी मूर्ति उनके पास है। वह मूर्ति वहुत सुन्दर है - यह बलिसिंहजी कहते हैं। आप इस विषयमें श्री के० सि० पालसे पत्र व्यवहार कर सकते हैं। उनका पता श्री के० सि० पाल, पो० कृष्णनगर, जिला नवद्वीप बंगाल।

हिमेजी शान्तिस्तूपका उद्घाटन एप्रिल महीनेमें होनेवाला है। समय थोड़ा है। जल्दी मूर्ति भेजना मैं उचित समझता हूँ।

आशा है भगवान् बुद्धकी कृपासे आप सानन्द व सकुशल होंगे।

भवदीय,
भिक्षु तेन्जोवातानाबे

[हिमेजी नगरके महापौरके नाम श्री बिरलाजी का पत्र]

बिरला हाउस,
नई दिल्ली

माननीय महोदय,

नमो बुद्धाय। आपका कृपा-पूर्ण निमन्त्रण-पत्र मिला। इसके लिए हार्दिक धन्यवाद। जापानके बौद्ध भाई हिमेजीमें विश्व-शान्ति-स्तूपका उद्घाटन उत्सव विशेष समारोहके साथ मनाने जा रहे हैं, यह जान कर प्रसन्नता हुई। इस उत्सवमें सम्मिलित होनेकी अभिलाषा होते हुए भी, अनिवार्य कारणोंसे उपस्थित होनेका सौभाग्य प्राप्त न कर सकूँगा, इसके लिए खेद है। किन्तु अपने जापानी भाइयोंसे इस महत्वपूर्ण उत्सवकी सफलताके लिए शुभकामनाएँ प्रेषित करते हुए भगवान् बुद्धसे प्रार्थना है कि समारोह पूर्ण सफलताके साथ सम्पन्न हो। कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि बौद्ध और हिन्दू परस्पर एक दूसरेके सहोदर भाईके समान हैं। अतएव जापानके बौद्ध भाइयोंकी उन्नतिमें विशेष आनन्दका अनुभव होना स्वाभाविक है। आप लोगोंके प्रयाससे जापानमें पुनः बौद्ध-धर्मकी उन्नति, प्रचार और प्रसार हो तथा जापान पहलेसे भी अधिक गौरवपूर्ण पद प्राप्त करे; यह आन्तरिक कामना भगवान् तथागतसे है।

पुनः धन्यवादपूर्वक,

भवदीय,
जुगलकिशोर बिरला

बिरला-बन्धुओंकी ओरसे जापानके हिमेजी शान्ति-स्तूपमें भगवान् बुद्धकी मूर्तिकी प्रतिष्ठाके अवसर पर प्रेषित सन्देश:

हम भगवान् बुद्धकी मूर्ति भारतमें निपनजान म्योहोजी महासंघकी कलकत्ता शाखाके अध्यक्ष माननीय भिक्षु शान्तिशील शुगेईजीके द्वारा हिमेजी शान्तिस्तूपमें प्रतिष्ठाके लिए भेज रहे हैं।

सारे संसारमें इस समय घोर अन्धकार छा रहा है। हिंसानल चारों दिशामें धधक रही है। हमारा विश्वास है कि शान्तिस्तूपकी स्थापना एक ऐसा कार्य है, जिससे समस्त संसारकी मानव-जातिकी रक्षाके कार्यमें सहायता मिलेगी, मनुष्योंमें प्रेम व सद्भावना बढ़ेगी।

यह जानकर हमें बहुत प्रसन्नता है कि महागुरु ग्योसो फुजीजीके उपदेशानुसार उनके अनुयायियोंने हिमेजीमें शान्ति-स्तूपकी स्थापना की है और कुमामातो शहरमें शान्ति-स्तूपके उद्घाटनके अवसर पर हमारे प्रधानमन्त्री पण्डित नेहरूजीने जो भगवान् बुद्धकी अस्थि (Relics) भेंट की थीं, उनमेंसे एक हिमेजी शान्तिस्तूपमें रखी गयी। महागुरु फुजीजी तथा उनके शिष्योंने महात्मा गान्धीके साथ रहकर भारतकी स्वतन्त्रता प्राप्ति और आत्मिक उन्नतिके लिए बड़ा भारी भाग लिया है, यह बात हम कभी भूल नहीं सकते। इससे भारत व जापानके बीचमें हार्दिक सम्बन्ध व विश्व शान्तिके लिए मार्ग सुगम हुआ।

हम जानते हैं कि जापानमें कुछ समय पूर्व जब बौद्ध-धर्मका प्रचार हुआ, उस समय राजाओंने हर एक छोटे-छोटे राज्यमें बौद्ध-मन्दिर बनवाये, जिससे जापान देशको शान्ति मिली। हमारे भारतवर्षमें सम्राट्

अशोकने ८४,००० शान्ति-स्तूप बनवाये थे। उसी समय बौद्ध-धर्मके प्रचारने उन्नतिके शिखर पर पहुँच कर संसारके लोगोंको रास्ता दिखलाया था। वैसे ही आज भी सारे जापानमें शान्ति-स्तूपकी स्थापना हो रही है, जिससे हिंसात्मक कार्यका अवसान होगा।

हिन्दू और बौद्ध दोनों एक ही हैं। भगवान् बुद्धकी मूर्ति भेंट करते हुए हमें विश्वास है कि भारत और जापानके बीच घनिष्ठता बढ़ेगी और दोनों राष्ट्र मिलकर अशान्त संसारको शान्तिका मार्ग बतलानेमें सफल होंगे।

बिरला हाउस, नई दिल्ली
१०-११-६०

बसन्तकुमार बिरला

[जनरल डगलस मेकआर्थरको स्मरण-पत्र]

द्वितीय महायुद्धके पश्चात् पराजित जापानमें बढ़ते हुए ईसाई-प्रचारके विरोधमें श्रीमान् सेठजीकी प्रेरणासे निम्नलिखित स्मरण-पत्र हिन्दू और बौद्ध जनताकी ओरसे, तत्कालीन संयुक्त सेनाके सुप्रीमकमाण्डर जनरल डगलस मेकआर्थरको भेजा गया था :

"हम भारतवर्षकी भिन्न-भिन्न हिन्दू तथा बौद्ध संस्थाओंकी ओरसे आपकी सेवामें निम्नलिखित निवेदन उपस्थित करते हुए आशा करते हैं कि आप इस सम्बन्धमें हिन्दू और बौद्ध जनतामें क्षोभ और खिन्नताकी जो भावना उत्पन्न हो गयी है, उसे दूर करनेका प्रयत्न करेंगे।

"द्वितीय महायुद्धमें जापानकी पराजयके उपरान्त जबसे जापानका शासन संयुक्त राष्ट्रके आधीन कर दिया गया है और उसके प्रधान शासक आप बनाये गए हैं, ऐसे समाचार जापानसे आ रहे हैं कि वहाँ ईसाइयत-का सामूहिक रूपसे प्रबल प्रचार करनेके लिए ईसाई मिशनरियोंके दलके दल आ रहे हैं और ईसाई मिशनोंका वहाँ जाल-सा बिछ गया है। परिणामस्वरूप ऐसा सुननेमें आया है कि ईसाई मिशनरियोंके पास प्रलोभनके अटूट साधनोंके कारण अनुमानतः ५० हजार जापानी अपने पूर्व-पुरुषोंके बौद्ध-धर्मसे च्युत होकर ईसाई बना लिए गए हैं।

"यह भी सुना गया है कि वहाँके शासन पर अमेरिकाका प्रभाव होनेके कारण, शासनकी ओरसे ईसाई मिशनरियोंको ईसाइयतके प्रचारमें अनेक अनुचित और पक्षपातपूर्ण सुविधाएँ प्रदान की जा रही हैं। यदि यह बात सत्य है तो यह अमेरिकाके लिए बड़े कलंककी बात होगी। क्योंकि अमेरिका सदासे अपनी उदा-रता, धार्मिक निष्पक्षता तथा उच्च-भावनाके लिए प्रसिद्ध है। अणुबमके द्वारा जापानी जनताके हृदय पर जो घाव लगा था, वह अभी सूखा नहीं है। उससे अमेरिकाके सुनाम पर बड़ा काला धब्बा लगा था, अब वर्तमान परिस्थितिमें वहाँ ईसाइयतका प्रचार जापानके लिए जले पर नमक था, अमेरिकाके लिए निन्दाका कारण बनेगा। अणुबमसे जापानका केवल भौतिक हनन हुआ था, ईसाइयतके प्रचारसे जापानका साँस्कृतिक तथा आध्यात्मिक हनन हो रहा है, यह बहुत खेदकी बात है।

"कम्युनिज्मका प्रचार बड़ी तेजीके साथ एशियाके अनेक देशोंमें फैलता जा रहा है, उसको रोकनेमें यदि कोई वस्तु सफल हो सकती है, तो वह उन देशोंमें प्रचलित बौद्ध-धर्मका प्रचार ही है। बौद्ध-धर्म अहिंसा, सत्य, दया, क्षमा, मैत्री आदि सनातन सिद्धान्तों पर अवलम्बित है और यदि कम्युनिज्मका प्रचार जापान तथा पूर्वी और दक्षिणी एशियाके अन्य देशोंमें रोकना है, तो वहाँके लोगोंको अपने प्राचीन धर्मसे कदापि डिगाना

* * *

नहीं चाहिए। ईसाइयतके प्रचारसे तो उल्टा वहाँ कम्युनिज्मका प्रचार बढ़ता जा रहा है और बढ़ेगा। योरोपमें तो बहुत दिनोंसे ईसाइयतका प्रचार है, परन्तु वहाँ वह कम्युनिज्मके प्रवाहको रोकनेमें समर्थ नहीं हुआ। अतएव यह आशा करना कि ईसाइयतके प्रचारसे जापानकी कम्युनिज्मसे रक्षा होगी, एक दुराशा मात्र है।

"अतएव हम आपसे सविनय निवेदन करते हैं कि आप जापानमें ईसाई मिशनरियोंके प्रवाहको रोकेंगे और जापानमें ईसाई मिशनरियोंको अमरीकन सरकार अथवा जापानकी वर्तमान सरकारके द्वारा जो आर्थिक तथा नैतिक सहयोग अथवा समर्थन मिल रहा है, उसको तुरन्त रोकनेका उपाय करेंगे। आशा है आप हमारी इस प्रार्थना पर उचित ध्यान देंगे।"

नई दिल्ली स्थित अमेरिकन राजदूतको भी इस सन्दर्भमें एक पत्र भेजा गया था। भारत सरकारके विदेश मन्त्रालयका ध्यान भी इस दिशामें आकृष्ट किया गया था और अनुरोध किया गया था कि वे हमारे पत्रकी प्रतिलिपि अमरीकी सरकार तथा जनरल मैकआर्थरको भेजनेका अनुग्रह करें। विदेश मन्त्रालयसे मिले उत्तरका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है:

श्री संयुक्त मन्त्री,
हिन्दू-धर्म सेवासंघ,
पो० बिरला लाइन्स, सब्जीमण्डी, देहली

नयी देहली
१० नवम्बर' ४९

महोदय,

आपके पत्र संख्या १७४०।४९ ता० ५ सितम्बर '४९के उत्तरमें मुझे यह निवेदन करना है कि यद्यपि जापानके आत्मसमर्पणके पश्चात् वहाँ ईसाई धर्मावलम्बियोंकी संख्यामें वृद्धि हुई है, फिर भी वह धर्मान्तर किसी सैनिक वा शासन सम्बन्धी दबावके कारण अथवा आर्थिक लाभ, पक्षपात आदिके प्रलोभनोंके बल पर हुआ नहीं प्रतीत होता।

यह सत्य है कि जनरल मैकाआर्थरने जापानमें मिशनरियोंके प्रवेशमें कोई बाधा नहीं दी है। किन्तु यह विचार किया जाता है कि यदि अन्य धर्मके प्रचारक और मिशनरी भी जापान जानेकी इच्छा रखते हों, तो उनके प्रवेशके विरुद्ध भी कोई बाधा नहीं खड़ी की जायगी।

ऐसी परिस्थितिमें भारत सरकार आपके भेजे हुए पत्रकी प्रति अमेरिकाकी संयुक्त सरकारके पास अथवा जनरल मैकआर्थरके पास भेजना उचित नहीं समझती है।

भवदीय,
ह० एस० सिन्हा
अण्डर सेक्रेटरी गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया

[जनरल मैकआर्थरके कूटनीतिक उत्तरका हिन्दी रूपान्तर]

जनरल हेड क्वार्टर्स
सुप्रीम कमाण्डर फॉर दि एलाइड पावर्स,
कार्यालय सुप्रीम कमाण्डर, टोकियो, जापान
२३ अक्टूबर, १९४९

प्रिय मि० भट्ट,

आपका मई २५का पत्र मुझे मिला। संयुक्त राष्ट्र द्वारा जापान पर अधिकार सम्बन्धी निर्धारित नीति, जो वर्तमानमें व्यवहारमें लायी जा रही है, उसके बारेमें ऐसा मालूम होता है कि गैर जिम्मेदार रिपोर्टोंके द्वारा आपको गलत समाचार मिला है। जो खेदकी बात है। जापान सम्बन्धी इस नीतिकी प्रधान बात यह है कि जापानियोंका जीवन फिरसे इस ढाँचे पर ढाला जाय कि वे प्रजातन्त्रवादके सिद्धान्तोंको अपना सकें। जापानके आत्म-समर्पण करनेके पहले ही पोट्सडेममें जो सम्मेलन हुआ था, उसीमें इस नीतिका निर्धारण हो चुका था और उस सम्मेलनमें यद्यपि आपकी सरकारका प्रतिनिधित्व नहीं हुआ था; तथापि उसके उपरान्त आपकी सरकार सुदूर पूर्व कमीशनके सदस्यकी हैसियतसे कई बार उस नीतिका समर्थन कर चुकी है। उस नीतिका सर्वप्रथम सिद्धान्त यह है कि धार्मिक सहनशीलता और धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की जाय; अर्थात् प्रत्येक नागरिकको यह अधिकार प्राप्त हो कि वह अपनी अन्तरात्मा और अपने धार्मिक विश्वासके अनुसार स्वतन्त्रताके साथ पूजा कर सकें। यह अधिकार पूर्णरूपसे स्वीकार किया गया है और पूरी तरहसे जापानमें प्रचलित है। यह अधिकार बौद्धोंको, शिन्तो मतवालोंको, ईसाइयोंको और अन्य भिन्न मतवालोंको समान रूपसे प्राप्त है।

ये प्रजातन्त्रवादके सिद्धान्त घनिष्ठ रूपसे ईसाई मतके दार्शनिक सिद्धान्तोंका अनुसरण करते हैं, जिस प्रकार कि वे निःसन्देह कई अंशों में बौद्ध-धर्मके दार्शनिक सिद्धान्तोंका अनुसरण करते हैं। परन्तु इससे यह अनुमान लगाना उचित नहीं है कि जापानको प्रजातन्त्रवादके सिद्धान्तोंके अनुसार ढालना जापानी लोगों को ईसाई मतमें परिर्वातित करना है। क्योंकि राजनीतिक पुनर्निर्माणका उद्देश्य यह भी है कि इस प्रकारके विषयोंमें बिना किसी दबावके अपनी व्यक्तिगत अन्तरात्माके अनुसार जीवन-यापन करनेमें स्वतन्त्र रहे। यह सत्य है कि यहाँ ईसाई मतके नेता हैं और मिशनरी जो जापानी लोगोंकी आत्मिक और शारीरिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें लगे हुए हैं। परन्तु साथ ही यहाँ बौद्ध भिक्षु तथा अन्य बहुतसे मतोंके लोग भी हैं, जो इसी प्रकार कर रहे हैं। जापानमें वर्तमान शासन सम्बन्धी नीतिके अनुसार या उसके प्रभावसे किसीके साथ पक्षपात नहीं किया जाता, अपितु सब अपने-अपने धर्मके सिद्धान्तों और उपदेशोंका प्रचार करनेमें और जापानियोंकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें स्वतन्त्र हैं। यदि इनमेंसे किसी एक खास मतको लोग अधिक पसन्द करते हैं और उसमें परिवर्तित हो जाते हैं, तो इससे केवल यही अर्थ निकलता है कि उस मतमें उन लोगोंको अधिक आत्मिक सुख और विश्वास मिलता है। यह एक ऐसी बात है, जो प्रत्येक स्वतन्त्र देशमें होनी चाहिए।

भवदीय,
डगलस मैकआर्थर

* * *

कम्बोडिया

[कम्बोडिया भिक्षु थितप्पंञोका पत्र]

माननीय तथा आदरणीय श्रीमान् बिरलाजी,

मुझे कृपापत्र प्राप्त हुआ है। आनन्दजीने आपके अधिकारानुसार निवेदन किया है कि छात्रवृत्ति स्वीकृत हुई है।

यह पढ़कर और जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई है। बहुत धन्यवाद है कि सहायता इस माससे प्रतिमास मेरे पास पहुँच जाएगी।

आशा है कि भविष्यमें मेरा अध्ययन अधिक सफल होगा। अन्तमें पालिमें लिख रहा हूँ:

माननीयो बिरला नाम उत्तमो महासयो,

अहं कम्बोजभिक्खु हुत्वा गतसंवच्छरे ततो आगन्त्वा भारतदेसस्समज्झिम पदेसे नागपुरे वसिता होमि। ततो पट्ठाय एकं संवच्छरं यावता अहं इध वसित्वा तावता हिन्दी भासाय च संकटभाषाया च (संस्कृत) सज्झाय नं कतो। इदानिपि अहं तथाएव होमि।

यदा अहं अत्तनो कम्बोजरट्ठे विहरन्तो तदा चिरकालतो पालि-भासायं अट्ठ संवच्छरे पालि भासं सज्झायित्वा तदनन्तरं परिक्खमनं दत्वा ततो निक्खमित्वा अत्तमा सह पालिगन्थे आहरित्वा पथमवारे कलकत्तानगरं पत्वा ततोपि निक्खमित्वा इध आगतो भारतदेसे नानाभासं उग्गण्हि तु वसामि।

इदानिमपि इमस्स संवच्छरस्स इमस्मिमासे अहं महासेट्ठिना बिरलामहासयेन पतिमासिकं बहूनि कहापणानि (रूप्यकाणि) दत्वा अनुग्गहेन सहायं कत्वा उत्तरिम्पि कारापितो म्हि।

वुत्तम्पि चेति,

सुत्तन्त पिटके-

अरोग्यपरमा लाभा सन्तुट्ठी परमं धनं।
विस्सास परमा ञाति निब्बाणं परमं सुखं॥

नीरोग रहना परम लाभ है, सन्तुष्ट रहना परम धन है, विश्वास सबसे परम मित्र है और निर्वाण सबसे परम सुख है।

कोनुहासो किमानन्दो, निच्चं पज्जलिते सति।
अन्धकारेन ओनदधो, पदीयं न गवेस्सय॥

सब कुछ जल रहा है और तुम्हें हँसी और आनन्द कैसे आ रहा है? अन्धकार से घिरे रहकर तुम प्रदीपको क्यों नहीं खोजते?

एतानि गाथानि सम्मासद्धबुद्धेन खुद्दकनिकायस्स धम्मपदट्ठकथाय भासितानि।

एवं सन्त, मरहं करणीयो च सज्झायनं च अवस्सं वड्ढिस्सन्ती ति मे आसा। अपिच इनिना कारणेन अहं अत्तनो करणीयं उस्साहेन कातुं सक्खिस्सामि।

आपका शुभचिन्तक,
भिक्षु क० क० थितप्पंञो

१० दिसम्बर, १९४७

थाईदेश

स्वामी अगेहानन्द भारती नामके एक जर्मन विद्वान्, जो संन्यासी हो गए थे और कुछ दिनों तक भारत रहकर श्रीमान् सेठजीके सहयोगसे थाईदेश गए थे; थाईवासियोंके बीच हिन्दू-धर्म और हिन्दू-संस्कृतिके प्रचारकके रूपमें कार्य कर रहे थे। उनका निम्नलिखित पत्र बाबूजीके सहयोगके प्रति उनकी कृतज्ञताका प्रतीक है :

मान्य सेठजी,

ओम नमो नारायण।

निवेदन है कि मेरा यहाँ रहना अब भलीभाँति स्थापित हो गया है। विदेशी विभागको दो वर्ष रहनेकी जो दरखास्त दी है, वह पूर्ण रूपसे स्वीकार तो नहीं हुई है, पर आशा है कि हो जाएगी।

मेरा अध्ययन अच्छी तरह निष्पन्न होने लगा है। थाई भाषा यद्यपि प्रारम्भमें उच्चारणकी दुरूहताके कारण कठिन लगती थी, अब छह सप्ताहकी शिक्षा समाप्त करके सरल प्रतीत होती है। मुझे अब तनिक भी सन्देह नहीं कि प्राय: एक वर्षके भीतर ही इस पर अधिकार पा जाऊँगा और विद्यालय संस्थाओंमें थाई भाषामें अध्यापन कर सकूँगा। शब्द तो प्रायः साठ प्रतिशत पालि या संस्कृतके हैं, रूपविचार और उच्चारणमें अन्तर है। लिपि पर अधिकार हो पाया है। अंग्रेजी भाषामें भी यहाँ मेरे कई भाषण हुए।

भारतीयोंके प्रति जो हमारी सेवा हो सकती है, वह चालू है। नियमित दिनोंमें सत्संग तथा उपनिषदादि श्रुतियोंका उपदेश देता रहता हूँ, धीरे-धीरे जनताकी रुचि उत्पन्न होती जा रही है।

आपकी कृपासे ही रहने तथा भोजनका प्रबन्ध अच्छी तरह सम्पन्न हो गया। इन बातोंकी कोई शिकायत नहीं है। स्थानीय अध्यक्ष पण्डित रघुनाथजी शर्मा बड़े प्रेमसे मेरी देखभाल करते हैं।

शेष सब कुशल है। प्रार्थना है कि आपका स्वास्थ्यादि सब ठीक हों।

कृतज्ञता समेत सादर—

भवदीय,
स्वामी अगेहानन्द

वियतनाम

[हनोई स्थित भारतके कौन्सुलेट जनरल श्री आनन्दमोहनसहायका पत्र]

हनोई, जुलाई १३, १९५५

प्रिय सेठजी,

आपके ४ जुलाई '५५के पत्रसे यह जानकर कि आप स्वस्थ हैं, प्रसन्नता हुई। मैंने जिस युवाके लिए पिलानीमें प्रवेश दिलानेके सम्बन्धमें लिखा था, उसके लिए आपने पिलानी पत्र लिख दिया है, इसके लिए धन्यवाद। आशा है वह प्रवेश पानेमें सफल होगा।

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मेरी कन्या, जो बाहर मेरे प्रवास-कालमें गत ५ वर्षोंसे साथ रही है, उसका विवाह मारीशसमें होने जा रहा है। मारीशसमें मैं पीछे नियुक्त था। इस वर्ष दिसम्बरमें यह

* * *

विवाह सम्पन्न होगा और उस अवसर पर मैं भारत आनेकी आशा रखता हूँ। मुझे आपसे मिलकर और यहाँकी सर्सांकृतिक गतिविधियोंकी आपसे चर्चाकर बड़ी प्रसन्नता होगी।

जहाँ तक वियतनामका प्रश्न है, यहाँके अधिकांश लोग बौद्ध हैं। कुछ ही लाख व्यक्ति रोमन कैथोलिक धर्मके अनुयायी हैं। अधिकांश मन्त्री भी बुद्ध-धर्मके माननेवाले हैं। कुछ लोगोंको यह मिथ्या धारणा-सी बैठ गयी है कि कम्युनिस्ट देशोंमें कोई भी धार्मिक प्रवृत्ति वर्जित है। यहाँ सरकारकी ओरसे धार्मिक कृत्यों पर किसी प्रकारका प्रतिबन्ध नहीं है। सत्य तो यह है कि चीनकी सरकार भी यहाँकी सरकारकी ही भाँति प्राचीन बौद्ध मन्दिरोंके जीर्णोद्धार आदिके कार्यों में रुचि लेने लगी है।

यहाँके लोग बड़े गरीब हैं। फ्रांसीसी शासन-कालमें वे बड़े ही उपेक्षित रहे हैं। वे अशिक्षित, अन्ध-विश्वासी और सर्वथा पिछड़े हुए हैं। मैंने आकर यह अनुभव किया कि भारतकी ओरसे यहाँ बहुत कुछ करनेको पड़ा है। यहाँ साँस्कृतिक प्रचारका बहुत बड़ा क्षेत्र है। यहाँके लोग प्रकृतिसे भारत और भारतीयोंके प्रेमी हैं।

भारत सरकार वर्तमानमें इसकी पूर्ण स्वतन्त्रताकी घोषणा तक कुछ नहीं करनेवाली है। किन्तु गैर-सरकारी और गैर-राजनीतिक संस्थाएँ और व्यक्ति बहुत कुछ कर सकते हैं। इस दिशामें कार्यके लिए बहुत धनकी आवश्यकता होगी। यहाँ खाद्य-वस्तुओं, वस्त्रों आदिकी अत्यन्त कमी है। स्कूली बच्चोंके लिए तथा अनाथोंके लिए तो तत्काल ही कुछ भेजनेकी आवश्यकता है। इस प्रकारकी सहायतासे यहाँकी सरकार और जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ सकता है।

हमें ज्ञात नहीं, इस सम्बन्धमें आप कुछ करनेकी स्थितिमें हैं या नहीं। यहाँके लिए बहुत बड़ी रकमकी आवश्यकता होगी। इसके लिए अन्य उदारमना लोक-सेवी व्यक्तियोंका भी सहयोग अपेक्षित होगा। यदि इस प्रकार कुछ सम्भव हो जाय, तो यह बड़ी प्रसन्नताकी बात होगी। सहायता कार्यके लिए यह बहुत ही उपयुक्त समय है।

आपके स्वास्थ्य, प्रसन्नता और उन्नतिकी कामना करता हुआ——

भवदीय,
आनन्दमोहनसहाय

इण्डोनेशिया

[बुद्ध जयन्तीके अवसर पर आए हुए इण्डोनेशियाई प्रतिनिधिमण्डलका पत्र]

अशोक होटल,
नवम्बर २४, १९५६

श्रीयुत जुगलकिशोरजी बिरला,
बिरला हाउस, नयी दिल्ली

महोदय,

मुझे और इण्डोनेशियासे आने वाले बुद्ध-जयन्ती प्रतिनिधिमण्डलके सदस्योंको नयी दिल्लीमें आपके श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिरके निरीक्षणका अवसर प्राप्त हुआ।

मैं मन्दिरके भव्य दर्शन कर बड़ा ही आह्लादित हुआ। मन्दिरमें जावाके प्राभवनकी अनुकृति तथा भारत और इण्डोनेशियाके साँस्कृतिक चिह्नोंका प्रत्यक्ष अवलोकन कर मैं आनन्द-गदगद् हो उठा।

मैं अपनी पार्टीकी ओरसे आपके तथा मन्दिर स्थित आपके प्रतिनिधियों द्वारा प्रदर्शित उदार आतिथ्य-के लिए धन्यवाद करता हूँ।

आपके प्रति आदर और शुभ-कामनाओं सहित—

भवदीय,
प्रो० डॉ० पोरवत जरका
संस्कृताध्यापक,

गजमद विश्वविद्यालय,
जकार्ता, इण्डोनेशिया

बाली द्वीप

[श्री नरेन्द्रदेव पण्डितका पत्र]

माननीय श्री बिरलाजी,

जावाके पूर्वमें स्थित बाली द्वीप लगभग ९० मील लम्बा और ३५ मील चौड़ा है। सुदूर पूर्वमें एक परम रमणीक और दर्शनीय द्वीप है। सहस्रों यात्री प्रतिवर्ष इस रमणीय द्वीपकी यात्राके लिए आते हैं। इसके पूर्वमें एक छोटासा द्वीप लोम्बोक नामक है। जावा और इसके बीचमें केवल दो मीलका अन्तर है। परन्तु दोनों धर्मकी दृष्टिसे एक दूसरेसे बिलकुल भिन्न हैं। जब पन्द्रहवीं शताब्दीमें गजपति हिन्दू साम्राज्यका पतन हुआ, तो जावाके बहुतसे राजाओंने बाली द्वीपमें आकर शरण ली। तबसे बाली द्वीप मुस्लिम आक्रमणसे सदा सुरक्षित रहा। यहाँ प्राचीन हिन्दू-धर्म और संस्कृति तथा प्राचीन वर्ण-विभाग पूर्णरूपसे सुरक्षित चला आ रहा है। इस द्वीपकी आबादी लगभग १८ लाख है। बहुत अधिक संख्या हिन्दुओंकी है। हिन्दू ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-इन चार वर्णोंमें विभक्त हैं। दूसरी जातियोंके लोग कुछ हजारसे अधिक न होंगे। बालीके अतिरिक्त लोम्बोक द्वीपमें भी ६० हजार हिन्दू बसते हैं। इसके अतिरिक्त जावामें भी ५० हजार हिन्दू निवास करते हैं। इन द्वीपों में रहनेवाले हिंदुओंका नैतिक चरित्र उच्च है। परन्तु अब इन द्वीपोंमें राजनीतिक परिवर्तन के कारण बहुत-सी कठिनाइयाँ इनके लिए हो गयी हैं। इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। यहाँ बहुत ही थोड़े स्कूल, अस्पताल आदि हैं। दूसरे मतमतान्तरोंके प्रचारक इनकी दरिद्रताका लाभ उठाकर व इनको भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रलोभन देकर इन्हें अपने मतमें परिवर्तित करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। सर्वसाधारण लोग अपने धर्मके बारेमें बहुत कम जानते हैं और ब्राह्मण, पण्डे-पुरोहित स्वयं ज्ञानविहीन होनेके कारण इनको धर्मकी शिक्षा देनेमें असमर्थ हैं। ये धर्मको अपने धनोपार्जनका साधन बनाये हुए हैं और अधिकांशमें वे मन्त्रोंका उच्चारण भी अशुद्ध करते हैं और पूजा-संस्कार आदि भी गलत ढंगसे कराते हैं।

मैं लाहौरमें एक कॉलेजमें प्रोफेसर था। पंजाब-विभाजनके पश्चात् चीन, जापान होता हुआ अमेरिका अध्ययनार्थ जा रहा था। बाली आया तो मैंने सोचा कि अमेरिका जानेसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य तो यहीं है। भारतवर्षसे बहुत बड़े-बड़े लोग यहाँ आये, परन्तु बिना कुछ किये यहाँसे चले गये। अतएव भारत-वर्षके लोग इण्डोनेशियाके हिन्दुओंके सम्पर्कसे अलग बने रहे। अतएव मैं यहाँ बस गया और यहाँके लोगोंकी

* * *

भाषाका अध्ययन करने लगा। मैं अपने साथ ६० हजार रुपया लाया था। और इस छोटीसी रकमकी सहायतासे मैंने यथाशक्ति यहाँके हिन्दुओंके लिए कार्य किया है। मैं यहाँके बड़े-बड़े पण्डितों और राजाओंसे मिला और उनकी सलाहसे **'दश शील आगम'** अर्थात् बालीके धर्मके दस मूल सिद्धान्तोंपर एक पुस्तिका लिखी और इसकी सहस्रों प्रतियाँ यहाँ वितरित कीं। मैंने इण्डोनेशियाकी भाषामें रामायण भी लिखी है, परन्तु अर्थाभावके कारण मैं इसको प्रकाशित करनेमें असमर्थ हूँ। मैं वर्तमानमें भगवद्गीताका अनुवाद इण्डोनेशियाकी भाषामें कर रहा हूँ और आशा करता हूँ कि ६ महीनेमें इसको समाप्त कर दूँगा। हिन्दू-धर्मके सम्बन्धमें सैकड़ों व्याख्यान मैं यहाँ दे चुका हूँ, जिसका बहुत अच्छा प्रभाव यहाँके हिन्दू-परिवारों पर पड़ा है। परन्तु इतना पर्याप्त न समझकर मैंने यहाँ **'भुवन सरस्वती'** नामक संस्था स्थापित की है। धीरे-धीरे यह उन्नतिके पथपर अग्रसर हो रही है। अब हम लोगोंने इस संस्थाका एक भवन भी बना लिया है, जो छोटा-सा, लकड़ी तथा फूसका बना हुआ है। इसमें संस्कृत भाषा और धर्मकी पढ़ाई होती है। इसमें एक पुस्तकालय और वाचनालय भी है और भारतवर्षसे आनेवाले यात्रियों (अतिथियों)के लिए एक अतिथिशाला भी है। वर्तमानमें १५० विद्यार्थी इसमें संस्कृत और हिन्दू-धर्मका अध्ययन कर रहे हैं। इस संस्थाकी एक बाकायदा कार्यकारिणी-समिति भी है और वही इस संस्थाकी सम्पत्तिकी मालिक है। हमारे भिन्न-भिन्न कार्योंके लिए लगभग तीन लाख रुपयेकी आवश्यकता है। बाली द्वीपके हिन्दुओंकी ओरसे हिन्दू-धर्म और हिन्दू-संस्कृतिके नाम पर हम आपसे सहायताके लिए अपील करते हैं। आपका पता हमें डॉक्टर आत्रेयजीसे प्राप्त हुआ था, जो हालमें यहाँ आये थे। उनका बहुत अच्छा प्रभाव यहाँ पड़ा।'[1]

नरेन्द्रदेव पण्डित

[आई० सी० पुण्यात्मजका पत्र]

माननीय श्री बिरलाजी,

यह निवेदन करते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि आपका ता० २३ जुलाईका पत्र पाकर, जिसमें आपने हमारे छोटे-से बाली द्वीपके २० लाख आर्यधर्मियोंके प्रति अपना हार्दिक स्नेह प्रकट किया था; मैं कृतकृत्य हो गया। मुझे वे पुस्तकें भी मिल गयीं, जो आपने अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघके मन्त्रीके द्वारा भिजवायी थीं। यद्यपि मैं हिन्दी नहीं जानता, फिर भी आपने अपने पत्रमें जो स्नेह व्यक्त किया है, वह मैं समझ सकता हूँ, क्योंकि आप शुद्ध संस्कृतमयी हिन्दीमें लिखते हैं और साथ ही उसका अनुवाद भी रहता है। बाली द्वीप-वासियोंकी ओरसे आपको अनेकानेक धन्यवाद।

आध्यात्मिक दृष्टिसे बाली अपने ऋषि-मुनियोंकी भूमि भारतवर्षसे कदापि पृथक् नहीं है, यद्यपि भौगोलिक दृष्टिसे वे एक दूसरेसे दूर हैं और शताब्दियोंसे विदेशी शासनके कारण उनके बीचका सम्बन्ध छिन्न हो

१.[नरेन्द्रदेव पण्डितका उक्त पत्र प्राप्त होनेपर श्री बिरलाजीने भुवन-सरस्वतीके लिए तुरन्त ही सहायताकी व्यवस्था की और अ० भा० आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघकी ओरसे लगातार कई वर्षों तक २०० रु० मासिककी सहायता भुवन सरस्वतीको जाती रही। इसके अतिरिक्त हिन्दू-धर्म, दर्शन और संस्कृति सम्बन्धी पुस्तकें भी वहाँ भेजी गयीं और वहाँके छात्रोंकी शिक्षाके लिए एक संस्कृत प्राइमर भी भारतसे छपवाकर भेजी गयी।—सम्पादक

गया है। बाली उस पुण्य भारतवर्षका ही अंग है, जो वैदिक तथा उपनिषद्के मन्त्रद्रष्टाओंका वासस्थान रहा है। पुराण, रामायण, महाभारत आदि बालीवासियोंके पवित्र धर्मग्रन्थ हैं तथा यहाँ वे भारतीय बन्धुओंकी अपेक्षा अपने धर्म-ग्रन्थों तथा संस्कृतिमें किसी भी प्रकार कम आस्था नहीं रखते। बालीवासी हिन्दू अपने सनातनधर्म और संस्कृतिकी रक्षामें अपने जीवनकी रक्षासे भी कहीं अधिक तत्पर हैं। मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि बालीके बहुसंख्यक लोग अपनी सम्पत्तिका उपयोग अपने जीवन-निर्वाह तथा भौतिक सुखकी अपेक्षा धार्मिक कृत्योंमें ही अधिक करते हैं। यह बात उच्च परिवार जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यसे लेकर शूद्र-तक में है।

बालीवासियोंकी प्रथा है कि वे यज्ञ आदिके लिए धन एकत्र करते हैं, न कि आरामके लिए। बालीके लोग तबतक अपनेको सफल नहीं मानते, जबतक कि उनकी सम्पत्तिका दो-तिहाई भाग पितृ-यज्ञ, देवयज्ञ और भूतयज्ञमें न लग जाय। वैदिक और ब्राह्मण ग्रन्थोंसे पोषित अध्यात्मवादका अस्तित्व बालीमें शिलाकी भाँति अचल है। यही कारण है कि आज भी बाली अपने यज्ञ-यागके कृत्योंके द्वारा अपनी सारी विपन्नताके होते हुए भी इण्डोनेशियामें सर्वाधिक उन्नतिशील माना जाता है। प्रतिवर्ष वसन्तकालमें प्रत्येक राज्य, जिला और ग्राममें बाली राज्य सरकारकी ओरसे २० लाख बालीवासियोंकी शुभकामनाके लिए देवयज्ञ और भूतयज्ञपर सहस्रों रुपये व्यय किये जाते हैं। हमारे यहाँके सनातनधर्मके पुरोहित अथवा जनता सरकारको टैक्स नहीं दें, यदि सरकार द्वारा उक्त यज्ञ (पंच-बलि-कर्म और रुद्रयज्ञ) न पूरे किये जायँ। अतः हमारे यहाँ आज भी बालीकी राज्य-सरकार हमारे धार्मिक कृत्योंको सम्पन्न करनेका उत्तरदायित्व वहन करनेको बाध्य है। बालीकी सरकार इस उत्तरदायित्वसे नहीं मुक्त हो सकती। सभी प्रमुख मन्दिर राज्य सरकार द्वारा संरक्षित हैं और उनकी मरम्मत पर पर्याप्त व्यय किया जाता है। यदि ऐंसा न हो, तो हमारी जनता हड़ताल कर दे और अमीरसे लेकर गरीब तक कोई भी व्यक्ति सरकार को कुछ न दे।

यद्यपि हमारे यहांके पण्डितोंका दार्शनिक ज्ञान भारतीय पण्डितोंकी अपेक्षा कम है, किन्तु वे आध्यात्मिक शक्तिसे शून्य नहीं हैं। क्योंकि उन्हें अपने धार्मिक ग्रन्थोंमें अटल विश्वास है। मेरा विश्वास है कि बाली निवासी जीवन-यापनके जो नियम और अनुशासन हमारे धर्मग्रन्थों और स्मृतिग्रन्थोंमें निहत हैं, उनका पालन अपने भारतीय भाइयोंसे बढ़कर करते हैं। मैं आपसे निवेदन करूँ कि १९५२ तक जनतामें शान्ति और सुरक्षा-के लिए, विशेषकर विवाहोंके विषयमें बालीकी राज्य सरकारने अपने हाईकोर्टमें मनुस्मृतिमें विहित आदेशों-का ही पालन किया है। आजतक भी बाली निवासी मनुस्मृतिका अनुलोम विवाह ही करते हैं। ब्राह्मण जाति अपनी सहायक अन्य तीन जातियों जैसे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी कन्यासे विवाह कर सकती है। किन्तु इसका प्रतिलोम नहीं हो सकता। यदि कोई निम्न जातिका व्यक्ति किसी उच्चवर्णकी कन्यासे प्रेम करने लगे और उससे विवाह कर ले, तो वह सरकार द्वारा दूर एकान्तद्वीपमें कुछ वर्षोंके लिए निर्वासित कर दिया जायगा। निम्न जातिके (शूद्र) लोग अपनेको बड़ा भाग्यशाली समझते हैं, यदि उनकी कन्याएँ ब्राह्मणोंसे विवाहित होती हैं। उनका विश्वास है कि उनकी आत्मा उनकी जातियोंसे (जो द्विजाति होंगे) मुक्त होगी। बहुतसी बातें हैं, जो आपको इस पत्रमें लिखना है। यदि आप अपने बाली निवासी भाइयोंके सम्बन्धमें अधिक जानना चाहेंगे, तो मैं आपको लिखता रहूँगा; जिससे कि आपको उनकी धार्मिक स्थितिका पूर्ण ज्ञान हो जाय।

मेरी भारत-यात्रा कोई कम महत्वपूर्ण नहीं और न मैं अन्य विदेशी छात्रोंकी भाँति केवल शास्त्रीय ज्ञानके लिए आया हूँ। ऐसा ज्ञान प्राप्त करना मेरे गौण उद्देश्योंमेंसे है। मेरा प्रधान उद्देश्य आध्यात्मिक-साधना है और अपने प्राचीन भारतवर्षके महापुरुषोंसे आशीर्वाद प्राप्त करना है। आपको ज्ञात ही है कि जिन

* * *

मन्त्रोंको हमारे ऋषियों एवं अवतारोंने परमेश्वरकी कृपासे उपलब्ध किया था, वे कोरे शास्त्रीय ज्ञानसे अपने सम्मुख नहीं प्रकाशित हो सकते। इस प्रकारका अध्ययन अपनी ग्रहणशक्ति, अध्यापकोंके अपने दृष्टिकोण तथा ज्ञान तक ही सीमित होता है। उन मन्त्रोंका ज्ञान केवल आध्यात्मिक साधना एवं आत्मदर्शनसे ही सम्भव है। ऐसी साधना और आत्मदर्शनके लिए केवल मन-जैसी साधारण अन्तःशक्ति ही अपेक्षित नहीं है। मैं केवल इसी विशेष उद्देश्यको लेकर इस ऋषिभूमिमें आया हूँ और सौभाग्यतः भगवान् वासुदेव एवं ऋषियोंकी कृपासे मैं अपने लक्ष्य-साधनमें सफल रहा। मैं अब अपनी जन्मभूमि बाली जा रहा हूँ। श्रीकृष्ण और अन्य महापुरुष मुझपर अपने आशीर्वादोंकी वर्षा कर रहे हैं और उसी प्रकार जैसे वे किसी भारतीय पर करते हैं। मेरी भी उनमें भक्ति किसी भारतीयसे कम नहीं है। मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप सब मुझे कोई विदेशी न समझें, क्योंकि मैं आपका निकटस्थ आध्यात्मिक सम्बन्ध रखनेवाला हूँ। मैं जहाँ भी गया, आपके व्यक्तियोंने असीम प्रेमसे मेरा स्वागत किया, क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि मैं उनसे अभिन्न हूँ। आपको ज्ञात होगा कि मैं पुरोहित (ब्राह्मण) कुलका हूँ और बचपनसे ही प्रणव-मन्त्रोंको सुननेका अभ्यस्त रहा हूँ। इनके प्रति मेरी अतीव आस्था है।

मैं आपकी मंगल कामना करता हूँ। आपको अक्षय शान्ति मिले, क्योंकि आपने धर्मरक्षा के लिए अनेक पुण्यकार्य किये हैं। जब भी अवसर मिलेगा, मैं आपके दर्शन करूँगा।[1]

शुभाकांक्षाओं सहित—

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय — भवदीय,

३० जुलाई, १९५६ — **आई० सी० पुण्यात्मज ओका**

[श्री बिरलाजीका उत्तर]

२३-७-५६

श्रावण कृष्ण १, सं० २०१३

प्रिय श्री पुण्यात्मजजी,

नमस्ते। आपका १६ जुलाईका कृपापत्र मिला, अनेक धन्यवाद। आपके पत्रसे यह जानकर परम प्रसन्नता हुई कि बालीके हमारे हिन्दू भाई अभी भी हिन्दू-धर्मको उसके प्राचीन और विशुद्ध रूपमें अनुसरण कर रहे हैं। इसके लिए उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है और प्रत्येक हिन्दू-धर्म-प्रेमी को उनका कृतज्ञ होना चाहिए। हम भारतीय हिन्दुओंका बालीके हिन्दुओंके प्रति महान् कर्तव्य है, परन्तु यह कहते हुए हमें लज्जा होती है कि बालीके हिन्दुओंके प्रति हम लोगोंने अपने कर्तव्यका पालन नहीं किया है। मैंने तो जो कुछ बालीके अपने हिन्दू भाइयोंके प्रति किया है, वह उस कर्तव्यका हजारवाँ हिस्सा भी नहीं है; जो मुझे करना चाहिए था। यह मेरी आन्तरिक इच्छा तथा परमेश्वरसे प्रार्थना है कि बालीके हिन्दू पुनः उस महान्

---

१. [श्री पुण्यात्मजजी श्री बिरलाजीसे छात्रवृत्ति प्राप्त कर संस्कृतके माध्यमसे हिन्दू-धर्म, संस्कृतिका उच्च अध्ययन करनेके लिए बालीसे भारत आए थे और काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें उन्होंने अपना अभीष्ट प्राप्त किया था।—सम्पादक

गौरवको प्राप्त करें, जो उन्हें प्राचीनकालमें प्राप्त था। बालीके हिन्दू लोग हमारे सहोदर भाईके समान हैं और उनको उन्नत तथा सुखी देख कर हम लोगोंको परम प्रसन्नता होगी। यह एक दुर्भाग्यकी बात है कि लगातार बहुत समय तक विदेशी आक्रमणों तथा विदेशी पराधीनताके कारण दोनों देशोंके हिन्दुओंके बीच सम्पर्क कई शताब्दियों तक विच्छिन्न रहा। परन्तु अब प्रसन्नताकी बात है कि यह सम्पर्क पुनः स्थापित हो गया है और आशा है कि यह सम्बन्ध दिन-पर-दिन अधिक दृढ़ और गहरा होता जायगा। आशा है, आप तथा अन्य बालीके विद्यार्थी, जो यहाँ अध्ययनार्थ आये हुए हैं, भारत तथा बालीके हिन्दुओंके बीच भ्रातृभावका सम्बन्ध अधिक दृढ़ करनेमें सहायक होंगे।

मैंने अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघ वालोंसे आपके पास हिन्दू-धर्म तथा संस्कृति सम्बन्धी कुछ पुस्तकें भेजनेके लिए कहा है। आशा है, आप उनके अध्ययनसे लाभ उठायेंगे। शुभकामना सहित।

भवदीय,

बिरला हाउस, नयी दिल्ली

जुगलकिशोर बिरला

[श्री नरेन्द्रदेव पण्डितका पत्र]

जाकार्ता, जावा २९-७-१९५५

माननीय बिरलाजी,

मैं १५ जुलाईको बालीसे चलकर २० जुलाईको जावाकी राजधानी जकार्ता पहुँचा। यहाँ अपनी नयी पुस्तकों 'सेदजरह आगम हिन्दू' (हिन्दू-धर्मका इतिहास), 'इण्टिसारी आगम' (हिन्दू-धर्म संक्षेपमें) और 'त्रिसन्ध्या'को प्रकाशित कराना है। मैंने इन पुस्तकोंको सुराबायाके एक प्रेसमें छपनेके लिए दे दिया है। इसके छपानेमें प्रायः बीस हजार रुपये लगेंगे। ये पुस्तकें तीन महीनेमें छपकर तैयार हो जायेंगी। जैसे ही ये पुस्तकें तैयार हो जायेंगी, उनमेंसे प्रत्येककी प्रतियाँ आपकी सेवामें भेज दूँगा।

पहली अगस्तको मैं बालीके लिए रवाना हो रहा हूँ और ६ तारीख तक वहाँ पहुँच जाऊँगा। ८ अगस्तको हमारे स्कूल ग्रीष्मावकाशके बाद पुनः खुल जायेंगे। जावाके भारतीय मुझसे कुछ और अधिक समय तक यहाँ रहनेका आग्रह कर रहे हैं, किन्तु मुझे स्कूल खुलनेके पूर्व बाली अवश्य पहुँच जाना है।

इस वर्षकी प्रमुख घटनाओंमें **धर्म-विद्यालय**की स्थापना है। उक्त विद्यालयमें ४० विद्यार्थी हैं। ये छात्र **द्विजेन्द्र धर्म विद्यालय**के २०० छात्रोंमेंसे चुनकर लिये गये हैं और ये ४ वर्ष तक धर्मके सम्बन्धमें अध्ययन करेंगे। ये प्रति सप्ताह ३६ घण्टे धर्मका अध्ययन करेंगे और छात्रावासमें रहेंगे। वे यहाँ निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करेंगे और मैंने उन्हें भविष्यमें कामके लिए आश्वासन भी दिया है। यह एक बड़ा उत्तरदायित्व हम लोगोंने अपने ऊपर लिया है, किन्तु यह सब कुछ स्थानीय हिन्दुओं और बाली-सरकारके सहयोगसे ही सम्भव हुआ है। मैंने **जकार्ता** तथा अन्य स्थानों पर बसे हुए भारतीय हिन्दुओंसे भी सहायताकी अपील की है और वे इसमें दिलचस्पी ले रहे हैं। आज जकार्ताके सिखोंने ६ सहस्र रुपयोंका खेलका सामान हमारे विद्यार्थियोंके लिए दानस्वरूप देनेका निश्चय किया है। कुछ धनी सिन्धी व्यापारियोंने बालीमें पढ़नेके लिए जावाके छात्रोंको छात्रवृत्ति देनेका वचन दिया है। इस वर्ष मैं अपने साथ जावाके पहाड़ी इलाकोंसे ५ हिन्दू छात्रोंको बाली ला रहा हूँ। मैं आशा करता हूँ कि आप भी इण्डोनेशियाके हिन्दुओंके हितके लिए अपनी सहायता जारी रखेंगे।

* * *

और अन्य भारतीयोंको भी इस ओर अधिकसे अधिक सहायता भेजनेकी प्रेरणा देंगे। आगे चलकर हमारी योजना अपने इस स्कूलको एक विश्वविद्यालयका रूप देनेकी है। अनुमान है कि यह कार्य तीन-चार वर्षमें पूरा हो जायगा।

हमें आप द्वारा भेजी गयी पुस्तकें इत्यादि समुद्री डाकसे मिल गयी हैं। आपके इस उदार दानके लिए धन्यवाद है। यदि आप निम्नलिखित पुस्तकें डाक द्वारा भेजनेकी कृपा करें, तो हम आपके बड़े कृतज्ञ होंगे :

१.	हिन्दी प्रवेशिका	३०० प्रतियाँ
२.	संस्कृत शिक्षावली भाग १	२०० प्रतियाँ
३.	संस्कृत शिक्षावली भाग २	१५० प्रतियाँ
४.	नेस्फोल्ड इंगलिश ग्रामर, मैकमिलन एण्ड कम्पनी	५० प्रतियाँ
५.	महाभारत संस्कृत	१ प्रति
६.	श्रीमद्भागवतम् संस्कृत	१ प्रति
७.	महाभारतके रंगीन चित्र	२५-२५ प्रतियाँ प्रत्येककी
८.	गणेशजीका रंगीन चित्र	२५ प्रतियाँ
९.	इंगलिश और संस्कृत बुक्स	२५ प्रतियाँ
	दिल्ली युनिवर्सिटीकी मैट्रिकुलेशन परीक्षा	१ सैट
१०.	गीता उपदेश चित्र (मथुराका छपा बड़ा साइज रंगीन)	२५ प्रतियाँ
११.	वंशी दो दर्जन (अच्छे स्वरवाली)	स्कूलके बैंण्ड बाजेके लिए

इन सबोंको पोस्टसे भेजनेकी कृपा करेंगे। शेष रुपयोंके लिए मैं पुनः आपको पत्र लिखूंगा। मैं इस सम्वन्धमें जकार्ताके अन्य सहयोगियोंसे भी विचार-विमर्श कर रहा हूँ।

पुनश्च :

गत सप्ताह हमारे राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादजी बाली द्वीपकी यात्रा पर आये थे और उन्होंने मुझे मिलनेको बुलाया था। मैं उनके साथ एक घण्टे तक रहा और उनसे बालीमें भारतीय-संस्कृतिके सम्बन्धमें चर्चा होती रही। वे मेरे यहाँके सेवाकार्यसे बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने मुझे श्री हुमायूँ कबीरसे परिचित कराया तथा उनसे मेरे उद्देश्य-साधनके लिए सहायता देनेको भी कहा। बालीके हिन्दुओं द्वारा राष्ट्रपतिका हिन्दू ढंगसे जो स्वागत किया गया, उससे वे बहुत प्रभावित हुए। हमारे भुवन सरस्वती विद्यालयके प्रायः ५० छात्रोंने बालीकी परम्परानुकूल वेशभूषामें उनका स्वागत किया। यहाँके हिन्दू राजा तथा दो पुरोहितोंने राष्ट्रपतिका हवाई अड्डे पर स्वागत किया। सर्वप्रथम पुरोहितोंने वेदमन्त्र पाठपूर्वक राष्ट्रपति पर गंगोदक छिड़का और हिन्दू धार्मिक रीतिसे उनको अर्घ्य-प्रदान किया। यह एक दर्शनीय समारोह था और उससे अतिथि-दल बहुत ही प्रभावित हुआ।

राष्ट्रपतिने मेरे यहाँके साहसपूर्ण कार्य और इसके लिए मिलनेवाली सहायता आदिके सम्बन्धमें पूछा। मैंने उनके तथा श्री हुमायूँ कबीरके आगे यह स्पष्ट कर दिया कि श्री बिरलाजी अ० भा० आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघके द्वारा हमें यह सहायता भेज रहे हैं तथा हर प्रकारसे हमारी मदद कर रहे हैं। राष्ट्रपतिजीको यह जानकर प्रसन्नता हुई और उन्होंने इसके लिए श्रीमान् बिरलाजीकी सराहना की। आप कृपया उनसे मिलें और बाली द्वीपके सम्बन्धमें तथा हमारे कार्योंके सम्बन्धमें उनके विचार अवगत करें। हमारी यह हार्दिक

इच्छा थी कि हम उन्हें अपने विद्यालय तथा अन्य संस्थाएँ दिखायें, किन्तु इण्डोनेशियाके राष्ट्रपति उनके साथ थे और वे नगरसे बहुत दूर एक प्रासादमें ठहरे थे। इन कारणोंसे हम वैसा न कर सके।

भुवन सरस्वती (बाली)

भवदीय,

नरेन्द्रदेव पण्डित

३ अक्टूबर, १९५६

श्रद्धेय श्री बिरलाजी,

माननीय डॉक्टर राधाकृष्णन्के इण्डोनेशिया-भ्रमण तथा उनके स्वागत-सत्कारके सम्बन्धमें आपका पत्र मिला, अनेक धन्यवाद। ऑल इण्डिया रेडियो द्वारा मुझे पहले ही पता चल गया था कि डॉक्टर राधाकृष्णन् इण्डोनेशिया आनेवाले हैं। बाली द्वीपमें उनके स्वागत-सत्कारके लिए जो स्वागत समिति बनी थी, उसमें मैं भी एक सदस्य था। हम लोगोंने अपनी शक्ति भर उनका हार्दिक स्वागत किया। ६,००० भारतीय झण्डियाँ तैयार कराकर स्कूलके बालकोंमें उनके स्वागतके लिए वितरित की गयीं। हवाई अड्डे पर सरकारके सब उच्च अधिकारी और प्रसिद्ध नागरिक उनके स्वागतके लिए उपस्थित थे। बाली द्वीपकी प्रथाके अनुसार नगर सजाया गया था। जब नगरमें उन्होंने प्रवेश किया, तो लोगोंने ताली वजाकर उनका भव्य स्वागत किया। उनके भोजनका प्रबन्ध एक क्षत्रियके महलमें किया गया था। मार्ग अच्छी तरहसे सजाया गया था। छात्रों द्वारा उनका स्वागत करनेके लिए सब स्कूलोंमें छुट्टी कर दी गयी थी। सन्ध्या समय उनके सत्कारमें एक डिनर (भोज) दिया गया, जिसमें २००से अधिक प्रतिष्ठित और गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। अभाग्यवश बालीमें उनका निवास केवल एक रात और आधे दिनके लिए ही हुआ। अतएव किसी सभाका प्रबन्ध करना सम्भव न हुआ। हमारी संस्थाका भी निरीक्षण वे न कर सके। उनके भ्रमणका सारा कार्यक्रम इण्डोनेशिया सरकारके द्वारा निश्चित किया गया था और उसमें कोई परिवर्तन करना सम्भव न था। परन्तु बाली द्वीपके बारेमें तथा यहाँके धर्म और उसकी संस्कृतिके सम्बन्धमें उनको कुछ ज्ञान अवश्य हो गया। उनके भ्रमणमें मैं उनके साथ-साथ था और कई बार उनके साथ वार्तालाप भी हुआ। इस द्वीपमें हिन्दू-धर्मकी वर्तमान परिस्थितिको देखकर उनको दुःख हुआ। उन्होंने यह अनुभव किया कि बालीमें हिन्दू-धर्म उन्नत अवस्थामें नहीं है और धर्मके वास्तविक तत्वको छोड़कर बालीके लोग केवल उत्सव-त्यौहार आदि पर ही अधिक बल देते हैं। हिन्दू-धर्मको यहाँ आधुनिक रूप देना चाहिए तथा धार्मिक शिक्षाको प्रोत्साहन देना चाहिए।

मैं बहुत दिनोंसे इस बातकी चिन्तामें हूँ कि आपका संघ तथा भारतकी अन्य हिन्दू संस्थाएँ इण्डोनेशिया-के हिन्दुओंके साथ सीधा सम्पर्क स्थापित करें। भाग्यवश अमेरिकाकी 'फोर्ड फाउण्डेशन' नामक संस्था बाली द्वीपके एक हिन्दू नेताको भारत भेजनेके लिए सहायता देनेको उद्यत हो गयी है। बाली द्वीपके उक्त हिन्दू नेता-का नाम "**गस्ती तम्बा**" है। उन्होंने मेरी पुस्तकोंका इण्डोनेशियाकी भाषामें अनुवाद किया है और यहाँ मेरे कार्यमें वे मेरे दाहिने हाथ हैं। वे २९ सितम्बरको जापानके लिए यहाँसे रवाना हो गये हैं और पहली नवम्बरको वे जापानसे भारतके लिए प्रस्थान करेंगे। भारतमें वे एक महीना रहेंगे और वहाँ वे हिन्दुओंकी सार्वजनिक संस्थाओं, धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाओं और हिन्दुओंके धार्मिक जीवनका अध्ययन करेंगे। मैं बहुत कृतज्ञ होऊँगा, यदि आप उनके भ्रमणका प्रबन्ध करेंगे और उन्हें अपने अतिथिके रूपमें ग्रहण करेंगे। वे कलकत्ता विश्वविद्यालय, रामकृष्ण मिशन, ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, जैन मन्दिर, राष्ट्रीय पुस्तकालय, शान्तिनिकेतन,

* * *

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, ऋषिकुल गुरुकुल, हरिद्वार, पिलानी, दयालबाग-आगरा, बम्बई और मद्रासका भ्रमण करेंगे। उनकी हवाई जहाजकी यात्राका व्यय अमेरिकाकी फोर्ड फाउण्डेशन नामक संस्था देगी। मुझे आशा है कि भारतमें उनका मार्गव्यय, भोजन, ठहरने आदिका उचित प्रबन्ध आपकी संस्था तथा अन्य मित्र कर देंगे। १९४९से उनका मेरा साथ है और धर्मकी शिक्षामें वे मेरे शिष्य भी रह चुके हैं। १९५३में हम दोनोंने मिलकर **"ययासन द्विजेन्द्र"** नामक एक धार्मिक कक्षाका प्रारम्भ किया था और १९५५में हम दोनोंने **"धर्म विद्यालय"**की स्थापना की, जिसके प्रधान अध्यापक वे नियुक्त किये गये। बादको उसका नाम **"ययासन सरस्वती"** रखा गया। वर्तमानमें **'ययासन सरस्वती'**की १३ शाखाएँ हैं, जिनमें ४,८०० छात्र अध्ययन करते हैं। इस प्रान्तमें यह सबसे बड़ी सार्वजनिक संस्था है। यही कारण है कि फोर्ड फाउण्डेशनकी ओरसे वे एशियामें भ्रमणके लिए चुने गए हैं। वे भिन्न-भिन्न देशोंमें शिक्षा-प्रणालीका भी अध्ययन करेंगे। भारतमें वे हिन्दुओंकी धार्मिक, सामाजिक संस्थाओंका निरीक्षण करेंगे तथा हिन्दुओंके धार्मिक तथा सामाजिक जीवनका अध्ययन करेंगे। विशेष आप स्वयं उनसे भेंट होने पर ज्ञात करेंगे। कृपया उनके सम्बन्धमें समाचार पत्रोंमें परिचय आदि प्रकाशित करें और उनके स्वागतमें कुछ सभाएँ भी करानेका प्रबन्ध करें, तो उत्तम होगा। वे डच, फ्रेंच, जर्मन और अंग्रेजी भाषा जानते हैं। कृपया शीघ्रसे शीघ्र इसके सम्बन्धमें मुझे उत्तर देनेका कष्ट करें, जिससे मैं उन्हें यथासमय सूचित कर सकूँ। आशा है आप अपने किसी आदमीसे कहेंगे, जो उनका स्वागत कलकत्तेके हवाई अड्डे पर करे।

इस वर्ष मैं दिल्लीमें बुद्ध-जयन्तीके अवसर पर एक हिन्दू पण्डाको भी भेजनेकी चेष्टा कर रहा हूँ। इसके बारेमें आपको फिर सूचित करूँगा। मैं कुछ चित्र आदि भी अलगसे भेज रहा हूँ। आपने फ्रेंच साधु जे० फ्रेमेजके बारेमें लिखा है कि वे बाली द्वीप आ रहे हैं। जब वे यहाँ आयेंगे, तो उनका स्वागत-सत्कार करने तथा उनकी यथासम्भव सहायता करनेमें मुझे प्रसन्नता होगी। उनके ठहरनेका प्रबन्ध हम अपनी धर्मशालामें कर देंगे तथा उनके मार्ग-व्ययका प्रबन्ध मैं अपने बालीके मित्रोंसे करा दूँगा।

भुवन सरस्वती (बाली)

भवदीय,
नरेन्द्रदेव पण्डित

[श्री बिरलाजीके देहावसानके समय जून, १९६७में श्री नरेन्द्रदेव पण्डितने बिरलाजीको पत्र लिखकर सूचित किया था कि उनके तथा सहयोगियोंके सत्प्रयत्नसे जावामें ५० लाख लोगोंने अपने पूर्वजोंके लिए हिन्दू धर्मकी पुनः दीक्षा ग्रहणकर हिन्दुत्वको स्वीकार किया। हिन्दुओंकी जनसंख्या अनुदिन बढ़ रही है। इण्डोनेशियायी सरकारने एक पृथक् **'हिन्दू-धर्म मन्त्रालय'** भी स्थापित किया है। यह पत्र समाचार पत्रोंमें प्रकाशनार्थ भेज दिया गया था। सहयोगी दैनिक हिन्दुस्तानमें प्रकाशित सार-समाचार यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—सम्पादक]

'पण्डित नरेन्द्रदेवके पत्रमें एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि इण्डोनेशियाकी सरकारमें एक मन्त्रालय हिन्दू-धर्म मन्त्रालयके नामसे भी है। इसे अंग्रेजी भाषामें (Ministry of Hindu Religion) कह सकते हैं। इस मन्त्रालयका विभागीय कार्य हिन्दू-धर्मकी रक्षा, प्रचार और प्रसार करना है और यह कार्य एक मन्त्रीकी देख-रेखमें हो रहा है। वहाँकी एक विशेष उल्लेखनीय बात यह भी है कि बालीमें प्रतिदिन रेडियोका कार्यक्रम गायत्री तथा अन्य वैदिक मन्त्रोंके पाठसे प्रारम्भ होता है तथा सभी विद्यालयोंके छात्र प्रतिदिन अपना अध्ययन वैदिक मन्त्रों और प्रार्थना करनेके उपरान्त प्रारम्भ करते हैं।'

* * *

श्रीलंका

[इण्टरनेशनल बुद्धिस्ट सेण्टरकी आधारशिला रखनेके लिए श्री बिरलाजीको आमन्त्रण]

इण्टरनेशनल बुद्धिस्ट सेण्टर
श्रीविक्रेमा रोड, वेल्लावट्टी, कोलम्बो, सीलोन

प्रिय महोदय,

हम यह सादर सूचित करते हैं कि हमारे इस एसोसिएशनने बुद्ध-जयन्ती समारोहके अवसर पर वेल्लावट्टी, कोलम्बोमें एक "इण्टरनेशनल बुद्धिस्ट सेण्टर"की स्थापना करनेका निश्चय किया है। यह प्रस्तावित सेण्टर सभी देशोंके तथा सभी विचारोंके विद्वानोंके एक मिलन-तीर्थका रूप लेगा, जहाँ वे एक दूसरेको अच्छी तरह समझने और अपने मैत्री-भावको दृढ़ करनेका अवसर प्राप्त कर सकेंगे।

जैसा कि हमारी इस समितिने सर्वसम्मतिसे निर्णय किया है, हम आप-जैसे भारतके महानतम मानव-सेवी पुरुषको इस सेण्टरकी आधार-शिला रखनेके लिए आमन्त्रित करते हैं।

कोई भी भारतका यात्री, जो कैसी भी त्वरामें क्यों न हो, वहाँ आप द्वारा करोड़ों भारतीयोंके लिए की गयी सेवाओंसे अपरिचित रह कर नहीं लौटता।

श्रीलंकाका प्रत्येक बुद्ध यात्री, जो भारतकी यात्रा पर गया है, उसे सारनाथ, कुशीनगर, बोध गया, दिल्ली आदि स्थानोंमें आप द्वारा निर्मित भव्य अतिथि-शालाओंमें शरण और आतिथ्य मिला है। ये अतिथि-शालाएँ आपके विशाल और उदार हृदयके जीवन्त स्मारक हैं।

यह एक स्मरणीय और ऐतिहासिक घटना होगी यदि आप हमारे इस आमन्त्रणको स्वीकार करेंगे और लगभग २ लाखके व्ययसे बननेवाले उस अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध केन्द्रकी आधार-शिला रखेंगे, जो भारतके एक महानतम सुपुत्र भगवान् तथागतके सन्देश प्रसारित करनेका एक केन्द्र बनेगा।

आपको समयाभाव होगा, इसका हमें ध्यान है। फिर भी अक्टूबर और दिसम्बर '५५के बीच कोई भी दिन हम लोगोंके लिए उपयुक्त होगा। आपकी स्वीकृति आने पर हम पीछे उस विशेष शुभ दिन और समयकी सूचना आपके पास भेजेंगे।

हम श्री लंकावासी आपसे अनुकूल उत्तर पानेकी आशा रखते हैं और आप-जैसे भारतके महान् दानी पुरुषको यहाँ श्रीलंकामें देखनेके लिए अत्यन्त लालायित हैं।

आप द्वारा सम्पादित पुण्य-कार्य आपको बल प्रदान करेंगे, आप चिरायु हों और आनन्द प्राप्त करें, यही हम लोगोंकी शुभ कामना है।

श्रीयुत सेठ जुगलकिशोरजी बिरला,
बिरला हाउस,
नयी दिल्ली, भारत

सप्रेम
अवैतनिक मन्त्री

* * *

कर्तव्य-पालन और मैत्री भावना

[श्री बिरलाजीका साभार उत्तर]

बिरला हाउस, नयी दिल्ली
अक्टूबर ७, १९५५

प्रिय महोदय,

नमो बुद्धाय। आपके २४ तारीखके पत्रके लिए धन्यवाद। मुझे यह जानकर परम प्रसन्नता हुई कि आप लोग कोलम्बोमें एक "अन्तर्राष्ट्रीय बुद्धिस्ट सेण्टर"की स्थापना करने जा रहे हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह केन्द्र धर्मके प्रचारमें तथा पारस्परिक भ्रातृ-भावको बढ़ानेमें बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

कोलम्बोमें उक्त सेण्टरकी आधार-शिला रखनेके लिए आपने जो मुझे आमन्त्रित किया है, उसके लिए मैं आपका बड़ा उपकृत हूँ। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं आपके देशकी यात्रा करूँ और वहाँकी जनतासे मिलूँ। किन्तु कई अनिवार्य कारणोंसे इस वर्ष यह लम्बी यात्रा करनेकी अनुकूलता मेरे लिए सम्भव नहीं है। आशा है, मेरी इस असमर्थताके लिए आप लोग मुझे क्षमा करेंगे। यदि अगले वर्ष आपके देशमें आनेका सौभाग्य प्राप्त कर सका, तो आप लोगोंसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। यदि इस बार ही मुझे वहाँ आनेकी अनुकूलता सम्भव हुई, तो मैं नवम्बर मास में, दिल्ली स्थित आपके हाई कमिश्नरको सूचित कर दूँगा।

जैसा कि आपने सारनाथ, कुशीनगर, बोध गयामें बुद्ध-मन्दिर और धर्मशालाओंके निर्माणके सम्बन्धमें अपने पत्रमें उल्लेख किया है, वह सब बौद्ध भाइयोंके प्रति हम भारतीयोंके कर्तव्य और मैत्री-भावनाकी दृष्टिसे ही किया गया है।

धार्मिक दृष्टिसे हम श्रीलंका और भारतके निवासी सहोदर भाईके समान हैं। बुद्ध-धर्म और हिन्दू-धर्म एक ही महावृक्षकी दो शाखाएँ हैं। आपके देश और हमारे देशके बीच युगातीत कालसे धार्मिक और साँस्कृतिक सम्बन्ध रहे हैं। आशा है, भविष्यमें ये सम्बन्ध और भी दृढ़ होंगे। आपका देश फूले, फले और उसका दिन-दूना, रात-चौगुना अभ्युदय हो, यही मेरी हार्दिक कामना है।

मन्त्री, इण्टरनेशनल बुद्धिस्ट सेण्टर,
कोलम्बो, सीलोन

सप्रेम
जे० के० बिरला

कार-निकोबार द्वीप

[शुभश्री रानी चंगाका पत्र]

श्रीयुत सेठ जुगलकिशोरजी बिरला,
बिरला हाउस, नयी दिल्ली

नेहरू ग्राम, कचाल, निकोबार,
दिनांक १९-३-१९६६

श्रीमान्‌जी,

आपका पत्र-संख्या ७१।६६, दिनांक ५-२-६६का पत्र आज पाकर बड़ी खुशी हुई। यहाँके सम्बन्धमें आप जो कुछ जानना चाहते हैं, वे ये हैं :

* * *

कचाल द्वीप नानकौड़ी-निकोबार द्वीप-समूहमेंसे एक द्वीप है। सभ्यता और विकासकी पहली किरण मिलनी अब आरम्भ हुई है। वह है अंग्रेजी शासन-कालकी देनके रूपमें क्रिश्चियन मिशनरीका विस्तार। यह द्वीप बकुलतल्लासे ३०० मील दक्षिण-पूर्व दूर है तथा इण्डोनेशिया, मलयेशियाके समीप है। अण्डमानसे जो सूचना लेंगे, वह गलत होगी। क्योंकि निकोबार द्वीप-समूह अन्धकार द्वीप-समूह (डार्क आईलैण्ड) है अथवा बनाकर रख दिया गया है। इससे जो आँकड़े प्रकाशित हैं, वे अधिकतर दिखावेके लिए हैं। निकोबार द्वीप-पुंजमें १५,०००की जन-संख्या है। इसमेंसे १२,००० क्रिश्चियन बना दिए गए हैं और जो ३,००० बचे हैं, उन्हें भी क्रिश्चियन बननेके लिए मजबूर होना पड़ता है।

कचाल द्वीप-समूहका क्षेत्रफल ६८ वर्गमील है तथा इसकी जनसंख्या ९०० है, जिनमें ४०० क्रिश्चियन बना लिये गए हैं। शेष आदिवासी ५०० अपनेको हिन्दू समझते हैं। किन्तु इनके लिए उचित वातावरण, सहायता तथा मार्ग-दर्शन नहीं है।

१५-८-१९४७के बादसे क्रिश्चियनिटीका प्रचार जोरसे हुआ, क्योंकि ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिकी मिशनरियोंने विशेष ध्यान दिया। कारण यह है कि भारतीय-संस्कृति और वातावरणको दूषित करनेका यही उनके पास रास्ता है। नागालैण्ड-जैसी दूषित स्थिति बन जानेमें अधिक देर नहीं है। १५-८-१९४७के पहले निकोबार द्वीपोंमें केवल एक चर्च था, अब १३ चर्च हैं। कचाल द्वीपमें दो पक्के चर्च बन चुके हैं तथा दो और बननेकी तैयारीमें हैं। निकटके अन्य द्वीपोंमें भी और ४ चर्च बननेको हैं।

मैं आपसे मन्दिर बनाने तथा समुचित वातावरण तैयार करनेके लिए आह्वान तथा आग्रह करती हूँ। मन्दिरके लिए कारीगर, एक पुजारी तथा सामान-सीमेण्ट, लकड़ी, लोहा और टीनकी चादरोंकी आवश्यकता है। अन्दाजन १०,००० रु० व्यय होंगे। शारीरिक श्रम, पत्थर और २,००० रु० हम लोगोंकी ओरसे प्राप्त होंगे। अभी मन्दिरका मकान कच्चा है। वहाँ पर शनिवारको पूजा और भजन-कीर्तन होता है। यहाँ पर पी० डब्ल्यू० डी० तथा फॉरेस्ट एण्ड एग्रीकल्चर (वन तथा कृषि-विभाग)के लोगोंकी संख्या २०० है। ये लोग भी मन्दिरके कार्यमें भाग लेते हैं तथा दिलचस्पी रखते हैं। विशेष जानकारीके लिए भूतपूर्व मन्त्री श्री महावीर त्यागीसे पूछताछ करें, जो यहाँ आ चुके हैं। यदि आपमें भारतीय भावना है, तो यहाँ के भोलेभाले आदिवासियोंका अभारतीय और अहिन्दू होनेसे बचा लें। अधिक लिखनेसे आप अकूजी कम्पनीके लूट-पाट और ठगबाजीको तथा विशपके बुरे इरादेको कल्पना समझेंगे। आप स्वयं ही चुपकेसे इन बातोंको मालूम करनेकी चेष्टा करें। इन बातोंसे सरकार तथा जनता अनभिज्ञ है। यहाँकी बातोंसे और लोगोंको सही जानकारी कराने तथा प्रचार करनेका कृपया प्रयत्न करें। धन्यवाद। इतिश्री।

विनीता

रानी चंगा

[श्री बिरलाजीकी ओरसे उत्तर]

नयी दिल्ली, अप्रैल १४, १९६६

शुभश्री रानी चंगा महोदया,

सादर नमस्ते। आपका दिनांक १९-३-६६का पत्र श्रीमान् सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाको यथासमय

मिल गया है। इसके लिए आपको अनेक धन्यवाद है। श्रीमान् सेठजी हिन्दू-धर्मके प्रति आप लोगोंकी श्रद्धा और भावना देखकर बहुत ही प्रभावित हुए हैं। आपका धर्म-प्रेम और हिन्दू-धर्मके प्रति श्रद्धा प्रशंसनीय और सराहनीय है। आपने कचाल द्वीपमें एक मन्दिर-निर्माणके सम्बन्धमें लिखा है कि शारीरिक श्रम, पत्थर और २००० रु०की रकम आप लोगोंसे प्राप्त हो जायगी। इसके अतिरिक्त ८,००० रु० निर्माणमें और लगेगा। सो श्रीमान् सेठजी वहाँ मन्दिर-निर्माण करनेके लिए यथासम्भव और यथाशक्ति चेष्टा और प्रयत्न करेंगे। आगे इच्छाकी पूर्ति भगवान्‌के हाथमें है। इसके सम्बन्धमें चेष्टा की जा रही है और माननीय महावीर त्यागी-जीसे भी पूछताछ की जा रही है। इस सम्बन्धमें हम फिर आपको लिखेंगे और सूचित करेंगे। आपके पत्रके लिए हम आपको पुनः धन्यवाद देते हैं और आपके लिए अपनी हार्दिक शुभ-कामनाएँ प्रेषित करते हैं।"[1]

अण्डमान-निकोबार द्वीप-समूहके अनुरोधपर पोर्ट ब्लेयरके मन्दिरके लिए श्रीमान् सेठजीके आदेशानुसार निम्नलिखित मूर्तियाँ भिजवायी गयीं। ये मूर्तियाँ अण्डमान-निकोबार द्वीप-समूहके वन-विभागके अधिकारी श्री एम० ई० एस० थाँगेनके द्वारा भेजी गयीं।

श्री हनुमानजीकी २ मूर्तियाँ।
भगवान् शिवकी २ मूर्तियाँ।
चक्रधारी कृष्णकी १ मूर्ति।

भारतीय सीमाक्षेत्र

जवानोंके लिए पूजा-सामग्री भेंट

भारतीय सीमान्त क्षेत्रपर नियुक्त सैनिकोंने अपने द्वारा निर्मित मन्दिरों और गुरुद्वारोंके लिए बिरलाजीसे पूजा-सामग्रीकी माँग की थी। उनके इस अनुरोधका सहर्ष स्वागत करते हुए तत्काल ही सेठजी-ने उनके पास पूजा-अर्चाकी सामग्री पहुँचानेकी व्यवस्था कराई। यह सामग्री अ० भा० आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघकी ओरसे तत्कालीन केन्द्रीय नागरिक परिषद्‌की अध्यक्षा श्रीमती इन्दिरा गान्धीके द्वारा भिजवाई गई। इस सम्बन्धमें श्रीमती गान्धीकी ओरसे जो धन्यवाद-पत्र प्राप्त हुआ, वह इस प्रकार है :

सिटिज़न्स सेण्ट्रल कौंसिल,
राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली
१३ नवम्बर '६३

प्रिय श्रीभट्ट,

आपका ३१ अक्टूबरका पत्र मिला। हमारे जवानों द्वारा स्थापित मन्दिरों और गुरुद्वारोंके लिए आपने जो पूजा-सामग्री भिजवाई है, उसके लिए हम आपको धन्यवाद देते हैं। यह सभी सामान सीमाक्षेत्रमें उन सैनिक टुकड़ियोंके पास भिजवानेकी व्यवस्था की जा रही है, जिन्होंने इसकी माँग की है।

१—उक्त पत्रके अनुसार कचाल, कार निकोबारमें मन्दिर निर्माणके लिए ८,०००रु०की सहायतार्थ श्रीमान् सेठजीकी आज्ञासे संघ द्वारा भेजा गया।—सम्पादक

आप कृपया श्रीसेठ जुगलकिशोरजी विरलासे श्रीमती इन्दिरा गान्धीका धन्यवाद निवेदन कर दें।

भवदीय,

जसपाल कपूर

प्रवासी भवन, अजमेर

[श्री भवानीदयाल संन्यासीका पत्र]

प्रिय भाई श्री जुगलकिशोरजी, नमस्ते।

मैं दिल्लीमें प्रवासी भारतीयोंका कार्य समाप्त कर गत सोमवारको अजमेर वापस आ गया। दक्षिण-अफ्रीकाके प्रवासी भारतीयोंकी वर्तमान स्थितिके सम्बन्धमें जो आवेदन-पत्र वाइसरायको दिया गया था, उसकी एक प्रति आपके अवलोकनार्थ इस पत्रके साथ भेजता हूँ।

इधर तीन सालके दरम्यान प्रवासी भारतीयोंके सेवाकार्यमें ढाई हजार रुपएका कर्जदार हो गया हूँ, इसलिए आर्थिक चिन्तासे बहुत परेशान था। पिछले सप्ताह आपसे भेंट होने पर आपने मुझे जो चार सौ रुपए प्रदान करनेकी कृपा की, उससे मेरे काममें बड़ी सहायता पहुँची है और मैं आपकी उदारताके लिए हृदयसे कृतज्ञ हूँ। आपका यह सात्विक दान मानवताकी बहुत बड़ी सेवा है। परमात्मा आपको सदा स्वस्थ रखें और शतायु बनायें, यही मेरी उनसे याचना है। आप-जैसे नररत्न ही भारत-भूमिकी सर्वोपरि शोभा हैं।

मैंने भेंट होने पर आपकी सेवामें आदर्शनगर आर्य-मन्दिरकी एक अपील भेंट की थी। इस पत्रके साथ उसकी दूसरी कापी भी भेजता हूँ। मेरी प्रार्थना है कि एक बार इस अपीलको आप आद्योपान्त पढ़नेका कष्ट उठायें। इसमें आपके सुकृत्यका भी उल्लेख है। इससे आपको यहाँकी सारी परिस्थितिका परिचय मिल जायगा।

खेदकी बात है कि प्लिन्थ तक उठकर अर्थाभावसे मन्दिरका काम रुक गया है। अनेक सज्जन दान देनेका वचन देकर भी उसकी पूर्ति करनेमें देर कर रहे हैं। फिलहाल यदि पाँच हजार रुपया भी मिल जाय, तो काम-चलाऊ इमारत तैयार हो सकती है।

आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप मन्दिरके स्थगित कामको चालू करा दें। एक बार काम शुरू हो जाने-पर यहाँके प्रतिज्ञात दान भी मिल जानेकी सम्भावना है। आप आर्य-धर्म सेवासंघकी तरफसे यदि कुछ सहायता दिलवा दें, तो यह काम चल निकलेगा। मुझसे यहाँके आर्यभाइयोंने विशेष रूपसे अनुरोध किया है कि मैं आपसे मिलकर यहाँकी विकट परिस्थितिसे आपको परिचित करा दूँ। पर भेंट होने पर आपका मन्दिर जानेका समय हो चुका था, इसलिए मैं यहाँकी परिस्थितिका वर्णन करनेसे वंचित रह गया।

यहाँके भाइयोंका आपपर भारी भरोसा है। उनको दृढ़ आशा है कि आपकी कृपादृष्टि इस धर्म-कार्यकी ओर अवश्य फिरेगी और यह मन्दिर इस साल बनकर तैयार हो जायगा, ताकि अगले सालसे ग्राम-प्रचारका कार्य आरम्भ कर दिया जाय और ईसाइयोंसे हिन्दू-धर्म एवं हिन्दू-संस्कृतिकी रक्षा की जा सके। आदर्शनगर आर्यसमाजकी अपीलपर एक सरसरी दृष्टि डालनेसे ही आपको ज्ञात हो जायगा कि यहाँ हिन्दुत्व पर कैसा भारी संकट आ पड़ा है। अधिक और क्या लिखें?

आपका ही

भवानीदयाल संन्यासी

* * *

मारीशस

[मारीशस स्थित भारतीय राजदूत श्री धर्मयशदेवका पत्र]

माननीय श्री बिरलाजी,

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप भारतीय-धर्म और दर्शनपर कुछ पुस्तकें यहाँ स्थानीय पुस्तकालयोंमें भारतीय सज्जनोंके उपयोगके लिए भेज रहे हैं। ज्योंही ये पुस्तकें प्राप्त होंगी, इस सम्बन्धमें उचित कार्यवाही की जायगी और आप विश्वास रखें कि ऐसा प्रबन्ध किया जायगा कि जिससे सब अधिकसे-अधिक लाभ उठा सकें।

जबसे मारीशस-निवासी भारतीयोंका शिष्टमण्डल भारतसे लौटा है, तबसे यह विदित हो रहा है कि आप एक हिन्दू-प्रचारक मारीशसमें भेजनेवाले हैं। मैं आपके इन विचारोंका स्वागत करता हूँ और इस सम्बन्धमें मैं अपने ७ नवम्बर, १९४९के पत्रकी ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ, जिसमें मैंने आपसे यह प्रार्थना की थी कि आप अपनी योजनाको पक्का करनेसे पहले भारत सरकारके विदेश-विभागके किसी जिम्मेदार अफसरसे परामर्श कर लें। कारण यह है कि इस देशकी अपनी ही अलग कई-एक समस्याएँ हैं और भारतसे आनेवालोंका कार्य उतना आसान नहीं है। इसलिए मैं आपसे पुनः निवेदन करूँगा कि आपका प्रचारक यहाँ आनेसे पहले पूर्णतया यहाँकी स्थानीय परिस्थिति और समस्याओंसे भली प्रकार परिचित हो, ताकि उसकी यात्रा बहुत लाभप्रद हो और ऐसा न हो कि लाभके बदले अधिक हानिकारक हो, जैसा कि कई समय ऐसा होता है, जब कि आनेवाले उस देशकी परिस्थितियोंसे भली प्रकार परिचित नहीं होते।

पोर्ट लुई, मारीशस

भवदीय,

धर्मयशदेव

मारीशसका साँस्कृतिक-सामाजिक-परिचय

माननीय श्री बिरलाजी

मारीशसके हिन्दुओंकी दशा इस प्रकार है कि 'जब भारतीय लोग इस टापूमें पधारे थे, तो उनमें चारों वर्णोंके लोग आये थे। उन लोगोंने यहाँ आकर परतन्त्र दशामें भी अपना धर्म, अपनी संस्कृतिका पालन किया था। उनमें कुछ लोग साधारण पढ़े-लिखे भी थे। वे लोग फूसकी मढ़िया बनाकर लोगोंको रात्रि समयमें पढ़ाने लगे और उनमें जो ब्राह्मण थे, वे लोग समय-समय पर ज्ञान-धर्मका उपदेश भी करते थे। उस समयकी पढ़ाई "राम गति देशु सुमति"से आरम्भ होती थी। अक्षर-बोध होने पर 'दानलीला' पढ़ते थे। 'दान लीला' पढ़ लेने पर तुलसीकृत रामायणका पठन-पाठन होता था, परन्तु वे लोग अपने धर्म तथा रामायण आदि धर्म-ग्रन्थोंमें अटल विश्वास रखते थे, इसलिए अनेक झंझटोंको झेलकर भी वे लोग अपने धर्म पर आरूढ़ रह गए। तब मासिक वेतन पाँचसे आठ रुपये तक था और साप्ताहिक कुछ रसद चावल, दाल, नमक, तेल मिलता था। परन्तु इस तरहसे परिवारका पालन-पोषण करना बहुत कठिन था। वे लोग गोका पालन-पोषण भी साथ-साथ करने लगे। कुछ लोगोंने भेड़ और बकरियोंका पालन किया। बादमें यहाँ जो फ्रेंच गोरे लोग थे, उनसे उधार जमीन खरीदकर धीरे-धीरे भारी परिश्रमके साथ जमीनका दाम वसूल किया। क्रमशः विकास होता गया और आज उन्हींके पुत्र-पौत्र स्कूल-कॉलेजोंमें पढ़-लिखकर डॉक्टर, बैरिस्टर, इन्सपेक्टर आदि सरकारी नौकर बन गए हैं। कुछ लोग तो खेती-गृहस्थी करके ही आज

भारी जमींदार बन गए हैं। आज लेजिस्लेटिव कौन्सिलके चीफ मिनिस्टर डॉक्टर रामगुलामजी हैं, जो कि एक भारतीय कुलीकी सन्तान हैं। और भी कितने हिन्दू लेजिस्लेटिव कौन्सिलके मेम्वर बन गए हैं। अभी तक धर्म-कर्म बराबर चला जा रहा है, परन्तु अब जहाँ-तहाँ अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगोंमें धर्मके प्रति कुछ उदासीनता आने लगी है। तो भी समाजके सामने उन लोगोंको झुकना ही पड़ता है।

रीति-रिवाजके सम्वन्धमें यह एक विचित्र देश है। यहाँ एक ही बस्तीमें अंग्रेज, फ्रेंच, चीनी, क्रिओल (हब्शियोंकी सन्तान, जो अफ्रीकासे आये थे), मुसलमान और हिन्दू बसते हैं। एक ही बस्तीमें बसते हुए सबके अलग-अलग मकान और अलग-अलग रीति-रिवाज अपनी-अपनी जातिके अनुसार हैं। यहाँके हिन्दुओंमें भी रीत-रिवाजोंमें भेद है। जैसे बिहारी, बंगाली, गुजराती, काठियावाड़ी, तमिल, तेलुगु आदि लोगोंके रीति-रिवाज अपने-अपने देशकी प्रथाके अनुसार है। पुरुषोंकी पोशाक तो अधिकतर कोट-पतलून ही है। इससे पहचाननेमें कठिनाई पड़ जाती है कि यह कौन है, कारण कि रूप-रेखा भी करीव-करीब बराबर होती है। हाँ, नाम सुनने पर पता लग जाता है। स्त्रियोंकी पोशाकसे पता चल जाता है। कारण कि हिन्दू स्त्री साड़ी, मुसलमानकी स्त्री सुथनी और योरोपियन स्त्रियाँ योरोपियन पोशाक पहनती हैं। बहुत से हिन्दू धोती, पगड़ी भी धारण करते हैं। विवाह, पूजा, पाठ, पर्व, त्योहारके अवसर पर सभी लोग धोती ही पहनते हैं, पूर्णरूपेण भारतीय पोशाक ही धारण करते हैं। द्विजातियोंके प्राय: सभी संस्कार भी सम्पन्न किये जाते हैं। नौकरीमें योरोपियन पोशाक - कोट-पतलून धारण करना अनिवार्य है। हाँ, कुछ हिन्दीके अध्यापक-गण सरकारी स्कूलोंमें भी धोती ही पहनकर जाते हैं। वे ब्राह्मण पण्डित हैं। यहाँके हिन्दुओंके रीत-रिवाज देखकर जो भारतीय लोग कभी आते हैं, वे कहते हैं कि मारीशस छोटा भारत है।

यहाँ पर हिन्दुओंमें अधिक संख्या सनातनधर्मियोंकी है। पूजा-पाठ करनेके लिए शिवालय, राधा-कृष्ण मन्दिर, राम-मन्दिर, काली मन्दिर, हनुमानगढ़ी, दुर्गामन्दिर आदि देवताओंके अनेक मन्दिर हैं और प्रतिवर्ष नये-नये मन्दिर बनते जा रहे हैं। मन्दिरके निर्माणका खर्च ग्रामीण पञ्चायतोंकी ओरसे एवं अन्य सनातनधर्मियोंके सहयोगसे होता है। पहले तो ग्रामीण पञ्चायतके खर्चसे मन्दिर चलता था, परन्तु अब दो वर्षसे सरकारकी ओरसे एक छोटी मदद (सब्सिडी) मिल रही है। हर एक सनातनधर्मी मन्दिरमें पूजा-पाठ करनेके लिए एक ब्राह्मण पुजारी होता है। पञ्चकी ओरसे उनका वही वेतन होता है, जो सरकारी सब्सिडी भत्ता मिलता है। अधिकांश मन्दिरोंमें हिन्दी पाठशाला होती हैं, जिनमें सन्ध्या समय बच्चोंको हिन्दीकी शिक्षा दी जाती है। यहाँ पर श्रीमद्भागवतमहापुराणकी साप्ताहिक यज्ञ-कथा होती है। इसी तरह शिवपुराण, देवी भागवत, वाल्मीकि रामायण, श्रीमद्भगवद्गीताकी कथाएँ भी होती हैं। श्री सत्यनारायण स्वामीकी पूजा-कथा यहाँ प्रायः नित्य ही किसी-न-किसीके यहाँ होती रहती है। हनुमानजीका चौतरा और लाल ध्वजा प्रायः सभी हिन्दुओंके द्वारपर होती है, मानों हिन्दूके घरका यह चिह्न हो। शिवरात्रि बड़े समारोहके साथ मनायी जाती है।

रामकृष्ण मिशन भी चल रहा है। मिशनकी ओरसे एक अनाथालय तथा एक कालेज चल रहा है। एक गोशाला भी है।

आर्यसमाजके आर्य-मन्दिर हैं। कवीर-पन्थियोंका कवीर-मठ है। मराठियोंके शिवालय हैं। तेलुगु लोगोंके विष्णु-मन्दिर हैं। तमिल लोगोंके देवी-मन्दिर ग्राम-ग्राममें हैं और हर मन्दिरमें प्रतिवर्ष एक भारी उत्सव होता है। उस उत्सवमें अग्नि-परीक्षा होती है। भक्त-गण जिनकी मनौती होती है, वे लोग आगपर चलते हैं। विशेष मन्दिर तमिल लोगोंके ही हैं और यह सब होते हुए भी ये लोग अधिक संख्यामें ईसाई

* * *

हो गए हैं। हिन्दुस्तानसे कुछ पादरी हालमें यहाँ आये थे, उन लोगोंका काम हिन्दुओंको ईसाई बनानेका था। परन्तु वे सफलीभूत नहीं हुए। हाँ, कुछ तमिलोंने, जिनके पूर्वज ईसाई हो चुके थे, ईसाई मतकी दीक्षा ली।

यहाँकी ब्राह्मण महासभाके उपदेशकोंकी ओरसे समय-समय पर धर्म-प्रचार होता रहता है। पर्व-त्योहारोंकी जानकारीके लिए प्रतिवर्ष "पर्व त्योहारों"का तिथि-पत्र प्रकाशित होता है। मन्दिरोंमें यथोचित पूजा-पाठ एवं पुजारियोंकी उचित व्यवस्थाके लिए ब्राह्मणमहासभा प्रयत्न कर रही है।

भाषाके विषयमें जैसा कि ऊपर लिखा गया है, आरम्भसे ही ध्यान दिया गया था। अभी कई संस्थाओं द्वारा हिन्दीकी शिक्षा दी जाती है, यथा - हिन्दी प्रचारिणी सभा। ग्राम-पञ्चायतके द्वारा भी पढ़ाई होती है। आर्य मन्दिरोंमें भी पढ़ाई होती है। सरकारी प्राइमरी स्कूलोंमें भी हिन्दीकी शिक्षा दी जाती है। गीता-प्रचारके लिए गीताकी परीक्षाएँ होती हैं - मौखिक तथा लेखवद्ध। प्रमाण-पत्र अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघसे प्राप्त होता है। हिन्दी परिचयकी एवं प्रथमाकी परीक्षा भी भारत-वर्षसे होती है। इस प्रकार हिन्दीके क्षेत्रमें क्रमिक विकास हो रहा है।

बोल-चालके लिए यहाँ पर भोजपुरी भाषा प्रचलित है। यह भाषा इतनी व्यापक है कि इस भाषाको यहाँके प्रायः सभी हिन्दू समझ लेते हैं। एक दूसरी भाषा "क्रिओली" है, जो कोई एक खास भाषा नहीं है, फ्रेंच भाषाका कुछ अपभ्रंश है और अफ्रीकन हब्शियोंकी भाषाका मिश्रण है; परन्तु इसका इतना भारी आदर है कि जिला-कोर्टके मजिस्ट्रेट भी इस भाषामें पूछ-बता लेते हैं। क्रिओली बोलीसे टापू भरके सभी लोगोंसे व्यवहार हो सकता है। परन्तु खराबी यह है कि अब शहरके रहनेवाले अच्छे-अच्छे हिन्दुस्तानियोंके घरमें इसकी इतनी धाक जम गयी है कि डरके मारे बिचारी हिन्दीको उस घरको छोड़कर भागना पड़ा है। सरकारी पाठशालाओंमें अंग्रेजी और फ्रेंच तो अनिवार्य है, साथ ही हिन्दी, उर्दू, तमिलकी भी शिक्षा दी जाती है।

यहाँकी प्रकृतिका सौन्दर्य भी अनुपम है। एक छोटे टापूमें सभी ऋतुएँ तथा आब-हवा देखकर ही माननीय काका कालेलकरजीने यह कहा था कि "यह टापू भगवान्‌की एक प्रयोग-शाला है।"

यहाँके अमींदारोंमें बड़े जमींदार एवं शुगर फैक्ट्रीके मालिक फ्रेंच गोरे लोग हैं। पूंजीपति भी वे ही लोग हैं तथा बैंक भी उन्हीं लोगोंके हाथमें हैं। भारतीयोंके हाथमें भी काफी जमीन है। बड़े-बड़े जमींदार भी हैं; परन्तु समय पर फाइनेन्स (अर्थव्यवस्था)के बारेमें लाचार हो जाना पड़ता है। कारण कि गोरे पूंजीपति लोग हाथ पकड़ लेते हैं। इसलिए भारतीयोंकी उन्नतिके लिए एक भारतीय बैंककी नितान्त आवश्यकता है।

गुडलैण्ड्स, मारीशस

आपका,
भीमसेन वाजपेयी

[साँस्कृतिक उपहारके प्रति आभार]

मान्यवर महोदय,

सादर हरिस्मरण। 'जलविक्रम' नामक जहाजसे ऑल इण्डिया आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघ दिल्लीसे श्रीकल्याणनाथ टेम्पिल एसोसियेशन, गुडलैण्ड्स, मारीशसके लिए जो-जो वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं, उनका विवरण

* * *

इस पत्रके साथ ही भेज रहा हूँ। सब मूर्तियाँ तथा अन्य सब चीजें सुरक्षित प्राप्त हुई हैं। इस भारी उपकार-के लिए श्रीकल्याणनाथ सभाके प्रधान एवं सदस्यगण परमोदार स्वनामधन्य श्रीयुत् सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाके प्रति तथा उनके आर्य(हिन्दू) धर्म सेवासंघके प्रति यही हार्दिक प्रार्थना करते हैं, जिस प्रकार श्री भरतजीने हनुमानजीके प्रति किया था :

यह संदेश सरिस जग माहीं। करि विचार देखा कछु नाहीं।
नाहिन उऋण तात मैं तोहीं——

श्रीकल्याणनाथ सभाकी ओरसे भी यही निवेदन है कि जो उपकार हम प्रवासियोंके ऊपर श्रीमान् बिरलाजीने किया है, उसके लिए उन्हें धन्यवाद देनेके लिए कोई शब्द नहीं है।

गुडलैण्ड्स, मारीशस

भवदीय,
भीमसेन वाजपेयी

(१) मूर्तियोंका विवरण

(१) शिवलिंग (अलग) जलहरी (अलग)
(२) शिवजीकी साकार मूर्ति
(३) श्रीपार्वती देवी
(४) श्रीगणेश देवता
(५) स्वामी कार्तिकेयजी
(६) श्रीनन्दीजी
(७) श्रीदुर्गा देवी अष्टभुजी सिंहवाहिनी
(८) श्रीदेवी अष्टभुजी व्याघ्रवाहिनी
(९) श्रीहनुमान् देव

कुल ९ मूर्तियाँ प्राप्त हुईं।

(२) संगमर्मरके तीन लिखित पट्ट

(१) ४ फुट लम्बे ३ फुट चौड़े पट्टपर 'गायत्री मन्त्र'
हिन्दीमें प्रार्थना और इंग्लिश Initiatory Verse
(२) दूसरा पट्ट २।। फुट लम्बा १।। फुट चौड़ा, श्रीधन्वन्तरिजीका चित्र और श्लोक तथा भावार्थ
(३) तीसरा——श्रीगोपाल कृष्ण, श्रीकृष्णजीका चित्र, गीताका एक श्लोक और भाषार्थ १।। फुट लम्बा १। फुट चौड़ा।

(३) चित्र (१० चित्र, शीशा और फ्रेम सहित)

(१)	एक तरफ	"श्री रामपंचायतन"	दूसरी तरफ	"सपरिवार शंकरजी"
(२)	"	श्रीलक्ष्मी देवी	"	श्री गणेश देवता
(३)	"	श्रीकमला देवी	"	श्रीदुर्गा देवी
(४)	"	श्रीलक्ष्मीनारायण	"	श्रीशिव-पार्वती
(५)	"	श्रीसीता-राम	"	श्रीशेषशायी भगवान्
(६)	"	दुर्गादेवी	"	श्रीकालिकादेवी
(७)	"	राधा-कृष्ण	"	श्री सीताराम

* * *

(८)	एक तरफ	राम, लक्ष्मण, सीता, हनुमान्	दूसरी तरफ	वसुदेव और श्रीकृष्ण
(९)	"	हनुमानजी	"	शंकरजी
(१०)	"	शंकर भगवान्	"	कालीमर्दन कृष्ण

(४) हिन्दी पुस्तकें

(१)	श्रीमद्भगवद्गीता भाषाटीका सहित (गीता प्रेस)	४० प्रति
(२)	तुकाराम गाथासार	५ "
(३)	हिन्दू धर्मकी विशेषताएँ (सत्यदेव परिव्राजक)	५ "
(४)	वेदान्त चक्रवर्ती श्री राजगोपालाचार्य	५ "
(५)	हिन्दू गौरव-गान	१० "
(६)	हिन्दू धर्म-प्रवेशिका	१० "
(७)	एकादशोपनिषद् संग्रह भाषाटीका सहित (सत्यानन्द)	१ "
(८)	उपनिषद चक्रवर्त्ती श्री राजगोपालाचार्य	५ "
(९)	सिक्खोंके दस गुरु (श्रीमोहनलाल शर्मा)	५ "
	कुल हिन्दी पुस्तकें	८६

(५) अंग्रेजी पुस्तकें

1.	Gita Rahasya by B. G. Tilak	2 Copils
2.	Vedic Hymns & Prayers	20 ,,
3.	Lord Buddha and His Teachings	20 ,,
4.	The Thirteen Principal Upnishads by Robert Ernest Hume	1 ,,
	Total	43

फीजी द्वीप

श्री सेठ जुगलकिशोरजी बिरला, सूवा फीजी
दिल्ली। जी० पी० ओ० बॉक्स २६६
आदरणीय सेठजी, ३१ मई, १९५०

अभिनन्दन। हम इस विनम्र पत्रके लिए आपसे क्षमा चाहते हैं। यह पत्र फीजी स्थित प्रवासी भारतीयोंकी ओरसे तथा इस संस्थाकी ओरसे आपकी सेवामें जा रहा है। संस्थाका उद्देश्य और कार्यक्रम भी आपकी सूचनाके लिए इस पत्रके साथ नत्थी है।

भारतमें जनकल्याणके कार्योंमें आपका कितना बड़ा हाथ है, यह हम लोगोंको भली-भाँति विदित है। अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंव-जैसी संस्था आपकी ही उदारताका प्रतिफल है। जहाँ कहीं भी प्रवासी भारतीय हैं, उन्हें आप-पर गर्व है और वे आपकी उदारता तथा विशाल हृदयताके लिए अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

* * *

मैं व्यक्तिगत रूपसे बम्बईके श्रीपुरुषोत्तमदास ठाकुरदासका आभारी हूँ, जिन्होंने महाविद्यालय जालन्धर, पूर्वी पंजाबमें जाकर पढ़नेवाली फीजीकी प्रवासी एक छात्राके लिए ३ वर्षके लिए पाँच हजार रुपया छात्रवृत्तिके रूपमें देना स्वीकार किया है। वह वहाँ मैट्रिकुलेशन परीक्षा पासकर शिक्षक ट्रेनिंगका कोर्स लेगी। हमारी इस संस्थाने उसकी भारत-यात्राके व्ययका प्रबन्ध किया है तथा एक अन्य छात्राके लिए भी पाँच वर्षके लिए छात्रवृत्ति देनेका निश्चय किया है। इस समय वे दोनों छात्राएँ जालन्धर विद्यालयमें शिक्षा पा रही हैं।

फीजीमें हमें ऐसी बहुत-सी अध्यापिकाओंकी आवश्यकता है, जो प्राइमरी शिक्षा वाले स्कूलोंमें पढ़ा सकें तथा बी० ए०, बी० टी०-जैसी योग्यताकी अध्यापिकाओंकी भी उच्च विद्यालयोंमें अध्यापनके लिए आवश्यकता है। भारत सरकारकी जो छात्रवृत्तियाँ हैं, वे मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास अथवा कैम्ब्रिज परीक्षा पास किए छात्र-छात्राओंके लिए ही हैं। किन्तु ये छात्रवृत्तियाँ हमारे यहाँकी लड़कियोंके लिए प्राप्त नहीं हो सकतीं, क्योंकि यहाँ अबतक भी उनके लिए माध्यमिक शिक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं है। केवल एक लड़की सीनियर कैम्ब्रिजमें पास हुई है और उसको भारत सरकारकी ओरसे छात्रवृत्ति मिल रही है।

फीजीके शिक्षा-विभागके डाइरेक्टर द्वारा शिक्षा-सम्बन्धी जो आँकड़े प्रस्तुत किये गए हैं, उसमें फीजियन छात्रों और प्रवासी भारतीय छात्रोंकी संख्या निम्न प्रकार है :

फीजियन छात्र	९१.९ प्रतिशत
—छात्राएँ	९०.८ प्रतिशत
प्रवासी भारतीय छात्र	६६.३ प्रतिशत
—छात्राएँ	४३.४ प्रतिशत

उक्त आँकड़ोंको रखते हुए डाइरेक्टरने बताया कि फीजीके भारतीयोंको शिक्षाके क्षेत्रमें क्या कुछ करना है। विशेष करके लड़कियोंकी शिक्षाके लिए हम शिक्षाके क्षेत्रमें कितने पिछड़े हैं, इन आँकड़ोंसे स्पष्ट है।

हमारी इस संस्थाने अध्यापिकाओंकी जो कमी है, उसकी पूर्तिके लिए कमसे कम ३ छात्राओंको प्रतिवर्ष भारत भेजनेका निश्चय किया है। इस कार्यके लिए हम आपकी उदार सहायताकी प्रार्थना करते हैं और हमारा विश्वास है कि आप ऐसी प्रवासी भारतीय छात्राओंके लिए छात्रवृत्ति स्वीकार करनेकी कृपा करेंगे, जो यहाँसे भारतकी किसी अच्छी शिक्षा-संस्थामें जाकर अध्ययन करें। जालन्धर महाविद्यालयमें टीचर्स ट्रेनिंग कोर्स नहीं है। किन्तु आशा है कि जो छात्राएँ वहाँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं, उनके मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास करने पर भारत सरकारकी छात्रवृत्ति प्राप्त करनेका यत्न किया जायगा और वे कहीं टीचर्स ट्रेनिंग कोर्स पूरा करेंगी।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयसे भी हमारा पत्र-व्यवहार हो रहा है। हमने उन्हें लिखा है कि वे हमारी कुछ छात्राओंके लिए स्थान सुरक्षित रखें। यदि आप अन्य किसी शिक्षण संस्थाका सुझाव दें, तो आपकी बड़ी कृपा हो। फीजीमें जो शिक्षाक्रम प्रचलित है उसमें अंग्रेजीकी शिक्षा प्रमुख है। उसके साथ हिन्दी भी एक भाषाके रूपमें सम्मिलित है।[1]

---

१. श्री बिरलाजीने फीजीके दो छात्रोंको भारत आकर हिन्दू-धर्म, संस्कृति, आचार तथा संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेके लिए उनका समस्त व्यय-भार स्वीकार कर आमन्त्रित किया।—सम्पादक

* * *

आपकी कृपाकी प्रतीक्षा है, जिससे १९५१में हम अपने यहाँकी छात्राओंको भारत भेजने सम्वन्धी यात्रा-व्यय आदिकी व्यवस्था कर सकें।

भवदीय,
विष्णुदेव
प्रधान

[सेण्ट्रल इण्डिया आर्गनाइजेशन ऑफफीजीकी ओरसे]

सूवा, फीजी,
२४-११-५०

प्रिय महोदय,

आपके पत्र-संख्या ११०५।५० दिनांक ६-११-५०के उस पत्रके लिए, जिसमें आपने हमारी संस्थाके अनुरोधपर फीजीके दो छात्रोंके लिए भारत जाकर अध्ययन करनेके निमित्त ५०-५० रु०की छात्रवृत्ति देनेकी स्वीकृति भेजी है, इसके लिए संघको तथा श्री विरलाजीको अनेक धन्यवाद।

आप कृपया अपने संघके अधिकारियों तथा विशेषतया श्रीमान् सेठ विरलाजीकी सेवामें मेरी व्यक्तिगत रूपसे हार्दिक कृतज्ञता और धन्यवाद निवेदन करनेका कष्ट करें।

भवदीय,
विष्णुदेव
अध्यक्ष

फीजीके प्रवासी भारतीय

[मन्त्री, अ० भा० आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघ, दिल्ली के नाम प्रशान्त महासागरमें सर्वाधिक धनी और सुन्दरद्वीपकी ओरसे पत्र]

१५, लकेम्बा, स्ट्रीट,
सूवा, फीजी द्वीपसमूह,
१५-१-६७

माननीय महोदय,

सादर नमस्कार। आपका कृपा-पत्र मुझे प्राप्त हुआ। उसके अनुसार सारी सूचनाएँ चित्र-सहित भेज रहा हूँ। आशा करता हूँ आप अवश्य ही प्रभावित होंगे।

जो पुस्तक आप हमारे लिए भेज रहे हैं, उसके लिए हमारी तरफसे धन्यवाद। कृपा करके यह चित्र श्रीसेठ विरलाजीको दिखा दें और हमारी तरफसे उनको नमस्कार कहें।

फीजीकी जनगणना प्रत्येक दस वर्षके बाद होती है। १९६६के सेंससके अनुसार फीजीमें लगभग १,९९,००० हिन्दू थे, ४०,००० संख्यामें इस्लामी 'मुसलमान' और करीब २०,००० ईसाई थे।

यहाँपर अंग्रेजी तथा हिन्दी प्रचलित भाषा है। प्रत्येक स्कूलमें ये दो भाषाएँ सिखाई जाती हैं।

* * *

प्राइमरी स्कूलोंमें पहली और दूसरी कक्षाओंसे ही हिन्दी पढ़ाई जाती है। यहाँपर सीनियर कैम्ब्रिजकी कक्षाएँ तथा परीक्षाओंमें हिन्दीका प्रचार है।

फीजीमें हिन्दू जातिके लोग अपने धर्ममें अटल विश्वास रखते हैं और अपनी कौमकी उन्नति हो, इस प्रयासमें बराबर लगे रहते हैं। यहाँ पर ५०० रामायण मण्डलियाँ हैं। यहाँपर अपने धर्मका बराबर प्रचार होता रहता है। सामाबूला रामायण मन्दिर यहाँका हेड क्वार्टर है। सिख मतका भी प्रचार है तथा कवीरपन्थी लोग भी हैं। आर्यसमाजका भी काफी प्रचार है।

सम्वत् १८७९में लियोनीदास जहाज भारतसे लोगोंको फीजी लाया। यह प्रथम जहाज था, जिसमें ४६३ यात्री १५ मईको इस द्वीपमें पहुँचे। इसके बाद ८७ अन्य जहाज फीजी आते रहे, जिनमें सतलज नं०५, २ मार्च, १९१६में सबसे अन्तमें आया। जितने भी भारतीय यात्री फीजी लाए गए, वे सब शर्तबन्दी प्रथापर ही फीजी आए थे। इन्होंने मेहनत व परिश्रम करके फीजी द्वीपको आवाद किया और फलता-फूलता देश बनाया। अभी यह द्वीप प्रशान्त महासागरके सबसे धनी और सुन्दर द्वीपोंमें गिना जाता है।

शिक्षाका विस्तार

इस द्वीपमें हिन्दुओंकी संख्या सबसे अधिक है। बीस वर्षोंके अन्दर यहाँपर शिक्षाके क्षेत्रमें काफी उन्नति हुई है। फीजीके नवयुवक तथा नवयुवतियाँ विदेशोंमें भी शिक्षा हासिल करने जाते हैं। यहाँसे ज्यादातर लोग आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, अमेरिका, भारत तथा इंग्लैण्ड जाते हैं। वहाँसे डिग्री तथा डिप्लोमा लेकर फीजी वापस आते हैं तथा हर क्षेत्रमें कार्य करते हैं। फीजीकी पढ़ाईका स्तर बहुत ऊँचा है। अनेक प्राइमरी तथा सैकण्डरी स्कूल हैं, और प्रत्येक वर्ष नये-नये स्कूलोंका निर्माण भी हो रहा है। अभी फीजीमें सिर्फ मैट्रिक तककी ही पढ़ाई होती है। निकट भविष्यमें हम यहाँ एक युनिवर्सिटी खुल जानेकी आशा करते हैं।

फीजीके लोगोंमें शिक्षाके अतिरिक्त धार्मिक कार्यमें भी अत्यधिक रुचि है। यहाँपर हिन्दू जातिके लोग अपने धर्म तथा संस्कृतिको श्रेष्ठ तथा समृद्ध बनानेमें काफी सफल हुए हैं। सनातनधर्म-प्रचार प्रत्येक गाँव तथा शहरी इलाकेमें है। जगह-जगहपर रामायण मण्डली तथा सिख गुरुद्वारे बनाए गए हैं। यहाँपर कुछ लोग कवीरपन्थी भी हैं तथा कुछ लोग आर्यसमाजके भी अनुयायी हैं। सभीके दिलमें एक यही इच्छा है कि अपनी जातिकी उन्नति हो और वह हमेशा इसी पथकी ओर अग्रसर होती रहे। सभी लोग अपने धार्मिक त्योहार बहुत ही हर्षोल्लास तथा उत्साहके साथ मनाते हैं। यहाँके मुख्य त्योहार होली, दिवाली, रामलीला, रामनवमी, रक्षाबन्धन, कृष्णजन्माष्टमी हैं। यहाँपर सब त्योहार एवं पर्व आदि भारतकी तरह ही मनाए जाते हैं।

सामाबूला मन्दिरमें मूर्तियोंकी स्थापना

प्राप्त विवरणके अनुसार फीजीके सामाबूला नगरमें सनातनधर्म रामायण मण्डलीके मन्दिरमें दशहरेके दिन एक अभूतपूर्व उत्सव मनाया गया, जो फीजीके हिन्दुओंके लिए बहुत महत्वपूर्ण था।

भारतके प्रसिद्ध व्यापारी तथा दानवीर श्रीसेठ जुगलकिशोर बिरलाने श्री हरदेवलालको चार मूर्तियाँ सादर भेंट कीं; जो क्रमशः श्रीराम, सीता, लक्ष्मण और हनुमानजीकी थीं। ये चार मूर्त्तियाँ बहुत कष्ट व जतनसे भारतसे फीजी लायी गयीं और ता० २२-१०-६६ शनिवारके दिनमें ३ बजे श्रीहरदेवलालके घरपर एक उत्सव मनाया गया, जिसमें मूर्तियोंकी पूजा की गई, हवन हुआ तथा प्रसाद बाँटा गया। इस उत्सवमें काफी

* * *

संख्यामें धर्म-प्रेमियों ने भाग लिया। बादको यह मूर्तियाँ श्री सनातनधर्म रामायण मण्डलीके प्रधान मन्दिरमें लायी गयीं।

ता० २३-१०-६६ रविवारके दिन सुबह ७-३० बजेसे ही मन्दिरमें काफी चहल-पहल थी तथा धीरे-धीरे मन्दिरका हॉल भक्तजनोंसे भर गया और जो मूर्तियाँ सेठ हरदेवलाल भारतसे लाए थे, वे पवित्र जलसे स्नान कराके और वेद-मन्त्रोंसे ब्राह्मणों द्वारा पूजा कराकर मन्दिरमें स्थापित की गईं।

अन्तमें श्रीभगवान्‌की आरती हुई और सबने प्रसाद ग्रहण किया।

दक्षिण अफ्रीका

५० कील रोड,
सीडेनहम, डरबन
२८-२-६३

श्रीयुत् सेठ जुगलकिशोरजी बिरला,
नयी दिल्ली

प्रिय महोदय,

पण्डित नरदेव शास्त्रीसे, जो इस समय भारतकी यात्रापर हैं, यह जानकर परम प्रसन्नता हुई कि आपने डरबनमें हमारे वेद-मन्दिरमें लगानेके लिए संगमर्मरकी ५ फुट × ३ फुटकी २४ शिला-पट्टिकाएँ भेजना स्वीकार कर लिया है। उन पर संस्कृत-मन्त्र हिन्दी और अंग्रेजी अनुवाद सहित अंकित रहेंगे।

हम अपनी सभा और उसके अधिकारियोंकी ओरसे आपके गौरवपूर्ण दानके लिए अत्यन्त ही कृतज्ञ हैं और आपका अभिनन्दन करते हैं। हमें इसमें कोई सन्देह नहीं कि संगमर्मरकी पट्टिकाएँ मन्दिरकी शोभा और पवित्रताकी अभिवृद्धि करेंगी और दक्षिण अफ्रीकामें आपके नामको अमरता प्रदान करेंगी।

भारतमें आप इस युगके महानतम मन्दिर-निर्माताके रूपमें प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं और आपके लिए यह सर्वथा सहज बात है कि आप विश्वके इस भू-भागमें अपने सौभाग्य-वंचित भाइयोंकी सेवाके लिए आगे आएँ।

हमारा विश्वास है कि इनमें एक शिला-पट्ट पर गायत्री-मन्त्र अंकित होगा और १८ इंच अर्द्धव्यासके एक वृत्ताकार पट्ट पर एक बड़े आकारका ओ३म् लिखा होगा। इस प्रकारका पट्ट उत्तम होगा।

भवदीय,
सुखराज चोटई
संयुक्त मन्त्री

* * *

पूर्वी अफ्रीका

श्रीमान् बाबूजीकी प्रेरणासे प्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता श्री कुँवर चाँदकरणजी शारदा पूर्वी अफ्रीकाके भारतीय प्रवासियोंके बीच धर्म-प्रचारके लिए गए थे। प्रस्थानके पूर्व श्रीमान् बाबूजीके नाम उनका पत्र :

शारदा-भवन, अजमेर
२२-२-१९५४

मान्यवर, सज्जनशिरोमणि, दानवीर प्यारे भाई बाबू जुगलकिशोरजी बिरला,

सादर सप्रेम नमस्ते। मैं अजमेरसे ता० ७ फरवरीको प्रस्थान कर ८ ता०को बड़ौदा पहुँचा और वहाँके वसन्तोत्सवमें सम्मिलित हुआ। वहाँसे ता० ९को मैं और आनन्दप्रियजी पोरबन्दर गए। वहाँ पर सार्वदेशिक सभाके प्रधान धुरेन्द्रजी शास्त्री भी आ गए। अतः हम तीनों सौराष्ट्रसे धर्मप्रचारार्थ निकले। पोरबन्दर, जामनगर, मोर्वी, टंकारा, राजकोट, सोमनाथ, वीरावल, द्वारका, प्रभासपट्टन, जूनागढ़ आदि स्थानोंमें धर्म-प्रचार करता हुआ मैं कल बड़ौदा आनन्दप्रियजीके साथ पहुँच गया। अब श्री आनन्दप्रियजी तो चिदम्बरम्, मनक्काड आदि स्थानोंमें आपकी आज्ञानुसार जाएँगे और मैं यहाँसे २४ फरवरीको अजमेर चला जाऊँगा। अब मैंने पूर्वी अफ्रीका धर्म-प्रचारार्थ जानेका निश्चय कर लिया है। अतः अप्रैल मासमें मैं पूर्वी अफ्रीका चला जाऊँगा। वहाँकी आर्य-प्रतिनिधि-सभाने तथा सेठ नानजी भाईने मेरे जानेका प्रवन्ध कर दिया है। अभी अफ्रीकासे परमिट नहीं आया है। परमिट आते ही भारतसे प्रस्थान करूँगा। आशा है आप सपरिवार आनन्द-मंगलसे होंगे। शेष प्रेम-भाव।

आप अफ्रीका जाने पर मुझे अपने विचार तथा शुभ सम्मति भेजनेकी कृपा करें, ताकि मैं अपनी यात्रामें उन पर पूरा-पूरा ध्यान रक्खूँ।

आपका प्यारा,
चाँदकरण शारदा

बिरला हाउस,
नयी दिल्ली
२६-२-५४
फाल्गुन कृष्णा ८, २०१०

प्रिय श्री शारदाजी,

नमस्ते। आपका कृपा-पत्र मिला, धन्यवाद। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप धर्म-प्रचारार्थ पूर्वी अफ्रीका जा रहे हैं। वहाँ आपके द्वारा उत्तम प्रचार होगा, इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं है। आपने इस सम्बन्धमें मेरे विचार तथा सम्मति माँगी है। सो हमारी यह सम्मति है कि आप वहाँके हिन्दू नेताओंसे यह निवेदन करें कि मुसलमानोंको सन्तुष्ट करनेकी नीतिके अनुसार अपनेको हिन्दुस्तानी कहनेका मोह छोड़ कर 'हिन्दू' शब्दको अपनावें और अपनेको हिन्दू कहनेमें गौरव अनुभव करें तथा हिन्दुओंको संगठित करनेमें लगें। उनके ध्यानमें

* * *

यह बात अंकित रहनी चाहिए कि मुसलमानोंको सन्तुष्ट करनेके लिए हिन्दुस्तानीकी भावनाका क्या परिणाम भारतमें हुआ है, इससे उन्हें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। इससे हिन्दुस्तानीका मोह छोड़कर हिन्दुओंके संगठनमें ही उनका भला है, यह बात वहाँके हिन्दू नेताओंको हृदयंगम करानेकी आवश्यकता है। मुसलमानोंने सदा हमारी इस मनोवृत्तिका लाभ उठाया है और हिन्दू सदा घाटेमें रहे हैं। यदि हिन्दू अपनी इस मनोवृत्तिको न छोड़ेंगे, तो आगे भी घाटेमें रहेंगे। हिन्दुस्तान हिन्दुओं पर निर्भर है। यदि हिन्दू न रहें, तो हिन्दुस्तानका फिर कोई अर्थ नहीं रह जाता।

आर्यसमाजी और सनातनीका भेदभाव भी हिन्दू-संगठनके लिए घातक है। दोनोंको उदार होना चाहिए - ऐसा प्रचार आपके द्वारा होना चाहिए; क्योंकि उदार सनातनी और उदार आर्यसमाजी एक दूसरेके वहुत सन्निकट हैं। भारतीय लोग वहाँके आदिनिवासी अफ्रीकनों तथा योरोपियनोंके साथ भी मेल-जोलसे रहें, इसकी प्रेरणा भी आपके द्वारा होनी चाहिए।

एक बातका और भी ध्यान रखना चाहिए कि सार्वजनिक भाषणोंमें जो कुछ भी आप मुसलमानों या और किसोके सम्बन्धमें कहें, तो मीठे शब्दोंमें ही बोलें। कटु शब्दोंसे कही गई वस्तुका प्रभाव उतना अधिक नहीं रहता।

आशा है आपकी यह यात्रा सफल होगी और वहाँ आपके द्वारा यथेष्ट धर्मका प्रचार होगा।

भवदीय,
जुगलकिशोर बिरला

मिस्र (गाज़ा)

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् द्वारा मिस्र (इजिप्ट)में नियुक्त भारतीय सैनिकोंने श्रीमान् सेठजीसे एक पत्र लिखकर माँग की थी कि वहाँ उनके द्वारा रफेह (इजिप्ट)में निर्मित मन्दिरमें स्थापनाके लिए एक श्वेत संगमर्मरकी श्रीकृष्ण भगवान्की मूर्ति भेजी जाय। उनके इस अनुरोधका सम्मान करते हुए सेठजीने अ० भा० आर्य (हिन्दू) धर्म-सेवासंघके द्वारा एक कृष्ण-मूर्ति भिजवानेकी व्यवस्था कराई। इस सम्बन्धमें सुरक्षा सैनिक दलके प्रमुखका जो धन्यवाद-पत्र संघ-कार्यालयको प्राप्त हुआ था, वह इस प्रकार है :

आर्मी हेड क्वार्टर्स जनरल स्टाफ ब्रांच
डी० एच० क्यू०, नया दिल्ली
३० सितम्बर, १९६३

श्री भट्ट,

आपके पत्र नं० ७६१।६३के सन्दर्भमें निवेदन है कि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् द्वारा नियुक्त भारतीय सैनिकोंके लिए रफेह (इजिप्ट)में उनके द्वारा निर्मित मन्दिरमें स्थापित करनेके निमित्त श्री सेठ जुगलकिशोर जी बिरलासे भगवान् श्रीकृष्णकी मूर्ति पाकर हम लोगोंको बड़ा हर्ष हुआ। सूबेदार विद्धिचन्द डोगराको आदेश दिया गया है कि वह श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिरमें १ अक्टूबर '६३को आपके प्रतिनिधिके हाथसे यह उपहार स्वीकार करे। उसके बाद वह मूर्ति गाज़ाके लिए बम्बईसे ३० अक्टूबर '६३को प्रस्थित होने वाले एक विशेष जहाज द्वारा यहाँ लाई जाएगी।

* * *

मैं पुनः श्री बिरलाजीकी उस स्नेहमयी उदारताका अभिनन्दन करता हूँ, जिससे प्रेरित होकर उन्होंने हमारे सैनिकोंके लिए यह सुन्दर उपहार भेजा है।

भवदीय,

दलप्रमुख

इंग्लैण्ड

[लन्दनके अंग्रेज विद्वान् श्री फिलिप सिंगरके पत्रका उत्तर]

प्रिय महोदय,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप अपना अध्ययन समाप्त कर अपने देश लौट गए हैं। मुझे यह जानकर भी प्रसन्नता हुई कि आप हिन्दू-धर्मके उच्च आदर्श, उदात्त सिद्धान्तों और वेदान्त दर्शनसे प्रेरित होकर पश्चिममें आर्य-हिन्दू-धर्मके सिद्धान्तोंका प्रचार कर रहे हैं तथा कला और साहित्यको आपने अपना कार्यक्षेत्र बनाया है। आप स्वयं जानते हैं कि कला और साहित्य बिना आध्यात्मिक आधारके उसी प्रकार निरर्थक हैं, जिस प्रकार आत्माके बिना शरीर। विशेषकर प्राचीन भारतीय कला और साहित्य तो आध्यात्मिक आदर्शोंसे ओत-प्रोत हैं और उनकी पृष्ठभूमि धर्म है, जैसा कि अजन्ता, एलोरा, एलीफैण्टा आदिकी कलाकृतियों तथा वेदसे लेकर आधुनिक समस्त संस्कृत वाङ्मयसे सिद्ध है।

यह महान् खेदकी बात है कि मनुष्य जातिने अपनी अज्ञानतासे धर्मके नामपर अपने संकुचित बाड़ों, सम्प्रदायों और वर्गोंका निर्माण कर लिया है और कतिपय रीति-रिवाजों, उत्सवों और अन्धविश्वासोंको ही धर्म-का नाम दे दिया है। किन्तु धर्म केवल किसी एक व्यक्तिके ऊपर विश्वास रखनेका नाम नहीं है या वह कोई विशेष पूजा-अर्चाकी विधि मात्र नहीं है, अथवा वह कुछ अन्धविश्वासों और अन्ध-मान्यताओंका नाम नहीं है। धर्म विश्व-जनीन है और निखिल मानवताकी वस्तु है। वह किसी एक ही समुदाय, समाज या राष्ट्रतक सीमित नहीं है। उस सार्वभौम धर्मकी हमारे प्राचीन आर्य ऋषियों द्वारा इस प्रकार व्याख्या की गयी है:

"जो मानवजातिको धारण करता है, उसका पालन-पोषण करता है और जो उसके भौतिक उत्कर्षके पश्चात् उसे निर्वाण या आत्म-साक्षात्कारकी ओर अग्रसर करता है, वही धर्म है।"

इसे सनातन-धर्म कहा गया है, क्योंकि यह अटल और ध्रुव सत्य पर आधारित है। हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थोंमें सभी सद्‌गुणोंका सम्मिलित रूप सनातन-धर्मके नामसे कहा गया है और उसकी परिभाषा निम्न-लिखित एक श्लोकमें दी गई है :

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

धैर्य, क्षमा, अन्तर्बाह्य शत्रुओंका दमन (आन्तरिक शत्रु जैसे - वासना, क्रोध, मोह, द्वेष; बाह्य शत्रु जैसे - दुष्ट, पापी, उत्पीड़क व्यक्ति), अस्तेय (चोरी न करना), पवित्रता (मानसिक और शारीरिक), इन्द्रियोंका दमन, सत्य-परायणता और क्रोध न करना - इन सभी सनातन गुणोंका एकत्रित रूप धर्म कहा जाता है।

"आपने अपने पत्रमें भारत आनेकी इच्छा प्रकट की है और अपने उद्देश्यके सम्बन्धमें मुझसे परामर्श माँगा है। किन्तु यहाँ आनेका कष्ट उठानेकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। मुझे विश्वास है कि आप अपने

* * *

देशमें ही, ऐसे बहुत-से अच्छे व्यक्तियोंसे मिल सकते हैं, जो हिन्दू-धर्म और दर्शनमें रुचि रखते हैं और जिन्होंने प्राच्यकला तथा साहित्यका विधिवत् अध्ययन किया है। आप ऐसे व्यक्तियोंसे सहयोग प्राप्त करनेकी चेष्टा कर सकते हैं और इस दिशामें उनके पथ-प्रदर्शनका लाभ उठा सकते हैं। संस्कृत आर्योंकी बहुत ही प्राचीन भाषा है। यह कहा जा सकता है कि वह ग्रीक, जर्मन, फ्रेंच, और इंगलिश आदि योरोपीय भाषाओंकी भी जननी है। हिन्दुओंकी भाँति योरोपीय लोग भी आर्योंके वंशज हैं। अतः हिन्दुओंकी भाँति यह उनका भी कर्तव्य है कि वे संस्कृत साहित्यमें निहित आध्यात्मिक ज्ञानकी रक्षामें संलग्न हों और उससे लाभ उठायें। अतः मेरी सम्मतिमें सभी उपलब्ध साधनोंके द्वारा योरोपीय लोगोंकी रुचि आर्य-धर्मकी ओर आकृष्ट की जाय और संस्कृत साहित्यमें भरी हुई आध्यात्मिक निधिके प्रति उन्हें आकृष्ट किया जाय। वर्तमानमें लोग भौतिकताकी ओर उन्मत्तकी भाँति दौड़ जा रहे हैं। उन्होंने आध्यात्मिक तत्वोंका जैसे बहिष्कार ही कर दिया है। अध्यात्मविहीन भौतिकवाद निश्चय ही मानवजातिको विनाशकी ओर ले जाएगा। इस सम्बन्धमें चित्रकलाके द्वारा भी अध्यात्मवादका प्रसार हो सकता है। ये चित्र ऐसे होने चाहिए और ऐसे विषयोंपर आधारित होने चाहिए, जो मानव मस्तिष्कको आधुनिक सभ्यताकी भौतिक प्रवृत्तियोंसे दूर हटा कर आध्यात्मिकताकी ओर प्रवृत्त करें।

विशेष शुभकामना सहित -

भवदीय,

जुगलकिशोर बिरला

श्री एम० डी० ठाकुर, मन्त्री, हिन्दू एसोसिएशन ऑफ़ योरोप, ३१ पोलिगिन रोड, यूस्टन, लन्दनके कई पत्र उक्त एसोसिएशनकी सहायताके सम्बन्धमें बिरलाजीको प्राप्त हुए थे। एसोसिएशनके लन्दन-स्थित भवनका मूल्य चुकानेके लिए तथा एसोसिएशनको ऋणमुक्त करनेके लिए श्रीमान् सेठजीकी ओरसे कुल १,००० पाउण्ड अर्थात् लगभग १५,००० रुपये भेजे गए थे। इस सम्बन्धमें श्री ठाकुरके दो पत्र नीचे उद्धृत हैं :

५१ ग्रोन रोड,
डानकास्टर,
३१-९-५५

माननीय श्री जुगलकिशोरजी,

सादर नमस्ते। मैं आशा करता हूँ कि आपका स्वास्थ्य ठीक होगा। आपने लन्दनमें हिन्दूकेन्द्रके लिए उदार सहायता दी थी। इसके लिए मुझे आपको बार-बार सहायताके लिए लिखनेमें बड़ी शरम लगती है और संकोच होता है। किन्तु जब अपना राज्यनेता हिन्दू-धर्मसे विरक्त है और आप जैसे महानुभाव हिन्दूधर्मकी ध्वजा उड़ती रहे, इसके लिए धनार्पण करते रहते हैं। लन्दनमें कोई ठीक-ठीक हिन्दूकेन्द्र इस नं० ३२, पोलिगिन रोडके सिवाय नहीं है। बैंकका जो कर्ज है, वह न दिया गया तो केन्द्र थोड़े समयमें बन्द हो जाएगा। लन्दनमें हिन्दुओंकी विरोधी अमेरिकन फिल्में दिखाई जाती हैं। एक राम-रिटौला नामकी पुस्तक यहाँ एक कम्पनीने

प्रसिद्ध की है, उसमें राम-सीताकी बुराई दिखाई गई है। लन्दनका केन्द्र आर्थिक दुर्दशामें न होता, तो हिन्दुओंकी कुछ सेवा यहाँ हो पाती। अखण्ड भारत हिन्दू महा-सभाके प्रधान श्रीनिर्मलचन्द्रजी लन्दन आए थे। जुलाईमें उनका हिन्दूधर्म पर अच्छा भाषण हुआ। दो-तीन अवसर पर जाकर उनके दर्शन किए और अपनी सारी कठिनाई बतायी। इस प्रश्न पर बातचीत करेंगे, ऐसा मुझे आश्वासन दिया था। जिस प्रकार दिल्लीमें श्री लक्ष्मी-नारायण मन्दिर द्वारा हिन्दूधर्मकी ध्वजा आपके कुटुम्बकी मददसे उड़ रही है, वह उसी प्रकार उड़ती रहे, ऐसी कामना है। जब परमात्माका आदेश आयेगा, तब एक-दो सालमें देव-लोक जाना होगा। मेरी उम्र ७० सालकी है, इसलिए लन्दनका केन्द्र कायम रहे तो अच्छा हो। वहाँ एक हिन्दू पण्डित सपत्नीक रहे, तो वह प्रार्थना तथा हिन्दुओंके संस्कार कराता रहे। ऐसा कोई विद्वान् यहाँ रहे तो सालमें ५० हिन्दुओंकी शादियाँ हिन्दू पद्धतिसे हों और २०-३० अन्त्येष्टि, उपनयन, नामकरण आदि भी सम्पन्न हो सकते हैं। श्री भट्टने मुझे लिखा था। मुझे अत्यन्त क्षोभ है कि हिन्दू भाई लन्दनमें हिन्दू-धर्मके लिए न तो धन दे सकते हैं और न काम कर सकते हैं। मैं पुनः गोस्वामी गणेशदत्तजी तथा श्रीयुत भट्टजी को इस सम्बन्धमें पत्र दूँगा।

भवदीय,

एम० डी० ठाकुर

माननीय श्री सेठ जुगलकिशोरजी,

सादर नमस्ते। आशा है कि आपका स्वास्थ्य ठीक होगा। आपने लन्दनकी हिन्दू संस्थाके लिए जो ध्यान दिया है, उसके लिए हम सब कार्यकर्ता आपके अति अनुग्रहीत हैं। जब श्री भट्टका पत्र ५-१-५६को मिला, तब पता लगा कि आर्य-संघके द्वारा आप हिन्दू संस्थाको ३०० पाउण्ड ज्यादासे ज्यादा मदद कर सकेंगे। इस विषयका ता० १९-११-५५का श्री भट्ट महाशयका पत्र मुझे नहीं मिला था। मुझे जब पत्र ५-२-५६के पहले तक आर्य-धर्म-सेवासंघकी ओरसे नहीं मिला, तो पिछले १९-११-५५के पत्रसे, जिसमें केवल ३०० पाउण्डकी सहायताका ही उल्लेख था, मैं बड़ा ही खिन्न और शोकमें था कि मदद नहीं मिलनेसे केन्द्र बन्द हो जायगा। किन्तु ५-१-५६का पत्र मिलनेपर परमात्माका धन्यवाद मानकर अब मैं कह सकता हूँ कि अब केन्द्र चलता रहेगा। जब आपने सहायता दी है तो मैं दावेदारोंको लिख सकूँगा कि हमारी संस्थाको श्री जुगलकिशोरजीने बड़ी राशि दानमें दी है। सो और भी दाता दान दें, तो संस्था कर्जसे मुक्त हो जायगी। मुझे अफसोस है कि मैं अपने धार्मिक नेताओंको निश्चय नहीं दिला सकता हूँ कि हिन्दूधर्मकी लन्दनमें कमसे-कम एक संस्थाका होना परम आवश्यक है। हमारे बहुतसे युवा क्रिश्चियन और कम्युनिस्टोंके प्रचारसे अपने धर्म और संस्कारसे विमुख हो जाते हैं। मेरी उम्र ७० वर्षकी होनेसे, मुझे अस्पतालके सरकारी कामसे दूर होना पड़ा है। खानगी प्रैक्टिस चल रही है। परमात्माकी कृपा होगी, तो देशमें जाकर देश और हिन्दूधर्मकी कुछ सेवा कर सकूँगा। किन्तु जब तक मुझसे हो सके, लन्दनके केन्द्रको मजबूत बनाकर छोड़ना है। दो-तीन सालके बाद, पण्डित जवाहरलालजीने हिन्दूधर्मकी जो हानि की है, उसका असर दूर हो जायगा। तब हमारे लन्दनके हाई कमिश्नर और हिन्दू भाई-बहन हिन्दू संस्थाके काममें सहायता देंगे और संस्थाके सभासद बनकर आर्थिक स्थिति सुधारनेमें सहायक होंगे। आपकी मददके बारेमें ज्यादा लिखनेमें शर्मिन्दा हूँ।

भवदीय,

एम० डी० ठाकुर

* * *

खेदपूर्ण अध्याय

श्री ठाकुरका एक खेदपूर्ण पत्र

मैं लन्दन बहुत कम जाता हूँ। १९५१में मैं भारत गया था। उसके बाद श्रीमान् सेठ जुगलकिशोर बिरलाजी तथा धर्म-सेवासंघ तथा उदार सज्जनोंकी सहायतासे हिन्दू एसोसिएशनका मकान खरीदा गया। पर बैंकसे जो कर्जा लिया गया, वह पाटा न जा सका। दूसरे, लन्दन म्युनिसिपैलिटी टाउन प्लेनिंग वाले उस भवनको हस्तगत करनेके प्रयासमें रहे। एसोसिएशनके मेम्बरोंने कोई रुचि भी नहीं ली। आपसमें फूट भी हो गई। इससे वह भवन बेचकर ऋण पाट दिया गया। अब किसी तरह नाममात्रको चल रहा है। मैं ८२ वर्षका बूढ़ा हो गया हूँ। बीमार रहता हूँ और लन्दनके बाहर रहता हूँ, इसलिए मैं अब कोई क्रियात्मक भाग नहीं ले सकता। हमारे देशके हाई कमिश्नरसे भी कोई सहयोग नहीं मिलता, बल्कि उलटा विरोध होता है कि यह साम्प्रदायिक संस्था है। मेरा ऐसा विचार है कि जब तक कांग्रेसी सरकार है और जबतक हिन्दू नामसे उस कामको साम्प्रदायिक समझा जाता रहेगा, तब तक हिन्दुओंके लिए कोई आशा नहीं है।

भवदीय,

एम० डी० ठाकुर

[डॉ० ओ० पी० शर्मा, पी-एच० डी०का पत्र]

९ वेलफील्ड प्लेस, लिवरपूल ८

मार्च ६, १९६१

प्रिय श्री भट्ट,

आपके दिनांक १६-२-६१के पत्रके लिए अनेक धन्यवाद। प्रथम तो मैं अपने एसोसिएशनके सदस्योंकी ओरसे श्रीयुत सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाको, जिन्होंने लिवरपूलके लिए भगवान् श्रीकृष्णकी मूर्ति भेजनेका आश्वासन दिया है तथा आपको, जो आपने कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें भेजी हैं, उसके लिए हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ।

मूर्तिके विषयमें आपने पूछा है, सो हम लोग वंशीवाले कृष्णकी प्रतिमा पसन्द करेंगे। वस्त्र, मुकुट आदि मूर्तिमें ही उत्कीर्ण होने चाहिए। मूर्तिकी ऊँचाई ४ फुट होनी चाहिए, हम लोग अपना वार्षिकोत्सव जून मासमें मनाने जा रहे हैं। हम अत्यन्त आभारी होंगे, यदि आपकी ओरसे उक्त अवसरके पूर्व मूर्ति यहाँ भिजवानेकी व्यवस्था कर दी जाय। मूर्ति सुरक्षित आ सके, इसके लिए मजबूत लकड़ीसे उसकी पैकिंग कराना नितान्त आवश्यक होगा। मूर्ति भेजनेके समय उसे इन्श्योर्ड (बीमा) करा लेना भी उचित होगा, जिससे कि यदि वह मार्गमें टूट-फूट जाय, तो उसकी क्षतिपूर्ति की जा सके। मुझे पता नहीं, इसे सीधे-सीधे लिवरपूल आने वाले जहाज द्वारा भेजना सम्भव हो सकेगा या नहीं। मेरे लिए तो यह भी कल्पना दुरूह थी कि वहाँसे आरती-वन्दनके कुछ सामान भी आ सकते हैं या नहीं।

हम लोगोंने अपने भवनके उद्घाटन-समारोहका ८ मिलीमीटरकी फिल्म भी तैयार की है। यदि आप

इसकी कोई उपयोगिता वहाँ समझें, तो मैं उसे आपके पास भेज सकता हूँ। एसोसिएशनके विधानकी एक प्रति आपके कार्यालयके लिए भेज रहा हूँ। इससे आपको हमारे एसोसिएशनके सम्बन्धमें कुछ ज्ञान हो जायगा। हम आपसे ऐसी सहायता भी प्राप्त करना चाहते हैं, जिसके द्वारा समय-समय पर व्याख्यान आदि देनेवाले जो विद्वान् वक्ता यहाँ इंग्लैण्ड आते हैं, उनसे हम अपना सम्पर्क स्थापित कर सकें।[1]

भवदीय,
ओ० पी० शर्मा

फ्रांस

[श्री बिरलाजीके नाम एक फ्रेंच महिलाका पत्र]

गन्ध मादन बिहार, आनन्द भिक्षु लेन,
दार्जिलिंग
२०-८-१९५४

महोदय,

मैं एक विदेशी महिला हूँ। मैंने आपकी उदारताके बारेमें भारतवर्षमें बहुत कुछ सुना है। मैं जानती हूँ कि आप उन लोगोंको सहायता देना चाहते हैं; जो धार्मिक, लेखक, कवि आदि होते हैं। अतः मैं यहाँपर अपनी कठिनाई आपको व्यक्त करनेकी इजाजत चाहती हूँ।

मैं एक फ्रेंच नारी हूँ। भारत सरकारने १९५१में मुझे कलकत्ता विश्वविद्यालयमें प्रोफेसर एवं सदस्य होनेके लिए बुलाया था। मैं डी-लिट्० परीक्षाके लिए काम करती हूँ। वास्तु विद्या मेरा विषय है। मैं पेरिस-में ओरियण्टल स्कूलमें हिन्दी पढ़ा रही थी। मैं वेदान्त और भारतीय दर्शनोंकी पुस्तकें भी पढ़ती थी। भारतमें बौद्धधर्मके नवजीवनसे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। मैं खुद भी एक बौद्ध भिक्षुणी हो गई हूँ। अभी मैं तिब्बती भाषा पढ़ रही हूँ। सभ्यताके क्षेत्रमें भारत और तिब्बतका सम्बन्ध बहुत प्राचीन और महान् है। कलकत्ता विश्व-विद्यालयमें मुझे छात्रवृत्ति एक साल तक मिलनेके बाद बन्द हो चुकी है। लेकिन अब कोई सहायता नहीं मिलती।

एक सालसे मैं दार्जिलिंगमें रहती हूँ। यहाँ आध्यात्मिक जीवन-यापन करना और तिब्बती भाषा पढ़ना दोनों हो सकते हैं। मैं भगवान् बुद्धके आदेशानुसार भिक्षाके लिए जाती हूँ। किन्तु कभी-कभी यह नहीं हो सकता। स्त्री होनेके कारण यह कार्य और भी मुश्किल है। मैं धर्मशालामें अथवा मन्दिरोंमें पुरुषोंके साथ तथा भिक्षुओंके साथ नहीं रह सकती। कलिम्पौंग तिब्बती भाषा पढ़नेके लिए सबसे अच्छी जगह है। पर मैं इतनी गरीब हूँ कि एक छोटी कुटी या कमरा भी भाड़े पर नहीं ले सकती। मैं निर्धनतासे नहीं डरती, संन्यासीको धनी होना अच्छा नहीं है। मैं सिर्फ यह चाहती हूँ कि मेरा काम हो सके। भारत मेरे लिए दूसरी मातृभूमि है। मैं यहाँ रहना चाहती हूँ।

---

१. श्री शर्माके उक्त पत्रके अनुसार श्री बिरलाजीने लिवरपूलके मन्दिरमें स्थापनाके लिए वेणुधारी श्रीकृष्णकी एक संगमर्मरकी सुन्दर प्रतिमा बनवा कर भेजी, जिसका वहाँ बड़े उत्साहके साथ भारतीयोंने स्वागत किया।—सम्पादक

* * *

मेरा विश्वास है कि आपकी उदारता मेरी वर्तमान स्थितिकी उपेक्षा नहीं करेगी। यदि मुझे ६० रुपये मासिककी सहायता मिलेगी, तो मैं अपना पूरा समय ध्यानमें तथा पढ़नेमें लगाऊँगी।[1]

आदर सहित,

मुनि शासन धर्मानन्दा

(मिस डी० डिलानाय)

जर्मनी

[भारतीय-संस्कृति और भाषामर्मज्ञ जी० गेशका पत्र]

कर्ल — जी० गेश, मानहेम - सण्डोफेन,

गम्बरितुटर - ५, जर्मनी,

२०-७-५५

श्रीमान् बिरलाजी

सादर प्रणाम।

पिछले कुछ वर्षोंसे मैं भारतीय-संस्कृति, हिन्दू-धर्म और हिन्दी-भाषाका अध्ययन कर रहा हूँ। इस वर्षके अन्तमें सम्भवतः नवम्बर या दिसम्बर, १९५५में मैं भारतवर्ष आ रहा हूँ। भारतवर्षमें मेरे अध्ययनका प्रबन्ध गीता प्रेसमें श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार कर रहे हैं। भारतवर्षमें मैं लगभग छः मास रहूँगा और हिन्दूधर्म और मनोविज्ञानको समझनेका प्रयत्न करूँगा। विशेषकर मेरी रुचि गीतामें है।

जर्मनीसे भारतवर्ष आनेका भाड़ा तो मेरे पास है। यदि आप छः मासके लिए एक छात्रवृत्ति प्रदान कर सकें तो बहुत कृपा होगी। इस छात्रवृत्ति द्वारा सम्भवतः मैं भारतवर्षके कुछ तीर्थस्थानोंके दर्शन कर सकूँगा और कुछ धार्मिक पुस्तकें आदि भी मोल ले सकूँगा।

दिल्ली में बिरला-मन्दिरके दर्शन करने आऊँगा। सम्भवतः आपसे भेंट होगी।

आशा है आप मेरी सहायता करनेका यत्न करेंगे।

भवदीय,

क० ग० गेश

[श्री बिरलाजीका उत्तर]

प्रिय श्री गेश,

आपका २०-७-५५का कृपा पत्र मिला, अनेक धन्यवाद। आपका भारतीय-संस्कृति तथा हिन्दू-धर्मके प्रति अनुराग देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई। आपके पत्रसे यह भी ज्ञात हुआ कि आपका विचार इसी वर्ष नवम्बर या दिसम्बरमें भारतवर्ष आकर भारतीय-संस्कृति तथा हिन्दू-धर्म के सम्बन्धमें अध्ययन करनेका है। परन्तु भारतीय-

---

१. इस पत्रके उत्तरमें श्री सेठजी उक्त विदेशी महिलाको कई वर्षों तक संघकी ओरसे छात्रवृत्ति भिजवाते रहे।—सम्पादक

सस्कृति तथा हिन्दू-धर्मके सम्बन्ध में यथेष्ठ ज्ञान आप वहीं प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि भारतीय-संस्कृति तथा हिन्दू-धर्म सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ जर्मन तथा अंग्रेजी भाषामें अनूदित तथा प्रकाशित हो चुके हैं। यहाँसे भी आपके अध्ययनके लिए उन्हीं विषयों पर कुछ ग्रन्थ तथा पुस्तकें आपके पास समुद्री डाकसे भिजवा रहा हूँ। मिलने पर कृपया पहुँच लिखियेगा।

भारतीय-संस्कृति तथा हिन्दू-धर्ममें उपनिषद् तथा वेदान्त दर्शन आदि विशेष महत्वपूर्ण अध्ययनकी वस्तु हैं। हमारे प्राचीन आर्य ऋषि-मुनियोंकी वेदवाणी संस्कृत भाषा भी भारतकी एक अमूल्य निधि है। संस्कृत भाषा समस्त आर्य-भाषाओंकी जननी मानी गई है। संस्कृत साहित्य अनेक विषयोंके ज्ञानका अपार समुद्र है। आध्यामिक ज्ञानका तो संस्कृत साहित्य अक्षय भण्डार है। यदि आप संस्कृत भाषाका अध्ययन कर उसका ज्ञान प्राप्त कर लें, तो आध्यात्मिक ज्ञानका अनन्त भण्डार आप अपने हस्तगत कर सकते हैं। आपके देशमें संस्कृत भाषाके अनेक प्रकाण्ड विद्वान् मैक्समूलर, डायसन, वेवर आदि हो गए हैं, जिन्होंने संस्कृत भाषाकी वड़ी सेवा की है। इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

जर्मन-शर्मन

संसारमें जितने मत-मतान्तर धर्म नामसे प्रचलित हैं, उनमें आर्य (हिन्दू) धर्म सबसे प्राचीन है। आर्य (हिन्दू) धर्म किसी एक जाति या एक देशके लिए सीमित नहीं है और न यह किसी विशेष व्यक्ति या उसके रचे हुए किसी विशेष ग्रन्थ पर अवलम्बित है। इसीलिए इसको मानवधर्म, सनातनधर्म या आर्य-धर्म भी कहते हैं। आर्य जर्मन लोग भी हैं, क्योंकि रक्त या रेस (वंश) की दृष्टिसे जर्मन लोग भी उन्हीं प्राचीन आर्योंकी सन्तान हैं। अतएव सनातन-धर्म तथा प्राचीन आर्य-संस्कृति तथा संस्कृत भाषाकी रक्षा तथा उन्नति करना आप लोगोंका भी उतना ही कर्तव्य है, जितना कि हम लोगोंका। जर्मन शब्द तो कदाचित् संस्कृत शर्मन (ब्राह्मण)का बिगड़ा हुआ रूप ही है।

खेद है, वर्तमान भारत वह नहीं रहा; जो प्राचीन काल में था। वर्तमान भारत अज्ञान और दरिद्रतामें डूबा हुआ है। जो लोग यहाँ शिक्षित तथा सम्पन्न कहे जाते हैं, वे पश्चिमी सभ्यताकी विलासिता तथा भौतिक-वादकी ओर अबाध गतिसे दौड़े जा रहे हैं। परन्तु वहाँकी कोई अच्छी बात नहीं ग्रहण कर रहे हैं। अतएव भारतमें आप जिस दृष्टिसे आनेका विचार कर रहे हैं, उस दृष्टिसे आपको कदाचित् विशेष लाभ न हो और सम्भव है, आपको निराश होना पड़े। यद्यपि अभी भी कहीं-कहीं उच्चकोटिके आध्यात्मिक पुरुष तथा साधु-महात्मा मिल सकते हैं, परन्तु ऐसे लोग प्रायः एकान्तवास करते हैं और जनसमुदायसे दूर रहते हैं।

तथापि आपका निश्चय यदि भारत आनेका होगा, तो जहाँतक हो सकेगा; ६ महीनेके लिए छात्रवृत्तिका प्रवन्ध आपके लिए कर दिया जायगा।

बिरला हाउस,
नयी दिल्ली

भवदीय,
जुगलकिशोर बिरला

* * *

[सांख्य और न्याय-शास्त्रके अध्ययनार्थ भारत आए हुए जर्मन-मनीषी श्री क्लासकमानका पत्र]

मान्यवर बिरला महोदयाः !

अनेकानेक नमस्कार पूर्वकं विज्ञाप्यते यदहं भवद्धस्ताभ्यां सार्द्धशतरूप्यकम् प्राप्तवान्। अखिलआर्य-धर्मसेवासंघस्यैतया वृत्त्या मम कृतज्ञतात्यन्तास्ति। अहं खलु सांख्ययोगविषये पण्डित परीक्षामुत्तितीर्षामि। वस्तुतः स एव ममाभिप्रायः। सांख्ययोगशास्त्रे तथा नव्य न्यायशास्त्रे सुबोधनशिक्षामपेक्षतेप्रतिमासं च मयै-कशतरूप्यकाणि शिक्षा शुल्कं दातव्यानि। तस्मादखिलार्यधर्म सेवा संघस्य साहाय्येन विनाऽहंशास्त्राणि गाम्भीर्ये-णावगाहमानो न भवेयम्।

पुनः पुनः कृतज्ञतयैतस्यानन्तौदार्यस्य प्रशंसां कृत्वा तथा प्रणिपातेन श्रीमतः समाज्याहं पत्रं समर्पयामि।[1]

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः
वाराणसी

क्लासकमानः
जर्मन देशीयः

[भारत-स्थित जर्मन राजदूतका पत्र]

नयी दिल्ली,
सितम्बर ३, १९५६

प्रिय श्री बिरला,

आपने कल श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिरके आगे आयोजित यौगिक क्रियाओं और आसनोंके एक प्रदर्शनमें श्रीमती मियरके साथ मुझे आमन्त्रित किया और उन क्रियाओंके निरीक्षणका अवसर प्रदान किया, इसके लिए अनेक धन्यवाद।

हम दोनों और हमारे अन्य सहयोगियोंने जो कुछ वहाँ देखा, उससे हम बड़े ही प्रभावित हुए।

अबतक मैं केवल सुना ही करता था कि प्रसिद्ध भारतीय यौगिक पद्धतिसे अनेक प्रकारके चमत्कार और सिद्धियाँ अर्जित की जा सकती हैं। यहाँ मुझे यह कहनेमें संकोच नहीं है कि योगके विद्यार्थियों द्वारा तथा स्वामी देवमूर्ति द्वारा योगासन आदिका जो कुछ प्रदर्शन किया गया, वह मेरी कल्पनासे कहीं बढ़ कर था।

इस प्रकार प्राणायाम द्वारा शरीर और स्नायुमण्डल पर प्रत्यक्ष प्रभुत्व देखकर विश्वास करना पड़ता है। आपके स्नेहभरे आमन्त्रणके लिए पुनः धन्यवाद।

सप्रेम,
अर्नेस्ट विल्हेम मियर

---

१. श्री बिरलाजी सौ रुपए मासिककी छात्रवृत्ति श्री क्लासकमानको उनके अध्ययनकाल तक देते रहे।
—सम्पादक

* * *

[जर्मन-विद्वान् श्री होइस्ट पेटजोइडका पत्र]

ऋषिकेश,
२०-४-६१

प्रिय महोदय,

जब मैं जर्मनीमें था, शिवानन्द आश्रम नामक संस्थाके सम्बन्धमें एक पुस्तक मुझे देखनेको मिली। उसमें लिखा था कि आश्रममें आनेवालोंको वहाँ कुछ काम करनेकी, भोजन और आवासकी तथा योग-साधनाकी सुविधा उपलब्ध है। योगके सम्बन्धमें मेरा विशेष आकर्षण था। अतः मैं मध्य एशिया होते हुए एक विस्तृत भूभागको तय कर बड़ी कठिनाईसे यहाँ पहुँचा। किन्तु यहाँ आनेपर मुझसे कहा गया कि मैं केवल विद्यार्थीके रूपमें ठहर सकता हूँ और मुझे ७५) रु० मासिक अपने कमरेके लिए तथा भोजनके लिए देना पड़ेगा। मेरे लिए यह राशि देना असम्भव-सा है। क्योंकि मैं जानता हूँ कि आध्यात्मिक ज्ञानकी उपलब्धि बहुत समयकी अपेक्षा रखती है, जबकि मेरे पास बहुत ही परिमित द्रव्य है। मेरे द्वारा कोई बड़े दानकी आशा न देखकर जब आश्रमवालोंने दो सप्ताह पश्चात् मुझे शिवानन्द आश्रमसे पृथक् कर दिया, तो मैंने स्वर्गाश्रमवालोंसे सहायता माँगी। वर्तमानमें मैं यहीं रह रहा हूँ। मैं अब भी शिवानन्द आश्रम जाकर वहाँके व्याख्यानोंमें उपस्थित होता हूँ। किन्तु मैं अपने भोजनकी समस्या हल करने लायक कोई काम पानेमें सर्वथा असमर्थ हूँ। मुझे अपनी उस इच्छाको, जिसे मैं अपने लिए सर्वाधिक महत्व देता था, समाप्त करना पड़ रहा है। ऐसा ज्ञात हुआ है कि आप ऐसे व्यक्तियोंकी सहायता करते हैं, जो योग-साधना आदिके मार्गमें अग्रसर होना चाहते हैं। मैं आपसे सहायता का प्रार्थी हूँ। आप चाहे किसी भी रूपमें मेरी सहयता करें।

भवदीय,
होइस्ट पेटजोइड

[श्री पेटजोइडको श्री बिरलाजीका वात्सल्यपूर्ण उत्तर]

प्रिय महोदय,

आपका २० अप्रैलका पत्र मिला, धन्यवाद। योग और वेदान्तके आकर्षण तथा आध्यामिक भावनासे प्रेरित होकर आप भारत आये और यहाँ आनेपर आपको कष्ट सहन करना पड़ा, यह जानकर खेद हुआ। आज भारतमें योग आदिकी चर्चा भी बहुत कम हो गयी है और वास्तविक योगी भी कहीं-कहीं थोड़ेसे ही रह गये हैं।

वेदान्त, योग आदि भारतीय दर्शनोंका अध्ययन तो आप जर्मनीमें रहकर भी कर सकते थे। क्योंकि वेद, उपनिषद्, वेदान्त, योग आदि सब विषयोंके अनेक ग्रन्थोंका अनुवाद जर्मन भाषामें हो चुका है। इसके लिए हम भारतीय लोग जर्मन जातिके ऋणी हैं। मैक्समूलर, बेवर, डायसन आदि अनेक जर्मन विद्वानोंने संस्कृतकी जो सेवा की है, वह चिरस्मरणीय रहेगी।

आपने अपने पत्रमें योगका उल्लेख किया है। सो योगका अन्तिम उद्देश्य तो मन और इन्द्रियों तथा प्राणको वशमें करना ही है। किन्तु इन्द्रियों और मनको वशमें करनेका भक्ति-मार्ग भी एक उत्तम साधन है, जो सुगम और सीधा-सादा है और उसके लिए विशेष साधनों और सामग्रियोंकी भी आवश्यकता नहीं पड़ती।

आपके भोजन और रहनेकी समस्या तो हल हो चुकी है, क्योंकि स्वर्गाश्रममें आप एक-दो साल चाहें, तो

* * *

रह सकते हैं और वहाँ आपके भोजनका प्रवन्ध भी जैसा है, वैसा चलता रहेगा। इसके सम्बन्धमें स्वर्गाश्रमके निरीक्षक श्री देवधर शर्माजीसे बात हो चुकी है और वे उचित प्रवन्ध आपके लिए कर देंगे। आपकी छोटी-मोटी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए यदि कभी कुछ खर्चकी आवश्यकता आपको पड़े, तो स्वर्गाश्रमवालोंसे आप कह सकते हैं। वे यथासम्भव उसकी पूर्ति कर देंगे। इस सम्बन्धमें भी स्वर्गाश्रमके मैनेजरसे बात हो चुकी है। आप कृपया उनसे मिल लें।

यहाँसे भी सेवामें पत्र-पुष्पके रूपमें जेब-खर्चके लिए पचास रुपया तुरन्त भेज रहे हैं, यद्यपि आप लोगोंके लिए यह कुछ भी नहीं है। यहाँ गर्मी अधिक पड़ती है। आप ठण्डे देशके रहनेवाले हैं और आपके रहन-सहनका स्तर (स्टैण्डर्ड) भी ऊँचा है। इसपर ऋषिकेशमें साधुओंके इस आश्रममें भी बहुत ही सादा जीवन है, जो आप लोगोंके लिए कष्टदायक ही रहेगा। ऐसी स्थितिमें चिन्ता है कि कहीं आपके स्वास्थ्यपर बुरा प्रभाव न पड़े। भगवान्से प्रार्थना है कि वह आपका मंगल करें और यथासम्भव जो सेवा हम लोगोंसे बनेगी, चेष्टा की जायगी।

विरला हाउस, नयी दिल्ली
२८-४-६१

भवदीय,
जुगलकिशोर बिरला

भारत-भवन स्टटगर्ट, स्टडिओ लीज, गेडौक हाउस
स्टटगर्ट-एन होल्डरलिन्स्ट्रा १७
१३ अप्रैल, १९५६

[डॉ० टी० आर० अनन्तरमणका पत्र]

प्रिय श्री विरला जी,

कुछ समय पूर्व अपने यहाँकी लाइब्रेरीके लिए भारतीय-धर्म, दर्शन तथा अध्यात्म सम्बन्धी हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजीकी पुस्तकें भेजनेके लिए मैंने एक पत्र श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुरको भेजा था। श्री पोद्दारजीने मुझे आपके पास लिखनेको कहा है। अतः मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूँ।

भारत-भवन इस वर्षके प्रारम्भसे कार्य कर रहा है। स्टटगर्ट तथा आसपासके बहुसंख्यक जर्मन, जो भारतकी संस्कृति और धर्ममें गहरी रुचि रखते हैं, इससे बहुत लाभ उठा रहे हैं। लाइब्रेरी तथा वाचनालयके अतिरिक्त भारत-भवनकी ओरसे गीता और हिन्दीके क्लास भी चलाए जाते हैं, जिनमें प्रति सप्ताह प्रायः १०० जर्मन सम्मिलित हुआ करते हैं। गीता-कोर्सका एक कार्यक्रम इस पत्रके साथ संलग्न है, जिससे भवनकी प्रवृत्तियोंका ज्ञान हो सकता है।

भवनको सनातन-धर्म सम्बन्धी पुस्तकोंकी बड़ी आवश्यकता है। वेद, उपनिषद्, गीता, महाकाव्य रामायण, महाभारत, दर्शन, मनुस्मृति, अद्वैत दर्शन, जैन-धर्म तथा बौद्ध-धर्म पर हिन्दी, अंग्रेजी तथा संस्कृत-अंग्रेजीमें लिखी गयी पुस्तकोंका सेट यदि आप भिजवानेका प्रवन्ध कर दें, तो यह बहुत उत्तम हो। हमारे पुस्तकालय और वाचनालयको भारतीय दूतावास वान, सूचना मन्त्रणालय नयी दिल्ली, भारतीय विद्या-भवन बम्बई, हिन्दी प्रचार-सभा मद्रास आदि अनेक संस्थाओंकी सहायता प्राप्त है। आप चाहें तो श्री ए० पी०

एन० नम्बिआर, जर्मनीमें भारतीय राजदूत, बान और श्री के० एम० मुंशी, गवर्नर, उत्तर प्रदेश, लखनऊसे इस संस्थाके विषयमें विशेष जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

जैसा कि आपको ज्ञात होगा, भारतीय धार्मिक साहित्यमें जर्मनोंकी बड़ी रुचि है। परन्तु दुर्भाग्यवश उनके लिए यहाँ भारतीय धर्म-ग्रन्थोंका बड़ा अभाव है। पाश्चात्य लोग अधिक बौद्धिक होते हैं। उन्हें धर्मका अनुभव नहीं है, वे आत्मा और ब्रह्मके सम्बन्धका ज्ञान नहीं रखते और इस कारण वे भारतीय-धर्म-शास्त्रोंको पूर्णतया समझनेमें असमर्थ हैं। अतएव आपसे प्रार्थना की जा रही है कि आप भारतीय आचार्यों द्वारा लिखे गए हिन्दी तथा संस्कृतमें धर्म-ग्रन्थ भेजनेकी कृपा करें।

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मैं एक वैज्ञानिक होकर भी अपने अवकाशका समय जर्मनोंमें भारतीय-धर्म और दर्शनके प्रचारमें लगाता हूँ। मैं दक्षिण भारतके उस ब्राह्मण वंशका हूँ, जो आदिशंकरके अद्वैत दर्शनको मानता रहा है।

कुछ संस्कृत स्वयं-शिक्षक तथा संस्कृत-अंग्रेजी कोषकी भवनमें बड़ी आवश्यकता है।

आशा है आप हमारी इस संस्थामें वैयक्तिक रूपसे रुचि लेंगे।

भवदीय,

डॉ० टी० आर० अनन्तरमण

एम० ए०, एम० एस-सी०

डी० फिल० (ऑक्सन)

[श्री बिरलाजीका उत्तर]

प्रिय डॉक्टर अनन्तरमण,

आपके १५ अप्रैलके पत्रके लिए अनेक धन्यवाद। मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि आप अपने निजी काम-धन्धेके साथ-साथ अपनी छुट्टीका समय जर्मन लोगोंमें भारतीय-संस्कृति और भारतके प्राचीन आध्यात्मिक और दार्शनिक परम्पराके प्रचारमें लगा रहे हैं। आपके इस प्रयत्नके लिए अनेक धन्यवाद। मैंने अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म-सेवासंघसे कहा है कि वे भारतीय-संस्कृति, दर्शन और धर्म सम्बन्धी कुछ चुनी हुई पुस्तकें आपके पास भिजवा दें। संघसे यह भी कहा गया है कि वे आपसे स्वयं पत्र-व्यवहार करे। शुभ कामना सहित,

भवदीय,

जुगलकिशोर बिरला

चेकोस्लोवाकिया

[प्राहाके मनीषी हिन्दी-प्राध्यापक डॉक्टर स्मेकलको बिरलाजीका उत्तर]

वैशाख शु० २, सं० २०२२ वि०

माननीय श्री ओडोलेन स्मेकल,

नमस्ते। आपका कृपा-पत्र मिला, अनेक धन्यवाद। आपने जैसी शुद्ध संस्कृतनिष्ठ और सजीव हिन्दी भाषामें पत्र लिखा है, उसे पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। ऐसी हिन्दी तो यहाँ भी बहुतसे पढ़े-लिखे भारतीय नहीं

* * *

लिखते। आप हिन्दी-भाषाके अध्ययन और प्रचारके लिए जो प्रयत्न अपने देशमें कर रहे हैं, उसके लिए हम आपके आभारी हैं। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप कुछ दिनोंमें सपत्नीक भारत आनेका विचार कर रहे हैं। आप भारत आयेंगे और अपनी भारत-यात्रामें दिल्ली पधारेंगे, तो आपसे भेंट करके मुझे प्रसन्नता होगी। श्री घनश्यामदास बिरला मेरे सगे भाई हैं। वे आजकल अमेरिका गए हुए हैं और सम्भवतः आगामी जुलाई मासतक भारत लौटेंगे। उनकी रची हुई पुस्तकें हवाई डाक द्वारा भिजवा रहा हूँ। उसके साथ हिन्दू-धर्म, दर्शन और संस्कृतिके सम्बन्धमें कुछ और पुस्तकें भी भेंटस्वरूप भिजवा रहा हूँ। मिलने पर कृपया सूचित करियेगा।

शुभ-कामना सहित

बिरला हाउस,
नई दिल्ली

भवदीय,
जुगलकिशोर बिरला

[डॉक्टर ओडोलेन स्मेकलका पत्र]

विनोहरा डाका २१,
प्राहा २, चैकोस्लोवाकिया

आदरणीय श्री बिरला महोदय,

१९-६-६५

सप्रेम नमस्कार।

आपने अपने पत्रमें मेरे लिए जो ऊँचे भाव व्यक्त किये हैं, उन्हें पढ़कर मेरा हृदय गद्‌गद हो गया। भाषा-शिक्षणका कार्य बड़ा और दीर्घकालीन है। हिन्दीभाषा पर अधिकार प्राप्त करनेके लिए अनेक वर्षोंसे लगातार परिश्रम, प्रयत्न तथा प्रयास कर रहा हूँ। लेकिन बिना रुचि, प्रेम और उत्साहके यह प्रयास पूर्ण रूपसे सफल नहीं हो सकता। प्राहा विश्वविद्यालयमें केवल कुछ ही समयसे हिन्दी अलग स्वतन्त्र विषयके रूपमें चैक, अंग्रेजी आदि भाषाओंकी भाँति पढ़ाई जा रही है। इस भाषाको पढ़ानेके लिए पर्याप्त साहित्यिक सामग्री उपलब्ध न होनेके कारण मुझे अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। हिन्दी साहित्यकारों, शिक्षकों और विद्वानोंको मैंने हजारों पत्र लिखे थे। उनमेंसे बहुत कम व्यक्तियोंने मेरी प्रार्थनाओंकी ओर ध्यान दिया था। इन पिछले वर्षोंमें मुझे विश्वास हो गया था कि कुछ ही अपवादोंके अतिरिक्त हिन्दी-भाषी किसीको सहायता देना अपना उत्तर-दायित्व नहीं समझते। जिस समय उनको सहयोग प्रदान करना है, उस समय वे हिन्दीकी अभिवृद्धि सम्बन्धी समस्त आदर्शोंको भूल जाते हैं।

यह जानकर कि श्री घनश्यामदासजी बिरला आपके सगे भाई हैं, प्रसन्नता हुई है। आपने मेरे अध्ययनके लिए उनकी रची हुई पुस्तकें भिजवा दी हैं, इस कृपाका अत्यन्त आभारी हूँ। हवाई डाक द्वारा भेजनेका आपने व्यर्थ कष्ट किया। जैसा मुझे देखनेको मिला, डाकका व्यय कोई ४० रुपयेके लगभग था, इसके लिए कोई और मूल्यवान ग्रन्थ जो हमें आवश्यकता है, मिल सकता था। जहाँतक भारतके प्रति मेरे सम्बन्धका प्रश्न है, मुझे केवल पुस्तकोंकी इच्छा थी। आजकल मैं हिन्दी भाषाशास्त्रके विषयमें गम्भीर काम कर रहा हूँ। आधुनिक हिन्दीके विकास और प्रवृत्तियोंके इतिहासका वैज्ञानिक अध्ययन करनेके हेतु मुझे प्रामाणिक शब्द-कोषों तथा भाषाशास्त्रसे सम्बन्धित शोधग्रन्थोंकी आवश्यकता है। इस प्रकारकी पुस्तकें बहुत महँगी हैं। उनके लिए किससे प्रार्थना करूँ, यह मुझे बिलकुल पता नहीं था। और 'गान्धीजीकी छत्रछाया' में पढ़कर अत्यन्त आश्चर्यकी बात थी कि घनश्यामदास बिरलाने सार्वजनिक कार्यों तथा देशमें प्रगति लानेके लिए कितना आर्थिक दान दिया है।

मैं यह नहीं चाहता कि आप या आपके भाई मेरे ही कारण खुले हाथ खर्च करना अपना कर्तव्य समझें। मैं आपके लिए विदेशी तथा अपरिचित हो सकता हूँ। फिर भी यदि मैं आपसे कुछ मँहगी पुस्तकोंके लिए प्रार्थना करूँ तो कृपाकर बुरा न मानें। मैं ऐसा करनेका साहस इसलिए कर रहा हूँ; क्योंकि मेरा विश्वास हो गया है कि आपका हिन्दीके प्रति वास्तविक प्रेम तथा उत्साह है। यहाँ हम एक ही सूत्रमें बँधे हुए हैं। वह हिन्दी-भाषा थी, जिसने हमारे बीचमें पारस्परिक सुरभित वातावरणको जन्म दिया है। उसका फल केवल अच्छा ही हो सकता है। आपसे हृदयसे प्रार्थना है, मेरी सहायता करें। अच्छी पुस्तकोंका अभाव मेरे कार्यकी प्रगतिमें लगातार बाधा है। अपना शोध-कार्य सफलतासे परिपूर्ण करनेके लिए जिन ग्रन्थोंकी मुझे आवश्यकता है, उसकी सूची संलग्न है। सम्भव हो, तो कृपा कर समुद्र द्वारा क्रमशः भिजवानेका कष्ट करें। आपका सदाके लिए कृतज्ञ रहूँगा।

आशा है, इस साहसिक प्रार्थनाके कारण हमारे सम्बन्ध टूट न जायेंगे।

सस्नेह, सधन्यवाद,

आपका चैकभाई,

ओडोलेन स्मेकल

प्राहा, चैकोस्लोवाकिया

१-१२-१९६५

परमप्रिय श्रीमान् सेठ जुगलकिशोर विरलाजी,

हृदयके मधुर अभिनन्दन। अभीतक अपने जीवनमें एक बार मुझे आपको धन्यवाद देनेका सुअवसर मिला था। वह तब था, जब आपकी कृपासे मुझे अध्ययनके लिए डॉक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल तथा श्री घनश्यामदास विरलाजीकी साहित्यिक कृतियाँ प्राप्त हुई थीं। उसके बाद अन्य कोश व वैज्ञानिक सामग्री आपने मुझे भिजवाई थी। मैं सब कुछके लिए आपको धन्यवाद देना चाहूँगा। लेकिन मुझे पता नहीं, मैं यह किस प्रकार करूँ। मेरे पास केवल प्रेमके शब्द तथा हृदयके स्नेह-भाव हैं। इन्हींको आपको आपकी उदारताके लिए देनेको मेरा हृदय आतुर है। आपने मेरे साथ जो स्नेह प्रदर्शित किया है, उसके लिए मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ।

आपको शायद मालूम हो कि मैं एक महीनेके लिए विजिटिंग अध्यापकके रूपमें भारतके अनेक नगरोंमें हिन्दी-भाषा तथा साहित्य पर भाषण देने आ रहा हूँ। यदि मुझे कुछ आर्थिक साधन मिलेंगे, तो मैं सपत्नीक आना चाहूँगा, क्योंकि मेरी पत्नीको भारतीय लोकसंस्कृतिमें बहुत रुचि है और हम दोनों इसपर कोई पुस्तक लिखना चाहेंगे।

पिछले तीन महीने मैं एक काममें बड़ा व्यस्त रहा था। मैंने हिन्दी-चैक-अंग्रेजी बातचीतकी पाठ्य-पुस्तकको प्रकाशनार्थ तैयार किया है। पुस्तक बहुत सुन्दर होगी, योरोपमें हिन्दीका ज्ञान बढ़ानेके लिए अत्यन्त सहायक भी। छपने पर आपको एक प्रति अवश्य भेज दूँगा।

तीन-चार महीनोंमें अपना एक शोध-कार्य पूरा करना चाहूँगा। उसका शीर्षक है : आधुनिक हिन्दी-का वैज्ञानिक इतिहास। लेकिन इस विषयमें आपको शायद रुचि नहीं है।

मैं आज केवल यह लिखना चाहूँगा कि मैं सपरिवार स्वस्थ व प्रसन्न हूँ तथा भारत-यात्राकी तैयारियाँ कर रहा हूँ। आप चाहें तो आपको एक भारत-प्रेमीके परिवारका चित्र भेज दूँ। मेरी बेटी इन्दिरा तथा पुत्र

* * *

अरुणको अब नमस्कार कहना आता है। अरुण केवल दो वर्षका है। हम भारतीय वातावरणमें रहते हैं। भारतीय अगरबत्तियोंसे हमारा निवास-स्थान सुगन्धित है। दीवारों पर भारतीय चित्र हैं। हम लोग धनी नहीं हैं, लेकिन भारतीय समृद्धिशाली संस्कृतिके नमूने हमको शोभा देते हैं। मेरी मेज पर शिव नटराज तथा मेजके ऊपर एक भारतीय देवीकी मूर्ति है।

क्या आप कभी चैकोस्लोवाकिया नहीं आएँगे ? आपके लिए सब सम्भव है। आइए, कृपाकर हमारे यहाँ कभी-न-कभी। श्री घनश्यामदासजीको मेरे तथा मेरी धर्मपत्नीकी ओरसे अनेक हार्दिकसे हार्दिक अभिनन्दन दिलानेकी कृपा करें।

भारतमें सपत्नीक आते ही आपसे मिलनेका प्रयास करूँगा। आपकी सहायता मेरे शोध-कार्यके लिए अत्यन्त मूल्यवान् है। अपना स्नेह-भाव बनाये रखें। भविष्यमें मेरे काममें कितनी प्रगति हुई, इसकी सूचना मैं आपको देता रहूँगा। आपके उदार उपहारसे मुझे अपने कार्योंके लिए वास्तविक प्रोत्साहन मिला है।

आप सपरिवार मंगलमय रहें, आपको भविष्यमें पहलेकी भाँति सफलता मिलती रहे, यही मेरी एकमात्र कामना है। सम्पूर्ण प्रेमके साथ मेरी पत्नी तथा बच्चोंकी ओर से :

आपका ही,

ओडोलन स्मेकल

इटली

[एक आस्थावान इटालवी महिलाके पत्रका आस्थामय उत्तर]

प्रिय बहिनजी,

आपका कृपा-पत्र मिला। बड़े दिनकी शुभकामनाएँ आपने प्रेषित कीं, इसके लिए हार्दिक धन्यवाद। ईसाकी अनुयायिनी होनेकी दृष्टिसे आप ईसाको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखती हैं, यह आपके लिए स्वाभाविक है। परन्तु हम भी ईसाको एक सन्त, महात्मा तथा ईश्वरभक्त होनेके नाते आदर की दृष्टिसे देखते हैं। सन्त, महात्मा और महापुरुष किसी भी देशके हों, हमारे लिए आदरके पात्र हैं। हमारा धर्म हमें सबके साथ प्रेम और केवल बुराईको छोड़कर किसीके साथ घृणा न करनेकी शिक्षा देता है। प्राचीन संस्कृतके ग्रन्थ आर्य-हिन्दू-धर्मकी उदार और व्यापक शिक्षाओंसे भरपूर हैं। उनमेंसे केवल दो-तीन श्लोक आपकी भेंटके रूपमें नीचे उद्धृत किये जाते हैं :

सर्वे भवन्तु सुखिनो सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चित् दुःख भाग् भवेत्॥
उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परिपीड़नम्॥

खेदकी बात है कि लोगोंने अज्ञानवश या स्वार्थवश धर्मके नामपर अनेक संकुचित बाड़े, समुदाय या सम्प्रदाय बना रखे हैं और उन सम्प्रदायोंके अनुसार प्रचलित रीति-रिवाज तथा रूढ़ियोंको धर्मका नाम दे रखा है। परन्तु धर्म केवल किसी व्यक्ति-विशेषमें विश्वास करना, किसी विशेष प्रकारकी पूजा-पद्धतिको अपनाना या प्रचलित रूढ़ियोंके अनुसार आचरण करनेमें नहीं है। धर्म तो अत्यन्त व्यापक और मनुष्य-मात्रकी वस्तु है।

उसपर किसी एक जाति, सम्प्रदाय या समूहका एकाधिकार नहीं हो सकता। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंने इसी धर्मकी परिभाषा निम्न शब्दोंमें की है; अर्थात् जिससे मनुष्यका भरणपोषण तथा परिपालन हो, जिससे मनुष्य इस लोककी तथा परलोककी उन्नति करके अन्तमें निर्वाण या मोक्षका अधिकारी बन सके, वही धर्म है। यह धर्म मानव-मात्रका धर्म है और उसीको सनातनधर्म भी कहते हैं। प्राचीन शास्त्रोंमें समस्त सद्‌गुणोंके समूहको ही सनातनधर्मका नाम दिया गया है, जिसकी व्याख्या निम्न श्लोकमें संक्षेपके साथ की गई है :

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

यह एक ध्यान देने योग्य आकस्मिक घटना है कि महात्मा ईसाकी स्मृतिमें मनाया जानेवाला बड़ा दिन उस समय पड़ता है, जब उत्तरायण सूर्यका उत्तर दिशाकी ओर गमन प्रारम्भ होता है। हिन्दुओं के विश्वासके अनुसार उत्तरायणके ६ मास प्रकाशमय तथा शुभ मंगलमय मास गिने जाते हैं। इस कारण हिन्दुओंकी दृष्टि-में भी बड़ा दिन मंगलकारी दिन गिना जाने योग्य है।

आपने मेरे प्रति जो भाव प्रकट किये हैं, उनके लिए अनेक धन्यवाद। अपने देशमें आपने मुझे आमन्त्रित किया है, इसके लिए भी मैं आपके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। मुझे आपके देशको देखकर और वहाँ भ्रमण करके बड़ी प्रसन्नता होती, परन्तु व्यापार आदिसे मैं तटस्थ-सा हूँ और प्रायः एकान्त जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। अंग्रेजी भाषाके ज्ञानसे भी मैं रहित हूँ, जिससे योरोपकी यात्रा करनेमें कठिनाई पड़नेकी सम्भावना है, तथापि आपकी कृपाके लिए मैं कृतज्ञ हूँ और बड़े दिन तथा नूतन वर्षके लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ आपको प्रेषित करता हूँ। अन्तमें सर्व शक्तिमान् परमेश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि नूतन वर्ष आपके तथा आपके पतिके लिए सुख, शान्ति और मंगलमय रहे।

भवदीय,

विरला हाउस, नयी दिल्ली
२७-१२-५१

जुगलकिशोर बिरला

स्वीडेन

[एक स्वीडिश विद्वान् हैन्स फ्रेडलैण्डका पत्र]

उत्तरकाशी,
२१ जून, १९६१

प्रिय महोदय,

जैसा कि मैंने आपको पहले सूचित किया था, मैं दिल्लीसे हिमालयकी ओर एक गुरुकी खोजमें जाऊँगा, मैं पहले ऋषिकेश गया और वहाँसे उत्तरकाशी पहुँचा। मैं आजकल यहीं ठहरा हुआ हूँ। इस यात्रामें मैं सदा अपने संस्कृत और हिन्दीके अध्यापक पण्डित वी० एस० शास्त्रीके साथ रहा। वे भारतीय-संस्कृतिके एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानसे सम्बन्धित हैं। श्री शास्त्रीसे मुझे बड़े-बड़े योगियोंके दर्शन पानेमें बहुत ही सहायता मिली। उनके सहयोगसे ही यह सम्भव हुआ कि मैं संस्कृत और हिन्दी बोलनेवाले उन स्वामियोंके सम्पर्कमें आ सका।

* * *

यहाँ उत्तरकाशीमें मैं एक १११ वर्षके वृद्ध महात्मासे भी मिला। उन्होंने कृपाकर अपना मौन त्याग कर संस्कृतमें हमें आशीर्वाद प्रदान किया। वे नियमतः प्रायः कभी नहीं बोलते। इस कारण मैं उनसे कोई व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करनेमें असफल रहा। किन्तु मैं एक दूसरे महात्मा श्री गंगानन्दजीसे मिलनेमें सफल हुआ। ये एक पहुँचे हुए हठयोगी हैं, जो कुछ ही महीनोंमें यदि स्थितियाँ अनुकूल हों, तो प्राणायाम, ध्यान और समाधिकी शिक्षा दे सकते हैं। स्वामी गंगानन्दजीने मेरी क्षमता और संयमकी परीक्षा ली और कुछ यौगिक अभ्यास भी कराये। इस कठिन अभ्यासके लिए एकान्तवास और नियमित साधनासे युक्त जीवन-चर्याकी आवश्यकता है। समय-समय पर वे हमारी प्रगतियोंकी जाँच करते रहेंगे; क्योंकि साधनाके पथ पर कभी-कभी कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित होनेकी सम्भावना रहती है। मेरे लिए यह परम सौभाग्यका अवसर है। क्योंकि मैं जिस उद्देश्यके लिए अबतक कठिन संघर्ष करता आ रहा था और जिसके लिए मैंने विस्तृत भूभागकी यात्राएँ की हैं, वह अन्ततः फलीभूत हुआ। बड़े नगरमें रहते हुए इस प्रकारकी तपःसाधना असम्भव-सी है। इसलिए मेरी इच्छा है कि मैं कुछ महीनों तक यहीं ठहरूँ।

आपसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप मेरे यहाँ साधना-काल-पर्यन्त रहने आदिकी व्यवस्थाका खर्च वहन करें। मैं आपसे इसलिए यह प्रार्थना कर रहा हूँ; क्योंकि मेरे लिए आयका और कोई साधन नहीं है। जीविकोपार्जनके लिए मैं और कोई कार्य नहीं कर रहा हूँ। योगसाधनाके समय मैं केवल गोदुग्ध, शुद्ध घी, खिचड़ी, मूँगकी दाल, रोटी और फल ही ले सकता हूँ। ये सभी वस्तुएँ उत्तरकाशीमें काफी महँगी हैं। दूध रुपयेका एक सेर, चावल डेढ़ रुपया सेर, सब्जी दिल्लीसे दूने भाव और फल तो और भी महँगे हैं। इसके अतिरिक्त मुझे अपना भोजन तैयार करनेके लिए एक पाचकका भी प्रबन्ध करना पड़ेगा।

जब मैं यहाँ आया तो आपकी धर्मशालामें स्थान न मिल सका, क्योंकि वह पूरी भरी हुई थी। वहाँ काँग्रेस-पार्टीकी कान्फ्रेन्सके कारण कोई स्थान खाली नहीं था।

मेरे लिए और भी उत्तम होता, यदि मैं गंगोत्री जा पाता और वहाँ स्वामी व्यासदेवजी जैसे विख्यात योगीसे शिक्षा ग्रहण करता। मैं परमिटके लिए प्रार्थना कर रहा हूँ और डिफेंस मिनिस्टरको सीधे लिख रहा हूँ। मेरे इस प्रार्थना-पत्र पर स्वीडिश राजदूत और इण्टरनेशनल अकादमी ऑफ इण्डियन कल्चरके डॉ० रघुवीरकी सिफारिश है। उसका निर्णय आने तक मैं यहीं ठहरूँगा।

मैं आपका बहुत अनुग्रहीत रहूँगा, यदि आप दिल्लीकी ही भाँति यहाँ भी मेरी सहायता करेंगे। मैंने इस कठिन मार्गपर अग्रसर होनेका अपना संकल्प दृढ़ कर लिया है।

भवदीय,

हैन्स फ्रैडलैण्ड

[श्री बिरलाजीका उत्तर]

प्रिय महोदय,

उत्तरकाशीसे आपका पत्र मिला, धन्यवाद। गंगोत्री जाकर ब्रह्मचारी व्यासदेवजीसे योगकी शिक्षा लेनेका आपका विचार उत्तम है। व्यासदेवजी एक अच्छे और प्रसिद्ध योगी हैं और उनसे आप अधिक क्रियात्मक

तथा सरल रीतिसे योगकी शिक्षा पा सकेंगे। यदि वहाँ जानेका परमिट आपको मिल सके, तो उत्तम होगा। इस बीच एक बार पचास रुपया एकमुश्त आपकी तुरन्तकी आवश्यकताके लिए भिजवा रहा हूँ।

विशेष शुभकामना सहित -

बिरला हाउस, नयी दिल्ली
२७ जून, १९६१

आपका,
जुगलकिशोर बिरला

[भारतकी योगविद्याकी शिक्षाके जिज्ञासु स्वीडिश-मनीषी श्री बियर्सको श्री बिरलाजीका उत्तर]

प्रिय श्री बियर्स,

आपका कृपा-पत्र मिला, धन्यवाद। आप भारतमें आकर योगकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए उत्सुक हैं, आपकी इस इच्छाकी मैं सराहना करता हूँ। किन्तु जैसा कि मैं कदाचित् पहले भी लिख चुका हूँ, वर्तमान भारत अब वह भारत नहीं है, जो प्राचीन कालमें अपनी आध्यात्मिक उन्नतिके लिए प्रसिद्ध था और जिसके आकर्षणसे प्रेरित होकर आप यहाँ आना चाहते हैं।

योगके गुरु भी जैसा आप चाहते हैं, बहुत थोड़े ही मिलेंगे। वे भी बहुत ही एकान्तमें कहीं-कहीं ही पाये जाते हैं और कठोर जीवन व्यतीत करते हैं। जिस जीवन-स्तरके आप अभ्यस्त हैं, वह भी यहाँ मिलना दुस्तर है। यहाँकी जलवायु और भोजन आदि भी आपके अनुकूल होंगे, इसमें सन्देह है। उनसे आपके स्वास्थ्यको भी हानि पहुँच सकती है। अतएव मेरी सम्मति तो यह है कि योग, वेदान्त, उपनिषद् आदिके अनेक संस्कृत ग्रन्थ अंग्रेजीमें अनूदित हो चुके हैं, उनका आप वहीं रहकर अध्ययन और मनन करें, तो उत्तम होगा। इस सम्बन्धमें वहाँ रामकृष्ण मिशनके कई केन्द्र हैं, उनके सम्पर्कमें आप आवें, तो उत्तम होगा। वे आपको इस सम्बन्धमें भली प्रकार मार्ग-प्रदर्शन कर सकेंगे। योगमें भी भक्ति-योग सबसे सरल और सुगम है। उसके अनुसार आप अपने मनको एकाग्र करेंगे, तो आसानीसे आप अपने उद्देश्यमें सफल हो सकेंगे। गुरुके सम्बन्धमें मेरी ऐसी धारणा है कि सबसे बड़ा गुरु तो वह परमात्मा है, जो प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें बसा हुआ उसको प्रेरित करता रहता है। आप उसी गुरुको अपने हृदयमें ढूँढ़ें, तो वह आपको मिलेगा और आपको उचित प्रेरणा प्रदान करेगा।

आपने हिन्दी अध्ययन करनेकी इच्छा भी प्रगट की है। सो मेरी समझमें हिन्दीके स्थानपर संस्कृतका अध्ययन करें, तो अधिक लाभकर होगा; क्योंकि योग, वेदान्त, उपनिषद् तथा अध्यात्मवादके सारे ग्रन्थ संस्कृतमें ही हैं और संस्कृत भारतकी आदिभाषा है और उसीसे हिन्दी आदि समस्त भाषाएँ निकली हैं। योरोपकी ग्रीक, लैटिन आदि प्राचीन भाषाएँ भी संस्कृतकी ही बहिनें हैं और संस्कृतसे बहुत मिलती-जुलती हैं। अमेरिकामें संस्कृतके विद्वान् हारवर्ड तथा अन्य विश्वविद्यालयोंमें पर्याप्त संख्यामें होंगे। आप उनसे संस्कृतका अध्ययन करनेकी चेष्टा करेंगे, तो आपको संस्कृतका पर्याप्त ज्ञान हो जायगा और मूल संस्कृतके ग्रन्थोंका अध्ययन कर सकेंगे।

भवदीय,
जुगलकिशोर बिरला

बिरला हाउस, नयी दिल्ली

* * *

[स्वीडिश-विद्वान् श्री वाल्थर एडिलिट्जके नाम श्री बिरलाजीका पत्र]

प्रिय महोदय,

नमस्ते। आपने कृपया स्वीडिश भाषामें लिखी हुई अपनी पुस्तक, 'इंडैस्क मिस्टिक' भेंटस्वरूप भेजी, उसके लिए आपको अनेक धन्यवाद। जिस उत्साह और लगनके साथ आप आध्यात्मिक भावनाओंका प्रचार पश्चिमी देशोंमें कर रहे हैं, उसके लिए आपकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। इस समय लोग भौतिकवादके पीछे पागलके समान दौड़ रहे हैं। परन्तु बिना आध्यात्मिक ज्ञानके भौतिकवाद निस्सन्देह मनुष्यजातिको पतन और सर्वनाशकी ओर ले जानेवाला है। लोगोंमें आध्यात्मिक भावना जाग्रत होनेसे ही संसारमें सच्चे सुख तथा शान्तिकी प्राप्ति हो सकती है। आप लोगोंमें आध्यात्मिक भावना जाग्रत करनेके लिए सतत् परिश्रम कर रहे हैं, इसके लिए आप उन सबोंकी कृतज्ञताके पात्र हैं, जो आध्यात्मिक उन्नतिके द्वारा भौतिक उन्नतिको मनुष्य जातिकी सच्ची सेवा समझते हैं। आशा है आप स्वस्थ तथा प्रसन्न होंगे।

बिरला हाउस, नयी दिल्ली
२३-१२-१९५३

भवदीय,
जुगलकिशोर बिरला

[स्वीडिश-विदुषी अनॉप्स्त्रोमका पत्र]

अपेल्वजेन २५, स्टाकसण्ड, स्वीडेन
मई १२, १९५५

प्रिय श्री जे० के० बिरला,

जब मैं जनवरी, १९५४में आपसे मिली थी, तो आपने अपने वार्तालापमें इस बातपर अधिक जोर दिया था कि जो भी व्यक्ति भारतीय आर्य-धर्मके निकट सम्पर्कमें आवें; उनका यह कर्तव्य है कि वे दूसरोंको भी इससे परिचित करायें। आपकी उक्त सम्मतिका अभिनन्दन करते हुए मैंने स्वामी निखिलानन्दजीकी सुन्दर छोटी पुस्तिका 'एसेंस ऑफ हिन्दुइज्म'का स्वीडिश भाषामें अनुवाद किया है। स्वामी निखिलानन्दजी, जिनसे मेरे पति भली-भाँति परिचित हैं, यहाँ न्यूयार्कमें रामकृष्ण-विवेकानन्द केन्द्रके एक नेता हैं। यह मेरा प्रथम अनुवाद है और आशा है कि यह प्रयास चलता रहेगा।

किन्तु मैं सोच रही हूँ, क्या मेरे लिए पुनः भारत आना सम्भव हो सकेगा? इस वर्ष या अगले वर्ष?

शुभ-कामनाओं सहित,

भवदीया,
आस्ट्रिड अनॉप्स्त्रोम

अमेरिका

[अमेरिकी-विद्वान् श्री जॉर्ज एम० लेवीका पत्र]

माननीय बिरला महोदय, ४-८-४९

मैं एक अमेरिकन हूँ और बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयमें अध्ययनके लिए आया हूँ। मैं डॉ० आत्रेयके निर्देशनमें भारतीय दर्शनशास्त्रका अध्ययन करना चाहता हूँ। भारत आनेके पूर्व टोकियो, जापानमें तीन

वर्ष तक अमेरिकी सैनिक दस्तेमें था। इस अवधिमें बौद्धधर्ममें प्रवृत्त हुआ और कई ख्यातनामा विद्वानोंके सम्पर्कमें आया। जापानमें ही मैंने बौद्ध-भिक्षुके रूपमें दीक्षा ग्रहण की।

कुछ ही अध्ययनके बाद मेरे लिए यह स्पष्ट हो गया कि मेरा भारत आना नितान्त आवश्यक है, जहाँ मैं आर्यधर्म और संस्कृतिकी सुविस्तृत पृष्ठभूमिका ज्ञान प्राप्त कर सकूँगा, जो कि गौतम बुद्धके सिद्धान्तको हृदयंगम करनेका वास्तविक आधार है।

जापानमें सैन्यसेवासे विमुक्ति पानेका प्रबन्ध कर मैं तुरन्त ही यहाँ आ गया। यहाँ आनेके पूर्व मेरी धारणा बम्बई रुकनेकी थी और विश्वविद्यालयके खुलने तक कुछ काम करनेका विचार था, किन्तु जैसा कि आपको भली-भाँति विदित होगा कि वहाँ रहना मेरे लिए बहुत ही व्यय-साध्य मालूम हुआ। मेरे तथा मेरी पत्नीके लिए कोई उपयुक्त कार्य और आवास प्राप्त करनेका अवसर तो असम्भव ही था। इन सबका ध्यान रखते हुए और विश्वविद्यालयके लिए अपनी स्थितिकी अनुकूलताके उद्देश्यसे मैं बम्बईसे बनारसके लिए चल पड़ा।

मेरा अध्ययन-शुल्क संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाकी सरकार देगी। उससे ३५० रुपये मुझे तबतक प्राप्त होते रहेंगे, जबतक मैं अध्ययन करता रहूँगा। किन्तु मैं अभी अपनेको बड़ी कठिन स्थितिमें पा रहा हूँ। जुलाईके अन्त तक कोई भी अपेक्षित सहायता मुझे मिलनेवाली नहीं है। उस समय तक कॉलेजोंका नया वर्ष प्रारम्भ हो जायगा। इस समय मेरे लिए सर्वोत्तम मुख्य बात यह है कि मैं विश्वविद्यालयमें प्रवेश पानेके लिए अपना सारा समय अध्ययनमें लगाऊँ।

मेरा एक लेख जिसमें जापानी, तिब्बती और संस्कृत मूर्तिकलाका अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, 'इण्डियन सोसायटी ऑफ ओरियण्टल आर्ट' पत्रिका द्वारा स्वीकृत किया गया है। इसके अतिरिक्त मुझे भारतमें जापानी बौद्ध-संघकी ओरसे प्रतिनिधि होनेका भी गौरव प्राप्त है।

मेरा विश्वास है कि आप मेरी कठिनाईका अवश्य ही अनुमान कर सकेंगे। मैं आपका बहुत ही अनुग्रहीत होऊँगा, यदि आप मेरे अध्ययनके लिए कुछ आर्थिक सहायता प्रदान करेंगे। अभी जुलाईके अन्त तकके लिए तात्कालिक सहायता अपेक्षित है। फिर सहायताकी राशि कम की जा सकती है।

अमेरिकी सरकारसे जो ३५० रु० मासिककी सहायता मुझे प्राप्त होगी, वह मेरे तथा मेरी पत्नीके अत्यन्त आवश्यक खर्च मात्रके लिए ही पर्याप्त होगी।

आपकी विवेकशीलता, उदारता और विद्यानुरागसे प्रभावित होकर ही मैं अपनी यह समस्या आपके आगे रख रहा हूँ।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
काशी

भवदीय,
जॉर्ज एम० लेवी

[श्री बिरलाजीका प्राणदस्पर्श उत्तर]

प्रिय महोदय,

आपका पत्र मिला। एक बार २ महीनेका पाँच सौ रुपया डॉ० बी० एल० आत्रेयके द्वारा आपके लिए भिजवा रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि इससे आपका शेष मई तकका काम चल जायगा। आपके युनिवर्सिटीमें

* * *

भरती होनेमें केवल एक महीना और बाकी रह जायगा। यदि इस बीच विशेष आवश्यकता पड़ेगी, तो यथासम्भव और कुछ करनेकी चेष्टा की जायगी।

यद्यपि आपकी तरह धार्मिक भावना लेकर जो भी विदेशी भाई यहाँ आयें, उनका आतिथ्य करना हम लोगोंका कर्तव्य है, परन्तु साथ ही वर्तमानमें यह कार्य इतना सरल भी नहीं दिखाई देता। वर्तमान अवस्थामें देश आर्थिक तथा खाद्य-पदार्थकी विशेष कठिनाइयोंसे गुजर रहा है। व्यापारियोंके ऊपर टैक्सोंका बहुत बड़ा बोझ लद गया है। जमींदार, राजे-महाराजे आदि भी केन्द्रीय गवर्नमेण्टको अपना सब कुछ समर्पित कर चुके हैं। अतएव व्यक्तिगत लोगोंको सेवा करनेमें कठिनाई हो रही है। यों भी हमारा देश अमेरिकाकी तुलनामें आर्थिक साधनोंकी दृष्टिसे बहुत ही गरीब है। इसलिए विदेशोंसे आनेवाले सज्जनोंको ऐसी स्थितिमें कष्ट हो, तो उससे हम लोगोंको और भी दुःख होता है।

जहाँ तक मुझे पता है, अंग्रेजी भाषामें हिन्दू दर्शन-शास्त्र, भगवद्‌गीता, वेदान्त, बौद्ध-धर्म आदि पर मौलिक तथा अनुवादके रूपमें अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। उनको अपने घरमें रहते हुए भी अध्ययन किया जाय, तो धार्मिकताकी भावना रखनेवाला मनुष्य उनमेंसे बहुत कुछ ले सकता है।

भवदीय,

१५-४-४९ **जुगलकिशोर बिरला**

[हवाई विश्वविद्यालयके कुलपति श्री ग्रेग सिंक्लेयरका पत्र]

प्रिय श्री बिरलाजी,

श्रीमती सिंक्लेयर और हम पान-अमेरिकन हवाई जहाजसे एक सप्ताह पूर्व स्यामके लिए रवाना होनेवाले थे। किन्तु इसके पूर्व ही मैं सहसा बहुत बीमार हो गया। मुझे नरसिंग होममें दाखिल होना पड़ा।... अब मैं स्वास्थ्य-लाभ कर रहा हूँ और १२ नवम्बरको बैंकाक जानेका निश्चय कर रहा हूँ।

यह पत्र आपके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करनेके लिए लिख रहा हूँ। आपने हमारी भारत-यात्राको, मेरी अस्वस्थताके बावजूद भी, सुखद बनानेके लिए जो कुछ किया है, वह बड़ा महत्वपूर्ण है। मैं अनुभव करता हूँ कि **काश, मैं अमेरिकन न होकर एक भारतीय होता!** एक भारतीयके हृदयमें ही अपनी संस्कृतिकी ऐसी विरासत सम्भव है।

मुझे पक्का विश्वास है कि पाश्चात्य संसार भारतकी संस्कृति और दर्शनसे बहुत कुछ सीख सकता है। मैंने बनारसमें आपसे बात की थी। मेरा विचार प्राच्य-पाश्चात्य दार्शनिकोंका एक सम्मेलन बुलानेका है। यह सम्मेलन हवाई विश्वविद्यालयमें १९४९की २० और २९ जुलाईके बीच होगा। हम लोगोंने एशियाके आठ विख्यात दार्शनिकोंको आमन्त्रित किया है और अमेरिकासे भी आठ वैसे ही विद्वान् दार्शनिकोंको हवाई विश्वविद्यालयके दर्शन-विभागके सदस्योंके साथ सम्मिलित होनेका आग्रह किया है। इस सम्मेलनका उद्देश्य प्राच्य-पाश्चात्य विचारोंके बीच साम्य और वैषम्य पर गवेषणा करना है। अमेरिकाके दार्शनिकोंकी एक समितिने प्रतिनिधियोंके नामोंका चुनाव किया है। भारतके चुने हुए व्यक्तियोंमें डॉ० राधाकृष्णन्, डॉ० एस० के० सक्सेना (दिल्ली वि० वि०), और डॉ० डी० एम० दत्त (पटना वि० वि०) हैं। इस सम्मेलन पर हम लोग लगभग एक लाख डालर व्यय करने जा रहे हैं। इसमें ३५ हजार डालर रॉक फैलर फाउण्डेशनकी ओरसे प्राप्त होगा। हम आगे डॉ० आत्रेयको विजिटिंग प्रोफेसरके रूपमें बुलाना चाहेंगे। इस सम्भावनाके सम्बन्धमें

मैं फिर आपसे निवेदन करूँगा कि हवाई विश्वविद्यालयमें कमसे-कम पाँच वर्षोंके लिए एक विरला विज़िटिंग प्रोफेसरकी पोस्ट रखी जाय। मेरा सुझाव है कि डॉ० आत्रेय सर्वप्रथम विरला विज़िटिंग प्रोफेसरके रूपमें आगामी १९५१में हवाई आयें।

मेरा पत्र लम्वा हो रहा है। किन्तु मैं यहाँ आपके उन व्यक्तियोंके सम्बन्धमें आपका ध्यान आकर्षित करना अपना कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने मेरी सुख-सुविधाका बहुत ध्यान रखा है। श्री वेलिंग हमें बम्बईके हवाई अड्डे पर मिले थे और तीन बजे तक हमारी सहायताके लिए ठहरे रहे। ताजमहल होटलमें मेरे लिए वे फल-फूल भी लाये। दिल्लीमें श्री मदनलालजी आनन्द और श्री जनार्दनजी भट्ट हमारे पहुँचनेके पूर्व मेडन होटलमें उपस्थित थे। दिल्ली प्रवासमें इन्होंने मित्रवत् मेरी सारी सुविधाओंका प्रबन्ध किया। उन्होंने हमारे लिए फल इत्यादिकी भी समुचित व्यवस्था की और हमें बिरला-मन्दिरके दर्शन कराए। वहाँकी पवित्र अनुभूति हमें सदा स्मरण रहेगी। ये व्यक्ति अवश्य ही आपके कर्तव्य-निष्ठ और विश्वासभाजन हैं।

भवदीय,

धन्यवादपूर्वक—

ग्रेग सिंक्लेयर

कलकत्ता

[डॉ० सिंक्लेयरको श्री बिरलाजीका उत्तर]

प्रिय डॉक्टर सिंक्लेयर,

मुझे आपका ९ नवम्बरका कृपापत्र कलकत्तेसे मिला। इसके लिए आपको अनेक धन्यवाद। आपकी बीमारीका हाल जानकर मुझे बहुत चिन्ता हुई। यदि पहले इसकी सूचना मुझे मिलती, तो मैं अपने भाई श्री बी० एम० बिरलाको, जो उस समय कलकत्ते आ गये थे, अवश्य लिख देता कि वें आपकी चिकित्साकी उचित व्यवस्था करें। अस्तु, मुझे आशा है कि आगेकी यात्रा पर प्रस्थान करनेके पहले आप पूर्ण रूपसे अवश्य स्वस्थ हो गए होंगे। जैसी कि मुझे आशंका थी, देशमें इस समय भोजन इत्यादिकी कठिनाइयोंके कारण वर्तमान समय भारतमें यात्रा करनेके अनुकूल नहीं था। मुझे खेद है कि आपको अपनी इस भारत-यात्रामें बीमारी तथा कई असुविधाओंका सामना करना पड़ा।

आपने मेरे प्यारे देश तथा भारतकी संस्कृति और दर्शनके सम्बन्धमें अपने पत्रमें जो आदर-भाव प्रकट किये हैं, उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। भारतवर्ष इस युद्ध-जर्जरित संसारको अपना शान्ति और शुभकामनाका सन्देश सुनानेमें सफल हो - यही मेरी ईश्वरसे प्रार्थना है।

आपके लिए तथा श्रीमती सिंक्लेयरके लिए मैं अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

भवदीय,

जुगलकिशोर बिरला

[योरोप नहीं, एशियाका महत्व]

डॉक्टर ग्रेग सिंक्लेयरने होनोलुलुसे बिरलाजीके नाम १९६५में यह पत्र लिखा:

प्रिय श्री बिरलाजी,

मैं और मेरी पत्नी ७ अगस्तको अपनी विश्वयात्राके लिए होनोलुलुसे प्रस्थान कर रहे हैं। पहले हम

* * *

लोग योरोप जायँगे। उसके वाद जब हम दिल्ली पहुँचेंगे, तो आशा है आपसे पुनः मिलकर अपनी मैत्रीको नवीन वनानेका आनन्ददायक अवसर प्राप्त होगा। वर्तमान योजनाके अनुसार हम लोग इस्ताम्बूल होते हुए १२ दिसम्वरको प्रातःकाल भारत पहुँच जायँगे। यद्यपि हमारा विचार आपके देशमें एक महीना तक रहनेका है, फिर भी हम लोग दिल्लीमें कुछ ही दिन रह सकेंगे। १७ ता०को हम लोग वम्वईके लिए हवाई जहाजसे प्रस्थित हो जायँगे। इस बार हम लोगोंका लक्षित प्रदेश दक्षिण भारत है, जिसे मेरी पत्नीने नहीं देखा है। मैं उसे मैसूर, मद्रास, और केरल दिखलाना चाहता हूँ। वह एक उपन्यास-लेखिका है और मैसूर, केरल तथा हवाई द्वीपकी सम्भावित एकरूपता पर विशेष रूपसे आकृष्ट है।

यदि आप नयो दिल्लीमें रहेंगे तो आपसे मिलकर मैं भारत-अमेरिकाके सम्वन्धोंके विपयमें तथा अन्य कुछ विषयोंपर वात करूँगा। इस वार मैं सरकारी यात्रापर नहीं हूँ, जैसा कि मैं अपनी पिछली तीन यात्राओं-पर था। हवाई विश्वविद्यालयके एक सदस्यके नाते मेरी रुचि इस वातमें वनी हुई है कि मैं अमेरिकी जनताको भारत तथा उसकी महान् सभ्यतासे अवगत कराऊँ। इन हालके वर्षोंमें इस दिशामें कुछ प्रगति भी हुई है और ईस्ट-वेस्ट सेण्टर (प्राच्य-पाश्चात्य केन्द्र) की स्थापनाके रूपमें कुछ नये प्रयत्न हुए हैं। ये केन्द्र विश्वविद्यालयसे संयुक्त हैं। इनका उद्देश्य भी अमेरिकी जनताको एशियाके वास्तविक रूपसे परिचित कराना है और एशियाई जनताको वास्तविक पाश्चात्य सभ्यताओंका ज्ञान कराना है। मैं इस नवीन प्रयाससे बहुत ही प्रसन्न हूँ। सम्भवतः डॉ० वी० एल० आत्रेय ने, जिनसे मेरी भेंट पिछली गर्मीके दिनोंमें चतुर्थ प्राची-पाश्चात्य दार्शनिक सम्मेलनमें हुई थी, आपको इस दिशामें किए गए यहाँके प्रयत्नोंसे अवगत कराया होगा। किन्तु मैं स्वयं भी इस सम्वन्धमें विस्तारपूर्वक वताना चाहता हूँ।

नयी दिल्लीमें मैं अपने पुराने मित्र डॉ० राधाकृष्णन्, उपराष्ट्रपति डॉ० ज़ाकिरहुसेन और आपसे मिलनेकी आशा रखता हूँ। हवाई द्वीप अमेरिकाके ५० राज्योंमेंसे एक घोषित राज्य है। हमारे इस द्वीपको एक स्टेटके रूपमें स्वीकार करते हुए एशिया सम्वन्धी इसकी महत्तापर वल दिया गया है। योरोप अब भविष्यमें कभी उतना महत्वपूर्ण नहीं रह सकेगा, जैसाकि वह पहले रह चुका है। आगे आनेवाले वर्षोंमें अमेरिकाके लिए एशियाका ही महत्व उत्तरोत्तर बढ़नेवाला है।

अनेक शुभकामनाओं सहित—

भवदीय,

होनोलुलु,

ग्रेगि सिंक्लेयर

२८ जुलाई, १९६५

[श्री बिरलाजीका उत्तर]

प्रिय श्री सिंक्लेयर,

आपके २८ जुलाई '६५के पत्रके लिए धन्यवाद। आप अपनी पत्नी-सहित विश्वकी यात्रा करनेवाले हैं और दिसम्बरमें भारत आनेकी आशा रखते हैं, यह जानकर प्रसन्नता हुई। मैं आप दोनोंकी सुखद यात्राकी कामना करता हूँ और नयी दिल्लीमें आपसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। शुभकामनाओंके साथ—

भवदीय,

जुगलकिशोर बिरला

[केलिफोर्नियाकी हिन्दू-धर्म-प्रेमी विदुषी-महिला श्रीमती जूडिथ टाइबर्गके पत्रका उत्तर]

प्रिय महाशया,

आपके कृपापत्रके लिए अनेक धन्यवाद। आपका आर्य हिन्दू-धर्म, हिन्दू-दर्शन और संस्कृत भाषा तथा साहित्यके प्रति अनुराग देखकर परम प्रसन्नता हुई। आप प्राचीनकालकी विदुषी गार्गीके समान ही हिन्दू-संस्कृति, हिन्दू-दर्शन और संस्कृत-भाषा तथा साहित्यका प्रचार कर रही हैं, इसके लिए हम आपके कृतज्ञ हैं। ईश्वर आपके कार्यमें सहायता प्रदान करे।

आपने बनारस हिन्दू युनिवर्सिटीमें संस्कृत-साहित्य तथा हिन्दू-दर्शनके अध्ययनार्थ भारतमें आनेकी इच्छा प्रकट की है। आपका विचार स्तुत्य है। परन्तु मुझे विदित नहीं कि बनारस हिन्दू युनिवर्सिटीमें आप-जैसी बड़ी आयुके व्यक्तियोंके प्रवेश-सम्बन्धी नियम क्या हैं। मैं इस सम्बन्धमें युनिवर्सिटीवालोंसे पूछनेकी चेष्टा करूँगा। आपके इस उद्देश्यमें हमसे यथासम्भव जो सहयोग हो सकेगा, देनेके लिए तैयार हैं।

बिरला हाउस, भवदीय,
नयी दिल्ली जुगलकिशोर बिरला
२६-८-४६

[श्रीमती केनेडीको ग्रन्थोंका उपहार]

श्रीमती केनेडी जब १९६३में भारत पधारी थीं, तब जुगलकिशोरजी बिरलाकी आज्ञासे संघकी ओरसे उनकी सेवामें हिन्दू-धर्म और संस्कृति सम्बन्धी कुछ ग्रन्थ उपहार-स्वरूप भेंट किए गए थे। उस सम्बन्धमें अमेरिकी राजदूतको लिखा गया पत्र और श्रीमती केनेडीकी ओरसे प्राप्त धन्यवादका पत्र निम्नलिखित हैं:

जीन केनेथ गॉलब्रैथ,
राजदूत यू० एस० ए०
अमेरिकी दूतावास, नयी दिल्ली

प्रिय महोदय,

अ० भा० आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघकी ओरसे, जो एक धार्मिक, सामाजिक, और साँस्कृतिक संस्था है तथा जो हिन्दू-धर्मके सभी सम्प्रदायों - बौद्ध, जैन, सिख आदिका प्रतिनिधित्व करती है, हम श्रीमती जेक-लिन केनेडीका हार्दिक स्वागत करते हैं। इस सौभाग्यपर हम लोगोंको परम हर्ष है। हम लोगोंकी हार्दिक इच्छा है कि वे भारतमें कुछ दिन और ठहरें तथा अपने दर्शनीय स्थानोंकी सूचीमें दक्षिण भारतके प्रमुख हिन्दू-मन्दिरों तथा नयी दिल्लीके विख्यात श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिरको भी सम्मिलित करें। इससे वे भारतके सच्चे रूप और इसकी संस्कृतिसे परिचित हो सकेंगी। हम लोगोंकी यह आन्तरिक अभिलाषा है कि वे अपनी अगली यात्रामें इन सभी स्थानोंको अपनी सूचीमें अवश्य ही सम्मिलित करेंगी।

अन्तमें हम आपके द्वारा अपनी संस्थाकी ओरसे धार्मिक पुस्तकें अमेरिकाकी प्रथम महिला श्रीमती जेकलिन केनेडीकी सेवामें भेंट करते हुए उनके प्रति अपना हार्दिक सम्मान प्रकट करते हैं।

भवदीय,
सं० मन्त्री
आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघ

* * *

[श्रीमती केनेडी द्वारा आभार]

ह्वाइट हाउस, वाशिंगटन
अप्रैल १४, १९६२

प्रिय श्रीमन्त्री जी,

आपने भारतवर्षमें श्रीमती केनेडीको कृपापूर्वक जो भेंट किया है, उसके लिए आपका धन्यवाद करनेको श्रीमती केनेडीने मुझे कहा है। वे आपके इस भावपूर्ण संकेतका बहुत अधिक आदर करती हैं और इसके बदलेमें अपनी उत्तमसे उत्तम शुभकामनाएँ आपको प्रेषित करती हैं। भारतके लोगोंके द्वारा उनका जो आतिथ्य-सत्कार हुआ, उसको श्रीमती केनेडी कभी नहीं भूलेंगी।

भवदीय,
लिटीशिया बालरिज
सामाजिक मन्त्राणी

अर्जेण्टाइना

[अर्जेण्टाइनाके हिन्दू-धर्म-प्रेमी श्री जॉर्जका पत्र]

वाल्मीकि मन्दिर, नयी दिल्ली
२८-१२-१९५६

परम पूज्य बिरलाजी,

सादर नमस्ते।

मेरी ओरसे नये वर्षके लिए हार्दिक बधाई स्वीकार करें। परमपिता परमात्मासे मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि वह आपको आनेवाले वर्षमें अधिक समृद्धि, सुख, ऐश्वर्य, आनन्द और स्वास्थ्य प्रदान करे।

पूज्य बिरलाजी! आपको मैं सदा याद रखता हूँ और मेरे मनमें आपके लिए जो श्रद्धा और आदर है, वह संसारमें शायद ही किसी अन्य व्यक्तिके लिए हो। मैं आपके उपकारोंको कभी नहीं भूल सकता।

मुझे कई बार आपके सेक्रेटरी महोदयसे मिलनेका संयोग मिला और हर बार मैंने उनसे निवेदन किया कि मेरा श्रद्धापूर्ण नमस्कार वे आपकी सेवामें पहुँचा दें। आशा है उन्होंने मेरा नमस्कार और शुभ इच्छाएँ हर बार आपकी सेवामें अर्पित कर दी होंगी। मैं स्वयं इसलिए आपकी सेवामें उपस्थित नहीं हुआ कि आपका अमूल्य समय नष्ट न करूँ।

आशा है आप इस अकिंचनको याद रखते होंगे। मैं यदि कभी भी कोई सेवा आपकी कर सकूँ, तो यह मेरा अहोभाग्य होगा।

एक बार फिर मैं नये वर्षपर आपको हार्दिक बधाई अर्पित करता हूँ और आपके लिए हृदयसे मंगल-कामना करता हूँ।

मैं हूँ आपका सदा आभारी,
जॉर्ज

* * *

ब्रिटिश गायना

[भारतीय-संस्कृतिके प्रसारके सम्बन्धमें एक महिलाके नाम श्री बिरलाजीका प्रेरक पत्र]

आपका कृपापत्र मिला। अनेक धन्यवाद। ब्रिटिश गायनामें भारतीय भाइयोंके बीच सेवा-कार्य कर रही हैं - जानकर प्रसन्नता हुई। इसके लिए आपको श्रेय और धन्यवाद है। किन्तु आपके पत्रसे प्रतीत होता है कि जिस संस्कृतिका प्रचार तथा प्रसार करना आपकी अर्द्धसरकारी संस्थाका उद्देश्य है, उसका धर्मसे कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसा कि आजकल हमारे अनेक प्रमुख नेताओंके विचारोंसे प्रकट है: "धर्मविहीन संस्कृति कभी भारतीय-संस्कृति नहीं हो सकती और न बहुसंख्यक धर्म-प्रेमी भारतीय जनता इसे अपनी संस्कृति मान सकती है। मेरी भी रुचि ऐसी संस्कृतिके प्रचारमें नहीं है। वहाँ तथा यहाँ भी हमारे अनेक हिन्दू भाई जो धर्मको भूलते जा रहे हैं, वह इसी धर्म-निरपेक्ष संस्कृतिके प्रचारका ही परिणाम है। आपकी संस्थाके पदाधिकारीगण अच्छे लोग हैं, परन्तु हिन्दू-धर्ममें उनकी कोई विशेष रुचि हो या उसके साथ उनका कोई विशेष सम्बन्ध हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता। तब भारतीय-संस्कृतिका ऐसे लोगोंके द्वारा क्या प्रचार होगा, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। पुनः आपके पत्रके लिए धन्यवाद।

भवदीय,
जुगलकिशोर बिरला

[ब्रिटिश गायनामें एक हिन्दू पण्डित और धर्म-प्रचारक भेजनेके सम्बन्धमें वहाँके भारतीय हाई कमिश्नर श्री डॉ० राजकुमारको बिरलाजीका पत्र]

बिरला हाउस
नयी दिल्ली,
जनवरी २७, १९५८

माननीय डॉ० राजकुमार जी,

सादर नमस्ते। आपका ३ जनवरी, १९५८का कृपा-पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। इसके लिए कृपया मेरा धन्यवाद स्वीकार करें। जैसा कि आपने ब्रिटिश गायनाके लोगोंको सुझाव दिया है और मैं भी उससे सहमत हूँ कि उनके उद्देश्यके लिए यह अधिक अच्छा होगा, यदि यहाँसे कोई पण्डित वहाँ न भेज कर, वहींसे कोई व्यक्ति यहाँ भेजा जाय, जो यहाँ आकर हिन्दू धार्मिक कृत्य तथा कर्मकाण्ड आदिकी शिक्षा प्राप्त करे। यदि आपके सुझावके अनुसार कोई व्यक्ति वहाँसे भेजा जाये और यहाँ आवे, तो उसको अपनी ओरसे एक छात्र-वृत्ति देनेका प्रबन्ध कर दिया जायगा, जिससे वह जितने दिन यहाँ शिक्षा प्राप्त करनेके लिए रहेगा; उतने दिन उसके भोजन और रहनेका पर्याप्त प्रबन्ध हो जायगा।

शुभेच्छा सहित,

भवदीय,
जुगलकिशोर बिरला

डॉ० एन० वी० राजकुमार,
कमिश्नर फॉर दी गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया,
पोर्ट ऑफ स्पेन, ट्रिनिडाड

* * *

पुस्तकोंकी माँग

[ब्रिटिश गायनाके गीता-प्रचार-मण्डलके अध्यक्ष, श्री सी० एस० प्रसादका पत्र]

६७ बक्सटन, ब्रिटिश गायना
७-३-१९६२

श्री दानवीर जुगलकिशोर बिरलाजी,
बिरला हाउस, नयी दिल्ली, भारत

प्रिय महोदय,

नमस्ते। यहाँ अधिकतर भारतीय तथा उनमें अधिकतर हिन्दू लोग रहते हैं। यहाँ शीघ्र ही स्वराज्य मिलनेवाला है और बहुमत हिन्दुओंका होनेसे वे ही यहाँके शासक होंगे। इसलिए शत्रुता और ईर्ष्याके कारण दूसरे लोगोंने आग लगाकर भारतीयोंकी सम्पत्तिको नष्ट करनेका कुचक्र रचा। आगमें हमारी सब पुस्तकें और हमारा प्रेस जल गया। गीता-प्रचार-मण्डल हमारी संस्था है। उसके लिए यदि आप निम्नलिखित पुस्तकें गीता प्रेसकी भेजेंगे तो बड़ी कृपा होगी:

इंग्लिश गीता १०००
ह्वाट इज़ गॉड ५००
ह्वाट इज़ धर्म ५००
इमीनेन्स ऑफ गॉड ५००

यदि आप कहेंगे, तो मैं ५० प्रतिशत तक मूल्य भी दे सकूँगा। कृपया शीघ्र पत्र देवें।

विनीत,
सी० एस० प्रसाद

[आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघका श्री प्रसादको उत्तर]

बिरला लाइन्स, दिल्ली
मार्च २९, १९६२

प्रिय महोदय,

आपके ७-३-६२के पत्रके लिए जो आपने श्रीमान् बिरलाके नाम भेजा है, अनेक धन्यवाद। श्रीमान् सेठ बिरलाजीने इस संघको आदेश दिया है कि आपने जिन पुस्तकोंकी माँग की है, वे आपकी सेवामें भेज दी जायँ। उनके साथ ही हिन्दू-धर्म और संस्कृतिके सम्बन्धकी कुछ और भी चुनी हुई पुस्तकें वहांके प्रवासी हिन्दू भाइयोंके लाभके लिए हमें भेजनेको कहा गया है। ये सभी पुस्तकें आपको बिना मूल्य ही भेजी जायँगी। इनका मूल्य संघ देगा। ये सभी पुस्तकें अतिशीघ्र एकत्र कर आपको भेज दी जायँगी।...

भवदीय,
संयुक्त मन्त्री

* * *

[श्री चेतराम सिंहका पत्र]

गुआना (ब्रिटिश गायना) में भारतीय संस्कृति-प्रचार योजना

श्रद्धेय श्री बिरलाजी,

प्रणाम। मैं इस पत्रके साथ श्री फिलिप सिंगर द्वारा अपने सम्बन्धका एक परिचय-पत्र संलग्न कर रहा हूँ, जिनके द्वारा आपके सम्बन्धमें बहुत कुछ ज्ञात हुआ है। उनके विचारमें मैं जिन उद्देश्योंके साथ भारत आ रहा हूँ, उनकी पूर्तिमें आप मेरी सहायता कर सकते हैं।

मैं गुआना सरकारके अन्तर्गत अस्पतालोंका व्यवस्थापक हूँ और मेरे अन्तर्गत कई अस्पताल हैं। मैं अपने देशमें, जहाँ आधीसे अधिक जनसंख्या भारतीयोंकी है, वर्षों तक हिन्दू महासभाका अध्यक्ष भी रह चुका हूँ। श्रीभास्करानन्द जी जब गुआना पधारे थे, तो वह हमारे ही अतिथि थे और मैं व्यक्तिगत रूपसे उनके बहुत ही सम्पर्कमें रहा।

वेस्ट इण्डीज़ स्थित भारतीय हाई कमिश्नरसे मैंने प्रार्थना की कि वह मुझे भारतमें स्वास्थ्य-योजनाओंके अध्ययनके लिए यात्राकी सुविधा प्रदान करें और साथ ही मुझे वहाँके धार्मिक और साँस्कृतिक स्थानोंको देखने तथा तत्सम्बन्धी व्यक्तियोंसे मिलनेकी भी अनुमति प्रदान करें। मुझे सूचना मिली है कि मेरी इस प्रार्थनाके सम्बन्धमें आवश्यक व्यवस्थाकी जा रही है।

भारत आनेपर मैं ऐसी संस्थाओं, व्यक्तियों और दलोंसे सम्पर्क स्थापित करनेकी आशा रखता हूँ जो मुझे निम्न बातोंमें सहायता दें :

१. एक संगीत-विशारदके सम्बन्धमें जो गुआना आकर वहाँकी जनताको भारतके शास्त्रीय संगीत और नृत्यकी शिक्षा दे सकें।

२. गुआनाके कुछ छात्रोंके लिए छात्रवृत्तियाँ उपलब्ध करनेके सम्बन्धमें। वे छात्र भारत आकर संगीतकी शिक्षा प्राप्त करेंगे।

३. गुआनाके कुछ तरुण हिन्दू छात्रोंके भारतमें आकर हिन्दू-धर्मका अध्ययन करनेके सम्बन्धमें समुचित व्यवस्थाके बारेमें। गुआनामें हमारे पण्डित हिन्दू-धर्मको कतिपय रीति-रिवाजोंके रूपमें ही रख पाते हैं, जिससे नयी पीढ़ीके शिक्षित लोगोंका समाधान नहीं हो पाता। क्रिश्चियन मिशनरियाँ हमारी इस दुर्बलताका लाभ उठाकर हमारी जनताका शिकार करती हैं और हममेंसे बहुतोंको ईसाई धर्ममें दीक्षित कर रही हैं।

४. हिन्दू-धर्म और भारतीय-संस्कृतिके सम्बन्धमें पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें (हिन्दी, अंग्रेजी दोनोंमें) और फिल्म उपलब्ध करनेके सम्बन्धमें।

मेरी इस प्रकारकी आशाएँ और आकांक्षाएँ दुर्लभ और असम्भव भी बतायी गयी हैं, क्योंकि भारत इस समय स्वयं अपनी अनेक समस्याओंमें उलझा पड़ा है। फिर भी गुआनासे प्रस्थित होनेके पूर्व मैंने एक सभाकी अध्यक्षता की और भारतके अकाल-पीड़ित लोगोंके सहायतार्थ धन एकत्र कर भारतीय हाई कमिश्नरकी सेवामें प्रेषित कर दिया। डॉक्टर सिंगर ने मुझसे कहा है कि आप एक बहुतही प्रभावशाली व्यक्ति और सच्चे हिन्दू हैं। बिरला हाउसका नाम गुआनाका प्रायः प्रत्येक हिन्दू जानता है। मैं जानता हूँ कि आप कितने व्यस्त होंगे। फिर भी यदि आप किसी व्यक्तिको अपनी ओरसे कहेंगे, जो मेरे मिशनके सम्बन्धमें लोगोंसे मिले और मेरी सहायता करनेके लिए कहे, तो गुआनाकी जनता आपकी चिर-अनुग्रहीत होगी।

* * *

मैं अपनी पत्नीके साथ भारतमें १५ अगस्तके करीव रहूँगा और तव आपसे सम्पर्क स्थापित करनेकी चेष्टा करूँगा। पुनः प्रणाम !

भवदीय,
चेतराम सिंह

श्री जी० आर० द्वारका,
प्रिन्सिपल स्कूल फॉर अनप्रिविलेज्ड व्वॉयज,
८३, रेलवे लाइन, स्टुअर्ट विले, पाश्चर,
वेस्ट कोस्ट डिमेरारा, गुआना।

दिसम्बर १९, १९६२

प्रिय महोदय,

आपके १२ दिसम्बरके पत्रसे यह जानकर वड़ी प्रसन्नता हुई कि आप गुआनामें हिन्दू-धर्मके उत्थानके लिए हार्दिक प्रयत्न कर रहे हैं। आपने भारतमें स्वामी चिन्मयानन्दजीकी देख-रेखमें गुआनाके दो छात्रोंको शिक्षित करनेके लिए व्यवस्थाकी है, यह प्रशंसनीय कार्य है। जहाँ तक हमारी ओरसे सहायताका प्रश्न है, हम ऐसे दो गुआनी छात्रोंकी व्यवस्था करनेके लिए तैयार हैं, जो भारत आकर कर्मकाण्ड आदिका ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। हम उनके लिए रहने, भोजन और आवश्यक पुस्तकादि की व्यवस्था कर देंगे, जिससे कि वे कर्मकाण्ड तथा हिन्दू-धर्मके मूल और व्यापक रूपसे पूर्ण परिचित हो सकें।

पाश्चात्य ढंगके उच्चस्तरका रहन-सहन यहाँकी अपेक्षा वहाँ वहुत महँगा है। उसकी वरावरी तो हम नहीं कर सकते। किन्तु उक्त दो छात्रोंके लिए सभी उचित व्ययका प्रवन्ध कर दिया जायगा। वह यहाँ एक भारतीय छात्रपर होनेवाले व्ययसे कम न होगा। उनके यहाँ आनेपर पिलानी (राजस्थान) भेजा जा सकता है, जहाँ वे बिरलाओं द्वारा स्थापित संस्कृत विद्यालयमें अध्ययन कर सकते हैं, या वे बनारस जा सकते है। वहाँ भी बिरलाओं द्वारा संचालित संस्कृत विद्यालय है या वे भारत में जहाँ कहीं भी रहकर अध्ययन कर सकते हैं। जैसा कि आपसे पहले निवेदन कर चुका हूँ।[1]

सं० मन्त्री
आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघ, दिल्ली

---

१. ब्रिटिश गुआनाके हिन्दुओंके लिए कर्मकाण्डी पण्डितोंकी आवश्यकता देखते हुए श्रीमान् बाबूजीने परामर्श दिया था कि वहींके कुछ छात्र भारत आकर संस्कृत तथा कर्मकाण्डका ज्ञान प्राप्त करें, तो उत्तम होगा। वावूजीका उक्त परामर्श कुछ वर्ष पश्चात् कार्यरूपमें परिणत हो गया और गायनाके कुछ छात्र कर्मकाण्ड आदिका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए भारत आए। श्री बिरलाजीने भारतमें उनके रहने तथा शिक्षा सम्बन्धी व्यय आदिकी समुचित व्यवस्था कर दी। इस सम्बन्धमें अ० भा० आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघ द्वारा उक्त पत्र भेजा गया था।—सम्पादक

* * *

साँस्कृतिक और धार्मिक पुनर्जागरणकी दिशा

[श्री जी० आर० द्वारकाका पत्र]

२२-२-६८

प्रिय महोदय,

मुझे यह सूचित करते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि श्री रमेश एल० किशुन भारतके लिए कल प्रस्थित हो चुके है। वे समुद्री जहाजसे ट्रिनिडाड से लन्दन पहुँचेंगे और वहाँसे हवाई जहाज द्वारा दिल्ली जाएँगे। वे दिल्ली २९मार्चको आठ बजे प्रातःकाल पहुँच जायँगे। इसके पश्चात् वे आपके हाथों समर्पित हैं। जहाँ उन्हें अपने व्यक्तित्वके निर्माणका अवसर प्राप्त होगा-एक ऐसे व्यक्तित्वका जिसकी गायनाके सांस्कृतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्रके लिए हमें परम आवश्यकता है। भारतमें आपके समान उसके सुपुत्रों और संघ जैसी संस्थाओं पर हम लोगोंकी आशा टिकी हुई है जिनके द्वारा हम गायनामें एक सांस्कृतिक और धार्मिक पुनर्जागरणकी आशा कर रहे हैं। वर्षोंतक मैं इस चेष्टामें रहा कि हमारे यहाँकी धार्मिक संस्थाएँ अपने युवकोंको भारत भेजकर धर्मकी शिक्षा दिलानेका यत्न करें। किन्तु किसीने भी इस ओर ध्यान नहीं दिया। अन्तमें मैंने स्वयं ही व्यक्तिगत रूपसे श्री विरलाजीके आगे अपनी प्रार्थना उपस्थित की और मेरी प्रार्थना स्वीकृत हुई। हम लोगोंको आध्यात्मिक प्रकाश देनेमें केवल भारतमाता ही समर्थ है। यदि वह इसमें असफल होती है तो विश्व आध्यात्मिकतासे वंचित हो जाएगा। मेरी प्रार्थना है कि उसके पुत्र और पुत्रियाँ हमारे इस सुदूर देशमें आध्यात्मिक प्रकाश पहुँचानेमें अधिकसे-अधिक सफल हों। आपका संघ अपना उत्तरदायित्व उत्तम प्रकारसे निभा रहा है, इसके लिए संघकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

मैं आपका अनुग्रहीत होऊँगा, यदि आप श्री किशुनके सम्वन्धमें समय-समयपर मुझे सूचित करते रहेंगे कि उनका अध्ययन कैसे चल रहा है और वे क्या प्रगति कर रहे हैं, जिससे कि मैं अपने यहाँके अन्य छात्रोंको भी भेजनेकी व्यवस्था कर सकूँ।

यदि हिन्दू-धर्म सम्वन्धी कोई उपयोगी पुस्तिका यहाँ वितरणके लिए उपलब्ध हो, तो कृपया भेजनेका अनुग्रह करेंगे।

वेस्ट पोस्ट
डिमेरारा

भवदीय,
जी० आर० द्वारका

डच गायना

डच गायनामें (दक्षिणी अमेरिका) प्रवासी भारतीयोंकी स्थिति

गायना नामक प्रदेश दक्षिणी अमेरिकाके उत्तरी भागमें अन्धमहासागरके किनारे बसा हुआ है। इसका क्षेत्रफल लगभग दो लाख पचास हजार वर्गमील है। यह प्रदेश प्रायः वरावरके तीन भागोंमें बँटा हुआ है और प्रत्येक भाग क्रमशः अंग्रेजों, डचों और फ्रांसीसियोंके शासनके नीचे रहे हैं। तीनों भाग अलग-अलग ब्रिटिश गायना, डच गायना और फ्रेंच गायनाके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे डच गायना और ब्रिटिश गायनामें भारतीय हिन्दू काफी संख्यामें वसे हुए हैं। यहाँ केवल डच गायनाके हिन्दुओंकी परिस्थितिका दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

* * *

आजसे बीसियों वर्ष पहले भारतवर्षसे अनेक भारतीय हिन्दू और मुसलमान, डच और ब्रिटिश गायनामें विदेशियों द्वारा उपनिवेश बसानेके लिए, शर्तबन्द कुलीके तौरपर, भर्ती करके भेज दिये गए थे। वे भारतीय पाँच वर्षतक वहाँ खेत आदिमें काम करनेके पश्चात् स्वतन्त्र कर दिये जाते थे। धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ती गई और उस समयसे अवतक वहाँ भारतीयोंकी आवादी ४० हजारसे अधिक हो गई है। इनमें ३२ हजार हिन्दू भारतीय हैं, जिनमें सनातनधर्मी और आर्यसमाजी दोनों सम्मिलित हैं।

सन् १९२८-२९में एक भारतीय यात्री जिनका नाम जैमिनि मेहता था, वहाँ गये थे। उन्होंने वैदिक धर्मपर वहाँके कितने ही विद्यालयोंमें भाषण दिये। उनके साथ भजनीकोंका भी एक दल था, जिसने वहाँ वैदिक मन्त्रों तथा धार्मिक गानका प्रचार किया। इनका प्रचार आर्यसमाजी ढंगका था। उसके पश्चात् ५ वर्ष वाद पण्डित अयोध्याप्रसादजी आर्यसमाजकी ओरसे वहाँ गये। उन्होंने आर्यसमाजको सर्वोत्तम ठहराकर वहाँके सनातनधर्मी और आर्यसमाजी हिन्दुओंके बीच वैमनस्यका एक बीज वपन कर दिया। परिणामस्वरूप उक्त दोनों दलोंका सम्बन्ध बहुत ढीला पड़ गया। पीछे कुछ महीने वाद इस भूलके संशोधन के लिए आर्यसमाज-प्रचारक श्री सत्याचरणजी वहाँ गये। उन्होंने धार्मिक विवादों पर विशेष जोर न देकर, संगठन पर बल दिया। उनके प्रयत्नसे वहाँ आर्यसमाजका एक मन्दिर स्थापित हुआ तथा आर्यसमाजके अन्तर्गत एक अनाथालयको उससे संयुक्त कर दिया गया। यह संस्था डच गायनाकी राजधानी पारामारिबोमें है।

सनातनधर्मियोंका भी वहाँ एक सभा-भवन है। उसमें यथासमय कार्य हुआ करते हैं। उस संस्थाका नाम सनातनधर्म महामण्डल है, जो पारामारिबोमें है। उक्त मण्डलकी ओरसे श्री भवानी भीख मिश्र सन् १९३४में भारतवर्ष पधारे थे। उन्होंने पूज्य पण्डित मदनमोहन मालवीयजीके दर्शन किये थे तथा भारतके अन्य विभिन्न विशिष्ट व्यक्तियोंसे भी वे मिले थे। उन्होंने डच गायना लौटकर भारतीयोंकी एक सभा आमन्त्रित कर भारतवर्षका वर्णन किया तथा उनके लिए भेजे गये पूज्य मालवीयजीके सन्देश भी सुनाये। श्री मालवीयजीने वहाँके प्रवासी हिन्दुओंसे इच्छा प्रकट की थी कि वे अपने कुछ विद्यार्थियोंको भारत भेजें, जिससे वे भारतसे अपना सम्बन्ध स्थापित करनेमें समर्थ हों। पण्डित भवानी भीख मिश्रने उनके बीच हिन्दू विश्वविद्यालयका भी आकर्षक वर्णन किया तथा उसके फोटो भी उन्हें दिखाए। उन्होंने अभिभावकोंसे अपने पुत्रोंको भारत भेजने पर विशेष जोर दिया। परिणामस्वरूप १९३६में कुछ-एक विद्यार्थी वहाँसे हिन्दू विश्वविद्यालयमें अध्ययनार्थ गये।

रहन-सहन और रीति-रिवाज

डच गायनामें भारतीय हिन्दुओं-आर्यसमाजियों और सनातनियोंमें प्रायः धार्मिक शास्त्रार्थ हुआ करते हैं। लोग बहुधा भारतसे ग्रन्थ मँगाकर पढ़ा करते हैं। पुराने लोगोंमें वर्ण-व्यवस्था अबतक है। वर्ण केवल चार ही हैं। उपजातियोंसे कोई मतलब कहीं है। शादी-विवाह धीरे-धीरे वर्णसंकरताको प्राप्त करते जा रहे है। खान-पानमें कोई परहेज नहीं है। जिनकी जहाँ इच्छा होती है, खाते-पीते हैं। परन्तु पुराने लोगोंमें कुछ विचार अवश्य हैं। तलाक-प्रथा चलती है। विवाह आदि संस्कार वेद-विहित होते हैं। श्रावण मासमें भगवद् सप्ताह तथा यज्ञ हुआ करते हैं। रामलीला, कृष्णलीला आदि समय-समयपर प्रायः होती है। कथा, पूजा, कृष्ण-जन्माष्टमी तथा रामनवमी पर्व विशेषरूपसे मनाये जाते हैं। हिन्दुओंका कोई खास मन्दिर नहीं है। रामायण-महाभारतकी कथा लोग बड़े प्रेमसे सुना करते हैं। पुराने हिन्दू अब भी धोती-कुर्ता पहनते हैं। औरतें साड़ीनुमा लहँगा तथा कुरती और ओढ़नी पहनती हैं। विवाह माता-पिता करवाते हैं। घरमें साधारण हिन्दी बोली जाती है। पढ़े-लिखे लोग डच या अंग्रेजी भी बोलते हैं।

* * *

शिक्षा

शिक्षाका प्रवन्ध अच्छा है। शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य है। गाँवोंमें एक-एक मीलपर स्कूल हैं। पुस्तकें, स्लेट आदि सरकार देती है। वहाँके जंगलियोंको भी शिक्षा दी जाती है। कैथोलिक मिशनके स्कूलों तथा सरकारी स्कूलोंमें हर जगह हिन्दी शिक्षा कुछ साल तकके लिए अनिवार्य रखी गई है। इसके अतिरिक्त डच और फ्रेंचकी भी शिक्षा दी जाती है। सब कुछ होते हुए भी उच्च शिक्षाका अभाव है और भारतीय उच्च योग्यतासे वंचित रह जाते हैं।

आर्थिक स्थिति

नगरोंसे अधिक लोग गाँवोंमें बसते हैं। इसका कारण गरीबी ही है। व्यापार साधारण है। बड़े-बड़े व्यापार डचों और चीन-देश-निवासियोंके हाथ में हैं। हिन्दुओंमें गरीब बहुत हैं। वे खेतीबारी करते तथा पशु पालते हैं। यद्यपि उनके साथ घृणाका व्यवहार नहीं किया जाता, तथापि उन्हें ऊपर उठने नहीं दिया जाता। कोई अन्य पद उन्हें नहीं दिया जाता, भले ही वे अधिक योग्य क्यों न हों। कोई व्यक्ति यदि स्वदेश लौटना चाहता है, तो उसे शीघ्र आने नहीं दिया जाता। क्योंकि देशकी आर्थिक स्थितिके आधार भारतीय ही हैं। वे ही वहाँके कृषक हैं। उनके ही श्रमसे अर्जित धन वहाँके व्यापारका लक्ष्य है। भारतीय यहाँसे श्रमिकके रूपमें वहाँ भेजे गये थे। वहाँ जीवनके अन्य विकासकी सुविधाके अभावमें उन्होंने कृषि तथा पशुपालनको ही अपनाया। उनमेंसे कुछ ही लोगोंने व्यापार प्रारम्भ किया है। कुछने वहाँ भूमि खरीदी है। वे बहुधा धान उपजाते हैं। कुछ फलोंकी खेती भी करते हैं; जिनमें केला, आम आदि प्रमुख हैं। वे गायें पालते हैं। अधिकांश लोग अबतक मजदूर हैं।

घी-दूध शुद्ध मिलते हैं। सरकारका उनपर पूर्ण नियन्त्रण रहता है। चारों ओर हेल्थ ऑफिसर घूमा करते हैं। प्रजाकी रक्षामें सरकार तत्पर रहती है। हर कोई अपना दुःख और कष्ट गवर्नरसे कह सकता है।

अन्य लोग

डच गायनाकी जंगली जातियोंमें भी दो तरहके लोग हैं, एक रेड इण्डियन दूसरे ह्वाइट इण्डियन। रेड इण्डियन बड़े डील-डौलके तथा भयंकर स्वरूप वाले होते हैं। उनके सिरपर बाल बहुत कम होते हैं। दाढ़ी-मूँछें भी नहीं होतीं। दूसरे ह्वाइट इण्डियन गोरे होते हैं। उनके लम्बे-लम्बे बाल होते हैं। वे कपड़े पहनते हैं तथा कला-कारीगरीमें दक्ष होते हैं। नाव, सुराही, पंखा, कन्दील आदि तथा मिट्टीकी वस्तुएँ बड़ी कारीगरीसे बनाते हैं। यहाँ तुल्ली नामका एक बहुत ही लम्बा-चौड़ा पत्ता होता है। उससे घर छाया जाता है। वह ८-१० वर्ष तक चल जाता है। धनिक लोग अपने घर टीनसे छाते हैं। जंगली लोग लकड़ीका व्यापार करते हैं। मकान लकड़ीका बनता है। सालमें दो फसलें होती हैं। गेहूँ, दाल, कपास आदि नहीं होते हैं। ये बाहरसे मँगाये जाते हैं। डच गायनामें केवल डच जातिके लोग हैं। अंग्रेज वहाँ नहीं हैं। वे व्यवहारमें अच्छे होते हैं। जावा तथा मलायाके लोग भी वहाँ प्रायः २२ हजार हैं। हब्शी भी उतनी ही संख्यामें हैं। चीनी केवल ५०० हैं, परन्तु व्यापारमें बड़े तेज हैं। देशकी कुल आबादी करीब पौने दो लाख है। देशकी राजधानीमें ५० हजार लोग रहते हैं।

* * *

धर्म

सरकारकी ओरसे धार्मिक हस्तक्षेप नहीं है। जब कभी मुसलमानोंसे खटपट होती है, तब सब हिन्दू एक हो जाते हैं। गोहत्या कहीं नहीं की जाती है। सरकारी दूकानोंसे लोग गोमांस खरीदकर ले जाते हैं। एक बार गोहत्याके प्रश्नको लेकर हिन्दू-मुसलमानोंमें झगड़ा हो गया था, तभीसे गोहत्या बन्द हो गई है। रामनवमी, कृष्ण-जन्माष्टमी आदि हिन्दू पर्व बड़े उत्साहसे मनाये जाते हैं। श्रावणमें भागवत-सप्ताह तथा यज्ञ-सप्ताह भी मनाया जाता है। लोगोंमें रामायण, पुराण तथा हिन्दू-धर्म-ग्रन्थोंके प्रति बड़ी श्रद्धा है। यह सब होते हुए भी वहाँ किसी प्रभावशाली धार्मिक नेताका अभाव है। उनका कोई पथ-प्रदर्शक नहीं है। हिन्दुओंका वहाँ कोई मन्दिर भी नहीं है। धीरे-धीरे ईसाई मिशनरियों द्वारा उन्हें ईसाई मतमें दीक्षित करनेके लिए जाल बिछाए जा रहे हैं।

वहाँ एक बहुत ही प्रभावशाली कैथोलिक दल है। उसके बहुतसे चर्च और सैकड़ों मिशन हैं। वह भारतीय युवक और युवतियोंको नौकरी आदिका लालच देकर उन्हें बड़ी तीव्रतासे कैथोलिक मतमें दीक्षित कर रहा है। वे लोग हिन्दुओंके अनाथ बच्चोंको ले लेते हैं। उनकी ओरसे निःशुल्क शिक्षाका प्रबन्ध है। इसके अतिरिक्त वे रुपये भी देते हैं। यह सभी कुछ वे अपने दलको बढ़ानेके लिये करते हैं। उक्त कैथोलिक मिशन हिन्दुओंका बड़ा शत्रु है। यदि वहाँ आर्यसमाज न होता, तो हजारों हिन्दू अनाथ बच्चे उनके हाथमें पड़े बिना न रहते। उन्हें बचाने का श्रेय आर्यसमाजको है।

भारतसे ऐतिहासिक सम्बन्ध

ऊपर जिन रेड इण्डियन तथा ह्वाइट इण्डियनका वर्णन आया है, उनके सम्बन्धमें भी विद्वानोंकी सम्मति है कि वे भी कालान्तरमें यहाँसे गये हुए भारतीय ही हैं। गायना, पीरू तथा मेक्सिकोमें बसी पुरानी जातियोंकी संस्कृति, मन्दिर, देवता आदि सभी भारतसे मिलते-जुलते हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि उनकी संस्कृति और धर्मके सम्बन्धमें अध्ययन किया जाय और उनसे भारतका पुनः सम्बन्ध स्थापित किया जाय।

सबसे बड़ी कमी डच गायनामें एक प्रभावशाली व्यक्तिकी है, जो वहाँकी भारतीय जनताको राह बता सके। उनका कोई योग्य नेता नहीं, जो हिन्दुओंको परस्पर संगठित कर सके, उनकी राजनीतिक समस्याओंको सुलझा सके तथा समय-समय पर सरकारसे लड़कर उनके अधिकार दिला सके। हिन्दुओंकी ओरसे वहाँ सांस्कृतिक केन्द्रके रूपमें कुछ विद्यालय खोलनेकी आवश्यकता है। हिन्दीका प्रचार वहाँ शीघ्र और बड़ी सुगमतासे किया जा सकता है। भारतीय जनतामें प्रचारके निमित्त वहाँ एक प्रेस स्थापित करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है, जिसके द्वारा पुस्तकें, पैम्फलेट आदि प्रकाशित कराकर लोगोंमें बाँटे जा सकें।

डच गायनाके भारतीय हिन्दुओंकी रक्षा तथा उनकी उन्नतिके लिए उनका भारतसे लगातार सम्बन्ध रखना अनिवार्य है। उनके बीच हिन्दुत्वके प्रचारके निमित्त भारतसे योग्य विद्वान् तथा मिशनरी भावनासे युक्त कुछ व्यक्तियोंके जानेकी आवश्यकता है। यदि भारतवर्षने इस आवश्यकताकी ओर शीघ्र ही ध्यान नहीं दिया, तो सम्भव है ईसाई प्रचारकों द्वारा वहाँके सभी हिन्दू ईसाई मत में दीक्षित कर लिए जायें और डच गायनाके प्रवासी हिन्दुओंसे हिन्दुत्वका सर्वथा लोप ही हो जाय।[1]

—रघुनाथ

---

१. श्री रघुनाथजी बिरलाजी द्वारा छात्रवृत्ति पाकर भारतमें अध्ययन करने आए थे। यहाँ आनेपर उन्होंने डच गायनाके भारतीयोंकी स्थितिका यह विवरण श्री बिरलाजीके समक्ष प्रस्तुत किया था। —सम्पादक

* * *

सूरिनाम (दक्षिण अमेरिका)

[धर्मोपदेशककी आवश्यकता]

पारामारिबो
सूरिनाम (दक्षिण अमेरिका)

माननीय सेठ बिरलाजी,

सादर नमस्कार।

मैं यह पत्र सूरिनाम (दक्षिण अमेरिका)से लिख रहा हूँ। सूरिनाममें साठ हजार भारतीय बसते हैं। जिनमें बीस हजार मुसलमान, आर्यसमाजी और ईसाई हैं तथा चालीस हजार सनातनधर्मी हैं। भारत-वर्षको स्वतन्त्र हुए आज ९ वर्षसे अधिक हुआ। लेकिन भारत सरकार भारतीय संस्कृति और हिन्दूधर्मके प्रचारके लिए भारतसे एक भी प्रचारक न भेज सकी। पाकिस्तानसे इस्लाम धर्मके प्रचारके लिए सात मौलाना आ चुके हैं। मौलाना अब्दुल हकने हमारे हिन्दूधर्मका खूब खण्डन किया है। डॉक्टर अन्सारी और मौलाना अब्दुल हक हालमें ही यहाँसे गए हैं। दो मौलाना यहाँ अपने धर्मका प्रचार कर रहे हैं। यहाँ प्रचारके लिए एक पण्डितकी आवश्यकता है। पण्डित ऐसा भेजें, जो शास्त्री और व्याकरणाचार्य हो। साथ ही अंग्रेजी का भी एम० ए० या बी० ए०का विद्वान् हो। यहाँकी सरकार हम लोगोंके धर्म पर किसी प्रकारकी रुकावट नहीं डालती। धर्मके लिए पूरी स्वतन्त्रता है। सरकार सहायता भी देती है। आप अवश्य ही विद्वान् भेजनेकी कृपा करें। उनकी सेवा, भोजन आदिका प्रबन्ध हम ठीक रीतिसे करेंगे। जब पण्डित आ जाएँगे, तो जो कुछ हम लोगोंके पास धन वगैरह होगा वे बताएँगे कि किस कार्यमें लगाया जाय। हमारी प्रार्थना है कि जिन पण्डितको आप भेजनेका निश्चय करेंगे, उनका चित्र, उपाधि और आयु पत्रके साथ अवश्य भेजेंगे। पत्र देखते ही शीघ्र पत्रोत्तर देनेकी कृपा करेंगे।

भवदीय,
श्यामकिशोर शर्मा

[श्री बिरलाजीका उत्तर]

श्रीहरि

नयी दिल्ली,
आश्विन कृष्ण ९, सं० २०१५, वि०

प्रिय महोदय,

नमस्ते।

आपका कृपा-पत्र मिला। धन्यवाद। आपने लिखा है कि सूरिनाम देशमें साठ हजार भारतीय हैं, जिनमें बीस हजार मुसलमान, आर्यसमाजी और ईसाई हैं तथा चालीस हजार सनातनधर्मी हैं। सो निवेदन है कि आर्यसमाजके सम्बन्धमें आपको भ्रम है। आर्यसमाजी तो हिन्दू ही हैं और हिन्दुओंकी रक्षा करने तथा उन्हें जगानेके लिए सिपाहीके रूपमें हैं। वे लोग हिन्दूधर्मकी रक्षाके लिए मुसलमान और ईसाइयोंसे भी टक्कर लेते रहते हैं। आर्यसमाजके सत्यार्थ-प्रकाशके तेरहवें और चौदहवें समुल्लासमें ईसाई मत तथा मुसलमानोंका खूब भण्डाफोड़ किया गया है। आप आर्यसमाजके सिद्धान्तोंसे परिचित भी होंगे, पर खेद और आश्चर्य है कि आपने आर्यसमाजियोंकी गणना हिन्दुओंसे अलग, मुसलमानों और ईसाइयोंके साथ की है। यह उचित नहीं

* * *

है। आपने अच्छे प्रचारक पण्डितके लिए लिखा है, सो कोई अच्छा प्रचारक मिलने पर भेजनेकी चेष्टा की जाएगी। इस समय विदेशी मुद्राके सम्बन्धमें एक्सचेंजकी कमीके कारण गवर्नमेण्टसे आज्ञा मिलनेमें कठिनाई है। बाहर रुपए भेजनेके लिए सरकारी आज्ञा मिलना बड़ा कठिन हो रहा है। इसी कारण बाहर जानेके लिए पासपोर्ट भी बहुत कम मिलता है। इसके अतिरिक्त यहाँकी वर्तमान गवर्नमेण्ट धर्म-निरपेक्ष बनी हुई है, इसलिए गवर्नमेण्ट-से कोई सहायता भी नहीं मिलेगी। तथापि वहाँ भारतीय राजदूत कौन है, उनका नाम-पता आप लिखेंगे, तो यदि सम्भव हुआ तो गवर्नमेण्ट के द्वारा उन्हें कुछ सूचना दिलवानेकी चेष्टा की जायगी। इस बीच कुछ धर्म-सम्बन्धी पुस्तकें भेजी जा रही हैं। कृपया मिलने पर सूचित करेंगे।

भवदीय,
जुगलकिशोर बिरला

ट्रिनिडाड

श्रीमान् सेठ जुगलकिशोर जी बिरला,
बिरला हाउस, नयी दिल्ली, इण्डिया
प्रिय महोदय,

भारत सेवाश्रम संघ मिशनके, जो इन दिनों यहाँ ट्रिनिडाड में है, ब्रह्मचारी श्री राजकृष्णकी प्रेरणासे मैं यह पत्र आपकी सेवामें भेज रहा हूँ। सचमुच ही इस मिशन द्वारा यहाँपर अच्छा कार्य हो रहा है। आपको विदित होगा कि जो भारतवासी हिन्दू यहाँ बसे हैं, वे एक सौ वर्षसे अधिक हुआ, शर्तबन्द कुलीके रूपमें यहाँ आये थे। इस अवधिमें वे अपनी संस्कृति, धर्म, सामाजिक रीति-रिवाज और परम्पराकी सारी बातें भूल चुके हैं। यह बड़े दुख और लज्जाकी बात है कि हिन्दू स्त्रियाँ साड़ी तथा अन्य भारतीय परिधानोंका प्रयोग भूल गई हैं और ईसाई, नीग्रो आदि जातियों जैसी गाउन और शार्ट ड्रेस (स्वल्प वस्त्र) धारण करती हैं। भारत सेवाश्रम संघके संन्यासियोंके यहाँ आने तथा उनके प्रचारके फलस्वरूप यहाँके हिन्दुओंमें एक अभूतपूर्व जागरण दीख रहा है। उनकी पूजा-आरती और भजन-कीर्तन सभी नगरों एवं सभी घरोंमें होने आरम्भ हो गए हैं। मुझे ज्ञात हुआ है कि श्री ब्रह्मचारीजीने आपको कुछ हिन्दू देव-मूर्तियाँ : जैसे शिव, राम, कृष्ण आदिकी भेजने को लिखा है। यदि आप उदारता पूर्वक उन्हें यहाँ भेज दें, तो वैसे हिन्दू परिवारोंमें जो हिन्दुत्वके ज्ञानसे अछूते हो गए हों, हिन्दू भावनाको एक क्रियात्मक रूप मिलेगा। श्री स्वामीजी अपने प्रत्येक प्रवचनमें हिन्दू महिलाओंको साड़ी धारण करनेका उपदेश देते हैं। साड़ीके द्वारा ही वे इस पश्चिमी गोलार्द्धमें ईसाई, चीनी, नीग्रो जातियोंके बीच अपनी भारतीय विशेषताको अक्षुण्ण रख सकती हैं। स्वामीजीके उपदेशसे प्रभावित होकर हिन्दू महिलाएँ हमसे साड़ियोंकी माँग करने लगी हैं, परन्तु यहाँ साड़ियोंका प्रचार न रहनेके कारण हम लोगोंने भारतसे साड़ियाँ मँगाई नहीं थीं। आशा है कि भविष्यमें यहाँकी सभी हिन्दू स्त्रियाँ साड़ी एवं अन्य भारतीय पहिनावेको अपने बीच प्रश्रय देंगी।

यहाँकी जनता साधारण स्थितिकी है। अतः हम लोगोंने निश्चय किया है कि भारतसे सस्ती, रंगीन और छपी हुई साड़ियाँ मँगाई जायँ, जो सभी श्रेणीके लोगोंके लिए सुलभ हों।

* * *

[ट्रिनिडाड स्थित भारतीय राजदूतको बिरलाजीका पत्र]

बिरला हाउस, नई दिल्ली
९-१-५२

मान्यवर श्री आनन्दमोहन सहायजी,

सप्रेम नमस्ते।

आपके ता० १० दिसम्बर तथा १५ दिसम्बरके दोनों पत्र मिले, अनेक धन्यवाद।

आपने अध्यापकके सम्बन्धमें लिखा है, सो ठीक है। एक अध्यापक के आने-जानेका ट्रिनिडाड तकका मार्गव्यय यहींसे दे दिया जायगा। आप एक अध्यापकके सम्बन्धमें कृपया उचित व्यवस्था करलें। आपके परिवारके लिए यहाँ कितनी मासिक सहायतासे काम चल जायगा, यह आपने नहीं लिखा। कृपया इसके सम्बन्धमें भी सूचित करें।

एक सज्जनने वहाँ हिन्दी सिखानेके लिए जो पुस्तक लिखी है, वह कृपया यहाँ भिजवा दें, तो उसको छपानेकी व्यवस्था कर दी जायगी। कितनी प्रतियाँ छपाना आवश्यक होगा, यह भी कृपया लिखें।

पचास सूती साड़ियाँ भेजनेके लिए केशोराम कॉटन मिल कलकत्ता को लिख दिया गया था, और उन्होंने भेजना स्वीकार भी कर लिया था। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि भारतके वस्त्र निर्यातके सम्बन्धमें जो सरकारी बन्धन है, कदाचित् उस कारण वे अबतक नहीं भेज सके होंगे। तथापि हम फिर उनको इस सम्बन्धमें लिख रहे हैं।

आपने पुस्तकोंके सम्बन्धमें लिखा है। ट्रिनिडाडमें भारत सेवाश्रम संघकी ओरसे जो मिशन गया था, उसके पास यहाँसे हिन्दीकी बहुतसी पुस्तकें भिजवायी गयी थीं। ऐसा समझा गया था कि उससे पर्याप्त आवश्यकताकी पूर्ति हो गयी होगी। अस्तु, हमने आपके लिखनेके अनुसार फिर सीधे आपके पास पुस्तकें भेजनेके लिए धर्म सेवासंघ वालोंको कह दिया है। वे यथासम्भव शीघ्र यहाँसे पुस्तकें प्रेषित कर देंगे।

ब्रिटिश गायनामें एक हिन्दी स्कूल खोलनेमें कितना मासिक व्यय लगेगा, कृपया लिखें तो उसके सम्बन्ध में विचार किया जाय। परन्तु सबसे बड़ी कठिनाई यहाँसे रुपया भेजनेमें होगी। इस कठिनाईको दूर करनेकी क्या व्यवस्था होगी, कृपया लिखें।

आशा है आप स्वस्थ तथा प्रसन्न होंगे।

भवदीय,
जुगलकिशोर बिरला

[पोर्ट ऑफ स्पेन ट्रिनिडाडसे भारतीय हाई कमिश्नर श्री आनन्दमोहन सहायका पत्र]

प्रिय सेठजी,

आपने कृपया जो साड़ियाँ भेजी हैं, उसके लिए आपको धन्यवाद है। ये मेरे कार्यमें बड़ी सहायक सिद्ध होंगी। कुछ ही दिन हुए, जब वे मेरे पास यहाँ पहुँची हैं। मैं इनके लिए चिन्तित हो रहा था, क्योंकि कई महीने हुए, जब वे भारतसे प्रेषितकी गयी थीं। क्या ही अच्छा होता, यदि वे एक महीने पहले यहाँ पहुँच जातीं। तब मैं उनमेंसे कुछको जमाइका द्वीप ले जाता और वहाँ गरीब हिन्दुस्तानी स्त्रियोंमें उनका वितरण करता। जमाइकामें बसे हुए भारतीय अच्छी हालतमें नहीं हैं। उनके नेता लोग स्वार्थी हैं और उनका बिलकुल

* * *

ध्यान नहीं रखते। वे सदा उनसे अपना स्वार्थ सिद्ध करनेकी चेष्टामें रहते हैं। ट्रिनिडाडके समान जमाइका सम्पन्न भी नहीं है। वहाँके वहुतसे लोग निर्धन हैं। उनकी दशा सुधारनेकी मैं यथासम्भव चेष्टा कर रहा हूँ।

हिन्दी सिखानेकी जो पुस्तक छपनेके लिए हिन्दू-धर्म सेवासंघ दिल्लीको यहाँसे भेजी गयी थी, उसके वारेमें समाचार पानेके लिए मैं उत्सुक हूँ। ६ महीने हुए तव मैंने पुस्तक छापनेके लिए भेजी थी और संघको लिखा था कि उसका शीघ्रसे-शीघ्र छपना अत्यन्त आवश्यक है। पर संघसे अभी तक कोई समाचार नहीं मिला है। जैसा कि आपको विदित ही है, मुझे यहाँ आये हुए अढ़ाई वर्ष हो चुके हैं। अव मैंने छुट्टीके लिए भारत सरकारसे प्रार्थना की है, क्योंकि लगातार कड़ा परिश्रम करनेसे मेरा स्वास्थ्य विगड़ गया है और मैं कुछ महीने विश्रामके लिए भारत आना चाहता हूँ। प्रधानमन्त्री नेहरूजी चाहते हैं कि मैं यहाँ कुछ और अधिक समयतक बना रहूँ। मुझे पता नहीं कि उनका क्या निश्चय होगा। परन्तु यदि मेरी छुट्टी स्वीकृत हो गयी और मुझे यहाँसे जाना पड़ा, तो सम्भव है दूसरे लोग यहाँ हिन्दी सिखानेमें इतनी रुचि न लें। अतएव मैं ऐसा प्रवन्ध कर देना चाहता हूँ कि जव मैं यहाँसे वाहर रहूँ, तब भी काम चलता रहे। अतएव यह परमावश्यक है कि जो पुस्तक छप रही है, वह मुझे यहाँसे जानेके पहले ही पहुँच जाय।

जबसे मैं यहाँ आया हूँ तबसे इस समयके बीच मैंने दो सहस्र मूल्यकी हिन्दी पुस्तकें प्रारम्भिक तथा उच्च कक्षाकी पुस्तकें आदि वच्चोंमें वितरण की हैं। यहाँकी हिन्दी-शिक्षा-समितिका प्रयागके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके साथ सम्वन्ध स्थापित करानेकी चेष्टा भी मैं कर रहा हूँ। आपसे प्रार्थना है कि कृपया जो पुस्तक प्रेसमें छप रही है, उसको यथासम्भव शीघ्र यहाँ भिजवानेकी कृपा करें। कृपया उसकी दो प्रतियाँ हवाई डाकसे भिजवा दें, तो अच्छा होगा। यदि उस पुस्तककी प्रतियाँ भारत सरकारके विदेश-विभागके मन्त्रि-कार्यालयको मेरे पास भेजनेके लिए हस्तगत करदी जायं, तो फिर भारत-सरकारका विदेश-विभाग उनको स्वयं अपने थैलेमें भरकर यहाँ भेज देगा और इस प्रकार अधिक होनेवाला डाक-व्यय बच जायगा। आशा है आप स्वस्थ तथा प्रसन्न होंगे।

भवदीय,

आनन्दमोहन सहाय

पुनश्च :

गन्नेके विशेषज्ञोंका जो सम्मेलन यहाँ हुआ था, उसमें भाग लेनेके लिए श्रीयुत तथा श्रीमती नेवटिया यहाँ पधारे थे। जैसा कि आपको ज्ञात होगा, श्रीनेवटिया मेरे परममित्र स्वर्गीय जमनालालजी बजाजके जामाता हैं। उनसे तथा अन्य भारतीय प्रतिनिधियोंसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

[श्री महादेव महाराजका पत्र]

१५ गुडिंग विलेज
सैन फरनैण्डो, ट्रिनिडाड
ब्रिटिश वेस्ट इण्डीज
१३ अक्टूबर, १९५५

श्रीमान् सेठ जुगलकिशोरजी बिरला,
विरला हाउस, दिल्ली, भारत

प्रिय श्री विरलाजी,

नमस्ते। मेरी पुत्री कुमारी सीता महाराज मिश्रने, जो बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयमें अध्ययन कर रही है, आपकी उदारताके सम्बन्धमें लिखा है।

* * *

उसने आपसे छात्रवृत्तिकी माँग की थी, जिसके उत्तरमें आपने आगामी जनवरीसे विचार करनेका आश्वासन दिया है। उसने आप द्वारा ५० रु०की सहायताका भी उल्लेख किया है। आपकी इस उदारताके लिए हम कृतज्ञ हैं। आशा है कि आप सीताकी सहायता जारी रखेंगे।

इस वर्षके आरम्भमें आपके भतीजे श्री लक्ष्मीनिवासजी बिरला अपनी पत्नीके साथ यहाँ पधारे थे। सैन फरनैण्डोके टाउन हालमें उनसे मिलनेका मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

आपके तथा आपके परिवारके प्रति आदर-भावके साथ :

भवदीय,
महादेव महाराज

[ट्रिनिडाडकी सनातनधर्म महासभाका पत्र]

कोर्नर पिक्टन एण्ड ईस्टर्न मेन रोड्स,
पोर्ट ऑफ स्पेन, ट्रिनिडाड,
ब्रिटिश वेस्ट इण्डीज़
नवम्बर, १९५५

श्रीयुत् जुगलकिशोरजी बिरला,
बिरला मन्दिर, नयी दिल्ली, भारत

प्रिय महोदय,

उक्त सभाकी प्रवन्धकारिणी समितिकी ओरसे मैं आपको तथा आपके मन्दिरके ट्रस्टियोंको और उन सबोंको, जिन्होंने हमारे अध्यक्ष माननीय श्री वी० एस० महाराज और श्रीयुत एस० कपिलदेवकी भारत-यात्रापर स्वागत और आतिथ्यके द्वारा अपने हार्दिक प्रेमका परिचय दिया है, धन्यवाद देता हूँ।

आपने मन्दिरका जो नक्शा बनवाकर भेजा है, उससे हमें यहाँ प्रेरणा मिली है और हम इसे उत्साहपूर्वक पूर्ण करनेमें लग गए हैं। हम लोगोंकी हार्दिक इच्छा है कि आप स्वयं इसका उद्घाटन करें।

आपके द्वारा निर्माण-कार्यके लिए स्थापत्य-विशेषज्ञकी सहायताका भी आश्वासन प्राप्त हुआ है। इसके लिए हम आपके अतीव आभारी हैं। इसके अतिरिक्त आपने मन्दिरके लिए एक पुजारी और एक संस्कृताध्यापक देनेकी बात कही है। इन सारे उपकारोंके लिए हमें अपना आनन्द प्रगट करनेके लिए शब्द नहीं हैं।

यह हम लोगोंकी प्रबल इच्छा है कि आप कभी यहाँ आनेका कार्यक्रम अवश्य बनायें, जिसमें कि आप इन दूरवर्ती देशोंमें हिन्दुओंकी दशाका स्वयं अवलोकन करें।

आपके हिन्दू-धर्मके सम्बन्धमें किये गए प्रयत्नोंके सम्बन्धमें हमें बहुत ही उत्साहबर्द्धक समाचार मिलते रहे हैं और हम आपको अपने द्वारा किये गए प्रयत्नोंसे अवगत रखनेकी आशा रखते हैं।

* * *

आपको पुनः धन्यवाद है। हिन्दू धर्मके उत्थानके लिए हम आपके स्वास्थ्य, चिरायु और अभ्युन्नतिकी कामना करते है।

भवदीय,
रामसूरतसिंह,
प्रधान मंत्री

जमाइका

[ईस्ट इण्डियन प्रोग्रेसिव सोसाइटी, जमाइकाके मन्त्रीका पत्र]

४२ ड्यूक स्ट्रीट, किंग्सटन, जमाइका,
ब्रिटिश वेस्ट इण्डीज
अगस्त ११, १९४७

प्रिय महोदय,

जमाइका द्वीप तथा इसी प्रकारके अन्य देशों और द्वीपोंमें भारतीय लोगोंका आगमन १८४० ई०की शर्तबन्दी कुली प्रथाके अनुसार ही हुआ था। वे वहाँ इस शर्तपर ले जाये गये थे कि यदि वे ५ वर्ष तक वहाँ कार्य कर लेंगे और इसके बाद स्वदेश लौटना चाहेंगे, तो उन्हें लौटनेका आधा मार्गव्यय दिया जायगा और यदि वे १० वर्षकी अवधि तक कार्य करेंगे; तो उन्हें लौटनेका पूरा खर्चा मिल सकेगा। परन्तु सन् १९१७ ई० में इस प्रथाका अन्त हो गया। उस समय तक भारतसे वहाँ लगभग ३६,००० व्यक्ति जा चुके थे। उस समय बहुतोंको स्वदेश लौटनेकी सुविधा भी मिली। किन्तु फिर भी यहाँ एक हजार व्यक्ति ऐसे रह गये, जिनके कुली जीवनकी अवधि तो समाप्त हो गयी थी, परन्तु जिन्हें स्वदेश लौटनेकी सुविधा न मिल सकी। जमाइकाकी सरकारका कहना है कि वे अब भारत वापस नहीं जा सकते, क्योंकि जब उन्हें निःशुल्क वापस भेजा जा रहा था, तो उन्होंने वह अवसर खो दिया।

समृद्धिके दाता, स्वयं निर्धन

जमाइकामें चीन, पुर्तगाल, आयरलैण्ड और ब्रिटिश द्वीपसे भी कुली आये। किन्तु उनसे वहाँके कृषि-उद्योगकी कोई वृद्धि सम्भव न हो सकी। परन्तु भारतीयोंने इस कार्यको कर दिखाया। जमाइकाको सम्पन्न बनानेवाले यही भारतीय आज मनुष्योचित जीवन-साधनसे वंचित हैं और दारुण दीनतामें जीवन बिता रहे हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि उनमें कुछ तो विदेशी जातियोंमें घुलमिल गये हैं और बहुतोंने ईसाई मत स्वीकार कर लिया है और करते जा रहे हैं। उनमें अन्तर्जातीय विवाह भी प्रचलित हो गया है। आज वे अपने धर्म और संस्कृतिसे बहुत दूर पड़ गये हैं और उसके गौरवको भूल गये हैं।

कोई स्थान नहीं!

जमाइका एक ऐसा उपनिवेश है जहाँ सभी जाति और सम्प्रदायके लोग बसते हैं। वहाँकी जन-संख्या प्रायः १२ लाख है। हिन्दू कुल संख्याके २ प्रतिशत ही हैं। उनकी संख्या प्रायः ४,००० है। उन्हें हिन्दू धर्म और संस्कृतिके सम्बन्धमें बहुत स्वल्प ज्ञान है। वे केवल इतना ही जानते हैं कि वे हिन्दुओंकी सन्तान हैं। यहाँ

बहुत थोड़े मुसलमान हैं। यहाँकी राजनीतिमें भारतीयोंका कोई स्थान नहीं है। न यहाँ कोई सार्वजनिक हिन्दू संस्था है। डॉ० जे० एल० वर्मा, जो ईस्ट इण्डियन प्रोग्रेसिव सोसाइटीके सभापति हैं, यहाँके प्रमुख हिन्दुओंमेंसे हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई हिन्दू हैं, जिनका अच्छा सम्मान है और उक्त सोसाइटी के सदस्य हैं। हिन्दू मिशनरियोंकी यहाँ अत्यन्त आवश्यकता है, जो हिन्दू-संस्कृति तथा हिन्दू-धर्मका प्रचार करें।

भवदीय,

मंत्री

हिन्दू-विवाहके सम्बन्धमें कानूनकी माँग

जमाइकामें हिन्दुओंके विवाह-सम्बन्धी कानूनकी आवश्यकता अनुभव करते हुए वहाँके हिन्दू प्रवासियोंकी ओरसे जो प्रयत्न किया जा रहा था, उस सम्बन्धमें ईस्ट इण्डियन प्रोग्रेसिव सोसाइटीके मन्त्रीका निम्नलिखित पत्र बिरलाजीको प्राप्त हुआ था :

४२ ड्यूक स्ट्रीट, किंग्स्टन, जमाइका,

ब्रि० वे० इ०

११ फरवरी, १९४९

प्रिय महोदय,

आपके ६ दिसम्बर, १९४८के उत्तरमें निवेदन है कि ट्रिनिडाडमें हिन्दुओं तथा मुसलमानोंके विवाह-सम्बन्धी कानून बने हुए हैं। जमाइकामें भी मेरी सोसाइटी उसी प्रकारके विवाह-सम्बन्धी अधिकारोंकी माँग यहाँ जमाइका सरकारसे कर रही है। सरकार इस पर विचार कर रही है।

भवदीय,

जे० गोवर्द्धन

मन्त्री

प्रतिबन्धका विरोध

एक पत्र श्रीमान् बाबूजीकी आज्ञा और प्रेरणासे ट्रिनिडाडमें हिन्दुओंके सामाजिक और धार्मिक कृत्यों पर लगे प्रतिबन्धके सम्बन्धमें कोलोनियल सेक्रेटरी, जमाइकाको भेजा गया था। उनका उत्तर निम्न प्रकार प्राप्त हुआ :

सेक्रेटेरियट जमाइका

फरवरी १२, १९४९

महोदय,

आपके ६ दिसम्बर, १९४८के उस पत्रके सम्बन्धमें, जिसमें आपने जमाइकामें हिन्दुओंके सामाजिक और धार्मिक कृत्योंपर लगाये गए प्रतिबन्धोंकी शिकायत की है, निवेदन है कि आपके पत्रकी एक प्रतिलिपि सम्बन्धित विभागको भेज दी गयी है।

भवदीय,

कोलोनियल सेक्रेटरी

●

* * *

स्मृति-मन्दाकिनी

●

आर्य-जीवन एवं संस्कृतिके देवमन्दिरोंके निर्माता, वैदिक-धर्मके उद्‌गाता और दान, दया, दाक्षिण्यके ग्स्तोता श्रीजुगलकिशोरजी बिरलाकी अब स्मृति शेष है, किन्तु अपने पीछे वे छोड़ गए हैं — एक प्रेरित एवं स्फूर्त-परम्परा जो भगीरथकी परम्पराकी भाँति गंगाको गंगोत्रीसे आगे बढ़ाकर तीर्थों की पयःस्विनी बनाए। उनकी पुण्य-स्मृति मन्दाकिनी बन गई।

श्रीहरिभाऊ उपाध्याय

गुण-स्मरण



हमारे यहाँ तीन शब्द प्रचलित हैं : आधि, व्याधि, उपाधि। 'आधि' कहते हैं शरीरके अन्दर प्रजनित या प्रविष्ट विजातीय द्रव्यके प्रभाव या प्रकोपको। 'व्याधि' कहेंगे : मनके अन्दरके विजातीय द्रव्यकी उपस्थितिको और 'उपाधि' कहना चाहिए, हमने हमारे सुख-भोगके निमित्त जुटाई साधन-सामग्रीको।

'उपाधि' मुख्यतः हमारी उपलब्धि है। यों तो किसीकी व्याधिके लिए हम ही जिम्मेदार हैं, परन्तु 'उपाधि' तो हमारी ही अपनेको देन है।

साधन-सामग्री मनुष्य जुटाता है मुख्य दो उद्देश्योंसे : एक तो अपने सुखके निमित्त, दूसरे परोपयोगी होनेके निमित्त। दोनोंमेंसे कोई भी उद्देश्य प्रयोजन अवांछनीय नहीं, परन्तु एक सीमाके बाद वे हानिकर हो जाते हैं।

अपना सुख-भोग मनको आनन्द देनेके बजाय, नित्य नयी उलझनमें फँसाता है; तो यह लक्षण है 'जाति'का। हमें सावधान हो जाना चाहिए।

परार्थके लिए साधन-सामग्री जुटानेमें बड़ी परेशानी होती है, मन अशान्त रहता है, क्रोध और कोपका प्रभाव मनपर होने लगता है; तो समझना चाहिए, हम कहीं रास्ता भटक रहे हैं।

मनुष्यसे माँगना यदि बुरा है, तो 'भगवान्'से माँगना क्यों अच्छा समझा जाय; और फिर दाल-रोटी, सुख-समृद्धि माँगना क्या भगवान्का अपमान या भगवद्शक्तिका तिरस्कार नहीं है?

शान्ति, आनन्द, कल्याण, मंगलकी याचना फिर समझमें आती है। जीव बिन्दु है, भगवान् सिन्धु है; एक अल्प है, दूसरा महान् है। अतः अल्पका महान्के प्रति विनम्र होना तो ठीक है; परन्तु अधम, पापी, पतित, दुरात्मा, नराधम मानना कहाँ तक उचित और समर्थनीय हो सकता है? अपनेको पतित मानकर भगवान्के सामने गिड़गिड़ाना क्या 'भगवान्'के ही अस्तित्वसे इनकार करना नहीं है?

तो फिर प्रार्थनाका क्या अर्थ, क्या उपयोग?

प्रार्थना, उपासना, आराधना, वन्दना, अर्चना—ये पर्यायवाची माने जाते हैं, फिर भी सबमें सूक्ष्म अन्तर है।

किसी विशेष उद्देश्यसे की गयी भगवान्से माँग 'प्रार्थना' है। भगवान्के गुणोंका चिन्तन और उनका अनुकरण या उनकी प्राप्तिका प्रयत्न 'उपासना' है।

गिड़गिड़ाना, आराधना; उनके प्रति नमनकर प्रणाम और स्तुति करना, वन्दना; तथा उन्हें कुछ अर्पण करना, चढ़ाना; अर्चना है।

* * *

इनमें उपासक सर्वोच्च है। वैसे इन सबका अन्तिम फल भगवद्प्राप्ति या भगवद्रूप हो जाना ही है, फिर भी इनमें उपासना अन्तिम सीढ़ी है।

परमात्मा की स्तुति, वन्दना, प्रार्थनाके बजाय उसके गुणोंका स्मरण, उसका नामाचरण ही काफी है। स्तुतिमें केवल भगवान्‌के गुणों और नामोंका स्मरण होता है, जब कि प्रार्थनामें कुछ माँगा भी जाता है।

नाम अकेला नहीं रहता, हमारा सारा व्यक्तित्व उसमें समाविष्ट हो जाता है। 'राम' या 'शिव'का नाम लेते ही किसी रमण करनेवाले या मंगल करनेवाले व्यक्ति या मनुष्यका बोध नहीं होता; ये शब्द राम और शिवके सारे व्यक्तित्वके साथ हमारे सामने आते हैं और हमारे मन पर अपना प्रभाव डालते हैं।

●

* * *

श्रीदीनदयाल उपाध्याय

ऋषिकल्प आर्यपुत्र

०००

दानवीर सेठ जुगलकिशोरजी विरलाका नाम तो वचपनमें ही सुना करता था, किन्तु उनके दर्शनोंका सौभाग्य १९३५में पिलानीमें मिला। उन दिनों मैं पिलानी कॉलेजका विद्यार्थी था। शीत ऋतुका प्रारम्भ ही हुआ था। एक दिन प्रातःकाल घूमते हुए वे बिरला-छात्रावासमें आगए। मारवाड़ी ढंगकी पगड़ी और लम्वा कोट पहने हुए सादे वेशमें विना किसी पूर्व सूचनाके ही वे आए थे। एकाएक हम लोग उन्हें पहचान भी नहीं पाये। किन्तु जव समाचार पाकर छात्रावासके अधीक्षक श्री याज्ञिक दौड़े-दौड़े आए, तव अन्दाज हो गया कि हम लोगोंसे कुशल-क्षेम और पढ़ाईका हाल-चाल पूछनेवाले सज्जन और कोई नहीं, जुगलकिशोरजी ही हैं। वाक़ी बातोंके साथ वे हरएक विद्यार्थीसे यह भी पूछ रहे थे कि कसरत करते हो या नहीं। जिससे उन्हें 'हाँ'में उत्तर मिलता, उसे उसकी पीठ ठोंक कर वह शावाशी देने लगे। उस समय उन लोगोंको ग्लानिका अनुभव हुआ, जो नियमित व्यायाम नहीं करते थे। इस तरहकी बातचीत समाप्त होनेके बाद श्री बिरलाजीने याज्ञिकजीसे कहा : "मास्टरजी, बच्चे काफ़ी दुवले लगते हैं। जाड़ेके दिन हैं। इन्हें कुछ पौष्टिक आहार मिलना चाहिए।" दूसरे दिन दवाईसे बने लड्डू छात्रावासमें आ गए। प्रत्येक विद्यार्थीको एक महीनेके लिए पन्द्रह लड्डू बाँट दिये गए। आधा लड्डू और आधा सेर दूध प्रतिदिनका अनुपान था। जो दूधके लिए पैसे नहीं जुटा सकते थे, उनके लिए दूधकी व्यवस्था भी विरलाजीकी ओरसे ही की गयी थी।

व्यायाम और शक्तिवर्धनकी ओर उनका इतना लक्ष्य था कि नागपंचमीके दिन वे प्रायः पिलानीमें उपस्थित रहते थे। जो भी अखाड़ेमें उतर गया, फिर वह जीते या हारे; उसे पुरस्कार अवश्य मिलता था। किन्तु पुरस्कार नकद न होकर घी या मेवेके रूपमें ही होता था।

विद्यार्थी-जीवनमें उनकी सहृदयता और शालीनताकी जो छाप मुझ पर पड़ी, वह आगे जब-जब उनसे मिलनेका अवसर आया, गहरी ही होती गयी। वे देशके एक प्रमुख धनपति तथा ख्यातनामा दानवीर थे। किन्तु वे इतने निरहंकार और विनयशील थे कि अपनी श्रीसम्पन्नताका आभास कभी भी नहीं होने देते थे। भारतीय शास्त्रोंके अनुसार धनका अभाव और प्रभाव दोनों ही धर्मको नष्ट कर देते हैं। सेठ जुगलकिशोरजीके पास अपार धन था, किन्तु उसका प्रभाव नहीं। उन्होंने अर्थसे कभी अनर्थ नहीं होने दिया। न तो उन्होंने अर्थमें आसक्ति रखी, न अर्थसे उन्होंने मानवताका मूल्यांकन किया। कौटिल्यके अनुसार अर्थका लक्ष्य 'तीर्थेषु प्रतिपादनम्' है। बिरलाजीने अपने पुरुषार्थ और उद्योगसे करोड़ों रुपया कमाया और करोड़ों ही मुक्तहस्त दान दिया। क्योंकि आज इस विषयमें उनकी कोई तुलना नहीं कर सकता। उन्होंने कविकी इस उक्तिको पूर्णतः चरितार्थ किया :

नैया में पानी बढ़े, घर में बाढ़ें दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यहि सज्जन को काम।।

श्री जुगलकिशोरजी बिरला कट्टर हिन्दू थे; किन्तु उनका हिन्दुत्व संकुचित न होकर विशाल था। उसमें वे उन सभी पन्थ और सम्प्रदायोंको सम्मिलित करते थे, जिनका उद्गम और प्रेरणास्रोत भारत है। वैदिक, अवैदिक सभी मतोंके प्रति वे सहिष्णु एवं श्रद्धावान् थे। उनका यह समन्वयकारी दृष्टिकोण ही हिन्दुत्वकी विशेषता है।

हिन्दू-समाजके कल्याणकी उनको इतनी लगन थी कि हिन्दू-जीवनका कोई क्षेत्र और उनके सुधारका कोई ऐसा कार्य नहीं होगा, जिसकी उन्होंने सहायता न की हो। जब भी कोई उनसे मिलता, तो वे हिन्दू-संगठनकी आवश्यकताका अवश्य ही प्रतिपादन करते। जीवनके आखिरी दिनोंमें भी, जब वे रोगशय्या पर थे, मैं उनसे मिलने गया, तो उन्हें अपनी अस्वस्थताकी नहीं; हिन्दू-समाजके स्वास्थ्यकी ही अधिक चिन्ता थी। आखिरी श्वास तक वे हिन्दू-हितका ही विचार करते रहे। आज भी उनकी स्वर्गस्थ आत्मा यही कामना कर रही होगी कि हम सभी देशवासी अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर हिन्दू-समाजको शक्ति-सम्पन्न, चैतन्यशाली और वैभवपूर्ण बनावें। उसीमेंसे फिर सेठ जुगलकिशोर बिरलाकी आत्मा अवतरित होकर सतत् उद्योग और अनवरत दानकी परम्पराको आगे बढ़ायेगी। ऋषिकल्प बिरलाजीका कृतित्व ही उनका पुण्य-स्मारक है। वे पुण्यश्लोक थे, पुण्यात्मा थे। उनकी पुण्य-स्मृतिमें मैं अपनी प्रणतिपूर्वक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ। ऋषिकल्प आर्यपुत्र तुमको प्रणाम![१]

●

---

१. स्वर्गीय बिरलाजीकी आत्माको हिन्दू-समाजमें पुनरवतरित होनेकी कामना रखकर हिन्दू-समाजको शक्ति-सम्पन्न; चैतन्यशाली बनानेका शिव-संकल्प करनेके दस दिन बाद श्रीउपाध्यायजीका तिरोधान हो गया। श्रीजुगलकिशोर बिरलाजीकी ही भाँति श्रीदीनदयाल उपाध्याय भी आखिरी श्वासतक हिन्दू-हितका ही चिन्तन करते हुए हमसे बिछुड़ गए। वह सत्पुरुष थे, सत्-चित्में लीन हो गए।—सम्पादक

* * *

सम्पादकाचार्य पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

हिन्दुत्वके अनन्य पुरस्कर्ता

◎ ◎ ◎

प्राणिमात्र जो जन्म लेता है, वह मरता भी है, परन्तु मनुष्यके शरीरके अंगोंका उपयोग उसकी मृत्युके बाद नहीं होता, इसलिए जीतेजी ही उसे ऐसा काम कर जाना चाहिए, जिससे उसका जीना सार्थक कहा जा सके। सेठ जुगलकिशोरजी बिरला ऐसे महापुरुष हो गये हैं, जिन्होंने करोड़ों रुपए पैदा ही नहीं किए, करोड़ों दानमें दिए और करोड़ों सत्कार्योंमें लगाए। उनका दिल्लीका श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर जगत्प्रसिद्ध है। उसे देखनेके लिए दूरसे लोग आते हैं।

मध्यप्रदेशके भोपाल नगरमें भी उन्होंने श्रीलक्ष्मीनारायणका एक मन्दिर बनवाया है। इस मन्दिरका महत्व कम नहीं है। भोपालमें बसे हिन्दुओंकी संख्या कम नहीं है, पर वहाँकी शासिकाको हिन्दू-मन्दिर फूटी आँखों नहीं सुहाता था। यह लेखक १९०७में भोपाल गया था। उसने देखा, वहाँ मन्दिर नामकी दो कोठरियाँ थीं, जिन्हें भी बेगम साहबा खुदवा डालना चाहती थीं। उनकी रक्षाके लिए ब्रिटिश अधिकारियोंकी बड़ी अनुनय-विनय की गयी, पर किसीने ध्यान न दिया। अन्तमें इन्दौरके महाराज शिवाजीराव होलकरको सारी कथा लिखकर उनसे प्रार्थना की गयी। फलस्वरूप मन्दिर बच गए। उसी भोपालमें सेठ जुगलकिशोर बिरला-की धार्मिकता, उदारता और दानशीलतासे पहाड़ी पर विशाल श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिरका निर्माण हो गया है।

इस लेखकका सम्पर्क सेठजीसे कोई ३० वर्षों तक कलकत्तेमें रहा और निकटसे उनके गुणोंको जानने-समझनेका अवसर उसे मिला। कभी-कभी उनसे पत्राचार भी होता था। उनकी रुग्णावस्थाका समाचार पाकर मैंने उन्हें दिल्लीमें पत्र लिखा। उनका उत्तर आया कि स्वास्थ्य सुधर रहा है, पर कुछ दिनों बाद ही वे हिन्दू-जातिको असहाय छोड़कर संसारसे विदा हो गए। वे सच्चे अर्थोंमें हिन्दू और हिन्दुत्वके हिमायती थे। उन्होंने दिल्लीमें आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघ स्थापित कर दिया है, जिससे हिन्दू-जातिकी बड़ी सेवा हो रही है। सेठजीका हिन्दुत्व संकुचित नहीं था। उनके हिन्दुत्वमें अवैदिक, बौद्धों तथा जैन और सिखोंका समान स्थान था।[1]

●

---

१. हिन्दी पत्रकारिताके भीष्मपितामह सम्पादकाचार्य श्री बाजपेयीजीने रोगशय्या पर लेटे हुए रुग्णावस्थामें अपने घनिष्ठ श्रीजुगलकिशोर बिरलाजीकी स्मृतिमें उक्त पंक्तियाँ बोलकर लिखाईं। अर्द्धशतीसे अधिक सम्पर्ककी अगणित स्मृतियाँ उनके हृदयमें हिलोरें ले रही थीं। किन्तु अशक्त और विवश थे उन्हें लिपिबद्ध करनेमें। शरीर जर्जर हो चुका था और एक मास बाद ही उस जर्जर कलेवरको त्यागकर श्रीबाजपेयीजी ब्रह्मलीन हो गए। नमोवाकं प्रशास्महे।—सम्पादक।

* * *

महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज

भक्तिनम्र-हृदयके प्रति



भारतीय आकाशमें एक उज्ज्वल नक्षत्र अपनी किरणका संहार करके हमेशाके लिए तिरोहित हो गया। श्रद्धेय सेठ श्री जुगलकिशोर बिरला-जैसे महान् पुरुषके परलोकगमनसे देश, समाज और धर्मकी वस्तुतः जो हानि हुई है, उसकी पूर्ति शीघ्र होनेकी सम्भावना नहीं है। बिरलाजीका व्यक्तिगत जीवन और सब प्रकारकी सम्पत्ति विभिन्न प्रकारके दीन-दरिद्रोंकी सहायताके लिए, साधुपुरुषोंके आत्मविकासके अनुकूल सम्पादनके लिए, विभिन्न उपायोंसे प्राचीन संस्कृतिके संरक्षणके उद्देश्यसे, विद्यार्थियोंकी विद्या-चर्चाकी सुविधा-के लिए, भगवत्-भक्तिके प्रचार एवं परिपुष्टिके लिए सब कुछ अर्पित हो चुका था। इसीसे आज उनकी विमल कीर्ति-प्रभा शुभ्र ऊर्ध्वगामी ज्योतिस्तम्भके सदृश्य दिग्दिगन्त तक व्याप्त होकर निरन्तर ऊपरकी तरफ चल रही है। "कीर्तिर्यस्य स जीवति" यह बात अत्यन्त सत्य है, इसीलिए आज उनका यशःशरीर अमर है।

उनका स्मरण होने पर केवल कृतज्ञतासे सूक्ष्मचक्षु आर्द्र हो जाते हैं। इतना ही नहीं, उनके भक्ति-नम्र-हृदयके प्रति अकृत्रिम भक्तिके उच्छ्वास जाग जाते हैं।

उनके हृदयमें अनुदार भाव नहीं रहा। उनकी दृष्टिमें जैसे शिव-शक्तिमें भेद नहीं था, उसी प्रकार शिव तथा विष्णुमें भेद नहीं था और श्मशानवासिनी श्यामाका जो स्थान रहा, उसी प्रकार अनन्त ऐश्वर्यमयी सर्वशक्तिकी अधिष्ठात्री जगन्माता त्रिपुराका भी वही स्थान था।

आज बिरलाजीने प्रारब्ध कर्मोंका अवसान होनेके कारण कालका परिणामशील दुःखबाहुल्य राज्य छोड़ कर महाकालके राज्यका अतिक्रम करते हुए नित्य प्रेममय श्रीकृष्णके नित्य लीलामय परमधाममें स्थान प्राप्त किया है। श्रीकृष्णरूपी इष्टदेवताके प्रेमराज्यमें आज वे आनन्दसे विहार कर रहे हैं।

प्रोफेसर तान युन-शान

हिन्दू-संस्कृतिका मानव-रूप

○ ○ ○

स्वर्गीय सेठ जुगलकिशोरजी बिरला भारतमें ही नहीं, विश्व-भरमें एक बड़े उद्योगपति और महान् दानी और मानव-सेवीके रूपमें विख्यात थे। किन्तु वे मात्र एक बड़े उद्योगपति और लोक-सेवी ही नहीं थे, इसके अतिरिक्त वे और भी थे और उनमें भारतकी प्राचीन संस्कृति और धर्मका दिव्य रूप पूर्णताके साथ प्रतिबिम्बित था।

प्राचीन भारतीय-संस्कृति और धर्मके वे परम्परागत रूप बौद्ध-साहित्यमें कई श्रेणियोंमें बताये गए हैं;

(क) ६ पारमिताएँ : १. दान, २. शील, ३. शान्ति - धैर्य, ४. वीर्य - अध्यवसाय, ५. ध्यान, ६. प्रज्ञा।

(ख) लोक-हितकारी गुण : १. दान, २. प्रिय वचन, ३. अर्थकृत्य - लोकोपकारी कार्य तथा ४. समानार्थ सहकारिताकी भावना।

(ग) मानसिक चार उदार अवस्थाएँ : १. मैत्री, २. करुणा, ३. मुदिता तथा ४. उपेक्षा।

उपर्युक्त सभी गुण जिस प्रकार प्राचीन भारतीय-संस्कृति और धर्मके अंग रहे हैं, उसी प्रकार प्राचीन चीनकी संस्कृति और धर्मके भी अंग रहे हैं।

श्री बिरलाजी ही प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने भारतीय उद्योग-व्यापारको एशियाके विस्तृत क्षेत्र तक बढ़ानेका प्रयत्न किया तथा भारतका आर्थिक सम्बन्ध एशियाके दूरवर्ती देशोंसे भी स्थापित करनेकी चेष्टा की। तत्कालीन ब्रिटिश सरकार द्वारा ऐसी प्रवृत्तियोंके लिए प्रोत्साहन तो क्या मिलना था, वह ऐसी प्रवृत्तियों-को नापसन्द करती थी और भारतके सभी व्यापारिक स्रोतों पर अपना ही एकाधिपत्य बनाये रखना चाहती थी। ऐसे समयमें श्री सेठ जुगलकिशोर बिरलाने अपनी दूरदर्शिता और विचक्षणताके बल पर जापानसे भारतके लिए वस्त्रोंका तथा अन्य उपयोगी सामानोंका आयात करना आरम्भ किया। इसकी स्वीकृति सरकार द्वारा इसलिए मिल गयी थी कि उन दिनों इंग्लैण्ड और जापानके बीच मैत्री थी। इस आयातका परिणाम यह हुआ कि एक ओर तो भारतमें ब्रिटिश व्यापारका एकाधिपत्य जाता रहा, दूसरी ओर देशके लोगोंमें राष्ट्रीयताकी भावना बढ़ी और उन्होंने राष्ट्रीय उद्योग-धन्धोंका सूत्रपात किया। इससे भारतीय स्वतन्त्रता-आन्दोलनको भी पर्याप्त बल मिला।

इस प्रकार बिरलाजीने यथेष्ठ धन अर्जित किया और वे भारतके मूर्द्धन्य धनपतियोंमें गिने जाने लगे। उनके द्वारा उपार्जित यह धन उनके कठिन अध्यवसाय, साहस और आत्म-संयमका फल था। उसीका परिणाम यह है कि उनके द्वारा उस धनका विनियोग इस प्रकार जन-कल्याण, लोकोपकार और राष्ट्र-सेवाके विभिन्न कार्योंमें हुआ है।

उन्होंने कितना धन अर्जित किया और अपने जीवनपर्यन्त कहाँ-कहाँ, किन-किन धार्मिक, साँस्कृतिक लोकोपयोगी संस्थाओं तथा देश, जाति और राष्ट्र-हितके कार्योंमें अपना सहयोग प्रदान किया, इसका हम अनुमान ही लगा सकते हैं। मेरे विचारसे तो कोई भी व्यक्ति इसका पूरा-पूरा लेखा देनेमें असमर्थ है। हम अब केवल उन कुछ प्रमुख धार्मिक, साँस्कृतिक, शैक्षणिक, सामाजिक और लोक-सेवी संस्थाओंका ही नाम गिना सकते हैं, जो उनकी स्मृतिको चिरकाल तक स्थायी बनाए रखेंगी।

श्री सेठ बिरलाजीका समस्त कृतित्व उनकी निष्ठा, त्याग और धार्मिकताका प्रतीक है। हिन्दू (आर्य) धर्मके प्रति उनकी निष्ठा तो थी ही, बौद्ध-धर्मके प्रति उनकी श्रद्धा अतुलनीय थी। उन्होंने भारतमें हिमालयसे लेकर कन्याकुमारी तक और काठियावाड़से लेकर कामरूप तक न जाने कितने मन्दिर, विहार, अतिथि-गृह, धर्मशालाएँ, स्तूप और शिला-स्तम्भोंका निर्माण कराया। विशेषतया बौद्ध-तीर्थ जो उनके द्वारा मण्डित हुए, वे हैं : लुम्बिनी जहाँ भगवान् बुद्धका जन्म हुआ था, बोधगया जहाँ भगवान् बुद्धने ज्ञान प्राप्त किया था, सारनाथ जहाँ बुद्धने सर्वप्रथम अपने धर्मका उपदेश दिया था, कुशीनगर जहाँ बुद्धका निर्वाण हुआ था, राजगृह और नालन्दा जहाँ बुद्धने कितने ही महायान-सूत्रोंका उपदेश दिया था तथा श्रावस्ती जहाँ २० वर्षों तक बुद्धने निवास किया था और महायान धर्मकी शिक्षा दी थी। इन सभी स्थानोंमें बिरलाजीने मन्दिर, अतिथि-गृह, धर्मशालाएँ और स्तूप आदि निर्मित कराए। इनके अतिरिक्त हिन्दू-तीर्थ जैसे द्वारका, मथुरा, हरिद्वार, उत्तरकाशी, अयोध्या, उज्जैन, प्रयाग, वाराणसी, गया, पुरी आदिमें भी उन्होंने धर्मशालाएँ और मन्दिर निर्मित कराए। दिल्लीमें श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर और वाराणसीमें हिन्दू विश्वविद्यालय स्थित विश्वनाथ मन्दिर आधुनिक भारतीय स्थापत्य कलाके उत्कृष्टतम उदाहरण हैं। इनके अतिरिक्त "श्री बिरला जन-कल्याण ट्रस्ट"की भी स्थापना उनके द्वारा की गयी, जो भारत भरमें फैले हुए अनेकानेक जीर्ण-शीर्ण मन्दिरोंके उद्धार-कार्यमें संलग्न है।

आदिवासियों, हरिजनोंके उद्धारके साथ ही शिक्षा, संस्कृति, अध्ययन और विज्ञानके लिए उनका हार्दिक सहयोग एवं उदार संरक्षण सर्वविदित है। जन-कल्याणके प्रति उनकी उदारता तथा लोक-कल्याण-कारी कार्योंमें उनकी सहायता और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलनकालमें उनका पूर्ण सहयोग भारतके लिए अविस्मरणीय कार्य हैं।

मैं व्यक्तिगत रूपसे श्रीयुत बिरलाजीका बहुत ही अनुगृहीत हूँ और उनकी दूरदर्शिताका स्मरण कर आश्चर्य-पुलकित होता हूँ कि किस प्रकार इस शताब्दीके आरम्भमें ही उन्होंने अपनी ओरसे एक मिशन चीनकी सद्भावना-यात्रा पर भेजा, जिससे कि चीन और भारतके बीच न केवल आर्थिक और व्यापारिक सम्बन्धोंकी, प्रत्युत युगों पुराने दोनों देशोंके बीच साँस्कृतिक सम्बन्धोंकी सम्पूर्ण सम्भावनाओंका पता लगाया जा सके। १९२४ ई०में जब चीनसे गुरुदेव टैगोरके लिए निमन्त्रण आया, तो इसमें स्वर्गीय बिरलाजीने अपनी बड़ी रुचि दिखायी और इसके लिए उन्होंने आवश्यकतानुसार सहायताएँ अर्पित कीं।

१९३३-३४में जब मैं चीन तथा भारतमें 'साइनो-इण्डियन कल्चरल सोसाइटी'के संगठनमें प्रयत्नशील था, तो मेरे इस प्रयत्नमें भी सेठ बिरलाजीने बहुत उत्साह दिखाया। गुरुदेवके जोड़ासाकूँ निवास पर गुरुदेवकी उपस्थितिमें ही उनका साक्षात्कार मुझे प्राप्त हुआ और उन्होंने मुझे अपने यहाँ भोजन पर आमन्त्रित भी किया। 'साइनो-इण्डियन कल्चरल सोसाइटी'के लिए ५,००० रुपयेकी आरम्भिक सहायताका भी वचन उन्होंने दिया। मेरी उक्त संस्थाके लिए यह सर्वप्रथम सहायता थी।

चीना-भवन (विश्वभारती)के लिए उनकी नियमित सहायता तब तक मिलती रही, जब तक कि शान्तिनिकेतनके साथ चीना-भवन आदिका प्रबन्ध भारत-सरकारके संरक्षणमें नहीं आया। चीना-भवनमें

* * *

चीन, वियतनाम, थाईलैण्ड, मलाया, इण्डोनेशिया, बर्मा आदिके अनेक शिक्षार्थी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए आते रहे। उनमेंसे अधिकांश छात्रोंके लिए सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाने छात्रवृत्ति तथा सहायताएँ प्रदान कीं। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा अनेक चीनी बौद्ध-मन्दिरोंके निर्माणमें सहायता दी गयी। अनेक चीनी बौद्ध छात्रोंको छात्रवृत्तियाँ दी गयीं। अनेक चीनी भिक्षु और भिक्षुणियोंके लिए मासिक और एकमुश्त सहायताओंकी व्यवस्था की गयी। उनके इन तमाम कार्योंके लिए मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ और उन्हें महामानवके रूपमें श्रद्धासहित स्मरण करता हूँ।

●

* * *

महास्थविर श्रीचन्द्रमणि भिक्खु

तथागतके लिए

⊙ ⊙ ⊙

भारतके विराट् जन-जीवनको समुन्नत बनानेके लिए बिरला-परिवार द्वारा प्रदत्त योगदान सर्वविदित है, किन्तु इस महान् परिवारमें भी स्वनामधन्य सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाने राष्ट्रीयताके साथ-साथ प्राचीन भारतीय-संस्कृतिके उपासक एवं उन्नयनकर्ताके रूपमें जो कीर्ति अर्जित की, वह अतुलनीय है।

धन्य थे राजा बलदेवदासजी बिरला, जिन्होंने सेठ जुगलकिशोरजी बिरला जैसी विभूतिको पुत्र-रत्नके रूपमें प्राप्त किया। राजर्षि पिताको राजर्षि पुत्र उत्पन्न करनेका सौभाग्य **'आत्मा वै जायते पुत्रः'** इस उक्तिको सार्थक सिद्ध करता है।

उनका जीवन ज्वलन्त श्रद्धा-भक्ति, निष्ठा, धर्मपरायणता, उदारता, दानशीलता, तत्परता, सक्रियता आदि गुणोंका समुच्चय था। इन देवोपम गुणोंके कारण ही वे देश-विदेशमें भाँति-भाँतिके लोकोपकारी कार्य करनेमें समर्थ हुए, जिसके फलस्वरूप उनकी कीर्ति दिग्दिगन्तमें फैल गयी और वे जन-जनके लिए श्रद्धास्पद बन गए।

भगवान् तथागतके प्रति सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाके हृदयमें कितनी श्रद्धा थी, इसका बोध उनके द्वारा स्थान-स्थान पर निर्मित बौद्ध-मन्दिरोंसे होता है। सम्भवतः युवा-कालमें ही उनका ध्यान बौद्ध-धर्मकी ओर आकृष्ट हो गया और उन्होंने अनुभव कर लिया था कि वह कितना शाश्वत, कितना सार्वभौम, कितना कल्याणकारी है। वह इस सत्यके समर्थक और प्रचारक थे कि हिन्दू-धर्म और बौद्ध-धर्ममें कोई अन्तर ही नहीं है। वे यह मानते थे कि दोनों धर्म एक ही शाश्वत धर्मकी शाखा-प्रशाखास्वरूप हैं और यदि इनके अनुयायी एक झण्डेके नीचे खड़े हो जाएँ, तो भारत इतना सशक्त हो जाएगा कि न केवल एशियामें अपितु सारे विश्वमें उसकी विजय-वैजयन्ती फहराने लगेगी। इस धारणाको साकार रूप देनेके लिए उन्होंने देवानांप्रिय अशोकका अनुसरण किया।

बौद्ध-तीर्थोंको समुन्नत और जाग्रत बनानेके लिए, तथागतके उपदेशोंको विश्वभरमें प्रसारित करनेके लिए उन्होंने जो उद्योग किया; उससे उन्हें विश्वव्यापी ख्याति मिली। उनकी ऐसी सम्यक् दृष्टि बौद्ध-तीर्थ कुशीनगरकी ओर भी गयी, जो भगवान् तथागतका निर्वाणस्थल है। इतना महत्वपूर्ण धाम होते हुए भी सुदूर ग्रामीण अंचलमें स्थित होनेके कारण यह अत्यन्त उपेक्षित अवस्थामें पड़ा हुआ था, किन्तु आज वही कुशीनगर सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाके गौरवपूर्ण कार्योंको अपने अंचलमें समेटकर उनके चिरस्थायी स्मारकके रूपमें खड़ा है और देश-विदेशके यात्रियोंके समक्ष उनका यशोगान कर रहा है।

* * *

केवल कुशीनगरमें ही नहीं, बोधगया और सारनाथ आदि अन्य अनेक बौद्ध-तीर्थोंमें भी स्वर्गीय सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाने अनेकों मन्दिर, स्तूप, धर्मशालाएँ, शिक्षा-सदन आदि स्थापित किए और न जाने कितने ही विद्यालयों, छात्रों, साधु-सन्तों, अनाथों, दरिद्रोंको आर्थिक सहायता प्रदान की। वास्तविकता यह है कि अपने सुदीर्घ जीवनमें उन्होंने इतने लोक-हितकारी कार्य किए हैं, जिनका लेखा-जोखा सम्भव नहीं है। उनकी परोपकार-परायणताकी प्रकाश-धाराने अपनी अलौकिक आभासे उनके कीर्ति-स्तम्भको ऐसा आलोकित कर रखा है कि वह कभी धूमिल नहीं हो सकता।

●

* * *

श्रीनरेन्द्रदेव पण्डित

देवानांप्रियका पुण्य-स्मरण

⊙ ⊙ ⊙

स्वर्गीय सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाके साथ बालीद्वीपके हिन्दुओंका सम्पर्क १९५०के लगभग हुआ, जब उन्होंने श्री डॉ० आत्रेयको हिन्दूधर्मके प्रचारके लिए बाली भेजा था। डॉ० आत्रेय बालीमें श्रीमान् बिरलाजीका सन्देश लेकर आये थे। उनके आनेके पहले ही भुवन सरस्वती नामक संस्थाकी स्थापना हो चुकी थी। परन्तु स्थिति डाँवाडोल थी। संस्थाको चलानेके लिए धनकी बहुत कमी थी। मैं अकेला ही हिन्दू-धर्म प्रचारके लिए संघर्ष कर रहा था। जो कुछ भी मेरे पास था, सब बेच डाला। यहाँ तक कि वस्त्र भी बेच डाले। फिर भी संस्थाको चलाना कठिन हो गया था। हिन्दू-धर्म पढ़नेवाले विद्यार्थी बहुत कम फ़ीस देते थे। उससे तो मकान और बिजलीका किराया भी पूरा नहीं हो पाता था। फिर रह गया मेरा अपना ख़र्च। डॉ० आत्रेय-का बाली आना और हमारी संस्थाका परिचय श्री बिरलाजीके साथ कराना मात्र ही भुवन सरस्वती संस्था-को जीवित रखनेमें साधन बना। मैंने डॉ० आत्रेयजीको अपनी सारी योजना बतायी और हिन्दू-धर्मकी रक्षामें श्री बिरलाजीकी सहायताकी माँग की। श्री बिरलाजीने हमारी प्रार्थना स्वीकार की और आर्थिक सहायता देना आरम्भ किया।

हमने यहाँसे हिन्दू-धर्म और संस्कृत-भाषाकी शिक्षाके लिए कुछ छात्र भारत भेजे। उनके रहने और पढ़नेका सारा खर्च श्री बिरलाजीने प्रदान किया। आज वे ही छात्र इण्डोनेशियामें हिन्दू-धर्मके स्तम्भ बने हुए हैं। इनमेंसे दो छात्र अर्थात् डॉ० मन्त्र और श्री ओक वादको इण्डोनेशिया संसदके सदस्य हुए। डॉ० मन्त्र उदयन विश्वविद्यालयके कुलपति भी हैं। श्री सुधीत बालीके धर्ममन्त्री हैं। श्रीपूज सेण्ट्रल गवर्नमेण्टके धर्म-मन्त्रालयके अध्यक्ष हैं। भुवन सरस्वतीसे निकले हुए कई दूसरे छात्र भी आज ऊँची-ऊँची जगहोंपर लगे हुए हैं। आज इण्डोनेशियामें जो हिन्दू-धर्मका पुनरुत्थान हो रहा है, जावाके गाँव-गाँवमें हिन्दू-मन्दिरोंकी मरम्मत हो रही है, प्रत्येक नगरमें जो हिन्दू-धर्म परिषद् बनायी जा रही है, हिन्दू-जनता जो इण्डोनेशियामें आदर-सम्मानके साथ जीवित है-इन सबका श्रेय एकमात्र बिरलाजीको ही है। भारतसे बाहर द्वीपान्तरमें धर्मको पुनरुज्जीवित करके हमारे हिन्दुत्वकी रक्षा करनेमें वह प्रियदर्शी अशोकके समान थे। हम लोग उनके गुणोंका जितना भी बखान करें, उतना ही थोड़ा है। वह हमारे द्वीपमें देवानांप्रिय मानकर पूजे जा रहे हैं। मैं इण्डोनेशियाके हिन्दुओंकी ओरसे उनके चरणोंमें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

●

* * *

शुभश्री रानी चंगा

उपेक्षित द्वीपोंके स्नेह-दीप

⊙ ⊙ ⊙

भूतपूर्व केन्द्रीय पुनर्वास मन्त्री श्री महावीर त्यागीसे, उनके 'कचाल' द्वीपमें शुभागमनके समय नौ जनवरी, १९६६को मन्दिर और दान-पुण्यकी बातके प्रसंगमें सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाका परिचय प्राप्त हुआ था। इसके पहले मुझे उनकी कोई जानकारी नहीं थी। इतनी दूर इन उपेक्षित द्वीपोंसे, जो कालापानीका भी कालापानी है, कैसे परिचय हो सकता था?

मैंने सेठजीसे एक मन्दिर बनवानेके लिए सहायताकी याचना की। उन्होंने शीघ्र ही आठ सहस्र रुपये दान देकर हमें कृतार्थ किया। हम इस द्वीपके वासी उनकी इस उदारता तथा ईश्वर-निष्ठाको कभी नहीं भूल सकते। एक सुदूरवर्ती स्थानके अपरिचित लोगोंको ऐसी सहृदयता और अपनापन पाकर जो आनन्द प्राप्त हुआ, वह शब्द-विवरणसे परे है। उसे केवल अनुभव किया जा सकता है। सेठजीके देश-विदेशोंमें जो पुण्य-परोपकारी कार्य चल रहे हैं, वे उनकी-कीर्तिके स्मारक हैं और उनसे उनके प्रति लोगोंके हृदयमें चिर-श्रद्धा बनी रहेगी। हमारे इस छोटेसे द्वीपमें उनका स्नेह-दीप हम सबको सदा प्रकाश देता रहेगा।

खेद है कि मुझे इस महापुरुषके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका। आशा ही नहीं, वरन् विश्वास है कि उनके सुयोग्य उत्तराधिकारी भी उनके इस पवित्र कार्यको दृढ़तापूर्वक चलाते रहेंगे।

●

भिक्षु चमनलाल

उदार चरित : उदात्त व्यक्तित्व

⊙ ⊙ ⊙

मैं लगातार ४५ वर्षतक सेठजीका प्रेमपात्र होनेका गौरव प्राप्त कर चुका हूँ। उनके-जैसा सादगी-पसन्द, ईमानदार, सुसंस्कृत और उदारमना व्यापारी मैंने दूसरा नहीं देखा। उन्हें दानवीर सेठ जुगलकिशोरके नामसे पुकारा जाता था, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। वे महान् समाजसुधारक थे और हिन्दू-समाज तथा आर्यजनोंमें वे जातिभेद नहीं मानते थे। वे सच्चे आर्य थे अर्थात् उनका रोम-रोम महान् था। मैं सैकड़ों बार उनसे मिला और अनेक बार बहुत-बहुत दूरतक मुझे वे घुमाने ले गए। वहाँ "प्राचीन अमेरिका पर हिन्दू-प्रभाव" विषयक मेरे विवरणोंको वे बड़ी दिलचस्पीके साथ सुनते थे।

उन्होंने हज़ारों भारतीयों तथा हज़ारों विदेशियोंको भी सहायता दी। सहायताके लिए की गयी किसी ऐसी माँगके सम्बन्धमें मुझे जानकारी नहीं, जो सेठजीने स्वीकार न की हो। घण्टे भरके भीतर वे हजारों ही नहीं, वरन् लाखों रुपये दान कर दिया करते थे। विदेशियोंको वे हरदम छात्रवृत्तियाँ देकर सहायता किया करते थे।

तीस वर्ष पूर्व डॉक्टर इवान्स वेंज़ नामक लब्धप्रतिष्ठ लेखकने मुझसे अनुरोध किया कि उनका परिचय सेठजीसे करा दूँ। वह लड़ाईका जमाना था और उस समय विदेशोंसे वित्तीय सहायता दुर्लभ थी। सेठजीने उन्हें योरोप जानेके लिए मेरे द्वारा ३,००० रुपये पहुँचवाये। डॉक्टर वेंज़ने तिब्बत पर बहुत कुछ लिखा। युद्धकालमें जूडिथ टाइबर्ग नामक एक अमेरिकी छात्राको संस्कृत पढ़नेकी इच्छा थी। मैंने सेठजीको सहायताके लिए लिखा। उन्होंने उसे केवल अध्ययन ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारतकी यात्राके लिए भी उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता दी और साथ-ही-साथ कई साड़ियाँ भी प्रदान कीं। इस समय वही छात्रा अमेरिकामें साँस्कृतिक जगत्की बड़ी प्रभावशालिनी नेता हैं और वहाँ एक आश्रमको भी चलाती हैं।

भारत-स्थित प्रथम अमेरिकी राजदूत डॉक्टर विलियम फिलिप्सको बिरला मन्दिरमें जोरदार विदाई दी गयी थी। इस विदाई-समारोहमें दूतावासके सभी अधिकारियों और पत्रकारोंको छः हजार रुपयेसे अधिकके उपहार दिए गए थे।

बिरलाजी विदेशी दूतावासोंके लिए अलग एक साँस्कृतिक विभाग खोले हुए थे। भारतीय विषयोंके अध्ययनके लिए वे बाली, गायना, ट्रिनिडाड, फीजी, जापान, चीन, थाईलैण्ड आदि अनेक देशोंको आर्थिक अनुदान देते रहते थे। हर मास विदेशोंमें सैकड़ों पुस्तकें भी निःशुल्क भिजवाया करते थे। उनके सौम्य, गम्भीर मुख पर हरदम एक मधुर मुस्कान खेलती रहती थी। वे उदार चरित और उदार व्यक्तित्वपूर्ण पुरुष थे।

●

* * *

श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी

पुरुषपुङ्गव

⊙ ⊙ ⊙

जन्म कर्मवयो रूपं विद्यैश्वर्यं धनादिभिः।
यदि यस्य न भवेत् स्तम्भस्तत्रायंमदनुग्रहः॥
—श्रीमद्भागवत

विधिके सुनिकें बचन कहैं हरि हँसिके बानी।
ब्रह्मन, तुम सरवज्ञ वेदवित् पण्डित ज्ञानी॥
जनम, करम, ऐश्वर्य, अवस्था अरु सुन्दर तन।
विद्या, धन ये सर्वहिं प्रशंसित जगमें हैं गुन॥
इन सबमें मद रहतु है, धनमद अति ही प्रबलतम।
धनमदमें उन्मत्त नर, नेत्र रहित हूँ अन्त सम॥
—भागवत चरित

सभी धर्मशास्त्रकारों, नीतिकारोंने विद्या-मद, धन-मदको गर्हित वतलाया है। विद्या विवादके लिए नहीं, विवेकके लिए और धन मदके लिए नहीं, परोपकारके लिए उचित और उत्तम माना गया है। यदि कोई धन पाकर भी मदान्ध न हो, विनम्र बना रहे, तो समझना चाहिए कि वह भगवान्‌का विशेष कृपापात्र है।

हमारे श्री जुगलकिशोरजी बिरला उन्हीं भगवत्-कृपापात्र पुरुषपुंगवोंमेंसे थे। सचमुच वे विरला ही थे। ऐसे पुरुषरत्न युग-युगान्तरोंमें ही कहीं जाकर उत्पन्न होते हैं। मेरा सम्पर्क उनसे बहुत पुराना था। मेरे मनमें उनका अत्यधिक आदर था और वे भी मुझसे अत्यन्त स्नेह करते थे। दिल्लीमें स्वर्गीय लाला सूरज-नारायणजीके यहाँ, जहाँ मैं ठहरा करता था, उन्होंने कह रखा था कि 'ब्रह्मचारीजी जब भी आया करें, मुझे फोन कर दिया करो।' मेरे आनेका समाचार सुनते ही वे तुरन्त आ जाते थे। यदि किसी अन्य साधारण गरीबके यहाँ ठहरता, तो वहाँ भी निःसंकोच आ जाते और घण्टों बातें करते रहते थे। उनकी बातोंका एक ही विषय रहता : 'देशमें धर्मराज्य कब होगा?' धर्मराज्यसे उनका अभिप्राय था हिन्दू जातिका उत्थान, विद्या-लयोंमें धर्मकी शिक्षा, गो-ब्राह्मण-साधुओंका सम्मान, देवालयोंकी प्रतिष्ठा, सदाचार-सद्‌गुणोंका विकास। मैं जब भी मिलता, वे पूछते : 'आपको कुछ अनुभव हुआ, कब तक धर्मराज हो जाएगा? समाधिमें आपको कुछ प्रतीति हुई, भगवान्‌ने आपसे कुछ कहा? हिमालयमें आपको कोई पहुँचे हुए सन्त मिले, उनसे आपकी क्या बातें हुईं?' आदि-आदि।

उन्हें जीवनभर एक ही चिन्ता व्यग्र बनाये रही : 'हिन्दू-जातिका उद्धार कैसे हो !' हिन्दुओं पर कहीं अत्याचारकी बात सुनते ही वे ऐसे तड़पते, जैसे जलके बिना मछली। कोई उनको सुना देता कि अमुक स्थान-पर इतने विधर्मी बने हिन्दू पुनः स्वधर्ममें लौट आए, तो उन्हें अपार हर्ष होता। वे अनाथ-विधवा-दुखी स्त्रियों-को बहकाकर विधर्मी बना लेनेसे अत्यन्त दुखी होते थे। वनवासी लोगोंको जो विदेशी मिशन नाना प्रलोभन देकर ईसाई बना लेते हैं, उससे बड़े क्षुब्ध रहते। राँचीमें इसकी रोकथामके लिए उन्होंने एक संस्था भी बनायी थी। जिन बातोंसे हिन्दू-जातिका उत्थान हो, हिन्दुत्वकी रक्षा हो, उसके लिए वे सतत् प्रयत्नशील रहते, करोड़ों रुपये वे इन कार्यों पर व्यय करते रहते। स्थान-स्थान पर विशाल मन्दिरोंका निर्माण, साधु-सन्तोंके लिए अन्नक्षेत्र खुलवाना, गरीबोंके लिए अन्न-वस्त्र-भोजन, रोगियोंके लिए औषध आदिका प्रबन्ध करना और विद्या-र्थियोंके लिए विद्यालय बनवाना, अध्ययन-शुल्क, पुस्तकों आदिका प्रबन्ध करना उनके सहज कार्य थे। विदेशोंमें भी जहाँ-जहाँ हिन्दू बसे हैं, वहाँ-वहाँ मन्दिर बनवाना उनके जीवनका लक्ष्य-सा रहा है। कई बार उन्होंने मुझसे कहा : 'आप विदेशोंमें अपने प्रचारक भिजवाएँ। विदेशोंमें लोग अपने धर्मको भूलते जा रहे हैं।' इसीलिए विदेशोंमें भी उनकी बड़ी ख्याति थी, लोग उन्हें 'बिरला महात्मा'के नामसे जानते थे। सुनते हैं कि उनके सबसे छोटे भाई एक बार जापान गए। उनसे वहाँके कुछ लोगोंने पूछा : 'आप उन बिरला महात्माको जानते हैं, जो भगवान्के मन्दिर बनवाते रहते हैं?' छोटे बिरलाजी ने आँखोंमें आँसू भरकर कहा : 'वे मेरे पूजनीय बड़े भाई ही हैं।"

सचमुच वे महात्मा ही थे। मुझे ऐसा लगता है, जैसे ध्रुवजी पूर्वजन्ममें बड़े भारी तपस्वी-महात्मा थे और एक राजकुमारसे स्नेह होनेके कारण क्षणभरके लिए उनके मनमें राजकुमार होनेकी वासना उत्पन्न हुई, जिसके फलस्वरूप वे राजकुमार होकर जनमे और पाँच वर्षकी स्वल्पावस्थामें ही उन्होंने ६ महीनेकी साधनासे भगवत्-साक्षात्कार कर लिया। इसी प्रकार श्री जुगलकिशोर बिरला भी पूर्वजन्ममें कोई योगभ्रष्ट महात्मा रहे होंगे और उनके मनमें धर्माचरणकी वासना रही होगी, इसीलिए उन्होंने इतने श्रीमान् घरमें जन्म लिया और दान, धर्म, दया, मन्दिर-निर्माण इत्यादि सदिच्छाओंको पूर्ण कर लिया।

उनके पूज्य पिता राजा बलदेवदासजी बिरला बहुत वर्षोंसे काशीवास करते थे। विद्वान् ब्राह्मणोंके बड़े भक्त थे और उनको बराबर दान देते ही रहते थे। उन्होंने अपने पुण्य-प्रतापके फलस्वरूप श्री जुगलकिशोरजी जैसा योग्यतम ज्येष्ठ-श्रेष्ठ सुपुत्र प्राप्त किया। पिताकी स्वाभाविक इच्छा होती है कि उसका पुत्र उससे भी बड़ा यशस्वी हो। श्री जुगलकिशोरजीने अपने पिताकी इच्छा पूर्ण कर दी। ये साधुओंके विशेष प्रेमी थे। जहाँ कहीं भी श्रेष्ठ साधुका आगमन सुनते, दौड़े जाते और यथासम्भव उनकी सेवा करते। उन्होंने स्वर्गाश्रम ट्रस्टका सभापतित्व इसीलिए स्वीकार किया कि वहाँ सैकड़ों साधुओंको नित्य भोजन दिया जाता है। भोजन-दानमें उन्हें बड़ा आनन्द आता था। शास्त्रका वचन है :

> दातृत्वं प्रियवक्तृत्वं धीरत्वं उचितज्ञता।
> अभ्यासात् नैवलभ्यन्ते चत्वारो सहजागुणाः॥

अर्थात् दान देनेमें उत्साह, मधुर भाषण, धीरता और उचितज्ञता - ये सद्गुण मनुष्यमें अभ्याससे नहीं आते, अपितु चारों जन्मजात होते हैं। बिरलाजीमें ये चारों गुण सहज-सुलभ थे।

इधर कुछ वर्षोंसे अवकाश प्राप्त कर लेनेके कारण उन्हें कोई निजी व्यापारिक आय नहीं रह गयी थी। मुझसे एक दिन बातों-ही-बातोंमें उन्होंने कहा था : 'महाराज, अब मैंने व्यापार करना छोड़ दिया है। भाइयोंसे

* * *

कहूँ तो वे सब-कुछ दे सकते हैं; किन्तु मैं उनसे कहना नहीं चाहता। कुछ ट्रस्ट हैं, उन्हींसे उनके नियमोंके अनुसार थोड़ा-बहुत दे-दिला देता हूँ।' ये ट्रस्ट भी उन्हींके द्वारा स्थापित हैं। ऐसे उदारमना व्यक्तिके पास अपनी निजी सम्पत्ति रह भी नहीं सकती : 'परोपकाराय सतां विभूतयः।' वे सर्वप्रिय थे, सर्वहितैषी थे। छोटेसे-छोटे आदमीसे भी बड़े प्रेमसे बातें करते, उसका सुख-दुख सुनते और यथाशक्ति उसकी सहायता करते।

मुझे एक प्रतिष्ठित सज्जनने एक रोचक कथा सुनायी थी। एक बार बाबूजी कहीं जा रहे थे। मार्गमें एक मोची और उसके एक ग्राहक में वादविवाद हो रहा था। वे तुरन्त वहाँ ठहर गए और मोचीसे पूछा तो उसने कहा : 'सेठजी, मैंने इनका जूता गाँठा है। आठ आने तय हुए थे, अब ये चार आना ही दे रहे हैं।' इस पर बिरलाजीने कहा : 'अच्छा, तुमने इनके जूतेमें जितनी सिलाई की है, उसे फाड़कर लौटा दो और यह एक रुपया लो।' उसे एक रुपया दे दिया और अपने सामने जूतेको फड़वाकर लौटवा दिया।

बिरलाजीके प्रत्येक कार्यमें दानशीलता, दीनवत्सलता और धर्मपरायणता सन्निहित रहती थी। ऐसे नररत्न कभी-कभी ही होते हैं। तरुण अवस्थामें ही उनकी धर्मपत्नीका स्वर्गवास हो गया। लोगोंने दूसरा विवाह करनेको बहुत कहा, किन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया और शेष सम्पूर्ण जीवन एक सदाचारी, संयमी संन्यासीकी भाँति बिताया। सुनते हैं, अपने कमरेमें वे किसी भी स्त्रीको आने नहीं देते थे। अपनी बहनों, बेटियों और बहुओंसे भी, जो उन्हें प्रणाम करके आशीर्वाद लेने आतीं, यथासम्भव कमरेके बाहर ही मिलते थे। वे इतना धर्म-वैभव होनेपर भी जलमें कमलके समान निर्लेप ही रहे। उनका जीवन बहुत ही सादा था। एक मोटर रखते, एक नौकर रखते, शुद्ध-सात्विक अल्पाहार करते और स्वाध्यायमें लगे रहते। पैसेका मद उन्हें विचलित नहीं कर सका। मानों इन्हींको लक्ष्य करके भगवान्ने श्रीमद्भागवतमें लिखा हो :

मानस्तम्भनिमित्तानां जन्मादीनां समन्ततः।
सर्वश्रेय प्रतीपानां हन्तमुह्येन्नमत्परः॥

जे जन सब कछु त्यागि सरन मेरी महँ आवें।
ते तजि सब अभिमान निरन्तर मम गुन गावें॥
जाति बरन अभिमान करें नहि धन महँ ममता।
परहितमें नित निरत तजें सब मद उद्धतता॥

त्यागि मान मद सबनि महँ, निरखें श्री भगवान् हैं।
सब अनर्थके मूल ये, मिथ्या ही अभिमान हैं॥

श्रीपुरुषोत्तमलाल गोस्वामी 'राजाजी'

यतोधर्मस्ततो जयः

⊙ ⊙ ⊙

बिरलाजीका दृढ़ विश्वास था, **'यतो धर्मस्ततो जयः'** : जहाँ पर धर्म है, वहीं पर जय है। धर्मके प्रिय पुजारी बिरलाजीसे उनके महाप्रयाणके कुछ ही दिन पूर्व मिलनेका सुयोग प्राप्त हुआ था। सीधा-सादा वेश और सहज-सरल स्वभाव देखकर श्रद्धा हुई। उन्होंने प्रश्न किया : "जब कि सम्पूर्ण शिक्षित-वर्ग धर्मकी शिक्षासे विरत होता चला जा रहा है, ऐसी दशामें क्या हिन्दू-धर्म बच पायेगा महाराज ?" उन्होंने आगे कहा था : "जबतक मनुष्य धार्मिक नहीं होगा, उसका जीवन सुखी नहीं हो सकता। राष्ट्रकी उन्नति भी धर्मसे ही हो सकती है। क्योंकि धर्म ही मनुष्यको मानवीय सद्गुणोंसे अलंकृत करता है।"

मैंने कहा : "सर्वशक्तिमान् भगवान्की इच्छामात्रसे सभी कुछ सम्भव है। प्रह्लादके जीवन-कालमें भी अधर्मकी वृद्धि हो गयी थी। उस समय भी ऐसा ही लगता था कि अब धर्मकी रक्षा कैसे होगी; किन्तु धर्म-रक्षक भगवान्की कृपासे उस कालमें भी धर्मकी रक्षा हुई थी।"

मेरे कथनको सुनकर उनके मुखपर जो आनन्दमयी आभा दीख पड़ी, वह आज भी मुझे स्मरण है। इस धर्म-प्रधान देशकी यह धर्ममयी विभूति धर्मकी आराधना करके सभीको धर्मकी शिक्षा दे रही है और देती रहेगी।

* * *

सन्त श्रीतुकड़ोजी महाराज

धर्मधुरीण बिरलाजी

⊙ ⊙ ⊙

श्रीगीतामें पढ़ा है : शुचीनाम् श्रीमतांगेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते। ठीक उसी तरह यह एक राज-वैभवी कुबेर पात्रका परिचय है। मानव-जीवनमें इतना सत्कार्य इस हजार-दो हजार सालकी अवधिमें शायद ही किसीने किया हो, जितना धर्म-कार्य श्रीमान् सेठ जुगलकिशोरजीने किया। मैंने उनको नजदीकसे बैठकर अनेक बार उनकी धर्मचर्चा, भगवान् पर निष्ठाकी बात और गरीबोंकी सहायताके बारेमें देखा और सुना है। इतना धन होनेपर भी इतनी सादगी और इतना नियमित रहन-सहन शायद ही आजका कोई श्रीमन्त करता हो। मगर मेरी नजरमें नहीं आया, महापुरुषोंकी वाणीको अतिश्रद्धासे सुनकर जिसका हृदय अष्ट सात्विक भावोंसे कम्पित हो उठता है और बिना रुकावट जिसकी वृत्ति दान, धर्म करनेमें गंगाकी धाराके समान प्रवहमान रहती है। केवल दिल्लीमें ही नहीं, भारतके अनेक शहरोंमें, तीर्थोंमें, बल्कि विदेशोंमें भी लोग हिन्दू-धर्मसे प्रेरित हों, अपने धर्मकी श्रद्धा-भावसे आराधना करें, घर-घरमें वीर, शूर, सन्त, धार्मिक, दानी निकलें; इसकी चिन्ता स्वर्गीय बिरलाजी साथ-ही-साथ किया करते थे। वे कुशल व्यापारी थे, धन कमानेमें भी किसीसे कम नहीं थे और न दान देनेमें भी। मैंने कई बार देखा है कि एक बार कोई वचन कह देनेके बाद वे अपना फर्ज अदा कर देते थे।

हिन्दू-धर्म दिन-पर-दिन नष्ट-भ्रष्ट हो रहा है, इसकी उनको बहुत ही चिन्ता थी। अपनी जीवन-चर्या उन्होंने हमेशा धर्मवत् रखी। अपने आध्यात्मिक संस्कारोंका परिचय उन्होंने काफी सन्तोंको दिया था। किसीने कहा था कि "किसी भी ऐरे-गैरे साधुओंको आप नमस्कार कर लेते हैं और उनको भोजनादि भेंट करते हैं, क्या ये सब साधु ही हैं ?" तब बिरलाजीने उत्तर दिया, "मालूम नहीं भगवान् किस रूपमें किस साधुके वेशमें दर्शन देकर हमारा उद्धार कर दें। इसीलिए हमें सबको ही अपनी श्रद्धासे फूल-फल देते रहना चाहिए।"

दानकी वृत्ति एक साधारण मजदूरमें भी होनेसे काफी काम करती है। वैसी ही वृत्ति आजके श्रीमन्तोंमें अगर हो सके, तो उनकी रोटी उनको जनम-जनम सुख देगी, इसमें सन्देह नहीं है। लेकिन प्रायः आजके धनी-मानियोंमें दानी प्रवृत्तिका अभाव है। यह बात स्वर्गीय बिरला जुगलकिशोरजीमें हमने बिलकुल नहीं पायी थी।

उन्होंने देखा कि आजकी राष्ट्रीय सरकार धर्मकार्यमें, हिन्दू-संस्कृतिमें बहुत ही कम ध्यान दे रही है, इसके बारेमें वे सदा ही चिन्तित रहते थे। फिर भी उन्होंने अपने हाथों लाखों-करोड़ों रुपये लगाकर धर्म-मन्दिर जगह-जगह स्थापित कराए। उनमें पूजा-उपासनाकी पूर्ण व्यवस्था करायी। उन्होंने पण्डित मदनमोहन मालवीयजीसे, सनातन-हिन्दू-धर्म सभासे, हिमालयकी गोदमें लीन योगी-तपस्वियोंसे, महात्मा गान्धी, वीर

सावरकर - जैसे साधु-शूर, राजनीतिक पुरुषोंसे अपना घनिष्ठ सम्बन्ध रखकर धर्म-कार्यके लिए प्रेरणा प्राप्त की। हिन्दू-धर्मका विकास केवल सनातनी लोगोंको पास रखनेमें ही नहीं होगा, यह समझ कर बिरलाजीने भगवान् बुद्धके माहात्म्यको, सिखोंके गुरु ग्रन्थ साहबको, जैन-धर्ममें अरहन्तको बल्कि अछूत-छूत सन्तको अपनानेका कार्य बड़ी तेजीसे चलाया था। मैं दिल्लीमें होनेवाले एक मुकदमेमें जब भारत साधु-समाजके कार्यके लिए और धार्मिक कीर्तन-प्रवचनके लिए जाता था, तब उनके साथ बात करनेका योग आता था। उसी समयसे मेरे मनमें उनके प्रति स्नेह-भावना उत्पन्न हो गयी थी, जिसे मैं भूल नहीं सकता।

●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार

पुण्यश्लोक भाईजी

○ ○ ○

पार्थ! नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति॥
प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥
—गीता ६।४०-४१

भगवान् श्रीकृष्णने कहा : 'अर्जुन! (पूर्वजन्ममें साधनामें लगा हुआ जो किसी हेतुसे अपने पथसे विचलित हो जाता है) उस पुरुषका न तो इस लोकमें और न परलोकमें ही कभी पतन होता है। कोई भी शुभकर्म (साधन) करनेवाला कभी दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता। वह योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानोंके लोकोंको (दिव्यलोकोंको) प्राप्त होकर दीर्घकाल तक वहाँ रहनेके पश्चात् पवित्रतम श्रीमान् पुरुषोंके घरमें जन्म लेता है।'

स्वनामधन्य श्रद्धेय पूज्य भाईजी ऐसे ही एक महान् पुण्यकर्मा 'योगभ्रष्ट' आदर्श पुरुष थे। उनमें एक ही साथ इतने विलक्षण तथा साधुजन स्पृहणीय सद्‌गुणोंका समूह विद्यमान था और कुछ ऐसे परस्पर-विरोधीसे दीखनेवाले सद्‌भावोंका सुन्दर समन्वय था, जिसे देखकर अच्छे-अच्छे सुधी-जनोंको आश्चर्यचकित और श्रद्धावनत होना पड़ता था। वे भगवान् श्रीकृष्णके भक्त थे; पर जितना आकर्षण उन्हें अनन्त समर-विजयी असुरोद्धारक धर्मरक्षक तथा गीतागायक रूपके प्रति था, उतना ब्रजके नृत्यगीत-मधुरिमामय मुरली-मनोहरके प्रति नहीं। उनमें श्रीकृष्णकी दिव्य प्रज्ञा तथा विलक्षण राजनीति, भगवान् बुद्धकी प्रतिभा, भगवान् महावीर की अहिंसा, गुरुगोविन्दसिंहकी धर्मरक्षार्थ बलिदानकी भावना, सन्तोंका आदर्श-त्याग, देशके लिए मर-मिटनेवाले वीरोंका वीर-भाव, कर्णकी उदारता, शिविकी-सी शरणागतवत्सलता, रन्तिदेवकी-सी दया, प्रह्लादकी-सी परम विश्वासमयी आस्तिकता, अर्जुनकी-सी निष्ठा, भीष्मका-सा विश्वास और हरिश्चन्द्रकी-सी धर्मप्रियता एक ही साथ देखनेको मिलती थी।

वे हिन्दू थे, वे सनातनधर्मी थे; पर उनका वह 'हिन्दुत्व' तथा 'सनातनधर्म' वास्तवमें बड़ा विशाल-'आत्मधर्म' था। जैसे एक ही विशाल वटवृक्षकी असंख्य शाखाएँ होती हैं, वैसे ही एक नित्य सनातन धर्मकी-आत्मधर्मकी ही विभिन्न शाखा-प्रशाखाएँ हैं-बौद्ध, जैन, आदि-आदि। इसीलिए श्री जुगलकिशोरजीके द्वारा निर्मित मन्दिरोंमें जहाँ भगवान् लक्ष्मीनारायण, भगवान् शंकरकी मूर्तियाँ हैं, वहाँ बुद्ध भगवान्, महावीर स्वामी, गुरु नानक आदिकी मूर्तियाँ भी हैं और इस नाते वे विश्वके तमाम बौद्ध देशोंको हिन्दूदेश ही मानते तथा वैसा ही उनके साथ उदारताका व्यवहार-वर्ताब करना चाहते थे और किया करते थे।

* * *

श्री अरविन्दने 'देशभक्ति'की व्याख्या करते हुए लिखा था कि 'देशात्मबोध' ही देशभक्ति है - देशके साथ सर्वथा एकात्म्य। इसी प्रकार श्रीजुगलकिशोरजीका हिन्दूधर्मके साथ तादात्म्य था। जुगल-किशोर जी माने हिन्दूधर्म, हिन्दूधर्म माने जुगलकिशोर जी बिरला। उनका जन्म-जीवन, जीवनके सारे कार्यकलाप धर्मके लिए ही थे - धर्मरूप ही थे।

धनकी तीन गति मानी गयी हैं : दान, भोग, नाश। सर्वोत्तम गति है 'दान'। श्रीजुगलकिशोरजी धन कमाते ही थे दानके लिए, वरन् सच्ची बात तो यह है कि उनका प्रत्येक विचार, प्रत्येक चिन्तन, प्रत्येक कर्म होता था सहज ही हिन्दूधर्मके लिए। धन उनकी अपनी वस्तु ही नहीं था। वह कमाया जाता था हिन्दू-धर्मके लिए और खर्च होता था हिन्दूधर्मके लिए। वे हिन्दूधर्मकी सजीव प्रतिमा थे।

सबसे पहले सन् १९०८के लगभग कलकत्तेमें मैंने उनके दर्शन किये थे। उस समय हम लोग कुछ लड़के देशका कुछ काम करना चाहते थे। हम लोगोंको उस कार्यमें दो महानुभावोंसे बड़ी प्रेरणा मिलती थी : एक थे पिलानीके ही महामना सन्त श्रीलच्छीरामजी मुरोदिया और दूसरे श्रद्धेय श्रीजुगलकिशोरजी। उनकी गद्दी थी काली गोदाममें पहले तल्ले पर। उस काली गोदाममें ही उसके एकदम ऊपरके तल्ले पर हम लोगोंका एक 'हिन्दू क्लब' था, जिसमें रक्षाके लिए तथा सेवार्थ बल प्राप्त करनेके लिए व्यायामका अभ्यास किया जाता था एवं देशकी सेवाके लिए अन्यान्य प्रकारसे प्रेरणाएँ दी जातीं थीं। उसमें श्रीजुगलकिशोरजीका सक्रिय आशीर्वाद प्राप्त था।

तबसे अन्ततक श्रीजुगलकिशोरजीके साथ मेरा स्नेह-सम्बन्ध उत्तरोत्तर प्रगाढ़ होता गया। सन् १९१६में 'भारत रक्षा कानून'के अनुसार कुछ मारवाड़ी युवक पकड़े गये थे। उनमें मैं भी था और उसके कारण मुझे लगभग पौने दो वर्ष बाँकुड़ा जिलेके शिमलापाल नामक स्थानमें नजरबन्द रहना पड़ा था। उस समय सरकारका बड़ा आतंक था समाजमें, और इससे जुगलकिशोरजीको भी तटस्थ-सा रहना पड़ा था। सन् १९१८में मुझे बंगाल सरकारसे बंगाल छोड़नेका आदेश मिला और मैं राजस्थान होता हुआ बम्बई चला गया। फिर तो श्रीजुगलकिशोरजीके साथ आत्मीयताका सम्बन्ध बढ़ने लगा और गोरख-पुर आकर गीताप्रेसका काम करने लगनेके बाद तो वह विशेष बढ़ गया। वे मेरे लिए श्रद्धेय तो थे ही। अब तो मेरे सचमुच बड़े भाई हो गये। मेरी देखरेख-सँभाल करने लगे। समय-समय पर मुझे उनसे बड़ी ही सुन्दर सत्प्रेरणा मिलने लगी। मैं जब-जब दिल्ली जाता, उनके दर्शन करता। फिर तो उनका मेरे प्रति ममत्व यहाँतक बढ़ गया कि वे मेरे तथा मेरे कार्यके सम्बन्धमें चिन्तन करने लगे और समय-समय पर उनकी वह आत्मीयता इस रूपमें प्रत्यक्ष प्रकट होती कि देखनेवालोंको आश्चर्य होता।

मैं जब-जब मिलता, वे हिन्दूधर्मके बारेमें पूछते, कहते : "कोई सन्त-महात्मा मिले थे क्या, हिन्दू-धर्मके भविष्यके लिये कुछ कहते थे क्या ? हिन्दूधर्मका क्या होगा ?" आदि-आदि। एक ही चिन्ता - एक ही लगन। उन्होंने स्वयं तो हिन्दू-धर्मकी आजीवन अप्रतिम सेवा की ही, असंख्य लोगोंको विविध प्रकारसे प्रेरित किया हिन्दू-धर्मकी सेवाके लिए और सत्य कहा जाय तो यह कहनेमें भी अत्युक्ति नहीं, क्योंकि यह मेरी अपनी जानी हुई सच्ची बात है कि देशके बड़े-से-बड़े नेताओंको हिन्दू-धर्मकी सेवाके लिए उनसे प्रबल तथा अनिवार्य प्रेरणा मिलती रही है।

मेरे प्रति उनका जो स्नेह था, उसका भी प्रधान कारण यही था कि मेरे द्वारा हिन्दू-धर्मकी कुछ सेवा हो रही है, ऐसा वे मानते थे और मुझे समय-समय पर बहुत उत्साहित करते थे तथा कभी-कभी किसी प्रकारकी भूल होने पर बड़ी मीठी भाषामें उलहना भी दिया करते थे। गीताप्रेसके प्रति भी इसी कारण

* * *

उनका अगाध स्नेह था। वे बार-बार गीताप्रेसकी स्थितिके सम्बन्धमें पूछा करते, उसकी उन्नतिके लिए प्रेरणा करते। कुछ समय पूर्व गीताप्रेसके सम्बन्धमें उन्होंने सुना कि उसमें घाटा हो रहा है तथा कुछ बाधाएँ आ रही हैं, तो वे बहुत चिन्तित हुए। मुझे सन्देश कहलवाया। हमारे ट्रस्टके मन्त्री महोदयसे कलकत्तेमें उनकी ओरसे पूछताछ की गयी तथा सहयोग-प्रस्ताव किया गया। मैं दिल्लीमें मिला, तब मुझसे बहुत-सी बातें पूछीं तथा अपनी सम्मति दी। उस समय उन्होंने कहा : "हनुमानजी, (मुझे वे प्रेमसे इसी नामसे पुकारा करते थे) यदि अर्थकी तथा व्यवस्थाकी कमीसे गीताप्रेसके कार्यमें कुछ बाधा आ रही हो, तो अपने ट्रस्टियोंसे पूछ लो। वे चाहें तो प्रेसकी व्यवस्थाका तथा उसमें आवश्यक पूंजी लगानेका सारा काम हमारे जिम्मे दे दिया जाय। गीताप्रेसकी नीतिके अनुसार आप लोगोंके द्वारा स्वीकृत साहित्यका प्रकाशन होता रहेगा, 'कल्याण' चलता रहेगा।" मैंने कृतज्ञताके साथ उनसे यही कहा : "ऐसी कोई भी बाधा नहीं है, आपका शुभाशीर्वाद चाहिए, जो सदा प्राप्त है ही।"

श्रीजुगलकिशोरजीकी स्मृति पुण्यमयी है। जब-जब मुझे उनकी स्मृति आती, मैं उसमें एक पवित्र हिन्दू-धर्मकी ज्योतिके पुण्यदर्शन करता। आज उनकी नश्वर देहके परित्यागके बाद भी उनकी स्मृति वैसी ही महान् पुण्यमयी बनी हुई है - और अब तो वह बड़े ही पवित्र रूपमें बार-बार अनेक रूपोंमें उदय होकर मुझे सात्विक शक्ति तथा प्रेरणा दिया करती है। मैं सदा ही उनका भक्त रहा हूँ, अब भी हूँ ही और सदाकी भाँति ही उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पण करता हूँ।

●

श्रीकन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

भाईजी एक धर्मात्मा-पुरुष

⊙ ⊙ ⊙

तेईस जून, १९६७ को बिरला-बन्धुओंमें ज्येष्ठ श्री जुगलकिशोरजी बिरला ८४ वर्षकी वरिष्ठ आयुमें दिवंगत हो गये। वे अपने परिवार तथा मित्रोंमें भाईजीके नामसे पुकारे जाते थे।

मैं सर्वप्रथम उनसे १९४२–४३में बिरला-भवन, ५, अल्बुकर्क रोड, नयी दिल्लीमें मिला था। उस समयसे लेकर १९४८ तक, जब कि "कॉन्स्टीटुएण्ट असेम्वली" (विधान-परिषद्)के एक सदस्यके नाते मेरे आवासकी व्यवस्था २, विण्डसर प्लेसमें हो गयी, नयी दिल्ली आनेपर बिरलाजीने मेरे आतिथ्यसत्कारका सदा ध्यान रखा।

बिरला-भवन अपने उद्यानके साथ एक सुविशाल भवन है। उसकी साज-सज्जा बहुमूल्य होते हुए भी सुरुचिपूर्ण और आधुनिक होते हुए भी आडम्बरविहीन है।

अपने निर्माणके दिनसे ही बिरला-भवन वर्तमान भारतके कुछ महान् निर्माताओंको, जिनमें लाला लाजपतराय, पण्डित मालवीय, गान्धीजी और सरदार बल्लभ भाई पटेल-जैसे व्यक्ति सम्मिलित रहे हैं, आतिथ्य प्रदान करता रहा है। तथ्य तो यह है कि जबतक हमने स्वतन्त्रताकी लड़ाई नहीं जीती, बिरला-भवन ही वह स्थान था, जहाँ राष्ट्रके नेता एकत्र होते थे और राष्ट्रीय भविष्यके सम्बन्धमें सम्मिलित निर्णयों पर पहुँचते थे।

इस भवनका एक कक्ष अवश्य ही अपवाद-स्वरूप था। इसमें किसी प्रकारकी सजावट नहीं थी, न कोई आधुनिक उपकरण ही इसमें था। बिरला-भवन, जो विविध गतिविधियोंका केन्द्र था, जहाँ कान्फ्रेंसें जुटी रहती थीं, जहाँ सम्भ्रान्त अतिथियोंकी भीड़ लगी रहती थी, वहाँ उसका यह कक्ष अपनी असाधारण सादगीमें सबसे अलग ही था और अपने स्वामीकी रुचिके अनुरूप इसकी विरलता सदा संरक्षित रही। यही कक्ष भाईजीका निवास-कक्ष था।

भाईजी आधुनिक विचार-धारासे प्रभावित हिन्दू जीवन-प्रणाली, जिसके अनुयायी अन्य बिरला-बन्धु थे; सर्वथा पृथक् थे। वे सदा, यहाँ तक कि भोजनके समय भी, टोपी पहनते थे,। उनकी धोती मारवाड़ी फैशनमें घुटनोंके ठीक नीचे तक ही टँगी होती थी। उनकी आँखें छोटी किन्तु मर्मभेदिनी थीं, जो कभी-कभी आश्चर्यजनक दीप्तिसे मुस्करा उठती थीं। वे बहुत कम बोलते थे, किन्तु जब बोलते थे तो केवल अपने दृढ़ आदर्शों और पवित्र उद्देश्योंके सम्बन्धमें ही बोलते थे। उनके वे आदर्श और उद्देश्य थे - हिन्दू-जातिमें नव-जीवन-का संचार और उसकी सेवा।

* * *

उनकी पत्नी १९२९में दिवंगत हो गयी थीं। उन्होंने पुनः विवाह करनेकी बात कभी नहीं सोची। उनके सन्तान न थी। अकेले ही एटलसकी भाँति उन्होंने विशाल हिन्दू-जातिका भार अपने कन्धों पर उठा रखा था। उन्होंने कभी अपना विज्ञापन नहीं चाहा, न किसीके प्रति उन्होंने कभी शिकायत की और न कभी उनमें किसी प्रकारकी प्रतिष्ठाकी भूख जगी।

उनका जीवन सादा, तपोमय और अपने लक्ष्योंके लिए समर्पित था। उन्हें देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि वे कभी कुशल और सफल व्यापारी रह चुके हैं।

वे अपनी कम उम्रमें ही अपने पिता स्व० सेठ राजा बलदेवदास बिरला द्वारा व्यापार-क्षेत्रमें लाये गये। १८ वर्षकी उम्रमें ही वे व्यापार करने कलकत्ते गये और २ वर्षकी अल्पावधिमें ही उन्होंने अपना कलकत्ता-कार्यालय खोल लिया। उनका जीवन एक कुशल, बुद्धिमान् और अध्यवसायी पुरुषका था। वे प्रतिभाके धनी थे और अपने आदर्शोंके पक्के।

जिस समय उन्होंने कलकत्तेमें व्यापार आरम्भ किया, उस समय उन्हें तत्कालीन ब्रिटिश व्यापार नीतिकी प्रतिद्वन्द्विताका सामना करना पड़ा। उस समय मैनचेस्टरको भारतमें कपड़ेके व्यापारका एकाधिपत्य मिला हुआ था। भाईजी सर्वप्रथम व्यक्ति थे, जो एशियाई देशोंके साथ व्यापार-सम्बन्ध स्थापित करनेमें आगे आये। उन्होंने वस्त्रोद्योगमें जापानके साथ सम्पर्क स्थापित किया।

चीन उन दिनों एक रहस्यमय देश बना हुआ था, परन्तु आजके सन्दर्भमें उसका अर्थ बदल-सा गया है। भाईजीने उसके साथ व्यापार-सम्बन्धकी सम्भावनाओंका परीक्षण करना चाहा। उन्होंने दो सदस्योंका एक प्रतिनिधि-मण्डल चीन भेजा और उसके लौटनेके बाद उन्होंने चीनके साथ व्यापार प्रारम्भ किया।

अर्जेण्टाइनाके साथ कड़ी प्रतिद्वन्दिताके बावजूद वे ही सर्वप्रथम भारतीय थे, जिन्होंने विदेशोंमें तिलहनका निर्यात प्रारम्भ किया।

मुझ ज्ञात नहीं कि उन्होंने व्यापारमें कितना धन अर्जित किया, किन्तु मुझे इसका कुछ अनुमान अवश्य है कि उन्होंने धर्म और मानव-कल्याणके लिए क्या खर्च किया है - यह करोड़ों की राशि तक पहुँचेगा।

यद्यपि वे एक कट्टर हिन्दू थे, फिर भी उन्होंने अस्पृश्यताको महापाप समझा। उन्होंने छुआछूतको, हिन्दू समाजको ग्रसनेवाले एक महारोग के रूपमें ग्रहण किया। जब गान्धीजीने अस्पृश्यता-निवारणका आन्दोलन प्रारम्भ किया, उसके बहुत पहले उन्होंने हरिजनोंके लिए स्कूल बनवाये थे, कूप-निर्माण कराये थे और मन्दिरोंका निर्माण कराया था।

प्राचीन मन्दिरोंके पुनरुद्धारके लिए उन्होंने बिरला जन-कल्याण ट्रस्टकी स्थापना की। उन्होंने भारत तथा उसके बाहर हिन्दुओंकी सहायताके लिए, विशेषकर प्रवासी हिन्दुओंके बीच, धर्मोपदेशकोंको भेजनेके लिए अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म-सेवासंघकी स्थापना की।

यह निश्चित रूपसे कहना कठिन है कि उन्होंने अपने जीवन-कालमें कितने मन्दिरोंका निर्माण कराया और कितनोंके पुनरुद्धारमें योग दिया।

उनके द्वारा निर्मित विशाल मन्दिरोंमें श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर, नयी दिल्ली; श्रीकृष्ण मन्दिर, मथुरा; विश्वनाथ मन्दिर, काशी (हिन्दू विश्वविद्यालय); बुद्ध मन्दिर, नयी दिल्ली; बुद्ध मन्दिर, वर्ली, बम्बई; सरस्वती मन्दिर, पिलानी; श्रीविठोबा रुक्मिणी मन्दिर, कल्याण; श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर, भोपाल और श्रीशिव मन्दिर, ब्रजराजनगर (उड़ीसा) हैं।

* * *

निकट इतिहासमें मन्दिरोंके निर्माणमें जिसने अपनी शक्ति, धन और जीवन समर्पित किया, वह थी अहल्याबाई। १८वीं शताब्दीमें उसने अनेकानेक हिन्दू-मन्दिरोंका पुनरुद्धार कराया।

भाईजी द्वारा निर्मित सभी मन्दिर उनकी रुचिका परिचय देते हैं। निर्माण-कलाकी गहराई, प्राचीन मन्दिरोंकी परम्परासे उनका पृथकत्व, उनकी स्वच्छता, उनकी प्रबन्ध-चारुता आदि सब पर उनकी छाप है।

नयी दिल्लीका श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर अपने आपमें एक विशाल अध्ययन-कक्ष है। इसके प्रशस्त उद्यान और धर्मशाला आदि ऐसे स्वच्छ और ताज़े रखे गये हैं, जैसे लगता है कि अभीके बने हुए हैं। यदि मुझे भ्रम नहीं है तो यह सर्वप्रथम मन्दिर है, जिसमें चक्रधर कृष्णकी प्रतिमा प्रतिष्ठित की गयी है, बाल-गोपाल या मुरलीधर कृष्णकी नहीं।

इस मन्दिरके सम्बन्धमें मुझे एक कुतूहलपूर्ण घटनाका स्मरण आ रहा है। मन्दिरका एक ऐतिहासिक पट-चित्र है, जिसमें जाट-विजेताको लाल क़िलेमें प्रवेश करता हुआ दिखाया गया है। एक कट्टर धर्मनिरपेक्ष भावनाके हामी और प्रत्येक हिन्दू-भावनाके प्रति अनुदार व्यक्तिने गान्धीजीके पास एक पत्र भेजा, जिसमें उक्त पट-चित्रका विरोध किया गया था और उसको हटवानेका उनसे अनुरोध किया गया था। गान्धीजीने उसका उत्तर कुछ इस प्रकारसे दिया: "मैं जुगलकिशोरजीको अपनी आत्माके विरुद्ध कुछ करनेको कैसे कह सकता हूँ।" और उसकी एक प्रतिलिपि भाईजीके पास भी भेज दी।

भाईजी पण्डित मदनमोहन मालवीयजीके एक घनिष्ठ मित्र थे और उनके परामर्शसे हिन्दू महासभा आन्दोलनको शक्तिशाली बनानेमें बहुत धन व्यय किया। उनकी ही उदारताका फल है कि हिन्दू महासभाको नयी दिल्लीमें अपना भवन बनानेमें सफलता प्राप्त हुई। भाईजीने गोस्वामी गणेशदत्तजीको पंजाबके दंगा-पीड़ितोंके सहायतार्थ प्रभूत धन-राशि दी।

उनका हिन्दू-दृष्टिकोण बड़ा ही व्यापक था। उन्होंने जापानके बौद्ध नेताओंके साथ मैत्री-स्थापना की और हिन्दू-धर्म-ग्रन्थोंका जापानीमें अनुवाद करनेके लिए उन्हें कुछ धन भी दिया। जापानके बौद्ध-भिक्षुओं और भारतीय बौद्ध-संन्यासियोंके बीच भी उन्होंने सम्पर्क स्थापित कराया।

बैंकाकमें सत्यानन्दजीकी सहायतासे उन्होंने भारत और थाईलैण्डके धार्मिक सम्बन्धोंको दृढ़ करनेकी चेष्टा की। हिन्दू-धर्म-शास्त्र थाई भाषामें अनूदित किये गए और थाईलैण्डकी धार्मिक पुस्तकें भारतकी जनताके लाभके लिए अंग्रेज़ीमें अनूदित करायी गयीं। थाईलैण्डके बौद्ध विद्यार्थियोंको भारत आकर हिन्दू-धर्मके सम्बन्धमें अध्ययन करनेके लिए भी उन्होंने सहायताएँ दीं।

भाईजीने चीन, जापान, कम्बोडिया आदि देशोंसे भी मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए बड़ा कार्य किया और उन्होंने बौद्ध यात्रियोंके लिए अनेकानेक धर्मशालाओंका निर्माण कराया।

उनकी उदारता कभी कम न हुई। उनके पास जो कोई भी व्यक्ति आर्थिक सहायताके लिए आया, कभी निराश नहीं लौटा। अपनी पत्नीकी स्मृतिमें उन्होंने गृह-विज्ञान कॉलेज, कलकत्ता और मारवाड़ी रिलीफ़ सोसाइटीकी स्थापना की। उन्होंने गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी जापान-यात्राके लिए भी धन दान दिया।

अपने इन सारे कार्य-कलापोंमें वे दिखावेसे सर्वथा दूर रहे। उन्होंने अपने कृतित्वका कभी अभिमान नहीं किया और न कोई श्रेय लेना चाहा। उन्होंने अपनेको पृष्ठ-भूमिमें रखना अधिक पसन्द किया। उन्होंने अपने लक्ष्यकी दिशा कभी नहीं बदली और हिन्दू-धर्मके पुनर्जीवनके लिए प्रयत्नशील रहे।

* * *

वे अपनेको हिन्दू कहनेसे कभी लज्जित न हुए। हिन्दुत्वमें उनका विश्वास था और इस आशामें ही उनका जीवन व्यतीत हुआ कि हिन्दू-धर्म पुनः अपने अतीतके समान ही गौरव प्राप्त करेगा।

यदि महानता अपने उद्देश्योंके प्रति सच्ची लगन, सतत अध्यवसाय और अहंकाररहित सेवाका नाम है, तो भाईजी सच्चे अर्थोंमें महान् थे।

उनके जीवनका प्रत्येक क्षण हिन्दुत्वको पुनर्जीवित और उदीयमान देखनेके प्रयत्नमें व्यतीत हुआ। वे अपने वचन और कर्ममें सच्चे धर्मात्मा और महात्मा थे।

●

श्रीश्रीप्रकाश

हिन्दू-जीवन-यज्ञके अध्वर्यु

⊙ ⊙ ⊙

आजके भारतमें बिरला-परिवार उन इने-गिने परिवारोंमें है, जिनकी पर्याप्त प्रशंसा नहीं की जा सकती। नाना प्रकारके उद्योगोंका समारम्भ कर और उन्हें बड़ी कुशलता और सफलतासे चलाकर इसके सदस्यों द्वारा देशके आर्थिक उत्कर्षमें बड़ी सहायता मिली है। इनके कल-कार-खानोंमें बहुत-सी ऐसी वस्तुओंका उत्पादन हो रहा है, जिनके लिए पहले हम विदेशों पर आश्रित रहते थे। साथ ही इस परिवारने व्यक्तिगत और कौटुम्बिक जीवनका अच्छा आदर्श हम सबके सामने उपस्थित किया है। राजा बलदेवदास बिरला उन सौभाग्यवान् सत्पुरुषोंमें रहे, जिन्होंने स्वयं दीर्घायु प्राप्त कर भरे-पूरे कुटुम्बको अपने बाद छोड़ा, जो हर प्रकारसे सुसम्पन्न रहा और जिसके कितने ही सदस्य अपने क्षेत्रमें अच्छा यश और कीर्ति प्राप्त करते रहे।

राजा साहबके बाद श्री जुगलकिशोर बिरला इस विशाल परिवारके सर्वश्रेष्ठ सदस्य हुए। मेरे पिता डॉक्टर भगवानदासको इनके प्रति बहुत ही प्रेम और आदर था। जब जुगलकिशोरजी काशी आते थे तो वे पिताजीसे अवश्य मिलते थे और दोनोंमें उपयोगी और सुनने योग्य शास्त्र और धर्म-चर्चा होती थी। बिरलाजी आर्य अर्थात् हिन्दू-धर्मके बहुत बड़े पोषक थे और उसका ह्रास देखते हुए बहुत दुखी रहते थे। हिन्दुओंमें आत्म-सम्मानको जाग्रत और उनको धर्मकी तरफ प्रवृत्त करनेमें हर प्रकारसे वे सदा लगे रहते थे। इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिए कितनी ही संस्थाओं और व्यक्तिविशेषोंको सहायता देते थे और स्थान-स्थानपर सुन्दर और विशाल मन्दिरोंका निर्माण कर जनसाधारणको आह्वान करते थे कि वे ईश्वरको और अपने धर्म और संस्कृतिको न भूलें, उस पर गर्व करके उसको पुनः जीवित करें। वे हिन्दू-जीवन-यज्ञ के अध्वर्यु थे।

व्यापारमें बिरलाजीका अद्भुत प्रवेश था। संसार-भरकी व्यापारी गतिविधिको वे जानते और समझते थे। मैं भी उनसे बीच-बीचमें मिलता रहा और उनके विस्तृत ज्ञान और व्यवसायसे चकित होता रहा। उनका जीवन बड़ा ही सादा था। यद्यपि बिरला-वंशके कितने ही अन्य सदस्य बड़े-बड़े नये ढंगसे सुसज्जित भवनोंमें रहते थे, सभी स्थानों और अवस्थाओंमें बड़ी तत्परता और कुशलतासे अपना सब काम सम्पन्न करते थे। वे स्वयं बड़े सादे प्रकारसे कहीं भी पड़े रहना पसन्द करते थे। एक बार कार्यवश मैं उनके काशी के मकान पर मिलने गया था। ज़मीन पर बिछी हुई गद्दी पर बैठे हुए थे और उनके चारों तरफ सैकड़ों तार पड़े हुए थे। अपने व्यापार सम्बन्धी कार्यमें व्यस्त थे और सभी तारोंका समुचित उत्तर दिला रहे थे। मेरे लिए भी उन्होंने दो-चार क्षण निकाल ही लिए।

* * *

पीछे वे अस्वस्थ होकर दिल्लीमें ही रहने लगे थे। किसी दुर्घटनामें उनके पैरमें भारी चोट आ गयी थी और बहुत दिनों तक प्लास्टरमें बँधे थे। मैं उस समय ही उनको देखने गया था। स्ट्रेचर पर पड़े थे, पर काफी धैर्यसे पीड़ाको सहन कर रहे थे। वे बराबर अशक्त ही होते गये और एक ही बार फिर उनसे मिलने-का मुझे अवसर मिला, जब दिल्लीके बिरला-भवनमें वे एक तरफ चुपचाप बैठे हुए थे।

उन्होंने अपने हाथसे यदि करोड़ों रुपया कमाया तो करोड़ोंका दान भी कर दिया। परन्तु उनका सब दान चाहे व्यक्तियोंको हो, चाहे संस्थाओंको; गुप्त दानका ही रूप रखता रहा। वे अपना प्रदर्शन कभी भी नहीं करना चाहते थे, न इस बातका गर्व ही करते थे कि मैंने यहाँ यह दिया, वहाँ वह दिया। राज्यपालकी हैसियतसे भ्रमण करते हुए कितने ही प्रदेशोंकी विविध संस्थाओंमें मुझे बताया गया कि उनकी ही उदारता-के परिणामवत् अमुक काम हो रहा है तथा अमुक काम हुआ।

उनके देहावसानके समाचारसे कितने ही लोगोंको दुख हुआ होगा। कितनों ही ने अपनेको अनाथ माना होगा। उनके छोटे भाई सुप्रसिद्ध श्री घनश्यामदास बिरलाने मेरे संवेदनाके पत्रके उत्तरमें मुझे लिखा कि भाईजीकी मृत्युके बाद अब दिल्ली जाना ही पसन्द नहीं करता। वास्तवमें उनकी मृत्युसे देशकी एक विभूति उठ गयी। पर वे बड़ा सुन्दर उदाहरण छोड़ गये हैं, जिससे सभी लोग शिक्षा ले सकते हैं। चाहे उनका नाम समाचारपत्रोंमें उस तरहसे न आता रहा हो, जैसा कि कितनोंका आता रहता है, पर जो लोग उन्हें जानते थे, उनके हृदयोंमें वे बराबर बसे रहेंगे और मैं भी आज सब मित्रों, साथियों, कुटुम्बीजनोंके साथ-साथ उनकी पुण्य-स्मृतिमें श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ और आशा करता हूँ कि उनका यश बराबर फैलता रहेगा और उनसे प्रेरणा प्राप्त कर हम सभी अपने देश, समाज और धर्मकी सेवामें लगे रहेंगे।

●

* * *

श्रीउदित मिश्र

श्रद्धेय बाबूजी

⊙ ⊙ ⊙

हम सब लोग उनको 'बाबूजी' कहते थे। वे ८४ वर्ष तक इस संसारमें रहे। उनका जीवन स्फटिकके समान स्वच्छ और खुला हुआ था। संसार जानता है कि बाबू जुगलकिशोर बिरलाके पास अपार धन था, पर प्रभुकी उनपर इतनी कृपा थी कि वे एक क्षणके लिए भी अपनेको धनी नहीं समझते थे। वे भगवत्साक्षात्कारके लिए ही सदा उद्योग करते रहते थे।

समोऽहम् सर्वभूतेषुको उन्होंने अपने जीवनमें चरितार्थ किया। प्राणिमात्रसे उन्हें प्रेम था। वे इतने पवित्र थे कि अपनी पवित्रताको बाँटना चाहते थे। शाश्वत सनातनधर्मके वे रूप थे। वे समझते थे कि संसारका दुःख-क्लेश, कलह, स्वार्थ, दुर्भाव, सब कुछ हिन्दू-धर्म द्वारा ही दूर हो सकता है, इसीलिए उन्होंने हिन्दू-धर्मको सर्वश्रेष्ठ समझा।

मैं राजा बिरलाके राजकुमारों : सर्वश्री माधवप्रसाद, कृष्णकुमार, बसन्तकुमार और गंगाप्रसादका शिक्षक एवं संरक्षक था। इस प्रसंगमें बाबूजीके बहुत नज़दीक आ गया था। वे मेरे ऊपर बड़ी कृपा रखते थे। उनका कृपा-भाजन बननेमें मेरा कोई विशेष गुण सहायक हुआ हो, ऐसी बात नहीं थी। इसमें उनका ही नितान्त बड़प्पन था।

मेरी और उनकी उम्र में ५-६ साल का अन्तर था, इसीलए वे मुझे अपने पास बैठाने में संकोच नहीं करते थे और मुझे भी संकोच नहीं होता था।

एक दिन गद्दी पर हम और वे दो ही थे। दोपहरका समय था, अचानक उनको ज्वर हो गया। बुखार १०५ डिग्रीके ऊपर चला गया : उन्होंने मुझसे कहा : 'घनश्यामको फोन कर दो।' मैंने उनके कहनेके पहले ही फोन कर दिया था। उन्होंने ज्वरकी अवस्थामें ही मुझसे कहा : 'कलम लो और मैं जो नोट कराता हूँ, नोट करो।' उन्होंने बहुतसी बातें लिखायीं, उनमें सबसे पहले हिन्दू-जाति और हिन्दी-भाषाके लिए बहुत भारी रकम लिखायी थी। ज्वर थोड़ी देर बाद उतरने लगा और उतर भी गया। हाँ, एक बात और, ज्वरके समय उनकी इच्छा पढ़नेकी हुई। मैंने हिन्दी अखबार सामने रख दिया। उन्होंने कहा : 'अंग्रेजीका अखबार दो।' तब तक बाबू घनश्यामदासजी आ गए और उनके शरीरका हाल-चाल पूछने लगे।

एक बार मैं 'सरक्यूलर रोड'से आ रहा था। सुभाष बाबूने मेरी मोटर रुकवाई और मुझे बुलवाया और कहा कि मुझको स्वयंसेवकोंके लिए १५ हजार रुपयोंकी जरूरत है, आप जुगलकिशोर बिरलासे कहकर प्रबन्ध करा दीजिए।

मैंने उत्तर दिया कि प्रबन्ध तो हो जायगा, लेकिन आपको बिरला-पार्क आनेका कष्ट करना पड़ेगा।

* * *

मैं मोटर भेज दूँगा। उन्होंने कहा: "अगर आना न पड़ता तो अच्छा होता।" मैंने सुभाष बाबूसे कहा: "आप बाबूजीसे महान् आत्मा समझ कर मिलिए।" उन्होंने कहा कि ठीक है, मैं लौटा तब बाबूजी गद्दीमें ही थे। मैंने उनसे सुभाष बाबूका सन्देश कहा। उन्होंने फौरन स्वीकार कर लिया। उन्होंने तुरन्त मोटर भिजवा दी और बाबूजीसे मैंने कहा कि सुभाष बाबूको मैंने यहाँ आनेको कहा है। उन्होंने कहा कि 'उनको क्यों कष्ट दिया। रुपये उनके यहाँ भिजवा देते।' इतनेमें सुभाष बाबू आ गए। बाबूजीने उनसे कहा: "पण्डितजीसे (वे मुझे पण्डितजी कहते थे) मुझे आपका सन्देश मिला था। आपने कष्ट करनेकी कृपा की, इसके लिए अनेक धन्यवाद।"

मैं बाबूजीके साथ बराबर सन्ध्या समय मोटर पर घूमने जाया करता था। एक दिन 'लेककी' तरफ गए। कुछ बंगाली युवक उनको मिले। वे बंगालियोंको बहुत मानते थे। बंगालियोंको नौकरी देनेमें प्राथमिकता देते थे। बंगालमें बंगालियोंको छात्र-वृत्तियाँ दीं, बंगालियोंके लिए अखाड़े बनवाये। उन युवकोंने बाबूजीसे कहा: 'हम लोग बहुत गरीब हैं। हमारी सहायता कीजिए।' उन्होंने कहा, "पण्डितजीको आप लोग नाम व पता लिखा दीजिए, ये आप लोगोंसे मिलेंगे।" मैं और बाबूजीका एक विश्वासपात्र लेक पर गये। और उन युवकोंका घर देखा और पता लिया। इसी प्रसंगमें और युवकोंको भी बेरोजगार देखा, उनकी संख्या १००के करीब रही होगी। मैंने बाबूजीसे प्रस्ताव किया कि १०-२० रु० दानके तौरसे उन्हें दे देना ठीक नहीं, क्योंकि ये फिर माँगने लगेंगे। १००के करीब ऐसे युवक इधर हैं, जो बिलकुल बेरोजगार हैं। इनमेंसे यदि प्रत्येकको सौ-सौ रुपये दिये जायें और इनको कोयले, तरकारी इत्यादि खरीद दी जाय, तो ये सम्भव है कुछ दिन अपना काम चलायें। अधिकांश युवकोंने कोयलेकी दुकानें खोलीं और अपनी जीविका चलानी प्रारम्भ की। मैंने उन युवकोंको कार्यरत रहते बाबूजीको दिखाया। थोड़ी देरमें सब एकत्र हो गए और बाबूजीको प्रणाम करके धन्यवाद देने लगे। वे मोटरसे उधर आये और युवकोंको सम्बोधित करके कहा: "देखिए, आप सब लोग हमारे भाई हैं, खूब मेहनतसे काम करेंगे तभी दरिद्रता जायगी। हिन्दू-जातिकी सेवा कीजिए।" जयजयकारके बीच बाबूजी मोटरमें बैठ गए।

काशीमें वे जब आते थे, तब मुझे बुला लेते थे। उन्होंने सारनाथमें बौद्धोंके लिए विशाल धर्मशाला बनवायी। बाबू शिवप्रसाद गुप्त जो महादानी पुरुष तथा सच्चे देशभक्त और त्यागमूर्ति थे, उन्होंने मुझसे कहा: "भारतमाता मन्दिरके पास एक बहुत अच्छा पुस्तकालय बनना चाहिए। जुगलकिशोरजी से कहो।" मैंने प्रसंगवशात् बाबूजीसे इसका जिक्र किया और शिवप्रसाद गुप्तसे उन्हें मिलवाया। गुप्तजी उन दिनों बीमार थे। सारा काम ठीक हो गया। पुस्तकालयका निर्माण हो गया। बाबूजी जो इमारत बनवाते थे, उसका शिखर हिन्दू-संस्कृतिका परिचायक होता था। इस पुस्तकालयका भार गुप्तजीके दौहित्र दैनिक 'आज'के चालक, व्यवस्थापक और सम्पादक श्री सत्येन्द्रकुमार गुप्त पर है। वे बाबूजीकी भावनाको लक्ष्य करनेमें समर्थ हैं और पुस्तकालयका अस्तित्व जहाँ है, वहीं रहने देनेमें वे सजग हैं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और उसका विश्वनाथ मन्दिर इस समय काशीकी एक विभूति है। पर्यटक दूर-दूरसे मन्दिरका दर्शन करने आते हैं। हिन्दू-शास्त्रोंके आदर्श श्लोक मन्दिरके संगमर्मरपर उत्कीर्ण हैं। सूर, तुलसी, मीरा, नानक, गुरु गोविन्दसिंह और बड़े-बड़े महात्माओंके उपदेश आप वहाँ जानेपर दीवारोंमें देखेंगे। उन्होंने काशीमें सैकड़ों मन्दिरोंकी मरम्मत करवायी, दर्जनों मन्दिर बनवाए और करोड़ों रुपये पण्डितोंको, विद्यार्थियोंको, दीन-दुखियोंमें बाँटा। मछोदरीका बिरला अस्पताल अपने ढंगका एक ही अस्पताल है, जहाँ एलोपैथ डॉक्टरों और दवाइयोंके अतिरिक्त आयुर्वेदिक और कुशल अनुभवी वैद्योंके द्वारा

दवाइयाँ बाँटनेका भी प्रबन्ध है। काशीमें बिरला-बन्धुओंकी ओरसे रजाइयाँ, चादरें और अन्न-वस्त्र भी बँटते हैं। बिरला हाउस, लालघाटमें हजारों याचकोंकी भीड़ दिन भर लगा करती थी। बाबूजीके जानेके बाद वे अब अपनेको अनाथ समझ रहे हैं। एक दिन उसी भीड़में एक वृद्ध ८० वर्षका संन्यासी आया, जो जाड़ेसे ठिठुर रहा था। जमादार उसको शरण देनेमें हिचकिचाता था। मैंने जमादारसे कहा: "भाई, मैं इसका जिम्मा लेता हूँ। इस वृद्ध संन्यासीको आग तपाओ और पास बिठाओ।" सारा मेला छँट गया, तब मेरे कहनेपर बाबूजीने उस संन्यासीको देखा। बाबूजीमें मनुष्यको पहचाननेकी गजबकी शक्ति थी। संन्यासीको देखते ही कुर्सी पर बैठाया, खानेपीनेका प्रबन्ध किया, ओढ़ने-बिछौनेका प्रबन्ध किया और कन्हैयासे कहा, (कन्हैयालाल मिश्र काशीमें उनके प्राइवेट सेक्रेटरी थे) "देखो, स्वामीजीको ले जाओ। इनका स्थान देख आओ और बराबर इनके खाने-पीने-कपड़ेका ठीक इन्तजाम कर दिया करना।"

बाबूजीकी कीर्ति अबाध है। वे श्रद्धेय व श्रद्धालु दोनों थे। उनमें 'सत्वानुरूपा श्रद्धा' थी। जन्म-मरणके बन्धनको पसन्द नहीं करते थे। उनका आत्मज्ञान बहुत व्यापक था। जन्म-मृत्युसे रहित होकर उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।

श्रीअटलबिहारी वाजपेयी

वन्दे महापुरुष !

⊙ ⊙ ⊙

सेठजी सच्चे अर्थोंमें एक साधु पुरुष थे। उनकी विद्याज्ञानके लिए, उनकी सम्पत्तिदानके लिए और उनकी शक्ति परदुःख-निवारणके लिए थी। लक्ष्मीकी असीम अनुकम्पा होते हुए भी उन्हें मद या अहंकार छू तक नहीं गया था। राजघरानेमें जन्म लेकर भी उनकी वृत्ति सात्विक थी और उनका सम्पूर्ण जीवन धर्म, समाज तथा देशके लिए समर्पित था।

जब-जब सेठ जुगलकिशोरजी बिरलासे मैं मिला, उनके हृदयमें हिन्दुत्वकी प्रखर आग जलती हुई पाई। ऊपरसे हिमाच्छादित हिमालय और अभ्यन्तरसे सेठजी देशकी वर्तमान दुर्दशा देखकर वड़वानलकी तरह धधकते रहते थे। अपने निकट आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको अपनी निर्धूम अग्निसे आलोकित तथा अनुप्राणित करते रहते थे। हिन्दू-धर्मके संरक्षण और संवर्द्धनके लिए तथा हिन्दू-संस्कृतिके प्रचार और प्रसारके लिए सेठ जुगलकिशोर बिरलाने जो कुछ किया, वह उनके द्वारा निर्मित मन्दिरोंके पाषाणों पर ही नहीं, अपितु उन मन्दिरोंसे प्रेरणा प्राप्त करनेवाले अगणित हृदयों पर भी सदा अंकित रहेगा। स्वधर्मसे बिछड़े हुए भाइयोंको पुनः गले लगाने और अभाव तथा अज्ञानके कारण अपने धर्मसे विमुख होनेवालोंको रोकनेके लिए उन्होंने ठोस कार्य किये। प्रचारकी चकाचौंधसे दूर वे कृतिमें विश्वास करते थे और मन्दिरका कलश बननेके बजाय उनकी नींवका काम करनेमें अपना अहोभाग्य समझते थे।

हिन्दू-समाजके अन्तर्गत वे सभी सम्प्रदायों और मत-मतान्तरोंको प्रतिष्ठा प्रदान करनेके हामी थे और समान भावसे उनके विकासके लिए प्रयत्नशील रहते थे। पंजाबी सूबा आन्दोलनके दिनोंमें जब-जब उनसे मिलनेका अवसर हुआ, सेठजी सदैव इसी बात पर बल देते थे कि सिख भी हिन्दू हैं और राजनीतिक मत-भेदोंके कारण हमें हिन्दू-समाजकी एकताको कभी दृष्टिसे ओझल नहीं होने देना चाहिए। बौद्धों तथा जैनियोंके प्रति भी उनका यही दृष्टिकोण था। स्थान-स्थान पर बौद्ध-बिहारोंका निर्माण और जैन मुनियोंके सम्मानमें आयोजित कार्यक्रम यह बताते थे कि सेठजीका हिन्दुत्व विशाल, सर्व-संग्राहक और समन्वयवादी था। हिन्दू-धर्मकी ध्वजाको विदेशोंमें फहराता हुआ देखनेके लिए वह सदैव व्यग्र रहा करते थे। इस दृष्टिसे उनके प्रयत्न सदैव स्मरणीय रहेंगे।

जीवनके अन्तिम दिनोंमें उनका दर्शन कर मुझे अचानक ही शर-शैय्या पर लेटे हुए भीष्म पितामहकी याद आ गयी। मानों मृत्युको मुट्ठीमें बाँधे हुए वे जीवनके प्रसूनको भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित करनेके लिए सन्नद्ध हो रहे थे। मृत्युके कुछ दिन पूर्व उन्होंने सर संघ-संचालक पूजनीय गुरुजीके दर्शन करनेकी इच्छा प्रकट की थी। समाचार पाकर श्रीगुरुजी अविलम्ब दिल्ली आए थे और सेठजीसे मिलनेके लिए

* * *

हवाई अड्डेसे सीधे बिरला-भवन गए थे। दोनोंकी अन्तिम भेंटका दृश्य जिन्होंने देखा, वे उसे कभी भुला नहीं सकेंगे।

सेठजी चले गए। जीवनकी चादरको यत्नसे ओढ़ कर और जैसी-की-तैसी रखकर वे हमसे विदा हो गए। किन्तु हिन्दू-समाजको एक बनाने और हिन्दू (आर्य) धर्मको दसों दिशाओंमें गुंजायमान करनेका उनका जीवन-उद्देश्य अभी अधूरा है। जहाँ सेठजीके उत्तराधिकारियोंका यह कर्तव्य है कि उनकी पुनीत परम्पराको आगे बढ़ाएँ, वहाँ देशवासियोंका भी यह धर्म है कि उनके अधूरे कार्यको पूरा करनेके लिए प्रयत्नशील हों।

श्री जुगलकिशोरजी इस शतीके महापुरुष थे। मैं उस दिवंगत महापुरुषकी पुण्य-स्मृतिमें उनकी वन्दना करता हूँ।

०

* * *

पण्डित मौलिचन्द्र शर्मा

एक समर्पित-जीवन

⊙ ⊙ ⊙

ब्रह्मलीन श्री जुगलकिशोर बिरला जितने सेठ थे, उससे अधिक सन्त थे। उनके जीवन और वर्तावको देख भक्तमाव्यकी कथाओंमें वर्णित दान, त्याग, परदुःखकातरता और प्रभु-चरणोंमें समर्पणके चमत्कारी और अलौकिक लगनेवाले प्रसंग याद आ जाते थे।

हिन्दू-धर्ममें उनकी निष्ठा अद्वितीय थी और हिन्दू-समाजकी दुर्वलताओंको दूरकर उसे सुदृढ़ बनानेके सभी उपक्रम उन्हें प्रिय थे। एक भी व्यक्तिके स्वधर्म छोड़ परधर्म ग्रहणका समाचार आता, तो उन्हें गहरी वेदना होती थी। सभी सम्प्रदायोंको समन्वित कर उनमें परस्पर अविच्छेद्य, सैद्धान्तिक और परम्परागत समानताके आधार पर एकताकी भावना जाग्रत कर हिन्दू-समाजको सवल बनानेमें वे सदा तत्पर रहे। उनकी प्रायः सारी आय इसी उद्देश्यसे समाज-सेवा और धर्मकार्योंमें ही व्यय होती थी।

धर्म उनके लिए मात्र सुनने-समझनेके लिए ही न था। वह उनके जीवनका नियामक और प्रेरक था। एक प्रकरण स्मरण आता है, जो उनकी उदात्त प्रकृति और धर्म-परायणताका परिचायक है।

मैं तब अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनका प्रधानमन्त्री था। सम्मेलनकी एक महत्वपूर्ण योजनाके लिए एक अच्छी धनराशि एकत्र करनेका निश्चय हुआ। इस शुभकार्यके आरम्भके लिए मैं सेठजीके पास गया। मैंने सेठजीको योजनाकी रूपरेखा और उसका प्रयोजन बताया और आग्रह किया कि चिट्ठेमें पहली कलम उन्हींकी होनी चाहिए। सब सुनकर वे बड़े संकोचसे बोले : "पण्डितजी, मैं अब व्यापार तो करता नहीं, मेरे हिस्सेका जो कुछ मिलता है, उसीमें सब कार्य चलाता हूँ। इस कारण हाथ खुला नहीं है। कुछ थोड़ा दे सकूँगा।" मैंने कहा कि श्रीगणेश तो आपहीको करना है, जैसा भी उचित जँचे। उन्होंने एक कागज लेकर २५,००० रुपये लिख दिए और हाथ जोड़कर कहा : "क्षमा करें, यह काम तो ऐसा है कि एक लाख भी देता तो कम था। अब जो बन पड़ा लिख दिया है।" मैंने चन्दे अनेक लिखाये थे, परन्तु यह पहली वार देखा कि इतना देकर भी इतनी विनय और इस बातका खेद हो कि अधिक नहीं दे सकता। अस्तु, और अनेकोंसे चन्दा लिखवानेमें प्रायः दो सप्ताह निकल गए। एक दिन सेठजीके निजी सचिव श्री नागरमलका फोन आया कि आपके २५,००० रुपए-का चेक पड़ा है, कृपया मँगा लें। मैंने साधारण तौरपर कह दिया कि जब सुविधा होगी, मँगा लूँगा। मैं व्यस्त रहा और कई दिन और बीत गए। एक दिन नागरमलजी स्वयम् आकर चेक दे गए। मैं सेठजीसे मिलकर उन्हें धन्यवाद देने गया, तो स्वभावतः कहा कि ऐसी क्या जल्दी थी, मैं स्वयम् आकर चेक ले ही जाता। वे बोले : "पण्डितजी, दान किया हुआ धन मेरे पास पड़ा था। शरीरका क्या भरोसा? अगला श्वास आए न आए, और मैं धर्मका ऋण कन्धेपर लिए चला जाऊँ। जो संकल्प कर दिया, वह हाथसे छूट ही जाना चाहिए।" मेरा

मन गद्‌गद हो गया और ऐसे अनेक प्रसंग मनकी आँखोंके आगे घूम गए, जब दस-दस तगादे कराकर, जोर डलवाकर कहीं मुश्किलोंसे चन्देकी वसूली हो पाती थी।

एक और प्रसंग याद आता है। नयी दिल्लीमें एक अच्छा देवस्थान बने, यह मेरे स्वर्गीय पिता पण्डित दीनदयालुजीकी प्रबल इच्छा थी। इसके लिए महाराजा धौलपुरको प्रेरणा देकर उनसे एक अच्छी धनराशिका वचन उन्होंने लिया था। सनातनधर्म सभा, नयी दिल्लीने श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर बनवाना आरम्भ किया। सेठजीको यह कार्य इतना महत्वपूर्ण और उपादेय लगा कि उन्होंने इसमें व्यक्तिगत रुचि ली और सारा ढाँचा ही बदल दिया। उनकी भव्यताने उसका स्वरूप पहलेसे कहीं विशालतर और सुरुचिपूर्ण बना दिया। सेठजीने पण्डितजीसे आग्रह किया कि "यह पुण्य-कार्य अब वे ही सम्पन्न करेंगे, चन्दा न लिया जाय। जो कुछ आया है वह भी वापस कर दिया जाय।" ऐसा ही हुआ और जो मन्दिर भारतकी राजधानीमें एक धर्मक्षेत्र और तीर्थस्थान बन गया है, उसकी स्थापना अकेले उनकी ही सूझ, धन, योजना, परिश्रम और धर्म-प्रेमका परिणाम है।

उत्तर भारतमें मुस्लिम-कालमें मन्दिरोंका जिस प्रकार ध्वंस हुआ था, उसके कारण पुराने भव्य देवालयोंके तो दक्षिणमें ही जाकर दर्शन होते हैं। इस कमीकी पूर्तिका श्रीगणेश सेठजीके ही पुण्यका परिणाम है। अनेक राजधानियोंमें बिरलाजी द्वारा निर्मित मन्दिरोंके उत्तुंग शिखर हिन्दुओंके चिरजीवनकी साक्षी दे रहे हैं। जो काम राजा-महाराजाओंसे न हुआ, वह सेठजी कर गए और ऐसा उदाहरण स्थापित कर गए, जिसका अनुकरण और भी धनिकोंने किया है।

सेठजी बहुत पढ़े नहीं थे, परन्तु बहुश्रुत थे। रामायण, महाभारत, पुराण, इतिहास और अर्वाचीन युगकी दैनन्दिन ऊँच-नीच सभीसे वे पूर्ण परिचित थे। देशमें जो कुछ होता था, उसे वे एक ही कसौटी पर कसते थे - इससे हिन्दू - समाजका भला होता है या बुरा। इस कसौटी पर जो भी अपूर्ण उतरता, वह चाहे कोई भी हो, उनकी दृष्टिमें गिर जाता था। अपने सिद्धान्तोंके विषयमें समझौता करना उनके लिए सम्भव नहीं था।

अन्तिम बीमारीके दिनोंमें मैं मिलने गया, तो देखा कि उन्हें शारीरिक कष्ट तो प्रत्यक्ष था ही, परन्तु वे प्रसन्न थे और सदावाली प्रसन्न मुद्रामें ही बातें करते रहे। थोड़ी देर चुप्पी रही। तो कुछ सोचते-से रहे और फिर उनके शारीरिक कष्टकी बात छिड़ गयी। मैंने कहा, आप सदृश सन्तको ऐसा कष्ट सम्भवतः इसी-लिए हो रहा है कि प्रारब्ध कर्मोंके सुफलोंके साथ-साथ कुछ बचे-खुचे कुफलोंका भोग भी इसी शरीरके साथ समाप्त हो जाय, जिससे फिर लौटकर न आना पड़े। वे बहुत हर्षित हो उठे और बोले "अवश्य ही यह प्रभुकी भारी कृपा है। सब भोग समाप्त हो जायँ और सब बोझोंसे हलके होकर जायँ, यही उसकी इच्छा है। वह बड़ा कृपालु है।"

उनकी इस दृढ़ निष्ठा और प्रभु-परायणताके अनेक उदाहरण देखनेको मिले हैं, जो उन्हें प्रभुके अनन्य भक्तोंकी कोटिमें स्थान देते हैं।

पूज्य पिताजीके देशव्यापी सम्बन्धोंके कारण मेरी पहचान बहुत धनिकोंसे हुई है। परन्तु इतनी सूझ-बूझ, इतनी श्रद्धा, निष्ठा और लगन, इतना त्याग और दान, इतनी निरहंकारिता और विनय, प्रभुके चरणोंमें इतना दृढ़ समर्पण भाव किसीमें नहीं देखनेको मिला। उनके चले जानेसे देशके धार्मिक जीवनमें एक ऐसा स्थान रिक्त हुआ है, जिसकी पूर्ति होना आसान नहीं है।

मेरी उनके प्रति अगाध श्रद्धा रही है। यह उसमेंकी एक अञ्जली उनकी पुण्य-स्मृतिमें अर्पित है। ●

* * *

श्रीसीताराम सेकसरिया

आदानं हि विसर्गाय : जिनके जीवनका ध्येय था

० ० ०

सन् १९११में मैं कलकत्ते आया था। १८, मल्लिक स्ट्रीट, काली गोदाममें ठहरा और वहाँ बहुत दिन रहा। उन बातोंको आज ५७ वर्ष हो गए। उन दिनों कालीगोदाममें बलदेवदास जुगलकिशोरके नामसे आजके बिरला ब्रदर्सकी फर्म थी। श्री जुगलकिशोरजी अपनी इस गद्दीका सञ्चालन करते थे और कालीगोदाममें ही रहते थे। मुझे पहले-पहल वहीं उनके दर्शनका सौभाग्य मिला। परिचय उस समय नहीं हो सका, क्योंकि उस समय भी वे अपने-आपमें एक विशेष आदमी थे और मैं तो कुछ था ही नहीं। पर कालीगोदाममें तथा समाजमें उनकी चर्चा रहती थी। उन दिनों वे मारवाड़ी समाजके बड़े व्यापारियोंमें नहीं थे। पर उनके विचार, उनकी उदारता, नम्रता, सरलता, सादगी और स्नेहशीलताकी बराबर चर्चा रहती। उस समयकी कल्पना आजका आदमी कर ही नहीं सकता। एक छोटी-सी बात कहूँ कि काली-गोदाममें जो गद्दियाँ थीं, उनके साथ बासा याने खाने-पीनेका प्रबन्ध रहता था, उस बासेमें भोजन करनेका दससे बारह रुपया महीना खर्च लगता। उस समय बिरलाओंकी गद्दीका बासा था। वह काली-गोदाममें सबसे अच्छा माना जाता था। वहाँ जो रसोई होती थी, वह वहाँके सब बासोंसे अच्छी होती। मैं एक और बात जो आज कहनेमें कैसी भी लगे, कहना चाहता हूँ। बासेमें जीमनेवालोंके लिए एक क्यारी होती, उसमें जीमते उस क्यारीको ग्वाला, जो वहाँ बरतन माँजने आदिका काम करता, उसे छू नहीं सकता था। जीमने वालेको कोई चीज दी जाय तो वह बिना छुए हल्के हाथसे ऊँचेसे गिरा दी जाती। पर बाबू जुगलकिशोरजी ऐसा नहीं करते थे, वे उस ग्वालेको न तो अछूत मानते और न उसके साथ उस तरहका बर्ताव करते। वे कटोरी उसके हाथसे थालीमें रखवाते या उसके हाथसे अपने हाथमें ले लेते। इस बातकी चर्चा काली-गोदाममें हुआ करती कि जुगलकिशोरजी ग्वालेका परहेज नहीं करते याने उसका छुआ खाते हैं। यह बात आज हँसीकी-सी लगती है, पर उनके जीवनकी झाँकियोंमें झाँके तो उस समयकी इस बहुत छोटीसी बातमें वे नजर आते हैं; जो आगे जाकर हरिजन-आन्दोलन या छुआ-छूत या सवर्ण-अवर्णके विचारोंमें प्रकट हुए। उस समय तक बंगाली समाजमें ब्रह्म-समाजकी स्थापना हो चुकी थी और उसका प्रभाव बंगालमें काफी बढ़ रहा था। ऐसे ही आर्यसमाजके विचारोंका भी प्रभाव पंजाब तथा उत्तर भारतमें बढ़ रहा था। श्री जुगलकिशोरजी पर आर्यसमाजकी एक धारा, जो हिन्दुओंमें समाजसुधारकी थी; उसका प्रभाव पड़ा था। आर्यसमाजकी मूर्ति-पूजा निषेध तथा अन्य बातोंका प्रभाव उन पर नहीं था। उस समय आर्यसमाज और सनातन-धर्मका बड़ा संघर्ष था। श्री जुगलकिशोरजी हर अच्छी बात और अच्छे आदमीका आदर करते थे। उदारता और नम्रताकी तो वे साक्षात् मूर्ति ही थे। मैंने उनके दादाजीकी उदारताकी बात सुनी है और उनकी तो सुनी

* * *

भी और देखी भी। हो सकता है उन्होंने अपने दादाजी, पिताजीसे संस्कार लिए हों, पर उनमें एक ऐसी विचित्रता थी कि दान न देने पर उन्हें अकुलाहट होती। जिस समय उनके सट्टेमें रुपया आता, तो वह लोगोंको बुला-बुलाकर रुपये देते थे। वह सौ हाथोंसे कमाते थे, हजारों हाथों से बाँटते थे। उनका उपार्जन मात्र दानके लिए ही था। ऐसे दो-चार उदाहरण तो मेरे सामने हैं कि माँगने वालेने कल्पना ही नहीं की थी कि इतना अधिक मिलेगा। वे चन्दा माँगनेवालेसे या व्यक्तिगत सहायता चाहने वालेसे पूछते थे कि कितनेसे काम चलेगा। उसके बताने पर वे कहते, इतनेसे कैसे चलेगा? ज्यादा चाहिए। यह सब उनके व्यक्तिगत गुण या स्वभावकी बातें हैं। एक लम्बे अर्सेतक वे हमारे बीच रहे और अपनी उदारता, सद्भावनासे समाजका हितसाधन करते रहे। उनका समस्त आदान विसर्जनके लिए होता था।

दिल्लीके बिरला-मन्दिरका निर्माण या अन्य मन्दिरोंका जीर्णोद्धार आदि बातें तो प्रायः सबके सामने हैं और यह सब चीजें उनकी दानशीलताको प्रकट करती हैं। पर व्यक्ति अपने जीवनकी छोटी बातोंके द्वारा ही अन्तःजीवनमें सच्चा जीवन जीता है। उसका अन्तःजीवन, जिसको बाहरके लोग प्रायः नहीं जानते या जान नहीं सकते, वही उसका वास्तविक जीवन है। श्री जुगलकिशोरजीके उस जीवनकी थोड़ी-बहुत झाँकी जिनको मिली है, वे जानते हैं कि बिरलाजी अपने जीवनमें कितने महान् थे। उनके दानका एक बहुत बड़ा हिस्सा ऐसा भी होता था, जिसको दाहिना हाथ दे तो बायाँ हाथ न जाने। हजारों-हजार ऐसे आदमियोंकी आपद-विपदमें उन्होंने सहायता की है, जिसको केवल वही जानते हैं। बिरला जैसे लोग बिरले पैदा होते हैं और ऐसे लोगोंकी जगह जब खाली हो जाती है तो वह समाजकी एक स्थायी क्षति होती है। समाज और व्यक्तिका कर्तव्य है कि ऐसे लोगोंके जीवनसे शिक्षा ग्रहण करें और उनके गुणोंका अनुसरण करनेका प्रयत्न करें, यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धा निवेदित हो सकती है।

●

श्रीजयदयाल डालमिया

सुकृती : सुजन

⊙ ⊙ ⊙

श्रीजुगलकिशोरजी विरलाके दर्शन करनेका सौभाग्य मुझे कई अवसरों पर हुआ। मेरे जैसे साधारण व्यक्तिको जब उनके दर्शन करनेका अवसर मिलता और मैं जब कभी उनके चरणस्पर्शके लिए झुकता, तो वे कहने लगते : "राम, राम, यह क्या करते हो ? ऐसा मत किया करो।" इतनी निरभिमानता थी उनमें। उन्होंने कभी अपनेको बड़ा समझा ही नहीं। आयुमें, ज्ञानमें, पदमें बड़े होने पर भी वे सदा अपनेको साधारण व्यक्ति समझा करते थे। यह है उनका 'तृणादपि सुनोचेन'का उदाहरण।

कोई भी उनसे मिलने जाता तो वे किसी भी विषयकी चर्चा उठने पर सर्वदा उसकी राय पूछा करते थे। सामान्यसे सामान्य व्यक्तिको सम्मान दिया करते थे। अपनेमें लघुता देखना, दूसरोंमें महत्ता देखना; उनका सहज स्वभाव था। यह है उनके 'अमानिना मानदेन'का उदाहरण।

विद्वानों, विरक्तों एवं गुणियों पर उनकी अडिग आस्था थी। हर क्षण उन्हें देश और समाजको समुन्नत तथा परिष्कृत बनानेकी चिन्ता रहती थी। यह है उनके 'वयं राष्ट्रे जागृयाम:'का उदाहरण।

वह गतव्यथ थे, किन्तु राष्ट्रका ह्रासोन्मुख चरित्र उन्हें हर समय व्यथित बनाए रखता था। वह देशको शील, संयम, सदाचार, शिष्टाचार-सम्पन्न देखना चाहते थे और जीवन-पर्यन्त इन्हीं मानवीय गुणोंको वितत, विस्तृत बनानेकी चेष्टा करते रहे। यह है उनके 'आचारः प्रथमो धर्मः'का उदाहरण।

उन्होंने जो असीमित दान दिया, उसकी जानकारी बहुत ही सीमित है, जबकि उन्होंने प्रायः अपनी सम्पूर्ण कमाई परोपकारमें ही व्यय की। उन्होंने कभी अपने दान या सत्कर्मका विज्ञापन नहीं किया, यहाँ तक कि उनके निकट रहकर काम करनेवाले व्यक्ति भी पूर्ण परिचित नहीं हो पाते थे। यह है उनके 'परोपकाराय सतां विभूतय:'का उदाहरण।

मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि उनके तिरोभावसे धर्म और संस्कृति अनाथ हो गए। पता नहीं, इसकी पूर्ति हो पायेगी या नहीं। वह सुकृती, सुजन महापुरुष थे। उनकी पुण्यतिथि पर मैं अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

●

श्रीबनारसीदास चतुर्वेदी

सरल रेखाओंवाला विरल व्यक्तित्व

⊙ ⊙ ⊙

पिछले सैंतालीस वर्षोंसे दोरहपमें निरन्तर सोता रहा हूँ और अपने दिल्ली-प्रवासके बारह वर्षोंमें भी मैंने इस अनिवार्य नियमका पालन किया था। 'मैं सो रहा हूँ, कृपया जगाइए नहीं' यह तख्ती मैंने दरवाज़े पर टाँग रखी थी। एक दिन मुझे कमरेके बाहर कुछ खटपटकी आवाज़ सुनायी दी और मेरी नींद खुल गयी। दरवाज़ा खुला तो किसी सज्जनने, जो शायद मोटरके ड्राइवर थे, कहा : "सेठ जुगलकिशोरजी बिरला पधारे हैं, आपसे मिलनेके लिए।"

मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा। मैंने द्वारपर ही उनका स्वागत किया और कुर्सीपर बिठलाकर निवेदन किया : "सेठजी, आपने क्यों कष्ट किया? मैं तो स्वयं आपकी सेवामें धन्यवाद देने आना चाहता था। वह मेरा कर्तव्य भी था, क्योंकि आप तो बराबर मेरे कार्योंमें मदद देते रहे हैं।"

सेठजीने कहा : "मुझे केजड़ीवालजीसे मालूम हुआ था कि आप कुछ अस्वस्थ हैं, इसलिए मैं ही हाज़िर हो गया। इसमें कष्टकी कौनसी बात है?"

सेठजी कोई बीस मिनट बैठे और मेरी बीमारियों : रक्तचाप तथा पौरुष-ग्रन्थिके विषयमें उन्होंने कई उपयोगी परामर्श दिए। उन परामर्शोंको तो मैं भूल भी गया, पर कितनी ही पुरानी बातें मेरे दिमाग़में घूम गयीं। सेठजीका मैंने पहले कभी दर्शन भी नहीं किया था और यह उनका प्रथम और अन्तिम दर्शन था।

मुझे याद आयी तीस-पैंतीस वर्ष पहलेकी बात, जब कि मैंने 'विशाल भारत' में उनपर कठोर आक्षेप किए थे और ऐसी अशिष्ट भाषाका प्रयोग किया था कि इस समय उसको उद्धृत करना भी मेरे लिए लज्जाजनक होगा।

मैंने अपनी अनुभवहीनता तथा असहिष्णुताके कारण उनकी तथाकथित साम्प्रदायिकतापर आक्षेप किए थे। मेरा अनुमान था कि सेठजीने उन आक्षेपोंका बुरा अवश्य माना होगा। उन दिनों मेरे उस आक्षेपकी चर्चा कलकत्तेके अन्य पत्रोंमें भी हुई थी। मैं दस वर्ष कलकत्ते रहा, पर जुगलकिशोरजी बिरलासे मिलनेका कभी साहस ही नहीं हुआ। पर सेठजी उदार हृदयके मनुष्य थे; उन्होंने मेरी उस अशिष्टताको माफ़ ही नहीं कर दिया, बल्कि मेरे अनेक कार्योंमें पर्याप्त सहायता भी दी।

अमर शहीद आज़ादकी माताजी घोर संकट में थीं। मैं उन्हें साँतरा नदीके किनारे हनुमानजीके उस मन्दिरमें ले गया था, जहाँ आज़ाद एक छोटी-सी कोठरीमें पुजारीके रूपमें रहे थे। माताजीने उस कोठरीमें प्रवेश करते ही, जमीनपर अपना सिर पटक-पटककर रोना शुरू किया। उसे देखकर हम लोगोंके हृदय द्रवित हो गए। मैंने उस घटनाका वृत्तान्त बहन सत्यवतीजी मल्लिकको लिख भेजा। उन्होंने उसे जवाहर-

लालजी नेहरूकी सेवामें भेज दिया और पत्रोंमें भी छपवा दिया। पत्रके पढ़ते ही नेहरूजीने २५० रुपयेका चेक आज़ादकी माताजीके सहायतार्थ मेरे नाम भेज दिया, पर शायद उससे भी पहले मुझे जुगलकिशोरजीका निम्न-लिखित पत्र मिला :

नयी दिल्ली
५-३-४९

माननीय श्री चतुर्वेदीजी,

नमस्ते। शहीद श्री चन्द्रशेखर आज़ादकी वृद्धा माताके विषयमें समाचारपत्रोंमें छपा हुआ लेख पढ़ा। इसके आधार पर श्री आज़ादकी वृद्धा माताजीकी सेवामें १६० रु० आपके द्वारा भिजवाये हैं। आशा है कि इस बीचमें सरकारकी भी सहायता मिलने लग जाएगी। अन्यथा फिर सूचना देनेकी कृपा करें। आशा है, आप सानन्द होंगे।

भवदीय,
जुगलकिशोर

नयी दिल्लीके हिन्दी-भवनके लिए घनश्यामदासजी बिरलासे एक हज़ार रुपए मिल चुके थे। उस रकमको सन्तोषजनक न समझकर मैंने जुगलकिशोरजी बिरलासे प्रार्थनाकी कि वे भी कुछ सहायता दें। उन्होंने कहला भेजा कि हिन्दी-भवनमें धार्मिक पुस्तकोंकी एक आलमारी होनी चाहिए और उसके लिए तथा आवश्यक ग्रन्थोंके लिए ६०० रु० आपको भेज रहा हूँ। सेठजीके आज्ञानुसार एक आलमारी खरीद ली गयी और उसमें कुछ धार्मिक ग्रन्थ रख दिये गए।

पंजाबमें मार्शल लॉके दिनोंमें बाबा तीरथराम नामके एक पंजाबी तथा नौ अन्य व्यक्तियोंको लम्बी-लम्बी सज़ाएँ दी गयीं। भारतके विभाजनके बाद बाबा तीरथराम हिन्दुस्तान चले आए और दिल्लीमें बड़े आर्थिक संकटमें अपने दिन गुज़ार रहे थे। मैंने उनका मामला पत्रोंमें छपा दिया। सबसे पहले श्री जुगलकिशोर-जीने श्री गोविन्दप्रसाद केजड़ीवालके मार्फ़त मुझे २०० रु० भेज दिए और यह सन्देश भी भेजा : 'मुझे इस बातसे बहुत सन्तोष है कि आप ऐसे संकटग्रस्त आदमियोंके मामले अपने हाथमें लेते रहते हैं।'

बन्धुवर ज़हूरबख्शीजीके विषयमें मेरे पास एक पत्र आया कि उनके मकानमें आग लगा दी गयी है और उनकी बहुत आर्थिक हानि हो गयी है। मैंने उस पत्रका सारांश जुगलकिशोरजी को लिख भेजा। वे उन दिनों कश्मीरमें थे। वहाँसे उदित मिश्रजीने मुझे लिखा कि आपका पत्र पाते ही सेठजीने २५० रु० ज़हूरबख्शजी-को भेज दिए। पीछे मैंने सुना कि सेठजीने उनकी प्रचुर मासिक सहायता भी बाँध दी थी।

एक जाट लड़केको कुछ ईसाई मिशनरियोंने बहका दिया था। उसने अपनी करुण-गाथा मुझे लिख भेजी और यह भी प्रार्थना की कि यदि कुछ पैसे मिल जायें, तो मैं इस बन्धनसे मुक्त हो सकता हूँ। मैंने उसकी चिट्ठी सेठजीके पास भेज दी और सेठजीने जब उसकी यथोचित आर्थिक सहायता की, तब वह वहाँसे छूटा। मैंने सुना कि उसके बाद भी सेठजीने उसकी मदद की थी।

फ़िरोज़ाबादके दो वाल्मीकि छात्र टाइपराइटिंग सीखना चाहते थे और उन्होंने मुझसे कहा कि अगर ९६ रु० का प्रबन्ध हो जाय, तो वे ६ महीनेमें सीख सकते हैं। मैंने सेठजीकी सेवामें पत्र लिख भेजा और उन्होंने लौटती डाकसे वह रकम भेज दी।

* * *

एक बार मैंने फोनपर सेठजीसे कहा : "वाल्मीकि-बन्धुओंको धर्मशालाओंमें ठहरनेमें बड़ी कठिनाई होती है।" उन्होंने उत्तरमें कहा : "ये लोग इस बातकी घोषणा क्यों करते फिरते हैं कि हम वाल्मीकि हैं?"

मेरा यह विचार हुआ कि कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) में अमर शहीद आज़ादकी स्मृतिमें एक चबूतरा बनवा दिया जाय और इसके लिए मैंने सेठजीकी सेवामें एक पत्र भी भेजा था। उन्होंने जो उत्तर दिया वह यहाँ उद्धृत है :

श्रीहरिः

नयी दिल्ली
चैत्र कृष्ण ४, सं० २००५

श्री चतुर्वेदीजी, प्रणाम,

आपका पत्र प्राप्त हुआ। आपने ५०० रु० (पाँच सौ रुपये) की लागतका एक पक्का चबूतरा श्री चन्द्र-शेखर आज़ादके स्मारकमें बनानेके सम्बन्धमें लिखा है। ऐसे रमणीक स्थानपर केवल चबूतरा उपयुक्त न होगा। जब तक कोई स्तम्भ इत्यादि न हो और उसपर गीता, उपनिषद् आदिके उपदेशात्मक वाक्य न खुदे हुए हों, तबतक कोई विशेष आकर्षण या धार्मिक लाभ होगा, ऐसा नहीं दीखता।

आप इस सम्बन्धमें श्री वियोगी हरिजीसे भी पत्र-व्यवहार करें, तो अच्छा है। मैं भी उनसे बातचीत करूँगा।

भवदीय,
जुगलकिशोर

खेदकी बात है कि मैं अपने प्रमादवश बन्धुवर वियोगी हरिजीको कुछ लिख नहीं सका और आज़ादकी स्मृतिमें चबूतरा और स्तम्भका प्रश्न जहाँका-तहाँ पड़ा रहा। यदि मैं उस समय जागरूक होता, तो सेठजीने हुतात्मा आज़ादकी स्मृतिमें कुण्डेश्वर पर स्तम्भ तथा चबूतरेका निर्माण करा दिया होता।

अभी कुछ महीने पहले जब मैंने स्वर्गीय वासुदेवशरणजी अग्रवालके पत्रोंका संग्रह किया, तब मुझे श्रद्धेय बिरलाजीका ध्यान फिर आया। यदि मैंने उसी समय उनकी सेवामें निवेदित कर दिया होता, तो अग्र-वालजीके पत्र प्रकाशमें आ गए होते।

एक दिन सेठजीने मेरे साथ अच्छा मज़ाक़ किया। मैंने उन्हें केजड़ीवालजीसे कहला भेजा था : "मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ कि आपने मुझ जैसे छोटे आदमीके घरपर पधारनेका कष्ट किया।" उन्होंने उत्तरमें कहलाया : "चौबेजीसे कहनां कि मैं कभी किसी 'छोटे' आदमीके घर नहीं जाता।"

मुझे इस बातका सदैव खेद रहेगा कि जिस व्यक्तिने मेरी अनुदारतापूर्ण आलोचनाको क्षन्तव्य मानकर मेरी इतनी बार सहायता की और मेरे घरपर भी पधारनेका कष्ट किया, उन्हें धन्यवाद देनेके लिए मैं उनके निवासस्थानपर एक बार भी न जा सका।

* * *

श्रीवियोगी हरि

कुछ पावन-संस्मरण

⊙ ⊙ ⊙

श्रद्धेय बाबू जुगलकिशोर बिरलाके पावन-जीवनके अनेक ऐसे संस्मरण हैं, जिनसे सदा प्रेरणा मिलती रहेगी। यहाँ मैं केवल ऐसे ही कुछ संस्मरण लिख रहा हूँ, जिनका स बन्ध अस्पृश्यता-निवारण एवं हरिजन-उत्थानके साथ था।

आजसे कोई ४०-४५ वर्ष पहले राजस्थानमें हरिजनोंकी सामाजिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। पीछे धीरे-धीरे उनकी स्थितिमें सुधार होने लगा। परन्तु शेखावाटीका क्षेत्र तो आज भी सामाजिक दृष्टिसे पिछड़ा हुआ ही कहा जा सकता है।

तब बहुधा ऊँची कही जानेवाली जातियोंके लोग पैरोंमें चाँदीका कड़ा पहनते थे। पैरमें सोना तो वे ही पहन सकते थे, जिनको कि महाराजा बख्श दें। मगर कोई भी हरिजन - तब अछूत - चाँदीका कड़ा पैरमें नहीं पहन सकता था। वह रथपर नहीं बैठ सकता था। सिर्फ़ ऊँटपर चढ़ सकता था। जुगलकिशोरजीको यह सामाजिक अन्याय सहन नहीं हुआ। उन्होंने दो चमारोंको पैरोंमें चाँदीके कड़े पहनाये और उनको रथपर बैठाकर गाँवमें घुमवाया। बड़े साहसका काम था यह तबके रूढ़िग्रस्त समाजमें और उस सामन्ती शासनके सामने।

मेहतर लोग कुएँके पासके हौज़मेंसे, जिसे वहाँ 'खेल' कहते हैं, पानी भरकर ले जाते थे। उस खेलमेंसे, जिसका गन्दा पानी जानवर पीते थे। जुगलकिशोरजीसे यह अमानुषिक व्यवहार नहीं देखा गया और उन्होंने मेहतरोंके लिए कुएँ बनवा दिये।

अछूतोद्धारके कामोंके लिए उन्होंने लाला लाजपतराय तथा स्वामी श्रद्धानन्दजीको मुक्तहस्त सहायताएँ उन दिनों दी थीं। लालाजीने सेण्ट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बलीमें इसीलिए कहा था कि "जितना अछूतोद्धारका काम जुगलकिशोरजी बिरलाने किया है और वे कर रहे हैं, उतना काम सरकारने भी नहीं किया।"

दिल्लीके हमारे हरिजन-निवासमें लाल पत्थरका जो भव्य धर्म-स्तम्भ है, उसका निर्माण आर्य-संस्कृतिके उपासक एवं प्रसारक श्री जुगलकिशोर बिरलाने ही सम्वत् २००० वि०में कराया था।

जुगलकिशोरजीने सम्वत् १९९७में ठक्कर बापासे एक दिन कहा था कि "किंग्सवे पथकी पूर्व दिशामें स्थित हरिजन-निवास (लोकप्रचलित नाम गान्धी-आश्रम) में मैं एक ऐसा प्रस्तर-स्तम्भ अपनी निधिसे निर्माण कराना चाहता हूँ, जो आर्य-संस्कृतिके सनातन-सिद्धान्तोंका उद्घोष शत-शत वर्षों तक करता रहे।" बापाने एवं हरिजन-सेवक-संघने उनके इस प्रस्तावका सहर्ष स्वागत किया।

यह सुनकर कि हरिजन-निवासमें 'गान्धी-स्तम्भ' या 'गान्धी-लाट' खड़ी करनेका निश्चय हुआ है, गान्धीजीने पसन्द नहीं किया। किन्तु यह स्पष्ट कर देने पर कि उनके नाम पर यह स्तम्भ खड़ा नहीं किया

जा रहा है, उन्होंने आपत्ति नहीं की। जब स्तम्भ, जिसका नाम हमने 'धर्म-स्तम्भ' रखा, बनकर खड़ा हो गया, तो गान्धीजीने उसे देखकर पूछा, 'अच्छा! यही वह स्तम्भ है? सुन्दर है। इस चबूतरेका, जिसपर यह खड़ा है, क्या उपयोग होता है?' 'यहाँपर हम लोग गर्मीके दिनोंमें प्रातःकाल और सायंकालकी प्रार्थना करते हैं।' बताया गया, तो बोले, 'तब ठीक है।'

संघके कार्यालय तथा प्रार्थना-मन्दिरके मध्यमें यह धर्म-स्तम्भ स्थित है। स्तम्भ लाल पत्थरका है। चबूतरा ४० फुट लम्बा है और उतना ही चौड़ा। चारों ओर वेष्ठनी है और ऊपर जानेके लिए चारों ओर सोपान हैं। इसी चबूतरे पर यह खड़ा है। मूल भाग इसका चतुष्कोण है। प्रत्येक प्रस्तर-पटल ७'-९" लम्बा है और नीचेका भाग ९' तथा ऊपरका भाग ८' चौड़ा है। चतुष्कोण मूल भागके ऊपर स्तम्भ अष्टकोण हो गया है, जिसमें चार-चार सोपान हैं। सबसे नीचे सांस्कृतिक प्रतीक खुदे हुए हैं। पूर्वकी ओर चर्खा, उत्तरकी ओर हंस, पश्चिमकी ओर भारतका मानचित्र और दक्षिणकी ओर मंगलघट है, जिस पर आम्रपल्लव हैं और पल्लवों पर दीप-ज्योति। चारों कोणों पर अर्धचक्र अंकित है और चक्रोंके मध्यमें स्वस्तिक।

इसके ऊपर स्तम्भ आवर्ताकार हो जाता है। दो-दो फुट ऊँचे १७ गोल प्रस्तर-खण्ड, जो नीचेसे ऊपरकी ओर क्रमशः गोलार्धमें छोटे होते गए हैं, एक पर एक रखे हुए हैं। एक प्रस्तर-खण्ड दूसरे प्रस्तर-खण्डके साथ मोटी लौह-शलाकासे जुड़ा हुआ है।

इसके ऊपर शीर्ष भाग है, जो अधोमुख विकसित कमलकी आकृतिका है।

कमलपर स्थित ३ फुट ऊँचा चतुष्कोण प्रस्तर-खण्ड है, जिसपर भारतीय संस्कृतिके उत्कृष्ट प्रतीक उत्कीर्ण हैं - पूर्वकी ओर चर्खा, उत्तरकी ओर विकसित कमल और उससे निकलती हुई प्रकाश-किरणें, पश्चिमकी ओर भगवान् बुद्धका धर्मचक्र तथा दक्षिणकी ओर गो।

इस चतुष्कोण प्रस्तर-खण्ड पर शिखर है।

चबूतरेके ऊपरसे समस्त स्तम्भकी ऊँचाई ५८ फुट ९ इंच है और चबूतरेकी ऊँचाई मिलाकर भूमितलसे स्तम्भ ६२ फुट ९ इंच ऊँचा है।

धर्म-स्तम्भके निर्माणके मूलमें भारतीय-संस्कृतिकी भव्य-भावना निहित है। अतः स्वाभाविक था कि इसके स्थापत्यमें भारतीय-संस्कृतिके द्योतक उत्तम प्रतीकों एवं सूक्तियोंको चुनकर इस पर अंकित कराया जाय। भगवान् बुद्धका धर्म-चक्र प्रगतिमान धर्म-भावनाका द्योतक है। हमारे गणराज्यने इस चक्रको अपना राज्य-चिह्न स्वीकार कर लिया है, यह हर्षकी बात है। कमल मानवका विकसित हृदय है, ज्ञानकी किरणें इसी कमलकोषसे प्रस्फुटित होती हैं। गोमें अर्थ और धर्मकी समन्वय-साधना समायी हुई है और इसी साधनाके आश्रयसे हम स्वरूप-दर्शन करते हैं, जो अध्यात्म ज्ञानका अन्यतम ध्येय है। कदाचित् इसीलिए उपनिषद्की तुलना गोके साथ की गयी है। चर्खा अहिंसामूलक सम्यक् आजीविकाका सर्वोच्च साधनरूप प्रतीक है। गान्धीजीके आर्थिक अर्थशास्त्रका चर्खा ही एक विशद भाष्य है।

मूल भागके प्रस्तर-पटलों पर धर्मकी सनातन सूक्तियाँ खुदी हुई हैं - पूर्वकी ओर गान्धी-सुवचन, उत्तरकी ओर गीता-तत्वसार, पश्चिमकी ओर बुद्ध-वाणी और दक्षिणकी ओर उपनिषद्-रत्नावलि।

कुछ समय पश्चात् बाबू जुगलकिशोरजीने मथुराके सुप्रसिद्ध गीता-मन्दिरके प्रांगणमें इसी धर्म-स्तम्भके नमूनेका सुन्दर स्तम्भ निर्माण कराया।

महात्मा गान्धीके साथ उनका कुछ बातोंमें मतभेद था, पर हरिजन-कार्यके लिए उनका सदा समर्थन और योगदान मिलता रहा। अपने विचारोंमें वे दृढ़ और बड़े स्पष्ट थे। वे गान्धीजीसे कहा करते थे, 'बापू,

* * *

मैं आपकी बातको एक महात्माके रूपमें मानता हूँ, पर नेताके रूपमें नहीं।' गान्धीजीके प्रति उनकी गहरी श्रद्धाका एक उल्लेखनीय संस्मरण है :

बहुत वर्षोंकी बात है। एक दिन प्रातः उन्होंने अपने भाई श्री घनश्यामदाससे कहा : 'मैंने रातको एक ऐसा सपना देखा है कि महात्माजीने मुझसे किसी कामके लिए रुपया माँगा; पर मैं भूल गया हूँ कि कितना रुपया मुझे भेजना चाहिए।' गान्धीजीको इस सम्बन्धमें उन्होंने पत्र लिखा। उत्तर आया कि 'यह तो स्वप्नकी बात है। मैंने तो कुछ भी नहीं माँगा।' पर जुगलकिशोरजी तो वचन दे चुके थे, फिर चाहे वह जाग्रत अवस्थामें दिया हो या स्वप्नमें। और उन्होंने एक खासी बड़ी रकम स्वप्नमें दिये वचनके अनुसार गान्धीजीके पास भेज दी।

●

* * *

आचार्य डॉक्टर सूर्यनारायण व्यास

विरल-विरक्त-विभूति

⊙ ⊙ ⊙

सन् १९३२ : पत्रोंमें पढ़ा था कि सेठ जुगलकिशोरजी विरला कोई मन्दिर बनवा रहे हैं, बड़े धार्मिक और उदार व्यक्ति हैं। मैंने उन्हें एक पत्र लिखा कि महाकवि कालिदास भारतके महान् राष्ट्रीय कवि हैं, मैं उनकी स्मृतिमें एक भव्य-स्मारक बनानेकी कल्पना करता हूँ, उसमें समस्त कालिदास-साहित्य, जहाँ और जिस भी भाषामें प्राप्त हो, संग्रहीत किया जाय; कालिदास-साहित्यसे प्रभावित-चित्र एवं मूर्ति भी उसमें संग्रहीत हों तथा शोधकार्य हो। इस साँस्कृतिक तीर्थ-स्थलके निर्माणमें आपका योग प्राप्त हो, यह इच्छा है। कुछ दिनोंके बाद सेठ साहबका मुझे उत्तर मिला कि 'कालिदास हुए भी या नहीं, अभी तक विद्वानोंमें भ्रम है। इसलिए इस कार्यमें सहयोग देना सम्भव नहीं होगा।' इस संक्षिप्त उत्तरके पश्चात् मेरी धारणा कुछ ठीक नहीं हुई, मैंने कोई पत्र-व्यवहार नहीं किया और मौन हो गया; यह मेरा सेठजीसे प्रथम परिचय हुआ। सन् १९३७में मुझे एक महाराजके स्नेहाग्रहके वशीभूत हो योरोप जानेका प्रसंग आया। पी० एण्ड ओ०के स्टेशनों पर जहाजसे सफर कर रहा था, लालसागरकी असह्य गर्मीसे बचनेके लिए मैं धोती-कुर्ता पहने हुए 'डेक' पर घूम रहा था, सहसा एक प्रौढ़ सज्जनने सामनेसे आकर मुझे खादीकी धोती-कुर्ता पहने देख परिचय पूछा और कहने लगे : 'आप शाकाहारी हैं न ? आपको यहाँ कठिनाई होती होगी, कैसे काम चलता होगा ?' मैंने सहज भावसे कहा : '१०-१२ दिन ही तो और बिताना है, फल और सब्जियोंसे, मक्खन एवं बिस्कुटोंसे ठीक काम चल जाता है, चिन्ताका कोई कारण नहीं।'

उन्होंने कहा : 'नहीं, कष्ट न उठायें, संकोचका कोई कारण नहीं, मेरे साथ ब्राह्मण रसोइया है, अब आपको रोजाना भारतीय भोजन यथासमय उपलब्ध हो जाएगा।'

मैंने कहा : 'मुझे कोई कष्ट नहीं है, आप कोई तकलीफ न करें।' पर वे सज्जन इतना कहकर आगे बढ़ गए कि 'इतना अवसर तो मुझे दीजिए।' मैं देखता रह गया। जब भोजनके समय एक थालीमें भारतीय भोजन-सामग्री आयी, तब लानेवाले सज्जनसे पूछा कि यह व्यवस्था कौन सज्जन कर रहे हैं ? तब बतलाया गया कि सेठ घनश्यामदासजी विरलाके आदेशसे यह प्रस्तुत है। लानेवाला व्यक्ति उन्हींका पाकशासी छगनलाल है। फिर तो सेठजीसे परिचय हो गया, प्रायः प्रतिदिन चर्चा होती रही, सेठ साहब किसी व्यापारिक मिशन पर लन्दन जा रहे थे, साथमें सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, सेठ कस्तूरभाई लालभाई भी थे। संयोगकी बात देखिए कि ४ महीनेके बाद जब मैं वापस इटलीके वेनिस नगरमें जहाजमें चढ़ा, तो साश्चर्य देखा कि सेठ साहब उस जहाजमें भी मौजूद हैं, वापस स्वदेश आ रहे थे। पुनः ११ रोज हम लोगोंको साथ-साथ रहनेका अवसर मिला। जहाजमें ही हम लोगोंने मिलकर दशहरा (विजयादशमी) का पर्व मनाया, सारे

* * *

जहाजके यात्री हमारे पर्वमें सम्मिलित हुए थे, यह अविस्मरणीय घटना है। आज भी मेरे पास दशहरेके चित्र मौजूद हैं।

सेठ साहब घनश्यामदासजीने जहाजमें एक रोज कहा था कि 'कभी कलकत्ता-दिल्ली आइए, तो मिलिए।' मैंने उत्तर दिया था कि 'सेठ साहब, जब आप याद कीजिएगा, आऊँगा।' १९३७के बाद अकस्मात् महाराजा ग्वालियरकी महाराजकुमारीकी शादीमें भेंट हो गयी, सेठ लालचन्दजी सेठीने परिचय दिया और सेठजीने तुरन्त पहचान लिया, सन-सम्वत्के साथ जहाजकी घटना बतला दी, मैं उनकी स्मरण-शक्ति पर चकित था।

सम्भवतः १९५९-६०की बात है। राष्ट्रपति-भवन (नयी दिल्ली)में मेरे स्नेही पण्डित श्रीधरजी शर्मा वैद्यराज (जो राष्ट्रपतिजीके चिकित्सक रहे हैं)के साथ विभिन्न चर्चाएँ चल रही थीं, सेठ जुगलकिशोरजीकी हिन्दुत्व-भक्ति और उदारताके विषयमें विस्तारसे विवरण वैद्यराजजीने बतलाया, उस रोज वैद्यराज बिरला हाउस जानेवाले थे। शामको जब बिरला हाउससे लौटे तो मेरे कमरेमें आकर उन्होंने बतलाया कि सेठ साहब आपसे मिलना चाहते हैं। दूसरे दिनका समय निश्चित हुआ, इस समय तक मैं सेठ साहबकी उदारता और देश-व्यापी निर्माण-कार्योंकी बातें विस्तारसे जान चुका था, उनके सरल जीवन और त्यागकी बहुत-सी चर्चा सुन चुका था। गोस्वामी गणेशदत्तजी महाराजकी मुझ पर कृपा रही है, उनसे बहुत कुछ जानता-सुनता आया था। दूसरे रोज श्री वैद्यराज श्रीधरजी शर्माके साथ पूर्व निश्चित समय पर बिरला हाउस गया, सेठ साहबसे भेंट हुई, न कोई शान-शौकत, न वैभवका प्रदर्शन, अत्यन्त निरभिमान एवं आत्म-विस्मृत-सरल-सादे वेशमें सेठ जुगलकिशोर बिरला सामने थे।

सेठ घनश्यामदासजीका व्यक्तित्व भिन्न प्रकारका है, परन्तु सेठ जुगलकिशोरजीसे मिलकर सर्वप्रथम मुझ पर उनके वैभव-विरक्त साधुरूपकी ही छाप पड़ी। अत्यन्त सौम्य, अत्यन्त सज्जन और भोले-भाले सेठजी, किन्तु उनमें ज्ञानकी गम्भीरता और हिन्दुत्वके प्रति उत्सर्ग-भावना एवं अन्तरकी लगनको देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ। जब ज्ञान-विज्ञानकी चर्चा चल पड़ी, तब जाना कि वह वैभवशील संन्यासी केवल भावुकतावश ही उदार नहीं है, विचार से उदात्त हैं और अनुभव भी अपार है, उनका अध्ययन गहराई लिये हुए है, सरलतामें विद्वत्ता छिपी हुई है। सेठजीकी सादगीमें चिन्तनका व्यक्तित्व है। उनकी दानशीलता लक्ष्यहीन नहीं है, विचार और तर्क शुद्ध हैं, आडम्बर और प्रचारसे पराङ्मुख सेठ बिरला समस्त भारतकी विभूति थे, उनकी बिरलताका वर्चस्व सभी पर प्रतिष्ठित था, वे गुण-ग्राहक और गुणान्वेषी थे, उनका अपना एक लक्ष्य-उद्देश्य था और उस पर उनका समस्त जीवन विश्वासपूर्वक उत्सर्ग था। इसमें सन्देह नहीं कि सेठ बिरलाजी स्वयं एक जीवित संस्था ही थे। उन्होंने सांस्कृतिक समुन्नयन के लिए जो कार्य किया है, वह इस देशमें सदैव स्मरणीय बना रहेगा। वे आध्यात्मिक महापुरुष थे, दो हाथोंसे उपार्जित कर अनेक हाथोंसे उन्होंने सत्कर्मोंमें वितरण किया है।

उनकी देश-सेवा किसी भी महा-देशभक्तसे कम नहीं आँकी जा सकती। उन्होंने अपना गुण और इतिहास निर्मित किया है। नवभारतके निर्माणमें उन्होंने जो क्षेत्र अपनाया था, निष्ठापूर्वक उसे पूर्ण किया। और चाहे वे भौतिक शरीरसे हमारे बीच नहीं रहे हों, परन्तु उनका यशोदेह चिरजीवी बना रहेगा। उस रोज जितने क्षण मैं उनके निकट रहा और उनके विचारोंसे अवगत हुआ, मुझ पर वह प्रभाव अमिट बना रहेगा। वे महान् थे, उनका उत्सर्ग महान् था। उन्होंने अपना जीवन सार्थक बना लिया था, वैभवशाली परिवारमें ऐसे विरक्त वास्तवमें बिरले ही होते हैं।

●

* * *

श्रीशुकदेव पाण्डे

युग-द्रष्टा : भाव-स्रष्टा

⊙ ⊙ ⊙

दीन-हीन-हितकारी, भारतीय-संस्कृतिके महान् पोषक एवं प्रवर्तक स्वर्गीय श्री जुगलकिशोरजी बिरला सदा चिरस्मरणीय रहेंगे। उनका भौतिक शरीर प्रकृतिके नियमानुसार अपने पंचतत्वोंमें जा मिला है; पर जो भगीरथ प्रयत्न देश-विदेशमें जन-समुदायके आर्थिक तथा मानसिक उत्थानके लिए उन्होंने किये हैं, वे कृतज्ञ मानव-समाजके हृदय-पटलमें उनकी मूर्तिको सदा सजीव रखेंगे और उनके सुकर्म सदा मानवको प्रेरित करते रहेंगे कि प्रत्येक व्यक्तिका जन्म अपनी स्वार्थ-रक्षा व हितके लिए नहीं, वरन् तथागतके शब्दोंमें 'बहुजन हिताय तथा बहुजन सुखाय'के लिए हुआ है। वेदव्यास द्वारा बताए गए अष्टादश पुराणके सारमर्म "परोपकार पुण्य है, पर-पीड़न पाप है"को बाबूजी केवल मानते ही न थे, अपितु उन्हें अक्षरशः जीवनमें सदा कार्यान्वित भी करते थे। व्यासके ये दो वचन उनके जीवनके दो प्राण बन गए थे।

श्री बिरलाजी दीन, मूक, पददलित तथा हिन्दू-समाजसे त्यक्त जातियोंके सदा समर्थक रहे। उन्होंने मुक्तहस्तसे इनके उत्थानके लिए दान दिया तथा उन्हें प्रेरित करते रहे कि वे अपनेको हीन न समझें। जब कभी छोटासे-छोटा आदमी उनके पास जाता, उससे वे बड़े प्रेमसे मिलते। दूरसे बात करनेवालेको वे सदा निकट बैठाते और ऊपर बैठनेको कहते। कृषक तथा श्रमिक वर्गसे तो वे बराबर यही अनुरोध करते कि वे अपने कार्य पर गर्व करें। वे ही तो वास्तविक अन्नदाता हैं। उन्हींके श्रमसे ही तो वसुन्धरा शस्य-श्यामला है।

सज्जनता तथा दूसरेके दुखमें दुखी और तत्काल दुख-निवारणमें उनका सानी मिलना सरल नहीं।

एक बार पिलानीमें मूसलाधार वर्षा हुई। ५-६ घण्टोंमें ८-९ इंच वर्षा हो गयी और चारों ओर जलमही हो गयी। बौछारोंसे बड़े वेगसे पानी पड़नेके कारण झोपड़ियोंकी कच्ची दीवारें गिरने लगीं और बहुतसे लोग बेघर हो गये। मैं अपने अध्यापकवर्ग और बड़ी कक्षाके विद्यार्थियोंके साथ सहायतार्थ गरीबोंकी झोपड़ियोंके आस-पाससे पानीको काटनेके कार्यमें जुटा हुआ था, तभी मैंने देखा कि स्वयं श्री जुगलकिशोरजी बिरला भीगते हुए, घुटने तक धोती चढ़ाये गहरे पानीमें परिस्थिति देखने आ रहे हैं। यह थी उनकी अनुकरणीय मानवता। उसी समय उन्होंने व्यवस्था की कि जिनके घर टूट गये हैं और जो खतरेमें हैं, उनको उनके अतिथि-गृह व कुबेर-भण्डारमें ले जाया जाय। स्कूल भी ३ दिनके लिए बन्द किये गए और बाढ़-पीड़ितोंको कक्षाओंमें ठहराया गया। भंगियोंने जबतक उनका सामान सुरक्षित उनके पास पहुँचानेका आश्वासन न मिले, अपने घर छोड़नेसे इनकार कर दिया। विद्यार्थियोंने तुरन्त ही उनका सब सामान उनकी चारपाइयोंमें रखकर उन्हें सुरक्षित स्थानमें पहुँचा दिया। श्री बिरलाजीने जबतक लोग घरोंको लौटे नहीं, तबतक उनका भोजन उनके पास पहुँचानेकी व्यवस्था करा दी और स्वयं घूम-घूमकर देखा कि यथोचित सहायता लोगोंको मिल रही है या

* * *

नहीं। पानी हट जानेके बाद मकानोंको ठीक तरहसे मरम्मत करने हेतु लोगोंको ईंट, बल्ली, टीन इत्यादि पहुँचानेकी भी व्यवस्था करवा दी।

एक बारकी और घटना उनकी सज्जनता और सहानुभूतिकी द्योतक है। कई वर्ष पूर्व पिलानीके कृषि फ़ॉर्ममें उनके साथ मैं ताँगेमें जा रहा था। उस समय पिलानीमें मोटरें नहीं चलती थीं, न सड़कें थीं। फ़ॉर्ममें कुछ चोरी हो जानेके कारण मैंने आम रास्ता बन्द करा दिया था। इस कारण फ़ॉर्मके उस पार कुछ गाँवोंमें जानेके लिए रास्ता लम्बा हो गया था। जब हम लोग जा रहे थे, तो दूसरी ओरसे एक वृद्ध-दम्पति, जिन्हें चौकीदारने रास्ता बन्द होनेके कारण वापस कर दिया था, यह कहते सुनायी दिए : 'अब वे गायके दूध दुहनेके समयपर न पहुँच सकेंगे। गाय रँभायेगी तथा बछड़ा बेचैन होगा।' बिरलाजीने तुरन्त ताँगेवालेको रोका और उतरकर ताँगेवालेको आदेश दिया कि यथाशीघ्र वृद्ध-दम्पतिको उनके गाँवमें पहुँचाये और वे पैदल चले जायँगे। ग्रामीणोंकी आँखोंमें पानी भर आया और वे अवाक् रह गये। उनकी कितनी ही अनुनय-विनय करने पर कि कोई बड़ी देर पहुँचनेमें न होगी और वे ताँगेमें न जायँगे, बिरलाजीने उनकी एक न मानी और वे पैदल घरकी ओर चल पड़े।

श्रीबाबू जुगलकिशोरजी इस युगके राजर्षि जनक एवं दानवीर कर्ण थे। कोई याचक उनके यहाँसे खाली हाथ नहीं लौटा। यह कोई अतिशयोक्ति नहीं अपितु उनका जीवन ही इसका साक्षी है। वे औरोंके लिए जिए। उन्होंने जो उपार्जित किया वह मानव-सेवा, भारतीय-संस्कृतिके प्रचार, प्रसार तथा जीर्णोद्धारमें अर्पित किया। देशके बड़े-बड़े पुण्य-स्थान, विशाल मन्दिर, गीता-भवन, धर्मशालाएँ, विद्यालय, आतुरालय, अनाथालय, व्यायामशालाएँ तथा अन्य लोकोपकारी संस्थान इसके साक्षी हैं। उनका भारत विशाल भारत था। बौद्ध, जैन, सिख, सनातनी, आर्यसमाजी तथा अन्य विभिन्न हिन्दुओंके सम्प्रदाय सबका एक ही स्रोत वे मानते थे और आपसके भेदभाव मिटानेमें सदा प्रयत्नशील रहते थे। देश-विदेशमें भारतीय-संस्कृतिके प्रचार व प्रसारमें उनका कार्य श्लाघनीय है। भारतीय-संस्कृति विशेषतः रामायण, गीता तथा दर्शनका विदेशियोंको दिग्दर्शन कराने कई बार अनेक दार्शनिक व विद्वानोंको बिरलाजीने विदेशोंमें भेजा।

श्री बिरलाजी विदेशियोंको भारतमें आकर हिन्दी तथा भारतीय-दर्शन एवं धर्मकी शिक्षा प्राप्त करनेमें सदा सहायता देते थे। कई बौद्ध भिक्षुओंको काशी विश्वविद्यालयमें मेरे द्वारा छात्रवृत्ति प्रदान की गई थी। जो विदेशी विद्वान् भारतीय-संस्कृतिमें दिलचस्पी रखते थे, उन्हें जिन सुविधाओंकी आवश्यकता होती, प्रस्तुत करते तथा उन्हें उनके अध्ययनार्थ यथोचित पुस्तकें भी भेंट करते थे।

एक बार ताशो विश्वविद्यालयके, जो जापानमें बौद्ध-धर्म, दर्शन और भारतीय-दर्शनका श्रेष्ठ विद्यालय है, संस्कृत और बौद्ध-धर्मके प्रोफेसर 'शोदोताकी'को दो वर्षके लिए बिरला कॉलेजमें हिन्दीके अध्यापकोंसे पढ़नेके लिए उन्होंने आर्थिक सहायता दी। वे जापान लौटकर इस समय अपने विश्वविद्यालयमें हिन्दीकी भी शिक्षा दे रहे हैं। उन्होंने जाते समय श्री बाबू जुगलकिशोर बिरलाके विशाल भारतके विचारोंका समर्थन करते हुए कहा था कि "जापानकी ७० प्रतिशत आबादी बौद्धधर्मकी अनुयायी है और वे सब भारत आना चाहते हैं। परन्तु परिस्थितियोंके कारण ऐसा नहीं कर पाते। उनके हृदयमें भारतके लिए विशेष प्रेम एवं श्रद्धा है। जब कोई जापानी बुद्ध भगवान्‌की जन्मभूमि भारतसे जापान पहुँचता है, तो वहाँके लोग उसके सामने आदरसे साष्टांग करते हैं। बहुतसे भारतको देखनेकी अभिलाषा समुद्र-तटपर अपने पाँवोंको जलमें डालकर यह कल्पना करते हुए कामना पूरी करते हैं कि समुद्रका जल उन्हें भारतसे मिला है।"

देश-काल-परिस्थितिको विचार कर ही बिरलाजी सदा अपने विचारोंको कार्य रूप देते थे। उनके

निर्मित मन्दिर भारतीय-संस्कृतिके अनुपम उदाहरण हैं। उन्होंने एक ही स्थान पर भारतके ऋषि-महर्षियोंके विचार जनता-जनार्दनके समक्ष ऐसे आकर्षक ढंगसे व्यक्त किये हैं कि जिससे दर्शक बिना प्रभावित हुए नहीं रह सकता और भगवद्दर्शनके उपरान्त भारतीय-संस्कृतिके भण्डारसे अपनी श्रद्धाके अनुसार कुछ अनमोल रत्न भी संग्रह करनेमें समर्थ होता है।

आधुनिक समाज और विद्यार्थी वर्गमें अपने धर्म एवं संस्कृतिके प्रति उदासीनता देखकर वे बड़े चिन्तित रहते थे। वे मानते थे कि शिक्षण-संस्थाओंमें नैतिक एवं धार्मिक शिक्षाका अभाव चरित्र-निर्माणमें बाधक है और समाजकी अवनतिका प्रधान कारण है।

वे भारतके उत्थानके लिए यह आवश्यक मानते थे कि भारतके भावी नागरिक हमारे विद्यार्थी चरित्रवान्, धर्मनिष्ठ, सुडौल, सुगठित, बलवान, परिश्रमी तथा मेधावी हों, अपनी संस्कृतिसे अभिज्ञ तथा देशभक्त हों। इस ओर वे सदा प्रयत्नशील भी रहे। उन्होंने बड़े-बड़े स्थानोंमें गीता-भवन बनवाये, बालोपयोगी साहित्य वितरित किया, गीता, रामायणकी योजना बनायी तथा उपदेशकों, कथावाचकों तथा प्रचारकों द्वारा देशकी विभूतियोंका ज्ञान कराया। देशव्यापी परीक्षाओंका आयोजन किया और योग्य विद्यार्थियोंको पुरस्कृत किया।

शरीर सुडौल और स्वस्थ बनानेके लिए विश्वविद्यालयों तथा शिक्षण-संस्थाओंमें व्यायामशालाएँ और अखाड़े खोले, पहलवानों तथा व्यायाम-शिक्षकोंकी नियुक्ति की तथा होनहार बालकोंके लिए दूधकी व्यवस्था की। जब वे संस्थाओंमें जाते, सदा सुगठित और सुडौल विद्यार्थियोंको प्रोत्साहित करते और उन्हें पौष्टिक भोजन खानेकी सलाहके साथ भोजन प्राप्त करनेके लिए छात्रवृत्ति भी देते। वे कथनी-करनीमें कोई अन्तर नहीं रखते थे, इसी कारण अपने जीवनमें अपने विचारोंको क्रियात्मक रूप देनेमें सफल हुए।

कई बार मुझसे भारतीय-संस्कृतिके प्रचार-कार्यके सम्बन्धमें स्वर्गीय श्री बिरलाजीसे बातचीत हुई। यह सुझाव कि "देशमें ऐसे संस्थान खोले जायँ, जहाँ अपनी तथा संसारकी पुरातन संस्कृतिका पूर्ण ज्ञान ऐसे विशिष्ट विद्वानोंको दिया जाय, जो आजन्म अपनी संस्कृतिके प्रसार एवं प्रचार-सेवा करनेके लिए संकल्प करें। उन्हें यथेष्ठ वेतन दिया जाय तथा गृहस्थीके कारण पोषणकी चिन्तासे मुक्त किया जाय। विवाह करने पर या सन्तान उत्पन्न होने पर आवश्यक वेतन-वृद्धि की जाय और बालक-बालिकाओंकी शिक्षाके भारसे भी उन्हें निश्चिन्त किया जाय। भारतमें तथा अन्य देशोंमें संस्कृति प्रसारके केन्द्र खोले जायँ।" यह योजना उन्हें उपयुक्त लगी। इसको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए यथेष्ठ धनकी व्यवस्था तथा स्थायी रूप देनेके लिए एक कोषका संग्रह करना आवश्यक था। वे किसी कार्यको उठानेके पूर्व उसकी स्थायी व्यवस्था करनेमें विश्वास करते थे। इस कारण अपने बहुतसे प्रयासोंके लिए उन्होंने अनेक स्थायी कोषोंकी व्यवस्था की। समय आने पर इसकी भी व्यवस्था अवश्य होती, पर उनके देहावसानसे ऐसे अनेक कार्य सम्पादित होनेसे रह गये। वे युग-द्रष्टा और युग-स्रष्टा थे। भारतको उनके संसारसे उठ जानेसे जो क्षति हुई, उसकी पूर्ति सम्भव नहीं।

●

* * *

डॉक्टर भीखनलाल आत्रेय

परमसन्त गृहस्थ

○ ○ ○

शैशव अवस्थासे ही मैं तुलसीदासजीकी रामायणके प्रभावसे 'सन्त' शब्द और सन्तोंके लक्षणोंसे परिचित था, पर किसी सन्तसे वैयक्तिक सम्पर्क नहीं हो पाया था। मनमें यही धारणा बनी हुई थी कि सन्त कोई जटाधारी और लम्बी दाढ़ीवाला अर्द्धनग्न पुरुष होता होगा, जो अपना जीवन राम-भजन और लोकसेवामें ही बिताता होगा। १९४६के दिसम्बर मासमें मेरा यह विचार बिलकुल बदल गया, जबसे मुझे दिवंगत परमसन्त सेठ जुगलकिशोर बिरलासे परिचय प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। अप्रत्यक्ष रूपसे बिरला सम्बन्धी कई संस्थाओंसे मेरा बहुत दिनका सम्बन्ध रहा है। हिन्दू विश्वविद्यालय बिरला-छात्रावासका वार्डन और प्रधान वार्डेन बहुत दिनोंसे था, भारतीय-दर्शन और धर्म-विभागका 'बिरला अध्यापक' बहुत दिनोंसे था और मेरा वेतन बिरलाजीकी ओरसे मिलता था, जिनकी निधिके दानसे यह नया विभाग खुला था। बिरलाजीकी ओरसे जो गीता-परीक्षाएँ हुआ करती थीं और उन पर पुरस्कार मिला करता था, उनका प्रबन्ध करनेवाला मन्त्री मैं बहुत दिनों तक रहा। बिरला मन्दिरके दर्शन भी दिल्लीमें कई बार किए थे। विश्व-विद्यालयमें आते-जाते राजा बलदेवदासजी बिरला (बिरला बन्धुओंके पिताजी)के भी कई बार दर्शन कर चुका था, पर सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाके दर्शन और उनसे परिचय कभी नहीं हुआ था।

दिसम्बर, १९४६की एक सन्ध्याके समय जब कि मैं बिरला-छात्रावासकी तीसरी मंजिलके अपने कार्यालयमें बैठा हुआ था, किसी विद्यार्थीने मुझे आकर सूचना दी कि नीचे एक मोटरकारमें कोई सेठजी उतरकर डॉक्टर आत्रेयको पूछ रहे हैं और वे मिलना चाहते हैं। मैंने उनको तुरन्त साथ ले आनेके लिए कहा। इसके बाद ही उस विद्यार्थीके साथ मेरे छोटेसे कमरेमें सेठजी आ गये और मुझे प्रणाम करके एक कोनेमें ही उस विद्यार्थीके साथ कुर्सी पर बैठनेके बाद उन्होंने मुझे बतलाया कि वे जुगलकिशोर बिरला हैं और मुझसे मिलनेके लिए आए हैं।

मैं आश्चर्यचकित हो गया और कौतूहलवश मैंने उनसे कहा कि आपने ऊपर तक आनेका क्यों कष्ट किया, मुझे ही नीचे बुलवा लेते। उन्होंने सहज भावसे उत्तर दिया कि विद्वानोंके पास जाकर उनसे मिलना ही उचित होता है। इसके बाद अपने आनेका कारण बताते हुए उन्होंने आगे कहा कि दिल्ली और कलकत्तेमें उनके यहाँ कुछ जर्मन और अंग्रेज नौकर हैं, उनको वे भारतीय-संस्कृति, दर्शन और धर्मके अध्ययनके लिए पुस्तकें देते रहते हैं। उनको उन्होंने मेरी अंग्रेजीकी पुस्तक "योगवासिष्ठ" भी दी थी। उसकी उन लोगोंने बहुत प्रशंसा की। उसको बहुतसे विद्वान् विदेशियोंसे सुनकर उनके हृदयमें मुझसे मिलनेकी उत्कट इच्छा हुई और यह विचार उत्पन्न हुआ कि मुझको वे विदेशोंमें विशेषतः अमेरिकामें भारतीय-दर्शनका प्रचार करनेके लिए भेजें।

* * *

सेठजीने मुझसे प्रश्न किया कि 'क्या आप अमेरिका जायँगे ? मैं यात्राका व्यय वहन करूँगा।' मैंने कहा कि 'यदि आपकी इच्छा है तो मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। मैं विश्वविद्यालयका सेवक हूँ, अधिक दिन तो अनुपस्थित नहीं रह सकूँगा। पानीके जहाज द्वारा आने-जानेमें बहुत समय लगेगा, हवाई जहाज द्वारा अगर जाऊँ, तो थोड़े समयमें ही वापस आ जाऊँगा।'

उन्होंने बड़े सरल स्वभावसे कहा : 'ठीक है, पता लगाओ, क्या व्यय होगा ?'

इसके पश्चात् बहुत दिनोंतक उनसे सायंकाल विश्वविद्यालयकी सड़कों पर भेंट होती रही और वे हमेशा आग्रह करते रहे कि जल्दी ही यात्रा पर जाइए।

एक दिन उन्होंने मुझसे कहा कि 'आत्रेयजी, मेरे मस्तिष्कमें कोई कीड़ा घुसा हुआ है, जो बार-बार मुझे यह कह रहा है कि आत्रेयजीको भारतीय-दर्शन और धर्मका प्रचार करने अमेरिका अवश्य भेजो।'

कुछ दिन बाद वे दिल्ली चले गये और मुझे अमेरिका जानेके लिए लिखते रहे। मैंने हवाई जहाजका किराया मालूम करके उनको लिखा कि १० हजार रुपये व्यय होंगे। उन्होंने बड़ी उदारताके साथ १६,००० रु० मेरे पास भिजवा दिए और यह कहा कि विदेशमें खर्चकी कमी न बरतना, और जितने रुपयोंकी आवश्यकता हो, मैं भिजवा दूँगा।

जनवरी, १९४८में मैं थाईलैण्ड और चीन होता हुआ अमेरिकाके होनोलुलुमें जा उतरा और वहाँसे आरम्भ करके सारे उत्तर अमेरिकामें प्रायः सभी विश्वविद्यालयों और साँस्कृतिक संस्थाओंमें भारतीय-दर्शन, धर्म, संस्कृति पर व्याख्यान देकर योरोप और इंग्लैण्डमें भी यही करके भारत वापस आ गया और बिरलाजी-के दिल्लीमें दर्शन करके उनको अपनी यात्राका वृत्तान्त सुनाया, जिसको सुनकर वे एक सरल बालककी नाईं प्रसन्न हुए। तबसे वे मुझे मित्रकी तरह समझकर बड़े प्रेमसे आदरका वर्ताव करने लगे और जीवन-पर्यन्त ऐसा ही करते रहे। जब कभी मैं दिल्ली जाता था, तो उनका आग्रह था कि मैं बिरला मन्दिरकी अतिथिशालामें ठहरूँ और वहाँके सभी कर्मचारियोंको उनका आदेश था कि मुझे किसी प्रकारकी असुविधा न हो। इस यात्राके बाद उन्होंने मुझे दो बार जापान भेजा। मेरे जापान जानेसे पूर्व उन्होंने जापानमें एक हाथी और दो गायें और एक बैल भी भेजे थे, जिनके प्रदर्शनके साथ मेरा भी प्रदर्शन होता था। बिरलाजीसे सम्बन्धित होनेके कारण जापानमें मुझे बहुत आदर और सम्मान मिला और वहाँके बहुतसे लोगोंसे परिचय और मैत्री हो गयी, जो अबतक चली जा रही है।

बिरलाजीके हृदयमें भारत और हिन्दू-धर्मके लिए अमित श्रद्धा और भक्ति थी। अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवासंघ उनके हिन्दू-धर्मके प्रति प्रेमका और उनकी सेवाका एक बहुत बड़ा संगठन है, जो प्रतिवर्ष हजारों रुपये धर्म-प्रचार और धार्मिक संस्थाओंको अनुदान दिया करता है। लाखोंकी निधिसे बिरला-जी हजारों रुपये प्रतिवर्ष वितरित किया करते थे। जो विदेशी जन भारत आकर भारतीय विद्याओं, धर्म, दर्शन और संस्कृतिका अध्ययन करते थे, उनको छात्रवृत्तियाँ इसी निधिसे मिलती थीं और जो लोग विदेशोंमें जाकर भारतीय संस्कृतिका प्रचार करते थे, उनको भी इसी निधिसे सहायता मिलती थी। कितने ही दीन-दुखियोंको अपनी पुत्रियोंका विवाह करनेके लिए सहायता इसी निधिसे मिलती थी। मैंने जिन-जिन व्यक्तियोंको सहायताके लिए लिखा, सबको बिरलाजीसे सहायता मिली। उनमें मेरे प्रति अकारण आदर, प्रेम और उदारता कितनी थी, वह इस बातसे प्रकट होती है कि श्रीकृष्ण-जन्मस्थानकी भूमिके क्रय करनेवाले तीन नामोंमें मेरा भी नाम बिरलाजीने लिखवा दिया था। सेठ जुगलकिशोर बिरला, पण्डित मदनमोहन मालवीय और डॉक्टर भीखनलाल आत्रेय - ये तीन नाम श्रीकृष्ण-जन्मभूमिके क्रय-पत्रमें लिखवा दिए थे। यद्यपि सब व्यय स्वयं

* * *

बिरलाजीको ही करना पड़ा था। इस स्वार्थी संसारमें ऐसा निःस्वार्थ उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। दक्षिण भारत-के केरल प्रदेशमें हिन्दू महामण्डल नामक विराट् सभा वहाँके नेताओं श्री शंकर और श्री पद्मनाभन् द्वारा आयोजित हुई थी। उन्होंने उसके सभापतित्वके लिए बिरलाजीसे जब नाम माँगा, तब उन्होंने मेरा नाम प्रस्तावित कर दिया। उस एक लाखसे अधिक व्यक्तियोंकी विराट् सभाकी अध्यक्षता करनेके लिए मुझे बिरलाजीके व्यय पर क्विलोन जाना पड़ा। उनका मेरे-जैसे साधारण व्यक्तिमें इतना विश्वास था। अनेक बार उन्होंने कन्याकुमारी-के पास होनेवाले हिन्दू सम्मेलनोंमें अपने व्ययसे मुझे अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा। जब कभी मैं दिल्ली जाकर उनसे मिलता था, तो वे अपने सब काम छोड़कर बहुत देरतक बातें करते रहते थे। और इन बातोंमें ईश्वर और महात्माओंके सम्बन्धमें ही चर्चा हुआ करती थी तथा इस विषयमें भी कि हिन्दू-धर्मकी रक्षा कैसे हो और कैसे इसका संसार भरमें प्रचार हो। यही उनकी बड़ी भारी चिन्ता थी। मैंने अपने जीवनमें इतना सरल स्वभाववाला उदारचित्त, ईश्वरभक्त और दानी व्यक्ति दूसरा नहीं देखा, इसलिए मैं उनको परमसन्त कहता रहा हूँ। मेरी भगवान्‌से प्रार्थना है कि परलोकमें जहाँ कहीं भी उनकी आत्मा हो, उसको सुख और शान्ति प्राप्त हो। यदि उनको इस लोकमें फिर आना पड़े, तो ऐसे कुलमें उनका जन्म हो (सम्भवतः बिरला-कुलमें ही) जहाँ उत्पन्न होकर इस जीवनमें जो महान् कार्य उन्होंने किये हैं, उनसे भी अधिक महान्‌तम पुण्य-कार्य वे कर सकें।

●

श्रीगजाधर सोमाणी

प्रेरणा-प्रद तपस्वी-जीवन



परम आदरणीय पूज्य श्री जुगलकिशोरजी बिरला वास्तवमें एक विशिष्ट महापुरुष थे, जिनका दीर्घकालीन जीवन थोड़ेसे शब्दोंमें लिखा जाना सम्भव नहीं।

हिन्दू-समाजके तो वे एक ऐसे सुदृढ़ स्तम्भ थे, जिनके अभावकी पूर्ति अब कठिन है। हिन्दू-जातिके सर्वांगीण विकासके लिए उन्होंने जो कुछ किया, उसका इतिहास बहुत लम्बा है। यों तो बिरला-परिवारकी दानशीलता देश-भरमें प्रसिद्ध है, परन्तु श्रद्धेय जुगलकिशोरजीमें हिन्दू-जातिके प्रति सेवाकी भावना अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। आर्य-संस्कृतिके विकासके लिए उन्होंने अपने जीवनमें करोड़ों रुपये दान किये, यह भी सर्वविदित है। साथ ही उनके हृदयमें रातदिन हिन्दू-जातिमें उत्पन्न दुर्बलता एवं निरन्तर ह्रासके लक्षणोंसे सदा पीड़ा रहती थी। उनका धार्मिक दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। वे सनातन-धर्म, आर्य-समाज, सिख तथा बौद्ध आदि सभी धर्मों एवं सम्प्रदायोंके समन्वयके लिए सदा प्रयत्नशील रहते थे, ताकि सभी सम्प्रदाय एवं धर्मोंसे व्यापक हिन्दू-समाजके मूलभूत आदर्श एवं सिद्धान्तोंका पोषण हो सके।

'सादा जीवन उच्च विचार' के तो वे प्रतिमूर्ति थे। अनन्त सम्पत्ति एवं ऐश्वर्यके अधिपति होते हुए भी अभिमानसे वे बिलकुल दूर रहते थे। अपने मधुर भाषण एवं मिलनसारिताके लिए वे सुप्रसिद्ध थे। देश-भरके विभिन्न भागोंसे उनके पास असंख्य पत्र रोज आया करते थे, जिनमें हिन्दू-समाजके विभिन्न अंगोंमें उत्पन्न कठिनाई एवं दुर्बलताको मिटानेके लिए अपील रहा करती थी। यथासम्भव उन्होंने आर्य-संस्कृतिके विकाससे सम्बन्ध रखनेवाली सभी योजनाओंमें सहयोग देनेमें कभी हिचकिचाहट नहीं की - चाहे नवीन मन्दिरोंका निर्माण हो, चाहे प्राचीन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार हो; चाहे विधर्मी बननेवाले हिन्दुओंकी रक्षाका प्रश्न हो, चाहे भारतीय-संस्कृतिसे सम्बन्ध रखनेवाले किसी अन्य कार्यक्रमका सवाल हो; उनकी उदारता इस तरहके सभी विशाल कार्यक्रमोंके लिए रहती थी।

सोमाणी-परिवारका उनसे काफी निकटका सम्पर्क रहा है। विशेषकर मेरे पूज्य पिताजी श्री हजारीमलजी जब कलकत्तेमें व्यापार करते थे, तो नित्य ही सायंकाल उनसे मिलनेका कार्यक्रम रहता था। व्यापारके साथ-साथ श्रद्धेय जुगलकिशोरजी सदा ही हिन्दू-जातिके विभिन्न अंगोंके विकासकी चर्चा उनसे किया करते थे। यह बात तो आजसे ३० वर्ष पहलेकी है, जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि वे आरम्भसे ही अपने व्यापारके साथ-साथ सार्वजनिक सेवाके कार्यमें किस प्रकार प्रयत्नशील रहते थे। पूज्य पिताजी जब व्यापारसे निवृत्त होकर श्रीवृन्दावनमें रहने लगे, तो पूज्य श्री जुगलकिशोरजी अपने व्यापार-क्षेत्र कलकत्ताको छोड़कर दिल्ली रहने लगे। तब भी पत्र-व्यवहारसे एक दूसरेका सम्पर्क रहता था।

* * *

एक वार पूज्य पिताजीने वैकुण्ठवासके थोड़े दिन पहले ही श्रीवृन्दावनके सुप्रसिद्ध श्रीरंग-मन्दिरके जीर्णोद्धार-के वारेमें उनसे लिखा-पढ़ी की थी। किसी भी कार्यके प्रति उनकी लगन तथा पूज्य पिताजीके प्रति उनके प्रेमका फल यह था कि उन्होंने उस अपील पर तुरन्त ध्यान देकर करीब दो लाख रुपया एकत्र करनेकी योजना सम्पन्न की, जिससे श्रीरंग-मन्दिरके जीर्णोद्धारका विशेष आवश्यक कार्य पूरा हो गया। यह तो मैंने प्रसंगवश एक छोटी-सी घटनाका उल्लेख कर दिया। वास्तवमें सार्वजनिक सेवाके क्षेत्रमें उन्होंने जो करोड़ों रुपये दान किये हैं, उनका ज्वलन्त उदाहरण दिल्ली, वाराणसी, मथुरा, पिलानी आदि देशके सुप्रसिद्ध नगरोंमें मिलता हैं।

श्रद्धेय जुगलकिशोरजी वास्तवमें एक आदर्श कर्मयोगी रहे। सुधारवादी होते हुए भी वे भारतीय-संस्कृतिके मूलभूत सिद्धान्तोंमें अटल विश्वास रखते थे। वे तपस्वी महात्मा और सन्तोंकी खोज किया करते थे। इसी प्रकार तीर्थोंमें भी वड़ी श्रद्धा रखते थे। अयोध्या एवं मथुरा, जहाँ भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्णका अवतार हुआ, वहाँ भगवान्‌की जन्मभूमिके ऐतिहासिक स्थानोंका पुनरुद्धार तथा उनके विकासके लिए उन्होंने वास्तवमें ऐतिहासिक प्रयत्न किये हैं। उनके जीवनके ऐसे सैकड़ों कार्य हैं, जो जनता और जनार्दनकी सेवाके अभिन्न अंग बने हुए हैं।

पूज्य जुगलकिशोरजी मेरे प्रति वड़ा स्नेह रखते थे। जव कभी भी उनकी सेवामें उपस्थित होने-का अवसर आता था, सात्विक जीवन एवं भारतीय-संस्कृतिके विकासके प्रयत्न करनेके लिए मुझे उनसे प्रेरणा मिलती थी। ऐसे महान् सन्त राजर्षिका तपस्वी जीवन महान् प्रेरणा देनेवाला है।

●

श्रीप्रभुदयाल हिम्मतसिंहका

प्रेरणाके स्रोतवाही

⊙ ⊙ ⊙

श्री जुगलकिशोरजी विरलाका जन्म धर्मोद्धारके लिए हुआ था - यह कथन उनके जीवन-पर्यन्त किए गए धर्मके अभ्युदय, उत्थानके कार्योंसे प्रमाणित है। धर्म ही उनके जीवनका सर्वस्व था। सन् १९११-१२में जब मैं कलकत्तामें पढ़ता था, तभीसे विरलाजीके निकट सम्पर्कमें आनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हो गया था ? अनासक्त भावसे कर्मयोगीकी तरह वे कलकत्तेमें व्यवसाय करते थे। समृद्धिशाली, कीर्तिशाली परिवारके अतिरिक्त स्वभावसे और व्यवहारसे सन्त पुरुष थे; इसलिए समाजमें उनका ऊँचा स्थान था। कोई ऐसा सार्वजनिक कार्य नहीं होता था, जिसमें उनका सहयोग न हो। उस समय जितनी भी सार्वजनिक संस्थाओंकी नींव पड़ी, उनकी उन्होंने तन-मन-धनसे मदद की।

मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी आज देशकी प्रमुख सार्वजनिक संस्थाओंमेंसे एक है और वड़े-बड़े सेवा-कार्य इसके द्वारा हुए हैं और हो रहे हैं। विरलाजी इस संस्थाके संस्थापक हैं और उन्हींकी कल्पना इसमें साकार हुई है।

मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटीकी स्थापनाके साथ एक छोटी-सी घटनाका सम्वन्ध है। सन् १९१२ की बात है। कलकत्तेके वड़ा बाजार क्षेत्रमें एक व्यक्ति छतपर से गिरकर घायल हो गया था। अब उसकी चिकित्सा कहाँ हो, यह समस्या सामने आयी। जो अस्पताल वगैरह उस समय थे, उनमें पर्याप्त स्थान नहीं था। जुगलकिशोरजीको प्रेरणा हुई कि किसी एक ऐसी संस्थाकी स्थापना की जाय, जहाँ पर वीमार एवं दुर्घटनाग्रस्त लोगोंकी चिकित्सा और परिचर्याकी समुचित व्यवस्था हो। उसी कल्पनाको मूर्त रूप देनेके लिए पाँच सदस्योंको लेकर साधारण ढंगसे यह काम आरम्भ किया गया, जिसका विस्तार आज सर्वविदित है।

त्रस्त, दीनदुखी मानव मात्रके लिए उनका हृदय सदैव दयासे भरा रहता था। वे किसीका कष्ट न देख सकते थे, न सहन कर सकते थे। दुखियोंका दुःख दूर करनेके लिए वे हमेशा प्रयत्न किया करते थे। छुआछूत, जात-पाँत आदि भेद-भावोंको वे हिन्दू-समाजका कलंक मानते थे, उन्हें दूर करनेके लिए सदा प्रयत्नशील रहे। उन्होंने जितने भी मन्दिर तथा धर्मशालाएँ बनवायीं, उनमें प्रत्येक हिन्दूमात्रका प्रवेश बिना रोक-टोक होता है।

हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाजसे श्री विरलाजीको विशेष प्रेम था। उनके कलकत्ता-निवास-कालमें कई ऐसी घटनाएँ उनके सामने आयीं, जिसमें परित्यक्ता और पथभ्रष्टा हिन्दू कन्याएँ अवला-आश्रम न मिलनेके कारण मुसलमानोंके साथ भाग जाती थीं और विधर्मी बन जाती थीं। अज्ञानतावश हुई कुछ भूलोंके कारण जिन बहनोंको समाज तिरस्कार करके ठुकरा देता था, वे विधर्मी न हों, तो कहाँ जायँ? उनकी वेदना श्री विरला-

* * *

जीके अन्तस्तल तक पहुँची। ऐसी असहाय अवलाओंको शरण देनेके लिए श्री बिरलाजीने कलकत्तामें एक कमरा लेकर हिन्दू अवला-आश्रम और अनाथालयके नामसे एक संस्थाकी स्थापना सन् १९२१-२२में की, जिसका मैं अध्यक्ष था। आरम्भमें एक कन्याको आश्रय दिया गया। आगे चलकर यह संख्या ५००से अधिक हो गयी। जिस छोटेसे स्थानको लेकर कार्यारम्भ किया गया था, वह अव पर्याप्त नहीं था। इसलिए इस संस्थाको लिलुआमें स्थानान्तरित किया गया। सेठ रामगोपालजी मोहताने लिलुआमें स्थित अपने विशाल उद्यानको बड़ी उदारतापूर्वक हमें इस कामके लिए सौंप दिया। ३० वर्षतक यह संस्था कार्य करती रही। हजारों नारियों तथा अनाथ बच्चोंको इसमें शरण मिली और उनको समाजका उपयोगी अंग बनानेकी चेष्टाएँ की गयीं। बहुतोंको इज्जत-आबरूके साथ जीवन-यापन करनेके योग्य बनाया गया। बिरलाजीका सदा आश्वासन रहता था कि कोई भी महिला खर्चके अभावमें लौटायी न जाय। खर्चमें जो कमी रहे, वह उनसे पूरी कर ली जाय, ऐसा उनका खुला आदेश रहता था। इस संस्थाको चलानेके लिए सदैव उनकी सहायता मिलती रही। अब यह आश्रम वंग सरकारको सौंप दिया गया है।

देशकी पिछड़े वर्गकी जातियोंमें मिशनरियोंके प्रचारसे धर्म-परिवर्तनकी घटनाएँ पहले भी होती थीं और अब भी होती हैं। श्री बिरलाजी पूरे प्रयत्नशील थे कि इस तरहसे धर्म-परिवर्तन न हो। असममें खासी जातियों एवं सन्थाल परगनाके सन्थालोंमें ये घटनाएँ अधिक मात्रामें सुननेमें आती थीं। वे इन समस्याओंके प्रति पूरे जागरूक थे। सन्थाल परगनामें "सन्थाल पहाड़िया सेवा-मण्डल"की स्थापना कर दलितों, अरण्यवासियोंकी हर प्रकारकी सेवाएँ की जाने लगीं। यह संस्था अब भी कार्यरत है। शिलाँग तथा चेरापूजीमें इसी तरहके कामोंके लिए श्री बिरलाजीने सहायता दी तथा उधरके लोगोंकी आस्था हिन्दू-धर्मकी ओर बढ़ानेके लिए मन्दिर तथा बौद्ध विहार भी बनवाये। वे केवल आर्थिक सहायता देकर ही नहीं रह जाते थे, उन संस्थाओंके कार्यकलापों तथा गतिविधियोंके बारेमें पूरी जानकारी रखते थे।

श्री बिरलाजी हिन्दू-समाजको सर्वांग सुन्दर देखना चाहते थे। उनकी प्रबल अभिलाषा रहती थी कि हिन्दू-समाज शक्तिशाली, ज्ञानवान् और चरित्रवान् बने। समाजको स्वस्थ तथा शक्तिशाली बनानेके उद्देश्य से उन्होंने जगह-जगह व्यायामशालाएँ, अखाड़े आदि बनवाये। वे वीरोंका बहुत आदर करते थे। इसीलिए उन्होंने अपने मन्दिरोंमें भी भारतीय इतिहासके वीर और वीराँगनाओंके चित्र अंकित करवाये।

अच्छे कामोंमें आमदनीसे अधिक खर्च करना उनकी आदत हो गई थी। हम उनसे कभी-कभी कहते थे कि याचकोंके रूपमें आनेवाले ठगोंके द्वारा आप ठगे भी जाते हैं, तो उनका यही उत्तर मिलता कि "उनमेंसे कुछ ठग हो सकते हैं, पर कुछका उपकार तो होता ही है। कुछ ठगोंके कारण दयाके पात्रोंको दानसे वंचित रखना भी तो अच्छा नहीं !" ऐसी निर्मल वृत्ति थी उनकी।

उनके विषयमें जितना लिखा जाय, थोड़ा है। उनकी सेवाएँ अवर्णनीय हैं। उनका आदर्श सबके लिए अनुकरणीय है। विशेषकर ऐसे पुरुष, जिनपर लक्ष्मीकी कृपा है, बिरलाजीके जीवनसे बहुत-सी शिक्षाएँ ले सकते हैं। वे सीख सकते हैं कि धनका सही उपयोग क्या है और किस तरहसे धनका उपयोग करनेसे अपना तथा जगका कल्याण हो सकता है, इहलोक और परलोक सुधर सकता है। वे सद्प्रेरणाके स्रोत थे। उनके पास बैठकर एक अपूर्व पवित्रता स्वतः ही उत्पन्न होती थी, मनको शान्ति मिलती थी।

बिरलाजीकी सेवाओंसे देश बहुत उपकृत हुआ है।

●

* * *

श्रीसत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार

ज्योति-शिखर



सन् १९३८-३९की बात है। मैं उस समय गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालयका उपकुलपति था, अवकाश ग्रहणके २० वर्ष बाद फिर १९६०से '६६ तक वहाँका उपकुलपति रहा। इस सिलसिलेमें मुझे कई बार स्वर्गीय सेठ जुगलकिशोरजीके सम्पर्कमें आनेके अनेक अवसर प्राप्त हुए। १९३८-३९में एक बार मैं उनसे दिल्लीमें मिला और बात-बातमें उनसे निवेदन किया कि अगर बिरला-मन्दिरके अनुरूप गुरुकुल विश्वविद्यालयमें भी एक वेद-मन्दिर बन जाय, तो वह हरिद्वारके यात्रियोंको वैदिक-संस्कृतिके लिए प्रेरणाका स्रोत बन जाय। सेठजीने बात तो सुन ली, परन्तु 'हाँ' नहीं भरी। मैं जब दिल्लीसे लौटने लगा, तब 'अर्जुन'के किसी सम्वाददातासे भेंट हो गयी और बातचीतके सिलसिलेमें उनसे मैंने सेठजीसे हुई उस बातका जिक्र कर दिया। सम्वाददाता लोग तो किसी बातसे चूकते नहीं, उन्होंने झटसे 'अर्जुन'में यह समाचार दे दिया कि सेठजीके सम्मुख गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालयके उपकुलपतिने गुरुकुल-भूमिमें वेद-मन्दिर बनवानेका प्रस्ताव रखा है और आशा है, सेठजी शीघ्र ही इस प्रस्ताव पर विचार करेंगे। मैं दिल्लीसे चला आया, अगले दिन समाचार छपा और जिस दिन समाचार छपा उसी रात्रि सेठ जुगलकिशोरजी रातके नौ बजे अपनी कारसे गुरुकुल आ पधारे। उन्हें ऐसे समय आने पर मुझे आश्चर्य हुआ। उन्होंने मुझसे पूछा कि 'आपने यह समाचार क्यों छपवाया?' मैंने उनके सामने सारी स्थिति स्पष्ट कर दी और कहा कि यह तो सम्वाददाताका दोष है, परन्तु जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो समझता हूँ कि जब आपने मेरे प्रस्ताव पर 'ना' नहीं की, तो आप-जैसे व्यक्तिके लिए मैं उसे 'हाँ' ही समझता हूँ। सेठजी हँसने लगे और मुझसे कहा कि 'अच्छा बतलाइए, अगर वेद-मन्दिर यहाँ बने, तो उसके लिए कौनसी जगह ठीक रहेगी?' हम लोग उनके साथ रातके ११ बजे तक सब जगह देखते रहे। एक जगह सेठजीको पसन्द आयी, परन्तु वे यह कहकर चले गए कि 'यह मत समझिएगा कि मैंने यह कार्य अपने ऊपर ले ही लिया है।' उन्होंने इतना ही कहा कि 'अगर इस भूमिमें वेद-मन्दिर बने तो उक्त स्थान ठीक रहेगा।' अगले दिन वे दिल्ली चले गए।

सेठजीके दिल्ली चले जानेके तीन दिन बाद बिरला-मन्दिरकी रूप-रेखा बनानेवाले इञ्जीनियर मेरे पास आए और कहने लगे कि बिरलाजीने उन्हें गुरुकुल-भूमिमें वेद-मन्दिरका मानचित्र बनानेके लिए भेजा है। हम लोगोंके उत्साहका ठिकाना न रहा। वेद-मन्दिरका मानचित्र बना, खुदाई शुरू हो गयी और बिरला-मन्दिरके ही अनुरूप एक भव्य वेद-मन्दिर सालभरमें खड़ा हो गया। इसके निर्माणमें कई लाख रुपए व्यय हुए। वेद-मन्दिर बननेके बाद उसकी देख-रेखका व्यय भी वे देते रहे, उसकी टूट-फूट, उसमें समय-समय पर परिवर्तन आदि सबका व्यय उनकी तरफसे आता रहा। यथासमय सेठजी भी गुरुकुल आते और हरिद्वारके यात्रियोंको वेदमन्दिरके

* * *

लिए गुरुकुल आते देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ करते थे। मुझे यह सोचकर आश्चर्य होता है कि कितनी महान् संस्कारी आत्मा थी उनकी कि विचाररूपी बीजको उनकी उर्वरा आत्म-भूमिमें पुष्पित-पल्लवित होनेमें देर क्या, क्षण भी नहीं लगते थे।

इसी प्रकारका एक और संस्मरण है। मैं कलकत्तामें गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालयके लिए धन-संग्रहार्थ गया हुआ था। कलकत्ते जाता और सेठजीसे न मिलता : यह कैसे होता ? सौभाग्यसे सेठजी उन दिनों वहीं थे। मैं उनके दर्शनके लिए उनके निवास-स्थान पर जा पहुँचा। बातों-बातोंमें मैंने उनसे कहा कि हमें गोशालाके निर्माणके लिए कुछ धन-राशिकी अत्यन्त आवश्यकता है। उन्होंने बात सुन ली, परन्तु 'हाँ' उसमें भी नहीं भरी। इतना भर उन्होंने पूछा कि 'आपका उत्सव कब है ?' मैंने बता दिया, अप्रैलकी १३-१४ तारीख-को हर साल उत्सव होता है। कलकत्तेमें गुरुकुलके लिए जो कुछ मिला, उसमें बिरलाजीसे कुछ नहीं मिला। यह सब सोचकर चित्त कुछ खिन्नसा था, परन्तु किसीसे जबर्दस्ती कोई कुछ थोड़े ही ले सकता है। मैं गुरुकुल चला आया। उत्सव १० अप्रैलसे शुरू था, ११ तारीखको कलकत्तेसे सेठजीका तार आया कि हम अपने हरिद्वार के मुनीमको तार दे रहे हैं कि वह आपको गुरुकुलमें गोशालाके लिए १० हजार रुपए दे दे। शाम तक सेठजीका मुनीम १० हजार रुपया लेकर मेरे कार्यालयमें विराजमान हो गया। मैंने अपने मन-ही-मन कहा, इसको कहते हैं : "दानवीर !"

तीसरा संस्मरण सेठ जुगलकिशोरजीकी सूझ-बूझ और विद्या-प्रेमका ही है। मैंने ग्यारहों उपनिषदोंका धारावाही हिन्दीमें अनुवाद किया था। मेरा विचार था, क्योंकि यह युग जनतान्त्रिक युग है, इसलिए उपनि-षदोंको तथा सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मयको संस्कृत भाषाके स्थानमें शुद्ध हिन्दीमें कर देना चाहिए। इस प्रकार जो पुस्तकें छपें, उनमें सिर्फ हिन्दी हो, संस्कृतका झमेला न रहे। आखिर, पढ़नेवालेको भावसे मतलब होता है; भाषा से नहीं। इसी आधार पर गीताका भाष्य होना चाहिए। समय था जब आध्यात्मिक विचार संस्कृतमें कहे-लिखे जाते थे, कभी प्राकृतमें उनका समावेश हुआ, वर्तमान युगमें उपनिषदों तथा गीताके विचारोंको शुद्ध सरल हिन्दीमें लिख देना चाहिए, जिससे पढ़नेवालेके पल्ले कुछ पड़े। मैंने हिन्दीमें लिखा अपना धारा-वाही उपनिषदोंका भाष्य श्री सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाको उनके दिल्लीके पते पर उनकी सम्मतिके लिए भेज दिया। कुछ दिनों बाद सेठजीका पत्र आया, जिसमें लिखा था कि 'मैंने आपका भाष्य पढ़ा, बहुत सरल, बुद्धिग्राह्य है; परन्तु संस्कृत भाग आपको अवश्य देना चाहिए, क्योंकि सारे भाष्यकी आत्मा तो संस्कृतमें ही निहित है।' उनका यह परामर्श था कि 'भले ही लोग संस्कृत न समझें, अगर भाष्यमें संस्कृत भाग नहीं दिया जायगा, तो पुस्तकका कोई खरीदार ही नहीं मिलेगा। लोग वेदोंके ग्रन्थोंका संग्रह इसलिए नहीं करते, क्योंकि वे वेदका अर्थ समझते हैं, वे संग्रह इसलिए करते हैं, क्योंकि उनकी इस देववाणीमें श्रद्धा है। सेठजीके परामर्श पर जब मैंने ग़ौर किया, तो मेरी भी समझ मेंआया कि अगर मैं सिर्फ हिन्दी भाष्य ही छपवाता तो वह मेरे गोदाममें ही पड़ा सड़ता, उसका कोई ग्राहक न होता। उनके परामर्शसे मैंने उपनिषदों तथा गीताका हिन्दीमें जो धारावाही भाष्य किया, उसमें संस्कृत भाग पूराका पूरा दिया, जिससे उसका विद्वानोंमें अच्छा चलन हुआ। सेठजीकी इस क्रियात्मक बुद्धिके लिए ग्रन्थ प्रकाशित होने के बाद मुझे उन्हें धन्यवाद देना पड़ा। वे इन भाष्योंकी अनेक प्रतियाँ समय-समय पर जनतामें तथा धर्म-प्रेमियोंमें बाँटनेके लिए मँगवाते रहते थे।

मैं जब कभी उनके विषयमें सोचता हूँ, बरबस मुखसे यही निकलता है कि उनके शरीरमें एक दिव्य आत्मा थी, जो संसारसे कुछ लेने नहीं; किन्तु देने आयी थी। ऐसी विभूतियाँ जब विश्वमें जन्म लेती हैं, तब इसे छोड़ते हुए पहलेसे बेहतर बनाकर चली जाती हैं। उनका जीवन, उनके कर्म : ज्योति-शिखर बनकर हमें प्रकाश देते रहेंगे। ●

* * *

श्रीघनश्यामसिंह गुप्त

वर्तमान-युगके भामाशाह

⊙ ⊙ ⊙

श्री जुगलकिशोरजी विरला अमृत रूपी गीताके सुधी भोक्ता थे। गीताके अनुसार स्थितप्रज्ञ होनेका सदा यत्न करते रहे। वे आहार-विहार और कर्मोंके गुण-दोषको देखकर तथा समयानुकूल सोना, जागना आदि कृत्य अपने जीवनमें करते रहे। किन्तु सबसे अधिक जिस बातकी मुझे याद है, वह गीताके इस श्लोकका उनके द्वारा पालन है:

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रेच तद्दानं सात्विकं स्मृतम्॥

वे लाखों रुपया दिया करते थे, परन्तु सदा इस बातका ध्यान रखते थे कि उनका दान देश और धर्मके हितमें सत्पात्रके हाथमें ही जाए।

मुझे स्मरण है कि मई-जून, सन् १९३९में हैदराबाद रियासतके तत्कालीन निजामके अत्याचारोंके प्रतिरोधमें जब आर्यसमाजकी ओरसे सत्याग्रह किया गया था, तब बिरलाजीने हमें हर प्रकारकी सहायता दी थी। उस समय मैं सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभाका प्रधान था। मुझे इसका भी स्मरण है कि उन्होंने मुझे इसी प्रकारके धार्मिक तथा देशहित सम्बन्धी कार्योंमें ही लगे रहनेके लिए खर्च आदिके निमित्त लगभग बीस लाख रुपया देनेका प्रस्ताव किया था, किन्तु मैंने ऐसा करनेमें अपनी असमर्थता उनको बतायी।

हैदराबादकी हमारी पूर्णविजय-सम्बन्धी जो विराट् सभा दिल्लीमें २८-८-३९को हुई थी, जिसमें लगभग पचीस-तीस हजार आदमी थे। उस सभामें सेठ जुगलकिशोरजी बिरला भी उपस्थित थे और यदि मैं भूल नहीं करता हूँ तो उन्होंने हमारे कार्योंमें सहानुभूति भी प्रदर्शित की थी।

मुझे इसका भी स्मरण है कि लोक-सभाके लिए दो-तीन उम्मीदवार अपने-अपने क्षेत्रोंसे खड़े होना चाहते थे। परन्तु उनके पास व्ययके लिए पर्याप्त धन नहीं था। ऐसी विषम स्थितिमें मैं स्वर्गीय बिरलाजीसे मिला और उनको धनसे सहायता देनेके लिए कहा। उनकी स्वीकृति पाकर मैंने उन मित्रोंको बिरलाजीसे मिलनेके लिए कहा। उन्होंने मुझे बताया कि जितनी उनकी माँग थी, उससे भी अधिक धन उन्होंने मित्रोंको दिया और इसीके कारण वे चुनावमें पूर्णरूपसे सफल हुए। आज भी वे लोकसभाके प्रमुख सदस्योंमें से हैं। यह उनकी योग्य सज्जनको पहचाननेकी बुद्धि थी और आवश्यकताके अनुसार थी दान देनेकी उनकी प्रवृत्ति।

सिन्धके तत्काल मुस्लिम लीगी शासन द्वारा १९४४-४५में जब महर्षि दयानन्द कृत 'सत्यार्थ प्रकाश'के १३वें समुल्लास पर इसलिए प्रतिबन्ध लगाया गया था कि उसमें इस्लाम धर्मके विरुद्ध कटु आलोचना है,

तब भी आर्यसमाजकी ओरसे उसके प्रतिरोधमें जो सत्याग्रह किया गया था और जो हैदराबाद सत्याग्रहके समान ही पूर्ण सफल रहा, उसमें भी बिरलाजीका पूर्ण सहयोग रहा।

आर्य (हिन्दू) धर्मकी रक्षाके लिए वे सदा प्रयत्न करते रहे और अनेक सच्चे साधु-सन्तोंको वे दिल खोलकर दान देते रहे। ऐसी पाठशालाओं और विद्यालयोंको जहाँ धार्मिक शिक्षा दी जाती रही और जहाँ संस्कृतका पढ़ाना भी होता रहा, बिरलाजी दान देते रहे। साधु-महात्माओंको आश्रम चलानेके लिए या तीर्थयात्राके लिए भी बिरलाजी दान दिया करते थे।

वे अपने सभी कार्योंको परमेश्वरको ही समर्पण करनेका यत्न करते रहे और नरकके जो तीन प्रकारके द्वार हैं और जिनसे आत्माका विनाश होता है, अर्थात् कामना करना, क्रोध करना और लोभ करना - उन तीनोंका ही त्याग करनेका वे यत्न करते रहे और अपने जीवनके अन्त समयमें भी उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके इस कथनको चरितार्थ किया :

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

भगवान् श्रीकृष्णको प्रणामाञ्जलि निवेदन कर उन्होंने परमधाम प्राप्त किया।

●

* * *

आचार्य श्रीविश्वबन्धु

दूरदर्शी श्रीजुगलकिशोर बिरला

⊙ ⊙ ⊙

श्री जुगलकिशोरजी बिरलाका २३ जून, १९६७को दिल्लीमें शरीरान्त हुआ। ज्योंही यह शोक-भरा समाचार प्रसारित हुआ, तो देश और विदेशके कोने-कोनेसे यह प्रतिध्वनित हो उठा कि प्राचीन भारतीय-संस्कृति और आर्य (हिन्दू) धर्मका एक परम भक्त और पोषक चल वसा। यद्यपि उस समय उनकी अवस्था ८४ वर्षकी थी, तथापि सर्वत्र यही अनुभव हो रहा था कि अभी और अधिक समय तक उनका हमारे मध्यमें जीवित रहना हम सबके लिए लाभदायक होनेके कारण अत्यन्त अपेक्षित था। सभीका ध्यान मुख्य रूपसे उनके लोकोपकारक नानाविध कार्यक्रमोंके महत्व पर केन्द्रित हो रहा था और सब इस आशंकासे चकित और भयभीत हो रहे प्रतीत हो रहे थे कि श्री बिरलाजीके हमारे मध्यसे सदाके लिए विदा हो जानेके कारण वे कार्यक्रम बन्द न हो जायँ या उनकी गति धीमी न पड़ जाय।

वाणिज्य-व्यापारमें लोक-विलक्षण सूझबूझ और साँस्कृतिक एवं धार्मिक सेवा-कार्योंमें ऊँचे पाए की परम उदार आस्था - ये दोनों ही बातें उन्होंने पैतृक उत्तराधिकारमें पायी थीं। उनके पिता राजा बलदेवदास बिरला जहाँ एक कुशल व्यापारी थे, वहाँ वेदान्तमें सच्ची आस्था वाले दानवीर भी थे।

श्री जुगलकिशोरजीकी ऐसी धारणा थी, जो बहुत कुछ ठीक थी कि "भारतमें बसनेवाले विभिन्न-धर्मी लोग तभी परस्पर सहायक होते हुए आगे बढ़ सकेंगे; जब हिन्दुओंमें आन्तरिक एकता, उदारता, सहिष्णुता और क्रियात्मक रूपसे अपने धर्ममें प्रीति होगी।" उनका अहिन्दुओंसे कोई द्वेष नहीं था। वे खूब समझते थे कि सम-बल और सजीव लोगोंका ही परस्पर मेल-मिलाप राष्ट्रीय जीवनमें सन्तुलन पैदा कर सकता है। इसी भावसे प्रेरित होकर वे हिन्दुओंके विभिन्न सम्प्रदायोंसे समान रूपसे प्रेम करते थे और चाहते थे कि वे लोग भी आपस-में इसी प्रकार उदार और प्रेम-युक्त व्यवहार करें।

बाबू जुगलकिशोरजीसे मेरी सर्वप्रथम भेंट दिल्लीमें उन दिनों हुई, जब वे स्वयं अपने निरीक्षणमें श्रीलक्ष्मीनारायणजीका मन्दिर बनवा रहे थे। उन्होंने बड़े प्रेमपूर्वक मेरे साथ होकर मुझे जितना कुछ उस समय तक बन चुका था, उसे दिखाया। मैं उन दिनों जब भी दिल्ली जाता था तो उक्त मन्दिरके क्षेत्रमें ही गोल मार्केट-के पास डॉक्टर लेनमें अपने विश्वेश्वरानन्द संस्थानके प्रथम मन्त्री स्वर्गीय डॉक्टर केदारनाथजीके यहाँ ठहरा करता था। इसलिए वहाँसे सुविधापूर्वक मन्दिरमें पहुँचकर श्री बिरलाजीसे प्रायः मिलता रहता था। वे गर्मी और सर्दीकी परवाह न करते हुए बड़ी श्रद्धा और निष्ठाके साथ मन्दिरको अपनी आँखोंके सामने बनवानेमें लगे रहते थे। उन्हीं दिनों मेरे चित्त पर उनकी सादगी, सरलता और सद्भावनाका विशेष प्रभाव पड़ा, जो बराबर बना रहा।

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी हमारे संस्थानके अन्यतम संस्थापक ट्रस्टी थे। १९२६के आसपास श्री घनश्यामदास बिरलाको भी इस ट्रस्टका सदस्य बनाया गया था। इस सम्बन्धमें मुझे दिल्लीके बिरला हाउसमें, जहाँ पर मालवीयजी प्रायः ठहरा करते थे, जानेका अवसर मिलता था और वहीं पर श्री जुगलकिशोरजीसे भी कभी-कभी भेंट हो जाती थी।

जुलाई, १९३४में विश्व बौद्ध सम्मेलन तोक्यो (जापान) में होने जा रहा था। इस बारेमें उन सभी देशोंमें, जहाँ बौद्ध लोग प्रधान रूपसे बसते हैं, इस बारेमें विशेष उत्साह पाया जाता था और उक्त सम्मेलनमें भाग लेनेके लिए प्रतिनिधि नियुक्त किए जा रहे थे। भारतमें भी यह समाचार पहुँचा, परन्तु यहाँ पर बौद्धों-की कहीं ऐसी बस्ती नहीं थी, जो इस सम्बन्धमें विशेष उत्साह दिखाती। श्री जुगलकिशोरजी ही यहाँ पर एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने उक्त सम्मेलनका विशेष रूपसे महत्व समझा। उनकी दृष्टिमें संसार भरके बौद्धोंको भारतके हिन्दुओंके साथ उनकी एकताका सन्देश सुनाने और उससे उन्हें प्रभावित करनेका यह एक सुनहरा अवसर था। बिरलाजीने अपने हृदयकी तड़पको हिन्दू सभाके तत्कालीन प्रधान और इन पंक्तियोंके लेखक-के गुरु स्थानीय श्रद्धाभाजन, स्वर्गीय भाई परमानन्दजीके सामने रखा और प्रेरणा की कि हिन्दुत्वके प्रतिनिधिके रूपमें भारतसे अवश्य किसी व्यक्तिको उक्त सम्मेलनमें भाग लेनेके लिए जापान भेजा जाए। श्रीभाईजीके विचार पहलेसे ही इसी प्रकारके थे। इसलिए उन्होंने झट मुझे लाहौर सन्देश भेजा कि मैं इस कार्यभारको सँभालनेके लिए जापान जानेको उद्यत हो जाऊँ।

तदनुसार मैं जून, १९३४में श्रद्धेय बिरलाजीकी प्रेरणाका आदर करते हुए जापानको चल पड़ा। वहाँ पर बौद्ध जगत्के छःसौ प्रतिनिधियोंने सम्मेलनमें भाग लिया। मैं धार्मिक रूपसे बौद्ध न होनेके कारण प्रतिनिधि तो नहीं बनाया जा सकता था, परन्तु भारतके राष्ट्रीय क्रान्तिकारियोंके शिरोमणि स्वर्गीय रासबिहारी बोसके, जो वहीं रहते थे, विशेष प्रभावके फलस्वरूप सम्मेलनके अधिकारियोंने मेरा विशेष सम्मान्य अतिथियोंके रूपमें स्वागत किया और मेरे लिए प्रवचन करनेकी अधिकतम सुविधा प्रदान की। सम्मेलनकी समाप्ति पर मैंने जापान, चीन, हाँगकाँग, सिंगापुर, मलयेशिया, थाईलैण्ड और बर्मामें लगभग १०० स्थानों पर भारतीय संस्कृतिके सम्बन्धमें व्याख्यान दिए।

१९४०के आसपास मैं लगभग एक मास-पर्यन्त कलकत्तामें रहा और श्री जुगलकिशोरजीसे बराबर मिलता रहा। अनेक बार हम सायं समय बड़े मैदानमें साथ-साथ सैर भी करते रहे। उनके एक मित्र स्वर्गीय श्री नारायणदास बाजोरिया भी साथ होते थे। उस समय आर्यसमाजकी ओरसे हैदराबादमें सत्याग्रह चल रहा था, क्योंकि निजामने सत्यार्थ प्रकाशके प्रचार पर रोक-टोक कर रखी थी। श्री बिरलाजीकी इस आन्दोलनके साथ पूरी सहानुभूति थी और वे इस सम्बन्धमें अपनी ओरसे पूरी सहायता कर रहे थे। उन्हीं दिनों मेरे वैदिक पदानुक्रम कोशके दो भाग छप चुके थे, जिन्हें मैंने श्री बिरलाजीको भेंट करना चाहा। परन्तु उन्होंने उन पुस्तकोंको तब हाथ लगाया, जब उन्होंने उनका दाम पहले चुका दिया। मैंने बहुत कहा कि मैं इन पुस्तकोंको आपके पास बेचनेके लिए नहीं लाया, परन्तु वे अपनी बात पर डटे रहे और दाम दे ही दिए। उन्हीं दिनों मुझे यह देखनेका भी अवसर मिला कि अपने वाणिज्यमें कितने दक्ष हैं। लगभग पाँच बजे सायंका समय था। वे ऊपर अपने कार्यालयमें बैठे थे, जब नीचे एक्सचेंजके मैदानमें कुछ शोर-सा सुनाई दिया, तभी उन्होंने मुझसे कहा कि मैं टेलीफोनसे कुछ आवश्यक बातें नीचेवाले लोगोंसे कर लूं। कुछ मिनट पीछे जब वे बातें कर चुके, तो मैंने पूछा कि यह मामला क्या था। तब उन्होंने बताया कि इसी समय प्रतिदिन यहाँ लाखोंके सौदे हो जाते हैं और टेलीफोन द्वारा इसी कार्यमें व्यस्त था।

* * *

१९४३के आसपास सनातनधर्म प्रतिनिधि सभा, पंजाबके मन्त्री तथा हमारे संस्थानकी कार्यकारिणी समितिके सदस्य स्वर्गीय गोस्वामी गणेशदत्तजीके विशेष निमन्त्रण पर सभाके विशेष कार्यक्रमके निमित्त श्री बिरलाजी लाहौर पधारे थे। उस अवसर पर मैंने सभाके नये भवनमें श्री बिरलाजीसे भेंट की। श्री बिरलाजी चाहते थे कि सनातनधर्म सभाकी ओरसे भी दलितोंका उद्धार करने और विधर्मियोंको हिन्दू-धर्ममें दीक्षित करनेके कार्यमें भाग लिया जाय। इस प्रसंगमें श्री गोस्वामीजीने ऐसा संकेत किया था कि उनकी सभा अवश्य इन कार्योंमें भाग लेना चाहती है और यथासम्भव ले भी रही है। उसी दिन श्री बिरलाजी श्री गोस्वामीजीके साथ संस्थानका कार्य देखनेके लिए पधारे और लगभग ४० विद्वानोंको संगठित रूपसे वैदिक शोधके कार्यपर बैठा हुआ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उस समय उन्होंने यह अवश्य कहा कि 'इस कार्यका महत्व तो निर्विवाद है, परन्तु उससे लाभ केवल विद्वान् लोग ही उठा सकेंगे। इसलिए सार्वजनिक स्तर पर भी वैदिक-धर्म और संस्कृति-से सम्बद्ध साहित्यके प्रसारका कार्य संस्थानकी ओरसे अवश्य किया जाना चाहिए।' उनके इसी संकेतको हृद-यांकित करते हुए संस्थानने १९४७में लाहौरसे विस्थापित होने और होशियारपुरमें पुनः प्रतिष्ठित होनेके पश्चात् सन् १९५०से सार्वजनिक साहित्य विभाग चालू कर रखा है, जिसमें अब तक लगभग १०० प्रकाशन निकल चुके हैं। इसी विभागकी मुख-पत्रिकाके रूपमें मासिक 'विश्वज्योति' भी १७ वर्षसे चल रही है।

१९५७के आरम्भमें सरकारी संस्कृत आयोगके सदस्यके रूपमें उक्त आयोगके दौरे पर वाराणसी जानेका अवसर मिला। उन दिनों श्री बिरलाजी वहीं पर थे। जब आयोगके सब सदस्य बिरला संस्कृत महाविद्यालय-को देखनेके लिए गए, उस अवसर पर हम सबने उनसे भी भेंट की और कुछ देर तक आपसमें प्रेमपूर्वक वार्तालाप चलता रहा।

फिर मुझे उनके दर्शन करनेका अवसर नहीं मिला। परन्तु जितना कुछ मेरा उनसे संसर्ग रहा, मैंने उसके आधार पर सदा यही अनुभव किया कि "उनके हृदयमें प्राचीन भारतीय-संस्कृति और धर्मके प्रति अगाध प्रेम भरा हुआ है और वे चाहते हैं कि इनका सर्वत्र प्रचार-प्रसार बढ़ता रहे।" वह क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी महा-पुरुष थे।

●

श्रीसन्तराम बी० ए०

जिन्हें भुला न सकूँगा

⊙ ⊙ ⊙

स्वर्गीय सेठ जुगलकिशोर विरला, जहाँतक मेरा उनके साथ सम्पर्क रहा है, मैं कह सकता हूँ, सच्चे हिन्दू-हितैषी, परदुःख-कातर और उदार मानवता-प्रेमी सत्पुरुष थे। उनकी 'हिन्दू'की परिभाषा संकुचित न थी। वे भारतको अपनी मातृभूमि समझकर या पुण्य-भूमि मानकर उससे सच्चा प्रेम करनेवाले सभी मनुष्योंको हिन्दू मानते थे। इसीलिए वे मूर्तिपूजक सनातनधर्मियों, निराकारवादी आर्यसमाजियों, जैनों, चीन और जापानमें बसनेवाले बौद्धों पर समान रूपसे प्रेम रखते थे। उन्होंने जापान, वर्मा और चीनके बौद्धोंका उनकी पुण्य-भूमि भारतके साथ प्रेम बढ़ाने और भारतके हिन्दुओंको अपना धर्म-बन्धु समझनेका प्रचार करनेके उद्देश्यसे उन देशोंमें भारतसे एक सद्भावना-मिशन भी भेजा था। जो लोग हिन्दू और बौद्ध-धर्मको अलग-अलग समझकर कहते थे कि श्री शंकराचार्यने बौद्ध-धर्मको भारतसे निकाला, उनके खण्डनमें सेठजीने एक छोटी-सी पुस्तिका प्रकाशित की थी। उसमें उन्होंने लिखा था कि शंकराचार्यकी मृत्युके चार सौ वर्ष बाद तक भारतमें बौद्ध-धर्म जोरोंपर रहा, बौद्ध राजा राज्य करते रहे और शंकराचार्यने भगवान् बुद्धको श्रद्धाञ्जलि प्रस्तुत करते हुए उन्हें योगियोंमें चक्रवर्ती कहा है। ऐसी दशामें शंकराचार्यको बौद्धधर्मका शत्रु कैसे माना जा सकता है।

सेठजीमें मैंने एक बड़ा सद्गुण यह देखा कि वे इतने बड़े दानी होते हुए भी बड़े निरभिमानी थे।

एक समयकी बात है, सेठजी लाहौर आए थे। सब लोग उनके पास दान लेने जाते थे। मैं भी अपने 'जात-पाँत-तोड़क मण्डल' के लिए दान माँगने गया। इस पर सेठजी मुझसे बोले : "देनेवाला मैं अकेला हूँ, माँगनेवाले अनेक आते हैं, मैं किस-किसको दूँ?" इस पर मुझसे रहा नहीं गया। मैंने झट कहा : "सेठजी, मैं कोई अपने लिए नहीं, हिन्दू-समाजमेंसे बद्धमूलता और ऊँच-नीचका भेद-भाव मिटाकर, सब हिन्दुओंको एकता और बन्धुताके सूत्रमें संगठित करनेका यत्न करनेवाली एक संस्थाके लिए दान मांग रहा हूँ। आपके पास धन है और मेरे पास समय। आपके धनका सदुपयोग हो, इसीसे मैं आपके पास आया हूँ। अन्यथा जिसने आपको धन दिया है, मैंने उसका कुछ बिगाड़ा नहीं। वह मुझे भी दे सकता है।"

दूसरा कोई होता तो मेरी बात सुन क्रुद्ध हो उठता और मुझे निकल जानेको कहता। परन्तु सेठजी बिलकुल शान्त रहे और मुझे पाँच सौ रुपया देने लगे। इस पर मैंने कहा : "आप यदि श्रद्धापूर्वक दें तो मैं पाँच रुपया भी सधन्यवाद ले लूँगा, परन्तु यदि आप मुझे भिखारी समझकर पीछा छुड़ानेके लिए पाँच सहस्र भी दें, तब भी मैं नहीं लूँगा।"

इस पर सेठजी मुझे एक सहस्र रुपएका चेक देने लगे। उन दिनों वे पंजाबमें जिस किसीको दान देते थे, गोस्वामी गणेशदत्तजीके ही द्वारा देते थे। मुझे भी वे उन्हींके द्वारा देने लगे। परन्तु मैंने गोस्वामीजीके

द्वारा लेनेसे इनकार करते हुए कहा कि यदि आप गोस्वामीजीको विश्वासपात्र समझते हैं और मुझ पर आपका विश्वास नहीं, तो दान रहने दीजिए। मुझे इसे लेनेकी आवश्यकता नहीं। तब सेठजीने झट वह एक सहस्रका चेक मेरे नाम कर दिया।

सन् १९३७ और '४०के बीचकी बात है। मैं सहारनपुर आर्यसमाजके वार्षिकोत्सव पर व्याख्यान देने गया था। वहाँ मुझे श्री धर्मसिंह सरहदी मिले। वे पेशावरके पठान थे। मुसलमानसे शुद्ध होकर हिन्दू बने थे। मैंने उससे कहा : "आपने हिन्दू बननेमें भारी भूल की। आपके बाल-बच्चोंका विवाह हिन्दू-समाजमें नहीं हो सकेगा। तब आप तंग आकर फिर मुसलमान बन जायेंगे और हिन्दुओंके पहलेसे भी अधिक कट्टर शत्रु बनेंगे।" उस समय तो उन्होंने कहनेको कह दिया : "क्या मैं बच्चोंके विवाहके लिए ही हिन्दू बना हूँ? मैं तो आर्यसमाजके सिद्धान्तों और वैदिक-धर्मकी उच्च आध्यात्मिकता पर श्रद्धाके कारण शुद्ध हुआ हूँ।"

इसके कोई दो मास उपरान्त मुझे श्री धर्मसिंह सरहदीका पत्र लाहौरमें मिला। उन्होंने लिखा कि "आप जो-कुछ कहते थे, वह ठीक ही निकला। मैं अपनी तीन लड़कियाँ हिन्दुओंको दे चुका हूँ, परन्तु मेरे लड़केके लिए कोई हिन्दू लड़की देनेको तैयार नहीं।"

इसपर मैंने सेठजीको सारी बात लिखी। उन्होंने उत्तरमें लिखा कि "किसी हिन्दूसे कहिए कि अपनी लड़की इनके लड़केको दे दे। रुपया जितना वह माँगे, मैं दे दूँगा।"

परन्तु कोई लड़की देनेवाला हिन्दू न मिल सका। उन्हीं दिनों मुझे कलकत्ता जानेका अवसर मिला। वहाँ मैं सेठजीसे भी मिला। सेठजीने मुझे सियालदासे वनिता आश्रममें जाकर धर्मसिंहजीके पुत्रके लिए कोई लड़की देखनेको कहा। आश्रमवालोंको जब मैंने बतलाया कि सेठजीने मुझे भेजा है, तो वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने मुझे वीणापाणि नामकी लड़की दिखायी। लड़कीका रंग खासा अच्छा था। मैंने लाहौर लौटकर श्री धर्मसिंह-को लिखा कि आपके बेटेके लिए लड़की मिल गयी है। परन्तु जब उन्हें बताया गया कि लड़की वनिता आश्रमकी है, तो उन्होंने यह कहकर लेनेसे इनकार कर दिया कि "ऐसी अनाथालयकी लड़कियाँ तो मैं मुसलमानोंमेंसे बहु-तेरी ले सकता हूँ। मैं तो हिन्दू-समाजमें आत्मसात् होना चाहता हूँ। जैसे मैंने अपनी तीन लड़कियाँ दी हैं, मैं किसीका ससुर बना हूँ, मेरी स्त्री किसीकी सास बनी है, मेरे बेटे किसीके साले बने हैं - वैसे ही मेरे बेटेका कोई हिन्दू ससुर हो, कोई हिन्दू स्त्री सास हो।" इस पर वनिता आश्रमकी लड़कीकी बात रह गयी। कोई दूसरा हिन्दू भी ऐसा न मिला, जो अपनी लड़की दे। इस पर भी सेठजीने श्री धर्मसिंहके उस पुत्रको कुछ रुपया दिया, ताकि वह काबुलसे सूखा मेवा मँगाकर व्यापार द्वारा अपनी आजीविका चलाए।[1]

इसी प्रकारकी एक और घटना हुई। राजस्थानमें पालीवाल वंशका एक ब्राह्मण परिवार धोखेसे मुसलमान बना दिया गया था। राजस्थानमें पानीकी बड़ी कमी है। वहाँ एक तालाब था, जिसमें सभी लोग पानी पीते थे। मुसलमानोंके साथ लड़ाईके दिनोंमें, मुसलमानोंने तालाबमें गेरू घोल दिया और प्रसिद्ध कर दिया कि तालाबमें गोका रक्त डाल दिया गया है। वह पाली वंशका कोई पूर्वज उस तालाबका पानी पी गया। इस पर हिन्दुओंने उसे बिरादरीसे निकालकर मुसलमान घोषित कर दिया। प्रसिद्ध हिन्दी लेखक मुंशी अज-मेरी इसी बहिष्कृत पालीवाल परिवारके ही थे। उन लोगोंने बहुत ही यत्न किया कि हिन्दू-समाज हमें फिरसे अपनेमें मिला ले। आर्यसमाजने उनकी शुद्धि भी की, परन्तु हिन्दू-समाजने उनके साथ रोटी-बेटीका सम्बन्ध

---

१. श्री सन्तरामजीको कदाचित् ज्ञात नहीं है कि सरहदीजीके उसी लड़केका विवाह एक कुलीन हिन्दू (खत्री) घरानेमें हुआ है।—सम्पादक

नहीं किया। इस परिवार पर इस्लामका यों ही झूठा धब्बा लगा था, अन्यथा कार्यतः वे हिन्दू ही थे। सब संस्कार हिन्दू-धर्मके करते थे, परन्तु अब तंग आकर उन्होंने पूरी तरह मुस्लिम समाजमें सम्मिलित हो जानेका निश्चय कर लिया था। कुण्डेश्वर मध्यप्रदेशके अध्यापक श्री गुणसागर सत्यार्थी इसी वंशके हैं। उनकी चिट्ठीसे जब मुझे इस बातका पता लगा, तो मैंने सेठजीको इस परिवारको मुसलमान होनेसे बचानेके लिए लिखा। सेठजीने तुरन्त अपना एक कर्मचारी कुण्डेश्वर और झाँसी भेजकर पता लगाया। इससे पता लगता है कि सेठजीके हृदयमें हिन्दू-जातिके प्रति कितना दर्द था। मैंने जब-जब भी किसी सवर्ण या हरिजन दीन-दुखी व्यक्तिकी सहायताके लिए उनसे सिफारिश की, वे सदा कुछ-न-कुछ उसे सहायता देते रहे।

उन-जैसा पवित्र-चरित्र, उदार, दानी और हिन्दू-हितैषी दूसरा कोई करोड़पति सेठ आज मुझे दिखायी नहीं देता। उन्हें तथा उनके गुण, कर्म, स्वभावको हम सदा स्मरण करते रहेंगे।

श्रीब्रजकृष्ण चाँदीवाला

शुचीनां श्रीमतां गेहे उत्पन्न...

⊙ ⊙ ⊙

सेठ जुगलकिशोरजीके सम्पर्कमें मैं पूज्य गान्धीजीके द्वारा आया। मेरा उनसे कभी घनिष्ठताका सम्बन्ध तो नहीं हुआ, शायद पाँच-सात बार ही उनसे मुलाकात करनेका अवसर मिला हो; मगर उनकी छाप मेरे ऊपर पड़े बिना नहीं रही। मैं आयुमें और हर प्रकारसे उनसे छोटा था। फिर भी वह बड़े प्रेम और आदरसे मुझसे मिलते थे। उनकी मृदुता किसीको भी मोहे बिना नहीं रहती थी।

गान्धीजी जब दिल्ली आते थे, तो सेठजी अक्सर उनसे मिलने आया करते थे और उनसे अनेक विषयों पर चर्चा होती थी। खासकर हिन्दू-धर्म पर। सेठजी कट्टर सनातनी हिन्दू थे। गान्धीजी भी अपनेको सनातनी हिन्दू मानते थे; मगर दोनोंकी मान्यतामें थोड़ासा अन्तर था। गान्धीजी सर्वधर्म-समन्वयको माननेवाले थे, मगर सेठजीके विचार कुछ भिन्न थे। वैसे तो सेठजी गान्धीजी पर अटूट श्रद्धा रखते थे और उन्हें अवतारी पुरुष मानते थे, उनकी अस्पृश्यता-निवारणके वह हामी थे और बौद्ध, सिख, जैन आदि धर्मोंको वे हिन्दुओंसे अलग नहीं गिनते थे। मगर सर्वधर्म-समन्वयके लिए उनके हृदयमें जो मान्यता थी, वह गान्धीजी से भिन्न थी। इस बातको वे न गान्धीजीको समझा सके और न गान्धीजी उनसे अपनी बात मनवा सके।

सेठ जुगलकिशोरजीने हिन्दू-धर्मके लिए जितनी सेवाएँ की हैं, शायद ही किसी दूसरेने की हों। उनका यह सेवाकार्य केवल अपने देश ही तक सीमित न था, वे विदेशोंमें भी जहाँ-जहाँ हिन्दू-संस्कृति रही है, फैला हुआ था। बाली द्वीपकी कई पुस्तकें उन्होंने एक बार मुझे दी थीं।

उनकी दानवृत्तिका तो कहना ही क्या, न मालूम कितने मन्दिरोंका जीर्णोद्धार उन्होंने कराया, कितने नए मन्दिर, धर्मशालाएँ और सेवाकेन्द्रोंका निर्माण उन्होंने करवाया। कितने यतीमों, विद्यार्थियों और विधवाओं-की सहायता उन्होंने की। उनके दानका अनुमान ही किया जा सकता है, गणना नहीं। उसमें भी विशेषता यह थी कि दायाँ हाथ दे और बाएँको पता न लगे।

वे कोट्याधिपति होकर भी फकीर थे। उनमें न अभिमान था और न मान-बड़ाई की चाह। उनमें देश-प्रेमकी भावनाकी भी कुछ कमी न थी। वे जाति और धर्मके सच्चे उद्धारक थे और सदा हिन्दू-धर्मकी रक्षामें अपना तन-मन-धन लगाये रहते थे। सच्चे महात्माओंकी खोजमें रहते थे और उनका सत्संग करते रहते थे। धर्मग्रन्थोंका अध्ययन बड़ी बारीकीसे करते थे। धर्ममें जो संकीर्णता आयी हुई है, उसको हटानेके वे पक्षमें थे। इस लिहाजसे वे पूरे सुधारवादी भी थे।

संसारमें ऐसे लोग बहुत कम पैदा होते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने ऐसे ही लोगोंके लिए कहा है :

* * *

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥

सेठजी शायद पूर्व जन्मके एक योगभ्रष्ट पुरुष ही थे, जिन्हें अपनी साधना पूरी करनेके लिए जन्म लेना पड़ा और लोगोंमें अपना यश, कीर्ति तथा चिर-स्मृति फैला कर वे यहांसे चले गए। इसीको कहते हैं सफल जीवन, जिसके लिए कबीर ने कहा था :

बालक जब पैदा होता है तो वह रोता है, लोग हँसते हैं।
तू ऐसी करनी करके जा, तू हँसता रहे और लोग रोया करें ॥

* * *

स्वामी श्रीयोगेश्वरानन्द सरस्वती

अपर विदेह

⊙ ⊙ ⊙

सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाको एक विशेष परिवारने ही नहीं, किन्तु विशेष परिस्थितियोंने भी जन्म दिया था और वे स्वयं भी एक विशेष साँस्कृतिक वातावरण स्रष्टा थे। वे भारतीय-संस्कृति और प्राचीन परम्पराके प्रतीक थे और वर्तमान संसारमें भारतवर्षके सुन्दरसे-सुन्दर आदर्श और भव्यातिभव्य आकांक्षाओंके प्रतीक-स्वरूप थे।

सेठ बिरलाजीके सदृश अपूर्व और लोकोत्तर व्यक्तिका जन्म एक सुसंस्कृत एवं धर्मप्रिय परिवारमें ही सम्भव था। राष्ट्रोन्नतिका ऐसा कोई क्षेत्र नहीं था, जिसमें प्रभूत धनराशि उनके परिवारने तथा स्वयं उन्होंने व्यय न की हो। अनाथों के पालक, विधवाओंके रक्षक, दरिद्रोंके सहायक और आर्तोंके आर्तिहर्ता थे। दुखियोंकी दयनीय दशाको देखकर वह द्रवित हो जाया करते थे। उनकी गणना उन महान् पुरुषोंमें की जा सकती है, जो भगवान्से अपने सुख, समृद्धि तथा वैभवकी याचना नहीं करते, किन्तु उनसे उस शक्ति और सामर्थ्यकी याचना करते हैं, जिससे वे आर्तोंकी पीड़ाका हरण कर सकें।

भारतके आध्यात्मिक विकासमें उनका प्रयास अविस्मरणीय रहेगा। हजारोंकी संख्यामें विरक्त सन्त, साधु और संन्यासी उनका संरक्षण प्राप्त करते थे और निश्चिन्त भावसे अध्यात्म चिन्तन करते थे।

सन् १९५९में सेठजीसे स्वर्गाश्रममें मिलनेका सुअवसर लाभ हुआ था। इस भेंटसे पूर्व उन्होंने मेरे ग्रन्थ 'आत्म विज्ञान'का अध्ययन किया था। इससे वे बड़े प्रभावित हुए थे। इसलिए वे स्वयं मुझसे मिलनेके लिए स्वर्गाश्रम पधारे थे। सेठजी बड़े विनम्र, उदार तथा विचारशील व्यक्ति थे। मेरे बार-बार आग्रह करने पर भी वे कभी उच्चासन पर नहीं बैठते थे। वास्तवमें उनकी निरभिमानता, विनम्रता, उदारता, दानशीलता, देशभक्ति, मानवता, संवेदना, सहानुभूति आदि गुणोंको लेखबद्ध करना असम्भव-सा प्रतीत होता है। जब कभी वे स्वर्गाश्रममें पधारते, तो मेरे साथ प्रायः भगवान्‌की सगुणता और निर्गुणता, ईश्वर-भक्ति और भारतीय योगादि जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर विचार-विमर्श किया करते थे।

बिरलाजी भगवान्के अनन्य भक्त थे। उनमें आत्म-समर्पणकी भावना बहुत प्रबल थी। "कुर्वन्नेवे कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः" और "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मागृधः कस्यस्विद्धनम्"को वे इस युगमें चरितार्थ कर रहे थे। उनका जीवन सत्यं, शिवं तथा सुन्दरम् था और वे इस युगके अपर विदेह थे।

●

जैसा सुना : समझा

⊙ ⊙ ⊙

ब्रह्मलीन श्री जुगलकिशोरजी बिरलाके कुछ अन्तरंग सहयोगियों, सहायकों, सहचरों एवं सेवकोंसे प्राप्त संस्मरण :

श्री देवधर शर्मा

श्री शर्माजी लगभग २६-२७ वर्षों तक स्वर्गीय श्री बिरलाजीके अन्तरंग सहयोगियोंमें रहे हैं। और उनके द्वारा स्थापित अनेक संस्थाओंका कार्यभार सँभाल रहे हैं। उन्होंने बहुतसे संस्मरण सुनाये, जिनमेंसे कुछ इस प्रकार हैं:

ब्रिटिश शासनने भारतको स्वाधीनता प्रदान करनेकी घोषणा कर दी थी। १४ अगस्त, १९४७की रातमें १२ बजकर १ मिनट पर अर्थात् अंग्रेजी तारीखके अनुसार १५ अगस्तको राजसत्ता प्राप्त होने वाली थी। सैकड़ों वर्षोंकी पराधीनताके पश्चात् भारतवर्ष सार्वभौम सत्ता-सम्पन्न राष्ट्र होने जा रहा था। अतः सारा देश उल्लसित था।

स्वर्गीय बाबूजी श्री जुगलकिशोरजी बिरलाके उल्लासकी तो कोई सीमा ही नहीं थी। उन्होंने अपने द्वारा निर्मित देशके समस्त देवालयोंको वन्दनवार-तोरणवारसे सजाने, विद्युत्प्रकाशसे जगमगाने और उनमें विशेष पूजा-प्रार्थना करनेके लिए आदेश दे रक्खे थे।

वे १३ अगस्त, १९४७को प्रातःकाल नित्यनियमानुसार नई दिल्ली स्थित श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर (बिरला-मन्दिर)में पहुँचे और वहाँ दर्शन-पूजन एवं प्रार्थना करनेके उपरान्त गोस्वामी गणेशदत्तजीके पास गए। साथमें मैं भी था।

श्री बाबूजीने श्री गोस्वामीजीसे कहा कि "कल भारत स्वतन्त्र होने जा रहा है। अतः मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि हमारे नेतागण सत्ता-हस्तान्तरणसे पूर्व वैदिक विधिसे ईश्वराराधन कर लें। ऐसा तभी होगा, जब कल प्रातःकाल कार्य-रत होनेके पहले ही नेताओंको तिलक लगाया जाय, माला पहनायी जाय और उनसे अनुरोध किया जाय कि वे भगवान्की पूजा-प्रार्थना करनेके उपरान्त ही शासन-सत्ता ग्रहण करें, यह काम आप और श्री देवधरजी ही कर सकते हैं।"

श्री गोस्वामीजी तथा मैंने श्री बाबूजीका सुझाव सहर्ष स्वीकार किया और हम दोनों १४ अगस्त, १९४७को सूर्योदयके पूर्व निकलकर सबसे पहले सरदार पटेलके निवास-स्थान पर पहुँचे। उस समय सरदार पटेल स्नानादिसे निवृत्त होकर अपनी सुपुत्री मणिबेन पटेलके साथ कोठीके उद्यानमें भ्रमण कर रहे थे। सरदारजीने

नतमस्तक होकर तिलक लगवाया, माला पहनी और श्री बाबूजीको उनके सत्परामर्शके लिए धन्यवाद देते हुए कहा कि 'आप लोग राजेन्द्र बाबूसे मिल लीजिए और मेरा नाम लेकर कह दीजिए कि वे पूजाके कार्यक्रमके निमित्त समय निर्धारित कर लें।'

हम दोनों सरदार पटेलकी कोठीसे निकलकर नेहरूजीके यहाँ गए, तो वहाँ हमसे पहले ही कुछ लोग पहुँच कर शुभकामनाएँ प्रकट कर रहे थे। गोस्वामीजीको देखते ही नेहरूजी बोले : 'आइए गुसाईं जी।' और उन्हें लेकर अन्दर कमरेमें चले गए। मैं चन्दन-माला लिए खड़ा ही रह गया, किन्तु नेहरूजी तुरन्त लौटकर मेरे पास आ गए, गोस्वामीजी भी उनके पीछे-पीछे चले आए, यह कहते हुए कि 'यह मेरे ही साथ हैं।'

नेहरूजीने मेरे कन्धे पर हाथ रखा और कहा कि 'चलिए अन्दर, यहाँ क्यों खड़े हैं?' कमरेके अन्दर पहुँच कर हम दोनोंने नेहरूजीके माथेमें तिलक लगाया और पुष्पहार पहनाए। इसके बाद लगभग दस मिनट तक नेहरूजी पाकिस्तानसे आनेवाले विस्थापित हिन्दुओंके बारेमें चिन्ता प्रकट करते रहे। हमने उनसे अपना अभीष्ट कहना उचित न समझ कर जल्दी-जल्दी विदा ली और राजेन्द्र बाबूके निवासस्थानकी ओर प्रस्थान किया।

राजेन्द्र बाबू पलँग पर तकियाके सहारे बैठे थे। उस समय उन्हें दमेका हल्का-हल्का दर्द हो रहा था। गोस्वामीजी और मैंने उनको आभ्युदयिक आशीर्वाद प्रदान कर तिलक लगाया और पुष्पहार पहनाए, फिर सरदार पटेलके सन्देशके रूपमें अपना और श्री बाबूजीका अभीष्ट उनके समक्ष रखा। राजेन्द्र बाबूने सहर्ष कहा : 'यह तो अवश्य होना चाहिए। मैं नेहरूजीसे भी पूछे लेता हूँ।' उन्होंने फोन किया तो पता चला कि वह किसी विदेशी अतिथिके स्वागतार्थ पालम हवाई अड्डे पर जानेके लिए कोठीसे बाहर निकल चुके हैं।

राजेन्द्र बाबूने कुछ चौंककर कहा : 'अरे, मुझे भी हवाई अड्डे पर जाना है, मैं तो भूल गया था।' फिर तैयार होते हुए हमसे बोले कि 'जितने आदमी धार्मिक कृत्य कराने आने वाले हों, सबके नाम लिखा दें। मैं पास बनवाकर भिजवा दूंगा और नेहरूजीसे वहीं हवाई अड्डे पर बात कर लूंगा।'

बादमें मालूम हुआ कि नेहरूजीने अस्वीकार तो नहीं किया, किन्तु एक तर्क रखा कि 'सार्वजनिक रूपसे हिन्दू-धर्मके अनुसार पूजा करायी जाएगी, तो मौलाना आजाद शायद स्वीकार न करें। इसलिए सरकारी कार्यक्रममें न रखकर व्यक्तिगत रूपसे हम लोग यह कृत्य कर लेंगे।' हम लोग अपने दलके साथ ठीक समय पर लोकसभा-भवन पहुँच गए और लगभग पौने बारह बजे रातमें वैदिक-ऋचाओं द्वारा मांगलिक कृत्य करवाये गये, जिसमें सरदार पटेल, राजेन्द्र बाबू आदि हिन्दू मन्त्रियोंके साथ नेहरूजीने भी भाग लिया।

इस तरह श्री बाबूजीके उद्योगसे स्वतन्त्रता-प्राप्तिके कुछ क्षण पूर्व हिन्दू-धर्मकी परम्पराका पालन हो गया!

× × ×

महाप्रस्थानके कई वर्ष पूर्व श्री बाबूजीका पैर फ़र्श पर अचानक फिसल गया। कूल्हेकी हड्डियाँ टूट गयीं। डॉक्टरोंने पैरको सीधा करके और उसपर भार बाँधकर लटका दिया। श्री बाबूजीको असह्य पीड़ा थी। फिर भी उनके अन्तर्मनसे भगवच्चिन्तन चल रहा था। डॉक्टरोंने एक्सरे लिया और हड्डीकी स्थितिको देखकर ऑपरेशनका निश्चय किया। किन्तु श्री बाबूजी ऑपरेशन कराना नहीं चाहते थे। क्योंकि कुछ वर्ष पूर्व पौरुष-ग्रन्थिके ऑपरेशनका असीम कष्ट भोग चुके थे। उन्होंने रातमें सोते समय भगवान्से प्रार्थना की कि "या तो मुझे उठा लो या हड्डी ठीक कर दो।" और भगवान्ने कृपा करके उनकी दूसरी प्रार्थना सुनली।

आधी रातके बाद लगभग २ या ३ बजे एक तीन वर्षका सुन्दर, तेजोमय, नील-नीरद-सी कान्तिवाला बालक बाहरसे उछलता हुआ बाबूजीके कमरेमें आया और उनकी शय्याके समीप खड़ा होकर पूछने लगा : 'दादाजी, आपको बहुत दर्द हो रहा है? लाओ, अभी ठीक किए देता हूँ।' यह कहकर उस दिव्य बालकने बंशी-सरीखी किसी वस्तुसे तीन बार उन-उन स्थानों पर स्पर्श किया, जहाँ-जहाँकी हड्डी टूटी थी। तीनों बार 'चट-चट'की आवाज हुई और पीड़ा दूर हो गयी। श्री बाबूजी वेदनाके कारण अर्द्धमूर्च्छित अवस्थामें थे। उन्हें कुछ भान तो हुआ, किन्तु यह समझकर कि घरका ही कोई बालक होगा, कुछ बोले नहीं। जब तन्द्रा भंग हुई और यह अनुभव हुआ कि पैरका दर्द वास्तवमें दूर हो गया है, तब उन्होंने आँख खोलकर इधर-उधर उस बालकको देखा और पुकारा कि "कौन है?" किन्तु वहाँ कोई बालक नहीं था। फिर बाबूजीको नींद नहीं आयी और वे गद्गद भावसे भगवत्कृपाका चिन्तन करने लगे।

प्रातःकाल हुआ। डॉक्टर बुलाए गए। उन्होंने दोबारा एक्सरे लिया, तो हड्डियाँ जुड़ी हुई मिलीं। डॉक्टर प्रसन्नतासे उछल पड़े। उन्होंने कहा कि 'यह तो चमत्कार हो गया।' किन्तु आत्मगोपनके धनी श्री बाबूजीने रातकी घटनाके बारेमें किसीसे कुछ नहीं कहा। वे मुस्कराकर मौन हो गए।

कुछ दिनों बाद जब श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरामें भगवद्-विग्रहकी स्थापनाकी बात सामने आयी, तब उन्होंने वह रहस्य मुझको बताया और यह आकांक्षा प्रकट की कि ठीक वैसा ही विग्रह निर्मित कराया जाए। उनके बताए हुए स्वरूप, आकार और वयके अनुसार शिल्पियोंने दिल्लीमें विग्रह-निर्माण प्रारम्भ किया। बीच-बीचमें श्री बाबूजी स्वयं देखते जाते थे और शिल्पियोंको मूर्तिका स्वरूप समझाते जाते थे। यद्यपि उनके मनोनुकूल विग्रह नहीं बन सका, फिर भी बहुत-कुछ सुन्दर बन गया और उसीकी स्थापना श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुराके पुराने मन्दिरमें हुई। तबसे जितने भी दर्शक उस भगवद्विग्रहके दर्शन करते हैं, भाव-विभोर हो जाते हैं। उस विग्रहकी स्थापनाके बादसे श्रीकृष्ण-जन्मस्थानका चतुर्दिक् विकास हो रहा है।

× × ×

एक बार श्री बाबूजी जेठकी दुपहरीमें दिल्लीसे कार द्वारा चलकर मथुरा पहुँचे। साथमें मैं भी था। श्री बाबूजी मथुरा आने पर कारसे उतरते ही पहले गीता-मन्दिरमें दर्शन करते थे, फिर कोई दूसरा काम करते थे। उस दिन भी सबसे पहले गीता-मन्दिरके मुख्य प्रवेशद्वार पर पहुँचे। यद्यपि उस समय मन्दिरके पट बन्द थे। किन्तु उन्होंने देखा कि पट खुले हुए हैं और दर्शन हो रहे हैं। उन्होंने वहाँसे प्रणाम किया और फिर मुझसे कहा कि "उत्तर वाले द्वारकी ओर धूप नहीं है, उधर ही जूते उतारकर भीतर चलेंगे।" इसके अनुसार जब उत्तर-द्वारसे मन्दिरके भीतर पहुँचे, तब पट बन्द मिले। इस समय दिनके १ बजे थे और मन्दिरका पट १२ बजेसे २ बजे तक बन्द रहता है। किन्तु श्री बाबूजीको यह भ्रम हुआ कि पहले असावधानीसे मन्दिरके पट खुले हुए थे, अब उनको देखकर नियमानुसार पट बन्द कर दिए गए हैं। श्री बाबूजी कुछ खीझे और उन्होंने मुझसे कहा कि "जब पट खुले थे, तब मुझे देखकर बन्द करनेकी क्या आवश्यकता थी? मैंने विश्वास दिलाया, पुजारी और कर्मचारियोंने भी प्रार्थना की कि 'मन्दिरके पट १२ बजे दिनमें ही बन्द कर दिए गए थे।' तब बाबूजी मौन हो गए और उन्होंने उसी अवस्थामें पुष्पाञ्जलि समर्पित कर दी। चलते समय यह आज्ञा की कि "भगवान्‌के विग्रहका चित्र उतारकर उनके पास शीघ्र भेज दिया जाय" और तबसे गीतामन्दिरके शंख-चक्रधारी भगवान्‌की प्रतिच्छवि उनकी दैनिक पूजा-अर्चामें प्रतिष्ठित हो गयी।

× × ×

गीता-मन्दिर, मथुरामें प्रत्येक पूर्णिमाको श्रीसत्यनारायणकी कथा होती है और प्रसाद-वितरण किया

जाता है। एक दिन प्रसादकी पँजीरी कम पड़ गयी तो केला और बताशे मँगाकर बँटवाए गए। उन दिनों श्री बाबूजी वाराणसीमें थे। उसी रात उन्हें स्वप्न हुआ कि भोग कम लगा है। उन्होंने तुरन्त गीतामन्दिरके पुजारी श्री मदनमोहनजीको पत्र लिखा कि "भगवान्के भोगमें कमी क्यों की गयी है? किसके आदेशसे ऐसा हुआ?"

पत्र पाकर श्री मदनमोहनजी सन्न रह गए। उन्होंने उत्तर दिया कि 'भगवान्के भोगमें किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं है।' किन्तु बाबूजीको सन्तोष नहीं हुआ। उनके दिल्ली पहुँचने पर श्री मदनमोहनजी बुलाये गए, फिर पूछा गया, तब उन्होंने स्वीकार किया कि उस दिन पँजीरी घट गयी थी। श्री बाबूजीने गम्भीर होकर कहा कि "भविष्यमें ऐसा नहीं होना चाहिए। प्रसाद अधिक बनवा लिया करो।"

× × ×

जब महाप्रस्थानका समय आया, तब श्री बाबूजीके नेत्र अपलक उधर ही देख रहे थे, जहाँ सामने उनके आराध्य गीता-मन्दिर, मथुराके शंख-चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्णकी प्रतिच्छवि विराजमान थी। महीनोंसे शिथिल हुए हाथ अकस्मात् ऊपर उठे, बद्धाञ्जलिकी मुद्रा बनी और जब प्रणाम निवेदित हो गया, तब उनके नश्वर देहका हंस उड़कर श्रीकृष्णके चरणोंमें विलीन हो गया!

× × ×

[श्री शर्माजीके द्वारा उपर्युक्त प्रसंगोंको सुनकर परमहंस श्री रामकृष्णदेवजी तथा नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द)के प्रसंग याद आ जाते हैं। नरेन्द्रने परमहंसजीसे पूछा : 'आपने अपनी आँखोंसे भगवान्को देखा है?'

'नरेन्द्र' : परमहंसजी बोले, : 'मैं भगवान्को वैसे ही देख रहा हूँ, जैसे तुम्हें देख रहा हूँ। बल्कि उन्हें मैं तुम्हें जितना देखता हूँ, उससे कहीं अधिक ज्वलन्त और प्रत्यक्ष रूपसे देखता हूँ।' इस प्रकार भगवत्साक्षात्कार होना, भगवदीय प्रेरणाएँ प्राप्त करना केवल कुछ व्यक्तियोंके ही अधिकारकी वस्तु नहीं है। पहलेकी तरह आज भी हिन्दुओंके अन्दर सृजनात्मक शक्तिका स्रोत इतना ताजा और उन्मेषपूर्ण है कि प्रत्येक आस्थावान हिन्दू-भक्त इस स्थितिको सहज प्राप्त कर सकता है।

श्री बिरलाजी स्थितप्रज्ञ थे। वह अपनी एकान्त साधना द्वारा एक ऐसी स्थिति पर पहुँच गए थे, जहाँ आनन्द और मानव-कल्याणकी शक्तिशालिनी उपलब्धियाँ होती हैं। वह अपने समयके शलाका पुरुष थे।—सम्पादक]

●

श्री नागरमल परवाल

स्वर्गीय श्री बिरलाजीके सचिव श्री नागरमल परवालसे जब मैं नई दिल्ली स्थित बिरला-धर्मशालामें मिला, तब मेरे मनमें भावनाओंका ज्वार उमड़ पड़ा। स्वर्गीय बाबूजीकी चर्चा चलने पर उनकी आँखें भी भीग गयीं। उन्होंने श्री लक्ष्मीनारायण भगवान्को साक्षी बनाते हुए उद्गार प्रकट किया : 'गगनसे भी ऊँची गरिमाके युग-पुरुष थे बड़े बाबू!'

फिर भावविभोर स्वरमें बोलने लगे : 'सम्वत् २०२४का आषाढ़ मास था। कृष्ण पक्षकी द्वितीया थी। रातके पौन बज रहे थे। बड़े बाबूका शरीर शिथिल होता जा रहा था। नाड़ीकी गति बन्द होती जा रही थी। जब महाप्रस्थानका समय आया, तब उन्होंने अपने दोनों हाथोंको, जो अशक्तताके कारण हिलते-डुलते तक नहीं थे, ऊपर उठाकर भगवान्को अञ्जलिबद्ध प्रणाम किया और फिर अपना पार्थिव शरीर छोड़ा। उस समय एक ऐसा प्रकाश कमरेमें फैला कि हम सबकी आँखें चौंधिया गयीं और क्षणभरमें ही बड़े

* * *

बाबूकी आत्मा उस प्रकाशमें विलीन हो गयी। ऐसा अद्भुत दृश्य कहीं देखने-सुननेमें नहीं आया। यह घटना उनकी जीवन-मुक्तताका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

× × ×

निधनसे कुछ ही दिन पूर्व एक दिन चित्रकूटसे स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती बड़े बाबूको देखने आए थे। स्वामीजीकी आयु सौ वर्षसे अधिक है और बड़े बाबू उन पर बहुत आस्था रखते थे। रोगशय्या पर पड़े हुए बड़े बाबू अभ्युत्थान करने तथा हाथ जोड़कर प्रणाम करनेमें अपनेको असमर्थ पाकर बहुत खिन्न हुए तो स्वामीजी महाराजने कहा : 'शिवोऽहं', 'शिवोऽहं' यही महामन्त्र है। इसीका जप किया करो। तुम रोगी नहीं हो, अशक्त नहीं हो, तुम तो शुद्ध हो, बुद्ध हो, निर्लेप हो। न तुम्हें जरा है, न मृत्यु है। यह जो भोगायतन शरीर है, यही भोगों और रोगोंको भोगता है। तुम शिव हो, ब्रह्म हो : 'शिवोऽहं', 'शिवोऽहं'का जप करते रहो।'

स्वामीजी महाराजके चले जाने पर बड़े बाबू अन्तिम समय तक 'शिवोऽहं' 'शिवोऽहं' जपते रहे। जिस दिन वह ब्रह्मलीन हुए, उस दिन हम सब लोगोंसे भी 'शिवोऽहं', 'शिवोऽहं' जपनेके लिए उन्होंने कहा था।

कुछ ठहरकर परवालजी बोले : 'बड़े बाबूके जीवनमें अद्भुत घटनाओंकी एक श्रृंखला जुड़ी हुई थी। उनका प्रत्येक क्षण जनता और जनार्दनकी सेवामें ही व्यतीत होता था। उन्हें देखकर लगता था कि इस संसारमें मनुष्य किस प्रकार तनसे, मनसे, आचरणसे, विचारसे, कार्योंसे निर्दोष, निष्पाप, पवित्र हो सकता है। उनमें कहींसे भी कोई त्रुटि, दोष, दुर्बलता कमी देखनेको भी हम लोगोंको नहीं मिली। वे देवता पुरुष थे। उनके जैसे वे ही थे।

●

श्री लखीराम

स्वर्गीय बिरलाजीके निजी सेवक श्री लखीराम गढ़वाल-निवासी हैं। २८ साल तक बिरलाजीकी सेवामें निरत रहे। उनकी रुचि और वृत्तिके अन्तरंग साक्षी हैं।

'बड़े बाबू भोजनमें किस चीज़को अधिक पसन्द करते थे' : यह पूछने पर श्री लखीरामने कहा : 'उनकी अपनी कोई पसन्द नहीं थी, सादा-से-सादा भोजन वह भी नाममात्र का। प्रातःकाल ४-५ बजे उठते थे। नित्य कर्म करके दोपहर तक एकान्तमें भजन-पूजन करते रहते थे। फिर मन्दिर जाकर भगवान्के दर्शन करते थे, दर्शन करके मन्दिरकी बगीचीमें पत्थर पर बैठकर वहाँ भी लोगोंसे ज्ञान-ध्यानकी बातें करते थे और दो बजे दिनमें लौटकर भोजन करते थे। एक दिनकी बात है, बड़े बाबूके पैरमें चोट लग जानेसे वह पाटे पर नहीं बैठ सकते थे, इसलिए कुर्सी पर उन्हें बैठाया गया। कुर्सी मेज पर बैठकर खानेकी उनकी आदत नहीं थी, उन्हें कष्ट होता था, वे हमेशा चौके या पाटे पर बैठ कर भोजन करते थे। रसोई घरसे मैंने भोजन लाकर उनके सामने मेज़ पर रख दिया। एक ही फुल्का था, रसोइयेकी असावधानीसे दूसरा फुल्का लानेमें मुझे देर हो गयी; तब तक बड़े बाबू हाथ धो चुके थे। यह देखकर मुझे बड़ा कष्ट हुआ। मेरी मानसिक पीड़ाको समझ कर बड़े बाबू बोले : "कोई बात नहीं, नित्य दो फुल्के लेता था, आज भूख नहीं थी, एक ही खाया।" मैं रसोई घर जाकर रसोइयेसे लड़ने लगा, वह भी दुखी था, कुछ बोला नहीं। यह बात बिरला-भवनके मुनीमजीने सुन ली। उन्होंने बड़े बाबूसे पूछा तो वे बोले : "नहीं भाई, उनकी कोई ग़लती नहीं थी, मुझे भूख ही नहीं थी। बच्चों (मतलब हम नौकरोंको) को कुछ कहना नहीं।" मुनीमजी भी बहुत दुःखी हो गए। इसके बाद बड़े बाबूने मुझे बुलाकर कहा : "भाई, मैंने तो मुनीमजीसे कुछ कहा नहीं, तुम्हींने बताया होगा।"

* * *

मैंने कहा : 'बाबूजी, आप हमारे मालिक हैं, पिता हैं। आपका कष्ट हमसे देखा नहीं जाता। हमारी थोड़ी-सी असावधानीके कारण आप पूरा भोजन नहीं कर सके।'

मुझे बीचमें रोक कर बड़े बाबू बोले : "मेरे कारण तुम्हें दुःख पहुँचा है, तो मुझे माफ़ कर दो।"

ऐसे थे हमारे बड़े बाबू! खुद खाने-पहननेके बजाय दूसरोंको खिलाने और अच्छे-से-अच्छे कपड़े पहनानेमें सुखी और प्रसन्न होते थे।

'भोजनके बाद आराम भी करते रहे होंगे?'

यह पूछने पर श्री लखीराम बोले : 'आराम करते तो मैंने उन्हें कभी देखा नहीं। रातमें सोते थे ज़रूर, वह भी बहुत कम। भोजनके बाद वह मिलने-जुलनेके लिए आए हुए लोगोंसे बातें करते थे, चिट्ठी-पत्रीका जवाब लिखवाते थे। माँगनेवालोंको बुलवाकर उनकी ज़रूरतके अनुसार रुपये, कपड़े दिया करते थे। सुबहसे लेकर आठ बजे रात तक सैकड़ों याचकोंकी भीड़ लगी रहती थी। कोई भी आए, उसे चार रुपए अवश्य दिए जाते। जो अपनी ज़रूरत ज्यादा बताते थे, उन्हें उतना दिया जाता था। इस प्रकार वे दानी कर्णकी तरह सुबहसे शाम तक दान दिया करते थे। किसीको खाली हाथ, खाली पेट उन्होंने लौटने नहीं दिया।

एक दिन मन्दिरसे दर्शन करके लौट रहे थे, रास्तेमें एक स्त्री घास छील रही थी। उसका लँहगा और ओढ़नी फटी देखकर बाबूजीने गाड़ी रुकवा दी और मुझे दस रुपए देते हुए बोले कि "उस स्त्रीके वस्त्र फटे हैं, जाकर दे आओ और कह दो कि नए कपड़े बनवा ले।"

ऐसे ही एक दिन वाराणसीमें कड़ाकेकी सर्दीमें बाबूजीने एक नंग-धड़ंग साधुको सड़कके किनारे सिकुड़े हुए बैठे देखा। घर आकर मुनीमजीसे बोले कि "अमुक स्थान पर एक साधु जाड़ेमें ठिठुर रहा है। उसे कम्बल भिजवा दो।" मुनीमजीने तुरन्त आज्ञाका पालन कर दिया। मैं जाकर कम्बल दे आया। रातमें दो बजे बड़े बाबूको याद आयी होगी, साधुका स्मरण कर वह बेचैन हो गए। मेरे पास आकर मुझे जगाया और पूछा कि "उस साधुको मुनीमने कम्बल भेजा था या नहीं?" मैंने कहा : 'उसी समय मुनीमजीने मुझे दिया था और मैं दे आया हूँ।'

यह सुनकर बड़े बाबूने सन्तोषकी साँस ली और चलते-चलते कह गए : "भाई माफ़ करना, तुम्हें जगा कर कष्ट दिया।"

हमारे बड़े बाबू घर-बाहर, नौकर-चाकर, देश-दुनियाके किसी भी आदमीको दुखी देखकर अथवा सुनकर अथाह दुःखसागरमें डूब जाते थे। वह सबको सुखी, प्रसन्न देखना चाहते थे। उनके सामने कोई पराया नहीं था, सबको अपना समझते थे। हम नौकर थे सही, किन्तु उन्होंने हम लोगोंके साथ सदा घरके बच्चोंकी तरह प्यार किया।

●

श्री बद्रीप्रसाद दीक्षित

श्री बद्रीप्रसाद दीक्षित बहुत वर्षों तक स्व० जुगलकिशोरजी बिरलाकी सेवामें रहे हैं। उन्होंने एक अनुचरकी हैसियतसे उन्हें निकटसे देखा है, उनसे बड़े बाबूके विषयमें जब प्रश्न किए गए, तो वे भी श्रद्धा-भावसे परिपूर्ण हो गए। हमने पूछा : 'क्या आप किसी ऐसे क्षणकी बात बता सकेंगे, जिसमें बड़े बाबूकी सदाशयतासे आप बेहद प्रभावित हुए हों और आपके लिए वह क्षण अविस्मरणीय हो?'

श्री दीक्षितजीका उत्तर था : 'मेरे पास गर्म कपड़े कम थे। बस, यह समझिए कि एक गर्म सूट था। मैंने सोचा था जब सर्दी जोर पर होगी, तब निकालेंगे और जब तक वह धुलने लायक होगा, मौसम

बदल चुका होगा। इस तरह एक सूटसे गुजारा हो जायगा। फिर अगले वर्ष देखा जायगा। इसी बीच बड़े बाबूने एक दिन पूछ लिया : "गर्म कपड़े क्यों नहीं पहनते ?" मैंने जवाब दिया : 'हम लोग पहाड़ी हैं, हमें सर्दी नहीं सताती।' बड़े बाबूने दयार्द्र होकर कहा : "भाई, सर्दी लग जायगी। क्या तुम्हारे पास कपड़े नहीं हैं ?"

मैं कोई उत्तर नहीं दे सका। दूसरे दिन वही सूट पहनकर गया। बड़े बाबूने देखा और ताड़ गये, बोले : "दूसरा सूट नहीं होगा ?" तब मैं असली बात कैसे छिपाता ? बड़े बाबूने दूसरे दिन स्वयं सूटका कपड़ा खरीदकर दिया। उनकी वह सहानुभूति और परदुःखकातरता मुझे कभी नहीं भूलती।'

श्री बद्रीप्रसादजी इसके बाद थोड़ी देर चुप रहे। फिर स्वयं कहने लगे : 'एक बार बड़े बाबू कुरुक्षेत्रसे लौट रहे थे। रात हो चुकी थी। मुझे प्यास लग आयी। उन्होंने मोटर कुएँके पास रोकी और पानी पीनेके लिए कहा। कुएँ पर सोये हुए पानीपाण्डेने गाली गलौज शुरू कर दिया। हमारी ओर ऐसे कुएँ नहीं होते, जिसमें रस्सी डालकर पानी निकाला जा सके। इस कारण मैं अनभ्यस्त होनेके कारण खुद रस्सी डालकर पानी नहीं निकाल सका। लौटा तो बड़े बाबूने सारी बात पूछी। मैंने सच-सच बता दिया। बाबूजी मोटरसे उतरे और बाल्टी डाल कर पानी निकाला और मुझे पिलाया। पानीपाण्डेने जब देखा कि यह पगड़ीवाले कोई सेठ हैं, तो सामने आकर माफ़ी माँगने लगा। बड़े बाबू बोले : "एक सज्जन वे थे, जिन्होंने कुआँ बनवाया, आने-जानेवालोंकी सुविधाके लिए तुम्हें नौकर रखा और एक तुम हो कि पानी माँगने पर गाली देते हो।" बेचारा लज्जित हुआ और 'भविष्यमें ऐसा कभी नहीं करूँगा' कहकर रोने लगा। बाबूजीने उसे दस रुपये देकर समझा-बुझाकर प्रसन्न किया, तब आगे बढ़े। छोटी-छोटी बातोंका ख्याल रखने-वाले अब कहाँ मिलेंगे ?

हमने पूछा : 'सुना है बड़े बाबूने किसानोंकी बड़ी सेवाकी है, आपका तो प्रत्यक्ष अनुभव होगा ?'

श्री दीक्षितजी गद्गद हो गए। बोले : 'हाँ-हाँ, क्यों नहीं ! एक दिन एक किसान बैल लिये जा रहा था। बड़े बाबूने देखा और उससे पूछा, "तेरे पशु कमजोर क्यों हैं ?" उसने बताया 'गाँवका कुआँ खराब है। पशुओंके लिए न चारा है, न पानी।' बड़े बाबूने मुझे गाँवमें भेज कर पता लगाया और ५००) रुपये देकर कुएँको सुधरवाया। ऐसे ही एक दिन पहाड़ीके ऊपरसे एक आदमी जा रहा था। पूछनेपर ज्ञात हुआ उसे कैण्टकी ओर जाना है। बड़े बाबूने मोटर रुकवाकर उसे बैठाया और निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचाया। जब वह उतर गया और खण्डहरके पास जाकर रुक गया, तब उन्होंने मुझसे कहा कि "चुपचाप जाकर देख कि वह खण्डहरमें क्या कर रहा है।" मैंने जाकर देखा, वह गुरुग्रन्थ साहबका पाठ कर रहा है। यह जानकर कि वह इतनी दूर भक्ति-भावसे आता है, उन्होंने ५१ रुपये दिये और तुरन्त चढ़ानेके लिए कहा। बड़े बाबू गरीब, दुखी और भक्तका हमेशा ख्याल रखते थे। उनके जैसे सहायक कम ही मिलेंगे।'

हमने पूछा : 'सेवकोंके प्रति उनका कैसा व्यवहार था ?'

श्री बद्रीप्रसादजी जैसे अपनेमें डूब गये और सपनोंमें खोये हुएसे बोले : "बड़े बाबू अक्सर कहा करते थे, जैसे किसी नौकरको अच्छा मालिक पुण्य-कर्मोंके फलसे मिलता है, वैसे ही मालिकोंको अच्छा नौकर ईश्वर-कृपाके बिना नहीं मिलता। हम सब तो भाई-भाई हैं, मालिक-नौकर नहीं।"

उन्होंने कृतज्ञ भावसे इसके बाद मौन साध लिया, लेकिन हमसे नहीं रहा गया। हमने बड़े बाबूके बारेमें फिर पूछा। श्री बद्रीप्रसादजी दुखी होकर कहने लगे, 'पूज्य बाबूजी घरमें कपड़ेकी चप्पल अथवा खड़ाऊ पहनते थे। एक दिन पैर फिसला और वे गिर गये। टाँगमें दो-तीन फ्रैक्चर हो गये। महान् कष्ट था। उस

* * *

समय उठाकर चारपाई पर लिटानेके लिए चार-पाँच आदमी आये। उनमेंसे एक मैं भी था। इतनी वेदनामें भी पैरोंकी ओर मुझे लगते देख संकेतसे हटा दिया। मैंने कहा : 'आप हमारे पिता हैं, अन्नदाता हैं, यह हमारा अधिकार है।' वे बोले कि "तुम ब्राह्मण हो, तुम्हें मेरा पैर नहीं छूना चाहिए।" यह था ब्राह्मण के प्रति उनका आदर-भाव! बड़े बाबू आज नहीं हैं, तब लगता है - वे इन्सानके रूपमें भगवान् थे!

श्री मदनलाल आनन्द

श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर, नयी दिल्लीके व्यवस्थापक श्री मदनलालजी आनन्दने घटनाओंका उल्लेख करते हुए बताया :

सन् १९६० के दिसम्बरकी बात है। दिवंगत श्रद्धेय श्री बड़े बाबूजीको लगभग १०३ या १०४ डिग्री ज्वर था। किन्तु उसी अस्वस्थताकी हालतमें सायंकाल ६॥ बजे आप मन्दिर पधारे और तत्कालीन गृह-राज्यमन्त्री श्री बी० एन० दातारके निवासस्थान पर जानेकी इच्छा प्रकट की। बाबूजीकी वह अस्वस्थता देखकर मैं असमञ्जसमें पड़ गया। फिर भी मैंने श्रद्धेय श्री बाबूजीसे विनम्रतापूर्वक निवेदन किया कि 'आप अस्वस्थ हैं, आपको इतना ज्वर है। अतः इस सर्दीमें आप गृह-राज्यमन्त्रीसे भेंट करनेके विचारको स्थगित कर दें, तो आपकी महान् कृपा होगी।' इस पर आपने वार्ताकी परमावश्यकता पर जोर देते हुए कहा कि "यह समस्या न केवल हिन्दू-जातिसे सम्बन्ध रखती है, प्रत्युत समस्त भारतकी राजनीतिसे इसका अटूट सम्बन्ध है। इसका गृहमन्त्रीसे उल्लेख करना अत्यावश्यक है। हिन्दू-जाति और देश-सेवाको मैं अपने स्वास्थ्यसे अधिक प्राथमिकता देता हूँ। इस शरीरसे जितनी देश व जातिकी सेवा हो सके, उससे विमुख नहीं होना चाहिए।" उनकी इस उत्कंठाको देखकर मैं भी उनकी विचारधारामें बह गया और इनके साथ गृह-राज्यमन्त्रीके निवास-स्थान पर गया। आपने गृह-राज्यमन्त्रीसे कहा, "पाकिस्तानके मुसलमान असममें बिना परमिटके अवैधानिक रूपसे आ रहे हैं, इससे हमारी जनसंख्या न्यून पड़ जायेगी और हमारे देशकी राजनीतिके लिए गहरी एवं दुःखदायी समस्या उत्पन्न होगी।" गृह-राज्यमन्त्रीने इस समस्याको सुलझानेमें अपनी असमर्थता प्रकट की, जिससे श्रद्धेय श्री बड़े बाबूजीको बहुत आत्मिक कष्ट हुआ। वे बहुत ही दूरदर्शी थे और इस समस्याके सम्बन्धमें निरन्तर चिन्तित रहे। आज उनकी दूरदर्शिता इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित कर रही है और असममें मुसलमानोंके अवैध रूपसे प्रविष्ट होनेके कारण वहाँकी राजनीतिक समस्या बहुत जटिल हो गयी है। इसका उल्लेख गृह-राज्यमन्त्री श्री दातारजीने अपने जीवन-कालमें लोकसभामें किया था और उसके पश्चात् भी इसकी चर्चा कई बार लोकसभामें हो चुकी है।

× × ×

लगभग ३-४ वर्षकी बात है कि घरेलू परिस्थितियोंके कारण मैं कुछ आर्थिक संकटमें ग्रस्त हो गया। उस समस्याको सुलझानेके लिए मुझे कुछ धनकी आवश्यकता पड़ी। उस धनके लिए अपने परिवारके सदस्योंसे कहनेमें मैं संकोच करता था। उसके सम्बन्धमें परम श्रद्धेय श्री बाबूजीसे भी किसी प्रकारका संकेत नहीं किया था।

मुझे आवश्यक कार्य-वश उनकी सेवामें बिरला-हाउस जाना पड़ा। जब मैं वार्ता करके श्रद्धेय बाबूजीकी आज्ञा लेकर लौटने लगा, तो उन्होंने मुझे एक कागज़ दिया और आदेश दिया कि मैं लौटकर शीघ्र ही वह कागज़ आदरणीय श्री बाबू डालूरामजीको दे दूँ। उनके आदेशका पालन करते हुए मैंने कार्यालय लौटकर वह कागज उसी रूपमें आदरणीय श्री डालूरामजीको दे दिया। उस कागजको खोलकर पढ़नेके पश्चात् ही श्री डालूरामजीने मुझे कुछ रुपये दिये। मेरे प्रश्न करने पर उन्होंने कहा कि ये रुपये श्रद्धेय श्री बाबूजी ने मुझे

दिये हैं। आश्चर्यकी वात यह कि उस धनराशिकी संख्या उतनी ही थी, जितनी मुझे घरेलू समस्याकी गुत्थी सुलझानेके लिए आवश्यकता थी।

यद्यपि आज उस महान् आत्माका पार्थिव शरीर इस भौतिक एवं विनाशी संसारसे अनन्त कालके लिए विदा हो गया है; तो भी उनकी कृपा, करुणा उनका स्मरण दिलाती रहती है और भविष्यमें दिलाती रहेगी।

●

श्री मदनमोहन शर्मा

गीता मन्दिर, मथुरा के देवल श्री मदनमोहनजाने वताया :

बाबूजी एक महान् कर्मयोगी और तपोनिष्ठ थे। दया और धर्मकी तो वे साक्षात् प्रतिमूर्ति ही थे। हिन्दू-जाति, धर्म और संस्कृति पर युगों तक उनका उपकार लदा रहेगा। वे महान् थे, अतिमहान् थे।

बाबूजीकी दया और उदारताकी सैंकड़ों कहानियाँ हैं, जो सदा मेरे हृदय पर अंकित रहेंगी। मथुराकी धर्मशालामें कई वर्षोंसे प्रतिदिन सायंकाल साधुओंको भोजन दिया जाता था। संयोगकी वात एक दिन बाबूजी भी उस समय मौजूद थे। साधुओंके लिये भोजन तैयार किया जा रहा था। बाबूजीने जब भोजन बनते देखा, तो पूछने लगे : "रसोइया भोजन ठीक ढंगसे बनाता है या नहीं? गेहूँ साफ़ कर लिया जाता है या नहीं? गेहूँमें मिट्टी या कंकड़ आदि तो नहीं रहता?"

मैंने बाबूजीको यथोचित उत्तर देकर उन्हें सन्तुष्ट करनेका प्रयत्न किया, पर उन्हें सन्तोष नहीं हुआ और एक रोटी तोड़कर मेरी ओर बढ़ाते हुए उन्होंने कहा कि "खाकर देखो, कैसी बनी है?" मैं रोटीका टुकड़ा हाथमें लेकर उनकी ओर देख ही रहा था कि बाबूजीने स्वयं दूसरा टुकड़ा तोड़कर उसे मुँहमें डालते हुए कहा : "रोटी तो ठीक बनी है।" फिर उन्होंने दालकी पतीली झाँककर देखी और कहा कि "दाल कम घुटी हुई लगती है।" फिर उन्होंने मुझे समझाते हुए कहा : "भाई, भोजन ऐसा बनना चाहिये कि खाने वालेका मन प्रसन्न हो। यह तभी सम्भव होगा, जब आप स्वयं सप्ताहमें एक बार इसे थोड़ा चख लिया करें।" बाबूजीकी इस महानताको देखकर मैं स्तब्ध खड़ा रह गया।

वह साधु-महात्माओंकी व्याख्या वर्ग या विद्वत्ताके आधार पर नहीं करते थे। एक बार उन्होंने पूछा कि "आज-कल सदाव्रतमें कितने महात्मा खाते हैं?" मैंने कहा कि 'बाबूजी साधु-महात्मा तो दो-चार ही होते हैं, पर भिखारी अधिक होते हैं।' बाबूजीने प्रश्न किया कि "जो साधु-महात्मा होते हैं, वे किस कोटि के होते हैं।" मैंने कहा कि बाबूजी वे पठित भी होते हैं और खान-पान तथा स्पृश्यास्पृश्यका ध्यान भी रखते हैं। बाबूजीने कहा कि "पढ़ने या स्पृश्यास्पृश्यका विचार करने मात्रसे कोई महात्मा नहीं होता। जो रामका नाम लेता है, भक्ति करता है, वास्तवमें वही महात्मा है। चाहे वह किसी जाति या वर्णका हो, और पढ़ा हुआ हो या न हो।" बाबूजी कहा करते थे कि "कोई माँगने आवे, तो उसे मना नहीं करना चाहिये। चना, गुड़, रोटी, दूध जो भी समय पर उपलब्ध हो, देकर उसकी आत्माको प्रसन्न करना चाहिये। भूखे आदमीको समय पर जो भी मिल जायेगा, उससे उसे सन्तोष होगा।"

बाबूजीको स्वच्छता बड़ी प्रिय थी। वे जहाँ भी रहते, स्वच्छतापर बहुत ध्यान देते। इस उम्रमें भी उनकी घ्राण शक्ति बड़ी तीव्र थी। एक बार वे मथुरा मन्दिरकी कुटीमें विश्राम कर रहे थे। सायंकालका समय था। बार-बार नाकसे जोरसे श्वास लेकर कुछ सूँघनेकी चेष्टा करने लगे। थोड़ी देर बाद बोले कि "कहींसे गोबर तथा पेशाबकी बास आ रही है।" मैंने कहा कि 'यहाँ तो कुछ भी नहीं है। सब जगह स्वच्छता है।' मेरे

* * *

उत्तरसे उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। स्वयं उठकर इधर-उधर देखा, फिर छत पर चढ़ गये और बोले: "देखो, बाहर मालियोंकी जो गाय-भैंसें बँधी हुई हैं, उन्हींके गोबर-पेशाबकी बदबू आ रही है।" बाबूजीने गाँव वालोंको बुलवाया। उनसे बड़े प्रेमसे मिले तथा उन्हें सफाईके बारेमें समझाया और गन्दगीसे होने वाली बीमारियोंसे अवगत कराया। गाँव वाले भी बाबूजीसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए और सफाई पर विशेष ध्यान देनेकी प्रतिज्ञा की। बाबूजी गाँव वालोंको समय-समय पर आम, खरबूजा, केला, सन्तरा आदि बँटवाया करते थे, जिससे गाँव वाले बाबूजीकी बहुत याद किया करते थे तथा उनके आनेकी प्रतीक्षा किया करते थे।

एक बार बाबूजी वृन्दावनके गोविन्दजीके मन्दिरको (जिसका जीर्णोद्धार १,९०,००० रु० लगाकर बाबूजीकी प्रेरणासे ही बिरला जनकल्याण ट्रस्टने करवाया है) देखने गये। वहाँ उनके चारों तरफ पण्डे एकत्र हो गये और एक-एक रुपये दक्षिणाकी माँग करने लगे। बाबूजीने पूछा कि "आप कुल कितने आदमी हैं?" पण्डोंने कहा कि 'कुल दो-ढाई सौ हैं।' तुरन्त उन्हें ढाईसौ रुपये देनेकी आज्ञा दे दी। मैंने कहा कि 'बाबूजी, ये तो कुल २०-२५ आदमी ही हैं' तो हँसकर बोले कि "हाँ, यह मैं भी देख रहा हूँ, किन्तु एक-एक रुपयेसे उनका क्या बनेगा? आठ-दस रुपये प्रति व्यक्ति तो इनको मिलना ही चाहिये।" बादमें मालूम हुआ कि प्रति पण्डेको नौ रुपये दस आनेके हिसाबसे मिले थे। ऐसी थी बाबूजीकी दया और उदारता।

ऐसा लगता है कि बाबूजीको अपनी मृत्युका आभास बहुत पहले मिल गया था। एक दिन जब मैं उनके दर्शनोंके लिये उपस्थित हुआ, तो उन्होंने श्रीधरजी वैद्यसे कहा कि "मदनजी को भीतर भेज दो, जरूरी बात करनी है।" जब मैं उनके पास गया तो कुशल-मंगल पूछनेके बाद बोले "मदनजी, (प्रेमसे वे मुझे इसी तरह सम्बोधित करते थे) मैं अब अधिक दिनों तक नहीं रह सकूँगा। जिस कार्यके लिये आया था, वह कार्य अब हो चुका है और शीघ्र ही अन्तिम यात्रा होने वाली है। आप सबसे यही कहना है कि अपने-अपने कर्तव्यका पालन करते रहें।" इतना कहकर जब वह मौन हो गए, तो ऐसा लगा मानों वे उन लोगोंके भविष्य पर सोच रहे हैं, जिन्हें छोड़कर जाने वाले थे। मेरी आँखोंसे आँसू गिरने लगे। मैंने रुँधे कण्ठसे निवेदन किया कि 'ऐसा न कहिये बाबूजी! आपके मुखसे यह शब्द हम कैसे सुनें? बाबूजी हम तो अनाथ हो ही जायेंगे, आपके बिना हिन्दू-धर्म व जातिको कोई अवलम्बन देने वाला भी नहीं रहेगा। भगवान्से हमारी प्रार्थना है कि वे हमारी शेष आयुको आपकी आयुमें जोड़कर और भी लम्बी बना दें। हम जैसे तो प्रतिदिन पैदा होते हैं और मरते हैं। पर आप जैसे महापुरुष यदा-कदा ही पृथ्वी पर आते हैं।' यह सुनते ही बाबूजीकी आँखोंमें आँसू भर आये, वे मौन ही रहे। उनके उस मौनका चित्र अब भी मेरी आँखोंके सामने रहता है। बाबूजीकी कितनी ही ऐसी स्मृतियाँ हैं, जो मेरे जीवनका सम्बल बनी हुई हैं। मैं उनके प्यारको कभी भूल न सकूँगा। जब तक जीवित रहूँगा, उन्हें निधिकी तरह सँजोये रखूँगा।

●

श्री गोपालदत्त शास्त्री

श्री बिरलाजीकी जन्मभूमि पिलानीके शारदापीठ विद्याविहारके याजक श्री गोपालदत्त शास्त्री भगवती शारदाका पूजन समाप्त कर मन्दिरके जगमोहन पर ज्योंही उपस्थित हुए, हमने उनसे श्री बिरलाजीके उन अनुभूत संस्मरणोंको सुनानेका अनुरोध किया, जो पिलानीसे सम्बद्ध हों।

श्री शास्त्रीजी भावविभोर हो उठे। कुछ रुक कर, उन्होंने कहना प्रारम्भ किया:

छात्रावस्थासे ही बड़े बाबूके निकट पहुँचनेका सौभाग्य मुझे मिला था। एक बार वे संस्कृत पाठशाला देखने गए। सब छात्रोंको देखते हुए उन्होंने मेरा अति कृश-शरीर देखकर दयार्द्र होकर पूछा, "यह लड़का बहुत

दुर्वल है।" हमारे पूज्य श्री गुरुजीने कहा : 'दुर्वल तो अवश्य है, किन्तु प्रतिभाशाली और परिश्रमी है।' तव वावूजी विशेष रूपसे मेरी ओर आकृष्ट हुए। उन्होंने मेरी पारिवारिक स्थिति पूछी, फिर कन्धेके नीचेसे बायाँ हाथ टटोलकर वोले : "थोड़ा व्यायाम किया करो।" मेरे लिए वहुत छोटी-छोटी हलकी-सी दो मोगरी वनवायीं। पीनेके लिए दूधका विशेष प्रवन्ध करवाया। उस समय मेरी आयुका नवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ था।

श्री बड़े वावूजीके स्नेहने पूज्य श्री माजी और राजासाहब (विरलाजीके माता-पिता)के हृदयमें मेरे लिए स्थान वढ़ा दिया। वे मुझे तभीसे पण्डितोंकी श्रेणीमें सम्मानित करने लगे एवं सत्रहवें वर्षमें ही गेस्ट-हाउसके बरावर पक्का मकान बनवा कर दे दिया। फलतः वर्तमान स्थिति ईश्वरेच्छासे उनकी ही ईषत् कृपा-कटाक्षका परिणाम है। उनके अनन्त उपकारोंकी गाथा सुनाऊँ, तो आत्मश्लाघाका दोष आ जाएगा।

श्री बड़े वावूने छात्रावस्थामें ही मेरा नाम "गोपालदत्त" रख दिया था। उनके पिलानी पधारने पर हाईस्कूलकी छुट्टीके बाद मैं नियमतः २-३ घण्टे उनकी सेवामें उपस्थित रहता।

कारण तो वे स्वयं ही जानें, पर उनका एक शब्द "गोपाल जी सयाने हैं" मेरे समकक्ष लोगोंकी उपस्थिति-में कई वार प्रयुक्त होता था। मेरा उत्तर अधिकांश तो मौन, कभी-कभी 'आपकी कृपा ही सयानी है' होता।

इतना समीप रहकर भी मैं उनके उदाराशयको न समझ पाया। पता नहीं, इस अज्ञको वे क्यों इतना मान देते थे।

जीवन भर खटकेगा कि ऐसे दीनवन्धुकी मैं कुछ भी सेवा न कर सका।

"बिन सेवा जो द्रवै दीन पर, ऐसो तुम सन नाहीं" ऐसे स्वामी दुर्लभ होते हैं, जो दीन विद्यार्थीसे सुख-दुःखकी पूछते-पूछते उसे उठाकर अपना ही बना लें।

ऐसे महापुरुष हज़ारों वर्षोंमें इने-गिने ही हुआ करते हैं। उनके संस्मरणसे कण्ठ अवरुद्ध हो आता है। अव तो केवल जाग्रत भावोंमें अथवा स्वप्नमें ही उनके दर्शन हो सकते हैं।

⊙

तरल और सरल

पिलानी सार्वजनिक औशधालयका कम्पाउण्डर रामा विश्रामवाटिकामें आकर श्री बिरलाजीके सामने बैठ गया। हाथ जोड़कर किन्तु अटपटे शब्दों में मँहगाई मिलनेकी प्रार्थना करने लगा।

यह स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्तिको प्रार्थनाकी विधि भी स्पष्ट ज्ञात नहीं होती। रामाने भी अपनी प्रार्थना-की स्पष्टताके लिए हाईस्कूल, कॉलेज एवं हवेलीके कर्मचारियोंको मिली मँहगाईका उदाहरण देकर न्यायकी दुहाई दे डाली। वह अपने अभावको न दिखलाकर अधिकार पर उतर गया। बड़े बाबू बोले, "मैं तुझे नहीं जानता। तू फ़ालतू-सा आदमी लगता है। कुछ नहीं मिलेगा।" वह उठकर चला गया।

मैंने सोचा, यह तो ठीक नहीं हुआ। सच बात तो यह है कि ऐसे अवसरों पर सही वात रखनेकी श्री बिरलाजीने मुझे छूट दे रखी थी। एक दिन बातों-बातों में पूरा विश्वास-पात्र समझकर दाहिने हाथकी अँगुली मस्तकके बराबर रखकर बोले : 'हर बातमें हाँ जी, हाँ जी ही मत किया करो। सही बात (अपने मनकी) निर्भय होकर साफ़-साफ़ कह दिया करो।"

हाँ, तो ज्योंही रामा उदास हो चला गया, मैंने विनीत भावसे तत्काल निवेदन किया : 'देना न देना आपकी इच्छा पर है। उसे आपने फ़ालतू माना, सो ठीक नहीं लगता। मालिकके सामने पेट न दिखाए, तो बेचारा कहाँ जाए ? रही बोलनेकी प्रक्रिया, सो यदि वह वाक्पटु ही होता, तो मूसलीसे दवाइयाँ ही क्यों कूटता ?'

मेरे शब्द काम कर गए। सभासदोंकी ओर देखकर पूछा : "गोपालजी, क्या कह रहे हैं?" सभीने मेरा अनुमोदन किया। शीघ्र आदमीको भेजकर बड़े बाबूने रामाको बुलवाया और उससे माफी माँगी और मँहगाई देनेकी स्वीकृति भी दे दी। मेरे मनमें विचार उठा। क्या धृष्टता कर डाली मैंने। इतने बड़े महा-पुरुषको कितना झुकना पड़ा। ⊙

जन्मजात महात्मा

श्रीयुत जुगलकिशोरजी बिरला जन्मजात महात्मा थे। उनकी देवताओंके प्रति बाल्यकालसे ही भक्ति थी। आज जहाँ कहीं भी बिरला-परिवारके कारखाने हैं, अवश्य ही छोटा, बड़ा देव-मन्दिर मिलेगा। यह श्री बड़े बाबूजीकी ही प्रेरणाका फल है। एक बार श्री बाबू गंगाप्रसादजीकी माता दिल्ली पधारीं। तब बड़े बाबूने कहा : "देश (पिलानी) भी जाया करो।" उन्होंने उत्तर दिया : 'वहाँ मन नहीं लगता।' बड़े बाबूने कहा : "मन लगानेके काम किया करो।" तत्काल श्रीमद्भागवतका सप्ताह पारायण बिरला हाईस्कूलके हॉलमें करवाया। एक ओर कथा-वाचन होता रहा तथा साथ-साथ अनेकों पण्डित मूल भागवतका पाठ करते रहे।

यह किंवदन्ती अब भी है कि चिड़ावाके पण्डित गणेशनारायणजीने बड़े बाबूको आशीर्वाद दिया था कि 'जब तक तुम्हारी करणी (निर्माणकार्य) और वरणी (पूजा-पाठ) चलती रहेगी, दिनोंदिन बिरला-परिवारका अभ्युदय होता रहेगा।' पं० गणेशनारायणजी महात्मा ज्योतिष-शास्त्रके विशेषज्ञ थे।

मैंने भी दो वर्ष तक चिड़ावेमें सेठ सूरजमल शिवप्रसादजीकी पाठशालामें पं० रामजीलालजी महाराजसे अध्ययन किया है। वे षट् शास्त्री तथा शेखावाटीके प्रमुख विद्वानोंमेंसे थे। एक दिन प्रसंगवश विद्यार्थियोंके सम्मुख ही पं० गणेशनारायणजीके महात्मापन तथा श्री बिरलाजीको दिए आशीर्वादकी बात मैंने जाननी चाही। श्री महाराजने कहा 'ऋषियो! एक दिन मैं अमुक ग्रन्थका ज्योतिर्गणित पढ़ा रहा था। उत्तर स्पष्ट न मिल सका। तब मैंने विद्यार्थियोंसे कहा कि कल महात्माजीसे पूछकर स्पष्ट करेंगे। इस चर्चाके ठीक आधे घण्टे बाद खड़ाऊँओंकी खटखटाहटके साथ श्री महात्मा गणेशनारायणजी स्वयम् ही आकर खड़े हो गए। मैंने उठकर प्रणाम किया। वे बोले : 'भाई! तुम्हें आनेका कष्ट होता, विद्यार्थियोंका पाठ रुकता, बोलो? वह कौनसा प्रश्न है। सरल कर लेवें। ऋषियो! समझ लो, वे कितने महात्मा थे।'

फिर मुझे सम्बोधित करके बोले : 'उनके महात्मापन और आशीर्वादकी बातका क्या पूछना है? . . . 'तेरा जुगलकिशोर भी स्वयम् पूर्व जन्मका योगभ्रष्ट महात्मा है। वह जब ग्यारह वर्षकी आयुका था, उस समय उसने मुझसे सहस्रचण्डीका अनुष्ठान करवाया था। जिसमें अढ़ाई हजार रुपया लगा था। उन दिनों पण्डितके पूजा-पाठकी दैनिक दक्षिणा चार आने थी। किन्तु जुगलकिशोरजीने सब पण्डितोंको नित्य नया रुचिके अनुसार भोजन तथा १) रु० दैनिक दक्षिणा और सब वस्त्र दिए थे।'

वास्तवमें बड़े बाबू जन्मजात महात्मा थे। ⊙

औघड़दानी

एक कवि पिलानीके श्री स्वामीजीके मन्दिरमें ठहरा था। वह श्री बाबू जुगलकिशोरजी-से मिलने आया। उस दिन बाबूजीका हवेली जानेका विचार न था। कवि भी विश्राम-वाटिकामें आकर श्री बाबूजीके सम्मुख बैठ गया। कवि आकृतिसे सुन्दर था, गोर वर्ण, लम्बा, भरा हुआ शरीर था। लगभग साठ

* * *

वर्षकी आयुका था। वस्त्र आकर्षक न थे। परिधान वीकानेरी था। पत्रोत्तरका काम पूरा कराते रहनेसे श्री विरलाजीका ध्यान कविकी ओर कुछ देर वाद गया।

पूछा : "ये कौन हैं?" हम लोगोंने उत्तर दिया, 'कवि हैं।'

"वोलो, महाराज!" यह शब्द सुननेके वाद कविने बिरला-परिवारकी प्रशस्तिके एक-दो सुन्दर पद्य ही कहे थे कि श्री बिरलाजीने कहा : "महाराज, भगवान्‌की स्तुति सुनाओ। इसे रहने दो।"

यदि कविके काव्यमें सौष्ठव और प्रसाद गुण न होता, तो वड़े वाबू नियमित निर्धारित दक्षिणा देकर उसे विदा कर देते। कविने जो ईश्वर-स्तुति सुनाई, वह विलक्षण एवं मनोमोहक थी। सुनकर सभी मन्त्र-मुग्ध हो गए। बड़े वावूने प्रसन्न होकर वहुमूल्य वस्त्र और यथेष्ठ दक्षिणा प्रदान कर कवि को सम्मानित किया और थोड़ी देर मौन रहनेके वाद उन्होंने फिर कविसे ईश्वर-स्तुति सुनानेके लिए कहा। उसने और भी सुन्दर-सुन्दर पद्य सुनाये। गद्गद होकर श्री विरलाजीने उसे १०१) रु० और देनेकी आज्ञा दी।

श्री वावूजीका मन देखकर कविने भी अपनी वाणीका वैभव प्रकट किया। ईश्वर एवं जगदम्वाकी स्तुतिमें ऐसे सुन्दर छन्द सुनाए कि बिरलाजी भाव-विभोर हो गए और ५०१) और देनेकी आज्ञा प्रदान की तथा उससे निवेदन किया कि "आप दिल्ली आइए।" परिचयमें भी देर हो गयी थी; उसे आज्ञा मिली। कविकी, मनोकामना पूरी हुई। वस्तुतः कवि साधारण कवि नहीं; राजकवि था। उसने राजाओंके प्रमाणपत्र भी दिखाए और कहा कि 'मेरा आपसे मिलनेका विशेष उद्देश्य यह भी था कि मैं दिल्ली आऊँ और आपके माध्यमसे नये राजाओं (नेताओं)से भी परिचय करूँ।'

हमलोगोंने भी अभीतक तो सुन ही रक्खा था कि दाताकी भुजाएँ दान देनेको फड़कती रहती हैं। किन्तु उस दिन देख लिया।

●

श्रीबिरलाजीकी नित्यउपासना

श्रीमद्भगवद्गीता

⊙ ⊙ ⊙

दशमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

(१९)

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे॥

(२०)

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥

(२१)

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी॥

(२२)

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना॥

(२३)

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्॥

(२४)

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः॥

स्व० श्री बिरलाजीकी साधना, उपासना एकान्तिक और गोपनीय रही है। उनके निकटवर्ती व्यक्ति पूजावसान समय उनके मुखसे गीताके दसवें, ग्यारहवें और बारहवें अध्यायका पाठ और ईशस्तवन नित्य

* * *

श्रीबिरलाजीकी नित्यउपासना

श्रीमद्भगवद्गीता

⊙ ⊙ ⊙

दसवाँ अध्याय (पद्यानुवाद)

श्री भगवान् बोले

–१९–

निज विभूतियाँ अब कुरुसत्तम मैं तुझको हूँ बतलाता।
प्रमुख, प्रमुख जो वही कहूँगा, अन्त न उसका नर पाता॥

–२०–

मैं भूतोंमें रहनेवाला, आत्मा, गुडाकेश अर्जुन!
आदि, मध्य, अवसान सभी कुछ सारे जगका मुझको गुन॥

–२१–

विष्णु अदिति पुत्रोंमें हूँ मैं, सभी ज्योतियोंमें रवि हूँ।
पवनोंमें मरीचि हूँ, मैं ही नक्षत्रोंमें शशि छवि हूँ॥

–२२–

वेदोंमें मैं सामवेद हूँ, देवोंमें मैं देवेश्वर।
इन्द्रियगणमें, मन हूँ, जीवोंमें, मैं हूँ चेतन बनकर॥

–२३–

रुद्रोंमें शंकर, कुबेर हूँ, यक्ष, राक्षसोंमें धनवान।
वसुओं में पावक, सुमेरु, तू, गिरि शिखरोंमें मुझको जान॥

–२४–

पार्थ! पुरोहित-वृन्द बीचमें, विज्ञ बृहस्पति हूँ रहता।
कार्तिकेय सेनापतियोंमें, सरमें सागर बन बहता॥

सुना करते थे, इसलिए गीताके उक्त अध्यायके कतिपय श्लोक और स्तवन दिए जा रहे हैं। गीताके श्लोकों-का पद्यानुवाद श्री मयूरजीसे कराया गया है।—सम्पादक

* * *

४५

(२५)

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः॥

(२६)

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः॥

(२७)

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्‌भवम्।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्॥

(२८)

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः॥

(२९)

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्॥

(३०)

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्॥

(३१)

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी॥

(३२)

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्॥

(३३)

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्यच।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः॥

(३४)

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्‌भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा॥

(३५)

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः॥

* * *

—२५—

भृगु हूँ, सभी महाऋषियोंमें, ओमेकाक्षर शब्दाकार।
यज्ञोंमें जपयज्ञ, तथा हूँ, अचलोंमें हिमशैल अपार!॥

—२६—

वृक्षोंमें अश्वत्थ, देव ऋषि—नारद, ऋषियोंमें पहचान।
गन्धर्वोंमें रहूँ चित्ररथ, सिद्धोंमें मुनि कपिल समान॥

—२७—

मुझे गजेन्द्रोंमें ऐरावत, उच्चैःश्रव घोड़ोंमें जान।
जितना यह मानव समाज है, नरपति सबमें मुझको जान॥

—२८—

शस्त्रोंमें हूँ वज्र, धेनुओंमें, मैं कामधेनु, जानो।
प्रजन हेतु कन्दर्प, मुझे ही, सर्पोंमें वासुकि मानो॥

—२९—

नागोंमें मैं शेषनाग हूँ, जलजीवोंमें वरुण रहूँ।
समझ अर्यमापितृ मुझीको मैं नियमन कर्त्ता यम हूँ॥

—३०—

दैत्योंमें प्रह्लाद भक्त हूँ, 'समय' मध्य कालज्ञ समाज।
गरुड़ पक्षियोंके समूहमें, पशुओंमें मैं हूँ मृगराज॥

—३१—

पावनकर्त्ता पवन, राम हूँ, शस्त्रधारियोंमें बलवान।
मत्स्य वर्गमें मगरमच्छ हूँ, सुरसरि नदियोंमें पहचान॥

—३२—

आदि, अन्त, मैं मध्य सृष्टि का, रञ्च नहीं इसमें अपवाद।
विद्यामें अध्यात्मवाद हूँ मैं अर्जुन! विवाद में वाद॥

—३३—

अक्षरमें मैं हूँ अकार, औ, द्वन्द्व समास, समासों में।
महाकालमें विश्वरूप सब, मेरी साँस उसासों में॥

—३४—

जन्म जीवको मैं देता हूँ, मरण, नाशकारी भारी।
मैं, सहिष्णुता, कीर्ति, वाक्, श्री, धृति, सुस्मृति, मेधा नारी॥

—३५—

छन्दोंमें मैं गायत्री, श्रुतियोंमें तू वृहत्साम जाने।
मार्गशीर्ष मासोंमें, ऋतुओंमें ऋतुराज, मुझे माने॥

* * *

(३६)

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्॥

(३७)

वृष्णीणां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः॥

(३८)

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्॥

(३९)

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥

(४०)

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतिनां परंतपः।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया॥

(४१)

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्॥

(४२)

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्यामहमिदं कृत्स्नकांशेन स्थितो जगत्॥

एकादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

(१)

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
यत्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम॥

(२)

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम्॥

(३)

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम॥

* * *

–३६–

मैं छल जुआ, जीत विजयी की, तेजस्वीका तेज प्रभाव।
दृढ़ निश्चय, निश्चयीजनोंका, सत्व पुरुषका सात्विक भाव॥

–३७–

वृष्णिवंशमें वासुदेव मैं, पाण्डव जनमें अर्जुन आर्य।
मुनियोंमें मैं वेदव्यास हूँ, कवियोंमें, कवि शुक्राचार्य॥

–३८–

शासककी मैं दण्ड शक्ति, जयके इच्छुकका नीतिविधान।
मौन गुप्त भावोंमें मुझको समझ ज्ञानवालोंका ज्ञान॥

–३९–

अर्जुन! मैं भूतोंका कारण, सभी वस्तुका बीज अनूप।
बाहर नहीं चराचर मुझसे, जो कुछ है मेरा सब रूप॥

–४०–

है ऐश्वर्योंका मेरे कुछ, अन्त नहीं, मैंने दो चार।
कहा बहुत संक्षेप परन्तप, निज विभूतियोंका विस्तार॥

–४१–

वस्तु प्रभामय, शक्ति, विभवयुत, सृष्टि बीच जो देख कहीं।
मेरे तेज अंश से उपजी, उसका उद्गम अन्य नहीं॥

–४२–

अथवा तुझे जाननेसे क्या, काम बहुत विस्तृत व्यापार।
अर्जुन एक अंश से अपने, धारण करता सब संसार॥

ग्यारहवाँ अध्याय

अर्जुन बोले

–१–

मुझ पर बड़ा अनुग्रह करके गुप्तज्ञान जो बतलाया।
सुनकर वह आध्यात्म विषय, अब, मेरा मोह छूट पाया॥

–२–

कमलनयन मैंने भूतोंकी, सुनी, विपुल उत्पत्ति प्रलय।
तथा तुम्हारा समझा भगवन्, वृहत् प्रभाव, अगम अक्षय॥

–३–

हे! परमेश्वर, पुरुषोत्तम हे! बतलाया तुमने जैसा।
तेज, विभव बलयुक्त दिखा दो, दिव्य स्वरूप मुझे वैसा॥

* * *

(४)

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्॥

श्रीभगवानुवाच

(५)

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च॥

(६)

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत॥

(७)

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि॥

(८)

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥

संजय उवाच

(९)

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्॥

(१०)

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम्।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्॥

(११)

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम्॥

(१२)

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥

(१३)

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा॥

* * *

—४—

यदि सम्भव हो प्रभो ! देखना, और अनर्थ मुझे जानो।
तो अव्यय स्वरूप दिखलाओ, योगेश्वर ! विनती मानो।।

श्री भगवान् बोले

—५—

भाँति-भाँतिकी कितनी आकृति कितने रंग ढंग आकार।
भरा, अलौकिक रूप आज तू पार्थ ! देख ले विविध प्रकार।।

—६—

देख अदिति सुत, वसु, सब भारत, देख रुद्र, अश्विनीकुमार।
देख मरुद्गण, कभी न देखा, ऐसे रूप विचित्र निहार।।

—७—

गुडाकेश ! मेरे शरीरमें, देख जगत् चर अचर सभी।
जो कुछ और देखना चाहे, एकत्रित सब देख अभी।।

—८—

किन्तु न अपनी इन आँखोंसे, देख सकेगा तू मुझको।
अतः देखनेके निमित्त मैं दिव्य-चक्षु देता तुझको।।

संजय बोले

—९—

हे राजन् फिर पृथापुत्रको, पापविनाशक योगेश्वर।
हरिने अति ऐश्वर्ययुक्त, निज, रूप दिखाया यह कह कर।।

—१०—

विश्वरूपका अद्भुत दर्शन, थे अनेक मुख, नैन अनेक।
भूषण दिव्य देह पर, करमें, शस्त्र एक-से बढ़ कर एक।।

—११—

परम विराट असीम पुरुष वह, दिव्य सुरभिमय लेप किये।
दिव्याभरण, वस्त्र वेष्टित था, दिव्य हार भी दिव्य हिये।।

—१२—

अगणित सूर्य उदय होनेसे, नभमें हो प्रकाश जैसा।
तुलनामें वह भी नगण्य-सा, प्रभावान् कुछ था ऐसा।।

—१३—

बँटा हुआ नाना प्रकारसे, सारा विश्व विभव उस काल।
परमदेवके तनमें देखा, पाण्डवने निज आँखें डाल।।

* * *

(१४)

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत॥

अर्जुन उवाच

(१५)

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥

(१६)

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप॥

(१७)

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम्॥

(१८)

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे॥

(१९)

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्॥

(२०)

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्॥

(२१)

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः॥

(२२)

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे॥

(२३)

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम्॥

(२४)

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो॥

* * *

—१४—

हक्का-वक्का मौचक्का बन, व्याकुल, विस्मित, अमित चकित।
हाथ जोड़, शिर मोड़ धनंजय, तब बोला होकर पुलकित॥

अर्जुन वोले

—१५—

देख रहा मैं देव, भूतगण, ब्रह्मा कमलासन मारे।
तव शरीरमें वैठ ऋषिवर, शंकर, दिव्य सर्प सारे॥

—१६—

हैं अनेक कर, उदर, चक्षु, मुख, मैं स्वामी देखूँ जिस ओर।
यह अनन्त रूपोंवाला तन, आदि न मध्य न कोई छोर॥

—१७—

गदा, चक्र, शिर मुकुट तेजमय, पुंज प्रभा यों फैलाये।
चकाचौंध लगती है भगवन्, तुमको कौन देख पाये॥

—१८—

तुम परमेश्वर ज्ञेय ब्रह्म हो, तुम्हीं विश्वके हो आधार।
अव्यय, अक्षर तुम पर ही है, आदि धर्म रक्षा का भार॥

—१९—

बाहु असंख्य, नेत्र तव रवि,शशि, आदि, अन्त क्या जाय कहा।
अग्नि ज्वाल परिपूरित मुख है, तेज जगत्को तपा रहा॥

—२०—

व्याप्त किया तुमने चारों दिश, पृथ्वी, नभका सब अन्तर।
काँप रहा त्रैलोक्य, देख यह रूप विचित्र उग्र भयंकर॥

—२१—

देव प्रवेश करें तुममें कुछ, हुए सभीत जोड़कर हाथ।
स्वस्ति, स्वस्ति कह सिद्ध महामुनि, विनती करते मिलकर साथ॥

—२२—

रुद्र, मरुत्, आदित्य, साध्यगण, यक्ष, असुर, अश्विनीकुमार।
विश्वेदेव, पितर, वसु, देखें, सिद्ध तुम्हें हो चकित अपार॥

—२३—

ये महान् अगणित मुख, आँखें, बाहु, जाँघ, पद, उदर अनेक।
देख कराल, डाढ़ सब व्याकुल, रहा महाबाहो, न विवेक॥

—२४—

ज्वलित नेत्र देदीप्यमान मुख, छूता नभ यों फैलाये।
देख तुम्हें व्याकुल मैं विष्णो, हृदय न धैर्य शान्ति पाये॥

* * *

(२५)

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास॥

श्रीभगवानुवाच

(३२)

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः॥

(३३)

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवेते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥

(३४)

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्॥

श्रीभगवानुवाच

(५२)

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः॥

(५३)

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥

(५४)

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

(५५)

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

द्वादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

(१)

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः॥

* * *

—२५—

जगनिवास, तव दाढ़ भयंकर, प्रलय अग्नि-सा मुख प्रभुवर।
देख, न सूझे दिशा, गया सुख, हों प्रसन्न अब देवेश्वर ! ।।

श्री भगवान् बोले

—३२—

बढ़ा हुआ मैं महाकाल हूँ, आया करने संहार।
यदि तू नहीं लड़ेगा तो भी, योद्धा खड़े मृत्यु के द्वार।।

—३३—

अतः सव्यसाचिन् उठ, यश ले, वैरी जीत, भोग धन राज।
मैंने इन्हें वधा पहले ही, तू निमित्त, इनका बन आज।।

—३४—

मारा मैंने भीष्म, द्रोण को और जयद्रथ, कर्ण सभी।
सारे योद्धा मेरे मारे, हारेगा तू नहीं कभी।।

श्री भगवान् बोले

—५२—

यह स्वरूप जो तुमने देखा, इसे देखना परम कठिन।
अरे, देव भी चाहा करते, चतुर्भुजी दर्शन निशिदिन।।

—५३—

जैसे तूने देखा इस विधि, मुझे वेद पढ़, कर तप, दान।
नहीं देख सकता कोई भी, अथवा करके यज्ञ-विधान।।

—५४—

भक्ति अनन्य करे जब अर्जुन, तब नर ऐसा पावे ज्ञान।
करे प्रवेश परन्तप, मुझमें, तत्वज्ञान से ले पहचान।।

—५५—

सारे कर्म मुझे अर्पण कर, एक भाव से भजे सदा।
संग रहित निर्वैर रहे जो, पावे पाण्डव, मुझे तदा।।

बारहवाँ अध्याय

अर्जुन बोले

—१—

इस विधि सततयुक्त हो भजते, सगुण रूप तुमको जो जन।
उत्तम वे, अथवा जो, निर्गुण, निराकार का करे भजन।।

* * *

श्रीभगवानुवाच

(२)

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥

(३)

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥

(४)

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥

(५)

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥

(६)

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥

(७)

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

(८)

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

(९)

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय॥

(१०)

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि॥

(११)

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्॥

(१२)

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥

* * *

श्री भगवान् बोले

—२—

एकनिष्ठ हो मुझमें मन दे, श्रद्धासे भजते मुझको।
जो, वे नित्ययुक्त योगी हैं, श्रेष्ठ बताऊँ मैं तुझको॥

—३—

अक्षर, ब्रह्म, अनन्त, अगोचर, अचल, अचिन्त्य, अकथ बिन रूप।
अव्यय, अच्युत, अज, अविनाशी, सदा एक रस रहे अनूप॥

—४—

जो समभाव समत्व बुद्धिसे, इस स्वरूप को हैं ध्याते।
सबके हित रह रह कर नित, वे भी मुझको ही पाते॥

—५—

देहधारियों को अदेह के, चिन्तनमें हैं क्लेश विशेष।
निराकार का ध्यान कठिन है, जबतक देह-मान अवशेष॥

—६—

किन्तु कर्म मुझको अर्पित कर, कर्म फलोंसे ले संन्यास।
मुझे अनन्य योगसे भजते, ध्यानयुक्त, जो, कर विश्वास॥

—७—

ऐसे प्रेमी भक्तों का जो, मुझमें प्रेम करें निस्वार्थ।
करता मैं उद्धार शीघ्र ही, मृत्यु-सिन्धु भवसे हे पार्थ ! ॥

—८—

होकर मेरा प्रेम परायण, बुद्धि लगा मुझमें सुस्थिर।
संशय नहीं लेश भी इसमें, मुझको ही पायेगा फिर॥

—९—

नहीं अचल मन रख सकता है, मुझमें, तो फिर इतना जान।
पावे मुझे धनंजय ! अब तू, यत्न करे, दृढ़ निश्चय ठान॥

—१०—

यदि अभ्यास नहीं कर सकता, तो कर शास्त्र विहित सब कर्म।
सिद्धि मिलेगी करके मम हित, ज्ञान, ध्यान, जप, दान स्वधर्म॥

—११—

कर न सके इसको भी, तो मन, धीरे-धीरे कर नियमन।
कर्मयोग का आश्रय ले कर, तोड़ फलाशा के बन्धन॥

—१२—

है प्रयास से ज्ञान श्रेष्ठ, वर—ध्यान, ज्ञानसे कहलाता।
इससे फलका त्याग श्रेष्ठ है, जिससे जीव शान्ति पाता॥

* * *

(१३)

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥

(१४)

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

(१५)

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥

(१६)

अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

(१७)

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥

(१८)

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥

(१९)

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥

(२०)

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥

●

* * *

–१३–

द्वेष-रहित सबका प्रेमी जो, ममता त्यागी, गत अभिमान।
सभी प्राणियों पर दयालु है, सुख-दुखमें सब, क्षमावान्॥

–१४–

इन्द्रिय, मन जिसके वश में है, लाभ, हानि सबमें सन्तुष्ट।
योगी भक्त मुझे प्रिय वह, जो, मुझमें निश्चय रखता पुष्ट॥

–१५–

कभी किसीको क्लेश न देता, नहीं किसीसे दुख पाता।
हर्ष, क्रोध, भय, वेगादिकसे, जो अलिप्त, मुझको पाता॥

–१६–

आकांक्षासे हीन, दक्ष, शुचि, उदासीन, दुख, व्यथा विरक्त।
सर्वारम्भ परित्यागी जो, वह है मेरा प्यारा भक्त॥

–१७–

हर्ष न जिसमें, शोच नहीं कुछ, और घृणा न प्रलोभन हो।
सभी शुभाशुभ कर्मों के फल, त्यागे, मम प्रिय भक्त वही॥

–१८–

सर्दी, गर्मी, सुख, दुख वैसे, वैरी, मित्र, मान, अपमान।
राग रहित हो, इन द्वन्द्वों को, जो नर मुझसे एक समान॥

–१९–

निन्दा, श्लाघा सम, मितभाषी, ज्यों, त्यों करे देह निर्वाह।
निश्चल मति, अनिकेतन रहे जो, मुझको उसकी, होती चाह॥

–२०–

श्रद्धायुक्त पुरुष अमृतमय, उक्त वचन जिसने धारा।
रहता सदा परायण मेरे, मुझे भक्त वह अति प्यारा॥

श्री शिवकुमार मिश्र 'मयूर'

●

ईश-स्तवन

⊙ ⊙ ⊙

नमस्ते सते सर्वलोकाश्रयाय
नमस्ते चिते विश्वरूपात्मकाय,
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय
नमो ब्रह्मणे व्यापिने निर्गुणाय।
त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं
त्वमेकं जगत्कारणं विश्वरूपम्,
त्वमेकं जगत्कर्तृ पातृ प्रहर्तृ
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम्।
परेशप्रभो सर्वरूपप्रकाशिन्
अनिर्देश्य सर्वेन्द्रियागम्य सत्यं,
अचिन्त्याक्षरं व्यापकाव्यक्ततत्त्वं
जगद्भासकाधीश पायादपायात्।
तदेकं स्मरामस्तदेकं जपामः
तदेकं जगत्साक्षिरूपं नमामः।
तदेकं निधानं निरालम्बमीशं
भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः।
ॐ नमस्ते परब्रह्म नमस्ते परमात्मने।
निर्गुणाय नमस्तुभ्यं सद्रूपाय नमोनमः॥

●

संस्कृति-सेतु

•

धर्म ही सत्य है, धर्म ही संस्कार है, धर्म ही संस्कृति है और धर्म ही सर्वस्व है। धर्मके इसी स्वरूपके साँचेमें स्वर्गीय जुगलकिशोरजीने ऐसी एकाग्रताके साथ अपनेको ढाला कि वे स्वयं धर्मकी परिभाषा बन गए। वे सदेह धर्म थे, भौतिकता और आध्यात्मिकताके मध्य संस्कृति-सेतु थे।

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी महाराज

सनातनधर्म

⊙ ⊙ ⊙

पृथ्वी-मण्डलमें जो वस्तु मुझको सबसे अधिक प्यारी है, वह धर्म है और वह धर्म सनातनधर्म है। वेदोंसे, धर्मशास्त्रोंसे और परम्परा-प्राप्त शिष्टाचारसे अनुमोदित जो धर्म है, उसे सनातनधर्म कहते हैं। सनातनधर्म ऐसा शरीर है, जिसके अन्दर एक चैतन्यकी सत्ता विद्यमान है। सनातनधर्म किसी खास मान्यता या आचार तक सीमित नहीं है। यह तो अनेक वर्ण, अवान्तर वर्ण, जाति और अन्तर्जातियोंमें स्वेच्छासे परिपालित आचार और विचारकी समष्टि है। यही एक ऐसा धर्म है, जो सबको स्वीकार करके चलता है, सबके साथ समताका कुटुम्बका-सा व्यवहार रखना सनातनधर्मकी विशेषता है। इस धर्ममें किसी अन्य धर्म, मत या आचारके छिद्रान्वेषणका अवकाश है ही नहीं। इस धर्ममें जहाँ नदी-पूजा, वृक्ष-पूजा, नाग-पूजा, भूमि-पूजा, पर्वत-पूजा आदि अनेक मौलिक मान्यताएँ हैं; तो वेदान्त प्रतिपादित, श्रुति-प्रतिपादित ब्रह्मतत्वके निरूपणके अनेक स्तर सनातनधर्मके अंग हैं। वस्तुतः करोड़ों मनुष्योंका जो एक शक्तिशाली राष्ट्र है, उसका धर्म - सनातनधर्म है और सनातनधर्मी वही व्यक्ति होता है, जो भारतवर्षको अपनी मातृभूमि मानता है; पुनर्जन्मके सिद्धान्त पर आस्था रखता है। इस तथ्यके संकेत प्रत्येक धार्मिक कर्मके समय पढ़े जानेवाले संकल्पमें मिलते हैं। मातृभूमि और राष्ट्रके सम्बन्धमें जब कभी कुछ कहनेका अवसर आया है, तो हमारे ऋषियोंने, आचार्योंने ऊर्ध्ववाहु होकर कहा है :

माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी
न भारतसमं वर्षं पृथिव्यामस्ति भो द्विजाः
दुर्लभं भारते जन्म मानुषं तत्र दुर्लभम्
अहो भारत भारतम् ।

सनातनधर्मकी लोकप्रसिद्ध परिभाषाके अनुसार 'हिन्दू' वह है, जो गंगा, गऊ, गायत्रीका भक्त हो। निगमागम-सम्मत धर्मका प्रतीक गायत्री है। करोड़ों लोगोंकी धर्मनिष्ठाका मूर्तरूप गंगा है। सनातनधर्मकी धारा ही गंगाके रूपमें बह रही है। करोड़ों ग्रामवासियोंका सनातनधर्म गंगा ही है। गो माता है, उसे केवल पशुके रूपमें देखना उचित नहीं है। उसके रोम-रोममें देवताओंका वास है। उसके दूधमें अमृत है। वह घास खाकर दूध रूपी रसायन देती है। उसके बछड़े हलधर किसानोंके जीवन और प्राण हैं, जो धरतीको अन्नके मोतियोंसे भर देते हैं। गऊ और उसके दूधको मैं साक्षात् ईश्वर मानता हूँ। हर वस्तुके उपकारकी

एक मात्रा होती है, सीमा होती है, किन्तु गोमाताके उपकारोंकी कोई सीमा नहीं, कोई माप नहीं। यजुर्वेदका कहना है : गोस्तु मात्रा न विद्यते।

श्रीमद्भागवतमें धर्मके जो तीस लक्षण बतलाए गए हैं और मनु महाराजने जिस धर्मको दस लक्षणोंवाला बताया है, वही तो मनुष्यमात्रके लिए सनातनधर्म है।

सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतत् सनातनम्।

(साप्ताहिक सनातनधर्म, काशीसे)

* * *

महात्मा गान्धी

संसारको हिन्दू-धर्मकी देन

⊙ ⊙ ⊙

वर्णाश्रम धर्म स्वयंमें हिन्दू-धर्मकी विश्वको एक अपूर्व देन है। हिन्दू-धर्मने हमें भयसे मुक्ति दी है। यदि हिन्दू-धर्मने मुझे नहीं बचाया होता, तो एकमात्र आत्महत्याही मेरे सामने एक रास्ता रह गया होता।

मैं हिन्दू हूँ, क्योंकि हिन्दू-धर्मने संसारमें सच्ची जिन्दगी वितानेका मार्ग बताया है। हिन्दू-धर्मसे ही बौद्ध-धर्मका उदय हुआ है। जो कुछ हम देखते हैं, वह हिन्दू न प्रतीत होकर इसका प्रतिरूप लगता है, अन्यथा इसे मेरी वकालतकी जरूरत न पड़ती, यह स्वयं बोलता, जैसे यदि मैं भी पूरी तरह पवित्र हो जाऊँ; तो मुझे आपके समक्ष बोलनेकी जरूरत न होगी।

हिन्दू-धर्मने मुझे यह सिखाया है कि यह शरीर, आत्माकी शक्तिके लिए जो इसके भीतर रहती है, एक बाधा है। जहाँ पश्चिमने भौतिक उपकरणोंको जुटानेमें और उनकी खोजमें आश्चर्यजनक प्रगति की है, वहाँ हिन्दू-धर्मने इससे भी चमत्कारिक चीजोंकी खोज की है, अर्थात् आध्यात्मिक जगत्की चीजोंकी। लेकिन हमारी आँखें इन दोनों खोजोंकी तरफसे मुँदी हुई हैं। हम पश्चिम द्वारा प्राप्त भौतिक खोजों और उन्नतिसे चकाचौंध हो गए हैं। मैं उस उन्नति पर आसक्त नहीं हूँ।

वास्तवमें देखा जाए, तो ऐसा लगता है कि ईश्वरने अपनी विशेष कृपाके कारण भारतको इस दिशामें प्रगति करनेसे रोक दिया है; ताकि यह अपने उस मूल ध्येयको पूर्ण कर सके, जिसमें भौतिकवादका दमन होता है। जो हो, हिन्दू-धर्ममें कुछ ऐसा अवश्य है, जिसने इसे अब तक जिन्दा रखा है। इसने सीरिया, मिस्र, फारस, बेबीलोनियाकी सभ्यताओंका पतन होते देखा है। जरा अपने अन्दर झाँककर पूछिए - आज वे रोम और ग्रीस कहाँ गए? क्या आज आप कहीं गिबनकी इटली पाते हैं, या उस प्राचीन रोमन सभ्यताको जिन्दा पाते हैं? ज़रा ग्रीस जाइए। विश्वप्रसिद्ध एटिक सभ्यता कहाँ चली गई? अब भारतकी ओर देखिए; और इसके प्राचीनतम अवशेषोंका निरीक्षण कीजिए। आपको कहना पड़ेगा कि यहाँ, प्राचीन भारत अब भी जिन्दा है। सत्य है कि आपको यहाँ-वहाँ गोबरके ढेर भी नजर आएँगे, किन्तु उनमें दबे हुए अमूल्य खजाने भी यहीं हैं। और इसका कारण कि कैसे आज प्राचीन भारत जिन्दा है, यह है कि हिन्दू-धर्मने जो जीवनका अन्तिम उद्देश्य बताया है, उसका सम्बन्ध भौतिकवादमें न होकर अध्यात्मवादमें निहित है।

इसकी अन्य बहुत-सी देनोंमें एक असाधारण देन मनुष्यके अस्तित्वसे मूक जीवोंके सम्बन्ध जोड़नेका विचार है। मेरे लिए गोभक्ति एक महान् विचार है। आधुनिक स्वधर्म-त्यागकी प्रवृत्तिसे इसकी स्वाधीनता भी मेरे लिए एक बहुमूल्य चीज है। इसे अपने प्रचारकी जरूरत नहीं है। इसका उपदेश है : 'जिन्दगी जियो'।

* * *

जिन्दगीको जीना मेरा और आपका काम है और तब हम इसका प्रभाव आनेवाले समय पर डाल सकेंगे। हिन्दू-धर्म किसी भी तरह कोई निःशेष शक्ति या मरा हुआ धर्म नहीं है।

चार आश्रमोंके रूपमें एक और इसकी विशेषता देखिए - इस देशकी समानता क्या संसारकी कोई चीज कर सकती है? कैथोलिकोंने अविवाहितोंके लिए ब्रह्मचारियोंके तुल्य व्यवस्था की है, किन्तु विधिके रूपमें नहीं। जबकि भारतमें प्रत्येक व्यक्तिको पहले आश्रम यानी ब्रह्मचर्याश्रमसे होकर गुज़रना अनिवार्य था। क्या शानदार व्यवस्था थी यह। आज हमारी दृष्टि विकार-युक्त है, मन गन्दा है और शरीरसे हम पतित हैं, क्योंकि हम हिन्दू-धर्ममें आस्था नहीं रख रहे हैं।

एक बात और जिसका उल्लेख मैंने नहीं किया है - चालीस वर्ष पूर्व मैक्समूलरने कहा था कि यूरोपके लिए यह बात ज्योतिकी प्रथम किरणकी तरह थी कि पूर्वजन्मका सिद्धान्त मात्र सिद्धान्त नहीं है, एक सत्य है, यथार्थ है। यह सिद्धान्त हिन्दू-धर्मकी ही देन है।

आज हिन्दू-धर्म और वर्णाश्रम-धर्मका इसके भक्तों द्वारा ही ग़लत प्रतिनिधित्व किया जा रहा है। उपाय, इसे नष्ट करना नहीं, इसका सच्चा रूप उभारना है। हमको अब अपनेमें सच्चे हिन्दुत्वको प्रकट करनेका प्रयत्न करना चाहिए और देखना चाहिए कि इससे हमारी आत्माको सन्तुष्टि मिलती है या नहीं।

आज धर्मोंमें भी राष्ट्रोंकी तरह आपसमें होड़ लगी है। ईश्वरकी कृपा और दिव्यदृष्टि किसी जाति विशेष या देश-विशेषका एकाधिकार नहीं है। उनका प्रकाश सबपर बराबर पड़ता है। ऐसा धर्म और राष्ट्र कालके गर्भमें समा जाएगा, जो अपना विश्वास अन्याय, असत्य और हिंसामें रखता है। ईश्वर ज्योति है, अन्धकार नहीं; प्रेम है, घृणा नहीं; सत्य है, असत्य नहीं। ईश्वर ही एकमात्र महान् है। हम तो उसकी महानता-के धूल सदृश अंश हैं। हमको अभिमान-रहित होना चाहिए और उसकी सृष्टिकी सबसे छोटे अंशकी भी सत्ता स्वीकार करनी चाहिए। श्रीकृष्णने दीन-हीन सुदामाको इतना स्नेह, आदर दिया, जितना उन्होंने किसीको नहीं दिया। तुलसीदासने कहा है कि प्रेम ही धर्म और त्यागका आधार है। जबकि यह नष्ट होने-वाला शरीर अभिमान और अधर्मका आधार है।

हिन्दू-धर्मका मूलतत्व इस आधारपर निर्भर है कि यह सारी चेतन-सृष्टि एक है, अर्थात् यह सारा जीवन उस एक विश्वात्मशक्तिसे संचालित हो रहा है, जिसे आप ईश्वर, अल्लाह या गॉड कहते हैं। हिन्दू-धर्ममें एक ग्रन्थ है **'विष्णुसहस्रनाम'**। जिसका सामान्य नाम है - ईश्वरके एक सहस्र नाम। इन एक हजार नामोंका यह अर्थ नहीं है कि ईश्वर इनसे सीमाबद्ध कर दिया गया है, बल्कि यह है कि ईश्वर इतने नाम रखता है, जितने तुम दे सको। तुम उसे कितने ही नामोंसे पुकार सकते हो, यदि उससे एक ईश्वरका बोध होता हो; दोका नहीं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि उनका कोई नाम नहीं है।

सृष्टिकी इस एकताकी मान्यता ही हिन्दू-धर्मकी विशेषता है, जो मनुष्यकी मुक्ति तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इस सृष्टिके सारे जीवोंके लिए उपलब्ध है। यह हो सकता है कि मुक्ति केवल मानव-जन्ममें ही सम्भव हो। लेकिन इससे मनुष्य सृष्टिका कर्ता नहीं बन सकता।

जब हम मनुष्यके भ्रातृत्वपर बातचीत करते हैं, तो रुक जाते हैं और सोचते हैं कि दूसरे सभी जीवन मनुष्यके जीवनको सुखी बनानेके लिए हैं और इसके लिए उनका नाश आवश्यक है। लेकिन हिन्दू-धर्ममें सभी तरहके शोषण या अपने स्वार्थके लिए लाभ उठाना वर्जित है। इस सारी चेतना-सृष्टिसे एकात्मकता अनुभव करनेके लिए त्यागकी कोई सीमा नहीं निर्धारित की जा सकती। लेकिन मनुष्यकी इच्छाओंको अवश्य ही यह आदर्श सीमित कर देता है। आप देखेंगे कि इस आदर्शके विरुद्ध अपनी यह आधुनिक सभ्यता जो कहती है -

* * *

'अपनी जरूरतें बढ़ाओ।' जिन व्यक्तियोंको इसमें विश्वास है, वे सोचते हैं कि आवश्यकताओंमें वृद्धिका अर्थ ज्ञानमें वृद्धि करना है, जिससे उस अनन्त असीमको ज्यादा अच्छी तरहसे समझा जा सकता है।

इसके विपरीत हिन्दू-धर्म कहता है कि अपनी जरूरतोंको कम करो और सन्तोष करना सीखो; क्योंकि आवश्यकताएँ हमारे उस अन्तिम लक्ष्यमें, जिसमें हमें विश्वसे अपनेको एकात्म कर लेना है, बाधा पहुँचाती हैं।

●

जो व्यक्ति निष्काम भावसे कार्य करते हैं, जिनके मन, हृदय और मस्तिष्कमें स्वार्थ-भावनाका लेश भी नहीं रहता, उनमें 'स्व'का भाव तिरोहित हो जाता है। श्री बिरला-जीने अपने 'स्व'को समाजमें समाहित कर दिया था। वह व्यक्तिसे ऊपर उठकर एक समाज बन गए थे। उनकी इच्छाएँ, कामनाएँ, योजनाएँ अपनी न होकर समाजकी हुआ करती थीं। उन्हें अपने, अपने परिवारके हानि-लाभ, उत्कर्ष, अपकर्षकी चिन्ता न होकर समूचे राष्ट्र और संसारके लिए चिन्तित होना पड़ता था। वह अपने देश और समाजको ही नहीं, अखिल विश्वको आत्मबल, चरित्रबल और नैतिकबल-सम्पन्न बनानेके लिए चिन्तित और प्रयत्नरत रहते थे। उनके इन भावोंके साक्षी हैं : उनके द्वारा बनवाए गए मन्दिरों, मठों, स्तूपोंमें उत्कीर्ण शिलालेख। जहाँ उनके जीवनका ध्येय और लक्ष्य स्पष्ट पढ़ा जा सकता है।

* * *

चक्रवर्त्ती श्रीराजगोपालाचार्य

गीतामें सार्वभौम हिन्दू-धर्मका स्वरूप

⊙ ⊙ ⊙

हिन्दू-धर्म-विचारकी जिन्होंने नींव डाली, उनकी दृष्टि बड़ी वैज्ञानिक थी। उन्होंने सत्यके अन्वेषण-को ही धर्म माना। कुछ विशिष्ट मान्यताओंको स्वीकार कर लेना ही धर्म है, ऐसा उन्होंने नहीं समझा। इसलिए अत्यन्त प्राचीन कालसे हमारे यहाँ धर्म-विचारमें मत-भेदको बुरा नहीं माना गया, उसके प्रति असहनशीलता नहीं दिखाई गई। सदासे भारत मानता आया है कि धर्म तो आत्म-विज्ञान है। मत सम्बन्धी मान्यताओंका पुलिन्दा धर्म नहीं। इसीलिए परम रहस्यको जानने, समझनेके जितने भी मार्ग सम्भव हैं, उन सबको हिन्दू-धर्ममें सम्मानपूर्वक स्वीकार किया गया है। शर्त यह है कि ये सब मार्ग श्रद्धापूर्ण हों। विभिन्न दार्शनिक परम्पराओंने उस परम रहस्यकी नाना प्रकारकी व्याख्याएँ की हैं, पर उन सबने जो आचार-धर्म प्रतिपादित किया है, वह एक है। समस्त दार्शनिक परम्पराएँ और शायद सभी धर्म एक ही आचार-धर्मका प्रतिपादन करते हैं। गीताने इसी धर्मका वर्णन किया है। यह जीवन-धर्म सब मनुष्योंके लिए है, चाहे वे किसी मतके हों, किसी सम्प्रदायके हों। और गीताका यह जीवन-धर्म आधुनिक जगत्की आवश्यकताओंके बिलकुल अनुरूप है।

गीताका कहना है कि लोकयात्रा (लोक-व्यवहार) चलती रहनी चाहिए। गीता यह नहीं कहती कि कर्म करना छोड़ देनेसे मुक्ति मिलेगी। समाजमें अपनी स्थितिके अनुसार अथवा किसी विशेष योग्यता आदिके कारण जो काम हमें सौंपे गए हैं, उन्हें हमें कर्तव्य-भावनासे और उतनी ही लगन तथा दक्षतासे करना चाहिए, जैसे स्वार्थसे प्रेरित होकर हम किसी कामको करते हैं। पर साथही हमें उस कार्यके प्रति निःस्वार्थ भाव और अनासक्ति रखनी चाहिए। योग उस मानसिक स्थितिका नाम है, जिसमें मनुष्य सांसारिक कार्यों में निरत रहकर भी त्यागमय जीवन बिताता है। इस प्रकारका जीवन बितानेके लिए मनुष्यमें ज्ञान और भक्तिका होना आवश्यक है।

जहाँ हमारा कोई स्वार्थ हो, वहाँ लगन और मेहनतसे काम करना कठिन नहीं है। पर गीता हमें सिखाती है कि जिस कार्यका फल हमें नहीं, बल्कि समाजको मिलनेवाला हो; वह कार्य हमें उसी लगन और दक्षता-से करना चाहिए तथा हमें लौकिक व्यवहारोंमें व्यस्त रहते हुए भी निःस्वार्थ एवं अनासक्त बने रहनेका अभ्यास करना चाहिए।

सत्पुरुषको सदा इस बातका ध्यान रहता है कि उसमें तथा संसारके प्रत्येक प्राणी एवं पदार्थमें परमात्मा-का निवास है। वह अपने चित्तको काम, क्रोध, मोह, लोभसे मुक्त रखनेके लिए निरन्तर मन-ही-मन प्रार्थना करता रहता है। समाज-हितके लिए जो भी कार्य आवश्यक हैं, उन सबको वह सत्कार्य मानता है और लगनसे करता है।

* * *

सत्पुरुषका काम, भोजन, आराम सब-कुछ नियमित होता है। इसीको गीताने 'युक्ताहारविहार' कहा है। विपदाओंमें सत्पुरुष विचलित नहीं होता। सफलता और विफलता दोनों में वह साहसी और स्थिर-चित्त बना रहता है। फलकी चिन्ता ईश्वरके हाथ सौंप देता है।

इस धर्मका थोड़ा-सा भी पालन कल्याण ही करेगा। यदि इस साधनामें हम विफल भी हों, तो भी कोई भय नहीं, हानि नहीं। यह ऐसी दवा नहीं है, जिसे सेवन करते समय तनिक भी कुपथ्य हो जाए तो विपरीत परिणाम निकलता है।

विज्ञान, धर्म और राजनीतिमें हमारी जो मान्यताएँ हैं, उन सबमें सामंजस्य और अविरोध होना चाहिए। विज्ञान हमें बताता है कि यह सारी सृष्टि मूल प्रकृतिमें निहित शक्तियोंका क्रमिक विकास और आवि-र्भाव मात्र है। हिन्दू-धर्म विज्ञानके इस मतसे सहमत है। आधुनिक विज्ञानने सृष्टिके जिस अद्‌भुत चम-त्कार और सौन्दर्यका आविष्कार किया है, उससे हमारे वेदान्त दर्शनकी मान्यताएँ बिलकुल मेल खाती हैं। इसी तरह आधुनिक जगत्‌में उत्तम नागरिक जीवन एवं समाजके सामूहिक कल्याणके लिए प्रगतिशील विचार आवश्यक हैं। उन सबकी गीतामें प्रतिपादित जीवनधर्मसे आश्चर्यजनक समता है।

आधुनिक अर्थशास्त्र प्रतिपादित करता है कि अर्थव्यवस्था नियोजित होनी चाहिए और हमें स्वार्थ एवं प्रतिस्पर्द्धाकी भावनाके स्थान पर सहकारिताके आधार पर जीवनका संगठन करना चाहिए। पर यह व्यवस्था केवल बाह्य शक्तियोंके दबावसे स्थापित नहीं की जा सकती। बाहरसे जो व्यवस्था हमने अपनायी है, उसे सफल बनानेके लिए हमारे भीतर तदनुकूल संस्कार होने चाहिए। इस प्रकारकी संस्कारिताके अभावमें भौतिक आयोजन प्रवंचनामात्र सिद्ध होता है और भ्रष्टाचार फैलता है।

वेदान्तकी संस्कृति उस योजनाबद्ध सहकारी समाज-व्यवस्थाके लिए सर्वथा उपयुक्त है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्तिके अनुसार काम करेगा और आवश्यकताके अनुसार पाएगा। व्यक्तिको और व्यक्ति-समूहको समाजकी आवश्यकताके अनुसार काम दिया जाना चाहिए। यदि हम चाहते हैं कि सार्वजनिक कल्याण-की साधनाके लिए समाज व्यक्तिका नियमन और शासन करे, तो यह काम केवल गुप्तचरों और पुलिसकी सहायतासे नहीं हो सकता। इसके लिए तो ऐसे आध्यात्मिक जीवन एवं संस्कृतिका विकास करना होगा, जो हमें यह अनुभव कराए कि कर्तव्य कर्म करनेमें आनन्द है।

वैयक्तिक लाभका विचार न रखकर समग्र समाजके कल्याण एवं लाभके लिए काम करो-गीताका यही जीवन-धर्म है। गीता इस बात पर ज़ोर देती है कि मनुष्यके हिस्सेमें आनेवाले सभी कार्य समान रूपसे महान् एवं पवित्र हैं। वास्तवमें गीता तो धर्मकी भाषामें समाजवाद सिखाती है और कहती है कि सही भावनासे किया गया कार्य भगवान्‌की पूजा है।

●

* * *

डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

हिन्दू-संस्कृतिमें आत्मज्ञान और विज्ञानका समन्वय

⊙ ⊙ ⊙

हिन्दू-संस्कृति अगाध और गम्भीर है। यह ज्योति-पुंज है, जो अँधेरेमें भटके हुए लोगोंको अपनी मंजिल तक पहुँचाती है। संसारको आज इसकी आवश्यकता है। पश्चिमी राष्ट्रोंके पास आज भले ही सांसारिक सुखके सभी साधन हैं, पर सच्ची शान्ति प्रदान करनेवाली 'आत्म-विद्या'का वहाँ सर्वथा अभाव है। कारखाने, शिक्षण-संस्थाएँ आदि राष्ट्रोन्नतिके लिए आवश्यक तत्व हैं जरूर, पर इनका महत्व 'आत्मविद्या'की अपेक्षा गौण ही होना चाहिए। छान्दोग्योपनिषद्का एक शिष्य अपने गुरु के पास जाकर कहता है कि "मैं सर्पविद्या, शास्त्रविद्या, नक्षत्रविद्या आदि सभी प्रकारकी विद्याएँ पढ़ चुका हूँ, किन्तु मैं **मन्त्रविद् एवास्मि आत्म-विद् नहीं**। मैं केवल मन्त्रोंका ही ज्ञान रखता हूँ, आत्माका नहीं, इसलिए मैं दुःखी हूँ।

यह कथन इस बातका साक्षी है कि बिना आत्मज्ञानके सब विद्याएँ सच्चा सुख व शान्ति प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं।

साक्षरो विपरीतत्वे राक्षसो भवति ध्रुवम्।

यदि हम पढ़-लिखकर भी कुमार्गमें प्रवृत्त होंगे, तो हममें और राक्षसमें कोई अन्तर नहीं रह जाएगा। साक्षरको उल्टाकर देनेसे राक्षस शब्द बन जाता है। दूसरे शब्दोंमें केवल पुस्तकीय या बौद्धिक ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है। उसे आत्मज्ञानसे शुद्ध और पवित्र करनेकी आवश्यकता है।

यह संसार अनित्य है, अस्थिर है, नष्ट हो जानेवाला है, तो स्वाभाविक ही एक शंका मनमें उत्पन्न होती है कि क्या कोई ऐसा भी तत्व है, जो नष्ट न होता हो? हमारे शास्त्रकार कहते हैं कि संसार असत् है, मिथ्या है। गीताकार भी कहते हैं - **अनित्यमसुखंलोकं** - यह संसार अनित्य और सुखरहित है। श्री शंकराचार्यके अनुसार भी यह संसार **लोक शोकहतं च समस्तं** - दुःखमय है। महात्मा बुद्धने मुर्दे और रोगीको देखकर सोचा कि ये ही जीवनकी अन्तिम अवस्थाएँ हैं, या इनसे परे भी कोई तत्व है? और उस तत्वकी खोजमें उन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया।

संसार गतिशील है, पर इस संसारमें भी एक तत्व ऐसा है, जो इस गतिमें नहीं आता; वह तत्व है सत् ज्योति और अमृत्:

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमय

यदि संसारमें असत्, तमस् और मृत्यु है, तो साथमें ही सत्, ज्योति और अमृत भी है। आज संसारके

* * *

विकृत हो जानेका कारण यही है कि लोगोंके हृदयोंमें पवित्र विचारों, पवित्र भावनाओं और पवित्र उद्देश्योंका सर्वथा अभाव है। हम अपने जीवनको क्षणिक सुखोंसे सन्तुष्ट करना चाहते हैं, फलतः हमें जीवन भी व्यर्थ-से प्रतीत होते हैं। यदि हम जानते हैं कि आज समाज विकृत है, यदि हम जानते हैं कि वे अणु-अस्त्र संसारको विनाशकी ओर ढकेल रहे हैं। यदि हम यह भी जानते हैं कि इन सबका परिणाम विनाश ही है, तो संसारके बुद्धिमान् मनुष्य क्यों नहीं ऐसा प्रयत्न करते, ताकि यह विनाशकारी परिणाम सामने न आ सके। इसका कारण यही है कि उनके अन्दर विचारनेकी शक्ति नहीं है। हमारे पूर्वज सभी विषयोंमें कुशल थे। उन्होंने इस अन्तिम सत्तत्व पर गम्भीरतासे विचार किया था। उपनिषदोंमें हम देखते हैं :

भृगुर्वैवासणिः वरुणं पितामुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति
सहोवाच यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति,
यत्प्रयत्यभि संविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म॥

"उस सत्तत्वसे संसार प्रकट होता है, उसीके सहारे रहता है और अन्तमें उसीमें लीन हो जाता है। पर प्रकृति इसे नहीं पा सकती, ज्योति इसे प्रकाशित नहीं कर सकती। मस्तिष्कके द्वारा इसका विचार नहीं किया जा सकता, इन सबसे परे वह आनन्दमय तत्व है। वही तत्व इस संसारका नियामक है। वाचस्पति मिश्र कहते हैं :

येषु वर्तमानेषु पदनुवर्त्तते तत्तेभ्योभिन्नं

शरीर, भाव व बौद्धिक क्रियाएँ सभी परिवर्तनशील हैं। पर इन परिवर्तनशील तत्वोंके पीछे एक अपरिवर्तनीय तत्व भी विद्यमान है। यह प्रकृतिसे भी श्रेष्ठ है। एक फ्रेंच विचारकका कहना है कि "जबतक मनुष्य स्वयंको नहीं पहचानता है, तबतक वह संसारके प्रलोभनोंके द्वारा बुरी तरह पीसा जाता है; पर स्वयंको पहचाननेके बाद हस्तामलकवत् इन सांसारिक प्रलोभनोंकी निःसारताको जाना जाता है।" हम उस अमृत-मयके पुत्र हैं, अतः हमारे अन्दर भी ऐसा तत्व विद्यमान है; जो प्रकृतिमें नहीं मिल सकता। मानव जीवन स्वयंमें एक रहस्य है। जब हम उस रहस्यको जान लेते हैं, तभी हम सच्चे मानव बन पाते हैं।

जब मनुष्य आत्मविश्लेषण द्वारा एक उच्च आध्यात्मिक स्तर पर पहुँच जाता है, तभी वह धार्मिक कहलानेका अधिकारी होता है। भले ही हम रोज पूजापाठ करें, भले ही हम मन्दिरमें जाएँ; पर यदि हम दूसरोंको धोखा देते हैं, उन्हें ठगते हैं; तो हम कभी भी धार्मिक नहीं कहला सकते। हम मानवको परमात्माका प्रतिरूप समझें और यह समझें कि मानवके रूपमें साक्षात् ईश्वर हमारे सामने है, तभी हम सच्चे धार्मिक बन सकेंगे।

यह धार्मिकताकी अवस्था है। यदि तुम कहते हो कि ईश्वर एक है और हम सब उसीके पुत्र हैं, हम सब उसीसे उत्पन्न हुए हैं; तो फिर शत्रु और मित्रकी भावना ही कहाँ रही? ईश्वर प्रेमरूप है। इसलिए यदि कोई प्रेमका विरोधी है, तो वह ईश्वरका भी विरोधी है।

यही हमारी हिन्दू-संस्कृतिकी विशेषता है, जिसने इस संस्कृतिको जीवित, जाग्रत रखा। यूनान, मिस्र, रोम आदि देशोंकी सभ्यताको आज कोई नहीं जानता, पर हमारी संस्कृति आजभी सर्वत्र अपना प्रकाश फैला रही है। हमारी संस्कृतिके अन्दर अनेक महत्वपूर्ण तथ्य हैं, उन्हें प्रकाशमें लाकर अपने जीवनके ध्येयको हमें पहचानना है।

●

वेदमूर्ति पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

आर्य-धर्मका सार्वभौम सिद्धान्त

◉ ◉ ◉

आर्य-धर्म एक सार्वभौमिक और सार्वकालिक धर्म है। यह सर्वत्र और सर्वकालमें एक-सा रहता है। क्योंकि इस धर्मके आधार कोई विशेष व्यक्ति न होकर सर्वेश्वरीय ज्ञानरूप वेद ग्रन्थ हैं। आर्यधर्म किसी विशेष व्यक्तिका न होकर सार्वजनिक है, इसीलिए यह अखण्ड भी है। बौद्धधर्ममें से यदि बुद्धको निकाल दिया जाए, तो बौद्धधर्म नीरस हो जाएगा। इसी प्रकार जैन धर्म और ईसाई धर्मोंमें से क्रमशः तीर्थंकर महावीर और ईसाको निकाल दिया जाए, तो ये धर्म भी लड़खड़ाकर गिर जायेंगे। क्योंकि ये धर्म विशेष व्यक्तियों द्वारा प्रवर्तित होनेके कारण उन-उन व्यक्तियों पर आधारित हैं। पर आर्यधर्ममेंसे यदि राम, कृष्ण, दयानन्द आदि अलग भी कर दिए जायें, तो भी आर्यधर्म खण्डित नहीं होगा। इसमें सन्देह नहीं कि इन महापुरुषोंके कारण आर्यधर्म समृद्ध अवश्य हुआ है, पर इनके कारण इस धर्मके स्वरूपमें कोई परिवर्तन हुआ हो, ऐसी कोई बात नहीं। आर्यधर्मका जो स्वरूप आजसे हजारों वर्ष पूर्व था, वही आज भी है और वही भविष्यमें भी रहेगा। यह सार्वकालिकता आर्यधर्मकी पहली विशेषता है।

दूसरी विशेषता है इसकी सार्वभौमिकता। इसे समझनेके लिए हमें फिर तुलनामें उतरना पड़ेगा। किसी ईसाईसे मोक्षका मार्ग पूछो, तो वह कहेगा कि तुम ईसा पर श्रद्धा और विश्वास करो; तुम्हारे लिए मोक्ष हस्तामलकवत् हो जाएगा। बौद्धोंसे निर्वाणप्राप्तिका मार्ग पूछो, तो वह कहेंगे कि भगवान बुद्धमें श्रद्धा करो, तुम्हें निर्वाण मिलेगा; यही अवस्था अन्य मतावलम्बियोंकी भी है। इस प्रकार प्रायः सभी मत केन्द्रित और अपने अपने प्रवर्तकोंके साथ बँधे हुए हैं। पर आर्यधर्मका प्रवर्तक कोई व्यक्ति विशेष न होनेके कारण विशाल है। आर्यधर्मका सिद्धान्त यह है कि तुम किसी भी धर्ममें रहो, पर आर्य अर्थात् श्रेष्ठ बनो। वह लोगोंको उपदेश देता है, "मनुर्भव" - मननशील मनुष्य बनो। आर्यधर्मकी दृष्टिमें मूल्य इसका नहीं है कि तुम किस धर्मका पालन करते हो, मूल्य तो इसका है कि तुममें मनुष्यता कितनी है? यदि तुममें मनुष्यता है, यदि परदुःखको देखकर तुम्हारा हृदय भर आता है और उसकी सहायताके लिए तुम दौड़ जाते हो, यदि तुम्हारे हृदयमें स्वार्थ नहीं है, तो बस! समझ लो कि तुम्हीं भगवान्‌के सबसे ज्यादा नजदीक हो, भले ही तुम किसीभी पन्थके अनुयायी हो। रैदास, धन्नाभगत, कबीरदास आदि किसी भी विशिष्ट पन्थके अनुयायी न होनेपर भी भगवान्‌के प्रिय थे। इसलिए बेहतर तो यह है कि इन धर्मोंके पचड़ेमें न पड़कर केवल भगवद्धर्मका ही पालन किया जाए। परदुःख-कातरता और भगवद्भजन ही जिसका धर्म हो, उसे अन्य किसीभी धर्मकी जरूरत नहीं है। भगवान् कृष्णका सन्देश भी यही है:

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच॥

* * *

'हे मनुष्य! तू इन धर्मोंके पचड़ेमें पड़ता ही क्यों है? मेरी शरणमें आ जा, मैं तुझे सब पापोंसे मुक्त कर दूंगा।" यही है आर्यधर्म। आर्यधर्मका अर्थ ही 'श्रेष्ठ पुरुषोंका धर्म' है। आर्य किसी विशेष जाति या पन्थकी संज्ञा नहीं है। यह एक सर्वसाधारण धर्म है। यही है इसकी सार्वभौमिकता।

वेदने इसी सार्वभौमिक आर्यधर्मका समर्थन किया है। उसका आदेश है :

> इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
> अपघ्नन्तो अराव्णः॥ ऋग्वेद ९।६३।५

'हे मनुष्यो! शीघ्रतासे कर्म करनेवाले तुम इन्द्रको बढ़ाते हुए सबको आर्य बनाओ और जो अदानशील पुरुष हैं, उन्हें नष्ट करो।"

ऋग्वेदके इस मन्त्रमें संसारको आर्य बनानेका सन्देश देते हुए आर्यधर्मके दो सार्वभौम सिद्धान्तोंका प्रतिपादन हुआ है।

१. इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः - शीघ्र काम करनेवाले मनुष्य इन्द्र अर्थात् अपनी सभी तरहकी शक्तियोंको बढ़ावें। देशके ऊपर किसी भी तरह शत्रुओंका आक्रमण न होने पावे। यदि कोई आक्रमण कर भी दे, तो देशके वीर न्यायके दिनकी प्रतीक्षा करते हुए हाथपर हाथ धरे न बैठे रहें। वे मिलकर शत्रुओंको राष्ट्रसे बाहर खदेड़ दें। आर्यधर्म भाग्यवादका समर्थक नहीं है, वह तो पुरुषार्थवादका समर्थक है। भाग्यवादपर भरोसा रखकर चुपचाप बैठ जानेवाले रामको महर्षि वसिष्ठने **"योगवासिष्ठ"**की कथा सुनाकर फिर पुरुषार्थी बनाया। रणक्षेत्रसे भागकर संन्यास लेनेके अभिलाषी अर्जुनको भगवान् कृष्णने गीता सुनाकर वीर बनाया। आर्य-धर्मका तो सिद्धान्त ही **"वीरभोग्या वसुन्धरा"**का है। वेदोंमें भी सर्वत्र ऐसे ही उत्साहप्रद सन्देश मिलते हैं। वैदिक ऋषि भी पुरुषार्थवादमें ही विश्वास करते थे, भाग्यवादमें नहीं। वेदोंका हर देवता शस्त्रास्त्रधारी है। ये शस्त्रास्त्र वीरताके प्रतीक हैं। इस प्रकार अपनी शक्ति बढ़ाकर राष्ट्रकी सुरक्षा आर्यधर्मका एक सार्वभौम सिद्धान्त है।

२. अपघ्नन्तो अराव्णः - समाजमेंसे अदानशील लोगोंको दूर किया जाय। जो लोग दूसरोंकी सहायता न करके स्वयं ही अपने धनका उपभोग करते हैं, वे समाजके सबसे बड़े शत्रु हैं। वेदका कथन है :

> मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
> नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥ ऋग्वेद १०।११७।६

"अज्ञानी व्यर्थ ही अन्नको प्राप्त करता है, मैं सत्य कहता हूँ कि अज्ञानीके पास अन्नका जाना अन्नका वध ही है; क्योंकि वह अज्ञानी उस अन्नसे न किसी श्रेष्ठ पुरुषको पुष्ट करता है और न किसी मित्रको, अन्नको अकेला ही खानेवाला केवल पाप खाता है।"

समाजके हर सदस्यको पुष्ट करना हर आर्यका कर्तव्य है। निर्बलको शक्तिदान देकर, अज्ञानीको ज्ञानदान करके और निर्धनको धनदान करके समाजको सशक्त बनाना ही आर्य-मार्ग है। जो अदानशील हैं, वे समाजकी उन्नतिके मार्गके कण्टक रूप होते हैं। ऐसे समाजके कण्टकोंको दूर करना अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए वेद कहता है कि अदानशीलोंको दूर करते हुए "कृण्वन्तो विश्वं आर्यम्" - सभी संसारको आर्य बनाओ।

आर्यधर्मके सिद्धान्त सब संसारके लिए हैं। इसके सिद्धान्त सार्वभौमिक हैं। इसीलिए इनमें सभी तरहके मनुष्योंकी उन्नतिकी दिशा बतलाई गई है। आर्यधर्म पर चलकर ही संसार सुख और शान्ति प्राप्त कर सकता है।

●

* * *

वेदमूर्ति पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

आर्य-धर्मका सार्वभौम सिद्धान्त

⊙ ⊙ ⊙

आर्य-धर्म एक सार्वभौमिक और सार्वकालिक धर्म है। यह सर्वत्र और सर्वकालमें एक-रस रहता है। क्योंकि इस धर्मके आधार कोई विशेष व्यक्ति न होकर परमेश्वरीय ज्ञानरूप वेद ग्रन्थ हैं। आर्यधर्म किसी विशेष व्यक्तिका न होकर सार्वजनिक है, इसीलिए यह अखण्ड भी है। बौद्धधर्ममें से यदि बुद्धको निकाल दिया जाए, तो बौद्धधर्म नीरस हो जाएगा। इसी प्रकार जैन धर्म और ईसाई धर्ममें से क्रमशः तीर्थंकर महावीर और ईसाको निकाल दिया जाए, तो ये धर्म भी लड़खड़ाकर गिर जाएँगे। क्योंकि ये धर्म विशेष व्यक्तियों द्वारा प्रवर्तित होनेके कारण उन-उन व्यक्तियों पर आधारित हैं। पर आर्यधर्ममेंसे यदि राम, कृष्ण, दयानन्द आदि अलग भी कर दिए जायँ, तो भी आर्यधर्म खण्डित नहीं होगा। इसमें सन्देह नहीं कि इन महापुरुषोंके कारण आर्यधर्म समृद्ध अवश्य हुआ है, पर इनके कारण इस धर्मके स्वरूपमें कोई परिवर्तन हुआ हो, ऐसी कोई बात नहीं। आर्यधर्मका जो स्वरूप आजसे हजारों वर्ष पूर्व था, वही आज भी है और वही भविष्यमें भी रहेगा। यह सार्वकालिकता आर्यधर्मकी पहली विशेषता है।

दूसरी विशेषता है इसकी सार्वभौमिकता। इसे समझनेके लिए हमें फिर तुलनामें उतरना पड़ेगा। किसी ईसाईसे मोक्षका मार्ग पूछो, तो वह कहेगा कि तुम ईसा पर श्रद्धा और विश्वास करो; तुम्हारे लिए मोक्ष हस्तामलकवत् हो जाएगा। बौद्धोंसे निर्वाणप्राप्तिका मार्ग पूछो, तो वह कहेंगे कि प्रथम बुद्धमें श्रद्धा करो, तुम्हें निर्वाण मिलेगा; यही अवस्था अन्य मतावलम्बियोंकी भी है। इस प्रकार प्रायः सभी मत केन्द्रित और अपने अपने प्रवर्तकोंके साथ बँधे हुए हैं। पर आर्यधर्मका प्रवर्त्तक कोई व्यक्ति विशेष न होनेके कारण विशाल है। आर्यधर्मका सिद्धान्त यह है कि तुम किसी भी धर्ममें रहो, पर आर्य अर्थात् श्रेष्ठ बनो। वह लोगोंको उपदेश देता है, **"मनुर्भव"** - मननशील मनुष्य बनो। आर्यधर्मकी दृष्टिमें मूल्य इसका नहीं है कि तुम किस धर्मका पालन करते हो, मूल्य तो इसका है कि तुममें मनुष्यता कितनी है? यदि तुममें मनुष्यता है, यदि परदुःखको देखकर तुम्हारा हृदय भर आता है और उसकी सहायताके लिए तुम दौड़ जाते हो, यदि तुम्हारे हृदयमें स्वार्थ नहीं है, तो बस! समझ लो कि तुम्हीं भगवान्‌के सबसे ज्यादा नजदीक हो, भले ही तुम किसीभी पन्थके अनुयायी हो। रैदास, धर्मव्याध, कबीरदास आदि किसी भी विशिष्ट पन्थके अनुयायी न होनेपर भी भगवान्‌के प्रिय थे। इसलिए बेहतर तो यह है कि इन धर्मोंके पचड़ेमें न पड़कर केवल भगवद्धर्मका ही पालन किया जाए। परदुःख-प्रवणता और भगवत्पूजन ही जिसका धर्म हो, उसे अन्य किसीभी धर्मकी जरूरत नहीं है। भगवान् कृष्णका सन्देश भी यही है:

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

* * *

"हे मनुष्य! तू इन धर्मोंके पचड़ेमें पड़ता ही क्यों है? मेरी शरणमें आ जा, मैं तुझे सब पापोंसे मुक्त कर दूंगा।" यही है आर्यधर्म। आर्यधर्मका अर्थ ही 'श्रेष्ठ पुरुषोंका धर्म' है। आर्य किसी विशेष जाति या पन्थकी संज्ञा नहीं है। यह एक सर्वसाधारण धर्म है। यही है इसकी सार्वभौमिकता।

वेदने इसी सार्वभौमिक आर्यधर्मका समर्थन किया है। उसका आदेश है:

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपघ्नन्तो अराव्णः॥ ऋग्वेद ९।६३।५

"हे मनुष्यो! शीघ्रतासे कर्म करनेवाले तुम इन्द्रको बढ़ाते हुए सबको आर्य बनाओ और जो अदान-शील पुरुष हैं, उन्हें नष्ट करो।"

ऋग्वेदके इस मन्त्रमें संसारको आर्य बनानेका सन्देश देते हुए आर्यधर्मके दो सार्वभौम सिद्धान्तोंका प्रतिपादन हुआ है।

१. **इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः** - शीघ्र काम करनेवाले मनुष्य इन्द्र अर्थात् अपनी सभी तरहकी शक्तियों-को बढ़ावें। देशके ऊपर किसी भी तरह शत्रुओंका आक्रमण न होने पावे। यदि कोई आक्रमण कर भी दे, तो देशके वीर न्यायके दिनकी प्रतीक्षा करते हुए हाथपर हाथ धरे न बैठे रहें। वे मिलकर शत्रुओंको राष्ट्रसे बाहर खदेड़ दें। आर्यधर्म भाग्यवादका समर्थक नहीं है, वह तो पुरुषार्थवादका समर्थक है। भाग्यवादपर भरोसा रखकर चुपचाप बैठ जानेवाले रामको महर्षि वसिष्ठने **"योगवासिष्ठ"**की कथा सुनाकर फिर पुरुषार्थी बनाया। रणक्षेत्रसे भागकर संन्यास लेनेके अभिलाषी अर्जुनको भगवान् कृष्णने गीता सुनाकर वीर बनाया। आर्य-धर्मका तो सिद्धान्त ही **"वीरभोग्या वसुन्धरा"**का है। वेदोंमें भी सर्वत्र ऐसे ही उत्साहप्रद सन्देश मिलते हैं। वैदिक ऋषि भी पुरुषार्थवादमें ही विश्वास करते थे, भाग्यवादमें नहीं। वेदोंका हर देवता शस्त्रास्त्रधारी है। ये शस्त्रास्त्र वीरताके प्रतीक हैं। इस प्रकार अपनी शक्ति बढ़ाकर राष्ट्रकी सुरक्षा आर्यधर्मका एक सार्वभौम सिद्धान्त है।

२. **अपघ्नन्तो अराव्णः** - समाजमेंसे अदानशील लोगोंको दूर किया जाय। जो लोग दूसरोंकी सहा-यता न करके स्वयं ही अपने धनका उपभोग करते हैं, वे समाजके सबसे बड़े शत्रु हैं। वेदका कथन है:

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥ ऋग्वेद १०।११७।६

"अज्ञानी व्यर्थ ही अन्नको प्राप्त करता है, मैं सत्य कहता हूं कि अज्ञानीके पास अन्नका जाना अन्नका वध ही है; क्योंकि वह अज्ञानी उस अन्नसे न किसी श्रेष्ठ पुरुषको पुष्ट करता है और न किसी मित्रको, अन्नको अकेला ही खानेवाला केवल पाप खाता है।"

समाजके हर सदस्यको पुष्ट करना हर आर्यका कर्तव्य है। निर्बलको शक्तिदान देकर, अज्ञानीको ज्ञानदान करके और निर्धनको धनदान करके समाजको सशक्त बनाना ही आर्य-मार्ग है। जो अदानशील हैं, वे समाजकी उन्नतिके मार्गके कण्टक रूप होते हैं। ऐसे समाजके कण्टकोंको दूर करना अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए वेद कहता है कि अदानशीलोंको दूर करते हुए **"कृण्वन्तो विश्वं आर्यम्"** - सभी संसारको आर्य बनाओ।

आर्यधर्मके सिद्धान्त सब संसारके लिए हैं। इसके सिद्धान्त सार्वभौमिक हैं। इसीलिए इनमें सभी तरहके मनुष्योंकी उन्नतिकी दिशा बतलाई गई है। आर्यधर्म पर चलकर ही संसार सुख और शान्ति प्राप्त कर सकता है।

●

* * *

स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वती

हिन्दू-धर्ममें राष्ट्रदेवताकी आराधना

⊙ ⊙ ⊙

हिन्दू-धर्ममें राष्ट्रकी आराधनाका सर्वोपरि स्थान है। व्यक्ति और समाज अपनेको राष्ट्रीय ही नहीं मानता, बल्कि स्वयं राष्ट्र समझकर बहुमुखी अभ्युदय और विकासकी चेष्टा करता है। अपनी स्वाधीनताकी रक्षाके लिए जाग्रत रहता है। वेदोंमें इसके अनेक उदाहरण हैं:

'आ ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्।
आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जयताम्।
दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णोरथेष्ठाः
सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्।
निकामं निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु। फलवत्यो नः
ओषधयः पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्पताम्।'

'हे ब्रह्मन् ! हमारे राष्ट्रमें ब्राह्मण सर्वत्र ब्रह्मतेजसे सम्पन्न हों, क्षत्रिय बहादुर, लक्ष्यवेधी, शत्रुघाती एवं महारथी हों; गौएँ पयस्विनी हों, बैल भार ढोनेवाले हों, घोड़े शीघ्रगामी हों, स्त्रियाँ सर्वगुण-सम्पन्न, सुन्दरी हों, देशके जवान विजयी, रथारोही एवं सभ्य हों, उदार पिताके पुत्र वीर हों। आवश्यकताके अनुसार मेघ वर्षा करें। हमारे देश में अन्न, फल-फूल, औषध बहुत-बहुत उत्पन्न हो, हमारा योगक्षेम सर्वदा सुगमतासे होता रहे।'

विश्वसे तादात्म्यापन्न होकर सेवाकी प्रधानता, तैजससे तादात्म्यापन्न होकर वैश्यधर्मकी प्रधानता और तुरीयसे तादात्म्यापन्न होकर ब्राह्मण धर्मकी प्रधानता; इसी प्रकार विश्वसे तादात्म्यापन्न होकर ब्रह्मचारीकी प्रधानता, तैजससे तादात्म्यापन्न होकर गृहस्थकी प्रधानता, प्रज्ञासे तादात्म्यापन्न होकर वानप्रस्थकी प्रधानता और तुरीयसे तादात्म्यापन्न होकर संन्यासीकी प्रधानता; इस प्रकार दार्शनक दृष्टिकोणसे हमारा चातुर्वर्ण्य और चातुराश्रम्य प्रतिष्ठित है: तो ऐसी स्थितिमें हमारा राष्ट्र क्या है? हमारी शक्ति। देवी भगवती स्वयं बोलती हैं:

'अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्।'

'मैं राष्ट्रीय हूँ, मैं स्वयं राष्ट्र हूँ।'

यदि आपने भारतवर्षकी यात्रा की हो, तो उसके दक्षिणी सिरेपर कुमारी अन्तरीप, कन्याकुमारी

* * *

जिसे कहते हैं, वहाँ कुमारी देवीकी मूर्ति देखी होगी। आपको मालूम है वह वहाँ क्यों है? वह वहाँ इसलिए है कि कैलासपति भगवान् शंकरसे उसका विवाह होगा, इसके लिए भारतवर्षके दक्षिणी सिरेपर रहकर तपस्या कर रही है। वह तपःशक्ति, भारतवर्षके दक्षिणमें रहकर उत्तरके कैलासपति भगवान् शंकरसे विवाह करती है। जिसने कन्याकुमारीसे लेकर कैलास शिखर तकको एक कर दिया, इसका नाम है राष्ट्र-शक्ति। भगवान् श्री रामचन्द्रने अवधसे उठकर श्रीलंका तक एक कर दिया - उत्तरसे दक्षिण, दक्षिणसे उत्तर। आपको यह मालूम है कि रामेश्वरम्‌में गंगोत्रीके जलके सिवा दूसरा जल साक्षात् मूर्तिपर नहीं चढ़ता। यह भी आपको मालूम है कि गंगाजी हिमालयसे निकलती हैं? किसलिए निकलती हैं? भगवान् शंकरके सिर पर चढ़नेके लिए। लेकिन रामेश्वरम्‌के सिर पर कौन चढ़ेगा? गंगोत्रीके ऊपर, गौरीकुण्डके ऊपरका जल रामेश्वरम् पर चढ़ता है।

क्या आपको मालूम है, यह धर्म, यह नियम किसने बनाया? आप कभी बदरीनाथ, केदारनाथ गए हैं? कभी पशुपतिनाथ गए हैं? कभी अमरनाथ गए हैं? वहाँ जो सुपारी, नारियल और इलायची चढ़ती है भगवान्‌को, ये कहाँसे आती है? आपको मालूम है, यह नियम किसने बनाया? कन्याकुमारीमें केसरसे देवीका शरीर रंग दिया जाता है। कश्मीरकी केसर कन्याकुमारी पर नित्य चढ़ती है और कन्याकुमारीकी सुपारी बदरीनाथ अमरनाथ, पशुपतिनाथ, केदारनाथ इनको प्रतिदिन चढ़ती है। इसी प्रकार जगन्नाथपुरीसे बेंत लेकर लोग बदरीनाथ जाते और वहाँ पूजन करते हैं।

भगवान् श्रीरामके बारेमें आपको मालूम है कि वे अवधसे चले और पहुँचे रामेश्वरम् और श्रीलंका। और कृष्ण द्वारकासे निकले तो कहाँ पहुँचे? भौमासुरकी राजधानी - प्राग्ज्योतिषपुर, जहाँ पूर्व दिशामें सूर्योदय होता है। और जहाँ पश्चिम दिशामें सूर्यास्त होता है, वहाँ द्वारकामें राजधानी कृष्णकी और उन्होंने विवाह किया जाकर प्राग्ज्योतिषपुरमें। भौमासुरको मारा और उसकी कैदसे सोलह हजार कन्याओंको छुड़ाकर, अपनाकर उन्हें समाजमें ऊँचा स्थान दिया, प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार पूर्वसे पश्चिम तक और उत्तरसे दक्षिण तक हमारे श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्णने राष्ट्रकी अखण्डता स्थापित की। आपको मालूम है श्रीमद्‌भागवतकी रचना व्यासजीने कहाँ की? बदरीनाथसे दो मील आगे माना दर्रा, जहाँ सरस्वती नदी बहती है। सरस्वती नदीके पश्चिम तट पर मानाग्राम, जो तिब्बत-भारतकी सीमा माना जाता है, वहाँ व्यास भगवान्‌का शम्याप्रासाश्रम है। अब भी लोग वहाँ जाते हैं और गुफाका दर्शन करके आते हैं। जहाँ पाण्डवोंने हिमालयमें अपना शरीर गलाया था, उसीको वसुधारा कहते हैं। यह स्थान मानासे दस-बारह मील आगे जाकर तिब्बतकी सीमामें है, जहाँ वसुधारा गिरती और फुहियाँ उड़ती हैं, वहाँ बड़े दिव्य दृश्य देखनेको मिलते हैं। हमारे महात्मा लोग अवधूत होकर तपस्या करते हैं। आपने सुना होगा, भगवान् श्री शंकराचार्यने नेति दर्राके पास जोशीमठमें एक गुफामें बैठकर ब्रह्मसूत्र पर शरीरकभाष्य लिखा था।

यह सुपारी, नारियल, केसर, रामेश्वर, गंगोत्री, कन्याकुमारी और कैलासाधीश्वर भगवान् - इन सबके सम्बन्धको लेकर विचार करो, हमारे राष्ट्रका सांस्कृतिक रूप, धार्मिक रूप क्या है? आप जानते हैं कि यदि आज सरकार यह चाहे कि एक करोड़ रुपया प्रतिवर्ष पहाड़ी लोगोंके लिए भेज दिया जाय, इसके लिए हम पर टैक्स लगाया जाय, तो आपको बहुत अखरेगा। आप कहेंगे, हम रहते हैं मैदान में, पहाड़ी लोगोंको रुपया क्यों दें? लेकिन आप जानते हैं, हमारे व्यास भगवान्‌ने कहा - 'बदरीनाथ आनेसे पुण्य होता है। ब्रह्मकपालीमें पिण्डदान करनेसे पितरोंका कल्याण हो जाता है।' और आज पचास लाखसे अधिक सालाना बदरीनाथ, पचास लाखसे अधिक सालाना केदारनाथ, पचास लाखसे अधिक सालाना अमरनाथ और पचास

लाखसे अधिक सालाना पशुपतिनाथमें, इस प्रकार हर साल मैदानका रुपया धर्मके नाम पर, विना टैक्स लगाये हमारे महापुरुषोंने पहुँचा दिया। हमारे जो लोग वहाँ रहते हैं, जो हिमालयकी रक्षा करते हैं, वहाँका व्यापारी, कुली, ब्राह्मण, वहाँका चातुवर्ण्य वहाँका सिपाही विना किसी परिश्रमके, विना किसी टैक्सके वहाँ बैठे-ही-बैठे अपनी जीविका प्राप्त कर ले, यह धर्मके आधार पर हमारे ऋषि-महार्षियोंने राष्ट्र-सेवाकी व्यवस्था की थी। सारा काम कानूनसे नहीं चलता, इसके लिए कुछ सामाजिक, साँस्कृतिक, धार्मिक मर्यादाएँ भी बाँधनी होती हैं। एक महात्माने तो कहा है कि जिस कानूनके पालनके लिए पुलिसका प्रयोग करना पड़े वह कानून ही गलत है, क्योंकि मनुष्य अपने हृदयसे उसे स्वीकार नहीं कर रहा है। उसके ऊपर जबरदस्ती वह लादा जा रहा है। यह धर्मका कानून है, यह संस्कृतिका कानून है, यह हमारे महात्माओंकी देन है।

देवी भगवती कहती हैं: '**अहं राष्ट्री, संगमनी वसूनाम्** - मैं स्वयं राष्ट्र हूँ, राष्ट्रीय-शक्ति हूँ।' स्वामी रामतीर्थने कहा, 'मैं भारतवर्ष हूँ। कन्याकुमारी मेरा पाँव है। हिमालय मेरा सिर है, सिन्धुकी ओर मेरा दाहिना और ब्रह्मपुत्रकी ओर मेरा बायाँ हाथ है। जब मैं बोलता हूँ, तब भारतवर्ष बोलता है। जब मैं चलता हूँ, तब भारतवर्ष चलता है। मेरी आवाज भारतवर्षकी आवाज है।'

स्वामी रामतीर्थने भारतवर्षसे एकात्म्य प्राप्त कर तादात्म्य प्राप्त करके, भारतकी आत्मा, भारतकी वाणीको सम्पूर्ण विश्वमें मुखरित किया था। इसका अभिप्राय यह है कि हमारा राष्ट्र 'हि'से लेकर 'इन्दु' पर्वत तक है। 'हि' अर्थात् हिमालय और दक्षिणमें जो समुद्र है, चन्द्रमाको देख कर उछलनेवाला, वह इन्दुका प्रेमी इन्दुर अर्थात् पर्वताकार समुद्र ही इन्दु पर्वत है। 'हि'से लेकर इन्दु पर्यन्त इस देशकी सीमा होनेके कारण, इसे **हिन्दु** बोलते हैं। देवीपुराणमें, कालिकापुराणमें और मेरुतन्त्रमें '**हिन्दु**' शब्दकी व्याख्या की गयी है। हिन्दू शब्दको लेकर सिन्धु शब्दकी एक दूसरी व्याख्या है: '**हिनस्ति दुष्टान् इति हिन्दुः।**' जो दुष्टोंकी हत्या करे, उसका नाम हिन्दू। जो हीनको दूषित करे, उसका नाम हिन्दू है। यह हिन्दू शब्द विदेशियोंका दिया हुआ नहीं है। यह पूर्णतया वैदिक और भारतीय आचार्यों द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय विशेषका द्योतक है। हिन्दू शब्दका अर्थ है: जो पूर्व परम्परासे भारतीय हो और भारतीय आचार्य द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय-का अनुयायी हो। जिसका आचार्य विदेशी हो, वह हिन्दू नहीं और जो विदेशमें पैदा हुआ हो, वह भी नहीं। जो हिन्द देशमें पैदा हुआ हो और हिन्द देशमें पैदा हुए आचार्यके सम्प्रदायमें दीक्षित हुआ हो, वह हिन्दू। यह हिन्दू शब्द भी प्राचीन है। पौराणिक, तान्त्रिक और भावपूर्ण अर्थमें इसका प्रयोग हुआ है। इस तरह हिन्दूबहुल देश होनेके कारण यह हिन्दुस्थान कहलाता है। इस हिन्दुस्थानके उस पार फारमोसा है। उच्चारण भेदसे स्थानको स्तान कहने लगे। पारसथान जिसे परसिया, फारस-पारस कहते हैं, सिन्धुके इस पार है। इस प्रकार फारमोसा तक पूर्वी सीमा और पारसथान तक पश्चिमी सीमा। इसके बीचमें यह हमारा भारत-राष्ट्र भरतवंशियोंके द्वारा सेवित राष्ट्र, इसे जो अपना राष्ट्र मानकर अपने व्यक्तिगत सुख-स्वार्थको छोड़कर इसकी सेवा करता है, वह अपने कर्तव्यका, धर्मका पालन करता है और कर्तव्य एवं धर्मका पालन हमेशा अन्तः-करणको शुद्ध करने वाला होता है। श्रम उसे कहते हैं, जो लोहेको साफ कर दे। जिस कर्मसे हृदयकी शुद्धि हो, उसका नाम धर्म और जिस कर्मसे लोहेकी, मिट्टीकी, बाहरी पदार्थोंकी शुद्धि हो, उसका नाम श्रम। तो जो भी कर्तव्य अथवा धर्मका पालन किया जाता है, वह हृदयको शुद्ध करनेके लिए और जब हृदय साफ होता है, वासनाएं निवृत्त होती हैं, कामनाएँ निवृत्त होती हैं, तब हम **प्रत्यक्चैतन्यभिन्न ब्रह्मतत्वके** साक्षात्कारके योग्य, भगवान्के दर्शनके योग्य, भगवान्की सेवाके योग्य बनते हैं। तब योग्य बनते हैं जब धर्मानुष्ठानके द्वारा, कर्तव्यपालनके द्वारा हमारा हृदय शुद्ध होता है। इसलिए **राष्ट्रसेवा असली आत्मसेवा है।** यह नहीं समझना

चाहिए कि यदि हम राष्ट्र-सेवा करने लगेंगे, तो हमें भगवान् नहीं मिलेंगे। यह नहीं सोचना कि यदि हम राष्ट्र-सेवा करने लगेंगे, तो हमें ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान नहीं होगा। यह तो इसके रास्तेमें एक मंजिल है। इसलिए राष्ट्रीयता-को स्वीकार करके, राष्ट्रकी भलाईकी दृष्टिसे, आप अपने कर्तव्यका, धर्मका पालन करें। इसीके द्वारा आपका शरीर भी ठीक-ठिकाने रहेगा, भौतिक उन्नति भी होगी और आत्मसेवा भी। उस उन्नतिके साथ-साथ अन्तः-करण शुद्ध होगा। आत्मसेवा माने मन और बुद्धिकी सेवा। सूक्ष्म शरीरकी भी सेवा होगी और इसीके द्वारा आपको योगकी योग्यता, समाधिकी योग्यता भी प्राप्त होगी और इसीके द्वारा ब्रह्मात्मैक्यज्ञान भी होगा। इसलिए राष्ट्र-सेवा और आत्मसेवामें कोई विरोध नहीं है। जो सत्संगके मार्ग पर चलता है, उसे भी राष्ट्र-सेवा बड़े प्रेमसे करनी चाहिए। यह उसके मार्गकी विरोधी नहीं, बल्कि सहायक है। यह राष्ट्र-सेवा राष्ट्र-प्रेम आपको भगवत्प्राप्तिकी ओर ले जायगा।

●

शताब्दियोंसे बन्द सनातनधर्म चौखटेसे बाहर निकालकर श्री बिरलाजीने उसको परिमार्जित, परिष्कृत और उदात्त रूपमें प्रस्तुत किया। उनके मस्तिष्कमें, उनके क्रिया-कलापमें एक ऐसे सार्वभौम आर्य (हिन्दू) धर्म एवं आर्य (हिन्दू) समाजकी परि-कल्पना थी, जिसमें सनातनी, आर्यसमाजी, सिख, जैन, बौद्ध सभी वर्गों और सम्प्रदायोंका समावेश था, सबका समान अधिकार था, सबको समेटकर, एकत्र कर एक झण्डेके नीचे खड़े होकर भारत राष्ट्रको सशक्त बनाने, स्वाधीन बनाए रखनेका शिव-संकल्प था।

डॉक्टर श्री विश्वनाथप्रसाद वर्मा

आचारः प्रथमो धर्मः

⊙ ⊙ ⊙

भारतीय-संस्कृतिकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें आचारकी निर्मलतापर विशेष ध्यान दिया गया है। योरोपमें विशुद्ध बुद्धिके वाग्विलासका गौरवपूर्ण अवधारण दिया गया है, किन्तु भारतमें कोरा ज्ञान सर्वदा गर्हित कहा गया है। ऐसी घोषणा यहाँ की गयी है कि **'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।'** आचारकी निर्मलतासे मेधाका दिव्य उन्मेष और उससे परात्पर सत्यका साक्षात्कार सुलभ है, ऐसा भारतीय दर्शनोंका विचार है। समुचित रूपसे दुरित् और दुश्चरित्रका निरोध किये बिना मनुष्य कदापि सम्पूर्ण फलभागी नहीं हो सकता। कठोपनिषद्में नचिकेताके विशुद्ध जीवनका उल्लेख आता है। शुक्र आदि इसी सत्यके प्रतीक हैं। तपस्या और साधना ज्ञान-प्रदात्रीके रूपमें हमारे दर्शनमें कल्पित की गयी हैं। भगवान् बुद्ध शील-साधना, तपस्या-के मूर्तिमान् प्रतीक थे। एषणात्याग और वासना-निरोध द्वारा सम्यक् जीवनका विराट् दर्शन भारत और जगत्के सामने उन्होंने रखा। इस प्रकार कर्मकाण्ड और सृष्टिशास्त्रकी मीमांसामें निरत होनेके बदले मानव-जीवनको अन्तर्मुखी करनेका सन्देश बुद्धने हमें दिया है। वेद और उपनिषद्में ऋत, धर्म, व्रत, दीक्षा आदिका जो मन्त्र उद्घोषित है, वह पुनरपि बौद्धदर्शनके हीनयानके रूपमें व्यक्त हुआ है। जिस प्रकार बोधिसत्वके जीवनमें महामैत्री और महाकरुणाका आदर्श चित्रित किया गया है, उसी प्रकार यजुर्वेदकी वाजसनेयी संहिता-में समस्त प्राणियोंको मित्रवत् देखनेका आदेश है और ऋग्वेदमें इन्द्रको करुणेश कहा गया है।

आचार-प्राप्तिका क्या रहस्य है? किस प्रकार आचारके मूल सूत्रोंको हम जीवनका अभिन्न अंग बना सकते हैं? मुण्डक ऋषिने बताया है कि आत्मज्ञानके चार साधन हैं: (१) सत्य, (२) तपस्या, (३) सम्यक् ज्ञान और (४) ब्रह्मचर्य। इन्द्रिय-निग्रह और मनोनिग्रह तपमें सन्निविष्ट हैं। स्पष्ट है कि आत्मज्ञान-के चार साधन आचारशास्त्रके मानो मूल हृदय हैं। मुण्डक ऋषिने प्रमाद, हानि पर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। उन्होंने यह भी कहा है कि बलहीन कदापि आत्मज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। क्या बलहीनसे निरन्तर श्रम हो सकेगा? रोगयुक्त शरीर किस प्रकार व्यायाम, प्राणायाम, स्वाध्यायकी साधना करनेमें समर्थ होगा? अतः शरीरको पुष्ट, नीरोग और कठोर बनाना आचार-प्राप्तिका महान् साधन है। इसी हेतु तैत्तिरीय उपनिषद्में कहा गया है: **"शरीरं मेविकर्षणम्। जिह्वाम मधुरुत्तमा। कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम्।"**[1]

---

१. यह शोचनीय है कि वैराग्य और भक्तिके आवेशमें कतिपय लेखक शरीरको गर्हित और कुत्सित मानते हैं। विदेशमें भी मार्क्स औरिलियसने तथा पोप इन्नोसेण्ट तृतीयने शरीरको अपवित्र घोषित किया है।

* * *

छान्दोग्य उपनिषद्में और प्राचीन बौद्धदर्शनके आर्य आष्टांगिक मार्गमें संकल्पका बड़ा महत्व बताया गया है। संकल्पकी दृढ़ताके लिए मनन और विचार आवश्यक है। बुद्धियोगकी साधनामें हमें सत्यका परिचय होता है और फिर निरन्तर सत्यानुसन्धान करनेका हमारा संकल्प दृढ़ होता है। स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थने बताया है कि 'यदि हम संकल्पबलसे अपनेको नितान्त परिपूर्ण कर लें, तब हमारे व्यक्तित्वका रूपान्तर हो जाएगा।' संसारके बड़े-बड़े कर्मशूरोंके व्यक्तित्वका यही रहस्य था - उन्हें अपने अन्दर अतिशय आत्मविश्वास था, अतः उनका संकल्प साकार हुआ। पतंजलिके योगशास्त्रमें विभूतियोंका रहस्योद्घाटन इसी संकल्प-शक्तिकी क्रियात्मकताके आधार पर किया गया है। धारणा, ध्यान और समाधिका अनुष्ठान वह कैसे कर सकेगा, जिसका संकल्प दृढ़ नहीं है? चित्तवृत्तियोंका निरोध और ऋतम्भराप्रज्ञाका उदय दृढ़ संकल्पसे ही सम्भव है। पतंजलिने स्पष्ट घोषणा की है कि यम और नियमके पूर्ण पालनके बिना योगका मार्ग संसेवित नहीं हो सकता। उन्होंने अभ्यास और वैराग्यका मार्ग हमारे सामने रखा। संकल्प-संवर्द्धनका अभ्यास करना और इतर वस्तुओंसे, जो विघ्न उपस्थित करें, वृत्तियोंका उपराम कर लेना (वैराग्य), यही सत्पथ है। स्पष्ट है कि भारतीय और पाश्चात्य नैतिक विचारधारामें बड़ा अन्तर है। योरोपमें आचार-शास्त्रकी उद्भावना मूलतः समाज-रचनाको व्यवस्थित करनेमें है। दूसरी ओर भारतवर्षमें नीति-नियमोंका लक्ष्य है शाश्वत सत्य[1]की उपलब्धि करनेकी योग्यता प्राप्त करना, अतः उच्चतम वैयक्तिक नैतिक साधना सत्यकी प्राप्तिकी अधीरताकी सूचिका है। उपनिषदोंमें प्रजापतिके विराट् ईक्षण या संकल्पको ही सृष्टिका उत्पत्ति-स्रोत बताया गया है। सनत्कुमारने संकल्पका महत्व शक्तिशाली शब्दोंमें बताया है। यदि समस्त सृष्टि ईशके संकल्पका परिणाम है, तब निश्चित है कि सत्संकल्पसे मानव-आचारकी पूर्ण प्राप्ति कर सकता है। उपनिषद्में मनुष्यको **"ऋतमय"** कहा गया है। जैसा उसका विचार होगा, उसी प्रकारका जीवन वह प्राप्त करेगा। भगवद्गीतामें मानवको **"श्रद्धामय"** कहा है। जिन विराट् आदर्शोंमें मनुष्यकी आन्तरिक श्रद्धा होगी, उनके लिए वह अपार कष्ट सहेगा और उनसे अन्ततोगत्वा उसका तादात्म्य होकर रहेगा। अतः संगवर्जनके साथ आत्मशुद्धि और लोकसंग्रहके निमित्त कर्मयोगकी साधना करनेका मन्त्र गीतामें हमें दिया गया है। मनीषियोंको पावन करनेवाले साधनोंमें यज्ञ, दान और तपस्याका नामोल्लेख किया गया है।

सम्यक् आचारकी प्राप्ति दीर्घकालीन साधना पर आधारित है। शनैः-शनैः ही संकल्पशक्तिसे आत्मोद्धार होगा, अतः धैर्यरूपी संबलकी आवश्यकताको ध्यानमें रखते हुए मनुने धृतिको धर्मका प्रथम लक्षण घोषित किया है। किन्तु धैर्यकी शिथिलतामें दुष्परिणति सर्वथा अनभिवांछित है। मनुष्य स्वयं अपना उद्धार कर सकता है, अतः अपनेको कदापि अवसन्न और विषण्ण नहीं करना है। भगवद्गीतामें और धम्मपदमें आत्मोद्धार पर अतिशय बल दिया गया है। जिसने आत्मदमन किया है, उसकी आत्मा ही उसका सच्चा बन्धु है: ऐसा सन्देश भारतीय-संस्कृतिके दो महत्तम पुरुषों - कृष्ण और बुद्धने हमें दिया है। धम्मपदमें कहा है: **"अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया।"** चिन्ता नैतिक जीवनका विघ्न है। गीतामें कहा है कि 'धृतिगृहीत बुद्धिसे मानव शनैः-शनैः असत्यसे उपराम करे और मनको आत्मस्थ कर किसी प्रकारकी चिन्ता न करे। इस

---

१. वैदिक-युगमें सत्यका अतिशय महत्व स्वीकृत हुआ था। सत्यके कई अर्थ हैं - (क) सत्यभाषण, (ख) प्रतिज्ञापूर्ति, (ग) यह आश्वासन कि जो उचित है, वही प्रकटित होगा तथा (च) जगत् में व्यापक सत्य नियमका प्राबल्य। पीछे चलकर सत्यको परम सत्तासे तद्रूप कर दिया गया। कीथका यह कथन निराधार है कि वैदिक-युगमें श्रद्धा पर, शील पर ही विशेष प्रश्रय था।

* * *

प्रकार वलवान् प्रमथनकारी मनोविकारोंका वह निरोध कर सकेगा और अपने जीवनको सर्वभूतकल्याणोपयोगी बना सकेगा।' शंकराचार्यने भी कहा है कि 'समस्त संसारके दुःखोंका मूल है-चिन्ता।' देहधारियोंके लिए उन्होंने चिन्ताको घोर ज्वर कहा है। चिन्ताप्रजनित द्वन्द्वोंके तीव्र घातसे रक्षा करनेके लिए व्रतपालन नितान्त आवश्यक है। यजुर्वेदमें बताया है कि 'व्रतोंसे दीक्षाकी प्राप्ति होती है, दीक्षासे दक्षिणा मिलती है, दक्षिणा श्रद्धाको प्राप्त कराती है और श्रद्धा ही सत्यकी प्राप्तिका मूल साधन है।' सच्छुद्ध होकर यदि मानव विराट् आदर्शोंको अपने जीवनमें क्रियान्वित करनेका निरन्तर उद्योग करता रहे, तो अवश्य ही वह अपने परम लक्ष्यको प्राप्त करेगा।

श्री ति० न० आत्रेय

आजका धर्म : समता



सच्चिदानन्दके शोधनकी दिशामें मानव-जीवनका उच्च विचारौघ निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। भारतवर्षके ज्ञात इतिहासका सूक्ष्म अवलोकन करते हैं, तो इस विचार-प्रवाहके बदलते स्वरूपके कुछ स्थूल बिन्दुओंका स्पष्ट दर्शन कर सकते हैं।

सर्वप्रथम वैदिक विचारोंमें जीवनकी भव्य अन्तः स्फूर्ति व्यक्त हुई है, तो उसके बाद रामायणकालीन विचारोंमें जीवनके उन्नत आदर्शका चित्र प्रस्तुत हुआ है; फिर महाभारत-कालमें विविधताओंसे भरे जीवनके सर्वतोमुखी चित्रणके साथ जीवन-शास्त्रका प्रारूप मिलता है, तो जैन-बौद्ध विचार-प्रवाहमें अहिंसा-रूपी जीवनकलाका विकास दिखाई देता है; उसके बाद आचार्य शंकर और रामानुज आदि आचार्य-पुरुषोंके विचारोंमें जीवनके तत्वज्ञानकी दार्शनिक प्रतिमा उद्भासित हुई है; तो मध्ययुगीन सन्तोंकी वाणीमें भक्तितत्वका, सार्वत्रिक उपासनाका उद्दाम-प्रवाह उमड़ा है। इसके बाद अब यह आधुनिक युग आया है, जिसमें सर्वसाम्यकी ऊर्मि लहरा रही है।

'साम्य' इस युगकी मूल प्रेरणा है।

सन्त विनोबा कहते हैं कि साम्यकी प्रेरणा आजकी जागतिक प्रेरणा है। हम देखते हैं कि आजकी मानवमात्रकी मूल जीवन-प्रेरणा सर्वांगीण और सार्वत्रिक साम्य-स्थापनाकी ही प्रेरणा है। यह केवल देश-विशेषकी बात नहीं है, समस्त मानवसमाजकी बात है।

भिन्न-भिन्न युगोंमें भिन्न-भिन्न प्रेरणाएँ काम करती रही हैं। लेकिन जिस समय जो प्रेरणा रही है, वह जागतिक रही है और दूर-दूरके समाजोंमें एक-सी काम करती रही है।

दो-ढाई हजार वर्ष पहले हम देखते हैं कि धर्मकी प्रेरणा जागतिक प्रेरणा थी। उस समय भगवान् बुद्ध और महावीर भारतमें धर्म-संस्थापनाके काममें लगे थे, तो उधर चीनमें लाओत्से और कन्फ्यूशस ताओ-की स्थापना कर रहे थे; उधर फिलिस्तीनमें ईसामसीह भी धर्मकी प्रेरणा जगा रहे थे, तो मिस्रमें मूसा और ईरानमें जरथुस्त्र अपने-अपने यहूदी और पारसी धर्मोंका प्रचार कर रहे थे। उन दो-तीन सौ वर्षोंकी कालावधिमें संसारभरमें मानव-समाजके सामाजिक मनमें धर्मकी अर्थात् जीवन और समाजकी धारणाके तत्वकी खोजकी प्रेरणा समान रूपसे काम कर रही थी।

उसके बाद देखते हैं, आजसे लगभग हजार वर्ष पहलेके दो-तीन सौ वर्षोंकी अवधिमें वह सामाजिक मन बदला था। सर्वत्र धर्म-संस्थापनाकी नहीं, उपासनाकी, ध्यान और चिन्तनकी, यानी मनकी शक्तियोंको एकाग्र करनेकी और उसका विकास करनेकी प्रेरणा व्याप्त थी। वह मिस्टिसिज्म या भक्तिकी प्रेरणा थी।

* * *

केवल भारतमें ही नहीं, मिस्रमें, इटलीमें, और भी अन्यान्य राष्ट्रोंमें ऐसे भक्त, योगी और मिस्टिक्स पैदा हुए और सर्वत्र आध्यात्मिक संशोधनका कार्य समान रूपसे चला।

उस उपासनायुगके बाद इस युगमें गत दो-ढाई सौ साल पहलेसे ही हम देख रहे हैं कि सर्वत्र मानव-मनमें समता, बन्धुता और स्वतन्त्रताकी प्रेरणा काम करती दिखाई देती है। कहीं वह राजनीतिक दास्य-मुक्तिके रूपमें प्रकट हुई है, तो कहीं श्रमिकोंकी शोषण-मुक्तिके रूप में व्यक्त हुई है।

आज साम्य केवल आकांक्षाका विषय नहीं रहा है, व्यवहारनीतिका सूत्र बन गया है। एक समय मनुष्यके आध्यात्मिक क्षेत्रमें जो साम्य आदर्शके रूपमें चिन्तन और भावनाका विषय बना हुआ था, वह आज मानसिक और सामाजिक जीवनके अनुभव और संयोजनका प्रत्यक्ष आधार बन गया है। विचारकोंने महसूस कर लिया है कि जिस प्रकार शरीरस्वास्थ्यके लिए धातुसाम्य आवश्यक है, उसी प्रकार स्वस्थ समाज-जीवनके लिए सामाजिक सर्वांगीण समता अनिवार्य है। आर्थिक, राजनीतिक, साँस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रोंमें विषमता मिटानेकी उत्कट आकांक्षा जगी है और उसी आधार पर समाज-रचनाकी बात सोची जाने लगी है।

इस प्रकार साम्य आज नित्य-जीवनका प्रमुख सामाजिक मूल्य बना हुआ है।

जब हम साम्यके सामाजिक पक्षको छोड़कर उसके धार्मिक पक्षका विवेचन करना चाहते हैं, तो एक बुनियादी प्रश्न आता है कि धर्मकी आत्मा क्या है? धर्मका धर्मत्व क्या है? मनीषियोंका कहना है कि धर्मका धर्मत्व, धर्मकी आत्मा 'साम्य' है, समबुद्धि है। धर्मके रूपमें नाना प्रकारके विधि-निषेध अवश्य प्रचलित हैं, परन्तु वे धर्मका मात्र कलेवर हैं, निरे आवरण हैं। उस आवरण के पीछे एक समबुद्धि है, जिससे प्रेरित होकर धर्मरचयिता उनका विधान करते हैं, और वह समबुद्धि ही धर्मकी आत्मा है।

इस समबुद्धिकी जो प्रकट अभिव्यक्ति आचारसंहिता या नीतिनियमके रूपमें होती है, वह काल-देश-परिस्थिति-सापेक्ष होती है, समय-समयपर भिन्न-भिन्न होती है और परिस्थितिसे मर्यादित होती है। परन्तु समबुद्धि है, जो निरन्तर आगे बढ़ती रहती है और पूर्व-नियमोंमें संशोधन और विकास करती ही जाती है।

जिस युगमें सर्वत्र यह आधार हो कि शत्रु जहाँ भी दिखाई दे, उसे किसी भी समय और किसी भी परिस्थितिमें मार डाला जाय, उस युगमें यदि कोई धर्मात्मा उस शत्रुको मारनेमें एक अमुक मर्यादा पालन करनेका उपदेश देता है, तो उससे यही प्रकट होगा कि उपदेशकके हृदयमें समबुद्धिका उदय हुआ है और उस मर्यादित 'हत्या'के विधानके पीछे समबुद्धि निहित है।

जहाँ किसी भी कारणसे समाजके अमुक किसी तिरस्कृत वर्गको अनेक मुसीबतें उठानी पड़ती हों, वहाँ यदि कोई महात्मा यह उपदेश दे कि उन्हें अमुक दिन तो दान दिया ही जाय, तो वह उपदेश उसकी समदृष्टिका ही द्योतक होगा और उससे यही सिद्ध होगा कि शेष समयमें विषमतापूर्ण व्यवहारको सहन करनेमें भी समबुद्धिका तत्व निहित है।

इसलिए विचारक लोग मानते हैं कि अमुक धर्मग्रन्थ या विधि-निषेध धर्मयुक्त है या नहीं, इसे जाननेकी कुंजी यही है कि उससे कुल-मिलाकर हम समदृष्टिकी ओर बढ़ते हैं या वह हमें विषम-दृष्टिमें स्थिर करता है; वह हमारे भीतरकी समदृष्टिकी नैसर्गिक वृत्तिका विकास करनेमें प्रोत्साहन देता है या उसे कुचलता है; वह हमें राग-द्वेषसे घिरी हुई अपने समयकी संकीर्ण मर्यादाओंमें ही जकड़कर रखनेवाला है या उन मर्यादाओंको तोड़कर समदृष्टिके विकासके लिए प्रेरित करनेवाला है।

* * *

इस प्रकार समस्त धार्मिक विधि-निषेधोंके मूलमें समबुद्धिका ही दर्शन होता है और इसीलिए कहा गया कि धर्मकी आत्मा समत्व है, धर्मका धर्मत्व चित्साम्य है।

अब नया युग आया है। एक युग था जब धर्मके मूलमें साम्यकी वृत्ति थी, आज इस युगमें साम्य ही युगधर्म बना है और इसकी अनिवार्यता विज्ञानके कारण पैदा हुई है।

धर्मका क्षेत्र मन है। मन चंचल है, तो धर्म उसे स्थिर करनेका यत्न करता है; मन विषयच्छन्दी है, तो धर्म उसे आत्मानुवर्ती बनानेका मार्ग बताता है; मन द्वन्द्वाभिघाती है, तो धर्म उसे द्वन्द्वसमताका अभ्यास करनेमें सहायता करता है। यह **मनोयुगका धर्म** है।

आजका युग विज्ञानयुग है और विज्ञानका क्षेत्र बुद्धि है। विज्ञान नीति-अनीतिसे परे है, अतिनैतिक है। विज्ञान द्वन्द्व-समताकी नहीं, द्वन्द्वातीत होनेकी बात करता है। मनके राग-द्वेषोंके गुण-दोषोंको धर्म सँभाल लेता था; विज्ञान रागद्वेष-निरपेक्षी निरुपाधिक साम्यका समर्थक है। विज्ञान एक असीम शक्ति-स्रोत है, इसलिए भेदभावसे दूषित मनके संयोगसे वह सर्वविनाशी और पक्षपाती हो सकता है। लेकिन मानव विनाश नहीं चाहता है, विषमता पसन्द नहीं करता है। इसीका अर्थ है कि विज्ञान मनुष्यको मनसे परे उठनेको विवश कर रहा है; साम्यकी अगली सीढ़ी पर हमें पहुँचा रहा है।

इसलिए आजका धर्म यही है कि अतिमानस समताकी स्थापना हो; उस समताकी प्रतिष्ठापना हो; जो मनके क्षेत्रसे परे है, द्वन्द्वातीत है। इसीका अर्थ है मनकी सत्ता समाप्त हो।

मनकी सत्ता क्या है? मनकी सत्ता मनकी प्रतिक्रियाशीलता है। मनका सारा संसार क्रिया-प्रतिक्रियाओं तक ही सीमित है। लेकिन यह बात स्वीकार करनी होगी कि मनमें असत् प्रतिक्रियाओंके बदले सत् प्रतिक्रियाओंका निर्माण करनेमें धर्म कुछ हद तक सफल अवश्य हुए हैं, लेकिन मनकी प्रतिक्रियाशीलता तो बनी ही रही है; मन मिटा नहीं। अब विज्ञानयुगका तकाजा है कि मनुष्य प्रतिक्रियामात्रसे मुक्त हो, अर्थात् मनोनाश अवश्य हो, मनुष्य मनसे परे हो। धार्मिक युगकी 'आकांक्षा' विज्ञानयुगकी **'आवश्यकता'** है। इस प्रकार यह विज्ञानस्तरीय **मानसिक साम्य,** द्वन्द्वातीत चित्रसाम्य **आजका धर्म** है।

अध्यात्मकी दृष्टिसे देखें, तो भी गीता हमें बता रही है कि साम्य ही जीवनका सार है, जीवनका परम लक्ष्य है।

अध्यात्मसाधक और ब्रह्मविद्याके विद्यार्थी जानते हैं कि अध्यात्म-विद्याका आरम्भ आत्म-अनात्म-विवेकसे होता है और उसकी परिणति सर्वभूतात्मभावमें। देहभिन्न आत्माकी पहचान अभ्याससाध्य है, तो भूतमात्रमें आत्मभावका अनुभव उस अभ्यासके परिणामस्वरूप सहजसाध्य है और इस विश्वात्मैक्यभावका ही नाम 'साम्य' है।

मनु महाराजने आशीर्वाद दिया कि :

"स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम्।"

परमार्थमार्गमें साम्यकी स्तुति अनेक प्रकारसे की गयी है। यह शब्द मोक्षका पर्यायवाची भी है, कहीं-कहीं ब्रह्मवाचक भी है। मनुष्यका परम पुरुषार्थ आत्यन्तिक साम्यकी प्राप्ति ही बताया गया है। लेकिन विशेषता यह है कि जो साम्य परमार्थका साध्य है, वही उसका साधन भी है। साम्य शब्द एक ओर गन्तव्य स्थानका निर्देश कर रहा है, तो दूसरी ओर गम्य मार्गका भी संकेत कर रहा है।

ब्रह्मवेत्ता पुरुषको गीताने **'समदर्शनः'** कहा है, तो अन्यत्र उसी गीताने **'समलोष्ठाश्मकांचनः'** आदि वचनोंके द्वारा यह भी सुझाया है कि उस अन्तिम स्थितिके साधनके रूपमें जीवन-व्यवहारका मार्ग क्या है।

* * *

अहिंसाको परम धर्म कहनेवाला स्मृतिवचन प्रसिद्ध है। लेकिन गीता कह रही है कि उस अहिंसाके मूलमें भी साम्य ही है।

"समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्
न हिनस्त्यात्मनात्मानं–।"

जब वह पुरुष सर्वत्र प्रभुका साम्य देखता है, अपना साम्य देखता है, तो वह कैसे किसीकी हिंसा करे ?

गीताने इस परमधर्मका - साम्यका - कोई पहलू छोड़ा नहीं है।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः

यह वचन आजकी भाषामें उच्च-नीच और पवित्र-अपवित्र आदि भेदोंसे रहित सामाजिक समताका ही तो द्योतक है।

इसी प्रकार आजकी भाषामें समझते जायँ, तो **शीतोष्ण सुखदुःखेषु समः, सुखदुःखसमः** आदि वाक्य शारीरिक स्पर्शसमताका संकेत करते हैं; **मानापमानयोस्तुल्यः, तुल्यनिन्दास्तुतिः** आदि वचन मानसिक समताका निर्देश करते हैं; **समलोष्टाश्मकांचनः** आर्थिक समताका द्योतक है; **तुल्यो मित्रारिपक्षयोः, सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थ द्वेष्यबन्धुषु, समः शत्रौ च मित्रे च** आदि वचन राजनीतिक समताकी ओर इंगित करते हैं; **साधुष्वपिच पापेषु** नतिक समताका निर्देशक है और **युक्ताहारविहारस्य** - यह पूरा कथन जीवन-व्यवहार और जीवनसाधनाके साम्यका समर्थन करनेवाले हैं।

जीवनका मूल द्वन्द्व है - प्रिय और अप्रिय। अन्य सभी द्वन्द्व इसीसे निःसृत होते हैं। गीता कहती है कि इस मूलभूत द्वन्द्वसे भी परे होना चाहिए। **"न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य नोद्विजेत् प्राप्य चाप्रियम्।"** लेकिन सन्देहावस्थामें प्रियाप्रिय स्पर्शसे बचना क्या सम्भव है ? वह तो विदेहावस्थाकी ही स्थिति हो सकती है। उपनिषद् भी कह रहे हैं :

"न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोः अप्रहतिरस्ति
अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः।"

लेकिन गीता सन्देहावस्थामें ही विदेहत्वकी अपेक्षा रखती है, क्योंकि गीता परम साम्यका स्वतन्त्र, निरपेक्ष मूल्यत्व प्रतिपादित करनेवाला धर्मग्रन्थ है।

इस प्रकार जीवनके लगभग समस्त क्षेत्रोंमें समत्वकी अनिवार्यता पर प्रकाश डालते हुए, इन सबके शिखरप्राय चरम-साम्यकी स्तुतिमें गीता कहती है :

"इहैव तैर्जितस्सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्मात् ब्रह्मणि ते स्थिताः।"

गीता इतना बड़ा आश्वासन दे रही है कि समत्वका आदर्श सामने रखकर व्यवहार करते चलें, तो समत्वका क्षेत्र उत्तरोत्तर व्यापक और गहरा होते-होते अन्तमें इसी जीवनमें ब्रह्मसमताका अनुभव हो सकता है। गीता यह संकेत दे रही है कि "जिसका जीवन समत्वके आधार पर प्रतिष्ठित हुआ है, उसे ब्रह्ममें स्थित ही समझना चाहिए, क्योंकि समत्वकी निर्दोष परिपूर्णता ही ब्रह्म है।" और यही 'जीवन-विजय' है।

●

* * *

डॉक्टर रामचन्द्र गौड़

द्वीपान्तरमें हिन्दू-धर्म का स्वरूप

०००

मानवताकी प्रगतिका ज्ञान साँस्कृतिक इतिहासके पृष्ठों द्वारा प्राप्त होता है। सृष्टिके आदिकालसे मनुष्येतर जातियाँ प्रकृतिके आदेशका अनुसरण करती रही हैं, परन्तु बुद्धिके सहयोग एवं सौन्दर्यकी अभिरुचिने मानवको विकास-पथ पर अग्रसर किया। अपनी बाह्य आवश्यकताओंसे परे उसे मानसिक और हार्दिक उल्लास तथा आनन्दकी अपेक्षा हुई। उसकी इसी प्रेरणाने दर्शन, काव्य, कला और शिल्प आदिकी सृष्टि की है, जिसे एक साथ हम संस्कृतिका कलेवर कहते हैं। सभी देशोंकी अपनी संस्कृति है और भारतीय दृष्टिकोण कभी इस ओर संकुचित नहीं रहा है। जलाशयकी भाँति स्थिर रहनेकी अपेक्षा भारतीय संस्कृतिकी विशाल धारा अनेक शाखाओंमें प्रवाहित होकर अपनी भौगोलिक सीमाओंको भी पार कर गयी। उसकी लहरोंका प्रभाव एशिया भूखण्डमें ही नहीं, अपितु योरोप और अफ्रीकामें भी पहुँचा।

इतिहास इस बातका साक्षी है कि सभी प्रगतिशील देश अपनी आवश्यकताके अनुसार उपनिवेशोंकी स्थापना करते रहे हैं। परन्तु भारतीय उपनिवेशोंकी स्थापना अपना अलग ही महत्व रखती है। एशियाके दक्षिण-पूर्वी द्वीप-समूहों एवं प्रायद्वीपोंमें आज लगभग २,००० वर्ष पहले भारतीय व्यापारी अर्थोपार्जनसे प्रेरित होकर इन स्थानोंमें जा बसे। परन्तु कालान्तरमें धार्मिक प्रचारकी भावना, जन-वृद्धि, राजनीतिक उथल-पुथलके कारण ही अत्यधिक संख्यामें भारतीय इन द्वीपोंमें गये और संस्कृतिका उत्तुंग ध्वज इन भूभागोंमें स्थापित किया। इस प्रकार श्रीलंका, बर्मा, मलाया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, स्याम, कम्बोडिया और इण्डोचीनमें हमारी सभ्यता फैली। इन प्रवासी भारतीयोंके कई समूह तो फारमोसा, फिलीपाइन्स तथा सिलीबस तक भी पहुँचे थे।

मूल रूपमें भारतीय-संस्कृतिको उसकी धार्मिक भावना ही अनुप्राणित करती रही है, अथवा यों कहें कि भारतीय-संस्कृतिका प्राण धार्मिक भावना ही है। आधिभौतिक सुखोंकी अपेक्षा आध्यात्मिक चिन्तनको सदैव सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया है। यही आध्यात्मिक चिन्तन काव्य, कला और शिल्प आदिकी रूप-रेखा निर्धारित करता रहा है, जिससे सदाचारकी प्रतिष्ठा हुई और धर्मके क्षेत्रमें भारत अग्रगण्य हो गया। भारतीय अपनी इसी निधिको उदारतापूर्वक अपनेसे सम्बन्धित देशोंमें बाँटते रहे। फलस्वरूप मिस्र, बेबीलोनिया और सीरिया आदि सुदूर देशोंमें भी हमारी संस्कृतिकी स्पष्ट छाप पड़ी।

भारतीय उपनिवेशोंकी धार्मिक भावनाका अध्ययन एक रोचक विषय है। ऐसा लगता है, इन भूभागोंमें भारतीय-धर्म लाया नहीं गया, अपितु यहाँकी अपनी निधि है; जो यहीं उत्पन्न होकर पल्लवित तथा विकसित

* * *

हुई। भारतीय धर्मका कोई भी ऐसा अंग नहीं है, जिसका पूर्ण विस्तार इन उपनिवेशोंमें न मिले। **धार्मिक भावनाका कलेवर कई स्थल पर अपनी मातृभूमिसे भी अधिक यहाँ निखर उठा है।** यहाँकी कलाके प्रस्तर खण्ड अब भी मूक भाषामें भूतकालीन धार्मिक ज्योतिका स्पष्ट आभास दे रहे हैं और अक्षरोंके रूपमें यहाँका साहित्य इन प्रस्तर खण्डोंकी साक्षी देनेमें कभी पीछे नहीं रहा। इन उपनिवेशोंमें उपलब्ध सामग्रियोंके आधार पर ही वहाँकी धार्मिक भावनाका विवेचन हमारा विषय है। यदि हम विश्लेषणात्मक अध्ययन करें, तो यहाँकी अनुभूति समझनेमें अधिक सुविधा होगी।

पहले कहा जा चुका है कि भारतीय-धर्मके सभी अंग यहाँ पूर्ण रूपसे विकसित हुए थे, तथापि विस्तार-भय-से हमारा अध्ययन बौद्ध एवं ब्राह्मण धर्मकी शाखाओं तक ही विशेष रूपसे सीमित रहेगा। इन धर्मोंमें किन व्यक्तियों एवं देवताओंका प्राधान्य रहा है एवं उनकी पृष्ठभूमिमें कौन-सी भावना कार्य कर रही थी, इसका विवेचन निःसन्देह भारतीय-संस्कृतिके विद्यार्थीके लिए परमावश्यक है।

धार्मिक-विकास

भारतीय-संस्कृतिका आधार उसका धर्म ही रहा है। हमारे इस युगमें भी जब भारतीय उपनिवेशोंकी स्थापना स्वप्नकी बात हो रही है, तो भी इन द्वीपोंका साहित्य, भव्य कलाके अवशेष हमारी संस्कृतिकी कहानी कह रहे हैं। भारतीय-संस्कृतिकी विजय इतिहासकी साधारण घटना नहीं है। महान् चीन-साम्राज्यके अनवरत विरोधमें भी उसका पैर डगमगाया नहीं। आघात-प्रत्याघातके नीचे उसका पतन नहीं हुआ, अपितु लाखोंकी संख्यामें यहाँके निवासी विविध प्रकारसे इस संकृतिकी अभिवृद्धि करते रहे। उन द्वीपोंमें धर्मके प्रायः दो रूप रहे —

१. **हिन्दू-धर्म :** जिसमें पौराणिक देवताओंकी प्रधानता रही और जो यहाँके आदि निवासियोंकी अनेक रूढ़ियों एवं विचारोंको लेकर शक्तिशाली रूपमें विकसित हुआ।

२. **बौद्धधर्म**—जो हिन्दू-धर्मका ही मुख्य अंग है।

हिन्दू-धर्मके देवताओंको हम तीन कोटिमें विभक्त कर सकते हैं :

(अ) सृष्टिके उत्पादक, पोषक एवं संहारकर्ताके रूपमें ब्रह्मकी असीम शक्तिको ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीन देवताओंके रूपमें बाँटा गया है। परन्तु महेशका रुद्र रूप इन द्वीपोंमें प्रायः नहींके बराबर ही रहा। इसके स्थान पर वे कल्याणकारी रूपमें ही सदैव पूजित रहे।

(ब) इनके बाद दूसरी कोटिमें उन देवताओंका स्थान है, जिनमें सूर्य, चन्द्र, यम, इन्द्र, कुबेर, अग्नि आदि मुख्य हैं।

(स) तीसरी कोटिमें यक्ष, किन्नरों आदिका स्थान है, जो मनुष्यकी शक्तिसे श्रेष्ठ और देवताओंकी शक्तिसे नीचे आते हैं।

इन उपनिवेशोंकी धार्मिक-भावना समझनेके लिए मुख्य-मुख्य देवताओंका अलग-अलग अध्ययन अधिक अच्छा होगा। अध्ययनकी सुविधाकी दृष्टिसे इन उपनिवेशोंका निम्नलिखित विभाजन भी किया जा सकता है :

१. **स्वर्ण भूमि :** इसमें मलाया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो और बालिद्वीप आते हैं।

२. **चम्पा :** इसमें उत्तरके थाह्नवा, घीआन और हाटिह्नके जिलोंको छोड़कर एनम, टाँकिन और कोचीन-चीनके भाग आते हैं। पच्छिममें पर्वतों एवं पूर्वमें समुद्र-भागसे घिरा यह प्रदेश १८° और १०° अंश उत्तरी देशान्तरके बीच फैला है।

* * *

३. कम्बोज : इसके अन्तर्गत मीकाँग नदीकी घाटीके साथ कम्पोट, स्वायरेंग एवं थबाँग खम्मके प्रान्त आते हैं।

४. ब्रह्मा, स्याम और थाई-साम्राज्यके भाग आते हैं। थाई राज्यकी सीमामें चीनका आधुनिक यून्नान प्रान्त आता है।

इस प्रकार इन भूभागोंका अलग-अलग विवेचन करनेसे विभिन्न प्रकारकी धार्मिक प्रगति एवं विकासका ज्ञान सरल हो जाता है। उपनिवेशोंके धार्मिक विस्तारका यह इतिहास दो कालोंमें विभक्त किया जा सकता है :

१. ईसाकी प्रथम शताब्दिसे ७वीं शताब्दि तक।

२. सातवीं शताब्दिसे पतन काल तक।

प्रथमकाल

सभ्यताके आदिकालसे ऐसा होता आया है कि जब भी किसी श्रेष्ठ सभ्यता अथवा संस्कृतिके सम्पर्कमें निम्नकोटिकी संस्कृति आती है, तो श्रेष्ठ सभ्यता की ही स्थिति एवं सत्ता सर्वत्र रह जाती है। परन्तु प्रगतिका यह चक्र विभिन्न सभ्यताओंकी अपनत्व शक्ति पर निर्भर होता है । स्वर्णभूमिमें भारतीयोंके बसने के साथ-साथ साँस्कृतिक-प्रसार एवं मिश्रणका यह कार्य शीघ्र ही आरम्भ हो गया। बोर्नियों, जावा, मलाया आदि द्वीपोंमें उपलब्ध उत्कीर्ण लेखों द्वारा यह बात सिद्ध हो जाती है कि भाषा, लिपि, साहित्य, धर्म एवं राजनीतिक सभी दिशाओंमें भारतीय-संस्कृतिका पूर्ण प्रभाव रहा। हाँ, यह अवश्य है कि उनमें स्थानीय प्रथाओंका समावेश किसी-न-किसी रूपमें हो गया।

राजा मूलवर्मनका कुटेइ लेख भारतीय दरबार एवं समाजका एक जीता-जागता चित्र प्रस्तुत करता है। स्वर्णद्वीप के विभिन्न भूखण्डोंमें पाये गए लेखोंमें जो चित्र विष्णु, इन्द्र, ऐरावत आदिके प्रस्तुत किये गए हैं, वे विशुद्ध भारतीय हैं। इतना ही नहीं, भारतीय माप-पद्धति, ज्योतिषकी रीति एवं वर्ष तथा मासोंकी विधि तक भारतीय ही है। भारतकी इस साँस्कृतिक-विजयका स्पष्ट चित्र तो हमें इस बातसे मिलता है कि इन द्वीपोंकी सरिताओं एवं पर्वतखण्डोंके नाम तक भारतीय रखे गए हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि मातृभूमिकी विशाल धराको उसके वास्तविक कलेवरमें ही इन द्वीपोंमें बसानेकी पूर्ण चेष्टा की गयी है।

बोर्नियोंके उत्कीर्ण लेख और पुरातत्व सामग्रियाँ वहाँ पर भारतीय-संस्कृतिकी स्पष्ट छाप बताती हैं। वहाँ पर विष्णु, ब्रह्मा, शिव, गणेश और नान्दीकी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इसी प्रकार जावामें प्राप्त सामग्रियाँ भी पौराणिक धर्मकी महत्ता प्रकट करती हैं। यहाँ विष्णु और शिव अपने शंख, चक्र, गदा, पद्म और त्रिशूल आदि आयुधों के साथ पूजित थे।

उत्कीर्ण लेखोंकी विशुद्ध प्रवाहपूर्ण संस्कृत भाषा इस बातकी स्पष्ट घोषणा कर रही है कि इन उपनिवेशोंमें भारतीय भाषा और लिपि पूर्ण रूपसे अपना ली गयी थी। ब्राह्मण धर्मकी सार्वभौमिकताके साथ बौद्ध धर्मके भी पर्याप्त चिह्न हमें इन द्वीपोंमें ईसाकी चौथी शताब्दिमें मिलते हैं। हमारी इस बातकी पुष्टि प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियानके वर्णनसे भी स्पष्ट है। उसने जावा जाते समय जिस नाव द्वारा प्रस्थान किया था, उसमें २०० ब्राह्मणधर्मके अनुयायी यात्री ही थे। इससे स्पष्ट है कि फाहियानके समयमें भी ब्राह्मण धर्मका प्राबल्य इन उपनिवेशोंमें रहा तथा व्यापार अब भी उपनिवेशोंकी स्थापनाका प्रधान कारण बना हुआ था। धर्मकी इस भावनाकी कुछ झलक चीनी साहित्य द्वारा भी मिलती है। परन्तु छठी शताब्दिके आरम्भमें ही बौद्ध-धर्मकी प्रधानता इन द्वीपोंमें होने लगी थी, इसमें सन्देह नहीं।

* * *

जावामें बौद्ध-धर्मके इस प्रभावका प्रमाण हमें गुणवर्माकी कथासे ज्ञात होता है। ५१९ ई०में सम्पातिक चीनी साहित्यमें हमें यह कथा इस प्रकार मिलती है: "गुणवर्मा कश्मीरका एक राजकुमार था। जब उसकी अवस्था ३० वर्षकी हुई, तो कश्मीर नरेशका स्वर्गवास हो गया। कश्मीरके राज्य-मन्त्रियोंने सिंहासन गुणवर्माको देना चाहा, परन्तु उसने स्पष्ट नाहीं कर दी और अपनी ज्ञान-पिपासाको शान्त करने वह श्रीलंका चला गया। वहाँ बौद्ध-धर्मका गहन अध्ययन करनेके पश्चात् वह यवद्वीप गया और वहाँ राजमाताको बौद्ध-धर्ममें दीक्षित किया। राजमाताके प्रभावसे राजा भी बौद्ध हो गया।"

इसी समय जावा पर एक भीषण आक्रमण हुआ। युद्ध बौद्ध-धर्मके सिद्धान्तोंके विरुद्ध था। परन्तु गुणवर्माकी अनुमतिसे राजाने शत्रु पर आक्रमण किया और उसे पराजित कर दिया। गुणवर्माने राज्य एवं प्रजा-रक्षा हेतु युद्धको धर्म-विहित बताया था। इससे ज्ञात होता है कि बौद्ध-धर्ममें हिन्दू-धर्मकी प्रवृत्तियोंकी प्रधानता थी।

गुणवर्माकी विद्वत्ताकी ख्याति सुनकर चीनके सम्राट्ने गुणवर्मा एवं जावाके राजाको अपने देशमें निमन्त्रित किया था। ४३१ ई०में हिन्दू वणिक नन्दिनकी नौका द्वारा ये लोग बौद्ध-धर्मका सन्देश देने चीन गये थे। वहीं ६५ वर्षकी आयुमें गुणवर्माने निर्वाण प्राप्त किया।

सातवीं शताब्दिमें इन द्वीपोंमें बौद्ध-धर्मका पूर्ण प्रभाव था, इसकी पुष्टि इत्सिंगके वर्णनसे भी होती है। भारतकी यात्राके समय इत्सिंग श्रीविजयमें रुका था, वहाँ उसने संस्कृत व्याकरणका पूर्ण अध्ययन किया था। भारतसे जाते समय पुनः वह इस नगरमें कुछ कालके लिए ठहरा था और एक बार फिर वह चीनसे श्रीविजय बौद्ध-धर्मके साहित्यकी खोजमें आया था। यहाँ वर्षों रहकर उसने कितने ही बौद्ध-ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियाँ तैयार की थीं।

इत्सिंगके वर्णनसे ज्ञात होता है कि श्रीविजय नगर उन दिनों सभ्यता एवं संस्कृतिका मुख्य केन्द्र हो रहा था। एक सहस्रसे अधिक बौद्ध-धर्मके पण्डित इस नगरमें सदैव धार्मिक अध्ययन एवं प्रचारमें व्यस्त रहते थे। उसने लिखा है कि भारत जानेवाले चीनी धार्मिक जिज्ञासुओंको पहले इस नगरमें ठहर कर दो-एक वर्ष तक अध्ययन एवं चिन्तन करना चाहिए और तत्पश्चात् गूढ़ ज्ञानकी प्राप्तिके लिए भारत प्रस्थान करना चाहिए।

इससे स्पष्ट है कि सातवीं शताब्दिमें ही स्वर्णद्वीप बौद्ध-साहित्य एवं धर्मका प्रधान केन्द्र हो गया था, जहाँ विदेशी भी आकृष्ट होकर आते थे। सातवीं शताब्दिके उत्तरार्द्धमें अनेक प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् यहाँ बौद्ध-धर्मके नवीन सिद्धान्तोंके प्रचारके लिए गये थे। नालन्दा विश्वविद्यालयके आचार्य धर्मपाल सातवीं शताब्दि-में बौद्ध-धर्मका प्रचार करने स्वर्णद्वीप गये थे। आठवीं शताब्दिके आरम्भमें दक्षिणी भारतके एक बौद्ध सन्यासी अपने शिष्य अमोघवज्रके साथ श्रीविजय जाकर पाँच महीने ठहरे थे। इन्हें ही चीन देशमें बौद्ध-धर्मके तान्त्रिक-सम्प्रदायके प्रचारका श्रेय प्राप्त है।

इन समस्त वर्णनोंमें भारत और इन द्वीपोंका लगातार सम्बन्ध स्पष्ट है। बौद्ध-धर्मके प्रचारकी बात सभी-को ज्ञात है। साधारण रूपसे ऐसा विश्वास है कि हिन्दू-धर्म कभी भी अपनी सीमाओंके पार नहीं गया। परन्तु ब्रह्मा और स्यामको छोड़कर और समस्त उपनिवेशोंमें हिन्दू-धर्म प्रायः अपने मूलरूपमें ही फैला। परन्तु इस धर्मका रूप वैदिक न होकर पौराणिक है; ब्रह्मा, विष्णु और शिवको महत्ता दी गयी है। नये विचारके साथ पुराणोंका नया साहित्य पनपा और वैदिककालीन विविध देवताओंकी इकाई संख्याका त्याग कर एक ब्रह्माकी कल्पनाकी गयी, जो विभिन्न देवताओंके रूपमें उसीकी शक्तियोंका विभिन्न क्षेत्रोंमें कार्यभार सँभालते हैं। यह भावना बौद्ध और जैनधर्मकी समकालिक है। अतः बौद्ध-धर्म पर भी हिन्दू-धर्मकी महत्ता एवं सजधजकी स्पष्ट

छाप पड़ी। अनेक हिन्दू मन्दिरोंमें बुद्ध भगवान्‌की स्थापना हुई और पौराणिक कथाओंकी भाँति जातक कथाओंका निर्माण हुआ। लेखों और साहित्यके आधार पर ज्ञात होता है कि कालान्तरमें हिन्दू-धर्मका ही प्राधान्य, उसमें भी शिव-शक्तिका अधिक प्रचार हुआ। विष्णु और बुद्धका स्थान शिवकी तुलनामें गिर गया। इस सत्यके होते हुए भी हमें उपनिवेशोंके समस्त धार्मिक इतिहासमें किसी भी प्रकारके धार्मिक विकल्प अथवा अत्याचारका उद्धरण नहीं मिलता। इसके विपरीत समस्त धर्मोंमें सहिष्णुता एवं सौजन्यकी भावना ही निरन्तर रही।

चम्पा द्वीपका धार्मिक इतिहास इससे कुछ भिन्न है, क्योंकि स्वर्णद्वीप पर आधिपत्य हो जानेके बाद भारतीयोंकी दृष्टि बाहर गयी। दूसरी शताब्दिमें श्रीमार द्वारा हिन्दू राज्यवंशकी नींव यहाँ डाली गयी थी। परन्तु सातवीं शताब्दिके अन्ततक चम्पा युद्धका क्षेत्र बना रहा और चीनी आक्रमणोंसे यह भाग ईसाकी आठवीं शताब्दिके आरम्भ तक निरापद न हो पाया। ऐसी स्थितिमें साँस्कृतिक प्रचार असम्भव होता है। सभ्यता एवं संस्कृति शान्तिकालकी योजनाएँ हैं। संघर्ष एवं संघातमें समाजका विकास नहीं होता। अतः भारतीय उपनिवेशोंके धार्मिक इतिहासका प्रथम काल चम्पा द्वीपमें नहींके बराबर है। चम्पाके समीपवर्ती अन्य द्वीपोंमें भी भारतीय-संस्कृतिका प्रचार बहुत देरसे आरम्भ हुआ, जिनका क्रमिक इतिहास सातवीं शताब्दिके बाद ही आरम्भ होता है। अतः ऐतिहासिक कालके विभाजनकी दृष्टिसे इन द्वीपोंमें धर्मका अध्ययन दूसरे कालका विषय है।

यही दशा कम्बोज साम्राज्यकी भी है। यद्यपि चीनी साहित्य द्वारा हमें ज्ञात होता है कि राजा चू-यी-पा-मो (जयवर्धन)ने ५०३ ई०में चीनके महाराजको भेंटमें अन्य सामग्रियोंके साथ बुद्ध भगवान्‌की मूर्ति भी भेजी थी, जिससे उस प्रदेशमें बौद्ध-धर्मके प्रचारका आभास मिलता है; तथापि सातवीं शताब्दि तक धार्मिक प्रचारका जोर नहीं हो पाया था। अतः इस भूभागका अध्ययन भी दूसरे कालका विषय है। भारतीय उपनिवेशोंमें यही एक भाग ऐसा है, जहाँ अब भी भारतीय परम्पराएँ किसी-न-किसी अंशमें अपने मूल रूपमें ही उपस्थित हैं।

इसके बाद जब हम ब्रह्मा आदि देशोंकी ओर ध्यान देते हैं, तो पता चलता है कि दूसरीसे सातवीं शताब्दिके बीच भारतीय-संस्कृतिने अपना प्रभाव पूर्ण रूपसे यहाँ डाल रखा था। हमारे पास इसके प्रचुर प्रमाण हैं। इससे भी पूर्व अशोक द्वारा भेजे गए धर्म-प्रचारक इस भूभागमें आये थे। दूसरी शताब्दिमें भारतीय-सभ्यताकी बात प्टॉलमीके वर्णनसे ज्ञात होती है। प्टॉलमीने अनेक स्थानोंके नामोंका जो उल्लेख किया है, वे शुद्ध भारतीय हैं। बौद्ध पण्डित बुद्धघोष के साहित्य द्वारा पाँचवीं शताब्दिके आरम्भमें इन द्वीपोंमें बौद्ध एवं हिन्दू-धर्मकी छाप स्पष्ट सिद्ध है। ब्रह्मामें खुदाइयों द्वारा बहुतसे उत्कीर्ण लेख, खिलौने, स्वर्णपत्र, शव-भस्म रखनेके पात्र इत्यादि प्राप्त हुए हैं, जिनसे भारतीय-संस्कृतिका प्रभाव स्पष्ट है। इन प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि ईसाकी प्रथम शताब्दि-के पहले ही भारतीय-धर्म पूर्ण रूपसे इस भागमें प्रचलित था। बौद्ध-धर्मकी तीन शाखाओं महायान, हीनयान तथा तान्त्रिक मार्गके स्पष्ट प्रमाण इन द्वीपोंमें हमें मिलते हैं। ५वीं एवं ७वीं शताब्दिमें उत्कीर्ण स्वर्ण-पत्रों पर बौद्ध-सिद्धान्त धार्मिक प्रभावकी बात पूर्ण रूपसे सिद्ध करते हैं। प्रोम, पेगू, थाटन और पेगन आदि नगरोंके आसपास अनेक धार्मिक केन्द्रोंके मठ थे।

इसी प्रकार ईसाकी प्रथम दो शताब्दियोंमें ही स्याममें भारतीय-संस्कृतिका प्रचार होने लगा था। प्रानैथममें हुई खुदाईमें प्राप्त सामग्रियाँ भारतीय-धर्मके प्रभावको दूसरी शताब्दिमें होना निःसन्देह सिद्ध करती हैं। पांगटुककी खुदाईमें प्राप्त मन्दिरोंके अवशेष तथा बुद्धकी मूर्ति भी उसी कालकी है। मुंग-सी-त्तेपमें चौथी

* * *

शताब्दिका एक लेख शिव और विष्णुकी मूर्तियोंके साथ प्राप्त हुआ है। समस्त स्याममें गुप्तकालीन धार्मिक मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं।

प्रसिद्ध विद्वान् क्वैडसने इन्हीं प्राप्त सामग्रियोंके आधार पर स्याम और ब्रह्माको ही सबसे प्राचीन भारतीय उपनिवेश सिद्ध किया है। उनका कहना है कि "स्वर्णभूमि"की कल्पना इन्हीं प्रान्तोंको लेकर सर्वप्रथम की गयी थी। मलाया, जावा आदि भूभागोंकी स्वर्णभूमि वादकी कल्पना है। कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि स्याममें ईसाकी प्रथम और द्वितीय शताब्दियोंमें ही कई भारतीय उपनिवेश थे, जिनमें हिन्दू और बौद्ध-धर्म पूर्ण रूपसे विकसित थे।

थाई प्रदेश चीनके दक्षिण-पूर्वका भाग कहलाता था। यहाँके निवासी यद्यपि मूल रूपसे चीनी थे, तथापि इन पर भारतीय-संस्कृतिका पूर्ण प्रभाव वादमें पड़ा था। परन्तु यहाँके भारतीय धर्मका इतिहास ७वीं शताब्दिके वाद विशेष रूपसे आरम्भ होता है। अतः उसका अध्ययन भारतीय उपनिवेशोंके धार्मिक इतिहासके दूसरे कालमें आता है।

द्वितीयकाल

धार्मिक इतिहासका यह काल ईसाकी सातवीं शताब्दिके वाद आरम्भ होता है। सातवींसे पन्द्रहवीं शताब्दि तक भारतीय-संस्कृतिका पूर्ण रूपसे इन द्वीपोंमें प्रचार रहा। धार्मिक भावनाकी जो धारा इस कालमें यहाँ प्रवाहित हो रही थी, वह शुद्ध भारतीय है और वह किसी भी प्रकार विदेशी अथवा उपनिवेशोंके वाहरकी नहीं प्रतीत होती है। अध्ययन की सुविधाके लिए भौगोलिक-विभाजनके अनुसार विश्लेषण अधिक बुद्धिग्राह्य होगा।

स्वर्णद्वीप

यह पहले ही वताया जा चुका है कि वैदिक-धर्मकी दोनों प्रमुख शाखाएँ - वौद्ध और हिन्दू-धर्म - प्रथमसे सातवीं शताब्दिके मध्य तक यहाँ काफी पनप चुका था। युगके साथ संस्कृतिका स्वरूप भी पल्लवित और विकसित हुआ। सातवीं शताब्दिमें जिस धर्मका प्रतिरूप हम स्वर्णभूमिमें पाते हैं, उसे देखकर यह कहना अवश्य कठिन है कि स्वर्णभूमि तथा भारतके धर्मोंमें कौन किसका प्रतिरूप है? यदि इतिहासके इस ज्ञानको हम भूल जायँ कि ये भारतीय उपनिवेश हैं और यहाँ भारतसे संस्कृति लायी गयी थी, तो निःसन्देह हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं पा सकते। संस्कृतिकी इतनी सफल विजय विश्वके इतिहासमें कहीं भी, किसी कालमें भी उपलब्ध नहीं है। इससे यह न सोचना चाहिए कि इस भूमिका आदि धार्मिक स्वरूप पूर्णरूपसे नष्ट कर दिया गया अथवा हो गया। अपितु जिस प्रकार भारतमें हिन्दू-धर्मने बौद्ध-धर्मके अनेक सिद्धान्तोंको अपनाकर एवं स्वयं महात्मा बुद्धको अपने अवतारोंकी कोटिमें लेकर बौद्ध-धर्मको पूर्ण रूपसे अपनेमें समेट लिया, ठीक उसी प्रकार इस भूमिका धर्म भी भारतीय-संस्कृतिकी महान् धारामें मिलकर भारतीय हो गया, परन्तु नष्ट नहीं हुआ। उसका स्वन्तत्र अस्तित्व मिट गया, परन्तु उसकी आत्मा जीवित रही। इस प्रकारकी धार्मिक विजय हमें स्वर्णभूमि और कम्वोज ही में मिलती है।

स्वर्णद्वीपमें भारतीय-धर्मका प्रभाव

ईसाकी आठवीं शताब्दिके आरम्भ कालमें ही ब्राह्मण-धर्मकी पूर्ण प्रतिष्ठा इस भूभागमें हो गयी। सृष्टिकी तीनों महान् शक्तियाँ उत्पादक, पोपक और संहारकर्ताके रूपमें ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशके नामसे अपने

* * *

गणों तथा अपनी शक्तियोंके साथ इस द्वीपमें पूजे जाने लगे। पौराणिक देवताओंकी समस्त देव-संख्या इस द्वीपमें भी कथा और साहित्यके रूपमें समा गयी। परन्तु आठवीं शताब्दिका अन्त होते-होते शिवकी ही प्रधानता सर्वत्र छा गयी। शिवके साथ-साथ गणेश, पार्वती और कार्तिकेयकी भी विशेष पूजा होती रही। ब्राह्मण-धर्मके प्रमुख देवता विष्णु कभी भी शिव-जैसा आदर इन द्वीपोंमें न पा सके, तथापि शिवके बाद सम्मानकी दृष्टिसे उन्हीं-का स्थान रहा। यह अवश्य था कि तीनों शक्तियोंका सम्मिलित रूप त्रिमूर्तिके रूपमें प्रायः प्राप्त होता रहा। इसके अतिरिक्त हिन्दुओंमें वर्णित सभी देवताओंकी प्रतिष्ठा यहाँ की गयी। क्राफार्ड महोदयके अनुसार तो शायद ही किसी ऐसी मूर्तिका वर्णन पुराणोंमें हो, जो जावामें न मिले। धर्मके इसी रूपने विचारोंके महान् परिवर्तन एवं क्रान्तिकी भावना भरी। अतएव पदार्थ-विद्या, ईश्वर-ज्ञान, धार्मिक कथाओं और धार्मिक विचारके रूपमें अनेक धार्मिक ग्रन्थोंकी रचना की गयी, जिसमें हिन्दू-धर्मको ही आधार मानकर धर्मके विविध स्वरूपों पर विवेचन किया गया है।

पीछेके पृष्ठोंमें सातवीं शताब्दि तकके धार्मिक इतिहासका हम जो अध्ययन कर चुके हैं, उससे ज्ञात होता है कि सातवीं शताब्दिके अन्तमें हीनयान शाखाके बौद्ध-धर्मका प्रभाव समस्त स्वर्णद्वीपमें था। परन्तु आठवीं शताब्दिके आरम्भसे हिन्दू-धर्मके सम्पर्कसे महायान शाखाका प्राबल्य हुआ। अर्थात् बुद्ध की प्रतिमाएँ बनायी गयीं। जातक-कथाओंके आधार पर बुद्धकालीन-कलाका विकास हुआ, बौद्ध-मन्दिरोंका निर्माण हुआ। जावाका विशाल बोरोबुरका बौद्ध-मन्दिर विश्वकी अद्वितीय रचना है। शैलेन्द्र राजाओंके कालमें जावा द्वीपको जो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई थी, वह भारतीय-संस्कृति एवं इतिहासके प्रत्येक विद्यार्थीको ज्ञात ही होगी।

सातवीं शताब्दिमें ही प्रसिद्ध विद्वान् असीसदीपंकर बंगालसे यहाँ बौद्ध-धर्मका अध्ययन करने आये थे और उसी समयके आसपास इसी उद्देश्यसे नालन्दा विश्वविद्यालयके धर्माचार्य महाविद्वान् धर्मपालने भी स्वर्णद्वीपकी यात्रा की थी। अतः यहाँ बौद्ध-धर्मकी सत्ता बोरोबुरके उत्कीर्ण लेखों एवं प्राप्त साहित्य द्वारा स्वयंसिद्ध है। नवीं शताब्दिके आरम्भ तक महायान शाखाका एक प्रकारसे तो यहाँ आधिपत्य ही हो गया था।

बालिद्वीपमें भी हमें जावाकी-सी ही धार्मिक भावना दिखायी देती है। यद्यपि बालिद्वीपमें अब भी हिन्दू-धर्म जीवित है, अतः अपने कथनकी पुष्टि वहाँकी वर्तमान प्रचलित प्रथाओंके आधार पर हम सरलतासे कर सकते हैं। आधुनिक बालि-निवासियोंका विश्वास अनेक देवताओं एवं प्रेतात्माओंमें है। उनका सारा जीवन धर्मसे इंगित है। उनकी पूजाका समस्त विधान जीवन भर देवताओंको प्रसन्न करने और प्रेतात्माओंसे बचनेके लिए है।

मलाया और पूर्वी द्वीप समूह कभी हिन्दुओं और बौद्धोंसे भरे पड़े थे। अब भी उनके अवशेष गतधार्मिक अनुभूतिका परिचय देते हुएसे प्रतीत होते हैं। धार्मिक भावनाका पूर्ण ज्ञान तो तभी प्राप्त हो सकता है, जब वहाँकी सामाजिक, राजनीतिक एवं कला-सम्बन्धी सभी अवस्थाओंका अध्ययन किया जाय, क्योंकि धार्मिक भावना इन सभीको पृष्ठभूमिसे अनुप्राणित करती रहती है।

चम्पा

चम्पामें धार्मिक इतिहासका काल प्रायः ७वीं शताब्दिके बाद ही आरम्भ होता है। निरन्तर बाह्य आक्रमणोंसे आक्रान्त होने पर भी चम्पामें धर्मकी गति तीव्र रही। यहाँ धर्मके दो रूप मिलते हैं:

१. **बौद्ध-धर्म :** जिसमें आदिकालीन विश्वास और प्रथाओंने घर कर लिया था।

२. **हिन्दू-धर्म** : जो शक्तिशाली होनेके साथ-साथ सर्वांगीण भी था। महायान शाखाका विस्तार भी हिन्दू-धर्मके प्रभावको सिद्ध करता है, कारण हिन्दू-धर्मकी पूजाके विधानोंकी सजधजने ही महायान शाखाकी कल्पनाको जन्म दिया था।

हिन्दू-धर्ममें शिवकी महत्ता स्थापित हुई। विभिन्न देवताओंमें कौन विशेष आदरका पात्र रहा, यह नीचेकी तालिकासे सिद्ध हो जायगा। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉक्टर रमेशचन्द्र मजूमदारने उत्कीर्ण लेखोंकी यह संख्या विस्तारपूर्वक अपने 'चम्पा'के इतिहासमें दी है। चम्पामें प्राप्त लेखोंकी संख्या इस प्रकार है :

लेखोंकी संख्या	देवताओंसे सम्बन्ध
९२	शिव
७	बुद्ध
७	ब्रह्मा स्वयमुत्पन्न
३	विष्णु
२	शिव-विष्णु
२१	किसीका उल्लेख नहीं है।

इस प्रकार १४२में १३१ लेख विभिन्न देवताओंका उल्लेख करते हैं, जिससे शिवकी महत्ता स्पष्ट है। माईसन और पो नगरके मन्दिरोंके दो समूह शिवके ही विषयमें हैं। इतना ही नहीं, शिव राष्ट्रीय देवकी भाँति पूजे जाते थे। कालान्तरमें तो कितने ही राजाओंने अपनेको शिवका अवतार बताया है। चम्पा नगरके रचयिता श्री भगवान् शंकर ही माने गए हैं। एक शिलालेखमें यह बात सिद्ध है। "भगवान् शिवने 'उरोज'को आज्ञा दी कि जा कर चम्पा नगर की रचना करो। मैं वहाँ स्वयं निवास करूँगा।" लेखमें यह वर्णन इस प्रकार है—

शंभु स्मित मुख नयनः प्रेषितो राजएव...
राज्यं स प्राप्तवांश्चाप्रतिहरत इदं लिंगमीशस्य कार्यं...

एक शिलालेखमें कहा गया है, कि भगवान् शिव अपने असंख्य गणोंके द्वारा नगरकी रक्षा करते हैं, यथा :

स एव देवः परमात्मकः श्रीज्ञानेश्वरो लोकगुरुः नृपाणाम्।
पूज्यः प्रणम्यः स (ह) भृत्य वर्गैश्चम्पाधिहेतोर्जयतीह नित्यम्॥

चम्पामें मनुष्यका रूप और लिंग दोनों ही रूपोंमें शिवकी उपासना प्रचलित थी। इसके अतिरिक्त समय-समय पर राजाओंने शिवलिंगोंकी स्थापना की और उनका नाम अपने नामके पीछे रखा। चौथी शताब्दिके अन्तमें राजा भद्रवर्मन्ने एक शिवलिंगकी स्थापना की थी, जिसका नाम भद्रेश्वर रखा था। माईसनके मन्दिरमें यह शिव-लिंग हिन्दू राजपर्यन्त राष्ट्रीय देवके रूपमें पूजित रहा, जिसके चारों ओर अनेक मन्दिरोंकी सृष्टि हुई। यह मन्दिर ५७५ ई०के पूर्व ही जला दिया गया। इसकी पुनःस्थापना राजा शम्भुवर्माने की और इसका नाम शम्भुभद्रेश्वर रक्खा। ११वीं शताब्दिमें श्री शानभद्रेश्वरके रूपमें शिव राष्ट्रीय देवके रूपमें पूजित हुए। इसके बाद चम्पाके राजाओंने अपनेको शिवका अवतार घोषित किया। पो नगरमें मुख लिंगकी स्थापना ८वीं शताब्दिमें राजा विचित्र सागरने की थी, जिसका नाश ७७४ ई०में हो गया और जिसका पुनर्निर्माण राजा सत्यवर्मन्ने सत्य मुख लिंगके रूपमें किया। परन्तु इसकी प्रतिष्ठा शम्भुभद्रेश्वर अथवा श्री शानभद्रेश्वरकी भाँति न हो सकी।

* * *

चम्पामें मूर्तियोंकी स्थापना राजाओंका एक आवश्यक कार्य-सा हो गया था, जिनके साथ उनका नाम जुड़ा होता था। शिवके बाद विष्णुकी प्रतिष्ठा रही। अवतारवादकी धारणाका भी यहाँ विकास हुआ। कई राजाओंने आगे चलकर अपनेको विष्णुका अवतार बताया है।

हिन्दू-धर्मके अतिरिक्त बौद्ध-धर्म भी विशेष रूपसे चम्पामें अपना प्रभाव डाले हुए था, यह बात इसीसे स्पष्ट हो जाती है कि ६०५ ई०में विजयी सेना अपने साथ चीन ले गयी। बौद्ध-धर्मको समय-समय पर अधिक मात्रामें राज्य-संरक्षण मिला और यह भूभाग बौद्ध संघोंसे काफी भर गया। ८७५ ई०में राजा लक्ष्मीग्रामस्वामीने लक्ष्मीन्द्रलोकेश्वरकी प्रतिमा बुद्ध भगवान्‌की मूर्तिके रूपमें स्थापित की थी। दाँगदुरांगमें इस धर्मका प्रधान केन्द्र था। वहाँ खुदाई द्वारा एक विशाल मन्दिरकी प्राप्ति हुई है। यहाँ पर प्राप्त भगवान् बुद्ध की मूर्तियोंमें एक पाँच फुट ऊँची है तथा एक पीतलकी मूर्ति कलाकी दृष्टिसे अत्यन्त सुन्दर है।

धार्मिक सहिष्णुता चम्पाके धार्मिक विकासमें अधिक सहायक हुई है। बौद्ध-धर्मके साथ-साथ कई हिन्दू-धर्मकी शाखाएँ पल्लवित हो रही थीं। परन्तु उनमें किसी प्रकारका वैमनस्य न था। धर्मका प्रचार आत्मिक उन्नतिकी दृष्टिसे था, उसमें धार्मिक अत्याचारकी भावना किसी प्रकार अपना घर न बना सकी थी। इतना ही नहीं, राजाओंमें भी धार्मिक उदारता सराहनीय रही और सभी धर्मोंको उनसे संरक्षण मिलता रहा। राजा प्रकाशवर्मन्‌ने शिव और बौद्ध-धर्म दोनोंको समान रूपसे संरक्षण दिया था।

कम्बोज

यद्यपि फूनानमें भारतीय-संस्कृतिका प्रचार बहुत पहले ही हुआ था, तथापि ७वीं शताब्दि तक उसका एक प्रकारसे पूर्णरूपसे अन्त हो गया। उसकी पुनर्जागृति ७वीं शताब्दिके बाद कम्बोज राज्यकी स्थापनाके साथ आरम्भ हुई, जो १५वीं शताब्दि तक एकच्छत्र रूपसे रही। और अब भी किसी-न-किसी अंशमें उसका रूप वर्तमान है। कम्बोजकी उत्पत्तिके पीछे जो कथानक है, वह भी भारतीय कथाओंकी ही भाँति है। आर्य-देशके राजा स्वयम्भू कम्बू अपनी पत्नी मीराके मर जाने पर वियोग-दुःखसे आक्रान्त रेगिस्तानी मार्गोंको पार करता, सर्पोंके एक देशमें पहुँचा। वहाँ नागराजने प्रसन्न होकर अपनी कन्याका विवाह उसे मनुष्य रूप देकर कर दिया और उस निर्जन प्रान्तको आर्यदेशकी ही भाँति हरा-भरा कर दिया। इसी कम्बू-नरेशने अपने नामके आधार पर इसका कम्बूज नामकरण किया। इस प्रकार अन्य कथाएँ भी पौराणिक कथाओंके अधिक निकट हैं।

इस प्रदेशमें हिन्दू-धर्मकी पौराणिक शाखाका विशेष प्राबल्य रहा। साथ-साथ बौद्ध-धर्मका भी काफी प्रचार था। पौराणिक धर्मोंमें भी शैवशाखाकी प्रधानता रही। इसके अतिरिक्त सभी देवताओंका सम्पूर्ण प्रचार इस एक भागमें था। तात्पर्य यह कि हिन्दू-धर्म अपने पूर्ण रूपमें यहाँ विद्यमान था और उसका अध्ययन भारतीय धार्मिक इतिहासका पिष्टपेषण मात्र होगा। हिन्दू-धर्मकी समस्त पुस्तकें यहाँ बड़े चावसे पढ़ी जाती थीं। रामायण, महाभारत तथा अन्य धार्मिक पुस्तकोंके नित्य पाठकी यहाँ पूर्ण व्यवस्था थी। धार्मिक पुस्तकोंका दान एक पवित्र कार्य समझा जाता था। इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त शब्द, न्याय, वैशेषिक, समीक्षा और अन्य शास्त्रोंका भी खूब प्रचार था। धर्म-अर्थ, काम और मोक्षको जीवनका लक्ष्य मानकर ही कम्बोजमें धार्मिक तथा अन्य प्रकारके साहित्यका विकास हुआ। धार्मिक ग्रन्थोंमें वर्णित व्यवस्थाके अनुसार यहाँके राजा और मन्त्री अपने जीवनको बितानेकी चेष्टा करते थे।

जीवनमें धार्मिक क्रियाशीलता और लोगोंका विशेष ध्यान था। कम्बोज द्वीप ऋषि-आश्रमोंसे भरा था, जहाँ ऋषिगण धार्मिक विवेचन एवं योगाभ्यास आदिमें व्यस्त रहते थे। यहाँके राजाओंने कितने ही आश्रमोंका

* * *

निर्माण कराया था। अकेले राजा यशोवर्मा द्वारा बनवाये गए आश्रमोंकी संख्या १,००० थी। अंकोरवाटका विशाल भव्य मन्दिर यहाँकी धार्मिक भावनाका स्पष्ट प्रतीक है।

ब्रह्मा और स्याम आदि

ब्रह्माका धार्मिक इतिहास ८वीं शताब्दिमें एक नयी दिशाकी ओर मुड़ा। सातवीं शताब्दिके अन्ततक ब्राह्मण-धर्मका एक प्रकारसे लोप हो गया और यहाँ थेरवाद शाखाके बौद्ध-धर्मका प्रचार हुआ। ब्रह्माकी धार्मिक विशेषतामें सबसे प्रमुख है बौद्ध-धर्मसे सम्बन्धित सभी घटनाओंको ब्रह्म देशमें ही नियोजित करना। ब्रह्माके निवासियोंने अपनेको शाक्य वंशका तो बताया ही है, साथ ही बौद्ध साहित्यमें वर्णित सभी स्थानोंकी कल्पना ब्रह्मदेशमें ही की गयी है। वहाँके प्राचीन नगरोंके नाम हैं: अवन्ती, वाराणसी, चम्पानगर, धान्यावती, द्वारावती, गान्धार, मिथिला, पुष्कर, राजगृह, वैशाली इत्यादि। इस प्रकार स्पष्ट है कि ब्रह्मामें एक नवीन भारतके बसानेकी उत्कृष्ट योजना थी, जो हमें कहीं भी नहीं मिलती। बौद्ध-धर्मके साथ-साथ बौद्ध-धर्मका पालि साहित्य इस प्रदेशमें पूर्ण रूपसे विकसित हुआ।

स्याममें १३वीं शताब्दि तक कम्बोज शक्तिका ही बोलबाला रहा। ९६४ ई०में ३०० धार्मिक जिज्ञासु चीन देशसे धार्मिक पुस्तकोंकी खोजमें भारत आये थे। वे स्याममें ठहरे भी थे और यहाँसे कई ग्रन्थ अपने साथ ले गये थे। स्यामके सुखोदय और अयोध्या राज्योंके शासक बौद्ध-धर्मके अनुयायी थे। भाषा, साहित्य, कला एवं धर्मके रूपमें भारतीय-संस्कृति यहाँ सदैव रही। ब्रह्माकी ही भाँति स्याममें भी भारतीय नगरोंके बसानेकी चेष्टा स्पष्ट है।

इस प्रकार भारतीय उपनिवेशोंके धार्मिक इतिहासका अध्ययन भौगोलिक विभाजनके आधार पर दो कालोंमें विभक्त कर पूर्ण रूपसे समझ लेने पर भी वहाँके देवताओंकी कल्पनाका अध्ययन किये बिना विषय अधूरा ही बना रहेगा। अतः भारतीय उपनिवेशोंके प्रमुख देवताओंका अध्ययन यहाँ आवश्यक है।

शिव

भारतीय उपनिवेशोंमें शिवकी सबसे अधिक प्रधानता रही। वे ब्रह्मा और सभीसे अधिक श्रेष्ठ थे। ऊपर कहा जा चुका है कि चम्पामें प्राप्त १३१ लेखोंमें ९२ शिवसे ही सम्बन्धित हैं। ये शिव हिन्दुओंके रुद्रके रूपमें न हो कर परब्रह्मके रूपमें ही पूजे जाते थे। उत्पत्ति, पालन और विनाश तीनों कार्योंका भार उन्हीं पर था। समस्त विश्वके वैभवप्रदाता भगवान् शिव ही चम्पाके राजाओंको आनन्द एवं सम्पत्तिसे परिपूर्ण करते थे। भद्रवर्मन् तृतीयके शिलालेखमें इस आशयका उद्धरण इस प्रकार है:

स एव भगवान्, ईशो दत्तलोक सुखोदयः।
स एव श्रीशानभद्रेशो राजश्रियमकारयत्॥

इतना ही नहीं, भगवान् शंकरके पाद-किरणोंसे ही चम्पाकी उत्पत्ति तक हुई है, यथा:

शश्वद्भूषित भूमिमण्डलरुचा, संपादितम् यं श्रयै।
सूतायै चरणद्वयाद् भगवतस्तस्योद्गतेनांशुना।"

भगवान् शिव इन द्वीपोंमें कई नामसे अपने गुणोंके कारण जाने जाते हैं:

१. समस्त देवोंमें बड़े होनेके कारण महादेव, महेश्वर, महादेवेश्वर, ईश्वर, देवाधिदेव, परमेश्वर आदि हैं।

२. महान् होनेके नाते वे ईशान, ईशानदेव, ईशानेश्वरनाथ आदि नामोंसे जाने जाते हैं।

३. सृष्टिके संहारकर्ताके रूपमें उन्हींका नाम भीम, उग्र, रुद्र, महारुद्र देव इत्यादि हो जाता है।

४. वरदाताके रूपमें वे शम्भु, शंकर, भाग्यकान्तेश्वर आदि नामोंसे स्मरण किये जाते हैं।

५. कथाओंमें वे पशुपति, वामेश्वर, वामारतेश्वर आदि नामोंके साथ स्मरण किये जाते हैं।

६. लिंगमहादेवकी प्रतिष्ठा रूपमें देवलिंगेश्वर, महालिंगदेव, शिवलिंगेश्वर आदि नामोंसे पूजे जाते हैं।

अनेक शिलालेखोंके वर्णनसे उनकी प्रभुता सर्वत्रसिद्ध है। उनकी प्रभुताका एक अत्यन्त सुन्दर रूप इस प्रकार बताया गया है : "इन्द्र उनके सामने, ब्रह्मा दायीं ओर, सूर्य और चन्द्र पीछे की ओर तथा नारायण बायीं ओर खड़े हैं। मध्यमें भगवान् शंकर अपनी दिव्य ज्योतिके साथ बैठे हैं। समस्त देवता समवेत-स्वरसे उनकी वन्दना कर रहे हैं। उनकी वन्दना 'ओ३म्' शब्दसे आरम्भ होकर स्वधा अथवा स्वाहा शब्दसे समाप्त होती है। देवाधिदेव महादेवका न आदि है, न अन्त। वे ही भूः, भुवः, स्वः तीनों लोकोंके कर्ता हैं। अनेक शक्तियोंसे सम्पन्न शिवके लिए 'अणिमादिगुणैश्वर्येणाप्यफलनिमित्तः' आदि शब्दोंका प्रयोग किया गया है।"

हिन्दू-धर्ममें शिवशक्तिका स्मरण जिस प्रकार किया गया है, वही चित्र इन उपनिवेशोंमें भी प्राप्त होता है। उनकी कृपासे समस्त पाप धुल जाते हैं 'येनोत्खातं भुवनदुरितं वह्निनान्धकारम्।' वे 'योगिभिः साध्य' हैं। हिमालय उनका क्रीड़ास्थल है, जहाँ मानस हृदयमें वे अपनी समस्त शक्तियोंके साथ क्रीड़ा किया करते हैं : 'सः संक्रीड़ते शक्तिभिः।'

शिवकथा साहित्यका भी यहाँ पूर्ण रूपसे प्रचार हुआ। उन्होंने शैलजा गौरीसे विवाह करने पर भी गंगाको अपने मस्तक पर धारण किया। कामदेवके भस्म होनेकी कथा, त्रिपुर राक्षसका वध आदि समस्त कथाएँ इन द्वीपोंके साहित्यमें पूर्ण रूपसे प्राप्त होती हैं। शिवपुराणकी प्रसिद्ध 'लिंगपूर्ण'की कथा, जिसमें ब्रह्मा और विष्णु कोई भी शिवलिंगके आदि और अन्तका पता न लगा सके, शिवकी महत्ताकी परिचायक है।

भारतीय शिव-चित्रोंकी ही भाँति वहाँ भी शिव-मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। सर्पोंका आभूषण एवं यज्ञोपवीत धारण किये, मृग चर्म पहने, मूँछ युक्त स्मितमुखवाले शंकर मस्तकमें त्रिनेत्र धारण किये सर्वत्र पाये जाते हैं। कभी-कभी वे ध्यानावस्थित रूपमें भी मिलते हैं। शिवकी विशेष मुद्राओंका चित्र ही एक विस्तृत व्याख्याका विषय है। कभी वे अपनी छः भुजाओंके साथ दिखायी देते हैं, कभी ताण्डव नृत्यकी मुद्रामें दृष्टिगोचर होते हैं और कभी संहारकर्ताके रूपमें नन्दिन्के बगलमें खड़े दिखायी देते हैं।

शिवके साथ उनसे सम्बन्धित अन्य देवताओंका उल्लेख भी हमें मिलता है। गणेशकी कथा यहाँ प्रचलित थी। उन्हें 'विनायक'के नामसे भी पुकारा जाता था। अपने गरुड़ पक्षीके साथ कुमार कार्तिकेय युद्ध-देवताके रूपमें यहाँ सर्वत्र पूजित रहे।

विष्णु

शिवके बाद विष्णुका नाम आता है। विष्णु भी पुरुषोत्तम, नारायण, हरि, गोविन्द आदि अनेक नामोंसे इन द्वीपोंमें जाने गये हैं। प्रायः विष्णुकी उपासनाकी अपेक्षा उनके अवतारोंकी ही अधिक पूजा की जाती है। राम और कृष्णके अवतारकी सभी कथाएँ भारतीय साहित्यकी ही भाँति यहाँके साहित्यमें भी पायी जाती हैं। कालान्तर-

में कितने ही राजाओंने अपनेको विष्णुका अवतार बताया है। चतुर्भुज रूपमें विष्ण क्षीर-सागरमें शयन करते हुए लक्ष्मीके साथ दिखाये गए हैं। गरुड़ उनके प्रिय वाहनके रूपमें सदैव परिचित रहा।

ब्रह्मा तथा अन्य देवता

यद्यपि ब्रह्माका रूप सृष्टिके उत्पादकके रूपमें यहाँके साहित्यमें मिलता है, तथापि उनका महत्व बहुत कम रहा। ब्रह्माका भारतीय रूप-अर्थात् हंस पर सवार चतुर्मुख ब्रह्मा अपनी चारों भुजाओंमें कमण्डलु, माला, कमल और वेद लिए हुए सदैव परिचित रहे हैं।

इसके अतिरिक्त इन्द्र, यम, चन्द्र, सूर्य, कुवेर, अग्नि, वासुकि, सरस्वती, मन्दर, प्राणेश्वर आदि देवताओंका भी उल्लेख मिलता है। इनके विषयकी कथाएँ कुछ परिवर्तनके साथ प्रायः भारतीय रूपमें ही हमें यहाँ मिलती हैं।

यक्ष, किन्नर आदि

देवताओंके बाद सिद्धों, विद्याधरों, चारणों, यक्षों, किन्नरों, अप्सराओं और परियों आदिका स्थान आता है। इनके विषयमें कोई उल्लेखनीय बात नहीं है। वे पूर्ण रूपसे भारतीय साहित्यके ही अनुरूप हैं। राक्षसोंके भीषण रूपकी कल्पना भी इन द्वीपोंमें अनेक कहानियोंके साथ की गयी है।

बुद्ध

बुद्ध भगवान् कई नामोंसे इन द्वीपोंमें जाने जाते हैं, जो क्रमसे जिन, लोकनाथ, सुगत, शाक्यमुनि, अमिताभ, वज्रपाणि, प्रमुदित, लोकेश्वर आदि हैं। संसारके जीवोंको मुक्ति दिलानेके लिए भगवान् बुद्ध प्रत्येक युगमें जन्म लेते हैं। उनके विषयमें बहुतसे ऐसे वर्णन मिलते हैं। यथा : **"के देवाः करुणात्मकः पृथुधिया. ."** इत्यादि।

कालान्तरमें महायान शाखाके बौद्ध-धर्ममें अनेक परिवर्तन हुए। फलस्वरूप बुद्धके स्वरूपोंमें भी अनेक नवीनताएँ आ गयीं। हिन्दू देवताओंको बौद्ध देवताओंके मध्य स्थान दिया गया। तान्त्रिक मतके अनुसार बुद्धके कुछ भयंकर रूपोंकी भी कल्पना की गयी। शिवके साथ बुद्धका सान्निध्य जावाकी अपनी देन है। 'कुञ्जरकर्ण' और 'सुतसोम' ग्रन्थोंमें शिव और बुद्धमें अधिक समता दिखायी गयी है। कहीं-कहीं तो बुद्धको शिवका लघु भ्राता भी कहा गया है। अनेक स्थलों पर शिव, विष्णु और बुद्ध एक ही शक्तिके विभिन्न नामरूप बताये गए हैं।

अवतारवाद

अवतारवादकी भावना भारतीय भावनासे भी आगे यहाँ बढ़ गयी थी। विष्णुके दशावतारका प्रमाण तो हमें मिलता ही है, इसके अतिरिक्त अन्य देवताओंके अवतारका भी उल्लेख मिलता है। विभिन्न स्थलोंके वर्णनसे ज्ञात होता है कि इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, वासुकि, शंकर, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वरुण और अभयपद (बुद्ध) सभी जीवोंको मुक्ति दिलानेके लिए समय-समय पर अवतार लेते रहते हैं।

धार्मिक-प्रथाएँ

अनेक धार्मिक प्रथाओंका प्रचार हमें इन द्वीपोंमें मिलता है। हिन्दू-धर्मके अनुसार ही संस्कारों आदिकी व्यवस्था इन द्वीपोंमें थी। देवताओंकी पूजाके साथ-साथ प्रेतात्माओंकी तुष्टि पर भी विशेष ध्यान दिया जाता

था। बलि देनेकी प्रथा विशेष रूपसे प्रचलित थी। तीर्थस्थानोंकी यात्रा सदैव पुण्यदायिनी समझी जाती थी। कितने ही राजा अपने जीवनके अन्तिम कालमें सर्वस्व त्याग कर भारतमें गंगाके तट पर मुक्ति लाभ करनेके हेतु आए थे। इसका उल्लेख वहाँके एक शिलालेखमें इस प्रकार है:

गंगराजा इति श्रुतोर्नृपगण प्रख्यात वीर्यश्रुतिः...
गंगा दर्शनजं सुखं महदिति प्रायादतो जाह्नवीम्॥

भारतीय उपनिवेशोंकी धार्मिक भावनाका जो चित्र इस लेखमें प्रस्तुत किया गया है, उससे भारतीय-धर्मकी स्पष्ट झलक इन द्वीपोंमें मिलती है। यद्यपि धर्मका यह इतिहास कला और साहित्यका अध्ययन किये बिना अधूरा ही रह जाता है, तथापि भारतीय उपनिवेशोंकी धार्मिक-संस्कृति हमें अपनी इस हीनावस्थामें भी पुनः अग्रसर होनेके लिए अनुप्राणित कर रही है और भारतीय-संस्कृति निराशावादितामें विश्वास नहीं करती। ●

जापान हिन्दू-देवी-देवताओंका घर है। तोक्यो नगरके बीचमें एक सुन्दर झील है। उसमें सरस्वती देवीका मन्दिर है। वहाँ हजारों यात्री सरस्वती देवीकी पूजा करने जाते हैं। नवयुवक लड़के और लड़कियाँ देवीका आशीर्वाद लेने यहाँ आते हैं।

तोक्योसे बीस मील दूर एनोशिमा टापूमें सरस्वती देवीका सबसे बड़ा मन्दिर है। सरस्वती देवीको जापानी 'बेंटन' कहते हैं। इस मन्दिरमें भगवती सरस्वतीके साथ सात देवताओंकी मूर्तियाँ हैं। इन्हें सरस्वतीजीके बच्चे माना जाता है। इनमें गणेश और कुबेर य देवता बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्हें भाग्यके सात देवता कहकर पुकारा जाता है। नवयुवक, नवयुवतियाँ और सुन्दरताके भिक्षुक सरस्वती देवीकी पूजा करने आते हैं। यहाँ मन्दिरोंमें छपे हुए मन्त्र बिकते हैं।

जापानकी पुरानी राजधानी क्योटोमें 'तोजी' नामका एक विशाल मन्दिर है। उसमें ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, शिव, कार्तिकेय आदि हिन्दू-देवताओंकी सैकड़ों मूर्तियाँ हैं। एक मन्दिरमें तेरह सौ वर्ष पुरानी हिन्दू-देवी-देवताओंकी पेंटिंग सुरक्षित रखी है। इन्हें जापानी भाषामें 'जूनीतेन' (बारह देवता) कहा जाता है। इसमें पृथ्वी, ब्रह्मा, सूर्य, सोम (चन्द्रमा), अग्नि, वायु इत्यादि देवताओंके चित्र हैं। इन सब देवताओंके चित्रोंके ऊपर संस्कृतमें 'बीजमन्त्र' लिखे हैं। इनसे देवताके नामका पता लग जाता है। ये चित्र एक बंगालीने जाकर जापानमें बनाए थे।

क्योटो नगरमें बुद्ध भगवान् के बड़े-बड़े विशाल मन्दिर हैं, परन्तु वहाँ इन्द्र और यमराजकी पूजा भी बहुत होती है। जापानी भाषामें यमराजको "ऐमा" कहते हैं। यमराजकी पूजा करनेके लिए नौकरोंको दो दिनकी छुट्टी दी जाती है। तोक्यो नगरमें तथा छोटे-छोटे गाँवोंमें भी यमराजके बहुत मन्दिर हैं।

जापानमें यमराजको लेकर एक कथा प्रचलित है, जो कठोपनिषद् नचिकेताकी कथा पर आधारित है।

—भिक्षु चमनलाल

* * *

श्रीहरिमोहन मालवीय

अवमूल्यित संस्कृति : पुनर्मूल्यन एक समस्या

⊙ ⊙ ⊙

भारतीय विद्या और संस्कृतिकी केन्द्रस्थली काशीके अनन्त इतिहासका आधुनिक स्रजन हिन्दू विश्वविद्यालय है, जिसके भवनोंकी निर्माण-योजनामें काशीकी सारस्वत-परम्पराओंके बहुरंगी अक्षत हमें समर्पित हैं। इन भवनोंके निर्माणकी योजनामें हमें स्व० महामना मदनमोहनजी मालवीयकी कल्पना और योजकताके दर्शन होते हैं। महामना मालवीयजीकी जीवन्त आकांक्षाओंकी पूर्तिमें उन्हींके समान भारतीयताके प्रति समर्पित सेठ जुगलकिशोरजी बिरलाका भी स्मरण विशेषरूपमें विश्वविद्यालयके विश्वनाथ मन्दिरके भव्य आकारको देखकर हो जाता है। महामनाकी दिव्यदृष्टिमें ज्ञान विज्ञानके आगार विश्वविद्यालयके केन्द्रमें शिवालयके निर्माणका जो लक्ष्य था, उसे मूर्तरूप देनेमें स्व० बिरलाजीका अप्रतिम योगदान था और उनकी निष्ठाके फलस्वरूप वह देवालय आज विश्वका आकर्षण केन्द्र बना हुआ है। विश्वविद्यालयके मन्दिरका ही नहीं, अपितु देश-विदेशमें निर्मित मन्दिरों, मठोंका मोहक भारतीय-स्थापत्य निश्चय ही प्रेक्षकको भारतकी अभिनव साँस्कृतिक चेतनासे अभिभूत करता है। आजकी वैज्ञानिक और प्राविधिक दुनियामें रहते हुए भी वैज्ञानिक उपकरणोंकी संघटना द्वारा भारतीयताके उपार्जनका यह अभियान अपनेमें अनोखा है। वह दृष्टि जिससे अभिप्रेरित होकर इन विशाल भवनोंका निर्माण हुआ था, वह भारतीयताके प्रति आस्था और आराधना थी। आधुनिक युगकी मरीचिकासे आक्रान्त भारतीय बौद्धिक समुदाय पश्चिमके अन्धानुकरणको प्रगतिकी संज्ञा देता है और भारतीय संस्कार परम्परा एवं व्यवस्थाको वह हेय दृष्टिसे देखता है। भारतीयताकी इस उपेक्षा प्रवृत्तिके पीछे एक ही कारण है : वह यह कि सुधारवादी आन्दोलनोंकी सुधार योजनाएँ तो क्रियान्वित नहीं हुईं, अपितु समाज और संस्कृतिके जिन गलित व्रणोंकी ओर जनताका ध्यान आकृष्ट किया गया, वे ही व्रण स्वातन्त्र्योत्तर भारतके बुद्धिजीवियोंके सामने उजागर हुए और भारतीयताकी उपलब्धि मूलक व्यवस्थाओं और परम्पराओंकी उपेक्षा होती गई। फलस्वरूप स्वतन्त्र भारतमें भारतीयताका जो रूप और निखरना चाहिए था, वह न निखर सका और निरन्तर पश्चिमी आचार-विचार और संस्कार राष्ट्रको अभिभूत करते हुए चले गए।

भारतीय चिन्तकोंका बहुत बड़ा वर्ग गान्धीजीके भारतीयकरणके आन्दोलनके साथ था, किन्तु गान्धीजीके अवसानके बाद भारतीयता और भारतीय प्रकृतिको परखनेका अवकाश जगमगाते हुए भारतीय राजनीतिके नक्षत्रोंके पास नहीं था, फलस्वरूप सर्वत्र भारतीयताके प्रति उदासीनता बढ़ी और देशकी साँस्कृतिक निष्ठाका प्रतिफलन जिस रूपमें होना चाहिए था, वह नहीं हुआ। हमने पश्चिमके अन्तरिक्षयानोंकी उड़ानसे अपनेको अभिभूत किया और वहाँके विज्ञानकी महिमासे मोहग्रस्त हुए, जिससे देशकी वैज्ञानिक प्रगतिके उपकरण भारतीय प्रतिमा, परिस्थिति और साधनसे नहीं जुट सके, जिसका फल है कि भारतका विज्ञान भी अपनी प्रकृति

* * *

और अस्मिता नहीं बना पाया और हमारे देशकी विपुल धनराशि पश्चिमी पद्धतिके वैज्ञानिक-परीक्षणोंमें नष्ट होती गयी और भारत विज्ञानकी दौड़में पिछड़ता ही चला गया। यहाँ तक कि एक विदेशी विशेषज्ञको भी कहना पड़ा : "भारतने सम्यक् वैज्ञानिक प्रगति नहीं की है और भारतका अधिकांश वैज्ञानिक अनुसन्धान देश-कालकी समस्याओं और परिस्थितियोंके सापेक्ष सम्पन्न नहीं हुआ है। उसकी रूपरेखा और रचनाकी फलश्रुति इतनी भी नहीं हो पाई है कि उसका आधार ग्रहण करके भारतकी मौलिक समस्याओंका निराकरण किया जा सके और भारतीय आयोजनोंका पूरक उन्हें बनाया जा सके।"

जबकि देशका अर्थतन्त्र विशृंखलित और अस्त-व्यस्त हो चुका है, तब हम भारतकी प्रकृति और समस्याओंके सन्दर्भमें वैज्ञानिक अनुसन्धानकी आयोजनाकी बात समझ पाए हैं।

भारतीयताके प्रति उपेक्षाकी हमारी दृष्टिका सामान्य कारण यह है कि हमने अपने देशकी उपलब्धियोंका सम्यक् आकलन नहीं किया है। हम विश्वकी चकाचौंधमें आर्थिक कारणोंसे अपने देशको 'विकासशील' समझ रहे हैं। हम यह भी नहीं समझ पा रहे हैं कि आर्थिक आधार पर आरोपित 'विकासशील' विशेषण हमको साँस्कृतिक रूपमें भी 'विकासशील' होनेका प्रमाण देता है और इसी कारण आज तक पश्चिमी संसारके लोक-मानसमें जो चित्र भारतका बना हुआ है; वह भूखे, अर्धनग्न-मानवों, जादू-टोने वालों, नागा-साधुओं, शेर और सर्पोंके देशका है। यह चित्र ही क्यों उभरकर विदेशोंमें सम्मुख आया, जबकि विकसित राष्ट्र निरन्तर प्राच्य विद्याओं के साथ-साथ भारत-विद्या (इण्डोलॉजी)का सतत अध्ययन कर रहे हैं। इसका एकमेव कारण यही है कि हमने पूरे मनसे अपने देशको 'विकासशील' मान लिया है और हम अपनी संस्कृतिको प्रतिगामी, पिछड़ी हुई और नवयुगके सन्दर्भोंसे कटी हुई समझते हैं। उसका कोई प्रभाव आजके सन्दर्भमें हो सकता है, वह विश्वकी भूमिकामें कहीं टिक भी सकती है, इस पर हमारा कोई विश्वास ही नहीं है। पश्चिमी भौतिक समृद्धिकी ओरसे हम अपनी साँस्कृतिक उपलब्धियोंको झुठलाते रहे हैं, जिसके कारण पश्चिमी दृष्टिसे ही बहुत अंशोंमें हम भारतीयताका अध्ययन करते हैं। इस बातके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि हम भारतकी उपलब्धिमूलक वस्तुओंको तभी स्वीकार करते हैं, जब कि पश्चिम उनसे अभिभूत हो चुकता है।

पिछले दो दशकोंमें भारतके फिल्मी संगीतकी दिशा पश्चिमी धुनोंकी ओर ऐसी मुड़ी थी कि लगने लगा भारतका संगीत इस अन्धड़में क्षीण पड़ जायगा। भारतीय-नृत्य शैलियोंका स्थान भोंड़े अनुकरणने ले लिया और भारतीय वाद्य और राग-रागिनियोंके स्थान पर पश्चिमी वाद्य, स्वर लहरी और वृन्दवादन छाते गए, किन्तु जब रविशंकरके सितार और बिसमिल्ला खाँकी शहनाईके स्वरसे पश्चिमी जगत् पुलकित हुआ; तब लगा कि हमारा संगीत भी किसी कामका है। बीटल (गोब्यरैला) गायकोंने 'जॉज़'में जब भारतीय धुनोंको और भी महत्व दिया, तब हमें लगा कि इस संगीतमें तो अद्भुत शक्ति है और यही नहीं जब बीटिलोंकी टोली रविशंकरकी शिष्य बनी; तब हमें संगीतके क्षेत्रमें भारतकी उपलब्धिके दर्शन हुए। क्या भारतीय संगीत पश्चिमके बहशी, आवारा युवकोंके संस्पर्शसे ही महिमामण्डित बनता है? इस प्रकारकी मनोवृत्तिका एकमेव कारण है कि हमने अपनी उपलब्धियोंको समेटने, समझने और परखनेकी कोई ललक ही नहीं उत्पन्न की है। क्योंकि हम भारतीयता और भारतीय-संस्कृतिको या तो पूज्य मानते हैं और दूर रखते हैं या उसे घटिया और अनुपलब्धयुक्त समझते हैं। संस्कृतिके प्रति इसी दृष्टिके कारण हमें अपने अतीत और वर्तमानके महत्वको जिस रूपमें समझना चाहिए, उसे न समझकर हम जीवनके हर कार्यक्षेत्रमें पश्चिमकी ओर देख रहे हैं। हम नकलची होते जा रहे हैं और हमारे इस अन्धानुकरणने हमें खलनायक बना डाला। अतएव हम विश्व-रंगमंच पर अपने वास्तविक रूपमें उतरनेसे हिचकिचा रहे हैं। जिस परम्परावादी संगीतसे भारतवर्ष अंग्रेजी अभिजात-वर्ग

* * *

नाक-भौं सिकोड़ता था, पश्चिमी जगत्‌में भारतीय संगीतकी प्रतिष्ठाके बाद इस वर्गकी आँख खुलनी चाहिए थीं, किन्तु इसकी कोई प्रतिक्रिया दृष्टिगोचर नहीं हो रही है।

भारतीय चित्रकला और स्थापत्य-कलाकी स्थिति नितान्त दयनीय है। अजन्ता, काँगड़ा, राजपूत और मुगल शैलियोंके सम्मिश्रणसे तथा बंगाली-संस्कारों और प्रवृत्तियोंसे संयोजित अवनीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा संवर्धित आधुनिक भारतीय चित्रकलाकी परवर्ती परम्परा जगनेन्द्रनाथ टैगोर, रवीन्द्रनाथ टैगोरके प्रभावके बाद जिस रूपमें पश्चिमीकलाकी अनुवर्त्तिनी बनी है, वह चिन्त्य है। समसामयिक चित्रकारोंने जिस 'मॉडर्न आर्ट'को स्थापित करनेके लिए सनक भरे प्रयोगोंको मान्यता दी है, उसीका परिणाम है कि कलाकारके लिए न सौन्दर्य-दृष्टिकी आवश्यकता है और न कला-अभ्यासकी।

पश्चिमके अस्तंगत कला सिद्धान्तों और अटपटे आन्दोलनोंके फलस्वरूप मूर्त और अमूर्त चित्रोंकी सृष्टि तो हो रही है, लेकिन उसमें भी भारतकी धरतीका निजत्व नहीं रह गया है। देशकालातीत चित्र मानकर हम इन कलाकृतियों पर गर्व भले ही कर लें, लेकिन विश्वचित्रकलाकी वीथिकामें सजाने योग्य कितने चित्र भारतमें पिछले दो दशकोंमें तैयार हुए? भारतीय चित्रकारोंका बहुत बड़ा वर्ग आज भी असफल और भोंड़े चित्रोंको सिद्धान्तके माध्यमसे व्याख्यायित और प्रचारित करना चाहता है। वह यह भूल गया है कि पेरिसकी उच्चतम कलाकी शिक्षा और तकनीकी योग्यता पानेके बाद अमृता शेरगिलको भारतीय समाजका अवलम्बन लेना पड़ा था और तभी उनकी कलाकी मौलिक अभिव्यक्तिसे संसारके चित्रकारोंकी दृष्टि उनकी ओर आकृष्ट हुई थी। अमृता शेरगिल या रोरिककी परम्परा, जिसने भारतीयताका अवलम्बन ग्रहण किया था, वह प्रायः लुप्त हो चुकी है। हुसेनकी कलाकृतियोंकी बहुआशंसाके वृत्तोंसे हम भले ही सन्तोष कर लें, लेकिन आजकी आधुनिक भारतीय कलाकी परम्परा भारतीय नहीं है; जबकि कलाके विविध आयाम प्रस्तुत करनेमें भारतीय चित्रकला सक्षम रही है; लेकिन समसामयिक कला परम्परासे कटकर पंगु ही बनी है। कलाके उपकरणों और तकनीकी माध्यमोंके स्तर पर मैं कलाकृतियोंके सृजनकी बात नहीं कहता। मेरा आशय उस रसबोध और रंजनसे है, जिससे अनुप्रेरित होकर भारतीय कलाकी विशाल परम्परा बन सकी थी। पश्चिमी चित्रकारोंकी निर्वसना नारीको विविध मूर्त और आमूर्त रूपों और बिम्बोंमें बाँधकर भारतीय कलाकार दिङ्मूढ़ ही हुए हैं। आज आवश्यकता है भारतीयताकी गहरी छाप छोड़नेवाली कलाकृतियोंका निजत्व स्थापित करनेकी। साथ ही भारतके कला प्रयासोंका ऐसे प्रौढ़, पुष्ट एवं परिमार्जित रूप बनानेकी, जिससे विश्वमें भारतीय कला और कलाकारोंकी विशेष स्थिति बन सके।

यन्त्रवत् ज्योमितीय आकृतियों वाले स्थापत्यसे वह वातावरण नहीं बनता, वह सौन्दर्य बोध नहीं होता; जो भारतकी आध्यात्मिक-चेतनासे मेल खाता हो। भारतके स्थापत्यकी महती परम्पराका दर्शन समकालीन भवनों और प्रशालाओंको देखकर नहीं होता, और यह भी जानकर दुःख होता है कि चण्डीगढ़ जैसे नगरके निर्माणके लिए भारतीय प्रतिभा अपर्याप्त थी और 'कार्बूजिए' जैसी फ्रान्सीसी स्थापत्य शिल्पकी आयोजनासे भारतमें नये नगरका निर्माण हुआ। हमारे मनमें कार्बूजिएकी कला और शिल्प-ज्ञानके प्रति कोई आक्रोश नहीं और न दुनियाकी किसी कलाके प्रति किसी प्रकारका विकर्षण ही है। लेकिन हम खोजना चाहते हैं उस कलाकारको, जो समसामयिक सन्दर्भोंके बीच अपनी प्रतिभासे वह कमाल दिखा सके, जिसे हम यह कह सकें कि यह हमारी संस्कृतिकी उपज है और हमारी विश्व-स्थापत्यको अर्पित यह भारतीय देन है। हम व्यामोह और पश्चिमी आकर्षणसे जब तक अपनेको मुक्त नहीं कर पायेंगे। हमारी कला प्रवृत्तियोंका विकास नहीं होगा और हम पश्चिमी यान्त्रिक जीवन और जगत्‌की धाराओंमें डूबते-उतराते रहेंगे। आवश्यकता है भारतीय स्थापत्यकी शैलीकी

* * *

दृष्टिसे नहीं, आत्माकी दृष्टिसे खजुराहो, भुवनेश्वर, भुगरा, जमसोत और कौशाम्बीसे जोड़नेकी। उनकी प्रेरक-सर्जक शक्तियोंको समझने, परखने और विज्ञापित करनेकी।

आजका तथाकथित प्रवुद्ध भारतीय चाहे भारतीय कला, संस्कृति और संगीतका भक्त भले ही हो, लेकिन उसकी दृष्टि भारतीय अध्यात्मके सम्बन्धमें स्पष्टतः उपेक्षाकी है। वह भारतीय अध्यात्मको जीवनसे पलायन करनेका मूढ़ग्राही मार्ग ही समझता है, इसीके विपरीत समाजका बहुत बड़ा वर्ग आस्थावादियोंका है। उनकी सुदृढ़ आस्था भारतीय दर्शन, देवी-देवता, धर्म-ग्रन्थों आदि पर अधिकांशतः अन्ध बन गयी है, जिसके कारण भारतीय अध्यात्मकी मूल प्रवृत्ति और उसकी गूढ़ताके सम्बन्धमें सम्यक् दृष्टिका उदय नहीं हो पा रहा है और हम अध्यात्मको सही परिप्रेक्ष्यमें वास्तविक जीवन-मूल्योंकी प्रेरक शक्तिके रूपमें देखनेसे कतराते रहे हैं। इसी विडम्बनाके कारण जो अध्यात्म भारतीय कला, संस्कृति, संगीत, स्थापत्य और समाज-व्यवस्थाकी प्रेरक और सर्जक शक्ति था, वही अध्यात्म निर्बुद्ध और जड़ अनुयायियोंके कारण उपेक्षित है। यह स्मरणीय है कि 'पाल ब्रुण्टन' जैसे विदेशीने आध्यात्मिक भारतके अनुसन्धानका महत् प्रयास किया था। इसी पंक्तिमें निवेदिता, ऐनी बेसेण्ट और श्री मांको भी रख सकते हैं। आज तो सारे पश्चिमी जगत्में भक्ति, तन्त्र, योग आदिके सम्बन्धमें जिज्ञासा बढ़ती जा रही है।

पश्चिमके भोगवादी समाजका बड़ा वर्ग भारतके अध्यात्मसे अपना उद्धार क्यों करना चाहता है और भारतीय समाज पश्चिमी जीवन पद्धतिके लिए क्यों उन्मुख हो रहा है? ये दोनों ही प्रश्न कुरेदते रहे हैं। वस्तुतः हमारी स्थिति आत्मविस्मृति की है, जिसके कारण हम अपनी संचित निधिकी ओर अभी दृष्टि भी नहीं घुमा रहे हैं, उन पर अपात्रों और जड़ लोगोंका प्रभुत्व है। प्रतिभाशाली व्यक्तियोंसे अध्यात्ममार्ग सूना होता जा रहा है और यही कारण है आज विभिन्न भारतीय सम्प्रदायों और दर्शन-पन्थोंके वास्तविक व्याख्याताओं और वैतालिकोंका अभाव होता जा रहा है। भारतीय धर्म-ग्रन्थों की सुरक्षा और उनके सम्यक् अध्ययनका भी कोई भाव देशके मठ-मन्दिरोंके अधिष्ठाताओंमें नहीं है, जिसके कारण मूल भारतीय सम्पदाका नित्य प्रति क्षय हो रहा है। जब कि भारतीय अध्यात्मको मूढ़ता, जड़ता और अनावश्यक आस्थाके वायुमण्डलसे निकाल कर समसामयिक यथार्थके सम्यक् सन्दर्भमें उसे समझने एवं घटित करनेकी आवश्यकता है। भारतीय अध्यात्मकी सर्वोत्तम शक्ति रही है, मानवको पूर्णताका आधान देनेमें। व्यष्टिका समष्टिमें समाधान और आनन्दानुभूतिका मार्ग प्रशस्त करना उसका वास्तविक साध्य है। इसके लिए विभिन्न पंथ और माध्यम भारतीय अध्यात्मने दिये हैं। इस शक्तिके सहारे आजतक भारतीय समाज उन बुराइयों और विकृतियोंसे बचता रहा है, जिसके कारण पश्चिमी समाज लक्ष्य-भ्रष्ट होकर अपराध, हिंसा और इन्द्रिय-लिप्सासे आक्रान्त होता रहा है।

भौतिक समृद्धिकी चरमावस्था पर पहुँचनेके बाद भी पश्चिम अनेक संकीर्णताओं और विकृतियोंसे ग्रस्त है और वहाँ विकृष्ट यौन-उच्छृंखलता, हिंसा, आत्मघात और मादक उपकरणोंके सेवनका भाव बढ़ता जा रहा है, साथ ही अराजकता, अनुशासनहीनता, कामुकता और नग्नता विकृत रूप धारण कर रही है। वहाँ बीटिल, बीटनिक और हैपनर्सकी मनमानीके वृत्तोंसे अब यह लगने लगा है कि पश्चिमकी भौतिक समृद्धिको अभी तक सही सहारा नहीं मिल सका है। पश्चिमका युवा-समुदाय एल० एस० डी०, गांजा, अफीम, शराब आदिके माध्यमसे अतीन्द्रिय आनन्द पानेके लिए उतावला है। इस उतावले वर्गके कुछ लोगोंने भारतीय अध्यात्मकी शरणमें जाकर आनन्दकी अनुभूति पानेके लिए साधनाका मार्ग भी अपना लिया है, लेकिन वे इस मार्ग पर कब तक अग्रसर होते रहेंगे, कहा नहीं जा सकता।

* * *

पश्चिमकी नई पीढ़ीको भारतीय अध्यात्मके प्रति आकृष्ट होते देखकर हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। वस्तुतः अध्यात्म विद्याका चरम विकास भारतमें हुआ था, विशाल देश होनेके नाते विविध दर्शन पक्षोंका अनुसन्धान और निरूपण भारतीय चिन्तकोंने किया था। उस चिन्तनके मूल स्वरको समझनेकी पुनः आवश्यकता है। हम यह भ्रमवश ही समझते हैं कि भौतिक समृद्धिसे भारतीय अध्यात्मका विरोध है, जब कि राजर्षि जनक अध्यात्म साधकके रूपमें आदर्श माने गए थे। साधना और योग, समृद्धि और उसके प्रति विरक्ति सभीके सम्बन्धमें कुछ सन्देश और संकेत भारतीय-संस्कृति और परम्परामें रहे हैं, उनका ही सहारा लेकर हमारा यह समाज अखण्ड परम्परा लेकर जीवित रहा है। यहाँके वायुमण्डलसे सहिष्णुता, सद्भावना, दया, त्याग आदि गुणोंका सहज ही विकास व्यक्तिमें कम या अधिक मात्रामें होता रहा है और जिसके कारण आज भी सारे संसारकी तुलनामें इस देशमें अपराध, हिंसा और अशान्ति कम है। भारतमें भूखकी ज्वालामें तड़पते हुए भी मानव सन्तोषके घूट क्यों पी रहा है? इस आर्थिक अभावके कारण भारतमें बेचैनी अवश्य है, किन्तु विद्रोहका ज्वार क्यों नहीं उठ रहा है? इस सन्तोषकी स्थिति और सहनशक्तिका सम्बल है अध्यात्म-सिक्त भारतीय समाज, जीवन, जिसमें इन गुणोंका अभ्यास अनन्तकालसे होता आया है।

अपनी भारतीय-संस्कृतिको अवमूल्यित रूपमें आँकनेके कारण ही विश्वमें भारत उपेक्षित, बुभुक्षित और परोपजीवी राष्ट्र समझा जा रहा है। दुनियाके सबसे बड़े प्रजातन्त्रका यह रूप हमारे मन को कचोटता है। जन-बल एवं श्रेष्ठ परम्पराके संवाहकोंको इससे वेदना और ग्लानि होनी चाहिए। कोई भी स्वाभिमानी और सशक्त राष्ट्र परानुकरण और आत्महीनताके चक्रमें फँसना नहीं चाहेगा। विगत एक दशक पूर्व फ्रान्स राजनैतिक स्थिरताका शिकार रहा। वहाँका समाज आर्थिक और राजनैतिक दृष्टिसे पिछड़ चुका था। किन्तु विगत वर्षोंमें देगॉलके नेतृत्वमें फ्रान्सने अपनी मुद्रा 'फ्रैंक'की धाक जमानेके बाद सारे संसारमें फ्रान्सीसी कला, साहित्य और संस्कृतिके प्रसारके लिए अभियान चलाया है और वह छोटासा देश अपनी उपलब्धियोंको उजागर करना चाहता है। फ्रान्सकी सर्जनात्मक संस्कृतिको देगॉलका कुशल राजनीतिक नेतृत्व और देशकी समृद्धिका सुदृढ़ आर्थिक आधार मिल गया है, जिसके कारण आज वह देश प्रत्येक मोर्चे पर जमा हुआ है।

विशिष्ट प्रकृतिके साथ-साथ प्रत्येक देशकी कुछ परम्पराएँ और उपलब्धियाँ होती हैं। ऐसी शक्तियोंके सहारे देश सही दिशाओंमें आगे बढ़ता है। उसकी ऐतिहासिक भूलें उसे सचेत करती हैं, उसकी उज्ज्वल परम्पराओंसे संपृक्त और संयुक्त भावी पीढ़ी नये गन्तव्य और दिशाकी ओर अभियान करती है। जिस राष्ट्रका निजी अहम् और प्राण नहीं होता, वह देश मृत ही कहा जाता है। हमें भारतको जीवन्त परम्परा-वाले राष्ट्रके रूपमें विश्व-रंगमंच पर स्थापित करना है। अतएव इसके लिए भारतकी उपलब्धियोंको कम आँकनेकी ओछी प्रवृत्तिसे बचकर उसका सही मूल्यांकन करते रहना पड़ेगा।

●

* * *

श्रीकृष्ण जैतली

वैदिक-सभ्यताका विकसित रूप : सिन्धु-सभ्यता

⊙ ⊙ ⊙

मोहिनजोदड़ो अर्थात् सिन्धु-सभ्यताका अध्ययन करनेसे हमें मालूम होता है कि वह एक व्यापारी सभ्यता थी।[1] वैदिक देवासुर-संग्राममें एक व्यापार करनेवाली जाति जिसे 'पणि' कहा गया है, असुरोंसे मिल जाती है।[2] ये पणि ही सिन्धुके मूल निवासी थे।[3] पणि और वणिक् एक ही हैं, ऐसा निरुक्तकार कहता है।[4] ये पणि फिनिशियनोंके मूल पुरुष कहे जाते हैं।[5] सिन्धुके व्यापारी विश्वमें विख्यात रहे हैं। व्यापारी प्रायः देश-देशान्तरों में पर्यटन करते हुए अपनी सभ्यता (धर्म, कर्म, आचार-विचार) आदिका प्रसार तथा आदान-प्रदान करते रहते हैं, यह स्वाभाविक बात है। इसलिए सिन्धु-सभ्यताका प्राचीन बेबी-लोनिया, असीरिया और मीडिया तक फैल जाना कोई आश्चर्यजनक नहीं। यही कारण है कि सुमेर और सिन्धु-सभ्यतामें अनेक समानताएँ देखी जाती हैं।[6] कारण सुमेर लोग भी व्यापारी थे। इतना ही नहीं, इनका परस्पर जातिगत सम्बन्ध भी था। इनकी मुखाकृति, वर्ण, लम्बा और ऊँची नाक आदि यह बता रहा है कि ये पौर्वात्य आर्यवंशके हैं। कोई इन्हें द्रविड़ कहते हैं और भारतसे ही बाहर गये, ऐसा मानते हैं। इसकी पुष्टिमें वे बिलोचिस्तानमें बसने वाली ब्राहुई जातिका उदाहरण देते हैं।

द्रविड़ कौन?

प्राग्द्रविड़ कालकी असुर नामक जाति अभी तक राँचीके जंगलोंमें पायी जाती है।[7] मुण्डा परम्पराओंमें भी असुर नाम वर्तमान है।[8] शतपथ ब्राह्मणसे ज्ञात होता है कि कालान्तरमें ये लोग भारतके पूर्वीय प्रान्तोंमें बस गये थे, किन्तु इनका केन्द्र सिन्धु नदीके मुहाने पर ही रहा।[9] भागवतके मत्स्यावतार कथाके प्रसंगमें मनुको

---

१. 'मोहिनजोदड़ो' तथा सिन्धु-सभ्यता एक व्यापारी सभ्यता थी।" मो० द०, पृ० ३४।

२. प्रा० आ०, पृ० १८१, पं० १०।

३. मो० द०, पृ० ३४, पं० २।

४. 'पणिर्वणिग्भवति' : निरु० नै० अ० २, खं० १८।

५. श्लो० गु० दे०, पृष्ठ ५९की ३१वीं पंक्ति, पृष्ठ ६०की २०वीं पंक्ति।

६. श्लो० गु० दे०, पृष्ठ ६८, पंक्ति ३०; म० चि० ज०, वर्ष १९, अं० १; पृष्ठ ७, पंक्ति १३।

७. ८. ९. मो० द०, पृष्ठ ३३, पं० १।

* * *

'द्रविड़ेश्वर' कहा है,[१] जिससे यह सम्पूर्ण मानव-सृष्टि उत्पन्न हुई है। इसीलिए हमारा विचार है कि प्राग्द्रविड़ जातिको काला रंग और चिपटी नाकवाला न मानना चाहिए, जैसा लोग समझ बैठे हैं। इनकी स्थापत्य और ललित कला देखकर हम इन्हें अनार्य या दस्यु नहीं कह सकते, कारण वेदमें दस्युको अनास (अल्प नासा वाला) अर्थात् चिपटी नाकवाला कहा गया है।[२] परन्तु यह आर्योंकी असुर नामकी एक शाखा है, जो वादमें परस्पर कुछ सैद्धान्तिक मतभेद हो जाने पर देवासुर-संग्रामका रूप धारण कर लेती है। वास्तवमें देव और असुर एक ही पिताके पुत्र थे।[३]

असुर और भृगुवंश

जब देव और असुर एक साथ रहते थे तथा एक ही धर्म मानते थे, इन सबका राजा वरुण था।[४] इसका पुत्र भृगु था,[५] जिससे भृगुवंश चला। वरुणका प्रचेता भी नाम है।[६] इसलिए इनके वंशजोंको प्राचेतस भी कहते हैं।[७] भृगुओंका कुल ऋषियोंके सबसे पुराने घरानोंमेंसे है। इस वंशका उल्लेख ऋग्वेदमें अनेक स्थलों पर आया है।[८] इसलिए वेदोंमें इनकी गणना पितरोंमें की गयी है।[९] ये भार्गव प्राचीनकालमें महान् शक्तिशाली थे।[१०] इनमेंसे कवि उशना देव और असुर दोनोंका पुरोहित था।[११] इसने पहले इन्द्रको वज्र दिया।[१२] वादमें साम्प्रदायिक-कलह छिड़ जाने पर शुक्राचार्य असुरोंके और वृहस्पति देवोंके पुरोहित हुए।[१३] भृगुवंशका मूल पुरुष वरुण होनेसे भार्गवोंका वरुण-सम्प्रदायका पृष्ठपोषक होना स्वाभाविक ही है। भृगुके ब्रह्माका मानस पुत्र हो जाने पर भी उसका वारुणि और प्राचेतस नाम ज्यों-का-त्यों बना ही रहा।[१४]

भार्गव और अग्नि सम्प्रदाय

भार्गवोंका अग्निसे घनिष्ठ और पुराना सम्वन्ध है। अग्निको सबसे पूर्व इन्होंने ही जन्म दिया तथा पहले

---

१. भागवत-स्कं० ८, अ० २४, श्लोक १३।
२. ऋ० ५।२९।१०, ऋ० २।२०।७।
३. ता०—१८।१।२॥ शत० १४।४।१।११।
४. ऋग्वेद २।२७।१०।
४. शत० ६।१।११ तथा तैत्त उ० १।३।३।११।
६. अमरकोष, का - १।
७. कविमिव प्रचेतसम, ऋ० ८।८४।२, यहाँ कवि भृगु का दूसरा नाम है, देखो ब्राह्मणपुराण, पा० ३।१।२१—३६।
८. ऋ० १।६, ऋ० १।१२७।७, ऋ० १।१४३।४, ऋ० १।४।२, ऋ० ३।२।४, ऋ० ३।५।१०, ऋ० ४।७।१, ऋ० ७।१८।६, ऋ० ८।३।९।
९. ऋ० १०।१४।६, ऋ० १०।१५।८।
१०. ग्लो० गु० दे०, पृ० ५०, पं० ३।
११. १२. ऋ० १।१२१।१२।
१३. पंच० ब्रा०, ५।२०, जैं० ब्रा०, १।१२५।
१४. ना० प्र० प०, वर्ष ४६, अं० १; पृ० ५, पं० १७।

* * *

मनुष्योंको दिया[1]। यज्ञोंमें अग्नि स्थापना करना इनका मुख्य कार्य था।[2] इसलिए इस वंशके विशिष्ट व्यक्ति भृगु, भृग्वाय, अंगिरा, वसिष्ठ, बृहस्पति आदिके नाम पर आरोपित हुए।[3] प्रांजरप्रष्टानुयायि ईरानियोंमें भी अग्नि उपासना थी।[4] इसका कारण यह है कि ईरानी भी अर्यवन्, आर्योंकी एक शाखा हैं।[5] ईरानियोंका 'अहुर' 'अजदअ' और वैदिक 'वरुण' एवं 'अग्नि' एक ही हैं। ऋग्वेदमें अग्निको 'असुरो-महो-दिवः' कहा गया है[6] जो अहुर-वज-दअका मूल है। प्राचीन कैल्डियामें यही असुर उपासना 'अस्सरदआजश' नामसे होती थी।[7] सुमेरियाका ई-ओस भी असुरका विकृत रूप है।[8] शब्द-विज्ञानकी दृष्टिसे यदि विचार किया जाय, तब तो 'अल्लाह'का मूल भी 'असुर' ही होता है, जैसे असुर<अहुर<अरह<अलह<अल्लाह। प्रारम्भमें असुर शब्द प्राणदाता एवं प्राण रक्षक इस अर्थमें अग्नि, इन्द्र, वरुण और सूर्य आदिका विशेष हो कर प्रयुक्त हुआ है।[9] तात्पर्य यह कि 'असुर' 'अहुर' उपासना अर्थात् अग्नि-उपासना प्राचीन वैदिक-कालसे आरम्भ होती है, जिसके प्रचारक और प्रसारक भार्गव थे।

पणि और बलोच

हम ऊपर कह आये हैं कि पणि आर्योंकी एक शाखा है और देवासुर-संग्राममें असुरोंसे (इस शाखा वाले आर्योंसे) मिल जाती है।[10] इनका राजा 'बल' असुर था।[11] 'एक दिन ये पणि देवोंकी गौएँ पकड़ कर पहाड़ोंकी कन्दराओंमें जा छिपाते हैं, तब इन्द्र इन गायोंका पता लगानेके लिए 'सरमा' नामकी स्त्री-दूती (जासूस) को भेजता है और वह बलके प्रान्तमें गौओंको ढूंढ़ निकालती है।' यह सम्पूर्ण कथा ऋग्वेदके मं० १० और सू० १०८में दी है, जहाँ पणि और सरमाका सम्वाद है। इससे तत्कालीन राजनीतिका भी पता लग जाता है और यह भी मालूम होता है कि वैदिक कालमें स्त्रियाँ भी जासूसीका काम करती थीं।

अब हमें यह देखना है कि वह कौन-सा पहाड़ी प्रदेश है, जहाँ गौएँ छिपायी गयी थीं।

वर्तमान बलोचिस्तानकी लसबेला रियासतमें 'बाला बन्दर' या गलावारी कोट' नामसे एक ध्वस्त स्थान है।[12] सायणाचार्य पणियोंके नेता बल असुर के नगरका नाम 'बल-पुर' लिखता है।[13] और भी जब हम

---

१. ऋग्वेद १।१४३।४, वही २।४।२, वही १।३८।६; अ० वे० १।५८।६, अथर्ववेद ८।२३।१७।
२. मैं० सं० १।४।१, तै० सं० ४।६।५।२।
३. ऋ० वे० १।१।६, ऋ० वे० १।३१।१, ऋ० १।३१।१७, ऋ० १।७५।२ आदि।
४. ग्लो० गु० दे०, पृष्ठ ५७, पं० २५।
५. ग्लो० गु० दे०, पृष्ठ ५७, पं० १८।
६. ऋ० २।१।४ तथा ऋ० २।१।६।
७. - ८. प्रा० आ० पृ०, १९२, पं० १।
९. ऋ० १।२४।१४, ऋ० १।५४।२, ऋ० ४।४२।२, ऋ० ६।३६।१।
१०. देखें इस निबन्ध में ही।
११. ऋ० मं० १०। सू० १०८ पर सायण भाष्य।
१२. व० यु० त,० पृष्ठ ८८, पं० २४।
१३. ऋ० १०।१०८, सूक्तका सायण भाष्य। 'पुर' शब्दका 'दुर्ग' वाचक है, ऐसा प्रो० मैकडानल और प्रो० कीथ अपने 'वैदिक इण्डिया'में लिखते हैं।

* * *

इस प्रान्तके केचकी ओर बढ़ते हैं, तब केच और पंजगीरके बीचमें एक बलीदा नगर मिलता है।[1] सम्भव है यह **'सबल-द्वार'**का परिवर्तित रूप हो! एवं यहीं राजा बलने इन्द्रकी गौओंको छिपाया हो। ठीक केचके नीचे दक्षिणमें समुद्र तटपर **'गुवा-दर'** नामका प्रदेश है[2], जो **'गो-द्वार'**का ही रूप मालूम होता है। लसबेललीके उत्तरमें मुन्दराणी गाँवके समीप पर्वतमें अनेक कन्दराएँ हैं।[3] यहाँ भी **'गुन्द-राणी'** स्पष्ट **'गो द्वाराणि'** का रूप है। यूनानी भूगोलवेत्ता इस प्रदेशका नाम **गिद्रोसिया** लिखते हैं।[4] यह शब्द भी 'गि=गु=गो=, द्रो=द्वरो=द्वार, सिया=शिला' अर्थात् **'गोद्वार शिला'**का रूप प्रतीत होता है। गस्ताश्यके समय इस प्रदेशका नाम **'कन्दा बील'**[5] था, जो कि 'कन्=कड़=गौ, दा=दार, बील=विल' ('गो-द्वार-बिल')का ही रूप होता है। इस प्रकार इस प्रदेश-के सम्पूर्ण प्राचीन नाम और खण्डहर **'गोद्वार-बिल'**का ही बोध कराते हैं। गौएँ एक जगह नहीं छिपायी गयी होंगी, किन्तु भिन्न-भिन्न स्थानोंमें रखी गयी होंगी। इसलिए अनेक स्थलोंको यह नाम दिया गया है। यहाँका **'खीर थर'** पर्वत भी गौओंकी बहुतायतकी स्मृति दिलाता है, कारण यहाँ खीर (क्षीर) बहुत होता होगा। स्कन्द पुराणके हिंगुलाद्रि खण्डमें भी इस स्थलको 'क्षीर-क्षेत्र' कहा गया है।[6] प्रसिद्ध अरब वासी भूगोलवेत्ता भी 'इब्न-हकुल' बिलोचिस्तानके लसबेलाका नाम **'अर्याबिल'** लिखता है।[7] हमारे लिए यह शब्द विशेष महत्व रखता है। ऋग्वेदमें बैल-युद्धका वर्णन है, जिसमें मरे हुए शत्रुओंके शवोंको गाड़नेके स्थानको **'अर्मक'** कहा गया है।[8] और जिस प्रदेशमें वे गाड़े गए हैं उसको **बैल-स्थान** कहा गया है।[9] यहाँ यह ध्यान रहे कि **'बैल'** शब्द बिलसे बना है। इसलिए ऊपर आए हुए शब्दोंसे भी ठीक संगति बैठ जाती है। इस प्रकार वैदिक **'अर्मक बैल स्थान'**का लघु रूप **'आर्या बील स्थान'** हो सकता है। वेदमें जहाँ **'महा बैल स्थान'** कहा गया है, वहाँ इसका अर्थ **बेबीलोनिया** जानना चाहिए, कारण यह कि वह बल असुरकी राजधानी थी और यहीं वह 'मघवा' (इन्द्र)से मारा गया एवं गाड़ा गया, इसलिए इस प्रदेशको महा विशेषण दिया गया। बैल स्थानसे केवल वर्तमान बलोचिस्तान जानना चाहिए, जो इनका उपनिवेश था। यहाँ केवल सैनिकोंके शव गाड़े गए थे, जिनको पणि कहा गया है। हम अभी कह आये हैं कि इनके शव गाड़नेके स्थानको **'अर्मक'** कहा गया है, जो आर्मीनियन-जातिका मूल शब्द है। ये आर्मीनियन अब आर्य-क्षत्रिय जातिकी शाखा सिद्ध हो रहे हैं।[10] इस प्रकार 'पणि'की फिनिशियन् और आर्मीनियन यह दो शाखाएँ हमें मिल जाती हैं।

इस वैदिक बैल युद्धका भाव तब और भी स्पष्ट हो जाता है, जब बेबीलोनियासे प्राप्त कील लिपि वाले इष्टिका लेख हम पढ़ते हैं।[11] जिसमें अबल तथा बलूव-अन्नपदके युद्धका वर्णन आया है।[12] सुमेरियन भाषामें

---

१. ब० यु० त० में बलोचिस्तान का 'मानचित्र'।
२. वही।
३. वही, पृ० ५, पं० २२।
४. ५. वही, पृष्ठ ८९, पं० १६-१९।
६. क्षेत्रक्षीयमिवे वदा।' स्क० पु० हिं० खं० फ० (ब्राह्मणोत्पत्ति-कर्त्त०से)।
७. ब० यु० त०, पृष्ठ ९०, पं० २८।
८-९. ऋ० १।१३३।३।
१०. ऋ० १।१३३।१ पर सायण भाष्य।
११. दि स्टोरी ऑफ दि नेशन सिरीज़ एसीरिया, पृ० २०५।
१२. ना० प्र० प०, भा० १६, अं० १ (ज० ध० इ०)।

* * *

अवलका अर्थ राजा है। मैसोपोटामियामें ठीक सूसा (सुषां-वरुणकी नगरी) के पास 'अवन्' नामका नगर है।[1] वहाँके राजा 'महअवन' कहलाते थे।[2] जो मघवनका ही एक रूप है। ऋग्वेदमें इस युद्ध-वर्णनके प्रसंगमें इन्द्रका एक विशेषण 'अवर्यवल' दिया है।[3] जो 'अवत् यह'का रूप है। एवं 'वलूल' किसी व्यक्ति विशिष्ट राजाका नाम है तथा 'अन्नपद' उसके कुलका।[4] यहाँ अन्न शब्द भी सुमेरियन है, जिसका अर्थ है श्रेष्ठ।[5] निरुक्तमें 'इन' शब्द ऐश्वर्यवान्के लिए आया[6] है, जिसका पर्यायी अर्थ दिया है।[7] इसीसे आर्य शब्द सिद्ध होता है। इस प्रकार सुमेरियन 'अन्न' और वैदिक 'इन' दोनों ही समानार्थक हैं और आर्यका बोध कराते हैं। सुमेरियन 'वलूल', वैदिक 'वटूर' अरबी 'बलूस' (अरब वाले तथा ईरानी : वलूचको वलुस कहते हैं)[8] और वर्तमान 'बलूच' सब अभिन्नार्थक हैं एवं ये सब एक ही 'बल'के विकसित रूप हैं, जो पणियोंका नेता है।

इस प्रकार इस प्रान्तके भौगोलिक प्रदेशोंकी संगति वैदिक कथाओंके साथ ठीक बैठ जाती है, जिससे हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि यह वही प्राचीन स्थान है, जो पणियोंके राजा बलका उपनिवेश था तथा वहाँ इन्द्रकी गौएँ छिपायी गयीं थीं। इसलिए इस प्रदेशका 'बैल-स्थान' (गौवोंके छिपानेवाले बिलसे) 'बलस्थान' (बलराजासे) 'बलूस स्थान', 'बलूच स्थान' और 'बलोच स्थान' नाम पड़ा। वैदिक पश्चिम भारतमें आर्य-संस्कृतिके प्रसारका वह मुख्य द्वार था।

प्रागैतिहासिक भृगु-कच्छ

इस पहाड़ी प्रदेशमें एक महत्वपूर्ण स्थान है, जिसकी ओर मैं विद्वानोंका ध्यान खींचना चाहता हूँ। वर्तमान खीर-थड़ पर्वत श्रेणीमें सिन्धुकी सीमा पर एक उपत्यका है, जिसको कच्छी कहा जाता है।[9] ठीक इसके साथ सटा हुआ 'भाग' नगर है।[10] यदि हम इन दोनों शब्दोंको मिलाकर पढ़ें तो 'भाग कच्छी' रूप बनता है। भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे 'भाग' शब्द भार्गव या भृगुका और 'कच्छी' शब्द 'कच्छ'का परिवर्तित रूप है। इसका संयुक्त पाठ 'भार्गव कच्छ' या 'भृगु कच्छ' होता है। हम ऊपर कह आये हैं कि बलोचिस्तानके साथ पणियों-का विशिष्ट सम्बन्ध है और ये असुर आर्योंकी एक शाखा हैं। इसलिए असुरोंके पुरोहित भार्गवोंका भी उन प्रदेशोंसे सम्बन्ध होना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार यह पर्वत प्रदेश भार्गवोंका विशिष्ट स्थान होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। आज भी यहाँ यज्ञ-भूमियोंके अनेक चिह्न मिलते हैं, जिनको यहाँके निवासी आतिशपरस्तो (अग्नि-उपासकों) के स्थान कहते हैं।[11] इसलिए प्रागैतिहासिक 'भृगु कच्छ'का यहाँ होना कोई असम्भव नहीं।

इस विषयका एक और भी प्रमाण दिया जा सकता है। जैसे 'कच्छ' शब्दका निर्वचन निरुक्तमें 'कं उदकं तेन छाद्यते' ऐसा दिया है।[12] डॉ० अविनाशचन्द्र दास प्रभृति विद्वानोंका मत है कि आजसे २५,०००

---

१. २. ३. ना० प्र० प०, भा० १६, अं० १ (ज० ध० इ०)।
४. ज० ध० इ०, ना० प्र० प०, भा० १६, अंक १।
५. वही।
६-७. निरु० अ० ३। खं० ११॥ ६८ पृष्ठ १।१३३।२।
८-९. ब० यु० त०, पृ० १५, पं० २५।
१०. ब० यु० त०, पृ० १५, पं० २५।
११. ब० यु० त०, पृ० ५, पं० २२।
१२. निरु०, अ० ४। खं० १८, २।

वर्ष पूर्व वर्तमान राजपूताना और सिन्धका बहुतसा अंश समुद्रके गर्भ में था।[1] अतः वर्तमान सिन्धुके ऊपर लहराने वाले समुद्रके पास वैदिककालीन भृगु-कच्छका बलोचिस्तानमें होना ही सुसंगत है। गुजरातमें भृगु कच्छ तो पौराणिक कालका है। यह स्वाभाविक है कि विजेता लोग जब अपने स्थानसे आगे बढ़कर जहाँ-तहाँ जाते हैं, वहाँ-वहाँ वे अपनी परम प्रिय वस्तुओंके नाम स्मारक रूपमें रखते जाते हैं, विश्वमें इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं।

यदि हम भृगुकच्छको खीर-थड़ पर्वत श्रेणीमें ढूँढ़ निकालते हैं, तब प्रह्लाद-पौत्र बलि और वामनकी प्रसिद्ध कथाका सूत्र भी यहींसे मिल जाना चाहिए। परन्तु जैसे महाभारत और पुराणोंमें भारतके नामके साथ दौष्यन्ति भरत, जड़ भरत आदि अनेक भरतोंका सम्बन्ध जोड़ा गया है, वैसे यहाँ भी बलोचिस्तानके बलके साथ सम्बन्ध रखनेवाले अनेक व्यक्ति मिल रहे हैं, फिर भी वे असंगत नहीं ठहरते। इनमेंसे एक प्रह्लाद-पौत्र राजा बलि है। जब यह असुर वंशमें उत्पन्न होकर भी आसुरी-वृत्ति छोड़ कर दैवी सम्पदामें रह कर निष्काम दान यज्ञ आदि करता है, तब इसकी कीर्ति पताका सम्पूर्ण विश्वके ऊपर फहराने लगती है। इस सुअवसरको हाथसे जाने न देनेके लिए इन्द्रादि देवताओंने वामनको अवतार दिया और उसको सुसज्जित कर बलिके पास उस समय भेजा, जब वह अपने गुरु शुक्राचार्य द्वारा भृगु कच्छमें किये गए यज्ञमें सब दान देकर खाली हो चुका था। असुर गुरु शुक्राचार्य महान् राजनीतिज्ञ थे। वे देवताओंकी चालको ताड़ गए। इसलिए उन्होंने अपने शिष्य बलिको तीन पग पृथ्वी भी देनेसे रोका। परन्तु बलि वचन दे चुका था और आसुरी सम्पदाका त्यागकर दैवी सम्पदामें स्थित था, इसलिए उसने अपने गुरुका कहना न माना एवं अपने सिर पर वामनका पाँव रखनेसे पातालमें धकेला गया। प्रसंगवश इस 'पाताल'का भी स्थान निर्णय किया जाता है, जिसका उपयुक्त भृगुकच्छसे घनिष्ठ सम्बन्ध है।

बहुधा विद्वान् सिन्धु-उपत्यकाको पाताल कहते हैं।[2] श्री कनिंघम महोदय वर्तमान हैदराबाद (सिन्ध) को ही पाताल मानते हैं।[3] एवं चीनी यात्री ह्वेनचाँग (६४१ ई०) की यात्राका उद्धरण देते हुए लिखते हैं कि वह (चीनी यात्री) कोटेश्वर (कच्छ) से सिन्ध में (पी-तो-शि-लो) नामक स्थानमें आता है, जब कि इन दोनों प्रदेशोंके बीचका फासला ७०० ली (चीनी माप) ईशान कोणमें है, जो तीन सौ 'ली' अर्थात् ५० मील है। श्री कनिंघम इसमेंसे पी-तो-शि-लोकी शिनाख्त पाठ-शिला अर्थात् फ्लैटरॉक यानी फ्लैक टॉप्ड हिल गंजा टकरसे करते हैं और एम० जुलियन इसको पिटा शिला पढ़ते हैं एवं ओ-फान-चाकी पहचान ब्राह्मणवादसे की जाती है (इसका खण्डहर नवाबशाह सिन्धमें शहदादपुरसे आग्नेय कोणमें है)। अलेग्जेण्डर-कालीन इतिहास लेखक इसको पत्ताला लिखते हैं[4] और कहते हैं कि यह नगर सिन्धु-तटके डेल्टा पर है।[5]

इन सब प्रमाणोंको ध्यानमें रखते हुए हम कह सकते हैं कि वर्तमान हैदराबाद (सिन्ध) पाताल नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि एक तो इसके पुराने नाम 'नेख-कोट'के साथ कोई भी सादृश्य नहीं है, दूसरे अब तक वहाँसे कोई पुरातत्व सम्बन्धी वस्तु नहीं मिली है; परन्तु ठीक इस स्थानसे नौ कोस वायव्य कोणमें

---

१. गंगा का वेदांक, पृ० ७५।
२. ग्लो० गु० दे०, पृ० ५९, पं० १।
३. कनिंघम, पृ० ३२३, पं० ४।
४. वही, पृ० ३२३, पं० २७।
५. वही, पृष्ठ ३२३, पं० २०।

* * *

सिन्धुके पश्चिम तट पर कोटरीके पास 'पेटारो' गाँव है, जो सिन्धु तटकी पुरानी शाखा फुलेलीके मुहाने पर है[1]। इस प्रकार भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे तथा यूनानी इतिहासकारोंके प्रमाणसे यहीं 'पाताल' हो सकता है। चीनी यात्रीका 'पी-तो-शि-लो' भी पेटारोंसे अभिन्न ही है। इनके 'ओ-चान-चा'को भी मैं दादू जिलाका मान (फान-थान) नगर मानता हूँ, जो ब्राह्मणोंका उपनिवेश था। वैदिक भूगोलकी दृष्टिसे वर्तमान सिन्धुका पश्चिम-तट पाताल होगा, इसमें सन्देह नहीं, क्योंकि पास ही समुद्र होनेके कारण दूर-दूर तक अगाध जल-ही-जल नज़र आनेसे बलोचिस्तानके खीर-थड़ पर्वतसे उतरने वालोंको यही पाताल भासित होता होगा।

मौर्य और बलोच

हम ऊपर कह आये हैं कि बलोचिस्तानका 'अर्य बेलो' एक वैदिककालीन अति प्राचीन स्थान है (आज भी तीर्थ-यात्रियोंकी दृष्टिसे यह भूमि पवित्र है)। यहाँ शाहबलाबल (जो बलूलका रूप है) और हिंगलाज देवीका तीर्थ है,[2] जिनके दर्शन करनेके लिए देश-देशान्तरोंसे अनेक यात्री आते हैं। स्कन्द पुराणके हिंगलाद्रि-खण्डमें हिंगला देवीका निवास 'मेरु' पर्वत पर कहा है।[3] यह इसी प्रदेशका एक पर्वत-शिखर है, जिसको आज भी 'मेरु' कहते हैं। पारसियोंके ग्रन्थ वेन्दिदादमें भी इस प्रदेशको तीसरी पवित्र भूमि माना गया है और इसका नाम 'मऊरु' लिखा गया है। सम्भव है इसी पवित्र भूमिका सम्बन्ध इक्ष्वाकुवंशीय मरुसे हो, जिसके विषयमें पुराणोंमें उल्लेख आया है कि देवर्षि शंतनु और इक्ष्वाकु-वंशका मरु ये दोनों कलियुगमें वर्णाश्रम धर्मकी ग्लानि होने पर फिर उसका प्रचार करेंगे और नाम शेष सूर्य और चन्द्र वंशोंकी पुनः स्थापना करेंगे। तब तक 'कलाप' ग्राममें तपस्या करते रहेंगे।[4] शायद यह कलाप ग्राम उसबेलोका 'कलांच' प्रदेश हो, जहाँ आज भी अनेक प्राचीन खण्डहर विद्यमान हैं और अतीतकी स्मृति दिला रहे हैं।

इस प्रदेशमें वैदिक युगमें पणि रहते थे। पणि और सुमेरियन एक ही हैं, यह ऊपर मालूम ही हो चुका है। अतः ये सुमेरियन इक्ष्वाकु-वंशी 'मरु'के वंशधरोंमेंसे ही होंगे। हमारे विचारसे सिन्धुके वर्तमान सूयरा (मुसलमान) इन्हीं सुमेरियनोंके वंशसे हैं, जिनको इतिहासकार आज भी मुसलमान होनेसे पूर्व 'हिन्दू राजपूत' मानते हैं।[5] सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य भी इनके मूल निवासस्थान 'मोरु'से ही सम्बन्धित था। कारण यह कि इस समय विद्वानोंकी यह धारणा दृढ़ होती जा रही है कि चन्द्रगुप्त मौर्यका मगध राज्य नन्दसे वंशगत कोई सम्बन्ध नहीं था, वह इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय ही था[6] और पश्चिमोत्तर भारतमें रहता था।[7] बौद्धोंके दीर्घनिकाय, महा-परि-निर्वाण-सूत्रमें मौर्योंको 'पिप्पिली' वनके क्षत्रिय कहा गया है'।[8] (सम्भव है यह कराची ताल्लुकेके नार्थ-

---

१. ब्राह्मणोत्पत्ति मार्तण्ड में स्क० पु० के हि० खं० उत्तर सं० उ० तथा ब० मु० त०, पृष्ठ ८८, पं० १०।
२. ब० मु० त०, पृ० ८८, पं० ११ हिंगलाज देवीको बलोच मुसलमान 'नानी' कहते हैं। यद्यपि यह हिन्दुओंका तीर्थ-स्थान है, फिर भी वहाँ बलोच-कन्या ही दीप जलाती है।
३. स्क० पु०, हिगु० ख०।
४. वि० पु०-२।२४।३७।
५. ब० म० त०, पृ० ८८, पं० २४।
६. ता० सि०, पृ० ९७, पं० ९।
७. च० मौ० अ० ७, पृ० ६३।
८. वही।

वेस्टर्न रेलवे लाइन पर दावेची और लाण्डीके बीचमें 'पिपरी' नामका गाँव हो जो बलोचिस्तानके पर्वत-पादमें स्थित है।) जब सिकन्दर विश्व-विजयकी इच्छासे सिन्धुमें आता है, तब चन्द्रगुप्त मौर्य स्वयं उसके विरुद्ध दक्षिण सिन्धुके पाताल राज्यमें अपना मोर्चा बाँध कर खड़ा होता है, जिससे लाचार होकर अलैग्जेण्डरको मकरानाकी ओरसे भागना पड़ता है, जहाँ उसके सैन्य-बलकी बहुत हानि होती है। ऐसा इतिहासज्ञोंका मत है।[1] इन सबसे यह प्रमाणित होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्यका वर्तमान सिन्धु-बलोचिस्तानसे घनिष्ठ सम्बन्ध था। इतना ही नहीं, यहाँके निवासियोंका 'मौर्य' शब्दसे बड़ा ममत्व देखनेमें आता है, जिसके स्मरणमें अनेक स्थानों पर उसका प्रयोग किया गया है, जैसे कराचीके जाति नामक ताल्लुकेमें 'मौर्यों ढण्ढ' (सरोवर), नवाव शाह (सिन्ध)में 'मोटो' ताल्लुका, बलोचोंमें 'पही-पुराणी', 'मोरकाणी', 'सिरमोटाणी' नामके अवटंक और सिन्धके 'सूयरा' (मुसलमान होनेसे पूर्व हिन्दू राजपूत) आदि। यह स्मरण रहे कि बलोच जाति वाले अपनेको 'साम बिन नूह' या 'बनू हाय'का वंशज मानते हैं।[2] नूह या बनू स्पष्ट 'मनु'के रूपमें हैं, जिससे इक्ष्वाकु-वंश चला और बादमें उससे मौर्य-वंश।

यहाँ एक और ध्यानमें रखने योग्य बात है - कराचीसे पाँच कोस दूर पश्चिममें **'पंघो पीरु'** नामका स्थान है। यहाँ पहाड़ीके बीच में गरम और ठण्डे पानीकी झीलें हैं। इनमेंसे एक सरोवरमें 'मकर' बहुत रहते हैं, जिनमें सबसे बड़े मकरको **'मोरु बादशाह'** कहते हैं और लोग उसको सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं।[3] इसका दूसरा नाम **'जसराज'** है।[4] जसराज हिंगुला देवीका मानसपुत्र है, ऐसा उल्लेख स्कन्द पुराणके हिंगुलाद्रि खण्ड-में है।[5] (पाकिस्तान बननेसे पूर्व) सिन्धुके हिन्दू क्षत्रिय और वैश्य विवाहसे पूर्व सोमवारको इसका पूजन करते थे और इस पर बलि चढ़ाते थे, जिससे महान् योद्धाके रूपमें इसकी स्मृति की जाती है। इस प्रकार हम चन्द्रगुप्त मौर्यको भी महान् योद्धाके रूपमें देखते हैं, जिसने शत्रुओंका दमनकर सम्पूर्ण जम्बुद्वीप पर एकच्छत्र राज्य किया।[6] इसलिए इसका दूसरा नाम **'जसराज'** अर्थात् **'यशोराजन्'** होना भी सम्भव है। विशेष दूर जानेकी बात नहीं, परन्तु हिंगुलाज तीर्थके पास ही एक वापी है, जिसको आज भी 'चन्द्रकूप' कहते हैं। चन्द्रकूप और 'चन्द्रगुप्त'में हमें कोई विशेष अन्तर नहीं मालूम पड़ता।

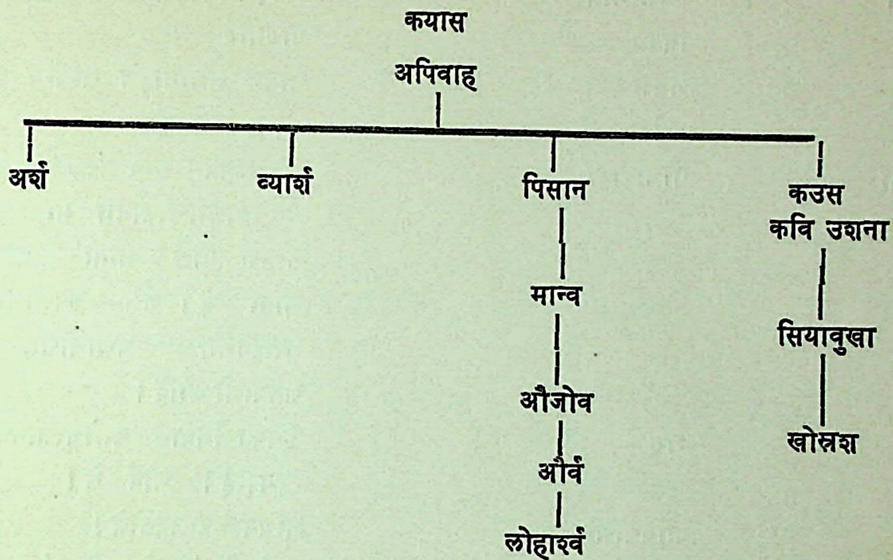
बालोचोंके कुछ आर्यत्व बोधक अवटंक

बलोच-स्थानमें खारान रियासतका नवाब अपनेको 'कयानी मलक' कहते हैं[7] और अपनेको ईरानसे आया हुआ मानते हैं।[8] **'कै खुसरु'** ईरानियोंकी 'कयानियन्' शाखाका प्रधान पुरुष था,[9] जिसका गुवरी नामका

---

१. च० मौ०, पृ० ६३, पं० ७।
२. ब० मु० त०, पृ० १५, पं० १४ तथा १८।
३. सि० सै०, पृ० ३४, पं० १२।
४. वही।
५. स्क० पु०, हि० खं० (ब्राह्मणोत्पत्ति मा०से)।
६. च० मौ०,—पृष्ठ ६३से उद्धृत।
७. ब० मु० त०, पृ० ६, पं० २०।
८. वही।
९, ग्लो० गु० दे०—पृ० ८५।

ध्वंसावशेष कोइटा तहसीलमें मिला है।[1] इस शाखाका आरम्भ कउस (कवि-उशना)से होता है, जिसकी संक्षिप्त वंशावली नीचे दी जाती है[2] :



ऊपर खारान रियासतके नवाबोंके वंशसूचक 'कयानी' शब्दसे जुड़ा हुआ 'मलक' शब्द है, जो मूलकका रूप है। मूलकोंका प्रदेश पश्चिमोत्तर भारत है, जैसा पुराणोंमें उल्लेख है।[3]

इस प्रकार बलोचोंमें अनेक अवटंक हैं, जो अपने पूर्वजोंकी स्मृति दिलाते हैं। हम उनका संक्षिप्त वर्णन नीचे देते हैं :

बलोचोंके अवटंक	उनका मूलस्रोत	वक्तव्य
अशकजई	अक्ष-इक्ष—इक्ष्वाकु-जा	इक्ष्वाकु सूर्यवंशसे। 'जई' संस्कृत 'जनि'का रूप है।
नोशेखानी	...	ये अपना उद्‌गम ईरानसे मानते हैं।[4]
मूलाई	'मलोई' ग्रीक इतिहासकारोंकी निर्दिष्ट एक जाति मलय।[5]	मुद्राराक्षस नाटकमें मलयका राजा 'सिंहनाद' लिखा है। मुद्रा अंक।[5]

---

१. ब० मु० त०, पृ० ६, पं० ९।

२. ग्लो० गु० दे०, पृ० ८५।

३. माण्डव्याश्च तुषाराश्च मूलका मुषाः खशाः। महाकेशो महानादा देशास्तूरर पश्चिमे। १७ ग० पु०—खं० १, अं० ५५।

४. ब० मु० त०—पृ० २२, पं० १४।

५. च० मौ०, पृ० ३७, २४।

* * *

बलोचोंके अवटंक	उनका मूलस्रोत	वक्तव्य
कल्-मती	कलि-मति	झगड़ना इनका पेशा है[1]
विन्द	विद्	पा०गा०
मेद	मेघस्	शायद अजामीढ़से सम्बन्ध हो।
दरशक	दर्शक	...
गोरचाणी	गौचारी	आनी प्रत्यय शब्द संस्कृतका है। आज भी सिन्ध-बलोचिस्तानमें प्रायः वंश-सूचक शब्दके पीछे 'आनी' प्रत्यय लगाया जाता है। जैसे—कृपलाणी, वाध्वाणी, मलकाणी, बलीचाणी, जलवाणी शहवाणी आदि।
मरी	मरु	इनका निवास बलोचस्तानमें 'मेरु' पर्वत श्रृंग है।[2] मौर्य से।
खेजाणी	क्षत्रियाणी	क्षत्रिय=राजपूतोंसे।
लग़ारी	लिंगारी	ऋग्वेदमें 'शिश्ने देवाः'का उल्लेख है। इन्द्र इनसे भय करता था।[3] इसलिए यह लिंगादियोंका नेता होगा।
बगुटी	भागविति	पा०ग०
खोसा	खशाः	मनुः
नस्तकाणी	नास्तिक	शायद चार्वाक-सम्प्रदायसे
रदाणी	रुद्राणी	रुद्रसे सम्बन्ध रखनेवाली जाति
मुराणी	मौर्याणी	मौर्यसे
सरवानी	शर्वाणी	शर्व (रुद्रसे)
जमकाणी	यमकानी	यमसे
सीलाटाणी	शिलावर्ताणी	शिला छेदक जातिसे
शाकेजा	शाक्यजा	शाक्य मुनि (बुद्ध)से। वलोचस्तानमें बुद्धकालीन अनेक खण्डहर मिले हैं[4]।
सूरेजा	सूर्य या सूरजा	सूर्यका सूर भी नाम है। सूर्य-वंशसे।

---

१. ब० मु० त०—पृ० ४८, पं० १६।

२. वही सि०, पृ० ४२३, पं० १८।

३. दि रिलीजन एण्ड फिलासॉफी ऑफ वेद, वॉल्यूम १, पृ० १२९, गंगा पुरात० प्र० ३, अं० १, पृष्ठ ६१, प० १८, कालम २की पा० टि०।

४. ब० मु० त०, पृ० ६, पं० १५ तथा पृ० ८०, पं० १२।

* * *

बलोचोंके अवटंक	उनका मूलस्त्रोत	वक्तव्य
भम्मराणी	भम्मर-बन्धण ब्रह्मण-ब्राहण	ब्राह्मणोंसे
पोहेताणी	पीहेत-प्रोहेत पुरोहित	यज्ञ-यज्ञादि करानेवालोंमेंसे
जलवाणी	जालमानी	पा०ग०
मोरदायी	मौर्यदायी	मौर्य वालोंमेंसे
ग-बोल	गो-वल	गौ बहुत होनेसे
सरमोराणी	श्री मौर्यायी या शिरोमौर्यायी	मौर्य वालोंमेंसे
मनूदकानी	मनुक-मानवक	मनुसे
वरहमाणी	ब्रह्माणी	ब्रह्मा या ब्राह्मणमेंसे
सूराणी	सूर्याणी सूराणी	सूर्यसे
जखराणी	याजखरा-यक्षा	यक्ष देव योनिसे
पजदोर	पंच-द्रविड़	द्रविड़ोंसे
लोहाराणी	लोहानानी	लुहाना—अब कच्छ और सिन्धुकी एक जाति
छलगरी	छागल	पा०ग०
वजराणी	वज्राणी	वज्रधारियोंमेंसे
जतक	यातुका	ऋग्वेदकी जादू टोना जाननेवाली एक जाति[1]
गुजर	गूजर	ग्वाला जातिका नाम
उत्तामई	उत्तानजपन	उत्तापार राजासे
रिश्खानी	ऋचीकानी	ऋचीक भार्गवसे
सेनियान	सैन्यानी या सेनानी	'सेनानी नाम स्कन्द' गीता०
सूरा	सुराः या शूराः	`...
स्याह-पद	श्याम-पाद	पुराणोंमें एक कल्याणपाद राजा था।
जत	जाट	पंजाब, सिन्धु और राजपूतानाकी एक जातिसे[2]।
संगर	सगर	प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा
पादि	पादाति या मुष्टिक	
वछाली	वच्छ, वत्स	हैदराबाद सिन्धुके हाड़ तालुकावासी वैश्योंको वहठाइत कहते हैं

---

१. ऋ० ७।१७४।१५०।

२. ब० मु० त०, पृ० २६, पं० २४०।

* * *

बलोचोंके अवटंक	उनका मूलस्रोत	वक्तव्य
आचरा	आचार्या	ब्राह्मणोंमेंसे एक जाति
वाखरा	वाष्कला	वाष्कल एक ऋषिका नाम है
ब्रोही	ब्राहुई ब्राह्मी	बलोच इसका मूल 'अब्राहिय'से निकालते हैं[1], जो ब्राह्मणका अरबी रूप है
विन्देजा	बिन्दुजा या विन्ध्यजा	...
चांण्या	चान्द्राः	चन्द्रवंशसे
मगसी	मगाः	पारसी मगसी या मार्ग पुरोहित
छटा	छात्राः	यह सिन्धुके सूयरा मुसलमानोंकी शाखा है, जो वास्तवमें क्षत्रिय हैं और सूर्यवंशी हैं।
सुयरा	सुमेरु	इन्होंने ही सिन्धु-सभ्यताका मोसोपोटामिया तक प्रसार किया, जिसको सुमेरियन-सभ्यता कहते हैं।[2]
जोखा	यक्षाः	एक देव-योनि
सम	साम	यदुवंशी
समाट	साम	यदुवंशी
जाय	"	"
जामोट	ज्यामित्र	"
मिसियाणी	मिसियाणी या मिश्याणी	सिन्धुमें ब्राह्मणोंको साधारणतया 'मिसिर' कहते हैं। जो मिश्रका ही रूप है।
अंगार्या	अंगारजा	अंगिरा ऋषि अंगारोंसे उत्पन्न हुआ था और भट्ट वंशका था।

अब हम इनकी कुछ रीतियोंका वर्णन करेंगे, जिनसे भी इनके आर्यत्वका बोध होता है। जैसे - परस्पर मिलने पर कुल-नाम पूछना। संस्कृत व्याकरण और उपनिषदोंमें इस प्रकारके अनेक उदाहरण हैं। ऊँच-नीचका भेद (मकरानके लण्डियोंको यहाँ वाले बलोच अपनेसे कम समझते हैं।[3] विवाहके समय जनेऊ बाँधना आदि। सुना है कि इस प्रकार बलोचोंमें ९९ प्रतिशत रिवाज हिन्दुओंसे मिलते हैं।

इस बलोचिस्तानका विस्तृत वर्णन करनेसे हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि यह आर्यवंशज पणियों अर्थात् सुमेरियनोंकी और उनके पुरोहित मार्गवोंकी पवित्र तथा प्राचीन भूमि है, जिन्होंने

१. ब० मु० त०, पृ० ८, पं० २३।
२. वही।
३. ब० मु० त०, पृ० २५, पं० ३।

* * *

सप्त-सिन्धुसे लेकर मैसोपोटामिया तक एक ही वैदिक-संस्कृतिका प्रसार किया जिसको आज सिन्धु-संस्कृति कहा जाता है।[1]

वैदिक-आर्य-देशकी सीमा

वैदिक-कालमें सिन्धु नदके पश्चिम तटसे लेकर वर्तमान कश्यप सागर, कृष्णसागर, भूमध्यसागर और लोहित सागर तकका भूभाग पश्चिम आर्यदेश कहा जाता है।[2] यहांके आर्योंने सिन्धु-नदके पूर्व तट पर बसने वाले आर्योंको 'सिन्धु' तथा बादमें 'हिन्दु' नामसे पुकारा।[3] इस प्रकार यह सिन्धु नदका पूर्वापर-तट वाला सम्पूर्ण आर्यदेश 'भारत' नामसे भी विख्यात हुआ।

'भारत' नामकी वैदिकता

हम ऊपर कह आये हैं कि भार्गवोंका अग्निसे घनिष्ठ सम्बन्ध था यहाँ तक कि इतने मुख्य वंशधरोंके नाम अग्नि पर आरोपित हो गये।[4] अतः इन दोनों (भार्गवों और अग्नि) को मनुष्य लोकका स्वामित्व प्राप्त है। इस लोकका धारण और पोषण करनेसे अग्निका दूसरा नाम भारत भी है।[5] यही कारण है कि इस लोकका नाम 'भारत' पड़ा। आज भी विश्वके आर्य-वंशजोंमें अग्नि-उपासना किसी-न-किसी रूपमें विद्यमान है ही। ऋग्वेद-का आरम्भ भी तो अग्निसे ही होता है,[6] जिसके प्रवर्त्तक और प्रचारक भार्गव हैं।[7]

सिन्धुमें भार्गव ब्राह्मणोंकी राज्य-परम्परा

वर्तमान सिन्धुमें अरबोंके आनेसे पूर्व तक ब्राह्मण राज्यके अस्तित्वके प्रबल प्रमाण हमें मिलते हैं, जिनके साक्षी कुछ प्रदेशोंके परिवर्तित नाम और कुछ खण्डहर हैं। उनका संक्षिप्त परिचय हम नीचे देते हैं:

१. संस्कृत साहित्यमें प्रसिद्ध कवि श्री राजशेखर अपने ग्रन्थ 'काव्य मीमांसा'में वर्तमान भारतके पश्चिम देशोंका वर्णन करते हुए 'ब्राह्मणवाह'का उल्लेख करते हैं[8], जो स्पष्ट ही आजका ब्राह्मणवाद है, जिसका खण्डहर नवाबशाह सिन्धु जिलाके शहदादपुर स्टेशनसे आग्नेय कोणमें चार कोसके फासले पर विद्यमान है। सिन्धी भाषामें इसको 'ब्राह्मण्य' या 'ब्राह्मणवाद' कहते हैं।[9]

२. यूनानी इतिहास-लेखक सिन्धु नदके तट पर एक बर्बरिक देशका उल्लेख करते हैं, जहाँ व्यापारियोंका

---

१. मराठी चित्रमय जगत, जनवरी, १९२८ अंक १, पृ० ७ में श्री वण्डेल।
२. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय मैगजीन, प्रा० अं० १५की पाद टिप्पणी।
३. इन्द्रविजय, पृ० ११, श्लो० १-५।
४. वही।
५. इन्द्रविजयसे उद्धृत।
६. ऋ० १।१।१।
७. वही।
८. काव्य मीमांसा, अ० १०।
९. कदीमी सिन्धु, पृ० १००, पं० १९।

नौकाओं द्वारा बड़ा व्यापार चलता था।[1] श्री कनिंघम महोदय इसका सम्बन्ध भम्भोरसे लगाते हैं (यह ध्वस्त नगर अब कराची जिलाके मीरपुर साकरी ताल्लुकेमें है)। परन्तु मैं इस विषयसे सहमत नहीं हूँ, क्योंकि भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे देखा जाय, तो 'बार्बरिक' और 'भम्भोर' शब्दोंका परस्पर कोई उच्चार सादृश्य नहीं है। 'भम्भोर' शब्द 'भोम'- 'ओर' इन दो पदोंका संयुक्त रूप है। यहाँ 'भम्भ' शब्द प्राकृत 'बम्भ' 'बम्ह' और संस्कृत 'ब्रह्म'का परिवर्तित रूप है और प्राकृत 'उर' और संस्कृत 'पुर'का रूप है, जो कि ब्राह्मणोंका एक उपनिवेश मालूम होता है। परन्तु भाष्यकार पतंजलि अपने व्याकरण भाष्यमें **'ब्राह्मणक'** जनपदका निर्देश करते हैं।[2] हमारा विचार है कि इस **'ब्राह्मणक'** शब्दका ही परिवर्तित रूप यूनानियोंका **'बार्बरिक'** है।

अब यह देखना है कि सिन्धु नदके तट पर ऐसा कौनसा प्रदेश है, जिसकी संगति **'बार्बरिक'** शब्दके साथ बैठ सके। यह प्रसिद्ध है कि सिन्धु नदका पश्चिम-तट पुरातात्विकोंके लिए एक परिशीलनीय प्रदेश है। यदि हम इसको टटोलते हुए देखते जाते हैं, तब हमें दादू जिलाके सेहवानके पास मंछरकी झील पर दड़ी पर बना हुआ 'बूबक' नामका गाँव मिलता है। यह झील आज भी सिन्धुमें व्यापारका मुख्य स्थान है। यहाँसे गवर्नमेण्ट-को प्रति वर्ष अच्छा धन मिलता है। वर्षा ऋतुमें जब अन्य नदियोंका पानी इस झीलमें आ पड़ता है, तब समुद्र-कासा दृश्य देखनेमें आता है। यहाँ मछली अधिक होनेसे कनिंघम इसको 'मत्स्य-सर' अर्थात् 'मछली वाला ताल' लिखता है।[3] किन्तु जहाँ ब्राह्मणोंका राज्य होगा, तब इस सरोवरको 'मत्स्य' इस तुच्छ उप-पदके साथ सम्बोधित करना उनको कैसे अच्छा लगा होगा? हमें तो ऐसा मालूम होता है कि जब प्रफुल्लित पत्रोंसे सुशोभित तथा हंस, कारण्डव और चक्रवाक आदि जलचर विहारोंके क्रीड़ास्थल इस विशाल सरोवरको अपने जनपदमें देखा होगा, तब अवश्य उन्हें उस पवित्र मनोहर मानसरोवरकी स्मृति हो आयी होगी, जो इस पुण्यतम सिन्धु नदका उद्गम स्थान है। फिर भी नामोंमें परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है और उसमें भी विशेष हाथ विदेशी इतिहासकारों और यात्रियोंका रहा है, जिन्होंने भारतीय प्रदेशों तथा जातियों आदिके नामोंमें अपने मुख-सुखार्थ विशेष परिवर्तन किया है। इस प्रकार अरबोंके आनेके बाद इस **'मान-सर'** नामको बदलकर **'मन्छर'**-में बदला गया। कोई तो, **'ब्राह्मणवाद'**को मिटाकर उस स्थान पर अरबोंने एक **'मनसूर'** नगर बसाया, यह भी कहते हैं।[4] परन्तु खुद अरब इतिहासकारोंमें ही इस विषयमें मतभेद है। 'बिलादुरी' कहता है कि 'खलीफा-अल-मनसूरके नामसे मुहम्मद बिन कासिमके पुत्र अमरुने यह नगर बसाया था' (७५४से ७७४ ई०) और 'मसउदी' कहता है कि सिन्धुके गर्वनर जगहूर (७४४से ७४९) ने। 'ओम्रकाद' खलीफाके पिताका नाम 'मनसूर' था,[5] जिसके नामसे यह नगर बसाया गया। परन्तु 'मनसूर' शब्द अरब वालोंका दिया हुआ है, सिन्धी नहीं है, यह निश्चित है। प्रसिद्ध अरबी इतिहासकार 'इब्न-हकुल' भी कहता है कि मनसूरको सिन्धी भाषामें 'बामीवान्' कहते हैं।[6] सम्भव है इसका लघु रूप 'बान' अर्थात् 'भान' हो, जो अब भी दादू जिलामें

---

१. कनिंघम, पृ० ३३१, पृ० २८।

२. अव्ययात्पर्दे, पृ० ४।२।१०४ के 'कोपधाद कोकान्ताच्छ' इस वार्तिक पर उदाहरण दिया है - ब्राह्मणको नाम जनपद, तस्माद्भवयं प्राप्नोति ब्राह्मणकः।

३. कनिंघम, पृ० ३०४, पं० १६।

४. कनिंघम, पृ० ३११, पं० ८।

५. वही।

६. कनिंघम, पृ० ३११, पं० २०।

* * *

बूवकके बाद 'मन्छर-सील'के पास गाँव हैं। चीनी यात्रीका 'फान' शब्द भी[1] इसके साथ ठीक बैठ जाता है। शायद प्राचीन कालमें 'मन्छर-सील'का विस्तार 'मान-नगर' तक हो। तात्पर्य यह कि प्राचीन कालमें यह सम्पूर्ण प्रदेश 'ब्राह्मणक जनपद' नामसे विख्यात होगा। कारण 'ब्राह्मणक' शब्दका अपभ्रंश ही यूनानियोंका 'बा-र-ब-रि-क' है। यदि हम इससे 'र' और 'रि' निकाल दें, तो बाकी 'बा-ब-क' रह जाता है। यही शब्द बदल कर वर्तमान 'बूवक' बन जाता है। इस प्रकार हम 'ब्राह्मणक जनपद'का अनुसन्धान कर लेते हैं। 'यहाँके निवासी ब्राह्मण आयुधजीवी थे, ऐसा पाणिनि मुनि कहते हैं।'[2] इनका संघ-शासन था, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि जनपद शब्द 'संघ' और 'निवास' इन दोनों अर्थोंके माध्यमें प्रयुक्त हुआ है।[3] ब्राह्मणोंके सैकड़ों संघ धर्मराज युधिष्ठिरके यज्ञमें उपहार लेकर द्वार पर खड़े हैं, ऐसा महाभारतमें उल्लेख है।[4] मकदूनियावासी सिकन्दर जब विश्वविजयकी लालसासे सिन्धुमें आता है, तब वहाँ का ब्राह्मण संघ इसके दाँत खट्टे कर देता है और विवश होकर उसको बलोचिस्तानके मकरानकी ओरसे भागना पड़ता है।[5] अथर्ववेदमें वैतहव्य और भार्गवोंके युद्ध-का वर्णन आया है,[6] जिसमें इन ब्राह्मणोंके पराक्रमकी महिमा गायी गयी है।[7] भगवान् परशुरामका पराक्रम विश्व-विख्यात है, जिन्होंने इक्कीस बार उद्धत क्षत्रिय-वंशका नाश किया था। यह बल उन्हें अपने पूर्वज भार्गवोंके निवासस्थान बलोचस्तानके हिंगुल पर्वत पर तपस्या करनेसे प्राप्त हुआ था।

ब्राह्मण राज्यका अन्तिम राजा महाराजा 'दाहर सेन' (७६९ ई०) हुआ, जिसकी राजधानी वर्तमान 'रोहड़ी' सिन्धुके पास कालिका नामकी पहाड़ी पर 'अरोड़' नामसे प्रसिद्ध थी, जिसके खण्डहर आज भी वहाँ देखे जा सकते हैं। इसकी प्रबल शक्तिके सामने कई बार अरबोंके पाँव उखड़ गये और अन्तमें छलसे ही इसका मरण हुआ। इस प्रकार वैदिक-काल से लेकर अरबवासियोंके सिन्ध पर आक्रमण-काल तक हमें ब्राह्मण-राज्यका सूत्र मिलता है।

अब हम उन स्थानोंका नाम निर्देश करते हैं, जो ब्राह्मण-राज्य और उनके उपनिवेशके सूचक हैं। जैसे जिला लड़काना-ताल्लुका रतोदेड़ामें 'बंगुल-देड़ों' और 'नओ देड़ों'के बीचमें 'बम्भरी' नामका दड़ो है। वहाँके लोग कहते हैं कि 'यहाँ पहले बड़ा नगर था।' 'बम्भरी' स्पष्ट 'ब्राह्मण'का अपभ्रंश है। जिला नवाब शाह सिन्धमें नोशहिरों तथा मोरो तालुकाके सीमा पर 'दर्याखान' एवं 'सावड़ी' गाँवके बीचमें 'मिसिर जी वाइ' गाँव है। 'वाइ' शब्द संस्कृत 'वास'का रूप है तथा 'मिसिर' शब्द 'मिश्र'का। सिन्धुमें आज भी ब्राह्मणोंको 'मिसिर' कहते हैं। जिला थड़पाइकर तालुक—मिट्ठीमें कच्छके 'रिण' (अरण्य)के पास 'बमरलो' गाँव है। यहाँ 'लो' शब्द संस्कृत लय=आलयका लघु रूप है तथा 'बम्भर' शब्द बमन=ब्राह्मणका। इस प्रकार १. ब्राह्मणावाद, २—बम्मौर, ३—बूवक, ४—थान, ५—आरोड़, ६—बम्भरी, ७—मिसिरजी वाइ, और ८—बथरलो आदि स्थान हैं, जो आयुधजीवी ब्राह्मणोंके साथ अपना सम्बन्ध सूचित करते हैं। सम्भव है कुछ

---

१. कनिंघम पृ० ३११, पं० २।
२. पा० ५।२।७१।
३. पा० ४।१।३६।
४. महाभारत, सभा-पर्वका उपायन प० अ० ४५ (भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीच्यूट द्वारा शोधित।
५. 'अकर्मधारये राज्यम्'। पा० ६।३१।१३०। इस पर महाभाष्य में 'ब्राह्मणराज्यम्' उदाहरण है।
६. कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया वॉल्यूम १, पृ० ३७५।
७. अथर्व०, अ० ४, सूत्र १७, से २१ तक।

ऐसे अन्य स्थान भी हों, जो इनकी शक्ति-सूचक सामग्रीको अपनी गोदीमें छिपाकर सुरक्षित रखते हों। यदि वस्तुतः मोहिनजोदड़ोके साथ वैदिक पणियोंका सम्बन्ध है, तब तो हम इस खण्डहरको भी उनके पुरोहित शुक्राचार्यके वंशधरोंसे प्रभावित मुख्य नगर कह सकते हैं और यहाँकी सभ्यताको 'वैदिक-सभ्यता' कह सकते हैं, जिसका समर्थन यहाँ से उपलब्ध सामग्री कर रही है।

मोहिनजोदड़ो एवं प्राचीन सिन्धु-सभ्यता

मोहिनजोदड़ो तथा हड़प्पासे एक प्रकारकी सैकड़ों मिट्टीकी मूर्तियाँ मिली हैं। ये प्रायः नग्न हैं। पुरातत्वविद् इन्हें 'मातृदेवी' कहते हैं। इस प्रकारकी मूर्तियाँ एल, फारस, मैसोपोटामिया, लघु एसिया, मिस्र और सीरिया आदिमें पायी गयी हैं।[1] कुछ बलोचिस्तानमें भी मिली हैं।[2]

वेदोंमें 'अदिति' माताकी स्तुति अनेक स्थलों पर आयी है और सम्पूर्ण विश्वमें इसकी व्यापकता दिखायी गयी है।[3]

सायणाचार्य 'दो अवखण्डने' धातुसे 'क्तिन्' प्रत्यय जोड़कर 'अदिति' शब्द सिद्ध करते हैं[4], जिसका अर्थ है अखण्डनीय। हमारे विचारसे यह वैदिक 'अखण्ड भारत'की स्तुति है। अथर्ववेदमें पृथ्वी माताकी स्तुतिमें एक बड़ा सूक्त दिया हुआ है।[5] इसलिए अखण्ड भारतकी इन मृण्मय मूर्तियोंका उपर्युक्त देशोंमें मिलना कोई आश्चर्यकारक वस्तु नहीं है।

हम ऊपर कह आये हैं कि सिन्धु नदके पश्चिम तटसे लेकर लोहित सागर, भूमध्यसागर और कश्यपसागर तकका प्रदेश पश्चिम भारत कहलाता था। इन प्रदेशोंके खण्डहरों से शिवलिंग और वर्तुलाकार योनियाँ भी मिली हैं।[6] लिंग, यह केन्द्र-विन्दु तथा ज्योतिका प्रतीक है और 'योनि-कंकण' उसके मण्डल अर्थात् परिधिका बोधक है। योगीजन इस ज्योति-मण्डलका हृदयाकाश में दर्शन करते हैं। भारत अग्नि-तत्व प्रधान है, यह हम ऊपर कह आये हैं। मोहिनजोदड़ोसे मिली कुछ मुद्राओं पर, जो मध्यमें विन्दु वाले चक्राकार चिह्न मिले हैं, वे हमारे विचारसे अग्नितत्वका बोध कराते हैं।

यहाँसे समाधिस्थ योगियोंकी मुद्राएँ भी मिली हैं।[7] विद्वान् इनको समाधिस्थ शिव मानते हैं। सबसे उत्कृष्ट आकृति जो यहाँकी मुद्राओं पर देखनेमें आती है, वह है वृषभकी आकृति।[8] एक वह जिससे सिन्धुमें गोवंशकी उत्कर्षताका बोध होता है, दूसरी उसके प्रति पूज्यभाव दर्शाती है; जिससे यह इतनी उत्तम बन पायी है। सिन्धुमें इसको शिवजीका वाहन मानते थे, इसलिए इसकी आकृति इतनी सुन्दर बन पायी है, ऐसा विद्वानों-

---

१. मु० द०, सि० स०, पृ० १०४, पं० १२।
२. वही, पृष्ठ १०५, पं० १।
३. ऋ० १।८६।१०।
४. ऋग्वेदके इसी मन्त्र पर सायण-भाष्य।
५. अ० वे०का १२, अ० १, सू० १।
६. मो० द० सि० स०, पृ० ११६, पं० ८।
७. मो० द० सिं० स०, पृं ११३, पं० १।
८. वही, पृ० १२५, पं० १।

* * *

का मत है।[1] बैलका न केवल सिन्धुमें, परन्तु संसारके सभी प्राचीन देशोंमें धार्मिक महत्व था।[2] प्राचीन कालसेही 'स्वस्तिक'का कितना महत्व था, यह मोहिनजोदड़ोसे मिली मुद्राओंके अंकनसे मालूम हो जाता है, स्वस्तिक तथा चक्र ये दोनों सूर्यके प्रतीक हैं, ऐसा विद्वानोंका मत है।[3] देव-सेनाओंकी ध्वजाओं पर भी सूर्यका चिह्न होता था, ऐसा अथर्ववेदमें उल्लेख किया गया है।[4] वेद-कालीन अखण्डभारतका यह 'राष्ट्रीय ध्वज' होगा, ऐसा हमारा मत है।

यहाँसे मिली मुद्राओंकी लिपि जब तक ठीक-ठीक नहीं पढ़ी जाती, तब तक यहाँकी राजनीति पर कुछ लिखना कठिन है। लेकिन वेश-भूषाके सम्बन्धमें कुछ अवश्य कहा जा सकता है। कुलीन पुरुष दो वस्त्र पहनते थे - एक नीचे, दूसरा ऊपर; जो दाहिनी बगलके अन्दरसे लेकर बायें कन्धेके ऊपर फेंका जाता था।[5] अथर्ववेदमें इन दोनों वस्त्रोंका 'परीधान और 'नीवी' नामसे उल्लेख हुआ है।[6] लोग दाढ़ी मूँछ भी रखते थे।[7]

ऋग्वेदमें इन्द्र, वरुण आदिकी दाढ़ी मूँछोंका वर्णन आया है[8] यहाँसे हजामत करायी हुई मूर्तियाँ भी मिली हैं। अथर्ववेदमें बाल काटनेका वर्णन आया है।[9] यहाँके लोग केश पीछेकी ओर बाँधते थे।[10] वेदमें भी केश बाँधनेके अनेक तरीके वर्णित हैं।[11] दड़ाके उत्खननसे मुर्दोंको गाड़ने और जलानेके चिह्न मिले हैं।[12] अथर्ववेदमें भी शवोंके गाड़ने-जलाने आदिका वर्णन है।[13] यहाँ इन्हें पक्की ईंटोंके मकान भी मिले हैं।[14] ऋग्वेदमें भी पक्के मकानोंका वर्णन आया है।[15]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सिन्धु-सभ्यता वैदिक सभ्यताका ही विकसित रूप है, जिसका प्रसार कश्यप, भूमध्य तथा लोहितसागर तक हुआ था। यह हमें असीरिया, बैबीलोनिया और मीडिया आदिके खण्डहरोंसे प्राप्त इष्टिकालेखोंके पढ़े जाने पर मालूम होता है। 'सुमेरियन', 'गित गयेक्ष' महाकाव्यमें वर्णित 'महाप्रलय'[16]

---

१. मो० द० सिं० स० पृ० १२५, पं० १।
२. वही, पृ० १२६ पं० ५।
३, वही, पृ० १४१, पं० ८।
४. वही, पृ० १४७, पं० ७।
५. ऋ० वेदका ५, अ० ४, सू० २१, ऋ० १२।
६. श्री मार्शलका उद्धरण, मराठी चि० ज०, १९२८, जुलाई, पृ० ३१५, पं० ६३।
७. अथर्ववेद, ४।७।६।
८. ऋ० १०।२६।७, ऋ० १०।२३।१, ऋ० १०।१३।४।
९. अथर्ववेद, ६।५८।
१०. श्री मार्शल, म० चि० ज०, १९२८, जुलाई, पृ० ३१५, पं० १।
११. ऋ० ७।३३।१।
१२. मु० द० सिं० स० पृ० १९३, पं० ११।
१३. अथर्व० का १८। अनु० २, सू० २, ऋ० ३४।
१४. मु० द० सिं० स०, पृ० १९३, पं० ६।
१५. ऋ० २।३५।६, ऋ० २।२०।८, ऋ० ४।३०।२०, ऋ० ७।३।७, ऋ० ७।१५।१४, ऋ० ७।८९।१।
१६. म० चि० ज०, १९२८, अथर्ववेद १९।३९।८, शत ब्रा० १।८।९।

* * *

वैदिक महाप्रलय"[1] तथा शतपथका 'मनोरवसर्पण'"[2] (मत्स्यावतार) बहुत अंशोंमें समानता रखता है। यह आख्यान बैबीलन, असीरिया, पर्शिया और ग्रीक आदिके धर्मग्रन्थोंमें भी है।[3] इस प्रकार इस सम्पूर्ण भू-भागके धर्म और रीति-रस्मोंमें भी अनेक अंशोंमें सादृश्य देखा जाता है। न केवल इतना, किन्तु यहाँकी भाषाओंका भी खुली रीतिसे परस्पर आदान-प्रदान होता रहा है। यहाँ तक कि अनेक कैल्डियन शब्दोंको वेदोंमें विना संकोच ग्रहण किया गया है। जैसे अथर्ववेदमें **'तैमात्', 'आलिगी', 'बिलीगी', 'ताबुवं'** आदि[4] और ऋग्वेदमें **'जर्फरी', 'तुर्फरी', 'बैतोशेव', 'पर्फरीका', 'जेमना', 'मदेरू', 'पज्जेव'**, चचरा आदि'।[5] संस्कृत जाननेवाला कोई भी विद्वान् बिना खींचातानीके सरलतासे इन शब्दोंका अर्थ नहीं कर सकता, क्योंकि ये शब्द उस प्राचीन वैदिक-भाषाके हैं, जो कई सदियोंसे हमसे विच्छिन्न हो गयी है, यह रहस्य मालूम न होनेसे ही कौत्स-मतावलम्वियोंको वैदिक-मन्त्रोंको निरर्थक कहना पड़ा'।[6]

इस प्रकार हम इन सब हेतुओंसे इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि ये सब उस समयकी सभ्यताके खण्डहर हैं, जब 'असुर-आर्य' अपने बन्धु 'देवआर्यों'के साथ किन्हीं कारणोंसे आपसमें मतभेद हो जाने पर अपना मूल निवास-स्थान सप्तसिन्धु छोड़कर हटते-हटते भूमध्य सागर तक पहुँच गये थे। इसलिए यह सम्पूर्ण भू-भाग एक ही सभ्यतामें पला हुआ है। सिन्धुकी और यहाँकी सभ्यता परस्पर अभिन्न है। आजके सिन्धुमें भी इसका कुछ प्रकाश मिल जाता है।

वर्तमान सिन्धुमें अतीत-संस्कृतिके कुछ चित्र

(पाकिस्तान बननेसे पूर्वतक) सिन्धके प्रत्येक नगर और गाँवमें प्रतिमास नवीन चन्द्र-दर्शनके दिन गेहूँका आटा गूँथकर बड़ा मोदक बनाते हैं और उसका लवंगइलायची तथा पुष्पमालाओंसे शृंगार करते हैं। साथ ही आटेका एक बड़ा चतुर्मुख दीप भी जलाते है। तब इन्हें हिन्डीलमें स्थापित कर मस्तक पर धारण कर नंगे पाँव नृत्य वाद्यके साथ समुद्र, दरिया या किसी नद-नदीमें सायंकाल प्रवाहित करते हैं।

यह रीति प्राचीन 'वरुण-उपासना'की द्योतक है। आज भी सिन्धुवासियोंकी यह दृढ़ धारणा है कि 'जब-जब धर्मकी ग्लानि होती है, तब-तब वरुण भगवान् उसकी स्थापना करने के लिए अवश्य अवतार लेते हैं'। ऋग्वेदमें वरुणका विशेषण 'तुविजातः' दिया है[7] जिसका अर्थ है "अनेक बार पैदा हुआ" (धर्म स्थापनाके लिए)। सिन्धमें इसका अन्तिम अवतार वि० सं० १००७में हुआ, जब मुहम्मद धर्मावलम्बी 'मख' बादशाह ठट्ट नगर (जिला कराची) में राज्य करता था तथा जिसके अत्याचारसे पीडित होकर हिन्दू सिन्धु नदके तट पर आकर भगवान् वरुणकी प्रार्थना करने लगे थे। तब वरुणने अवतार लेकर सत्पुरुषोंकी रक्षा की थी और पुनः धर्मकी स्थापना की थी। हिन्दू इसको 'उद्रेरो लालु, दूलहु' तथा 'अमरलालु' कहते हैं और मुसलमान

---

१. महाभारत तथा मत्स्योपाख्यान ४९।
२. ग्लो० गु० दे० भाग १, अ० ३, पृ० ६५।
३. वही।
४. श्री लो० बालगंगाधर तिलकका 'वैदिक क्रोनोलॉजी एण्ड वेदांग ज्योतिष्, पृष्ठ १३१।
५. ऋ० १०।१०६।
६. 'अनर्थका हि मन्त्रणा' (२) निरु०, अ० १, खं० १५।
७. ऋ० २।२७।१, २।२९।९, ९।९१।८।

* * *

'शेख-ताहिर' और 'जिन्दह पीर' कहते हैं।[1] इसके तीर्थ-स्थानों पर हिन्दू और मुसलमान दोनों ही दर्शन करने जाते थे।

(पाकिस्तान बननेसे पूर्व) सिन्धमें हिन्दू, क्षत्रिय और वैश्य विशेषतः खुदावादी आमिल और भाई-बन्धु विवाहसे एक दिन पूर्व प्रातःकालमें जलके चार कलश (मिट्टीके बड़े मटके) भर कर रखते थे और बीचमें पुरुष प्रमाण लकड़ी गाड़ कर उस पर स्वस्तिकाकार नपी हुई चार लकड़ियाँ जोड़ देते थे। तब भाट पंचोंसे पूजा कराता और उसको रक्तसूत्रसे वेष्ठित करता था। इसको सिन्धी भाषामें 'मुनि-खोड़ना' कहते हैं। हम ऊपर कह आये हैं कि 'स्वस्तिक' सूर्यका प्रतीक है एवं चार कलश 'चतुः-समुद्रा-पृथ्वी'के द्योतक हैं। समुद्रका मालिक 'वरुण' है। इस प्रकार यह रीति विवाहसे पूर्व प्राचीन 'वरुण सम्प्रदाय'के 'अग्नि स्थापना'का नाम शेष-संस्कार है।

सिन्धमें शुक्रवारका विशेष महत्व है। इस दिन मुहूर्त न होने पर भी शुभकार्य करना उत्तम समझा जाता है। मुसलमान भी इस दिनको पवित्र मानते हैं और नमाज पढ़ते हैं। परन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिए कि यह रिवाज मुसलमान धर्मके बाद पड़ा है। यह तो हिन्दू और मुसलमान दोनोंका अपने प्राचीन-पुरुष-पुरखा भार्गव शुक्रके प्रति आदरका द्योतक है।

उपसंहार

सिन्धु-संस्कृतिका मूल 'वेद' है, जिनके आदिम प्रचारक वरुण और उनके वंशज भार्गव-ब्राह्मण हैं। इन्होंने ही पूर्व सप्त-सिन्धुमें इस संस्कृतिको दृढ़मूल किया था और यहींसे सम्पूर्ण विश्वमें इसका प्रसार किया था।

इसलिए पारसियोंके पूज्य श्री अहुर-मजदअ भी इस प्रदेशको पवित्र मानते हैं[2] और मनुस्मृति (जिसके आदि वक्ता भृगु हैं) में भी कहा गया है कि:

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यांसर्वमानवाः॥

१. कदीमी सिन्धु, पृ० ६२।
२. वेन्दीदाद, पृष्ठ ७।

* * *

श्रीविश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े

हमारे पुराण तथा असीरियाकी नई खोजें

⊙ ⊙ ⊙

मन्द अथवा मन्दग कौन? महाभारतके भीष्मपर्वके ग्यारहवें अध्यायमें निम्न श्लोकोंमें बताया गया है कि शाकद्वीपमें मंग (मग), मशक, मानस तथा मन्दग : ये चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंके समान हैं।

तत्र पुण्या जनपदाश्चत्वारो लोकसम्मताः ॥३५॥
मंगाश्च मशकाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा[1]।
मंगा ब्राह्मण भूयिष्ठाः स्वकर्म निरता नृप ॥३६॥
मशकेषु च राजन्या धार्मिकाः सर्वकामदाः।
मानसाश्च महाराज वैश्यधर्मोपजीविनः ॥३७॥
शूद्रास्तु मन्दगा नित्यं पुरुषा धर्मशालिनः ॥३८॥
एतदेव च श्रोतव्यं शाकद्वीपे महोजसि ॥४०॥

विष्णु पुराण तथा भविष्य पुराणमें भी मग तथा मन्दग नाम आये हैं। ये लोग शाक द्वीपके चातुर्वर्ण्यमें क्रमशः ब्राह्मण तथा शूद्र माने जाते हैं। देखना यह है कि इनका उल्लेख यूनानी अर्थात् असुर लोगोंके इतिहासमें कहीं उपलब्ध होता है अथवा नहीं। यूनानी यवन हैं और असुर वे हैं, जिन्हें अर्वाचीन योरोपीय 'असीरियन' कहते हैं। प्राचीन यवन उन्हें 'असूरियन' कहते थे और वे स्वयं अपने-को अश्शुल कहा करते थे। आज योरोपीय जो असीरियन उच्चारण करते हैं, वह अपभ्रष्ट है। 'ई'के स्थान पर 'ऊ' होना चाहिए।[2] 'असीरियन' उच्चारण नहीं है, वास्तविक उच्चारण 'असूरियन' है। कह चुके हैं कि ये लोग अपनेको अशूर कहते थे। प्राचीन भारतीय आर्य इन्हें असुर और उनके देशको 'असूर्य' कहते थे :

---

१. वहाँ मंग, मशक, मानस तथा मन्दग नामक चार लोक प्रसिद्ध पवित्र जनपद हैं। मंग देशमें ब्राह्मणोंकी संख्या अधिक है और वे सब स्वकर्मनिरत हैं। मशकमें क्षत्रिय हैं; जो धार्मिक, उदार तथा सब इच्छाओंकी पूर्ति करने वाले हैं। मानसकी अधिकांश प्रजा वैश्यवृत्ति धारण करती है। मन्दगमें शूद्र विपुल हैं, वे सब धर्मशील हैं। जितना श्रवण करने योग्य है उतना बतलाया है।—अनु०।

२. मूल वाक्यका अनुवाद है : 'वाई' के बदले 'यू' अक्षर होना चाहिए।

* * *

असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।

प्राचीन भारतीय आर्य 'श'के स्थान पर 'स' उच्चारण करते थे। इन असूरों अथवा असुरोंके इतिहास में मन्दों तथा मन्दगोंका अनेक बार उल्लेख मिलता है। 'हिस्टोरियन्स हिस्टरी ऑफ दि वर्ल्ड' नामक अंग्रेज़ी ग्रन्थमालाके दूसरे खण्डमें (पृष्ठ ५५९ देखिए) मन्द लोगोंकी बहुत कुछ जानकारी दी गयी है, जिसका अध्ययन साक्षेपी तथा संशोधक पाठकोंको अवश्य करना चाहिए।

उक्त पृष्ठके मजमूनमें कहा गया है कि (Scythians) ही (Manda) है। आजके योरोपीयोंने (Scythians) शब्दको उच्चारण तथा लेखनकी दृष्टिसे अत्यन्त भ्रष्ट कर दिया है। ग्रीक भाषामें यह शब्द 'स्कथियन' (Skythian) उच्चारित किया जाता है और लिखा जाता है। होना भी यही चाहिए। शक स्थानीय शकस्थानीय, स्कथिअन, इस प्रकार यह शब्द ग्रीक भाषामें विकसित हुआ जान पड़ता है। जिन्हें प्राचीन ग्रीक लोग स्कथियन कहते थे। उन्हींको प्राचीन भारतीय आर्य शक, शकस्थानक, शकस्थानीय कहते थे। प्राचीन पारसिक इन्हीं शब्दोंको 'सकै'' (Sakai) कहते थे। शाक, शकीय, सकै, सअई,से असाहि आदि अपभ्रंश उक्त शब्दका मिलता है। स्कथिअन, शक, शकैसे आदि नाम एक ही जातिके लोगोंके अर्थात् शकोंके हैं। जानकार लोग इस बात पर सहमत हैं कि स्कथिअन ही शक हैं। इसे प्रमाण देकर सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं है। इन शक (स्कथिअन) लोगोंको उपर्युक्त अंग्रेजी ग्रन्थमें 'मन्द' कहा गया है। ये मन्द कौन हैं?

हेरोडोटस तथा टैसियस नामक दोनों ग्रीक इतिहासकारोंको मन्द लोगोंका कोई ज्ञान नहीं था, यही नहीं, उन्होंने यह नाम सुना तक नहीं था। हेरोडोटस तथा टैसियस प्राचीन मीडस (Medes) नामक जातिके अन्तर्गत मन्दोंका इतिहास देते हैं। उक्त इतिहासकारोंकी यह भूल आज पच्चीस सौ वर्षोंतक अर्थात् ईसाकी उन्नीसवीं शतीके अन्त तक भूल नहीं मानी गयी। इधर दस-पन्द्रह वर्षोंमें असूरों (अशूरों)के इष्टिकालेख अर्थात् तपी हुई ईंटों पर खुदे लेख प्राप्त होने पर यह भूल सुधारी गयी। हेरोडोटस जिन्हें मीडस कहता है, उनका असली नाम मन्द नहीं था, यह तथ्य अब समझमें आया है। असली मीडसको असुर मद (अहुरमज़्द) कहते थे। इन्हीं मीडसको भारतीय-आर्य मेद कहते थे। सारांश, असली मीडस अर्थात् मद (मेदों)से मन्द उर्फ शक (स्कथिअन) भिन्न थे, यह बात योरोपीयोंके ध्यानमें भी दस-पन्द्रह वर्ष हुए आयी है। 'हिस्टोरियन्स हिस्ट्री ऑफ दि वर्ल्ड'के द्वितीय खण्डके पृष्ठ क्रमांक ५८३ तथा ५८५ पर मन्द लोगोंके पराक्रमकी बहुत-सी जानकारी दी गयी है।

ग्रन्थोल्लिखित जानकारीसे सिद्ध होता है कि (१) मेदोंसे मन्द भिन्न थे तथा (२) मन्द ही शक थे। मन्द नामक शकोंने ईसाके ७०० वर्ष पूर्वसे लेकर ईसाके लगभग ५५० वर्ष पूर्व तक राज्य किया। उनके पश्चात् एलाम प्रदेशके डेरसने अपना साम्राज्य फैलाकर असुरोंको समाप्त किया।

प्रश्न यह है : असुरोंके इष्टिकालेखोंमें उल्लिखित शाकवंशीय मन्द कौन हैं? इस प्रश्नका उत्तर लेखके प्रारम्भमें महाभारतके भीष्म पर्वसे उद्धृत श्लोकोंमें मिलता है। भीष्म कहते हैं कि 'शाकद्वीपमें जो शक बसते हैं, उनमें मंग (ब्राह्मण), मशक (क्षत्रिय), मानस (वैश्य) तथा मन्दग (शूद्र) आदि चार वर्णोंके लोग हैं।' शाकद्वीपके शूद्र जो मन्दग बतलाये गये हैं, वही असुरोंके शिलालेखोंमें उद्धृत शाक-मन्द हैं। असुर इन्हींको मन्द कहते थे और भीष्म-कालीन भारतीय आर्य मन्दग। भारतीय आर्योंको ज्ञात, नाममें 'ग' अक्षर अधिक है। तब समस्या यह है कि इन शाक लोगोंका असली नाम क्या है? मन्द अथवा मन्दग? असुरोंके शिलालेखोंमें अथवा भारतीय आर्योंके पुराणेतिहासमें उक्त प्रश्नका उत्तर प्रस्तुत करनेवाली सामग्री हो, तो मैं उसे नहीं जानता। निःस्सन्देह इतना अवश्य कहूँगा कि असुरोंके शिलालेखोंमें जिन शाकोंको मन्द तथा भारतीय आर्योंके

* * *

महाभारत, विष्णुपुराण तथा भविष्यपुराणमें जिन शाक-शूद्रोंको मन्दग बतलाया गया है, वे भिन्न नहीं हैं।

असुरोंके इष्टिकालेखोंमें और हेरोडोटस तथा टेसियसके इतिहासोंमें जो वर्णन एवं उल्लेख आये हैं, उनसे प्रतीत होता है कि भीष्मकालीन भारतीय-आर्य मन्द लोगोंको शाक-शूद्र समझते थे, असुर तथा ग्रीकोंकी यह धारणा नहीं थी। वे उन्हें केवल शाक समझते थे। इसका अर्थ यह कि भीष्मके काल तक विद्यमान न रहने वाला इनका चातुर्वर्ण्य एसरहेडन नामक असुर राजाके काल तक आते-आते टूट चुका था; अर्थात् ईसाके ७०० वर्ष पूर्वके लगभग एक शाकवंशीय कुल बन चुका था। शक लोगोंने चातुर्वर्ण्यका कब तिरस्कार किया, इसका इतिहास भारतीय-आर्योंके पुराणोंमें मिलता है। विष्णु पुराणके चतुर्थांशके तीसरे अध्यायके अन्तमें बतलाया गया है कि शक लोग सूर्यवंशीय राजा सगरके समय चातुर्वर्ण्य-भ्रष्ट हुए। मनुस्मृतिके दसवें अध्यायके :

वृषलत्वं गता लोके इमाः क्षत्रियजातयः ॥४३॥[1]

आदि श्लोकोंमें भी विष्णुपुराणके इसी इतिहासका उल्लेख किया गया है। भविष्य पुराणके ब्राह्मपर्वके १३९वें अध्यायके आगे वर्णन मिलता है कि श्रीकृष्णके पुत्र साम्बने शाकद्वीपसे सूर्य-प्रतिमाके स्थापनार्थ भारतीय यादवोंके राज्यमें मंग नामक ब्राह्मणोंको बुलाया था। इन्हीं मंगोंको भोजक नामाभिधान प्राप्त है।

अनुष्ठान विहीना ये न ते भोज्यास्तु भोजकाः ॥३०॥[2]

—भविष्य पुराण, ब्राह्मपर्व, अध्याय क्र० १४७

इससे प्रतीत होता है कि श्रीकृष्णके पुत्र साम्बके कालमें शाकद्वीपीय मंग ब्राह्मणोंमेंसे कुछ धर्मभ्रष्ट हो चुके थे। यों, धर्मभ्रष्टता सगरके कालसे आरम्भ हो चुकी थी; साम्बके समय वह जोर पकड़ने लगी। उसके उपरान्त ईसवी सन्‌के आगे शाकद्वीपीय मंग ब्राह्मण क्वचित् स्थानों पर ही रह गये।

सारांश, असुरोंका राजा एसरहेडनकी जिन शकोंसे भेंट हुई, उन्हें वह केवल एक 'मन्द' नामसे ही जानता था। ऊपर कह आये हैं कि मन्द शाकद्वीपके पूर्वकालीन शूद्र थे। इन्हीं शूद्रोंने चातुर्वर्ण्यसे भ्रष्ट होकर एसरहेडनके कालमें सैनिक-वृत्ति अपनाई थी। एसरहेडन ईसाके ६८१ वर्ष पूर्वसे ईसाके ६६८ वर्ष पूर्व तक असुर देश पर राज्य करता रहा।

उपर्युक्त विवेचनसे एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलता है, जो इस प्रकार है : शक अर्थात् मन्दोंका उल्लेख ईसाके ६८१ वर्ष पूर्व एसरहेडनके इष्टिकालेखमें मिलता है। महाभारतके भीष्मपर्वके ग्यारहवें अध्यायमें मन्दोंकी जो जानकारी अथवा इतिहास दिया गया है, वह कमसे-कम ईसाके लगभग ६८१ वर्ष पूर्वका है, इसमें सन्देह नहीं। मैं समस्त भारतके कालके सम्बन्धमें नहीं कह रहा हूँ, भीष्मपर्वके ग्यारहवें अध्यायके मन्दोंके सम्बन्धमें कह रहा हूँ। उक्त उल्लेखके इतिहासका काल, न्यूनतम निकटताका अनुमान किया जाय, तो ईसाके लगभग ६८१ वर्ष पूर्वका मानना पड़ेगा।

परन्तु एसरहेडनके समय असुरोंको पता चल गया दिखायी देता है कि मन्द केवल शक हैं। वे चातुर्वर्ण्यबद्ध नहीं थे, एकवर्णीय थे, जब कि भीष्मपर्वानुसार यही मन्द शाकद्वीपीय चातुर्वर्ण्यके शूद्र थे। निश्चय

---

१. पौण्ड्रक, ओण्ड्र, द्रविड़, काम्बोज, यवन तथा शक : ये जातियाँ वृषल बन गई।—अनु०।
२. अनुष्ठानविहीन लोग भोज्य नहीं, भोजक हैं।—अनु०।

ही यह वर्णन ईसाके ६८१ वर्ष पूर्वकी समाज-स्थितिसे सम्बन्ध रखता है। भीष्मके मुखसे निःसृत होनेवाला वर्णन उन्होंने पुरातन इतिहासके रूपमें किया है जो उचित ही है; क्योंकि विष्णुपुराणके चतुर्थांशके तीसरे अध्याय-के अन्तमें लिखा है कि भीष्मके पूर्व राजा सगरके समयमें शकोंका चातुर्वर्ण्य भ्रष्ट हो चुका था। महाभारतकार, विष्णुपुराणकार तथा भविष्यपुराणकारने यह सूक्ष्म वर्णन कि शक लोग चातुर्वर्ण्यवद्ध थे, वे राजा सगरके कालमें चातुर्वर्ण्य-भ्रष्ट हुए, श्रीकृष्ण-सुत साम्बने शाकद्वीपसे भारतमें मंग ब्राह्मणोंको बुलाया आदि, हम लोगोंको धोखेमें डालनेके लिए कल्पनाप्रचुर उपन्यासकी भाँति नहीं किया है। जब तक असुरोंके इष्टिकालेख उपलब्ध नहीं हो पाये थे और हम नहीं जानते थे कि उनमें मन्दोंका उल्लेख है, तब तक उपर्युक्त उल्लेखोंको उपन्यासात्मक तथा काल्पनिक माननेकी प्रवृत्ति थी। परन्तु अब ऐसा करनेसे लाभ न होगा। शक और मन्दोंके विषयमें हमारे पुराण और महाभारत जो कुछ कहते हैं, उसका ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करना आवश्यक है।

हेरोडोटसने यह भी लिखा है कि शक याने स्कथिअन घुमक्कड़ तथा अर्ध-वन्य लोग थे, यह कथन भी विचारणीय है। महाभारत, विष्णुपुराण तथा भविष्यपुराणानुसार शक चातुर्वर्ण्यवद्ध, धर्मशील, पुण्यात्मा एवं महीयस थे। इसे भी भूलना नहीं चाहिए। मेरा अनुमान है कि आजसे पाँच हजार वर्ष पूर्व शक लोग आर्योंकी भाँति प्रगत तथा सुसंस्कृत थे। उनकी समाज-व्यवस्था चतुर्वर्ण्य थी, जब उन्होंने उक्त व्यवस्थाको त्यागा, तब वे अर्ध-वन्य स्थितिको प्राप्त हो गये और उसी समय असुरों एवं हेरोडोटसने उन्हें देखा। अर्ध-वन्या-वस्थामें उनकी एक ही जाति बनी रही और वह शूद्र थी। धर्मलोप होनेके कारण वे ब्राह्मण आदर्शानुसार वृषल बन गए - मनु संहिता इसकी साक्षिणी है। सारांश, यह कहना युक्तिसिद्ध होगा कि हेरोडोटसने शकोंकी घुमन्तू अवस्थाका जो वर्णन किया है, उससे महाभारत, विष्णुपुराण तथा भविष्यपुराणमें उपलब्ध शकोंकी चातुर्वर्ण्या-त्मक संस्कृतिका वर्णन अधिक प्राचीन है।

काइरस - व्यक्ति तथा जाति

प्रारम्भमें ही कह दूँ कि CYRUS भी एक अपभ्रष्ट नाम है। आधुनिक अंग्रेज उसे 'सायरस' कहते हैं, जो ठीक नहीं है। वास्तविक उच्चारण KURUS कुरुस होना चाहिए। यहाँ भी 'इ'के स्थान पर 'उ' चाहिए। यह कुरुस उर्फ कुरु, केम्बिससका पुत्र था। CAABYSES अर्थात् KARBUJIA, CYUSS father was just as Herodotus tells us CARBYSES (Kambujiya)—Historian's History of the World, 11.5.90.

केम्बिसस भी अपभ्रष्ट शब्द है। 'हिस्टोरियन्स हिस्ट्री ऑफ दि वर्ल्ड'के लेखक द्वारा कोष्ठकमें दिए गए "कम्बुजीय"से शब्द नहीं निकला है। कम्बोजस, कम्बोज रूपसे 'कम्बुजस' शब्द निकला है। यहाँ भी 'इ'के स्थान पर 'उ' होना चाहिए। कम्बोजस अर्थात् कम्बोज देशके राजाका पुत्र - काइरस, कुरुस। आशय यह है कि अंग्रेज और अनेक योरोपीय जिसे काइरस कहते हैं, वह कम्बोज देशके राजाका पुत्र है अथवा ऐसा कहें कि कम्बोजदेशीय है, तो अधिक उपयुक्त होगा। काइरसके प्रपितामहका नाम भी केम्बियस था, अर्थात् काइरस कुरुस, कुरुका कुल कम्बोज था, यह स्पष्ट है। कुरुस, कुरु मूलतः न एलामका था और न फारसका देश था। "यह ध्यानमें रखना चाहिए कि काइरस मूलतः फारसका राजा नहीं था, वह अनशानके एलाम प्रदेशका था। तिएस्पस (काइरसके पूर्वज)ने अनशानके एलाम प्रदेश पर ईसाके एक शती पूर्व अधिकार कर लिया था।" तात्पर्य यह है कि काइरस, कुरुस, कुरु, मूलतः न फारसका था, न एलामका था, वह कम्बोजका था। कम्बोज

देश आजके अफ़गानिस्तानके पूर्वमें स्थित था। कम्बोज देशके निवासियों और राजाको कम्बोज ही कहा जाता था।[1]

एलाम तथा एल्लिपि प्रदेशकी स्थिति

"एलाम बेबीलोनसे एक पर्वतावलीके उस पार पूर्वमें स्थित था।" (हि० हि० ऑफ दि वर्ल्ड, द्वितीय खण्ड : पृष्ठ ५८९)।

"वे असीरियाके पूर्वमें कैस्पियन सागर तक फैले हुए एल्लिपिमें उतरे। एल्लिपिकी राजधानी अक्वतनमें ..." (पृष्ठ ५५९)।

अर्थात् एल्लिपि मुख्य देश था, एलाम उसका एक सूबा था तथा अक्बतन मुख्य देशकी राजधानी थी। सीरिया तथा बेबीलोनके पूर्वमें कैस्पियन सागर तक व्याप्त प्रदेशका नाम एल्लिपि था और उसकी राजधानी अक्वतन थी। देखना होगा कि एल्लिपि प्रदेशका नाम भारतीय इतिहास तथा पुराणोंमें कहीं मिलता है अथवा नहीं। विष्णुपुराणके द्वितीयांशमें दूसरे अध्यायके निम्नलिखित श्लोकोंमें जम्वुद्वीपके भाग अथवा वर्ग इस प्रकार वतलाये गए हैं :

जम्बुप्लक्षाह्वयौ द्वीपो शाल्मलिश्चापरो द्विज।
कुशः क्रौंचश्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः॥५॥
जम्बुद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यसंस्थितः।
तस्यापि मेरुमैत्रेय मध्ये कनक पर्वतः॥७॥
भारतं प्रथमं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतं।
हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विज॥१२॥
रम्यकं चोत्तरं वर्षं तथैव तु हिरण्मयं।
उत्तराः कुरुवश्चैव यथा वै भारतं तथा॥१३॥
इलावृत्तं च तन्मध्ये सौवर्णो मेरुरुच्छितः॥१४॥[2]

यहाँ केवल सात वर्णोंका उल्लेख किया गया है, परन्तु जम्वुद्वीपमें कुल नौ हैं, जिनमें एक इलावृत्त है। 'इलावृत्त'के अन्तिम 'त्त'का प्राकृतमें 'प्पा' होकर 'इलाइप्प' अपभ्रंश होना सम्भव है। 'इलाइप्प'से वना 'एल्लिपि' असुरोंके इष्टिकालेखमें आता है। तात्पर्य यह कि असुर जिसे एल्लिपि कहा करते थे, उसीको पुराण इलावृत्त

---

१. मनु-संहिता कहती है कि कम्बोज मूलतः चातुर्वर्ण्यबद्ध थे, परन्तु क्रियालोपके कारण वृषल बन गए थे। कुल मिला कर काइरस दि एकीमीनस मूलतः कम्बोज था; फारसी, एलामी अथवा मेद नहीं था।

२. हे ब्राह्मण ! जम्बु, प्लक्ष नामक दो द्वीप, तीसरा शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और सातवाँ पुष्कर जम्बुद्वीप इन सबके मध्यमें रहा है। हे मैत्रेय ! उसके भी मध्यमें मेरु नामक सुवर्ण पर्वत है। भारत प्रथम वर्ष है और उसके बाद किंपुरुष वर्ष है। हे ब्राह्मण ! मेरु पर्वतके दक्षिणमें वैसे ही एक ओर हरि वर्ष है। उत्तर वर्ष तथा हिरण्मय वर्ष ये दो रम्य हैं। उत्तर कुरु भी भारतके समान ही है। फिर इलावृत्त है, जो दोनोंके मध्यमें है।—अनु०।

* * *

अथवा इलावृत कहते हैं। यह इलावृत्त वर्ष (भाग) मेरु पर्वतके पश्चिममें तथा असीरिया और बेबीलोनके पूर्वमें था। इलावृत्तके उत्तरमें कैस्पियन सागर और दक्षिणमें अपार समुद्र है।

मेरु इसी इलावृत्तके अर्थात् एल्लिपिके निवासी थे। मेदोंका वह सर्वप्रथम राजा, जिससे यूनानियोंका परिचय हुआ, डियोसेस था। यह शब्द संस्कृतके 'दिवौकस' जैसा प्रतीत होता है। डियोसेस अथवा दिवौकस-के बाद फ्रओर्तेस अथवा फ्रवर्ती राजा बना। फ्रवर्ती संस्कृतके 'अभ्रवर्ती'के निकट है। अभ्रवर्तीके बाद कायक्ज-रस आया। मेद लोगोंकी भाषामें उसका नाम हुवरख्शतर था (हि० हि० ऑफ दि वर्ल्ड, द्वि० खं०, पृ० ५८१)। यह शब्द संस्कृतमें 'भुवक्षत्र' होगा। भुवक्षत्रका पुत्र अस्त्याजेस था, जिसे असुर लोग इष्टुवेगु कहते थे। संस्कृत 'विष्णुवृद्ध'से इसकी तुलना की जा सकती है। इष्टुवेगु पर काइरसने आक्रमण किया और एल्लिपि पर अधि-कार कर लिया। काइरस तथा इष्टुवेगु, दोनों जम्बुद्वीपके वृषल-समान राजा थे। काइरस कम्बोज था, इष्टुवेगु इलावृत्तका मेद था। डियोसेस ग्रीक शब्द 'डैऔक्कु'के रूपमें ईसाके ७१३ वर्ष पूर्व असुरोंको ज्ञात था (हि० हि० ऑफ दि वर्ल्ड, द्वि० ख०, पृ० ५८१)। देवौक, फ्रवर्ती, हुवरख्शतर, एल्लिपि, अक्वतन (अक्षपतन) आदि शब्दोंसे प्रतीत होता है कि मेदोंकी भाषा संस्कृत-निकट अपभ्रंशके समान थी।

पारसीक (पर्सु)

"अस्त्याजस पर विजय पानेके तीन वर्ष बाद अर्थात् ईसाके ५४६ वर्ष पूर्व, उसने (काइरसने) अपनेको पर्सु (पारसीकों)का प्रथम सम्राट् घोषित किया।" ये पर्सु कौन थे?

पर्सु भारतीय आर्योंको दो नामोंसे ज्ञात थे - पह्लव तथा पारसीक। पह्लव पारसीककी अपेक्षा प्राचीन है, पर्सुके 'र'का 'ल' तथा 'स'का 'ह' होकर संस्कृत रूप 'पल्हु' बनता है। पल्हु सम्बन्वित व्यक्ति अर्थात् पाह्लव। पाह्लव अर्थात् पाह्लव। एल्लिपि में मेदोंके प्रदेशके दक्षिणमें इनके अधिकारमें बहुत छोटा-सा प्रदेश था। कम्बोजों (काइरस)ने जब इन पर विजय प्राप्त की, तबसे ये लोग इतिहासमें ईसाके लगभग ५५० वर्ष पूर्वसे 'पारसीक'के नामसे प्रसिद्ध हुए। उसके पूर्व पर्सु नामक एक छोटा-सा कुल एल्लिपिमें बहुत पुराना काल (ईसाके ४,००० वर्ष पूर्व) इतिहास-प्रसिद्ध हो चुका था। अप्रसिद्धावस्थामें जरथुस्त्रके द्वारा ईसाके लगभग १,००० वर्ष पूर्व उनके वैदिक धर्ममें परिवर्तन हुआ, विपर्यस्त धर्म अनेक पारसीकोंने ईसाके ५०० वर्ष पूर्व स्वीकार कर लिया।

'पह्लव' शब्द बहुतोंका अनुमान है कि 'पार्थव' से निकला है, परन्तु यह मूल है। पार्थियन्सके नामसे रोमन जिन्हें पहचानते हैं, उन्हें भारतीय-आर्य 'पारद' कहते थे। ये लोग पुरातन कालमें गान्धारके निकट निवास करते थे।

पह्लव पारसीकोंके नामसे इतिहासमें प्रसिद्ध होनेके पूर्व भारतमें प्रवेश कर कालान्तरमें दक्षिणमें फैल गये और काँचीके पल्लवोंका नाम धारण कर राज्य करते रहे। पल्लव वैदिक धर्मानुयायी थे, इसलिए अनुमान है कि वे जुरथुस्त्रका विपरीत-धर्म स्वीकार करनेके पूर्व भारतमें आये होंगे।

बेबीलोनी

इस शब्दमें भी 'ह'के स्थान पर 'उ' होना चाहिए। भारतीय-आर्य जिन्हें बर्बर कहा करते थे, वे यही बेबीलोनी थे। बर्बर=बब्बल, बाबल इस परम्परामें यह शब्द आता है। शान्तिपर्वके पैंसठवें अध्यायमें बतलाया गया है कि बर्बर ब्राह्मण आदर्श तथा क्रियालोपके कारण चातुर्वर्ण्य-भ्रष्ट हो कर वृषल बन चुके थे:

यवनाः किराता गान्धाराश्चीनाः शबरबर्बराः।
शकास्तुषाराः कंकाश्च पह्लवाश्चान्ध्रमद्रकाः॥

* * *

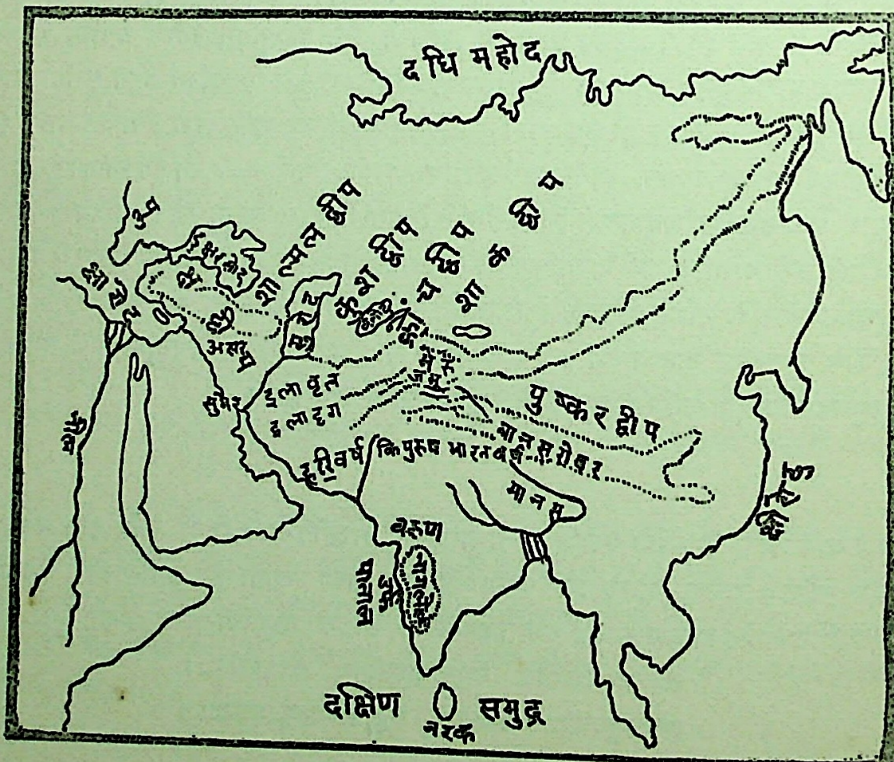
वेबीलोनियामें सुमेर नामक आर्यवंशियोंने ईसाके ६०० वर्ष पूर्वसे लेकर ४,५०० तक राज्य किया, इसके पश्चात् सेमिटिक-वेबीलोनियोंने अधिकार कर लिया (हि० हि० ऑफ दि वर्ल्ड, प्र० ख०)। यह इतिहास प्राचीन भूवर्णन तथा इतिहाससे लिया गया है, मात्र कल्पना-प्रसूत नहीं है। यह कहना कि हजारों राजाओं तथा स्थानोंके नाम केवल कल्पनाकी सहायतासे लिए गए, विकट अज्ञान फैलाना होगा।

शक-जाति तथा उसकी स्थिति

एल्लिपि अथवा इलावृत्त प्रदेश जम्बुद्वीपका एक भाग था। स्कथिअन या शक लोगोंने असुरोंके कालमें आक्रमण कर साम्राज्य अथवा छोटे-छोटे राज्योंकी स्थापना की। ये शक किस स्थानसे आये थे ? प्रश्नका उत्तर पुराण देते हैं। विष्णु पुराणमें इन सात द्वीपोंका वर्णन किया गया है: (१) जम्बुद्वीप, (२) प्लक्षद्वीप, (३) शाल्मलद्वीप, (४) कुलद्वीप, (५) क्रौंचद्वीप, (६) शाकद्वीप तथा (७) पुष्कर द्वीप। इसकी स्थिति आगे दिये गए मानचित्रसे प्रकट हो जाएगी।

इस मानचित्रसे विष्णुपुराणकारको ज्ञात सप्त द्वीपोंकी स्थितिस्थूलतः अनुमान की जा सकती है। सबसे पहले मानचित्रमें देखिए कि मेरुपर्वत कहाँ है ? क्योंकि इसी पर्वतको आधार मानकर विष्णुपुराणकारने पूर्वदिशाके अनुमानसे सप्तद्वीपों और विशेषतः जम्बुद्वीपका वर्णन किया है। जम्बुद्वीप सातों द्वीपोंके मध्यमें स्थित है और उनके बीचोंबीच मेरु पर्वत है - यह कथन विष्णुपुराणके द्वितीयांशके द्वितीयाध्यायके प्रारम्भिक अध्यायोंसे संकलित किया गया है। जिज्ञासु पाठकोंको उक्त अध्यायोंका सूक्ष्म अध्ययन करना चाहिए।

जम्बूद्वीप: आज उपलब्ध योरोपीयों द्वारा वनाए गए मानचित्रोंमें कश्मीरके उत्तरमें एक विन्दुसे निकली छह पर्वतोंकी पंक्तियाँ दिखलाई गई हैं:



* * *

(१) हिमालय, (२) काराकोरम (३) कुएनलुन, (४) थिएनशान, (५) हिन्दुकुश और (६) सुलेमान। ये छह पर्वत जिस मध्य बिन्दुसे निकलते हैं, उसे विष्णुपुराणकार मेरु पर्वत कहते हैं। यह पर्वत भूपद्मकी कर्णिकाकी भाँति है। इसके दक्षिणमें (१) हिमालय, (२) हेमकूट तथा (३) निषध - ये तीन पर्वतराशियाँ हैं और उत्तरमें (४) नील, (५) श्वेत तथा (६) शृंगी पर्वत हैं। हिमालय प्रसिद्ध है, हेम कूट, हिन्दूकुशका और निषध आजके सुलेमान पर्वतका प्राचीन नाम है। ये पर्वत मेरुके दक्षिणमें स्थित हैं। नील काराकोरम, श्वेत, कुएनलुन और शृंगी थिएनशान मेरुके उत्तरके पर्वत हैं। ये छह पर्वत जिस द्वीपमें अवस्थित हैं, उसे जम्बुद्वीप संज्ञा दी गयी है। आज कश्मीरमें जम्मू नामक नगर तथा प्रदेश है। उसका प्राचीन नाम जम्बु रहा होगा। जम्बुद्वीपके (१) भारतवर्ष, (२) किंपुरुषवर्ष, (३) हरिवर्ष, (४) रम्यकवर्ष, (५) हिरण्मयवर्ष, (६) उत्तरी कुरुवर्ष, (७) इलावृत्त वर्ष, (८) भद्राश्ववर्ष तथा (९) गन्धमादनवर्ष : ये नौ विभाग हैं। पहले तीन मेरुके दक्षिणमें, दूसरे तीन मेरुके उत्तरमें हैं तथा इन छहोंके मध्यमें पश्चिमकी ओर इलावृत्तवर्ष, पूर्वमें भद्राश्ववर्ष तथा बीचमें गन्धमादन वर्ष फैला हुआ है। हिमालयके दक्षिणमें तथा दक्षिण समुद्रके उत्तरमें स्थित वर्ष विख्यात भारतवर्ष है। मानसरोवरकी धारणा करनेवाला भद्राश्ववर्ष है। आजके अफ़गानिस्तान तथा फ़ारस देश जिस प्रदेशमें स्थित हैं, वही प्राचीन इलावृत्त वर्ष और मेरुके उत्तरमें जो वर्ष है, वह उत्तरी कुरुवर्ष है। अति प्राचीनकालमें इन्द्रादि देवता जम्बुद्वीपके गन्धमादनमें अर्थात् मेरु प्रदेशमें निवास करते थे।

प्लक्षद्वीप

आजका एशियाई तुर्किस्तान, योरोपीय तुर्किस्तान और यूनान मिलकर प्राचीन प्लक्षद्वीपकी स्थिति बतलाते हैं। यूनानके इतिहासमें अतिपुरातन लोगोंको जो 'पेलागिक' कहा जाता था, उससे यह शब्द 'प्लक्ष' पहचाना जाता है। 'पलास्ग' 'प्लक्ष'का अपभ्रंश है, इसमें सन्देह नहीं। पलास्ग या प्लक्ष लोग द्योर, पूषन्, द्यावा पृथ्वी आदि देवताओंकी उपासना करते थे। प्लक्षद्वीप क्षारोद सागरके तटपर बसा है और क्षारोद आजका भू-मध्य सागर है। प्लक्षद्वीपमें भी जम्बुद्वीपकी भाँति आर्यक, कुरब, विविंश तथा भाविन-ये चार वर्ण थे :

प्लक्षद्वीपादिषु ब्रह्मन् शाकद्वीपान्तिकेषु च।
—विष्णुपुराण, द्वितीयाध्याय-श्लो० १५

उक्त श्लोकार्द्धसे ज्ञात होता है कि शाल्मल, कुश तथा क्रौंच द्वीप इक्षुरसोद तथा आदि द्वीप प्लक्ष तथा शाक द्वीपोंके मध्यमें स्थित थे। इनमें वर्णाश्रम संस्थाएँ विद्यमान थीं।

शाल्मलद्वीप

आजके ब्लैक-सी या कालासागरका प्राचीन नाम इक्षुरसोद था। इक्षुरसोद तथा कैस्पियन सागरके मध्यका प्रदेश शाल्मलद्वीप था; वहाँ भी चातुर्वर्ण्य-संस्था थी, जिनके नाम क्रमशः कपिल, अरुण, पीत तथा कृष्ण थे।

कुशद्वीप

वर्तमानकालीन कैस्पियन सागर ही इक्षुरसोद तथा अराल सागर घृतोद था। इन दोनोंके बीच बसा

* * *

हुआ था कुशद्वीप। जहाँ दमिन्, शुष्मिन्, स्नेह तथा मन्देह-ये चार वर्ण थे। कुशद्वीप हिन्दुकुश पर्वतके उत्तरमें स्थित था। इतिहासमें असुरों तथा बर्बरोंने कुशद्वीपियोंको 'कोसियन्स' कहा है।

ईसाके १७८५ वर्ष पूर्व एलामके पर्वतीय कोसियन्सने बेबीलोनियामें अपने वंशकी नींव डाली (हि० हि० ऑफ दि वर्ल्ड, प्र० खं०, पृ० ५२८)।

कद्फिसस तथा कनिष्क कुश या कुशान थे। "दजला नदीके पूर्वमें लाग्रोस पर्वतके गहन प्रदेशोंमें युयुप्सु कोसियन्सकी जातियाँ निवास करती थीं।" (हि० हि० ऑफ दि वर्ल्ड, प्र० खं०, पृ० ३४१)।

क्रौंचद्वीप

घृतोदके पश्चिममें क्रौंचद्वीप था-वह भूभाग जहाँ आज समरकन्द और बुखारा नगर हैं। वहाँ भी चातुर्वर्ण्य व्यवस्था थी। उनका नाम असुर कहा गया है, जो मुझे इतिहासमें नहीं मिला।

शाकद्वीप

क्रौंच द्वीपके पूर्वमें उत्तरी सागर तथा अल्ताई पर्वत दिशामें शाकद्वीप बसा हुआ था। इस द्वीपमें मग, मशक, मानस तथा मन्दग-चार वर्ण थे; जिनका विवरण आरम्भमें दिया जा चुका है। उनकी जनसंख्या विशाल थी और इतिहासमें उनका प्रायः उल्लेख होता है।

पुष्करद्वीप

आजके चीनके उत्तरमें स्थित प्रदेश पुष्कर द्वीप कहलाता था। यहाँके निवासी एकवर्णीय थे। कुएन-लुन पर्वतने इस द्वीपको दो भागोंमें बाँट दिया था। विष्णुपुराणकार कुएनलुनका उल्लेख मानसोत्तरके नामसे करते हैं :

> एकश्चात्र महाभाग प्रख्यातो वर्षपर्वतः।
> मानसोत्तरसंज्ञो वै मध्यतो वलयाकृतिः ॥७५॥
> पुष्कर द्वीपवलयं मध्येन विभजन्निव।
> स्थितोऽसौ तेन विच्छिन्नं जातं तद्वर्षकद्वयं ॥७७॥[1]

—विष्णुपुराण, द्वितीयांश, चतुर्थोध्याय

विष्णुपुराणके उपर्युक्त वर्णनसे शाकद्वीपकी निश्चित स्थिति ज्ञात होती है। जम्बुद्वीपके पश्चिममें प्लक्षद्वीप, पूर्वमें पुष्करद्वीप, उत्तरमें शाल्मल द्वीप, क्रौंच द्वीप तथा शाकद्वीप और इन सबके बीचमें जम्बुद्वीप था। जम्बुद्वीपका दक्षिण भाग भारतवर्ष था। पश्चिमी भाग इलावृत्त, उत्तरी भाग कुरुवर्ष तथा पूर्वी भाग भद्राश्ववर्ष था। उत्तरी कुरुवर्ष उत्तरमें उत्तर सागर तक फैला प्रदेश शाकद्वीप था।

विष्णुपुराणकारको धरतीकी पूरी जानकारी थी, तभी वे प्रत्येक द्वीपके विभागों, पर्वतों, नदियों, सरोवरों तथा निवासियोंके विषयमें सूक्ष्मतम बात लिख गये हैं। विभागों, नदियों, सरोवरों और निवासियोंकी नामा-

---

१. हे महाभाग! यहाँ मानसरोवर नामक एक वर्ष पर्वत है, जो मध्य में कंकणाकार है। वह मध्यसे पुष्कर-द्वीप-मण्डलको विभक्त करता है। इसलिए ये दो वर्ष अलग-अलग हो गए या तोड़े गए।—अनु०।

* * *

वली तक वे दे देते हैं। ये विभाग और नाम मात्र-कल्पनाका चमत्कार है, ऐसा कहना अन्याय होगा। वर्वरों, असुरों तथा यवनोंके इतिहासमें विष्णुपुराणकारने कुछ देशों और लोगोंकी नामावली दी है, वह इस प्रकार है:

जम्मू = जम्वु, हिन्दूकुश = हेमकूट, एलाम = इलावृत्त, अशूर = असुर, वेबीलोन = वर्वर, पलास्ग = प्लक्ष, कोसियन = कुश, स्कथियन = शक, वारसेस = पारस, पर्सु = पह्लव आदि नामोंसे पाया जानेवाला साम्य उत्सुकता-वर्द्धक उपन्यासनुमा नहीं है। प्राचीन भूवर्णनका उन्हें जितना ज्ञान था, उन्होंने पुराणमें दे दिया है। विष्णु-पुराणकी रचना शक-सम्वत् ४ अथवा ५वीं शती (ईसाकी पाँचवीं अथवा छठी शती) में हुई होगी। परन्तु द्वितीयांशके प्रारम्भिक पाँच अध्यायोंमें तथा चतुर्थांशके चौवीसवें अध्याय तक पुरातन भू-स्थिति तथा इतिहासका वर्णन किया गया है, इसमें सन्देह नहीं है।

असुर

अश्शुर, अश्शूर, असुर लोग वर्तमान दजला नदीके तथा वेबीलोनके उत्तरी भागके निवासी थे। उन्होंने निनेवामें ईसाके १८३० वर्ष पूर्वसे ५३८ वर्ष पूर्व तक राज्य किया। इसके पूर्व ये लोग स्वतन्त्र साम्राज्य-के अधिपति नहीं थे, वेबीलोनके अन्तर्गत थे। सेमेटिक वेबीलोनियन्सके वे सम्वन्धी थे। वेबीलोनियोंकी भाँति उनमें सुमेरोंका रक्त नहीं मिल पाया था। असुर ऊँचे कदके और मजवूत काठीके होते थे। शत्रुके साथ अत्यन्त क्रूरता तथा वीभत्स व्यवहार करते थे। पराजित शत्रुके साथ सभ्यताका वर्ताव करनेकी आर्योंकी प्रवृत्तिसे उन्हें चिढ़ थी, भारतीय इतिहास तथा पुराणोंमें उनके वर्णन मिलते हैं। जो योरोपीय इतिहासकारोंसे वहुत मिलते हैं। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि असुर्या अथवा असूर्या देशके असुर ही पुराणों तथा इतिहासके असुर हैं। योरोपीय इतिहासकारों तथा संशोधकोंके ध्यानमें यह तादात्म्य अवश्य आया होगा, पर उसे स्पष्ट स्वीकार करनेमें वे अव भी हिचकिचाते हैं। इसका कारण स्पष्ट है। सेमेटिक अर्थात् असुरोंसे यहूदी संस्कृति निष्पन्न हुई, यहूदी धर्म विकसित हुआ; जिसे आजके योरोपीयोंने स्वीकार कर लिया है। क्रूर तथा असभ्य असुरोंसे सम्वन्ध स्वीकार करना किंचित् लांछनास्पद अवश्य कहा जायगा, किन्तु शास्त्र तथा सत्यके संशोधनमें उसे क्या स्थान मिलता है?

ईसाके १८३० वर्ष पूर्व निनेवामें साम्राज्य स्थापित करनेके पूर्व ईसाके ७००० वर्ष पूर्व तक यह जाति छोटे-मोटे राज्य स्थापित कर चुकनेके वाद तथा वेबीलोनके सुमेर-आर्य तथा सेमेटिक राजाओंके आधिपत्य कालमें भारतमें आई होगी। इसका प्रमाण उपस्थित किया जा सकता है। कृष्ण तथा पाण्डवोंके कालमें बकासुर, जरासन्ध, शिशुपाल, कंस, मायासुर आदि अनेक असुर प्रसिद्ध थे। इनमेंसे कुछ असुरोंका पाण्डवोंने और कुछका कृष्णने वध किया। ये असुर भारतमें कब आये? ईसाके १८३० वर्ष पूर्वसे ईसाके ५३८ वर्ष पूर्व तक असुर वर्तमानकालीन अफगानिस्तान तथा वलोचिस्तान तक कभी नहीं पहुँच पाये। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि ईसाके १८३० वर्ष पूर्वके पहले वेबीलोन सेमेटिक राज्यमें, परन्तु वहुधा तब, जबकि सुमेर आर्य वेबीलोन पर अधिकार किये हुए थे, असुर भारतमें आये होंगे। यदि यह सत्य है तो स्वीकार करना पड़ेगा कि कृष्णार्जुन ईसाके १८३० वर्ष-पूर्वके हजार-बारह सौ वर्ष पूर्व हुए होंगे। अय्यर इत्यादि अनेक विद्वान् युधिष्ठिरका काल ई०के ११७६ वर्ष पूर्वमें प्रारम्भ हुआ मानते हैं, कई विद्वान् और भी चार-पाँच सौ वर्ष पीछे जाते हैं। परन्तु कृष्ण युधिष्ठिरके युगमें भारतवर्षमें मगध, मथुरा, काठियावाड़ आदि प्रदेशोंमें असुरोंके राज्य ई०के १८३० वर्ष पूर्वके पहले विद्यमान होनेकी सम्भावना कम होनेकी स्थितिमें युधिष्ठिर काल परम्परानुसार ईसाके ३१७६ अथवा ३१०२ अथवा ३०७६ वर्ष पूर्व स्वीकार करना युक्ति-संगत मालूम पड़ता है।

* * *

हमें विश्वास है कि ज्यों-ज्यों असुर तथा बर्बरोंके इष्टिकालेख प्रकाशमें आते जायेंगे, त्यों-त्यों प्राचीन भारतीय-इतिहास भी आलोकित होता जायगा और इतिहास, पुराण तथा ब्राह्मणोंके उल्लेख स्पष्ट होते जायेंगे। अतएव हिन्दुओंको भी असुर तथा बर्बर इष्टिकालेखोंका अर्थ समझनेका प्रयत्न करना चाहिए।

शितिरपर्ण तथा एपर्ण

"इससे एसरहेडनको मेदोंसे अपना बदला लेने और उनके देशमें हठपूर्वक युद्ध करनेका अवसर मिला। वह अपने पूर्वजोंकी अपेक्षा मेदोंके प्रदेशको दूर तक पदाक्रान्त करता चला गया - यहाँ तक कि पतुशर्री (पतिस्खोरिया) का प्रदेश, जो मेदोंके आधिपत्यमें बिकनी-पर्वतके निकट तक बसा था और जहाँ रत्न मिलते थे; नहीं बच सका। वहाँ शितिरपर्णा तथा एपर्णा नामक दो शक्तिशाली राजा राज्य करते थे, जिनके नाम ईरानी प्रतीत होते हैं।" (हि० हि० ऑफ दि वर्ल्ड, पृष्ठ ४२३)।

उपर्युक्त उद्धरणमें शितिरपर्णा तथा एपर्णा : दो पर्ण शब्दान्त नामोंका उल्लेख हुआ है। अब देखें कि भारतवर्षके इतिहासमें इनसे मिलते-जुलते नाम कहीं देखनेमें आते हैं अथवा नहीं। आन्ध्रभृत्योंके शिलालेखमें तथा मुद्राओं पर नहपान, चतुरपन, चतरपन आदि नाम खुदे हैं (बॉम्बे गजेटियर, खं० १, भा० २, पृ० १५४)। डॉ० भण्डारकरका मत है कि 'नहपान कोई यूनानी नाम नहीं प्रतीत होता, अतः वह या तो शक होगा अथवा पह्लव' (वही, पृ० ११५)। चतुरपन या चतरपन असुर लेखान्तर्गत शितिरपर्ण जैसा दिखता है। यह नाम पह्लव ईरानी है। इसी प्रकार चतुरपन तथा नहपान पह्लव हैं, ऐसा प्रतीत होता है। पह्लवोंमें र० शश्र-पैति (संस्कृत [छत्रपति, ग्रीक] संट्रप) उपाधि थी। नहपान महानक्षत्र था।

पर्ण - पण्ण - पाण

'नहपान' शब्द मूलतः 'नहपाण' रहा होगा और 'चतरपन' द्वित णकारयुक्त 'चतरपर्ण्ण'।

'हिस्टोरियन्स हिस्ट्री ऑफ दि वर्ल्ड'का उपर्युक्त कथन ईसाके ५७३ वर्ष पूर्वके पश्चात्से सम्बन्ध रखता है। उसके उपरान्त पह्लव दो-चार शतियोंमें पंजाब, मालवा, काठियावाड़, गुजरातसे लेकर काँची तक फैल गए। काँचीमें वे 'पल्लव' नामसे प्रसिद्ध हुए।

सिमेरिअन्स

इस शब्दमें 'स'के स्थान पर 'क' होना चाहिए। वास्तविक उच्चारण 'किमेरिअन्स' है। 'हि० हि० ऑफ दि वर्ल्ड'के प्रथम खण्डके पृष्ठ ४२२ पर लिखा है कि किम्मिरिके या किमेरियोंके सम्राट् तिउष्प - अधिक उचित होगा, यदि कहें उन्मन-मन्दके विरुद्ध जो दूर निवास करता था और आगे चलकर जो अश्शूर तथा बेबीलोनके लिए सिरदर्द बन गया था - द्वारा किए गए आक्रमणको ध्यानमें रखना होगा।

भारतीय इतिहास-पुराणोंमें किंपुरुष, किन्नर विख्यात है। प्रतीत होता है कि इन्हीं किन्नरोंको ही ग्रीक इतिहासकार 'किमेरिअन्स' कहते हैं। किंपुरुषवर्ष अथवा किन्नरवर्षका एक भाग था। किन्नर शकों अथवा मन्दोंसे भिन्न थे। उपर्युक्त ग्रन्थका लेखक उनकी गणना मन्दोंमें करता है, जो भ्रामक मालूम पड़ती है।

देव तथा मानव

जम्बुद्वीपके बीचोंबीच स्थिति मेरु पर्वतके आसपास निवास करनेवाले देव कहलाये :

चतुर्दश सहस्राणि योजनानां महापुरी।
मेरोरुपरि मैत्रेय ब्राह्मणः प्रथिता दिवि॥२९॥
तस्याः समन्ततश्चाष्टौ दिशासु विदिशासु च।
इन्द्रादिलोकपालानां प्रख्याताः प्रवराः पुरः॥३०॥[1]

विष्णुपुराणकारको ज्ञात था कि इन्द्रादि देवता मेरु पर्वतके पास निवास करते हैं। मानव देवताओंके अनुचर हैं। आगे चलकर भारतवर्षमें बस जानेके पश्चात् वे भारतीय आर्य कहलाने लगे। पराक्रमी व्यक्तियों-को ईश्वरांश मानने वाले मानव 'देव' नामक लोगोंको अत्यन्त प्राचीन कालसे ईश्वरांश मानते थे। इन्हें समाप्त हुए कल्पनातीत समय बीत चुका है।

विश्वसनीय-अविश्वसनीय

अब तक (१) मेद, (२) मन्द, (३) शक, (४) असुर, (५) बर्बर, (६) सुमेर, (७) पर्शु, (८) पह्लव, (९) पारसीक, (१०) कुश, (११) प्लक्ष, (१२) किन्नर, (१३) कम्बोज, (१४) देव तथा (१५) मानव-इन पन्द्रह वंशोंका और उनकी स्थितिका इतिहास पुराणों तथा असुरोंके इतिहासके आधार पर वर्णन किया गया। इसका अध्ययन करनेसे विश्वास होता है कि महाभारतमें किये गए अनेक वर्णन अधिकांशतः विश्वसनीय हैं, किन्तु वह अनेक अविश्वसनीय बातोंसे सम्बन्धित है। उन्हें प्रमाणच्छुरिकासे अलग कर, असुरादि लोगोंके इतिहासमें पाये जाने वाले विश्वसनीय विवरणोंको चुननेके साधनोंका स्पष्ट उल्लेख करना चाहिए। उदाहरणार्थ, विष्णुपुराणमें जम्बुद्वीपके अन्तर्गत मेरुपर्वतकी स्थिति उचित प्रमाणों द्वारा सिद्ध की गयी है, साथ ही उसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाईका जो वर्णन किया गया है; वह अयथार्थ है। कहनेका आशय यह कि पुराणों और इतिहासके मजमूनकी भली-भाँति परीक्षा करनी चाहिए, जो की जा सकती है। प्रायः पुराणकारोंका विवरण अपनेसे प्राचीन इतिहास तथा आख्यायिकाओं पर आधारित होता है; यही नहीं, उनकी प्राचीनतम इतिहास तथा भूभागकी जानकारी स्वपरीक्षित नहीं होती। सिद्ध हो चुका है कि वे कई बार अपने युगमें प्रचलित जनश्रुतियों और काल्पनिक दुष्टाग्रहोंके योगसे प्राचीन वास्तविक इतिहासको विगाड़ देते हैं। मान लीजिए कि पुराणकार भूत लोगोंका विवरण दे रहे हैं, वे नहीं जानते कि भूत आजके भूटान, भूतान, भूतस्थानके निवासी हो सकते हैं; बल्कि भूतका अर्थ 'प्रेतादिवर्गके व्यक्तिसमूह' ग्रहण करते हैं और तब भूत लोगोंकी विलक्षण कथाएँ सज-धज कर प्रस्तुत हो जाती हैं।

भूतभाषामयीं प्राहुरद्भुतार्थां बृहत्कथाम्।

श्लोकार्द्धमें दण्डीका कथन है कि बृहत्कथा भूतभाषामें लिखी गयी। वास्तविक अर्थ यह है कि बृहत्कथा भूतान, भूतस्थान नामक देशमें निवास करनेवाले पिशाच लोगोंकी पैशाची अथवा भूतभाषामें लिखी गयी। हमारे पुराणकार इसी श्लोकार्द्धका अर्थ बतलाते हुए कहेंगे कि बृहत्कथा भूतोंकी याने प्रेतोंकी भाषामें लिखी गयी। पुराणकारोंकी ग्राम्यता अनेक प्रमाणज्ञ आधुनिक विद्वानों पर भी छा जाती है। डॉ० भण्डारकर 'भूत' शब्दका अर्थ (पिशाच) मानते हैं। "दण्डीने अपने ग्रन्थ काव्यादर्शमें पैशाची नामक प्राकृतमें जो पिशाचोंकी भाषा

---

१. हे मैत्रेय! चौदह हजार कोसका विशाल महानगर मेरु पर्वतके ऊपर बसा हुआ है। स्वर्गमें ब्राह्मण प्रसिद्ध हैं और फैले हुए हैं। उनके चारों ओर आठ दिशाओंमें और छोटी-छोटी विदिशाओंमें इन्द्रादि लोकपालों-के श्रेष्ठ नगर प्रसिद्ध हैं।—अनु०।

थी, लिखित बृहत्कथा नामक ग्रन्थका उल्लेख किया है।" (भण्डारकरका "दक्षिणका इतिहास", दूसरा भाग)।

तात्पर्य, पुराण-इतिहासमें निहित प्राचीन वास्तविक इतिहास पर छाई हुई मलिनता तथा तर्क-हीनताकी गर्द साफ कर आधुनिक खोजोंकी सहायतासे भली-भाँति परीक्षा कर उसे स्वीकार करना चाहिए।

छह द्वीपोंका चातुर्वर्ण्य

विष्णुपुराणकारका कथन है कि प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच, शाक तथा जम्बु - इन छह द्वीपोंमें चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था थी, इसका आशय यह कि आज जिन देशोंको ग्रीस, मेसीडोनिया, तुर्की, मिस्र, एशियाई-तुर्किस्तान, फारस, काकेशीय प्रदेश, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, पामीर, हिन्दुस्तान कहा जाता है; उनमें प्राचीनकालमें चातुर्वर्ण्य समाजसंस्थाका अस्तित्व था। पुराणकारोंको इससे भी प्राचीन स्थितिका ज्ञान था, जो वर्तमान योरोपीय संशोधकों द्वारा प्रमाणित किया गया है :

"गोगेके सभापतिका मत है कि प्राचीन असीरियन साम्राज्यमें समाज हिन्दुओंके समान जातियों तथा पैतृक व्यवसायोंके आधार पर विभाजित था; यही नहीं, यह विभाजन बहुत प्राचीनकालसे लगभग समस्त एशियामें फैला हुआ था। सेक्रप्सने एटिकके निवासियोंको चार जातियोंमें बाँट दिया था। टेसियसने आगे चलकर सम्भवतः पुरोहितों तथा सरदारों या शासकोंके वर्गको मिलाकर केवल तीन जातियाँ रखीं। उस समय ये तीन जातियाँ रहीं : शासक तथा पुरोहित, मजदूर या खेतिहर और कारीगर; और इसमें कोई सन्देह नहीं कि मिस्रियों तथा भारतीयोंकी भाँति इनके व्यवसाय पैतृक होते थे। अरस्तूसे हमें स्पष्टतः पता चलता है कि मिस्रियोंकी देखादेखी क्रीटमें भी समाज मायनोसके सिद्धान्तानुसार जातियोंमें विभाजित था। फारस देशमें भी हिन्दुओंकी भाँति प्राचीन कालमें जाति-विभाजनका महत्वपूर्ण प्रमाण मिलता है। जेंद-अवेस्तामें निम्नलिखित उद्धरण आया है :

अहुर्मज्दने कहा, "आचारके तीन सिद्धान्त हैं, राज्य चार प्रकारके हैं तथा प्रतिष्ठाकी चार स्थितियाँ और पाँच स्थान हैं। वे स्थितियाँ हैं : पुरोहित, सैनिक, खेतिहर (सम्पत्तिका साधन) तथा कारीगर या मजदूर। आज पर्याप्त अवशेष सिद्ध करते हैं कि लंकाके बौद्धोंमें भी इसी प्रकार का विभाजन प्राचीनकालसे प्रचलित था। परिणामतः कहा जा सकता है कि एशियाके अधिकांश प्रदेशोंके अन्य जनोंकी भाँति बौद्धोंमें भी यही प्रथा थी।" (हि० हि० ऑफ दि वर्ल्ड, द्वि० खं०, पृ० ५१५)

सारांश यह कि आधुनिक संशोधक तथा प्राचीन पुराणकार इस तथ्य पर सहमत हैं कि दोनोंकी जानकारियोंके सूत्र स्वतन्त्र हैं; अतः वे मात्र सिद्धान्तका रूप लिए हुए हैं।

प्रश्न है कि वह कौन-सा समय था कि जब यूनानसे लेकर चीन तक फैले विस्तीर्ण भू-भागपर प्राचीनकालमें चातुर्वर्ण्य समाज-व्यवस्था जारी थी? मेरे विचारमें वह काल ७०० ई० के लगभग होगा। उस समय बेबीलोनमें सुमेर नामक आर्य राज्य कर रहे थे और अर्वाचीन यूनानमें प्लक्षोंका निवास था।

इन चातुर्वर्ण्यबद्ध देशोंसे शक, यवन, पह्लव, पारसीक आदि ईसाके २०० वर्ष पूर्वसे लगातार भारतखण्डमें चले आ रहे थे, यद्यपि उस कालमें उनकी वर्णाश्रम-व्यवस्था नष्ट हो चुकी थी; फिर भी उसकी स्मृति तब भी शेष थी। इसी कारण सूर्य, विष्णु, शिव आदि देवता उनके लिए नवीन नहीं थे। हिन्दुओंने जिस सहज भावसे बौद्ध-धर्म स्वीकार किया, इन्होंने भी किया। शक, यवन, पह्लवादि चातुर्वर्ण्यहीन लोगोंको और विशेषतः आर्योंको कोई आश्चर्य न हुआ। तत्कालीन आर्य भलीभाँति जानते थे कि विदेशी अपनी भाँति चातुर्वर्ण्यबद्ध थे। इसी कारण, शक, यवन तथा पह्लवोंको सच्चे अर्थमें विदेशी मानते ही नहीं थे। वे यह समझते थे कि ये

* * *

अपने पड़ोसी हैं और अंशतः अपने ही चातुर्वर्ण्यहीन लोगोंमेंसे हैं। शकों, यवनों और पह्लवोंकी सूर्यादि देवताओं-की उपासनाका प्रमाण पाकर बहुतसे संशोधक अनुमान करते हैं कि इन लोगोंने भारतमें आकर हिन्दूधर्म स्वीकार कर लिया अर्थात् इसके पहले वे हिन्दू नहीं थे। उपर्युक्त विवेचनसे वास्तविकताका भलीभाँति तथा यथार्थ अनुमान किया जा सकता है।

भारतकी दक्षिण दिशाके देश

हिमालयके दक्षिण, समुद्रके उत्तर तथा विन्ध्यके उत्तरमें स्थित प्रदेशको भारतवर्षका नाम दिये जाने-के पूर्व जम्मूके दक्षिणमें स्थित छोटेसे भूभागको प्राचीनकालमें भारतवर्ष कहा जाता था। ज्यों-ज्यों भारतीय प्रजा फैलती गयी, त्यों-त्यों विस्तृत प्रदेश हिमालयके दक्षिण तथा विन्ध्यके ऊपरका समस्त प्रदेश - भारतवर्ष नाम धारण करता गया। आज कन्याकुमारी तक सारा भूमाग भारतवर्ष कहलाता है। परन्तु जैसा कि आरम्भ-में बतलाया गया, प्राचीकालमें यह स्थिति नहीं थी। जम्मू अर्थात् प्राचीन भारतके दक्षिण-पश्चिममें वरुण-लोक तथा पाताल-लोक या नाग-लोक अर्थात् आजका कोंकण था।

—राजवाड़े लेख-संग्रहसे साभार

●

* * *

श्रीदेवदत्त शास्त्री

भारतीय-इतिहासकी अखण्ड-यात्रा

○ ○ ○

"समस्त चराचर दृश्य जगत् प्रारम्भमें 'आत्मन्' था। वैदिक वाङमयके अध्ययनसे पता चलता है कि 'जब सर्वप्रथम मनुष्य पैदा हुआ, तो अकेले और पुरुष रूपमें वह था। उसने अपनी आँखोंसे चारों ओर देखा तो अपनेको अकेला पाया। उसके मुँहसे अनायास 'अहमस्मि'की ध्वनि निकली; इसलिए उसका नाम 'अहं' हो गया। एकाकी होनेसे वह डरा, क्योंकि अकेले नहीं रम सका, इसीलिए कि एकाकी मनुष्य नहीं रमता। उसके मनमें एक सहयोगी - साथीकी इच्छा उत्पन्न हुई। इच्छा करते ही आलिंगनबद्ध स्त्री-पुरुषकी भाँति वह हो गया। उसने अपने इस अर्ध नारीश्वर रूपको दो भागोंमें विभक्त किया, तो उसमें पति और पत्नी हो गए। उस दम्पतिसे मनुष्य, गो, अश्व, गर्दभ, अजा, पिपीलिका आदि सब कुछ उत्पन्न हुआ।"

इस उपनिषद् वर्णनका मिलान यदि हम संसारमें प्रचलित अन्य मनुष्योत्पत्तिकी कथाओंसे करते हैं, तो कोई अन्तर नहीं पड़ता है। आत्मन् नाम भारतीय दृष्टिकोणसे आदि-पुरुषका ही है, सभ्यता और विचारोंके विकासके साथ ही आत्मन् नाम ब्रह्म या परब्रह्मका पड़ गया। वस्तुतः आत्मन् और परब्रह्म दोनों नाम समानार्थक हैं। समिष्टमें जो ब्रह्म कहा जाता है, वही व्यष्टि देहके लिए देही माना जाता है। भारतीय अद्वैतवादी सिद्धान्तकी अनेक बातें बाइबिलकी द्वैतवादी ऐडम्स (आदम) कथाओंमें पायी जाती हैं। जैसे:

"ईश्वरने कहा कि मनुष्यका अकेला रहना ठीक नहीं। मैं उसीमेंसे उसका एक साथी भी बनाऊँगा। ऐडम (आदम)ने कहा कि वह मुझसे निकली है, इसीलिए उसका नाम मानवी होगा।"

ऐडमने अपनी पत्नीका नाम 'ईव' रखा, क्योंकि वह सभी प्राणियोंकी माता है।

बाइबिलके प्रारम्भमें ईश्वरको इलो-हीम कहा गया है। वैदिक भाषामें इला धातुसे इल, अल और ईल शब्द निष्पन्न होते हैं, वैदिक 'हम्' शब्दसे ही 'इलो-हीम' शब्द निकला है। कदाचित् अल्लाहकी शब्द-सिद्धि भी इसीसे निष्पन्न हुई है।

आवेस्तामें अहुर्मज्द (पारसियोंका ईश्वर)के बीस पर्यायी नाम मिलते हैं, जिनमेंसे पहला नाम 'अह्मि' और अन्तिम नाम 'अह्मियद् अह्मि' है। वैदिक 'अहम्' (मैं) शब्दसे आवेस्ताका 'अह्मि' और अस्मियदस्मि (जो मैं हूँ)से अह्मियद् अह्मि शब्द बनता है।

इस्लाम धर्ममें आदमकी कहानी भी बृहदारण्यककी उक्त कहानीसे साम्य रखती है। वैदिक 'आत्मन्'के वर्णनसे इस्लामके आदमके गिरनेकी कहानी बिलकुल ठीक मिलती है। यहोवाको मानने वाले ईसाइयोंकी बाइबिलमें भी ऐडमके पतनकी कहानी वैदिक कहानीसे ठीक मिलती है। इस सम्प्रदायके ईश्वरका नाम 'यहोवा' है। यह वैदिक 'जुहवोऽग्नि'से साम्य रखता है।

* * *

इलोहीमस्टिक वाइविलमें सृष्टिकी पूर्वावस्थाका वर्णन करते हुए लिखा गया है कि 'उस समय न अमरता थी, न मृत्यु थी, न रात थी; न दिन था। वह केवल अकेला था, उसके अतिरिक्त कुछ न था। अन्धकार अन्धकारसे घिरा हुआ था, जो कुछ जान पड़ता था वह जलमय था।'

ठीक ऐसी ही सृष्टिकी पूर्वावस्थाका वर्णन ऋग्वेदमें भी **'न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या ह्यासीत् प्रकेतः'** इत्यादि ऋचाओंमें मिलता है।

भारतीय वैदिक साहित्यमें उक्त आध्यात्मिक रूपक ज्योंका-त्यों, इस्लाम, ईसाई, पारसी आदि धर्मग्रन्थोंमें मिलता है।

आदि सृष्टि तमसावृत थी। यह सभी धर्मग्रन्थोंने स्वीकार किया है। ऋग्वेद तथा आर्योंके सामाजिक इतिहासका सूक्ष्म अध्ययन करके महाप्राज्ञ श्री मधुसूदन ओझाने लिखा है कि "प्राग्वैदिक कालमें तमोयुग, प्राणियुग, आदियुग और मणिजा-युगकी कल्पना प्राग्वैदिककालीन भारतीयोंने की थी। सृष्टिका प्रारम्भ अन्धकारयुक्त रहा, इसलिए उसका नाम तमोयुग रखा गया; क्योंकि उस समयकी परिस्थितिका कोई अनुमान या अनुभव नहीं किया जा सकता था।"

प्राचीन युगोंकी कल्पना सोद्देश्य की गयी है। **तमोयुगके** बाद जब सृष्टिमें प्राणियोंकी उत्पत्ति होने लगी, तो उसका नाम **'प्राणियुग'** रखा गया और जब सभ्यताका उदय हुआ; तो उस युगका नाम **'आदियुग'** रखा गया। और जब सभ्यताका चरम विकास हुआ, तो उस युगको **'मणिजा'** युग कहा गया।

प्रकृतिवाद

अन्तिम मणिजा-युग सभ्यताके विकासका था। मणिजा एक सामाजिक संगठनका नाम था। इस युगमें मानव-सभ्यताका पूर्ण विकास हो चुका था। विविध प्रकारके कला-कौशल, शिल्प तथा विज्ञानकी अभूतपूर्व उन्नति उस समय हुई थी। कपाससे, रेशमसे सुन्दर वस्त्र उस समय बनाये जाते थे। पञ्चायती शासनकी पद्धति कायम थी। सड़कें, नहरें बनी हुई थीं। वापी, कूप, तड़ाग और आरामगृह जगह-जगह लोक-कल्याणके लिए बनाये गए थे। आमोद-प्रमोदके स्थान बने हुए थे। बहुत ही समुन्नत युग था वह।

वैदिक मनीषी ओझाका मत है कि 'उस समयका मानव-समाज साध्य, महाराजिक, आभास्वर और तुषित-इन चार श्रेणियोंमें बँटा हुआ था।' हमारा अनुमान है कि तमोयुग, प्राणियुग आदि प्राग्वैदिक चारों युगों और साध्य, महाराजिक आदि चार वर्गोंके आधार पर ही वैदिक कालमें सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग-इन चार युगों और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-इन चार वर्णोंकी कल्पना की गयी थी। मणिजा-युगकी साध्य जाति अपने ज्ञान-विज्ञानकी विशिष्टताके कारण चारों वर्गोंकी मुखिया उसी प्रकार बनी हुई थी, जैसे वैदिक कालमें ब्राह्मण जातिकी प्रधानता रही है। वैसे तो साध्योंका पूरे समाज पर पूर्ण प्रभाव और नियन्त्रण था। उरा समय ब्रह्म या ईश्वरकी कोई कल्पना नहीं थी, साध्य लोग प्रकृतिवादी थे। प्रकृति पर उनका पूर्ण विश्वास था। वे लोग प्राकृतिक तत्वोंका विश्लेषण करते और उन्हींका अनुशीलन और अनुसन्धान करते थे। प्राकृतिक तत्वोंका अनुसन्धान और परीक्षण करके साध्योंने ही सर्वप्रथम 'यज्ञ' विद्या'का आविष्कार किया था, जो वैदिककाल-में अत्यधिक विकसित हुई। किन्तु विकासके साथ ही उसमें अनेक विकार भी उत्पन्न हो गए थे। अश्वमेध, गोमेध और नरमेध तक होने लगे थे।

साध्य लोग प्रकृति-सिद्ध क्षणिक-विज्ञानके उपासक थे। यदि यह कहा जाय कि कालान्तरमें जो बौद्ध-धर्म प्रचलित हुआ था, वह साध्योंके क्षणवाद-सिद्धान्तका ही अनुयायी रहा - मौलिक नहीं - तो अनुचित न

* * *

होगा। जैसे परवर्ती कालमें बौद्धोंको नास्तिक, वेद-विरोधी आदि कहा जाने लगा, वैसे ही वैदिक युगमें प्राग्वैदिक साध्योंको 'पूर्वे देवाः सुरद्विषः' कहकर उन्हें देवद्रोही कहा जाता रहा है।

साध्योंकी मान्यता थी कि संसारकी रचना प्रकृतिके नियत नियमोंसे ही हुई है। प्रकृतिके उन नियत नियमोंको अच्छी तरह समझकर ठीक ढंगसे काम करने पर मनुष्य भी नये संसारकी रचना कर सकता है। उनका यह दावा था कि प्रकृतिके ठीक ढंगसे संयमन, नियमन करनेसे नये सूर्य, नये चन्द्र और नये नक्षत्र मण्डल भी बनाये जा सकते हैं। उन्होंने अपने इस दावेको साबित करके भी दिखाया था। सरस्वती और सिन्धुके संगम पर विज्ञान-भवन स्थापित कर साध्योंने सूर्यका निर्माण किया था। समस्त ब्रह्माण्डका साक्षात्कार उस विज्ञान-भवनमें बैठकर किया था। अपूर्व प्रतिभाशाली, परम वैज्ञानिक साध्योंका मणिजा-युग साध्य-युगके नामसे पुकारा जाने लगा था। वे युग प्रवर्तक मान लिए गए थे।

साध्योंके दस वाद

ऋग्वेदसे यह भी जाना जाता है कि साध्योंका सम्पूर्ण दर्शन सद्वाद, असद्वाद, सदसद्वाद, व्योमवाद, अपरवाद, रजोवाद, अभिवाद, अहोवाद, अहोरात्रवाद और संशयवाद: इन दस सिद्धान्तों पर आधारित थी।

जब विभिन्न विचारधाराएँ वादोंका रूप ग्रहण कर लेती हैं, तो परस्पर बौद्धिक संघर्ष उत्पन्न हो जाया करता है और वही बढ़ते-बढ़ते सामाजिक तथा राजनीतिक संघर्षोंका कारण बन जाया करता है। यही बात साध्ययुगके चरमोत्कर्ष कालमें भी हुई। इस संघर्षका सूत्रपात उस समयकी तुषित जातिमें उत्पन्न एक व्यक्तिने किया। निश्चय ही वह असाधारण व्यक्ति होनेके साथ ही महान् संगठनशील और प्रभावशील रहा होगा। उसने साध्योंके एकच्छत्र बौद्धिक प्रभावको घटानेके लिए तथा उनके प्रभावसे महाराजिक (क्षत्रिय), आभास्वर (वैश्य) और तुषित (शूद्र) जातियोंको मुक्त करानेके लिए एक बौद्धिक क्रान्ति उत्पन्न की थी।

उसने सर्वप्रथम साध्योंके दस वादोंको, जिन पर उनकी फिलासॉफी स्थिर थी, निरस्त करके ब्रह्मवादकी स्थापना की। उस महापुरुषने साध्योंके प्रकृतिवादका जोरदार खण्डन करते हुए बतलाया कि प्रकृति ब्रह्मके अधीन है। ब्रह्म ही सबका शास्ता, नियन्ता, पालक, पोषक और संहारक है। उसका तर्क था कि जब तक ब्रह्मकी सत्ता स्वीकार नहीं की जाती, तबतक साध्योंके दस वाद निरर्थक हैं। जनता उसके नये विचारोंकी ओर आकृष्ट होने लगी। धीरे-धीरे उसका बहुमत बढ़ता गया और साध्योंका प्रभाव घटने लगा। ब्रह्मवादकी स्थापना करनेसे तुषित जातिमें उत्पन्न उस महापुरुषको उसके अनुयायी 'ब्रह्मा' कहने लगे, जो आगे चलकर वेदों, पुराणोंमें चतुर्मुख, वेदवेत्ता, ब्रह्माके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

नये युग: नये समाजका निर्माता: ब्रह्मा

ब्रह्मा द्वारा स्थापित की गयी ब्रह्मकी कल्पना तर्क, अनुमान, प्रमाण और प्रमेयों द्वारा उत्तरोत्तर विकसित होती हुई प्रमाण कोटिमें आ गयी। उस समयके मेधावी वर्गने ब्रह्मका चिन्तन उसका ऊहापोह करना प्रारम्भ किया। तप और साधना द्वारा आत्मा और ब्रह्मका साक्षात्कार किया जाने लगा। ब्रह्मका साक्षात्कार करनेवाला मेधावी वर्ग 'ऋषि' कहा जाने लगा।

ऋषियोंको अपने तपोबलसे ब्रह्म, जीव, माया, जगत् और ब्रह्माण्डके किसी पदार्थकी जो अनुभूति हुआ करती थी, उन अनुभूतियोंको चिन्तन, मनन, निदिध्यासन द्वारा साक्षात्कार करनेके बाद उनके हृदयसे वाणीके माध्यमसे जो ज्ञान बाहर निकलता था, उसे **वेद-ऋचा** कहा जाता था। जिस ऋषिने जिन ऋचाओं, सूक्तोंका

* * *

प्रादुर्भाव अपने तपोबलसे किया, वही ऋषि उन ऋचाओंके मन्त्रद्रष्टा कहलाये। ब्रह्माने और फिर कालान्तरमें वेदव्यासने ऐसी सहस्रों ऋचाओंको संगृहीत कर उन सबके समुच्चयको विषयानुसार विभक्त कर ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद नामसे प्रचलित किया। ऋषियोंके ज्ञानका नाम वेद है।

वैदिक मनीषी ओझाजीने प्रमाणों द्वारा यह बताया है कि "आध्यात्मिक व्यवस्थाके साथ ही ब्रह्मा सामाजिक निर्माणमें भी संलग्न रहा। उसने समस्त पृथ्वीको देव-त्रिलोकी और असुर-त्रिलोकी - इन दो भागोंमें विभक्त किया। ब्रह्मा और वेदोंके पथ पर चलनेवाले लोग देव-त्रिलोकीमें रहते थे और वेद-बाह्य आचरण करनेवाले असुर-त्रिलोकीमें।

देव-त्रिलोकीके अन्तर्गत देवलोक, अन्तरिक्षलोक और मनुष्यलोक (मृत्युलोक) - ये तीन लोक थे। देवलोकके अन्तर्गत स्वर्गलोक, पितृलोक और ऋषिलोक - ये तीन लोक और विभक्त हुए। वर्तमान अल्ताई पहाड़से उत्तर वर्तमान समूचा रूस, साइबेरिया और मंगोलियाका भूभाग देवलोक था। प्राग्मेरु (पामीरका पठार)से उत्तर आधुनिक साइबेरिया और पूरा रूस स्वर्गलोकके अन्तर्गत था। मंगोलिया पितृलोक था। प्राग्मेरुसे दक्षिण-पूर्व हिमालयके उत्तरका भूभाग ऋषिलोक था। ब्रह्माने अपने वंशमें उत्पन्न इन्द्रको देव-त्रिलोकी-का शवसोनपात (वाइसराय) नियुक्त किया था।

शर्यणावत पर्वत (शिवालिक पहाड़ियों)से लेकर हिमालय और चीन तक प्रदेश अन्तरिक्षलोक था। इसमें यक्ष, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग, गुह्यक, किन्नर आदि जातियाँ बसी हुई थीं। ब्रह्माने वायुको इस लोकका शवसोनपात नियुक्त किया। उत्तरमें अल्ताई पहाड़, दक्षिणमें महोदधि, पश्चिममें नील नदी और सिन्धुका संगम और पूर्वमें फारमोसाका भूभाग मनुष्यलोक था। ब्रह्माके वंशमें उत्पन्न वैवस्वतमनु मनुष्यलोकका सम्राट् था और अग्नि उसका शवसोनपात (वाइसराय) था। मनुष्यलोकका भरण-पोषण करनेसे अग्निको उस समय तक भरत कहा जाने लगा था और भरत द्वारा शासित भूखण्डको भारत कहा जाता था।

पाकिस्तान बननेसे पूर्व भारतका जो मानचित्र है, वह वैदिक कालके भारतका नहीं, अपितु केवल उसका एक खण्ड कुमारी-खण्ड मात्र है। उज्जैनको मध्यरेखा मानने पर देवयुगके भारतकी पूर्वी सीमा पीत समुद्र (चीन सागर), पश्चिमकी सीमा महीसागर (मेडिटेरियन समुद्र), दक्षिणकी सीमा निरक्षवृत्त - लंका, लकदिव, मालदिव और उत्तरकी सीमा अल्ताई पहाड़ ठहरती है।

आजकल योरोप, अफ्रीका, अमेरिका कहे जानेवाले महाद्वीप देवयुगके असुर-त्रिलोकीके अन्तर्गत थे। दस्यु, दानव और राक्षस - ये तीन श्रेणियाँ असुरोंकी थीं।

इस प्रकार आध्यात्मिक, सामाजिक और भौगोलिक व्यवस्था करनेके साथ ही ब्रह्माने देवयुग, त्रेतायुग-द्वापरयुग और कलियुग - इन चार युगोंकी कल्पनाको मूर्त रूप दिया। साध्ययुग खत्म हो गया, प्रकृतिवादके स्थान पर ब्रह्मवाद स्थापित हो गया और सबसे उच्चकोटिके व्यक्ति देव कहलाये। उनसे कुछ निम्न पितर, उनसे कुछ निम्न यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और उनसे भी निम्नकोटिके जो व्यक्ति थे, वे मानव या मनुष्य और सबसे निकृष्ट व्यक्ति दस्यु, दानव और राक्षस कहलाये।

देवोंमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश सर्वश्रेष्ठ देव माने गए। उनके बाद अग्नि, वायु, इन्द्र। इसी प्रकारसे देवयोनियों, पितृयोनियों और गन्धर्ववादि योनियोंमें गुण, कर्म, स्वभावसे अनेक जातिभेद हुए। मनुष्य जातिमें मुख्यतया ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र - इन चारों वर्णोंकी स्थिति गुण, कर्म, स्वभावसे कायम की गयी फिर इन्हींके अन्दर अनेक जातियाँ, देव, गन्धर्वोंकी तरह बनती गयीं।

देवयुगमें देवलोक (स्वर्ग) में निवास करनेवाली इन्द्र, धाता, भग, पूषा, अर्यमा, त्वष्ट्रा, वरुण, अंशु विव-

स्वान, सविता, विष्णु और मित्र - ये बारह देवजातियाँ मुख्य थीं। यही आगे चलकर पुराणोंमें द्वादश सूर्यके नामसे ख्यात हुईं। इन्हीं द्वादश सूर्योंमें विवस्वान नामकी देवजातिको स्थायी और व्यापक गौरव इसलिए मिला कि ये सभी ब्रह्माकी वंशज थीं। इसी जातिके वंशधरको मनुष्यलोक (भारतवर्ष)का साम्राज्य ब्रह्माने दिया था। इसी वंशमें उत्पन्न स्वायम्भुव नामके विवस्वान आदित्यने सूर्यवंशकी नींव डाली।

स्वायम्भुव नामकरण स्वयंभू ब्रह्माका मानसपुत्र होनेके कारण हुआ। ब्रह्मामें एक बड़ी विशेषता यह थी कि किसी भी जातिमें उत्पन्न किसी भी व्युत्पन्न मेधावी व्यक्तिको वह अपना मानस-पुत्र (दत्तक) बना लेता था। वशिष्ठ, नारद, भृगु आदि इस प्रकारके अनेक ब्रह्माके मानसपुत्र पुराणोंमें विख्यात हैं। भृगु वस्तुतः वरुणके औरसपुत्र थे, किन्तु आगे चलकर वह ब्रह्माके मानसपुत्र मान लिए गए।

यह लिखा जा चुका है कि देव-त्रिलोकी (स्वर्ग, अन्तरिक्ष और मनुष्यलोक)में रहनेवाली प्रजाको ब्रह्माने ऋषि, पितर, देव, देवयोनि (गन्धर्व आदि) और मनुष्य - इन पाँच वर्गोंमें विभक्त किया था। इस वर्गीकरणमें ब्रह्माकी दूरदर्शिता और बौद्धिक सूझ निहित थी।

वस्तुतः वेदोंमें भौम, दिव्य और शारीर - इन तीन लोकोंका उल्लेख है। दिव्यलोकमें प्राण रूप देवोंका वास है। उन्हींके आधार पर ब्रह्माने धरती पर देवलोककी कल्पना की और जो वर्ग हर मानोंमें श्रेष्ठ था, उसे 'देव'-की संज्ञा दी। प्राकृतिक प्राण तत्वविज्ञानकी भाषामें ऋषि कहलाता है। वशिष्ठ, विश्वामित्र, अरुन्धती आदि प्राणात्मक ऋषि हैं। ये नाम मूलतः प्राणोंके थे। किन्तु ब्रह्माके देवलोकवासी जिन वैज्ञानिक व्यक्तियोंने जिन-जिन प्राणतत्वोंकी खोज की थी, उनके नाम भी उन्हीं प्राणोंके नाम पर विख्यात हुए और वे ऋषि कहे जाने लगे। ऋषिका अर्थ गतितत्व है और यही प्राण है।

अनेक मौलिक ऋषियों (प्राणों)के रासायनिक संयोगोंसे उत्पन्न होने वाला सौम्य प्राण पितर है। देवयुगमें जिन व्यक्तियोंमें पितर प्राण विशेष रूपसे विकसित थे अथवा जिन रासायनिक व्यक्तियोंने विभिन्न पितर प्राणोंकी खोज की थी, उन्हींको ब्रह्माने पितरकी संज्ञा प्रदान की थी। यह पितरवर्ग देवलोकके जिस भूभागमें निवास करता था, उसे पितृलोक कहा जाता था। ब्रह्माने पितृलोकका शासन विवस्वानके छोटे लड़के वैवस्वत यमके अधीन किया था।

देवयुग (सतयुग)के मनुष्यलोक (भारत)का सर्वप्रथम सम्राट् वैवस्वतमनु था। मनु द्वारा नये समाज, नये शासनकी बुनियाद डाली जानेके कारण उस भूखण्डकी प्रजा मानव या मनुष्य कही जाने लगी और वह भूखण्ड मनुष्यलोक कहा जाने लगा। मनुका प्रतिनिधि अग्नि मनुष्यलोकका भरण-पोषण करता था, इसलिए मानव-समूह उसे भरत और उसके शासित भूभागको भारत कहने लगा। यजुर्वेदमें लिखा है : **अग्ने महां ३ असि ब्रह्माणं भारतेति**। मनुके पुत्र इक्ष्वाकुको जब भारत-सम्राट्का पद मिला, तो उसने समस्त भारत भूभागके दस खण्ड करके अपने दस लड़कोंमें बाँट दिए। आधुनिक भारतीय इतिहासमें अनेक भ्रान्तियाँ प्रविष्ट हैं। स्वतन्त्र भारतमें इनका ऐतिहासिक संशोधन किया जाना अत्यावश्यक है।

आर्योंकी शासन-पद्धति

भारतवर्ष ऋषि-मुनियोंका देश है। साम-गान और सोमपान करते हुए ऋषियोंने ही पृथ्वीमें सर्वप्रथम, राष्ट्र, राष्ट्रपति और राज्यशासनका आविष्कार और निर्माण किया है। उनके निर्माण छल-कपट, मारकाटके बल पर नहीं; बल्कि तपोबलके प्रभावसे हुए हैं। श्रुति-स्मृति और पुराण कालमें ऋषियोंकी तपस्यासे साम्राज्य, भौज्य, स्वाराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्यराज्य, महाराज्य, आधिपत्यमय, समन्तपर्यायी - ये आठ प्रकार के राज्य-शासन प्रचलित हुए थे।

* * *

ऐतरेय ब्राह्मणकाल (सूत्रकाल) में जानराज्य (जन-राज्य) और गण-राज्यका भी चलन हुआ। वे दोनों राज्य-शासन भी वेदविहित हैं।

वैदिक शासनका ध्येय

वैदिक राज्य शासनका ध्येय ऋषियोंकी घोषणाओंसे स्पष्ट है : **'पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एक राष्ट्र'** **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'**, **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** - अर्थात् आसमुद्र पृथ्वी एक सार्वभौम शासनके अन्तर्गत हो, सम्पूर्ण विश्वको शिष्ट, सदाचारी और श्रेष्ठ बनाओ तथा सारी धरतीको अपना परिवार समझो।

सम्पूर्ण पृथ्वी एक ही शासन, एक ही धर्म और एक ही सुसभ्य जातिसे सुशासित और सम्बन्धित हो, यही वैदिक राजनीतिका उद्देश्य था। ऋषियोंकी साम्राज्य-कामना आधुनिक जड़-जगतके 'साम्राज्यवाद'-के तुल्य नहीं थी, बल्कि समुद्रवलयांकित साम्राज्यको एक विशाल परिवार बनाना था। इस प्रकारके विस्तृत साम्राज्यके अन्तर्गत शेष भौज्य, स्वाराज्य आदि शासन हुआ करते थे, जो अपने-अपने सिद्धान्तों और विधानोंके अनुकूल जनकल्याण तथा पृथ्वीका पालन किया करते थे।

इस प्रकारके शासनोंसे शासित तत्कालीन प्रजा आजकलकी जनताकी भाँति, मुमूर्ष, अचेतन और निर्बल न थी। उस समयकी जनता राष्ट्रके गर्व, गौरवको ऊँचा उठाये रखनेके लिए सतत् जागरूक रह कर यही घोषणा करती थी कि **'व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये'**, **'वयं राष्ट्रे जागृयामः पुरोहिताः'**। साधारण जनता अपने स्वराज्यकी रक्षा करनेके लिए सदैव प्रयत्नशील रहती थी और उनके पुरोहित उन्हें और राष्ट्रको जाग्रत बनाये रखनेके लिए जागरूक रहा करते थे।

राष्ट्रपतिका चुनाव

राष्ट्रपतिका चुनाव करनेसे पूर्व व्यक्तिके लक्षण, शरीरविज्ञान, मनोविज्ञान, आध्यात्म-विज्ञान, व्यवहार-विज्ञान और शास्त्रीय आदेशोंके अनुसार मिलाये जाते थे। यजुर्वेदके अनुसार राष्ट्रपति होने योग्य वही व्यक्ति है: जो **श्रीणामुदारः** (परीक्षित पदार्थोंका देने वाला) हो, राज्य-सम्पत्तिको सुरक्षित रख सके। किसी भी अवस्था-में विचलित न होने वाली निर्णयात्मक बुद्धि उसमें हो, वह शान्तिका रक्षक हो, वसु नाम ब्रह्मचारीकी भाँति ब्रह्मचर्य शक्तिका धनी हो, सहनशक्तिका पुत्र हो, प्राणोंमें प्रकाशमान हो, प्रभातकी उषाके समान प्रतापी हो।'

महाभारतमें राष्ट्रपति वही है: 'जो समस्त प्रजाको सुख-सम्पन्न बनानेका कारण बन सके'। श्रीमद्भागवत-का कहना है कि 'जो अपनी चेष्टाओंसे प्रजाको आनन्द प्रदान करे, वही राष्ट्रपति है'। मनुका कहना है कि 'विचारपूर्वक शासन करनेवाला राष्ट्रपति है।' अग्निपुराणका कहना है कि 'उच्चकुलमें उत्पन्न, दया, दाक्षिण्य, धैर्य, सत्यप्रतिज्ञा, कृतज्ञता, दूरदर्शिता, पवित्रता, दानशीलता और उत्साह-सम्पन्न व्यक्ति राष्ट्रपति होने योग्य होता है।'

याज्ञवल्क्य स्मृति (राज-धर्म) का कहना है कि 'महान् उत्साही, अत्यन्त दानी, कृतज्ञ, विनयशील, धैर्यवान, कुलीन, स्मृतिमान, अदीर्घसूत्री, अव्यसनी, विद्वान्, शूर और रहस्यविद् व्यक्ति राष्ट्रपतिके पद योग्य होता है।' कामन्दकका कहना है कि पहले तो अपनेको गुणसम्पन्न करना चाहिए, फिर दूसरोंको। महात्मा पृथ्वीका देवता स्वरूप, आत्म-संस्कार सम्पन्न व्यक्ति राष्ट्रपति पदके योग्य होता है।'

कौटलीय अर्थशास्त्रका कहना है कि 'राष्ट्रपतिके सोलह अभिगामिकके, ८ प्रजाके, ४ उत्साहके तथा ३० आत्मसम्पत्के गुण हैं। उपर्युक्त गुणोंसे जो पूर्ण हो, वही राष्ट्रपति बनाया जा सकता है।' ज्योतिषशास्त्र-

* * *

के अनुसार वृद्धपाराशरका मत है कि 'जिसकी जन्मकुण्डलीमें त्रिकोण (५,९) स्थान लक्ष्मीके तथा केन्द्र (१, ४, ७, १०) में विष्णुका स्थान हो और इन भागोंके स्वामियोंका परस्पर सम्बन्ध हो, वह व्यक्ति राष्ट्रपति होता है।' बृहज्जातकके अनुसार वराहमिहिरका कहना है कि 'मंगल, शनि, सूर्य और वृहस्पति-ये चारों ग्रहं अपने-अपने उच्च स्थानोंमें स्थित हों और कोई एक लग्नमें स्थित हों, तो ऐसा व्यक्ति राष्ट्रपति होता है।'

जातक पारिजातका कहना है कि 'जिसके जन्मपत्रमें कन्या, मीन, मिथुन, वृष, सिंह, कुम्भ और धनमें सब ग्रह स्थित हों, वह व्यक्ति राष्ट्रपति होता है।' सारावलीके अनुसार 'एक ही ग्रह परमोच्च होकर वर्गोत्तमांशमें हो और बलवान मित्रसे देखा जाता हो, तो जातक राष्ट्रपति होता है।' वृहत्पाराशरका कहना है कि 'नवमेश और दशमेश ये दोनों पारिजातांशमें प्राप्त होकर भोग करते हों, तो राष्ट्रपति होने का योग होता है। यदि ये दोनों गोपुरांशमें चले गये हों, तो चक्रवर्ती होने का योग होता है।'

सामुद्रिक शास्त्रके अनुसार 'राष्ट्रपतिकी भृकुटी, मुख और भुजाएँ लम्बी होती हैं। केशाग्र, वाहु तथा वृषण बराबर होते हैं। हाथ-पैरोंमें हाथी, छत्र, मत्स्य, पुष्करिणी, अंकुश और वीणाके चिह्न होते हैं। शिर गोल, मस्तक चौड़ा, कानों तक आँखें, घुटनों तक लम्बी भुजाएँ होती हैं।'

इस प्रकार शास्त्र-ज्ञान, बुद्धि-ज्ञानसे जब खूब सोच-विचार कर लिया जाता था, तब व्यक्तिको राष्ट्रपति पद पर आसीन किया जाता था। यजुर्वेद का कहना है कि 'राष्ट्रपतिके निर्वाचनके लिए निर्वाचकोंको यह विश्वास हो जाय कि यह व्यक्ति :

१. देशके सभी विद्वानोंमें सभी दृष्टियोंसे सर्वश्रेष्ठ है,

२. गम्भीर विचार और महान् अन्वेषणके बाद मिला है और

३. स्वयं राष्ट्रका प्रतीक है।'

तब उसे लोक-समाजके सम्मुख खड़ा करके निर्वाचक वर्गको उससे यह कहना चाहिए कि **आत्वा हार्षम्** (आप बहुत खोजके बाद प्राप्त हुए हैं), **अन्तरतम्** (आप हमारे हृदयमें ही थे), **ध्रुवस्तिष्ठ** (अटल रहो), **अविचाचलिः** (न्याय तथा नियम व्यवस्थामें पूर्ण रूपसे अविचल रहो), **विशत्वा सर्वा यच्छन्तु** (तुम्हें सभी प्रजाजन चाहें), **मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत** (तेरे राष्ट्रका अधःपतन न हो)।

इसके अनन्तर निर्वाचक वर्ग, प्रजा-प्रतिनिधि वर्ग राष्ट्रपतिको अपना परिचय देते हुए कहते हैं कि 'हे राष्ट्रपति, भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश तुम्हारे धाम हैं, इन्हें हम जानते हैं। गम्भीर-गुहाके समान तुम्हारी बुद्धिको हम जानते हैं। हम उस कुएँ (राष्ट्रकी प्रजा)को भी जानते हैं, जहाँसे तुम निकल कर आ रहे हो'। यजुर्वेदके इस प्रकारके परिचयका तात्पर्य यह है कि राष्ट्रपतिकी आधार-शक्ति प्रजा है। यदि उसने उसकी उपेक्षा की, अथवा वह उसका शोषण करता है; तो अपनी इस शक्ति और सत्ताका सर्वनाश कर लेगा।

राष्ट्रपति-मण्डलका चुनाव

यजुर्वेदके बारहवें अध्यायमें राष्ट्रपति-मण्डलके निर्वाचनके सम्बन्धमें अनेक नियम दिये गए हैं, जिनका सारांश यह है कि राष्ट्रपति और उसके मण्डलका चुनाव वयस्क, विचारवान् शिक्षित जनवर्ग द्वारा ही हो, निर्वाचन क्षेत्रमें जाकर निर्वाचक अपनी प्रतिभा और भावनाओंके अनुकूल मत दे।

राष्ट्रपति अपनी ओरसे किसी भी व्यक्तिको मन्त्रिमण्डलके लिए नामजद नहीं कर सकता। कोई भी विदेशी, राष्ट्रपति या उसके मन्त्रिमण्डलमें निर्वाचित नहीं किया जा सकता। राष्ट्रपति जनता द्वारा चुने गए एक सहस्र सदस्योंमेंसे लोकसभा और राज्यसभा बना सकेंगे। कदाचित् संख्या बढ़ानेकी आवश्यकता पड़े, तो

* * *

जनता द्वारा पुनः निर्वाचन हो। राष्ट्रपतिके मन्त्रिमण्डलके सदस्य व्यापक दृष्टि वाले, मित्रवत् व्यवहार करने वाले और ज्ञानी - इन तीन विशिष्ट गुणोंसे सम्पन्न व्यक्ति बनाये जायें।

राष्ट्रपतिको राज-सिंहासन पर आरूढ़ करते समय पुनः सम्मति माँगी जाती थी। निर्वाचित राष्ट्रपति जिस समय राजसिंहासनके पास पहुँचता था, तुरन्त अध्वर्यु - 'ठहरो, अभी प्रतिज्ञा करनी है' - कहकर उसे सिंहासन पर आरूढ़ होनेसे रोक देता था। इसके बाद वह राष्ट्रपतिसे प्रश्न करता था :

१. 'क्या तुम प्रजाको नियमपूर्वक चला सकते हो ?

२. क्या तुम धर्म पर ध्रुव (दृढ़) रहने वाले हो ?'

राष्ट्रपति इन प्रश्नोंका उत्तर संसद्के समक्ष देता था। इसके बाद फिर अध्वर्यु यह कहकर चेतावनी देता था : 'तुम्हें कृषिकी उन्नतिके लिए, प्रजाकी सुख-शान्तिके लिए, राष्ट्रकी ऐश्वर्य-वृद्धिके लिए, सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंके विनाशके लिए और सर्वोपरि राष्ट्र और स्वराज्यकी रक्षाके लिए राष्ट्रपति बनाया जाता है; सावधान ! इस उद्देश्यको दुर्बल या हीन न होने देना।'

तब राष्ट्रपति दोनों हाथ ऊँचे करके प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेकी घोषणा करता था। इतना हो जानेके बाद अध्वर्यु लोकोपकारी राष्ट्रके प्रमुख कर्णधार ब्राह्मणोंसे सम्मति माँगता था। जब ब्राह्मणोंकी सम्मति मिल जाती, तो जन-घोषोंके साथ राष्ट्रपति सिंहासन पर बैठता था। अब जब अभिषेकका समय आता, तो अध्वर्यु उसे यह कहकर फिर चेतावनी देता था कि 'ठहरो, मैं राष्ट्रकी भुजा क्षत्रियोंसे राष्ट्रपतिके सम्बन्धमें सम्मति चाहता हूँ।' जब क्षत्रियोंकी सम्मति मिल जाती, तब क्रमसे वैश्य और शूद्र वर्णके प्रतिनिधियोंसे पूछा जाता था। सबकी स्वीकृति मिल जानेके बाद तब राज्याभिषेक होता था।

राज्याभिषेक हो जानेके बाद चारों वर्णोंके उपस्थित प्रतिनिधि राष्ट्रपतिकी पीठको बाँसकी खपचीसे धीरे-धीरे पीटते थे। इसका तात्पर्य यही रहा कि राष्ट्रपतिको यह मालूम रहे कि राजा भी दण्ड देने योग्य होता है और प्रजाका हर व्यक्ति, चाहे जिस वर्ण या धर्मका हो, उसे दण्ड दे सकता है। वेदकालसे पुराणकाल तक यह परम्परा बराबर चलती रही। ऐसे अनेक प्रमाण हैं कि प्रजाने अपराधी राजाको दण्डित किया, उसे जानसे भी मार डाला।

राष्ट्रपति और उनका मन्त्रिमण्डल जब पदारूढ़ हो जाता था, तब प्रजावर्ग पुरोहितको अगुआ बनाकर अभिषेक करता था और यह आशीर्वाद देता था : "हमारे राष्ट्रपति और उनका सहायकवर्ग व्यापक परमात्माके साधन हैं। वे भगवान्के गुणानुवादको अपना छन्द (कवच) बना कर पृथ्वी पर रहकर उसके अन्दरसे रत्न निकालनेमें पराक्रम दिखायें।"

'हे राष्ट्रपति, जैसे विद्युत, अग्नि भयंकर गर्जन करता है, उसी प्रकार तुम गर्जना करते हुए हमारे राष्ट्रके शत्रुओंको प्रकम्पित करो। जिस प्रकार भूमि वृक्षों, वनस्पतियोंको प्रकाशमें लाकर बार-बार फल प्रदान करती है, उसी प्रकार तुम भी प्रजाके लिए अनेक प्रकारकी निर्माणशालाएँ, उद्योगशालाएँ प्रकाशित कर मधुर फल उत्पन्न कर प्रजाको प्रदान करो।'[१]

तदनन्तर जनता अपनी आशाएँ और आवश्यकताएँ राष्ट्रपति और उसके मन्त्रिमण्डलके सम्मुख प्रस्तुत करती थी। यजुर्वेदमें राष्ट्रपतिके सामने माँग पेश करती हुई जनता कहती है कि 'हे परिवर्तनशील राष्ट्रपति

---

१. यजुर्वेद १२।६-१२।

२. यजुर्वेद १२।७।

मण्डल, हमें आयु, तेज, सन्तान, धन, सत्यासत्य, निर्णायक बुद्धि और पुष्टिकारक श्रीसे सम्पन्न करो।' इस छोटी-सी माँगमें राष्ट्र और प्रजाके कल्याण और ऐश्वर्यकी सभी बातें आ गयी हैं। साथ ही इसका भी संकेत है कि यह पद राष्ट्रपति और उसके मन्त्रिमण्डलकी बपौती नहीं, बल्कि परिवर्तनशील है।

वेदकालसे लेकर सूत्रकाल तकके राज्य-शासनोंकी संक्षिप्त समीक्षा करनेपर यह सारांश निकलता है कि उस समय प्रजाकी सर्वसम्मतिसे सर्वोत्कृष्ट व्यक्तिको राष्ट्रपति बनाया जाता था, राष्ट्रपतिको लोक-सभाका सभासद होना आवश्यक था। राष्ट्रपतिको खाद्यान्न, कला-कौशल, उद्योग-धन्धों और शिक्षाकी उन्नति करनेकी शपथ लेनी पड़ती थी। दुष्टोंको नष्ट करनेका उसे अधिकार नहीं, बल्कि यह उसका कर्तव्य था। प्रजाके प्रत्येक वर्गको सुख-सम्पन्न बनाना उसका धर्म था।

राष्ट्रपति और उसका मन्त्रिमण्डल जनताकी सम्मति और विद्वानोंके सहयोगसे ही जन-समुदायके लिए कोई कानून बनाते थे। समस्त राजपुरुषों, सभासदों, मन्त्रियों और राष्ट्रपतिको ईश्वर पर आस्था करनी पड़ती थी। यदि किसी राज्यका शासन बुरा हो, तो उसे अपने शासनमें मिला कर अखण्ड चक्रवर्ती राज्य स्थापित किया जाता था; किन्तु ऐसी सार्वभौम सत्ता सभी देशोंकी प्रजाकी सुख-समृद्धिकी उत्तरदायी होती थी। किसी भी देशका शोषण अधर्म समझा जाता था।

इसी प्रकारकी भारतीय शासन-पद्धति और राजनीतिको हम भूलते जा रहे हैं। एक समय था, जब समस्त विश्वमें भारतीय-संस्कृति, भारतीय-शासन और भारतीय-जातिका आध्यात्मिक आधिपत्य था। धीरे-धीरे संकोच होने लगा। महाभारत कालसे इधर यह ह्रास अत्यधिक वेगसे हुआ। यहाँ तक कि एक-एक करके हमारे ही भूखण्ड हमारे हाथसे निकलते गये। परिणाम यहाँ तक हुआ कि हमारा देश, हमारी जन्मभूमि और हमारी धरती भी हमसे पृथक् होकर एक नया देश बन गयी।

मानव-समाजकी रचना और आर्योंका सामाजिक विकास

⊙ ⊙ ⊙

नृतत्वविदोंका कहना है कि लगभग दस लाख वर्ष पहले जो आदि मानव था, उसकी विशिष्टता यह थी कि उसके हाथ-पाँव मनुष्यके-से थे। खड़ा हो सकता था, बैठ सकता था, लेट सकता था, भाग सकता था और हाथोंसे खा-पी सकता था। उसके दाँत तो मनुष्यके-से थे, किन्तु दाढ़की हड्डी पीछेसे सिकुड़ी हुई होनेसे वह स्पष्ट बोल नहीं पाता था, इसलिए वह देख-सुन सकता था, हाथ-पैर चला सकता था; किन्तु अगला भाग छोटा होनेसे वह सोच नहीं सकता था, वाणी द्वारा अपने मनोभाव व्यक्त करनेमें असमर्थ था।

एक लाख वर्ष पूर्वके मिले हुए नर-कंकालोंका अध्ययन करके नृतत्ववेत्ताओंने सिद्ध किया है कि उस समय मानव-प्राणी पूर्ण विकसित हो चुका था। मनुष्यमें होनेवाली सभी विशिष्टताओंसे वह सम्पन्न हो चुका था।

जांगल-युग

१. मनुष्य जाति जब अपने शैशव-कालमें रही, तब वह उष्ण-कटिबन्ध या अर्द्ध-उष्णकटिबन्धके जंगलोंमें रहती थी। हिंस्रक-पशुओंके बीच वह जीवन बिता रही थी। उस समयका मनुष्य जमीन पर और पेड़ों पर निवास करता था। जंगलके कन्द-मूल फल खाकर वह गुजर करता था। अब वह बोलना सीख गया था। वह जानवरोंकी भाँति मुँह या पैरसे शिकार न कर, हाथोंसे हथियारों द्वारा शिकार करने लगा था। उस समय उसके हथियार लकड़ी या पत्थरके होते थे। वह उन्हें घिसकर, चीर-फाड़कर, सुधारना, सँवारना और तेज करना भी सीख गया था। उन दिनोंके मनुष्योंके ऐसे हथियार अब भी कई जगह ज़मीनके अन्दर गड़े हुए मिलते हैं।

२. हथियारोंको बनाते, संवारते हुए मनुष्यकी बुद्धिका विकास हुआ। पत्थर पर पत्थर रगड़नेसे निकलती हुई आगका ज्ञान उसे हो गया और वह आग पैदा करना भी सीख गया था। अब वह पूर्ण मानव पशु-प्राणियोंसे सर्वथा भिन्न और विशिष्ट हो गया। जाड़ेसे अपनी रक्षा करनेके लिए वह गुफाओंमें रहने लगा। हथियारोंके अलावा फन्दे बनाकर भी जानवरोंको फँसा लेता था। पशुओंको मारकर खाता और उनकी खालसे अपने शरीरको ढक लेता था। उसके जीवनका मुख्य लक्ष्य भोजन मात्र था। शिकार द्वारा अपना पेट भरता था। शिकारके लिए जंगल-जंगल घूमता था।

३. इसके बाद उसने धनुष और बाणका आविष्कार किया। पशुओंका शिकार और उनका माँस पकाकर खाना उसके जीवनका व्यापार बन गया। वह झुण्ड बनाकर रहना भी सीख गया। लकड़ी, पत्थरोंके बर्तन

बनाना, पेड़ोंकी छालके रेशोंको निकाल कर अँगुलियोंसे उन्हें बुनकर एक प्रकारका कपड़ा भी बनाना सीख गया। बाँस और बेंतकी टोकरियाँ भी बना लेता था। कुल्हाड़ीसे पेड़का तना काटकर, उसे खोखला बनाकर वह पानी पर चलनेके लिए नाव भी बना लेता था। अब वह कन्दराओंमें न रहकर घास-फूस और लकड़ीके झोपड़े बनाकर रहना सीख गया। मनुष्यके इस प्रारम्भिक विकास-युगको नृतत्ववेत्ता 'जांगलयुग' कहते हैं, क्योंकि मनुष्य उन दिनों जंगलोंमें ही रहता और घूमता था।

जांगलयुगकी निम्न, मध्य और उन्नत - इन तीन अवस्थाओंको पार कर मनुष्यने जिस युगमें प्रवेश किया, उसे 'बर्बर-युग' कहा जाता है।

बर्बर-युग

१. इस युगकी प्रारम्भिक निम्न अवस्थाका प्रारम्भ मिट्टीके बर्तन बनानेकी कलासे होता है। वह मिट्टीका उपयोग करना सीख गया था। बेंतकी टोकरियोंको आग और पानीसे बचानेके लिए उन पर मिट्टीका लेप कर देता था। इस तरह टोकरियों पर मिट्टी चढ़ाते-चढ़ाते साँचा बनाकर मिट्टीके बर्तन बनानेकी कलाका ज्ञान उसे हो गया।

बर्बर-युगका मानव इस युगकी प्रारम्भिक न्यून अवस्थामें पशुओंको पालने लगा, उनकी रक्षा करने लगा और पेड़-पौधे भी उगाने लग गया। जो मानव जिस महाद्वीपमें रहा, जिस प्रकारके जलवायुमें रहा; उसी प्रकारके प्राकृतिक प्रभावसे उसका उत्तरोत्तर विकास होता रहा।

२. बर्बर-युगकी मध्य अवस्थामें पहुँचकर मानव पशुओंके दूधको दुहकर पीना सीख गया। मानव-झुण्डोंके साथ पशुओंके झुण्ड भी बढ़ने लग गए। अब मानव पशुओंके लिए एक जगह से दूसरी जगह चारागाहें ढूँढ़ता फिरने लगा। चारागाह-जीवनमें प्रवेश करते ही मानव-मन पहाड़ों जंगलोंके बजाय मैदानोंमें बसना पसन्द करने लगा। वह अनाज भी उगाने लगा, लेकिन अनाजका उपयोग वह अधिकतर पशुओंको खिलानेमें करता था।

३. बर्बर युगकी तीसरी उन्नत अवस्थामें पहुँच कर मानव आगकी भट्ठीमें धातुओंको गलाने लगा। अब उसकी उत्पादन शक्ति भी बढ़ने लगी। इसी युगमें लोहेके फल और लकड़ीके हल बनाकर मानव खेत जोतने लगा। जंगलों को काटकर, साफकर उन्हें चारागाह और खेत बनाने लग गया। अब उसके पास खेतीमें काम आने वाले लोहेके औजार हो गए। मानव-समाजकी आबादी बढ़ने लगी। इस कालमें मानवको खेती करनेके तरीके मालूम हो गए। पशुओंकी अच्छी नस्ल बनाने और बढ़ानेका ज्ञान हुआ तथा उसमें औद्योगिक क्रियाशीलताका विकास हुआ।

सभ्यताका युग

जंगली और बर्बर अवस्थाको पार कर मानव-प्राणी जिस उन्नत अवस्था पर पहुँचा, उसे 'सभ्यता' का युग कहा जाता है। सभ्यताके युगमें पहुँचकर मानवकी साम्य अवस्था खत्म हो जाती है और उसमें छोटे-बड़े, बलवान्-दुर्बल, धनी-निर्धनका भेद पैदा हो जाता है। उसमें दूसरेको दबाने, परास्तकर विजय प्राप्त करने, दास बनाकर शासन करनेका भाव उत्पन्न होता है।

नृतत्व विज्ञानियों और अर्थशास्त्रियों द्वारा किए गए मानव-प्राणीके इस विकास-काल-क्रमको भारतीय पुराणोंमें मत्स्य, कूर्म, बराह, नरसिंह, वामन, राम अवतारों तथा प्रकारान्तरसे सतयुग, त्रेता, द्वापर और

* * *

कलियुग - इन चार कालोंमें बाँटा गया है। इस कालक्रमका आधार पुराणकारोंने धर्म माना है। उनके मतसे धर्म वही है, जो 'धारण किया जाए' : जिस कालमें मनुष्यके अन्दर जिस वस्तु या वृत्तिका परिवर्तन होता है - वह धर्म है। धर्म रहन-सहनका एक नियम है। कदाचित् इसीलिए धर्मशास्त्रकारोंने बताया है कि : 'समय भेदेन धर्म भेद:'।

आर्योंका सामाजिक विकास

ऐसे ही मानव झुण्डोंमेंसे एक झुण्ड आर्योंका रहा। आर्यों का मूल स्थान कहाँ रहा - यह विवादास्पद विषय है। अभी तक आर्योंके मूल स्थानके विषयमें एक मत स्थापित नहीं हो सका है। बहु-सम्मत मत यही प्रचलित है कि आर्य-जातिकी संस्कृतिने जहाँ विकास पाया, आर्य-जातिने जहाँ समाजका रूप धारण किया, वह स्थान मध्यएशिया था। वहींसे आर्योंकी अनेक शाखाएं योरोप तक फैली थीं। डॉ॰ सम्पूर्णानन्द जैसे विद्वानोंका कहना है कि 'आर्य भारतमें ही सप्तसिन्धुमें रहते थे और यहींसे एशिया, योरोप तक फैल गए थे।' जयचन्द्र विद्यालंकारका मत है कि 'आर्य-संस्कृतिका विकास भारतसे बाहर ही किसी देशमें हुआ, जो मध्यएशिया में था। आर्योंकी एक शाखा चारागाहोंकी खोजमें पश्चिमी तिब्बतकी ओर बढ़ी और कुछ समय बाद उसके दक्खिन-छोर पर पहुँच कर लगभग तीन हजार ईसापूर्वमें हिमालयके नीचे उतरने लगी तथा हिमालयके भीतरी मार्गोंमें फैलती हुई वह कश्मीर तक पहुँच गयी। धीरे-धीरे वह गंगा-यमुनाके मैदानों तक फैल गई और इसकी कुछ शाखाएँ वहाँसे पश्चिम भी गईं।'

नृतत्ववेत्ताओं द्वारा निर्धारित मानवप्राणीके विकास-क्रमका बहुत कुछ परिचय ऋग्वेदमें मिलता है। ऋग्वेदसे आर्योंके सामाजिक विकास-क्रमको भलीभाँति जाना जा सकता है। ऋग्वेद, यजुर्वेदकी ऋचाओंमें अन्न, धन, गायके लिए जगह-जगह प्रार्थना की गई है। जिस समय आदमी जांगल-युगकी अवस्थामें था, पत्थरके अनगढ़ हथियार ही उसके पेट भरनेके साधन थे, केवल पेट भरना ही उसका लक्ष्य था, वह आग बनाना नहीं जानता था; उस समय उसकी जिन्दगी बड़े कसालेकी थी। भोजनकी तलाशमें भटकता हुआ आदमी प्राण गँवाता था, एक मनुष्य दूसरेकी हत्या कर डालता था। उसका श्रम, उसकी सत्ता सिर्फ भोजन पर निर्भर थी। वेदमें इस अवस्थाकी सूचना सृष्टिकर्ता प्रजापतिके रूपक वर्णनसे मिलती है। "प्रजापति बार-बार गर्भधारण करता और गर्भपात करता था, इसलिए कि उसे भय था कि भोजन न मिलनेसे कहीं विनष्ट न हो जाए। इस हालतमें उसे दूध पिलवाया गया। इससे वह चैतन्य हुआ। उसमें शक्ति आयी और उसने विश्वकी सृष्टि की।"

पत्थरके हथियारका उपयोग आर्योंके नेता इन्द्रने वृत्रासुरके वधके समय किया था। साथ ही हड्डीके बने हुए उसके अस्त्र वज्रका भी उल्लेख मिलता है, जो दधीचि ऋषिकी हड्डियोंसे बनाया गया था और वृत्रासुरके वधके लिए उसका प्रयोग किया गया था।

ऋग्वेदसे ही ज्ञात होता है कि 'पहाड़ और जंगलमें रहते हुए ऋषिने बादलोंसे गिरती हुई बिजली द्वारा झुलसाए जाने वाले वृक्षोंको देखा। उसने बिजलीमें चमकती हुई आगको देखा और वह उससे बेहद भयभीत हुआ। प्राकृतिक शक्तिके रूपमें ऋषिने उसकी प्रार्थना की। बादलसे उत्पन्न या बादलोंके बीच चमकती हुई बिजलीसे आगकी कल्पना कर उसे नियन्त्रित कर मानव हितमें उसका प्रयोग करनेकी बात सबसे पहले अंगिरस ऋषिने सोची थी। अग्निकी खोज कर उसे मानवके लिए उपयोगी बनानेके कारण अग्निका नाम ही 'आंगिरस' पड़ गया।' आर्योंके उस समयके सामाजिक जीवनमें अग्निका आविष्कार एक महती उपलब्धि थी, एक सर्जनात्मक क्रान्तिकी उत्पादक थी। 'आर्योंने उस अग्निके द्वारा अपने समाजका बहुमुखी विकास किया। प्रजा और

पशु दोनोंकी उन्नति अग्नि द्वारा हुई। कच्ची वस्तुएँ आगमें भूनकर खायी जाने लगीं, तब अग्निका दूसरा नाम 'अमद' पड़ गया। कुछ लोग माँस भी भूना करते थे। इसलिए अग्निको मरे हुए माँसको खानेवाला समझकर उसका एक और नाम 'क्रव्याद्' रखा गया।' इस तरह अग्निने आर्योंके कठोर और विपद्ग्रस्त जीवनको सरल, सुखी और आशा-विश्वासमय बनाया, भोजनकी समस्या हल की, शत्रुओंसे रक्षा की, कठोर शीत और अन्धकारसे छुटकारा दिलाया। अग्निकी भाँति पशु भी आर्योंके सामाजिक अभ्युदयके सहायक बने। पशुओंसे दूध मिलने लगा, उनसे खेती की जाने लगी, अन्न पैदा होने लगा; तो शिकारके लिए भटकने और नाहक प्राण गँवानेसे छुटकारा मिल गया। पशु तब उनके जीवन साथी बने। मरनेके बाद उनकी हड्डियाँ, चमड़े भी आर्योंके जीवन-सुखके विधायक बने। अग्नि और पशुने आर्योंको एक उन्नत युगमें प्रवेश करनेमें सहारा दिया।

समाजकी रचना और विकासमें उत्पादनके नए साधन ही मुख्य कारण होते हैं। उत्पादन ही परिवर्तन और क्रान्ति पैदा करता है। आर्योंने अग्निका भरपूर उपयोग किया। वह उनके जीवनका निर्माता बन गया। इसलिए उन्होंने अग्निका एक और नया नाम दिया 'विशपति'। विशपति उनकी बस्तियोंको, उनके समूहोंका रक्षक, उनके गृहस्थ-जीवनका अभिभावक माना गया। घरके स्वामीको भी अग्निको मानकर उसे 'गृहपति' कहा गया। इस प्रकार अग्निको जीवनके विकासका मुख्य साधन मानकर उसका उपयोग जब चरम सीमा तक पहुँच गया, तो उसकी परिणति 'यज्ञ'के रूपमें हुई।

जिस प्रकार अंगिरा ऋषिने अग्निका आविष्कार किया, उसी प्रकार गृत्समद ऋषिने कपासके सूत तकलीसे निकालकर सूती कपड़े बुननेका आविष्कार किया। कृषि और पशुपालन आर्योंकी प्रारम्भिक मुख्य जीविका थी। वे खेतोंमें सिंचाई करते थे। उन पर खाद डालते थे। मुख्य धन गोधन माना जाता था। भूमि पारिवारिक सम्पत्ति स्वीकार कर ली गई। व्यापार करनेकी प्रवृत्ति उस समय पैदा नहीं हुई थी। किन्तु गाय विनिमयका साधन थी। वस्तुओंके दाम गायके रूपमें दिए जाते थे। ऋणका लेन-देन प्रचलित हो गया था। ऋण अदा न करने पर दास बनना पड़ता था।

शिल्प और कारीगरीका विकास हुआ। कुशल बढ़ई 'रथकार' कहे जाते थे। वे खेतीके लिए हल और युद्धके लिए रथ बनाया करते थे। हथियार बनाने वाले 'कर्म्मार' कहे जाते थे। लोहे और ताँबेके हथियार बनते थे। रथ हाँकने वाले 'सूत' कहे जाते थे। रथ बनानेवाले 'रथकार' कहे जाते थे। नदियोंकी यात्राएँ नावों द्वारा की जाती थीं। इस प्रकार समाजका क्रमिक विकास होते-होते आर्योंका एक संगठन बना। कई समूहोंको मिलाकर बनाए जाने वाले संगठनको जन कहा जाता था। जनका नाम परिवारके तेजस्वी या बुजुर्गके नाम पर रखा जाता था। जनके अधीन लोग अपनेको 'सजात' या 'सनाभ' कहा करते थे। कोई-कोई 'स्वजन' भी कहते थे। एक जनके सब लोगोंको मिलाकर 'विशः' कहा जाता था। अपने जनके बाहरके लोगोंको 'अन्य-नामि' या 'निष्ठ्य' कहा जाता था। जो जन किसी जगह स्थायी रूपसे न रहकर इधर-उधर घूमा करते थे, उन्हें 'अनविस्थाः विशाः' कहा जाता था। एक जन कई गोलोंमें बँटा रहता था। हर गोलको 'ग्राम' कहा जाता था। ग्रामका मुखिया 'ग्रामणी' कहलाता था।

दो जनोंमें युद्धका अवसर उपस्थित होने पर हर ग्रामके लोग हथियारोंसे लैस होकर जिस जगह एकत्र होते थे, उसे 'ग्रामवार' कहा जाता था। ग्रामवार आगे चलकर 'संग्राम' कहा जाने लगा। संग्रामका अर्थ आगे चलकर 'युद्ध' हो गया।

युद्धकी स्थिति होने पर 'संग्राम'में इकट्ठा होकर बालिग़ व्यक्ति पूर्ण सैनिक वेश धारण कर उपस्थित होता था। वह शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित होकर कवच पहनता था। 'पदाति' और 'रथी' दो प्रकारके ही योद्धा उस

* * *

कालमें थे। सेनापतिके स्तरके अथवा जनों और विशोंके अग्रणी व्यक्ति रथों पर चढ़कर संग्राममें सम्मिलित होनेके लिए जाते थे। बाकी लोग पैदल जाया करते थे। उस समयके योद्धाओंके मुख्य अस्त्र धनुष बाण, भाला, बर्छा, कृपाण और परशु थे।

ऋग्वेदसे सूचित होता है कि उस कालमें एक जन दूसरे जनसे युद्ध करता था और दास कहे जाने वाले अनार्योंसे आर्य-जन युद्ध करते थे। आर्य लोग अपनेसे भिन्न लोगोंको, जिन्हें आज कल अनार्य कहा जाता है; दास, असुर, नाग, दानव, राक्षस आदि नामोंसे पुकारते थे और इन्हींसे युद्ध करते थे। कहीं-कहीं दासको 'अनासः' भी कहा गया है। शायद किसी जातिके लोगोंकी नाक चपटी होनेसे ही आर्य लोग उन्हें 'अनास' अर्थात् बिना नाकका कहा करते थे।

आर्योंके सामाजिक-विकास क्रमका आधार पूर्णरूपसे प्रामाणिक वैदिक साहित्य है। ग्रामोंका नेता जैसे 'ग्रामणी' कहलाता था, वैसे ही 'जन' या 'विशः'का नेता 'राजा' कहलाता था। राजा द्वारा शासित प्रदेश या जन 'जानराज्य' कहलाता था। वह ज्येष्ठ और श्रेष्ठ होनेके कारण 'ज्येष्ठ' भी कहा जाता था। कुछ काल बाद कई 'जनः' मिलाकर जो संघटन बनाया जाने लगा, वह 'पंचजनाः' कहलाया। आगे चलकर एक जनमें दूसरे जनका भी समावेश किया जाने लगा। प्रारम्भिक अवस्थामें विवाह-बन्धन नहीं था, किन्तु स्त्री-पुरुषके जोड़े तो रहते ही थे। यौन-व्यवहार अमर्यादित था। एक स्त्रीकी कई सन्तानोंके कई पिता होते थे अथवा कभी-कभी किसी स्त्रीको यह भी पता नहीं चल पाता था कि उसकी सन्तान किसकी है? इसलिए कि वह अनेक व्यक्तियों द्वारा भोगी गयी थी। उस कालमें मातृसत्तात्मक समाज था। माताके नामसे गोत्र चलते थे और एक स्त्री अनेक पति करती थी। महाभारतके आदि पर्वमें बताया गया है कि "प्राचीन कालमें स्त्रियाँ अनावृत थीं, वे अपनी इच्छानुसार स्वतन्त्रतापूर्वक रमण करती थीं। वह कुमारावस्थासे अनेक पुरुषोंका संसर्ग-सुख प्राप्त करती थीं - यह पुराना धर्म था।" छान्दोग्य उपनिषद्‌में लिखा है कि "एक बालक आचार्य हारिद्रुमत गौतमके आश्रममें जाकर ऋषिसे प्रार्थना करता है कि उसका उपनयन संस्कार करके वह उसे विद्याध्ययन कराएँ। ऋषिने उस बालकका नाम पूछा, तो उसने सत्यकाम बतलाया। और गोत्र पूछने पर उसने बताया : आचार्य! मुझे अपना गोत्र मालूम नहीं है। यहाँ आते समय मैंने माँसे पूछा तो उसने उत्तर दिया कि युवावस्थामें कई जगह आते-जाते मैंने तुम्हें पैदा किया था, सो मैं नहीं कह सकती कि तुम्हारा पिता कौन था और तुम्हारा गोत्र क्या हो सकता है। मेरा नाम जबाला है और तुम सत्यकाम जाबाल हुए। यही गुरुसे कह देना।"

यह सुन आचार्यने कहा कि "तुमने सत्य भाषण किया है। निश्चय ही तुम ब्राह्मणके वीर्यसे उत्पन्न हो। सौम्य, मैं तुम्हें उपनीत करूँगा।" ऐसी स्थितिमें भावी दुष्परिणामोंकी ओर सबसे पहले ध्यान ऋषि दीर्घतमाने दिया, उन्होंने विवाह संस्था कायम की।

वैदिक-कालमें विवाह परिपक्व अवस्थामें हुआ करते थे। कुछ स्त्रियाँ आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करती थीं, उन्हें ब्रह्मवादिनी कहा जाता था। युवक-युवतियोंको अपना जोड़ा बनानेकी पूरी आज़ादी थी। तरुण-तरुणियाँ बिना रोक-टोक मेला-ठेलामें, उत्सव-गोष्ठीमें आमोद-प्रमोद करती थीं। उस समय वसन्त ऋतुमें एक महोत्सव मिल-जुलकर मनाया जाता था, जिसे 'समन' कहते थे। इस उत्सवमें युवक-युवतियाँ अपनी मनचाही पत्नी और मनचाहा पतिका चुनाव करती थीं। मिथिलामें इसीसे मिलती-जुलती प्रथा अब भी है।

वैदिक-युगमें ऊँच-नीचका भेद वर्णगत नहीं, वर्गगत था। उस समय वर्णाश्रम व्यवस्थाका उदय नहीं हुआ था। आर्य और दास दो मुख्यवर्ग थे। आर्य दाससे ऊँचे समझे जाते थे। सैनिक वर्गमें 'पदाति', 'रथी' और

५८

'महारथी' तीन प्रकारके योद्धा थे। पदातिसे रथी और रथीसे महारथी अधिक सम्मानित और प्रतिष्ठित माने जाते थे।

राजनीतिक संगठन: राजनीतिक रूपसे संगठित 'जनः' या 'विशः'को 'राष्ट्र' कहा जाता था। राष्ट्रका प्रधान राजा होता था। राजाका चुनाव विशः द्वारा होता था। निर्वाचित राजासे राष्ट्रकी प्रजाकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा करायी जाती थी, प्रतिज्ञा पूरी न करने पर राजाको पदच्युत कर दिया जाता। 'समिति' और 'सभा'की सहायतासे राजा राज्य करता था। सम्पूर्ण 'विशः'की प्रतिनिधि संस्थाको 'समिति' कहा जाता था। उससे छोटी संस्था 'सभा' थी, जो इस समयके 'सुप्रीमकोर्ट'के समान थी।

वैदिक-युगमें राज्य संस्थाओंका जो विकास हुआ, उसके अनुसार 'साम्राज्य', 'जानराज्य', 'आधिपत्य' और 'सार्वभौम' राज्य मुख्य थे। कई छोटे-छोटे राज्योंका समूह साम्राज्य कहलाता था। एक प्रकारके गण-तान्त्रिक राज्य संघको 'गणराज्य' कहते थे। अपने पड़ोसी राज्यों पर आधिपत्य कायम करने वाला राज्य 'सार्व-भौम' कहलाता था और उसका राजा चक्रवर्ती सम्राट् कहा जाता था।

उत्तर वैदिक काल

आर्य लोगोंने हिमालयके परिसरमें जहाँ स्थायी निवास किया था, उसे वह 'आर्यावर्त' कहते थे। धीरे-धीरे उनका विस्तार पूरब और दक्षिणकी ओर हुआ। जैसे-जैसे उनका विस्तार होता गया, वैसे-वैसे आदिम जातियोंसे उनका संघर्ष और सम्पर्क बढ़ता गया। उनके रीति-रिवाजोंमें राज्य-संस्थाओंके अन्दर समयानुसार परिवर्तन होते गए। 'जनः' राज्य 'जनपद' कहलाने लगे 'जान राज्य' 'जानपद' राज्य हो गए। कहीं 'साम्राज्य' थे, कहीं 'जानपद' राज्य और कहीं 'संघराज्य' थे। आर्य-जाति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र - इन चार वर्गोंमें बँट गई। जातीय ऊँच-नीचके भेद-भाव बढ़ने लगे। अपनेसे भिन्न जातिसे रोटी-बेटीका सम्बन्ध निषिद्ध कर दिया गया। जल-थल मार्गसे व्यापार विदेशों तक फैल गया। कर्मके अनुसार समाजमें अनेक श्रेणियाँ बन गईं। कला, कौशल, शिल्प और विद्याओंकी चरम उन्नति हुई। धनी और गरीबके बीच भी भेद बढ़ता गया। नाग-रिक और ग्रामीण संस्थाओंमें वृद्धि और उन्नति हुई। पेशेके ऊँच-नीच होने पर कुलकी ऊँचाई-नीचाई आँकी जाने लगी। पेशा ही 'जाति' या 'कुल' बनाने लगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य क्रमशः उच्च वर्ण थे; शूद्र, चाण्डाल आदि दास वर्ग अनार्य जातियोंके थे। दास प्रथाका बोलबाला हो गया था। कर्ज अदा न करने पर, युद्धमें परास्त और कैद होने पर, मृत्युदण्ड के बदले कानूनी दण्डके रूपमें अनार्योंको दास बनाया जाता था। कुछ लोग अपनी गरीबी या परेशानीसे तंग आकर खुद दास बन जाते थे। कुल, गोत्रका अभिमान, पेशेका ऊँच-नीच भाव उस समयके समाजमें प्रविष्ट हो गया था। विद्याध्ययन और तपस्याका प्रचार तथा प्रभाव बढ़ा हुआ था। उस समय जो कपटी संन्यासी होते थे, उन्हें 'कुहुक तापस' कहा जाता था। ऋषियोंके आश्रम 'गुरुकुल' कहलाते थे। धुरन्धर विद्वान् गुरुकुलके 'कुलपति' होते थे, जिन्हें 'दिशा प्रमुख आचार्य' कहा जाता था। चारों वेदों, चौदह विद्याओं और छहों शास्त्रोंकी शिक्षा गुरुकुलोंमें दी जाती थी।

वैदिक आर्य पहले प्रकृतिके उपासक थे। अग्नि, वरुण और वायु उनके देवता थे। कालान्तरमें सूर्यके विभिन्न गुणोंसे कई देवताओंकी कल्पना की गई, जिनमें विष्णु मुख्य थे। उस समयके असुर शिव और शिवलिंगकी पूजा करते थे। आर्य उन्हें 'शिश्नेदेवाः' कहते थे। देवताओंको प्रसन्न करनेके लिए यज्ञ किये जाते थे। यज्ञोंमें बलिदान भी किए जाते थे। सोमरस आर्योंका बहुत महत्वपूर्ण पेय था। मरे हुए व्यक्तियोंको

अग्निमें जलानेकी प्रथा थी। विदेशोंसे आर्योंका सम्पर्क होनेसे आर्यावर्तके पश्चिमी देशोंकी संस्कृतिसे वैदिक-संस्कृतिका समन्वय उत्तर वैदिक कालमें हो गया था।

महाजनपद काल

उत्तर वैदिक कालका अन्त होने पर देशमें सोलह महाजनपदोंका उदय हुआ। इसी समय और इसके कुछ ही समय बाद जैन और बौद्ध-धर्मोंका उदय हुआ, जो वैदिक कर्मकाण्डको ढोंग बताते थे। सत्य, अहिंसाको परमधर्म बताते थे। सोलह महाजनपदोंके युगमें आर्य लोग भारतके चारों खूंटमें फैल गए थे। भारतीय नाविक, व्यापारी और विजेता पूर्वके समुद्री टापुओं तक पहुँच कर बस गए थे। इस युगमें राज्य-संस्थाओंमें परिवर्तन हुए। राजा खेतोंकी उपज पर वार्षिक बलि (कर) लेता था। लावारिस ज़मीन पर राजाका अधिकार हो जाता था। राजस्वकी वसूली 'ग्राम-योजक' (गाँवके मुखिया) करते थे। गाँवोंके बाहर आराम और उद्यान बनाए जाते थे। किसान अपनी जमीनका मालिक होता था। किसानोंके सामूहिक निवास 'ग्राम' कहलाते थे। हर गाँवमें 'कई कुल' (संयुक्त परिवार) होते थे। कृषि कर्म सर्वोच्च पेशा माना जाता था। ग्रामवासी सामूहिक कार्य और श्रम करते थे। ग्राम सभाएँ स्वायत्त शासनका उत्तरदायित्व रखती थीं। श्रमका विभाजन था। शिल्प और व्यवसाय काफी उन्नत था। हर व्यवसायके लोगोंके संगठन थे। इस युगमें श्रमिकोंकी अठारह श्रेणियाँ थीं। एक-एक श्रेणीमें एक-एक हज़ार शिल्पी या कर्मकर होते थे। हर श्रेणीका प्रमुख 'ज्येष्ठक' कहा जाता था, जो मतदान द्वारा निर्वाचित होता था। कृषि, व्यापार, शिक्षा, श्रमकी व्यवस्था और उसकी देखरेखका भार 'श्रेणि'के अधीन था। व्यापारके लिए 'सार्थ' चला करते थे। सार्थका प्रधान 'सार्थवाह' कहलाता था। जहाजों द्वारा समुद्री व्यापार होता था। स्थल-मार्गसे व्यापार करने वाले सार्थकी रक्षाके लिए 'अटवी', 'आरक्षण' नियुक्त थे। जलमार्गसे व्यापारकी सुविधा और सुरक्षाके लिए जल-स्थल 'निय्यामक' (पथप्रदर्शक) नियुक्त थे। राज्यकी ओरसे नगरोंमें आने वाले माल पर चुंगी ली जाती थी। 'कार्षापण', 'निष्क' और 'सुवर्ण' नामके सिक्के चलते थे। बड़े-बड़े व्यापारिक नगरोंमें शिल्प और व्यापारके संघ बने हुए थे, जिन्हें 'निगम' कहा जाता था। निगम आर्थिक संचालन और वृद्धिका उद्योग, उपाय करते थे। नियमोंकी रक्षा और उनके पालनके लिए न्यायालयका भी काम करते थे। शासनकी सबसे छोटी इकाइयाँ 'ग्राम', 'श्रेणि' और 'निगम' थे। इस युगमें नगरोंका विकास अधिक हुआ। नगर महापालिकाओंका उदय इसी युगमें हुआ। श्रेणियोंके विवाद निपटानेके लिए 'भाण्डागारिक' नामका अधिकारी रहता था। वैदिक-कालकी समिति नामकी राज्य संस्था इस समय 'पौरजानपद' कहलाने लगी।

इस कालमें 'संघराज्य' और 'एकराज्य' दोनों प्रकारके राज्य शासक थे। साथ ही गणराज्योंमें चक्रवर्ती सम्राट् बननेकी प्रतिद्वन्द्विता भी चलती थी। पेशेके कारण सामाजिक उच्चता और नीचताका भाव समाजमें था। पाप-पुण्यका फल भोगनेका विश्वास लोगोंमें था।

शैशुनाग : मौर्यकाल

महाजनपद युगके बाद नन्द और मौर्य-कालमें उत्तरवैदिक कालके अनुसार ही देश 'प्राची', 'प्रतीची', 'दक्षिणापथ' और 'मध्यदेश' - इन चार भागोंमें विभक्त रहा। इन्हें 'चक्र' कहा जाता था। एक-एक चक्रके अन्तर्गत अनेक 'जनपद' थे। जनपदोंके अन्तर्गत 'आहार' (जिले) और 'कोट्टविषय' (पहाड़ी किलों द्वारा शासित प्रदेश) दो इकाइयाँ थीं। हुकूमतको 'अनुशासन' कहा जाता था। 'कुमार', 'महामात्य', 'समाहर्ता', 'नागरक',

'स्थानिक', 'गोप', 'प्रदेष्टा', 'आयुक्त', 'युक्त' आदि बड़े-छोटे शासक थे। 'कण्टक शोधन' (फौजदारी) तथा 'धर्मस्थायी' (दीवानी) अदालतें न्यायके लिए थीं। जनताके चरित्रके निर्माण और संरक्षणके लिए जनता द्वारा अनुशासित 'निकाय' थे। जिन्हें 'ग्राम श्रेणि', 'नगर' और 'जनपद' कहा जाता था। आठ प्रकारके विवाह कानूनके अन्दर माने जाते थे। उनमेंसे पृथक् चार प्रकारके विवाह धर्मयुक्त, शेष चार प्रकारके अधर्मयुक्त माने जाते थे।

विशेष परिस्थितिमें 'मोक्ष' (तलाक)की भी व्यवस्था थी। इस कालमें चार प्रकारके दास थे। १. 'उत्तर दास', २. 'क्रीतदास', ३. 'आहितक दास' (गिरवी) रखना जायज़ था, किन्तु आर्यको हरगिज गुलाम नहीं बनाया जा सकता था - 'नत्वेवार्यस्यदासभावः।' दासोंके रखनेका भी कानून बना हुआ था। विधवा-विवाह जायज़ माना गया था।

उत्तर मौर्य कालमें जातिभेद बहुत ही उग्र हो गया था। आर्य और दासका भेद पूर्ववत् ही कठोर बना रहा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, द्विज कहलाते थे और अनार्य जो आर्योंमें मिलकर शूद्र कहलाए, वे द्विजोंसे निम्न-कोटिमें गिने गए। वर्णसंकर जातिका विस्तृत ब्यौरा भी इसी कालसे मिलता है। ब्राह्मणसे वैश्य कन्यामें उत्पन्न 'अम्बष्ठ', वैश्यसे क्षत्रिय कन्यामें उत्पन्न 'मागध' तथा वैश्यसे ब्राह्मणी कन्यामें उत्पन्न 'वैदेह', ब्राह्मणसे अम्बष्ठ कन्यामें उत्पन्न 'आभीर', व्रात्य ब्राह्मणसे ब्रात्य ब्राह्मणीमें उत्पन्न 'आवन्त्य' और व्रात्य क्षत्रियकी सन्तान 'झल्ल', 'मल्ल', 'लिच्छवि', 'खस', 'द्रविड़' कहे जाते थे। इन सबको मिलाकर 'वृषल' कहा जाता था। छुआछूतका विवेक उग्ररूपसे प्रचलित हो गया था। अपने वर्णके अलावा कोई और पेशा करने पर व्यक्ति पाँति या जाति-च्युत, धर्मच्युत माना जाता था। यद्यपि आर्यों और अनार्योंका संगम हो चुका था, फिर भी आर्यत्वका अभिमान बना हुआ था। गोरा रंग, पवित्रता, सदाचार, पिंगल वर्ण आँखें, भूरे केश आर्य ब्राह्मणकी निशानी माने जाते थे। पातिव्रत-धर्म और एक-पत्नी-व्रतको स्त्री-पुरुषका सर्वोच्च धर्म माना जाता था। असपिण्ड और असगोत्र विवाह हुआ करते थे। मौर्यकालमें 'विष्टि' (बेगार) सम्बन्धी नियम अधिक व्यापक बने।

सातवाहन : गुप्तकाल

इसके बाद जब गुप्तयुग आता है, उस समय पौराणिक धर्म व्यापक बन जाता है। मूर्तिपूजाको व्यापक प्रतिष्ठा और मान्यता मिली। मौर्ययुगमें जानवरोंको लड़ाकर बाज़ी लगाने वाली प्रथाका इस कालमें अन्त हो गया। वर्णाश्रम धर्मका पालन कठोरतासे किया जाता था। चारों वर्णोंमें ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ और सम्मानित माना जाता था। जाति-भेदको काफी बढ़ावा मिला। एक ही जातिके अन्तर्गत सैकड़ों शाखाएँ उत्पन्न हो गईं। भोजनके नियम जातीय भेदभावके उत्पादक बने। अनुलोम विवाह प्रथापर रोक लगा दी गयी थी। ब्राह्मणोंकी भाँति क्षत्रियोंका जीवन समुन्नत और सम्मानित था। क्षत्रियोंको अनुलोम विवाह करनेकी शास्त्रीय आज्ञा थी। धर्मपूर्वक शासन करनेकी प्रथा बनी। वाकाटक, गुप्त, पल्लव आदि राजा 'धर्ममहाराज' कहलाए। शासन 'विषयों' और 'भुक्तियों'में बाँटा गया। राजाकी ओरसे 'विषयों' और 'भुक्तियों'के जो शासक नियुक्त होते थे, वे 'गोप्ता' या 'उपरिक' कहलाते थे। विषयों (जिलों)में जो राजकीय 'अधिकरण' (कार्यालय) थे, वे जनताकी प्रतिनिधि संस्थाओंके सहकारसे कार्य करते थे।

दूसरे धर्मोंके प्रति सहिष्णुता थी। विदेशी लोग भी पौराणिक धर्म स्वीकार कर लेने पर हिन्दू (आर्य) समाजमें मिल जाया करते थे। सामाजिक आचार पद्धति इस युगमें अधिक विस्तृत और व्यापक बन गई थी। समाजकी हर इकाईको अपने व्यक्तित्वको ऊँचा बनाने, बढ़ानेका पूरा अवसर दिया जाता था। उस समय-

* * *

का समाज ज्ञान-विज्ञान और कला-शिल्पसे पूर्ण सम्पन्न था। विद्वत्ता, योग्यताका पूर्ण समादर किया जाता था। म्लेच्छ माने जाने वाले यवन भी शास्त्रज्ञ होने पर सम्मानित और पूज्य होते थे।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र - इन चार मुख्यवर्णोंके अतिरिक्त व्याघ्र, चाण्डाल, निषाद आदिका एक पाँचवाँ वर्ग या वर्ण बन गया था। सभी वर्णोंकी प्रजाके आचरणकी देखरेखका भार राजा पर होता था। वर्ण-व्यवस्था-का उल्लंघन बहुत कम होता था। समाजके अगुआ, परिवार या कुलके नायक समाज और कुलको शुद्ध बनाए रखनेके लिए प्रयत्नशील रहते थे। प्रत्येक वर्ण अपने-अपने निर्धारित कर्मको करता था। उच्च वर्णोंके लोगोंमें सोलह संस्कार जन्मसे मृत्यु-पर्यन्त प्रचलित थे। पत्नीको सहधर्मिणी मानकर उसकी आवश्यकता पर बल दिया जाता था। स्वयंवरकी पुरानी प्रथा भी चल रही थी। सवर्ण विवाह करनेकी साधारण प्रथा थी, किन्तु कभी-कभी अन्तर्जातीय विवाह भी हो जाया करते थे। पत्नी पतिका पूरा प्यार प्राप्त करती थी। वह घरकी लक्ष्मी मानी जाती थी। बलात्कार, यौन-व्यभिचार बहुत कम होता था। राजाओं, सामन्तोंमें बहु-विवाह प्रथा थी। पतिके मरने पर पत्नी सती हो जाया करती थी। गर्भवती स्त्रियाँ सती नहीं होती थीं। ऊँचे वर्णोंमें परदाकी प्रथा थी। जहाँ औरतें रहा करती थीं, घरके उस भागको 'शुद्धान्त' कहा जाता था। पुत्रके समान ही पुत्रीके जन्मका उत्सव मनाया जाता था। पुत्रवती स्त्री सौभाग्यशालिनी मानी जाती थी। वंशको पवित्र बनाए रखनेके लिए खूनकी पवित्रताकी बराबर चिन्ता की जाती थी। पौष्टिक भोजन विभिन्न प्रकारके बनाए जाते थे। मद्यपान करनेकी भी प्रथा थी। उस समय 'आसव', 'मदिरा', 'वारुणी', 'कादम्बरी', और 'शीधु' नामकी शराब बनाई जाती थी।

पुरुष अपने सिर पर 'उष्णीश' (पगड़ी) बाँधता था। शरीरमें 'दुकूल युग्म' (दुपट्टा और धोती) धारण करता था। स्त्रियाँ रेशमी ऊनी शाल ओढ़ती थीं। धोती या साड़ीके अलावा 'स्तनांशुक' (चोली) पहनती थीं। कीमती रेशमी कपड़े अधिक पहने जाते थे। यूनानी दास-दासियोंकी वेशभूषा यूनानी ढंगकी होती थी। अनार्य या दस्यु कही जाने वाली जंगली जातियाँ अपने शरीरको तृण-रज्जुओंसे ढँकती थीं। सिर पर मयूर पंख बाँधती थीं।

स्त्री-पुरुषोंमें अलंकरणका अधिक शौक था। विविध प्रकारके आभूषण पहने जाते थे। अनेक प्रकारके श्रृंगारके उपकरण प्रयुक्त होते थे। सौहार्द और मैत्रीभाव बढ़ानेकी भावना प्रबल थी। एक दूसरेके लिए शुभ कामनाएँ रखी जाती थीं। शिष्टाचार और सदाचारका बहुत ध्यान रखा जाता था। आचारको प्रथम धर्म माना जाता था। विवाह पारिवारिक बन्धनका आधार माना जाता था। अतिथिसत्कार गृहस्थका महान् धर्म समझा जाता था। धर्मशास्त्रोंके नियमोंके अनुसार समाज चलता था। नैतिकता पर बहुत बल दिया जाता था। फिर भी समाजमें विलासिता कुछ कम न थी। धर्मपथ पर चलने वाले लोग समाजका निर्माण और नियन्त्रण करते थे। इस युगके भारतीय-समाजमें हमें बहुमुखी विकास मिलता है। वह समाज जीवित राष्ट्रका प्रतीक बना हुआ था।

वाकाटक

गुप्त-युग समाप्त होने पर पूर्व मध्ययुगमें हर्षवर्द्धनके शासनकाल तक समाजका ऊपरी ढाँचा बना तो रहा, किन्तु अन्दरसे वह खोखला होता जा रहा था। बौद्धधर्मका अन्धविश्वास जन-जनमें समाया हुआ था। पौराणिक धर्म भी अश्लीलताका रूप ग्रहण कर रहा था। देशकी सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्तियोंका ह्रास होने लगा। अनेक प्रकारके मत-मतान्तर फैलने लगे। धार्मिक-विरोध, परस्पर कलह और विवादको पनपा

रहे थे। शैव, पाशुपत, गाणपत्य, वैष्णव, बौद्ध आदि मत एक दूसरेकी निन्दा स्तुतिमें, सिद्धि प्राप्त करनेमें, समाजको विश्रृंखल और मतिभ्रष्ट करनेमें अपना कौशल दिखा रहे थे। फिर भी भक्तिमार्गीय विद्वान् विचारक सामाजिक सन्तुलन बनाए रखने, विवेकको कायम रखनेके लिए चेष्टा करते थे। वैष्णवोंमें आलवार सन्तोंने, शैवोंमें शंकराचार्यने समाजको प्रशस्त पथ पर चलानेका प्रशंसनीय कार्य किया।

शक, हूण, कुशाण, आभीर आदि बर्बर जातियोंके आक्रमण इस कालसे शताब्दियों पूर्व भारतमें होने लगे थे। हिन्दू-समाजमें इनकी अन्तर्भुक्ति हुई, जिससे सामाजिक रहन-सहनका ढाँचा भी बदल गया। विभिन्न संस्कृतियोंका संगम आर्य-संस्कृतिमें हुआ। इसी कालमें तुर्कों, मुसलमानोंके आक्रमण हुए। महमूद गजनवीने मन्दिरों, मूर्तियोंको तोड़ा; तब हिन्दू समाजमें सुधारकी एक हलकी लहर फिर आयी। किन्तु कश्मीरमें हिन्दू राजा शंकरवर्मा और हर्षने महमूद गजनवीसे भी अधिक बर्बर अत्याचार किए जिसका दुष्प्रभाव तत्कालीन समाज पर पड़ा। जिस समय शंकरके अद्वैतवादके विरुद्ध रामानुजने विशिष्टाद्वैत मतका प्रचार किया, उसी शताब्दीमें कर्णाटकमें वीरशैव नामके सम्प्रदायका उदय हुआ, जिसने समाज सुधारके लिए क्रान्ति की। इस कालमें धर्म और कर्मकी जड़ता अधिक बढ़ गई थी। समाज भी जड़ीभूत बन गया था। ऐसे सामाजिक वातावरणमें बाहरी-भीतरी शत्रुओंका आतंक प्रबल बन रहा था।

यद्यपि पूर्व मध्ययुगमें विचारकी गति अवरुद्ध हो गयी थी। फिर भी विद्याध्ययन और प्रचारके उत्साहमें कोई कमी नहीं आयी। इस समय भी नालन्दाका विहार विश्वविख्यात था। जहाँ देशी-विदेशी ५,००० से अधिक छात्र एक साथ विद्याभ्यास करते थे। भारतीय विद्या और ज्ञानका प्रचार इस कालमें भी विदेशोंसे होता रहा। भारतीय विद्वान् बग़दादके खलीफाके यहाँ सम्मान पाते थे। भागलपुर जिलेमें विक्रमशिला विहार भी विद्याका केन्द्र था।

उत्तर मध्ययुगमें धार्मिक आडम्बर और धार्मिक विवाह बहुत बढ़ गए थे। श्रमिक और कुलीन वर्गके बीचकी खाई चौड़ी हो गयी थी। जातियोंके अन्तर्गत अनेक जातियाँ तेजीसे पैदा हो रही थीं। जाति-पाँति, छुआछूतका इतना अधिक आडम्बर और हठ बढ़ा कि समाजका मानस कुंठित और संकुचित हो गया। विदेश-यात्रा, समुद्रयात्रा अधर्म मानी जाने लगी। मुस्लिम विजेताओं द्वारा दास बनाए गए लोग यदि किसी तरह निपुचकर वापस आ जाते, तो उन्हें बिरादरीमें शामिल करना दूर रहा; अन्त्यज और यवनसे भी निकृष्ट माना जाता था। ज़रा-सी भूल या धर्मका अतिक्रमण होने पर भयंकर प्रायश्चित्त करनेका विधान बना हुआ था। समाज उत्तरोत्तर रूढ़िग्रस्त, निर्दय और प्रतिक्रियावादी बनता जा रहा था। जो भूलसे भ्रष्ट हुआ तो फिर वह गया। उसको शुद्ध करनेका, उसे फिरसे समाजमें मिला लेनेका कोई विधान नहीं था। नई-नई जातियाँ बननेका क्रम बारहवीं सदी तक चलता रहा, उसमें स्थिरता नहीं आ पायी। राजतरंगिणीसे विदित है कि बारहवीं शतीके अन्तमें कायस्थ नामकी जाति बनी। मौर्य-कालसे लेकर बारहवीं शती तक कायस्थ कोई जाति नहीं थी। सरकारी दफ्तरोंमें काम करने वाले कार्यस्थ ही कायस्थ कहे जाते थे। इसी शताब्दिमें राजपूत जातिके ३६ कुल बन गए। किसी प्रदेशका शासन 'राष्ट्रकूट' कहलाता था, वही बाद में राजपूत जातिकी एक शाखा 'राष्ट्रकूट' (राठौर) बन गई। पहले राजपूत नामकी कोई जाति नहीं थी। सोलहवीं शताब्दिसे क्षत्रियोंकी जातिका यह उपमान बन गया। यही हाल ब्राह्मणों, वैश्यों और शूद्रोंका रहा। इनके अनेक उप-नामोंसे जातिकी शाखाएँ और भेद निकले। परिणाम यह हुआ कि एक ही जाति अपनी ही जातिकी दूसरी शाखासे घृणा, वैमनस्य करने लगी। मतभेद और ईर्ष्याका बोलबाला बरपा हो गया। जातियोंका घाल-मेल भी होता रहा। अनेक हिन्दू मुसलमान बन गए। कुछ हिन्दुओंने मुस्लिम स्त्रियोंसे शादी की, कुछ हिन्दुओंने

* * *

अपनी लड़कियाँ मुसलमानों को दीं। सन् १६३४में शाहजहाँने एक फरमान निकाल कर आज्ञा दी कि कोई मुसलमान अपनी लड़कीकी शादी हिन्दूसे न करे और उसीसे शादी करे, जो हिन्दू मुसलमान बनना स्वीकार करे।

जिस तरह पुराने शकोंने आक्रमण कर भारतमें शासन करनेके साथ हिन्दू-समाजमें अपनेको खपाया था, उसी प्रकार तुर्कों और मंगोलोंने भी भारत-विजयके बाद अपने देशको भूलकर यहीं निवास किया, किन्तु इनके समयमें हिन्दुओंके सामाजिक आचार इतने कठोर और अनुदार थे कि ये लोग शकों, कुषाणों आदिकी भाँति हिन्दू-समाजमें न खप सके।

हिन्दू-समाजकी अनुदारतासे चिढ़कर, अपमानित होकर अनेक हिन्दू मुसलमान बनने लगे और फिर वही हिन्दुओं पर जुल्म ढाने लगे। चौदहवीं शतीसे भारतका राजनैतिक और सामाजिक पतन बड़ी तेजीसे हुआ; दक्खिनके हिन्दू-राज्योंको मिट्टीमें मिला देनेवाला मलिक काफूर पहले हिन्दू ही था। मुसलमान होकर उसने जाति-धर्मका अभिमान रखने वाले हिन्दुओंसे गिन-गिन कर बदला लिया। उनको हर भाँतिसे पस्त किया। मलिक काफूरके लोमहर्षक अत्याचारोंकी बुनियादमें हिन्दुओंकी सामाजिक अनुदारता ही रही। हिन्दू-समाजमें एक ओर कट्टर अनुदारता थी, तो दूसरी ओर आपसकी फूट। जिसका परिणाम राष्ट्रीय स्वाधीनता पर पड़ा और देश पराधीन हो गया। सामाजिक आचार, किन्तु जातीय अभिमान तब भी बरकरार रहा।

आधुनिक-काल

भारतीय-समाज मध्यकालमें जिस मोहनिद्रामें डूब गया था, उससे फिर वह अब तक मुक्त न हुआ। अठारहवीं शतीमें अंग्रेज व्यापारियोंने भारतका जर्जर सामाजिक ढाँचा भाँप लिया और कुछ ही दिनोंमें वह व्यापारीसे शासक बन गए। भारत और भारतीय-समाज अंग्रेजी साम्राज्यके मोहसागरमें आकण्ठ मग्न हो गया। भारतीय-रीति-रिवाजों, भारतीय-आचारपद्धति और भारतकी आपसी फूटका पूरा-पूरा फ़ायदा अंग्रेज़ोंने उठाया। इसी बीच गुजरात, बंगालके कुछ मनीषियोंने भारतीय-समाजके उत्तरोत्तर ह्रासको खुले दिमागसे सोचा। बंगालमें ब्राह्मसमाजकी स्थापना हुई। स्वामी दयानन्द सरस्वतीने आर्यसमाजकी स्थापना की। दोनों संस्थाओंने सामाजिक, धार्मिक सुधारोंका काम किया। आर्यसमाजने स्वदेश, स्ववेश, स्वधर्म और स्ववर्ण (आर्य-जाति) पर अनुराग करनेका मन्त्र दिया। स्वामी दयानन्दने भारतके प्राचीन तेजस्वी जीवनको वैदिक-धर्मके माध्यमसे पुनः प्रतिष्ठापित करनेका बीड़ा उठाया। लोगोंमें जातीय गौरवकी लहर दौड़ने लगी। स्वाधीनताका मूल्य आँका जाने लगा। सामाजिक क्रान्तिके साथ ही राजनैतिक क्रान्तिके बीज बोये गए। वन्देमातरम् गानकी सृष्टि हुई। स्वामी विवेकानन्द, गोपालकृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक, महामना मालवीय, लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द आदिने धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय क्रान्तिको व्यापक बनानेमें अभूतपूर्व कौशल दिखाया और उनके कार्यको आगे बढ़ाया सेठ जुगलकिशोर बिरलाने। उन्होंने देश, धर्म और समाजकी समुन्नतिके लिए अनासक्त भावसे जो कार्य किया, वह इतिहासका एक नया अध्याय बन गया है।

ज्ञानी सन्तसिंह 'प्रीतम'

हिन्दुत्वका रक्षक : सिख-सम्प्रदाय

⊙ ⊙ ⊙

हिन्दू-संस्कृति वह धारा है, जिसका अविच्छिन्न प्रवाह मानवी सृष्टिके उदयकालसे प्रवाहित है। इस अप्रतिहत प्रभावको रोकनेवाले स्वयं ही इस प्रवाहमें बह गए। हिन्दू-धर्म जाति-विशेषका धर्म नहीं, बल्कि भारत-धर्म है। भारत-धर्म वह उद्यान है; जिसके अंकमें भक्ति, योग, ज्ञान, वैराग्य, कर्म आदिके अगणित विटप सुशोभित हैं। जब कभी इस सनातन उद्यानकी ओर किसीने टेढ़ी नज़र की है तभी देशके दिग्-दिगन्तसे उमड़ती हुई भक्तिकी तरल-तरंगोंने उन्हें झुकाया है। मुगल-शासनकालमें भारतके पश्चिमी भागसे जो भक्ति-तरंग उमड़ी थी, उसको तरंगायित करनेवाले गुरु नानकदेव थे। गुरु नानकदेव तथा अन्य सिख गुरुओंका अवतरण धर्म संस्थापनार्थाय ही हुआ था। गुरु नानकदेवके अवतरणके समय देशकी स्थितिका चित्रण करते हुए बाबा गणेशसिंहने अपनी 'नानकजन्म-साखी'में लिखा है कि :

> राज बिनास भयो नृप हिन्दुन, फैल पर्‍यो जगमें तुरकाना।
> घात गवादिक पातक पुंजसे होन लगे उतपात महाना॥
> संयम नेम गयो छपि कै, कलि काम औ क्रोध भया परधाना।
> भूप भयो मति अन्ध महा, निरखै न कछू न सुनै कछु काना॥

स्वयं गुरुजीने अपने समयकी स्थितिका परिचय देते हुए कहा है:

> कहि काती राजे कसाई धर्म पंख कर उड़रिया।
> कूड़ अमावस सच्च चन्द्रमा दीसे नाहीं कहि चढ़िया॥

आगे चलकर जब गुरु गोविन्दसिंहजीका अवतरण औरंगजेबके कालमें हुआ, उस समय हिन्दू-जाति, हिन्दू-धर्म पर, सारे देश पर छाया हुआ संकट देखकर परम्परागत भक्ति-सम्प्रदायको सैनिक शिविरमें परिणत कर दिया, जहाँ पर भगवद्भक्ति और युद्धशक्तिकी गंगा-जमुनाका अपूर्व संगम था। सिखोंकी वह सेना भारतीय-धर्म और संस्कृतिकी रक्षा-सेना थी। आजसे साठ वर्ष पहले तक यह सिख-सम्प्रदाय अपने-आपको देशकी स्थायी सेना समझता था। किन्तु अंग्रेजोंकी कुटिलनीतिके चक्करमें फँसकर सिखोंमेंसे कुछ लोग अपने-आपको पृथक् समझने लगे और यह भेद-बुद्धि आज इतनी व्यापक बन गयी है कि सिख और हिन्दू दो अलग सम्प्रदाय ही नहीं, इनको अपनी अलग-अलग भाषा तथा इनके अपने अलग-अलग राज्य भी स्वीकार कर लिए गए हैं।

हम अपनी पुरानी परम्पराको, पुराने इतिहासको भूलते जा रहे हैं। हमारे गुरु तेगबहादुरजीने हिन्दू-

* * *

संस्कृतिकी रक्षाके लिए ही दिल्लीमें अपने सिरका बलिदान दिया था। इस अमर बलिदानके बारेमें स्वयं गुरु गोविन्दसिंह जीने अपने दसम ग्रन्थमें लिखा है :

तिलक जञ्जू राखा प्रभु ताका।
कीन्हा बड़ा कलू में साका।।
साधन हेतु इती जिन करी।
सीस दिया पर सी न उचरी।।

गुरुग्रन्थ साहिबमें लिखा है कि यदि सुन्नतसे ही पुरुष मुसलमान होता है, तो स्त्री मुसलमान नहीं हुई। अर्द्ध शरीरको तो छोड़ दिया गया। भाई हम तो हिन्दू ही मले।

सुन्नत किये मुसलमान जे होयगा, औरतका क्या करिये।
अर्द्धशरीरी नार जो त्यागी, ताते हिन्दू ही रहिये।।

हिन्दू-धर्मकी रक्षाके लिए उसे जाग्रत बनानेके लिए गुरुजी कालीमैयासे प्रार्थना करते हैं :

सकल जगत में खालसा पंथ गाजै।
जगै धर्म हिन्दुन, सकल धुंध भाजै।।

गुरुग्रन्थ साहिब आदिसे अन्त तक हिन्दू-धर्मके विभिन्न अंगोंके व्याख्यानसे परिपूर्ण है। उसमें ओंकार-महिमा, गो-महिमा, भगवान्‌के विभिन्न अवतार, सृष्टिकी रचना, भगवतीका प्रादुर्भाव, तीर्थ माहात्म्य, श्राद्ध माहात्म्य, सांख्ययोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, वेदान्त, अध्यात्म, श्रीराम और रामायण-महिमा, श्रीकृष्ण माहात्म्य, भगवान् श्रीकृष्णकी मुरलीकी महिमा, भगवती चण्डीका माहात्म्य, नाम-संकीर्त्तन-माहात्म्य, स्वर्गलोक, यमलोकका वर्णन, भगवद्‌भक्ति आदि उन सभी विषयोंका वर्णन है, जिनसे हिन्दू-संस्कृति, हिन्दू-धर्म सम्पन्न बना हुआ है।

कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं।

ओंकार-महिमा

ओंकारकी महिमा हमारे वेदों, शास्त्रोंमें भूरि-भूरि गाई गई है। इसे सब मन्त्रोंका सेतु माना गया है - 'मन्त्राणां प्रणवः सेतुः'। इसी प्रकार गुरुग्रन्थ साहिबका प्रारम्भ ओंकारकी महिमासे होता है; जैसे 'एक ओंकार सत्त नाम कर्त्ता पुरुष' इत्यादि। तथा :

हरि जू सदा ध्याये तू गुरुमुख एक ओंकार।
ओंकार ब्रह्मा उत्पत, ओंकार बेद निर्माये।।
जल, थल, महियल पूरिया स्वामी सिरजनहार।
अनिक भाँति होइ पसरिया 'नानक' एक ओंकार।।
ओम अक्खर सुनहु विचार, ओम अक्खर त्रिभुवनसार।
प्रणवौं आदि एक ओंकारा, जलथल महियल कियो पसारा।।

गौ-महिमा

यही देत आज्ञा, तुर्क गहिखपाऊँ।
गऊ घात का दोख जगसों मिटाऊँ।।
यही आस पूरण करौ तुम हमारी।
मिटै कष्ट गौऊन, छुटै भेदभारी।।
ब्राह्मण गौऊ-वंशघात अपराध करारे।

—ग्रन्थसाहिब

घात गवादिक पातक-पुंज सो होन लगे उत्पात महाना।

—जन्मसाखी

ईश्वर-अवतार

गुरु गोविन्दसिंहजीने भगवान्‌के अवतार होनेका कारण वताते हुए दसम ग्रन्थमें लिखा है :

जब जब होत अरिष्ट अपारा। तब तब देह धरत करतारा।।
आपन रूप अनन्तन धरहीं। आपन मध्य लीन पुन करहीं।।

सृष्टि की रचना और भगवतीका प्रादुर्भाव

गुरु गोविन्दसिंहजी दसम ग्रन्थमें लिखते हैं :

प्रथमकाल सब जग को ताता।
ताते तेज भयो विख्याता।
सोई भवानी नामु कहाई,
जिन यह सगली सृष्टि बनाई।।

तीर्थ-महिमा

तीरथ तप्प, दया दतु दान।
जे को पावे तिलका मान।।

—जपुजी

—तीर्थ स्नान, तपस्या, दया और दानका फल तिल भर करनेसे मन भर (चालीस सेर) हो जाता है। तथा :

तीरथ व्रत और दान कर, मन में घोर गुमान।
नानक निष्फल जात है, ज्यों कुंजर स्नान।।

—ग्रन्थसाहिब

* * *

तथा :

तीरथ नहावाँ, जे सित भावाँ,
बिन माने क्या नहाये करी।।
—ग्रन्थसाहिब

—हम तीर्थोंमें इसलिए नहाते हैं कि उसके प्रिय पात्र वनें। यदि उसके प्रिय नहीं वने, तो नहानेसे क्या लाभ ?

श्राद्ध-महिमा

आप ने देहि चुलू भर पानी,
तेहि निंदहि जे गंगा आनी।
—ग्रन्थसाहिब

—कलियुगमें ऐसे भी आदमी हैं, जो स्वयं अपने पितरोंको चुल्लूभर पानी नहीं दे सकते, परन्तु उस राजा भगीरथकी निन्दा करते है, जिसने पूर्वजोंके उद्धारके लिए गंगाका अवतरण किया।

रामनामका माहात्म्य

सिख-सम्प्रदायकी नींव ही राम-नाम है। गुरुग्रन्थ साहिवमें स्थान-स्थान पर राम-नाम-महिमा गाई गई है। भगवान् राम तो गुरु नानकदेवजीके पूर्वज ठहरे। अपनी वंशावलीमें गुरु नानकदेवजी लिखते हैं :

सूरजवंशी रघु भया, रघुकुल वंशी राम।
रामचन्द्र के दोए सुत, लऊ, कुशू तहि नाम।।
यह हमारे बड़े हैं, जुगाँ जुगाँ अवतार।
संग सखा सब तज गए, कोऊ न निबहो साथ।
यहि नानक इस विपत में, टेक एक रघुनाथ।।

सबते ऊँच राम परकाश।
निस बासर जप नानकदास।।
राम नामं महा मन्त्रं।
न ओ मरें न ठागे जाहि।।
जिनके राम बसहि मन माँहि।

दसम ग्रन्थमें रामायण-माहात्म्य

राम-कथा जुग-जुग अटल, सब कोउ भाखत नेत।
स्वर्गवास रघुवर किया, सगली पुरी समेत।।

जो यह कथा सुने अरु गावे।
दूख पाप तेहि निकट न आवे।
विष्णु-भक्ति की यह फल होई।
आधि-व्याधि छू सके न कोई।।

श्रीकृष्ण-माहात्म्य - आशाकी वार :

एक कृष्णं सर्व देवा देव देवात्म आत्मः,
आत्मं श्री वासुदेवस्य जे को जानस भेव।
'नानक' ताका दास है, सोई निरंजनदेव।।
आपे गोपी, आपे कान्हा, आपे गऊ चरावे वाना।
आप उपावे आप खपावे, तुध लेप नहीं इक तिलरंगा।।

—ग्रन्थसाहिब

रासलीलाका विवेचन करते हुए गुरु नानक देवजी लिखते हैं कि 'हे प्रभु : कृष्ण' आप ही गोपी हैं, आप ही कृष्ण हैं। आप ही गौ हैं और आप ही गौ चराने वाले हैं। आप ही संसारके कर्ता, हर्ता और पोषक हैं, फिर भी इन सबसे आप पृथक् शुद्ध, बुद्ध, निर्लेप हैं।

हरि हरि करत पूतना तरी,
बाल-घातिनी कपटहिं भरी।
कैसी कंस मथन जिन कीया,
जीय दान काली को दीया।
प्रणवे नामा, ऐसो हरी,
जास जपत भय आपदा टरी।।

—गुरु ग्रन्थसाहिब

दसम ग्रन्थमें गुरु गोविन्दसिंह जी कृत श्रीकृष्ण-स्तुति :

जो उपमा ब्रजनाथकी गइहैं,
और कवित्त न बीच करेंगे।।
पापन के तेउ पावक में,
कवि शाम भनै, कबहूँ न जरेंगे।।
चिन्त सभै मिटहैं जुरही,
छिनमें तिनके अघवृन्द टरेंगे।।
जो नर श्यामजुके परसे पग,
ते नर फेर न देह धरेंगे।।

* * *

गुरु गोविन्दसिंहजी कृत मुरली-महिमा :

रूखन ते रस चूवन लागा, झरैं झरना गिरि ते सुखदायी।
घास चुगैं न मृगा वनके, खग रीझ रहे धुन जा सुनपायी॥
देव गँधार बिलावल सारँगकी, रिझकैं जिह तान बसाई।
देव सभैं मिल देखत कौतुक, ज्यौं मुरली नँदलाल बजाई॥

श्री गुरुगोविन्दसिंहजी कृत भगवती-महिमा :

नमो उग्रदन्ती अनन्ती सवैया,
नमो जोग जोगेश्वरी जोगमैया।
नमो केहरी-वाहिनी शत्रुहंती,
नमो शारदा ब्रह्मविद्या पढंती।
नमो ऋद्धिदा सिद्धिदा, बुद्धिदैनी।
नमो कालिके कालको काल-छैनी॥
नमो ज्योति-ज्वाला तुम्हें बेद गावें।
सुरासुर ऋषीश्वर नहीं भेद पावें॥

गुरुओंकी इस धर्म-वाणीको साक्षी रखकर मैं अपने सिख भाइयोंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे उस हिन्दू-धर्म और हिन्दू-संस्कृतिको भूलें नहीं, जिसकी रक्षा और उपासनाके लिए हमारे गुरुओंने अपनी शक्ति और भक्तिके साथ आत्म-बलिदान किया है। हिन्दुत्वकी रक्षाके लिए ही सिख-सम्प्रदायका प्रवर्त्तन हुआ है। इसलिए सिख हिन्दुत्वके रक्षक और पोषक बने रहनेमें अपनी कृतार्थता समझें।

●

श्रीसत्यव्रत अवस्थी

हिन्दू-संस्कृतिकी कसौटी

⊙ ⊙ ⊙

जैसे कसौटी पत्थर पर सोना परखा जाता है, उसी प्रकार भारतीय-संस्कृतिकी कसौटी हमारा भारतीय साहित्य है। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि जिस देश या जतिका साहित्य व्यापक और विस्तृत होगा, उस राष्ट्र या जातिकी सम्यता उतनी ही उन्नत और व्यापक होती है। इस सिद्धान्तके अनुसार यदि हम अपने भारतीय वाङ्मय को देखते हैं, तो वह हमें ओर-छोर रहित अनन्त समुद्रकी भाँति दिखायी पड़ता है, उसके अन्तर्गत असंख्य बहुमूल्य शास्त्र-रत्न भरे पड़े हैं। जो जितनी गहरी डुबकी इस साहित्य-सागरमें लगाता है, उसे उतने ही बहुमूल्य नये-नये रत्न मिलते हैं।

हमारे एक नीतिकार पूर्वजने लिखा है कि 'शब्द-शास्त्र अनन्त है, उसकी कोई सीमा नहीं है, लेकिन हम लोगोंकी आयु बहुत स्वल्प है, उसमें भी अनेक विघ्न-बाधाएँ बनी रहती हैं। इसलिए उस अनन्त शब्द-शास्त्रमेंसे उसी प्रकार सारमात्र ग्रहण कर लेना चाहिए, जैसे हंस नीर-क्षीर विवेक किया करता है।' इस दृष्टि-कोणको सामने रखकर संक्षेपतः शास्त्रोंका परिचय दिया जा रहा है।

विशाल भारतीय-वाङ्मयकी आधारशिला चौदह विद्याएँ हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति (१।३)में इन चौदह विद्याओंकी गणना इस प्रकार की गई है:

चार वेद, छः अंग, मीमांसा एक, न्याय एक, पुराण और धर्मशास्त्र। समस्त भारतीय-वाङ्मय इन्हीं चौदह विद्याओंके अन्तर्गत समाया हुआ है। इन चौदह विद्याओंके अतिरिक्त भारतीय-साहित्यमें पांचरात्र, कापिल, अपान्तरतम, ब्रह्मिष्ठ, पाशुपत, हिरण्यगर्भ और शैव ये सात सिद्धान्त हैं।

उपर्युक्त चौदह विद्याओंका समावेश मोटे तौर पर वेद, उपनिषद्, सूत्र स्मृति, पुराण और काव्यशास्त्रमें होता है। इन्हें उचित ढंगसे पढ़ लेने पर भारतीय-संस्कृतिका मूल स्वरूप और उसका रहस्य सहज ही समझमें आ जाता है। इन शास्त्रोंका सार सिद्धान्त संक्षेपमें इस प्रकार समझा जा सकता है - वेदोंमें हमारे ऋषियोंने भगवान्से जितनी प्रार्थनाएँ की हैं, उन सबमें अपने राष्ट्र और समस्त विश्वके कल्याणकी भावनाएँ हैं। एक वैदिक राष्ट्रगीत है:

'आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजस्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिःपुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नो ओषधयः पच्यन्ताम् योगक्षेमो नः कल्पताम्॥'

'हे भगवान्, हमारे राष्ट्र के ब्राह्मण (विद्वान्) तेजस्वी होते रहें, राजा (रक्षक) गण अस्त्र-शस्त्र चलानेमें कुशल शूरवीर और ऐसे महारथ हों, जो सदैव शत्रुओंका संहार करते रहें। हमारे राष्ट्रकी सुख-सम्पदा

* * *

स्वरूप गौएँ अतुल दूध देने वाली हों और वैल कृषि कर्मके साधक एवं भार वहन करनेमें समर्थ हों। हमारे विजय-पथको पार करने वाले घोड़े तीव्रगामी हों, रथारोही विजयी हों और राष्ट्रकी स्त्रियाँ अपने शील, सदाचारसे सुन्दरी हों, राष्ट्रकी समस्त सन्तानें रणविजयी वीर हों और हमारे देशमें पैदा होने वाले फल, औषधियाँ समय-समय पर फलवती, पुष्पवती होकर हमें सुख पहुँचाती रहें। वादल समय-समय पर वृष्टि करें। हे प्रभो, हमारे देशका योग और क्षेम सुखपूर्वक चलता रहे।'

वेदोंमें ऐसी ही सार्वजनीन भावनाएँ सर्वत्र प्राप्त हैं, जिनसे हमारी संस्कृति और सभ्यताकी उन्नत अवस्था और उत्तमताका सहज वोध होता है।

भारतीय ज्ञानकी पराकाष्ठा उपनिषदोंमें पायी जाती है। उपनिषदोंकी हर पंक्ति भारतीय-संस्कृति-की व्याख्या बनी हुई है। गृहस्थ जीवन और आध्यात्मिक जीवन दोनों को सुन्दर श्रेष्ठ और सफल बनाने वाली हमारी उपनिषदें हैं। तैत्तरीय उपनिषद्के एक अनुवाक्में एक गुरु भलीभाँति वेद आदिको पढ़े हुए अपने शिष्यको गृहस्थ आश्रममें प्रवेश करनेकी आज्ञा देते हुए कहते हैं:

'वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यंवद। धर्मंचर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यं। भूत्यै न प्रमदितव्यं। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।'

अर्थात् 'हे पुत्र, तुम गृहस्थ आश्रममें रहते हुए सदा सत्य भाषण करना, आपत्ति पड़ने पर भी झूठका आश्रय न लेना। धर्मसे कभी मत डिगना। अपने वर्ण, आश्रमके अनुकूल जो तुम्हारा कर्तव्य हो, उसमें कभी आलस्य या प्रमाद न करना। गुरुके लिए उनकी रुचिके अनुसार भेंट देकर उनकी आज्ञासे गृहस्थीमें प्रवेश करके सन्तान परम्पराको सुरक्षित रखना। लौकिक और शास्त्रीय कर्मोंके प्रति कभी उपेक्षा न करना।। इतना सब कुछ करते हुए धन-सम्पत्तिको बढ़ाने वाले उद्योगोंके प्रति कभी उदासीन न होना। पढ़ने और पढ़ानेके नियमोंकी भी कभी अवहेलना न करना। यज्ञ, अनुष्ठान और देवकार्य तथा श्राद्ध-तर्पण आदि पितृ-कर्ममें कभी भी आलस्य न करना।'

इतना कह कर गुरु समझाते हैं:

'मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितानि नोइतराणि। यान्यस्माकम् सुचिरतानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।'

अर्थात् 'हे पुत्र, तुम माता, पिता, आचार्य और अतिथिमें देव-बुद्धि रखकर उनका सम्मान करना। संसारके जो निर्दोष कार्य हैं, उन्हींको करना, कुकर्मोंको छोड़ते जाना। यहाँ तक कि हम गुरुजनोंमें जो अच्छे आचरण हैं, उन्हींका अनुकरण करना। हमारे जिन आचरणों पर तनिक भी शंका-सन्देह हो, उन्हें त्याग देना।'

इसके बाद अन्तमें गुरु कहते हैं:

'श्रद्धयादेयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रियादेयम्। ह्रियादेयम्। भियादेयम्। संवि दा देयम्।'

'अपनी सामर्थ्यके अनुसार दान देनेमें तत्पर रहना, किन्तु जो कुछ दान देना वह श्रद्धासहित देना, अश्रद्धासे न देना, दान देते समय यह सोच लेना कि जो कुछ मैं दे रहा हूँ, वह मेरा नहीं है, भगवान्का है, इसलिए लज्जित होकर दान देना। और उस समय यह भावना रखना कि जो कुछ मैं दे रहा हूँ, वह बहुत कम है।'

सूत्र (गृह्य सूत्र आदि) और स्मृति (मनु, याज्ञवल्क्य आदि धर्मशास्त्र) ग्रन्थोंने भारतीय-संस्कृतिकी रूपरेखा उसका व्यापक स्वरूप अपने सामाजिक, धार्मिक शिक्षाओं और नियमों में निहित कर रखा है।

* * *

किसी भी प्राणीको पीड़ा न पहुँचाना। सबको अपने समान समझना। कभी झूठ न बोलना, बिना दिया हुआ कुछ न लेना। शरीरको और मन, बुद्धि आदि इन्द्रियोंको वशमें रखना। किसी भी हालतमें ईर्ष्या, क्रोध न करना। यही सूत्र और स्मृति ग्रन्थोंका सिद्धान्त है।

भारतीय-संस्कृतिके सन्देशवाहक पुराण अठारह हैं। "सदाचार पुण्य है और बुरा बर्ताव पाप है।" यही दो वचन अठारह पुराणोंमें सिद्धान्त रूपमें कहे गए हैं।

पुराणोंके बाद काव्य-शास्त्र आता है। भारतीय-संस्कृतिमें काव्यका प्रयोजन है : चरित्रकी शिक्षा। **रामादिवद्वर्तितव्यं न रावणादिवत्**' - 'श्रीराम आदि उत्तम पुरुषोंकी भाँति आचरण करना चाहिए, रावण आदि दुराचारियोंकी भाँति नहीं।' भारतीय साहित्यकारोंका यह परम्परागत सिद्धान्त चला आ रहा है कि गद्यमय, पद्यमय हर तरहका काव्य, लोकशिक्षाके उद्देश्यसे लिखा जाना चाहिए। भारतीय-संस्कृतिमें चरित्र-रक्षाका ही अनुरोध मुख्य है। युग-युगसे चली आने वाली हमारी संस्कृतिके चरित्र-रक्षाके अनुरोधका सन्देश भारतीय-साहित्य बड़ी सफलतासे मानव-जातिको देता आ रहा है।

वस्तुतः भारतीय-संस्कृतिका मूल उद्देश्य, मूल सिद्धान्त और वास्तविक रूप चरित्र-बल पर निहित है। चरित्रको ऊँचा बनाने और उसे निष्कलंक बनाए रखनेकी प्रेरणा हमें भारतीय-साहित्यसे मिलती है। भारतीय-संस्कृति और भारतीय-साहित्य ये दोनों हमारे भारतीय राष्ट्र और समाजके अभेद्य कवच हैं। इतना विश्वास है कि इन्हें कोई युग मिटा नहीं सकता, क्योंकि इनकी बुनियाद हम लोगोंके मन, मस्तिष्क और हृदय पर है। इसलिए जरूरत इस बातकी है कि हम अपने मन, मस्तिष्क और हृदयको शुद्ध, परिष्कृत, सुसंस्कृत बनाए रखनेके लिए भारतीय-संस्कृति और भारतीय-साहित्यको अपना प्राण धन समझकर इसे रक्षित रखने और बढ़ानेका सतत् प्रयत्न करते रहें।

डॉक्टर शुकदेव दुबे

श्रद्धाके प्रतीक : तीर्थ और मन्दिर

⊙ ⊙ ⊙

यह भक्तकी श्रद्धाका ही प्रतीक है कि वह मन्दिरमें जाकर मूर्ति-पूजा करता है, अर्चना करता है और अनेक स्थलोंको तीर्थका रूप प्रदान करता है। भक्त मन्दिरोंमें जाकर अर्चा करता है। इस अर्चा और अर्च्यका अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। अर्च्य देवोंके विना अर्चाका कोई अर्थ नहीं है। यह अर्चा अथवा देवपूजा विभिन्न युगोंमें भिन्न-भिन्न रूप धारण करती रही। ऋषियोंने वरुणकी जो कल्पना की है, उसमें भक्त और भगवान्‌की प्रथम किरण देखनेको मिलती है। वरुणमें उपासक ऋषिकी भगवद्-भक्तिकी भावना निहित है। वैदिक वाङ्मयमें विष्णु, वराह, नृसिंह, पुरुष आदि-जैसे देवताओंका उल्लेख है और उनकी पूजा-अर्चाकी विधि दी गयी है, परन्तु इनकी पूजाकी विधि अलग-अलग है। वास्तवमें इनकी पूजाके सिद्धान्तोंमें जितना भेद नहीं है, उनसे कहीं अधिक भेद उनकी पूजा-पद्धति एवं अर्चा-विधिमें है, परन्तु उन सबमें श्रद्धा-भावनाकी ही प्रधानता है। यद्यपि वैदिक-कालीन अग्नि, वरुण, इन्द्र आदि देवताओंका आगे चलकर लोप-सा हो गया, परन्तु अत्यन्त प्राचीन कालसे चली आती कौटुम्बिक पूजा आदिमें उनका अभी स्थान है और कोई गाँव ऐसा नहीं मिलेगा, जिसमें कमसे-कम उसका ग्राम-देवता न पूजा जाता हो।

इस समय हमारे जीवनमें जो अर्चा-पद्धति प्रचलित है, उसके प्रधानतया पाँच सोपान देखनेको मिलते हैं : स्तुति, आहुति, ध्यान अथवा चिन्तन, योग एवं उपचार। ऋग्वेदके समयकी पूजा आहुति-प्रधान थी। यही पद्धति आरण्यकों एवं उपनिषदोंके समय चिन्तन-प्रधान बन गयी। इसी ध्यान-परम्परासे योग-प्रधान पूजा प्रचलित हुई, जो प्रायः सभी दर्शनोंमें मोक्ष-प्राप्तिका साधन मानी गयी है। इस आधार पर लोग मानते हैं कि समूर्त आराधना (प्रतिमा-पूजा) वैदिक-वाङ्मयमें उपलब्ध नहीं होती, परन्तु बात बिलकुल ऐसी नहीं है। प्रतीकोपासना, जिसके गर्भसे प्रतिमा-पूजनका जन्म हुआ; उतनी ही प्राचीन है, जितनी मानव-सभ्यता। यह वैदिक युग अथवा पूर्व-वैदिक युगमें विद्यमान थी। इस देशमें अत्यन्त प्राचीन कालसे देवों और देवियोंके प्रतीक रूपमें प्रकल्पित स्तुति-गायनके द्वारा उनमें देव-भावनाका संचार किया गया। यही ऋग्वेदकी ऋचाओंका गान उपासना-पद्धतिका प्रथम सोपान था। वैदिक ऋषियोंकी देव-स्तुतियोंके देव-रूप वर्णनको प्रतिमा-विज्ञानका पूर्वज समझना चाहिए। परन्तु आर्यों एवं अनार्योंके सम्पर्कका परिणाम हुआ कि प्रतिमा-पूजाकी परम्परा विकसित हुई। डॉक्टर सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याने अभी हाल हीमें उत्थापित किया है कि समूर्त अर्चनाके स्रोत द्राविड़ हैं। कालान्तरमें यह पूजा उपचार-प्रधान परिकल्पित हुई, जिसके दो रूप मिलते हैं - वैयक्तिक और सामूहिक। इसी सामूहिक पूजाके विकासमें इस देशमें तीर्थस्थानोंका निर्माण, गंगा-स्नान, कीर्तन, भजन, तीर्थयात्रा, मन्दिर-निर्माण, प्रतिमा-स्थापन एवं अर्चा-पूजन प्रमुख कृत्य हैं।

* * *

यद्यपि वैदिक धर्मसूत्रोंमें प्रतिमा-प्रतिष्ठा, देवालय-निर्माण आदिके विधान स्पष्ट रूपसे कहीं नहीं मिलते; परन्तु भक्ति-भावनाका वास्तविक उदय उपनिषदोंसे प्रारम्भ हो जाता है, जब 'भक्ति' शब्दका प्रथम दर्शन श्वेताश्वतर उपनिषद्‌में होता है। उसमें रुद्र, महादेव, महेश्वर आदि सगुण देवोंका निर्देश भी है। वैखानस आगममें अमूर्त आराधनासे समूर्तार्चन एवं समूर्ताराधनाको श्रेष्ठ बताया गया है। इस समूर्तार्चनके दो भेद हैं - आलयार्चा (मन्दिरमें देवपूजन) तथा गृहार्चा। देवालयमें पूजन आलयार्चा और गृहमें प्रतिष्ठित विग्रहकी आराधना गृहार्चा है। देवालयका निर्माण, इन दोनों अर्चा-विधियों तथा उनकी विभिन्न उपासनाओं-को ध्यानमें रखकर हुआ। गर्भगृह, जहाँ अन्धकार और प्रकाशके विचित्र सम्मिश्रणसे रहस्यपूर्ण वातावरणका सर्जन होता है, भगवान्‌के कूटस्थ रूपका अपना आन्तर निवास-स्थान है। उसके सामने सभा-मण्डपमें चलार्चा-के लिए समाका आयोजन होता है, जहाँ देवदासी नृत्य करती है; जहाँ सभी भक्त मूर्तिके दर्शनके लिए ही नहीं, धर्म-कथा सुनने-सुनानेके लिए भी जा सकते हैं। गर्भगृह और सभा-मण्डपके बीच अन्तराल होता है, जिसे ध्यानमार्गी पसन्द करते हैं। उसके बाद तोरण होता है। तोरणकी झालरमें बँधा हुआ घण्टा समय-समय पर बजकर भगवान्‌की विशेष स्थितियोंका संवाद सुनाता रहता है।

आज भारतवर्षके विभिन्न भागोंमें विभिन्न देवी-देवताओंके विशाल मन्दिर बने हुए हैं, परन्तु मन्दिरका यह रूप प्रारम्भिक रूप नहीं है। प्रारम्भमें ये मन्दिर वे छोटे स्थान मात्र थे, जहाँ इनकी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित रहती थीं। बादमें इनकी बाह्य रूपरेखामें विशाल परिवर्तन हुए, लेकिन इनका आभ्यन्तर वही रहा, जो प्रारम्भ-में था : वही एक छोटा प्रकाशहीन कमरा। इन स्थानों पर केवल मूर्तियाँ ही नहीं रहती थीं, देवताओंके प्रतीक भी थे। प्रारम्भिक ग्रन्थोंमें कई यक्ष-मन्दिरों एवं देवालयोंका उल्लेख मिलता है, भले ही ये देवालय, अधिक सम्भव हैं, केवल एक पवित्र वृक्षके रूपमें अथवा किसी वृक्षके नीचे स्थित वेदीके रूपमें हों और मन्दिर खाका-मात्र हों, जिनमें प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित की गयी हों। ग्वालियरके निकट पवायामें प्राप्त यक्षकी प्रतिमा पर उत्कीर्ण ईसासे प्रथम शती पूर्वके अभिलेखसे ज्ञात होता है कि भगवान् मणिभद्रकी प्रतिमा अर्चक श्रेणियों द्वारा स्थापित की गयी थी। भरहुतके तोरणों पर उत्कीर्ण यक्ष, नाग और देवताओंकी प्रतिमाएँ भी यही व्यक्त करती हैं। इन तथ्योंके आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि मूर्ति निर्माणकी कला एवं उसकी पूजा-पद्धति भारतीय आर्योंमें प्रचलित थी। परन्तु ये मूर्तियाँ किसी सम्प्रदाय-विशेषकी नहीं थीं। पहली-दूसरी शतीमें स्थिति परिवर्तित हो गयी और उत्तरी भारतमें देव-मन्दिरोंका निर्माण होने लगा। उन मन्दिरोंमें स्थापित देव-प्रतिमाओंके आधार पर विभिन्न सम्प्रदायों और पीठोंकी स्थापना हुई। प्रारम्भमें देव-विशेषकी प्रतिमा प्रतिष्ठित की गयी और कालान्तरमें श्रद्धालु भक्तों द्वारा मन्दिर, मन्दिर-नगर, नगर-तीर्थका निर्माण किया गया। मध्यकाल आते-आते विशाल मन्दिरोंका निर्माण हुआ और छोटे पैमाने पर चलने वाली पूजा-पद्धति उन मन्दिरोंमें चलने लगी, जहाँ लोग सार्वजनिक, सामुदायिक एवं सामूहिक रूपसे पूजा-कीर्तन करते थे। मन्दिरोंमें होने वाले सामूहिक पूजन-कीर्तनका आम जनताके मानस-पटल पर स्थायी प्रभाव पड़ा और ये सार्वजनिक देवालय जनताके तीर्थ बन गये। ये मन्दिर मुख्यतया किसी-न-किसी सम्प्रदाय पर आधारित हैं और इनमें जो पूजा होती है, वह उसकी किसी विशेष शाखाके द्वारा की जाती है; परन्तु उत्सवों एवं त्योहारों-के अवसरों पर यह साम्प्रदायिकता समाप्त हो जाती है; क्योंकि होली-दशहरा-दीपावली - जैसे त्योहार एक ही दिन सब जगह सबके द्वारा मनाये जाते हैं।

देवालयीन परम्पराका समुचित विकास वल्लभ सम्प्रदायके अन्तर्गत गोपी-कृष्णके प्रसंगमें हुआ। इनकी नित्य-लीलामें अष्ट-प्रहर पूजनकी व्यवस्था आठ मन्दिरोंके माध्यमसे की गयी - मंगला, शृंगार, ग्वाल,

* * *

राजभोग, उत्थापन, भोग, सन्ध्या आरती और शयन। इसके अनुसार कृष्णके गोपाल-जीवनकी पूरी-पूरी लीला देवालयीन समयके अनुक्रमसे की गयी है। नित्य-सेवाके अतिरिक्त नैमित्तिक उत्सवोंका आयोजन है, जिनमें कुछ तो लोक-परम्परामें प्रचलित ऋतूत्सवोंसे और कुछ कृष्णकी लीलाओंसे सम्बद्ध हैं।

हमारे इन मन्दिरों, पीठों आदिमें नवधा भक्तिका विशेष महत्व है और उसमें कीर्तन संगीत पर अधिक बल दिया गया है, क्योंकि संगीत-कीर्तनमें तन्मयता प्रदान करनेकी चुम्बकीय शक्तिसे खिंचकर भक्तका हृदय अपने उपास्यदेवकी भक्तिमें एकतान, एकताल और एकलय हो जाता है। यह कीर्तन-भक्ति कृष्णभक्तिकालीन सभी सम्प्रदायोंमें मान्य थी। उनका उद्देश्य ही आराध्यदेवकी लीलाका गान करना था। सभी गायक भक्त-कवि सुन्दर पदोंके कीर्तन करते-करते लीन हो बेसुध हो जाते थे। अष्टछापके कवियोंके जीवनका तो चरम ध्येय ही श्रीनाथजीके समक्ष समय-समय पर कीर्तन तथा अपने पदोंका गायन करना था। उन्होंने श्रीनाथजीकी पूजा तथा अर्चनाके लिए ही पदोंकी रचना की। इसलिए यह कहा जा सकता है कि पुष्टिमार्गीय सेवा-विधानमें मान्य प्रचलित तथा निर्धारित कीर्तन-प्रणालीसे ही प्रेरित होकर अष्टछापके श्रद्धालु कवि संगीतकी ओर उन्मुख हुए और उसीके परिणामस्वरूप संगीतमय साहित्यकी सृष्टि हुई। इन श्रद्धालु भक्त-कवियोंने भगवान्‌की जिस लीलाका अपने चक्षुओंसे आनन्द प्राप्त किया, उसीको उन्होंने पदोंमें गाकर साकार रूप-प्रदान किया। इसीके कारण सगुण भक्तिका पर्याप्त मात्रामें विकास हुआ और वह सुरक्षित रह पायी; परन्तु यह सब-कुछ हुआ भक्तोंकी श्रद्धाके कारण।

●

श्रीगोविन्दप्रसाद केजरीवाल

समदर्शन और धर्म

⊙ ⊙ ⊙

वे आदमीमें बाहरसे नहीं, भीतरसे भी झाँका करते थे। इस प्रक्रियामें सामने बैठा व्यक्ति लुटा-सा रह जाता था। मुझे प्रायः यही अनुभूति हुआ करती थी कि श्री जुगलकिशोरजी बिरला मेरे अन्तरको पढ़ ले रहे हैं। मुझमें दस तरहके दोष हैं। अपनेको लुटा देखकर कभी-कभी बड़ी घबराहट होती थी। इस 'अन्तर-पाठ'के बाद उनके चेहरे पर एक स्मिति आती थी और ऐसा लगता था, जैसे उन्होंने मेरे दोषोंको माफ कर दिया और मैं आश्वस्त हो जाता। उनके विराट् धार्मिक स्वरूपसे सभी परिचित हैं। मेरी तुच्छ बुद्धिमें धर्मकी बातें तो बहुत कम आती हैं। यदि आती भी हैं, तो तर्कका दम्भ लिए हुए। जब भी मैंने उनकी धर्मवार्ता सुनी, मुझे ऐसा लगा जैसे इन विशिष्ट वैष्णवजनकी वृत्ति चाहे जितनी धार्मिक हो, लेकिन इनका असीम सौन्दर्य-बोध ही इनकी आत्माका मूल रस है। मैंने एक बार उनसे जिज्ञासा की थी : "धर्म क्या है ?" उनके प्रशान्त चेहरे पर स्मितिकी वही चिरपरिचित कौंध आई और उन्होंने मुझे जो बताया उसका सार यह था :

"जीव और प्रकृतिका तादात्म्य सुन्दरका सर्जक है। सुन्दरकी अनुभूति एक समदर्शी बोधको उत्प्रेरित करती है। यह उत्प्रेरणा धर्म-समदर्शनका बोध कराती है। समदर्शनसे अच्छा धर्मका पर्याय मुझे अभी तक नहीं मिला। समदर्शन जब सीमित या रूढ़ हो जाता है, तब 'मत'की सृष्टि होती है। मत-मतान्तर तर्क है - सुन्दर नहीं। सुन्दर केवल सुन्दर है, समदर्शन है और है जीव और प्रकृतिका तादात्म्य। यहाँ न तर्ककी गुंजाइश, न जिज्ञासीका, मात्र है असीम विश्वास और समर्पणकी भावना।"

⊙

* * *

श्रीइशरत हुसेन अन्सारी

राजभाषा-विवाद : राष्ट्रीय एकताके लिए चुनौती

⊙ ⊙ ⊙

मुझे अब ऐसा अनुभव होने लगा है कि हमारी देश-भक्तिके स्रोत सूखते जा रहे हैं, हम अपने इतिहास-को भूलते जा रहे हैं। आक्रमक जातिवाद, भाषावाद, प्रान्तीयतावादके घिनौने उग्र रूपने भारतीय एकताकी नींव हिला दी है। पीढ़ी-दर-पीढ़ीसे हमें एक समृद्ध और महान् परम्परा विरासतमें मिली है, संस्कृति और परम्पराओंके प्रबल बन्धनोंसे हम आबद्ध हैं, फिर भी राष्ट्रीय एकता और भाषाई सवालको लेकर जो खतरा हमारे देशके सामने उपस्थित हुआ है और उसका दुखद परिणाम उत्तर और दक्षिणके भेदभावके रूपमें प्रकट हुआ है; उसे देखते हुए, समझते हुए ऐसा लगता है कि हमारी एकता भंग हो गई है और दिलमें एक प्रश्न उठने लगता है कि 'क्या कभी हम एक थे?'

भारतीय-साहित्य चाहे वह किसी भी भाषा या बोलीमें लिखा गया हो, उसमें मातृभूमिके प्रति अगाध श्रद्धा और प्रेमका सागर उमड़ता है। अगर संस्कृत-साहित्यमें 'अहो भारत भारतम्' कह कर देशको अद्वितीय, अनुपम बताया गया है; तो उर्दूमें 'सारे जहाँसे अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' भी लिखा गया है। सभी प्रान्तीय भाषाओंमें देशके प्रति गहरी निष्ठाके प्रमाण मिलते हैं।

अविभाजित भारतमें जब अंग्रेजोंका शासन था और विविध राष्ट्रीय संगठन अपने-अपने ढंगसे दासत्व-के बन्धनोंको तोड़नेके लिए अहर्निश प्रयत्न कर रहे थे, उस समय हमारी राष्ट्रीयताके मार्गमें भाषा या राष्ट्र-भाषा नामका कोई रोड़ा नहीं आता था। विदेशी सरकार हम पर अपनी भाषा लाद चुकी थी; क्योंकि उसका निश्चित मत था कि किसी देशमें गुलामीकी जड़ें मजबूत करनेके लिए उस देशकी संस्कृति, सभ्यता, परम्पराएं और भाषा नष्ट कर देनी चाहिए। गुलामीके उस आलममें हम मजबूरन सरकारी स्तर पर अंग्रेजीको अंगीकार कर चुके थे, लेकिन उस समयके तमाम समाज-सेवी और राष्ट्रनायकोंका अटूट विश्वास था कि देशकी राष्ट्र-भाषा हिन्दी है और देवनागरी लिपिमें लिखी हुई हिन्दी ही एकमात्र देशकी करोड़ों जनताकी वैचारिक सम्पर्क-भाषा बन सकती है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कमेटीने इस सम्बन्धमें एक प्रस्ताव भी स्वीकार किया था। राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी भी हिन्दीके ही समर्थक थे, केवल देवनागरीमें मुद्रणकी दृष्टिसे कुछ संशोधन चाहते थे। एक जगह उन्होंने लिखा था कि "हिन्दुस्तानी (हिन्दी)को भारतवर्षकी राष्ट्रीय भाषा बनानेका प्रयत्न मैं हमेशा करता आया हूँ। उसके सिवा दूसरी भाषा राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती, इसमें कुछ भी शक नहीं। जिस भाषाको करोड़ों हिन्दू-मुसलमान बोल सकते हैं, वही अखिल भारतवर्षकी सामान्य भाषा हो सकती है।" श्री राजगोपालाचारी और श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या जैसे उद्भट् राष्ट्रप्रेमी और विद्वान् भी हिन्दीको ही राष्ट्रभाषाके गौरवशाली पद पर प्रतिष्ठित देखना चाहते थे।

* * *

आजसे लगभग पैंतीस साल पहले तत्कालीन कलकत्ता महानगरके मेयर श्री जे० एन० सेनगुप्तके भाषणका अंश पिछले दिनों किसी पुरानी पुस्तक अथवा पत्रिकामें मेरी नजरसे गुजरा है, जिसमें उन्होंने कहा था: "हिन्दी एक राजनीतिक भाषा है। हिन्दी एक शुभचिन्तक भाषा है और वही हमारी राष्ट्रभाषा हो सकती है।"

स्वर्गीय जुगलकिशोर बिरलाने किसी सम्प्रदाय या धर्म विशेषके लिए अपना समस्त जीवन लगा दिया, इससे मुझे ज्ञातीतौर पर कुछ कहना-सुनना नहीं है। यही नहीं, कुछ लोग उनके हिन्दू-धर्मके प्रति प्रेमको नफरत-की दृष्टिसे भी देखते हैं, लेकिन मैं उन लोगोंके नजरिएको भी उचित नहीं मानता। यह तो अपनी-अपनी निष्ठा और आस्थाकी बात है। कोई हिन्दू-सेवक हिन्दुओंके लिए अपनेको लुटा देता है, कोई मुसलमान अपने धर्म-भाइयोंकी सेवामें अपना जीवन होम देता है, कोई ईसाई अपने ईसाई-बन्धुओंकी खिदमतमें जिन्दगीकी एक-एक साँस लगा देता है, इन सबमें मैं कोई बुराई नहीं देखता, यह तो मानवधर्म है, अपना कर्तव्य है। लेकिन यदि एक मज़हबपरस्त धर्मान्धतामें पागल होकर दूसरे धर्म पर आक्षेप अथवा प्रहार करे, तो उसे अधर्म कहा जायगा। जब मैंने अखबारोंमें पढ़ा कि बिरलाजीकी ओरसे हिन्दी-लेखक स्वर्गीय मास्टर ज़हूरबख्शको दो सौ रुपये मासिक सहायता रूपमें कई वर्षों तक दिये जाते रहे थे, तो भारतके इस अटूट सम्पदाके स्वामीके प्रति मेरा मन श्रद्धानत हो गया था। मास्टर ज़हूरबख्श तो इस्लाम धर्मके अनुयायी थे - एक सच्चे मुसलमान, स्वर्गीय जुगलकिशोर बिरलाने उन्हें क्यों सहायता दी? उनका मकान जल जानेके बाद मकान बनवानेके लिए भी ज़हूरबख्शजीको बिरलाजीकी ओरसे आर्थिक सहायता प्राप्त हुई। वास्तवमें इस सबकी पृष्ठभूमिमें उनकी विशुद्ध राष्ट्रीयता थी, जिसके लिए वे जीवन-पर्यन्त एक सच्चे सेनानीकी तरह संघर्ष करते रहे। वे भाषा-विवादको राष्ट्रीय एकता पर कुठाराघात मानते थे और इसीलिए बिरलाजीने पंजाबके विभाजनके पूर्व हिन्दी और पंजाबी भाषाओं-को लेकर चले विवाद और घात-प्रतिघात पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा था: "भाषाके नाम पर जो विरोध पैदा किया जा रहा है, वह समझमें नहीं आता। देवनागरी लिपिसे जिस प्रकार बँगला और गुजरातीमें भेद है, उसी प्रकार गुरुमुखी लिपिमें भेद है। गुरुमुखी तो शारदा लिपिसे मिलती है और शारदा लिपि तो देव-नागरी लिपिके और निकट है। पंजाबीभाषी देवनागरीको और हिन्दीभाषी गुरुमुखीको एक सप्ताहमें ही भली प्रकार जान लेता है।

"राजस्थानमें राजस्थानी, बिहारमें बिहारी भाषाका प्रयोग है। इसी प्रकार पंजाबमें पंजाबी है। इन सबका मूल तो संस्कृत भाषा ही है। हिन्दी भी संस्कृतसे ही निकली हुई है। किन्तु अधिक लोगोंके बोलचालकी भाषा होनेसे वह राष्ट्रभाषा मानी गयी है।

"सरकार द्वारा भाषाके आधार पर जो प्रादेशिक विभाग किया गया है, वह बहुत विचारपूर्वक उत्तम रीतिसे ही किया गया है। उसमें भी क्या आपत्ति है, यह समझके बाहर है। जो सिख हिन्दीभाषी प्रदेशका था और अब पंजाबीभाषी प्रदेशमें रहता है, क्या वह हिन्दीके बिना निर्वाह कर सकता है? जब लुधियानासे बाहर निकलें, तो दक्षिणमें कन्याकुमारी तक हिन्दी ही राष्ट्रभाषाके नाम पर नज़र आती है। तब कौन ऐसा भारतीय होगा, जो अपने बच्चोंको हिन्दी न पढ़ाकर भारतीयतासे दूर रखेगा? इसके बिना तो आगे अन्य प्रान्तोंमें व्यापार आदि करनेमें सुविधा नहीं होगी।"

राष्ट्रभाषा हिन्दीकी लोकप्रियताके सम्बन्धमें कितने स्पष्ट और स्तुत्य हैं बिरलाजीके ये विचार और कौन ऐसा सच्चा भारतीय है, जो अपने अन्तर्मनमें उनके इस कथनकी सत्यतासे सहमत नहीं होगा, भले ही वह किसी राजनीतिक दुराग्रह या साम्प्रदायिक संकीर्णताके कारण प्रकट रूपमें अंग्रेजी अथवा अन्य किसी भाषाको राष्ट्रभाषा और राजभाषाके गौरवशाली पद पर प्रतिष्ठित करवानेकी बात कहे।

* * *

श्री राजगोपालाचारी या श्री सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या जैसे विद्वानोंका यह कहना कि वदली हुई परिस्थितियोंमें अव हिन्दीको राष्ट्र या राजभाषा वनाना समयोचित नहीं, जवकि सन् १९३६में राजाजीने कांग्रेस-मंचसे स्पष्ट शब्दोंमें घोषित किया था कि एकमात्र हिन्दी ही देशकी राष्ट्रभाषा है। परिस्थितियोंके वदलनेसे उनका आखिर क्या मतलव है? - केवल यही कि उस समय अंग्रेजोंका शासन था, विदेशी भाषाका प्राधान्य था और आज शासन-सूत्र हमारे अपने हाथमें है। अंग्रेजोंके चले जानेसे राष्ट्रभाषाके मामलेमें परिस्थितियाँ क्या वदलीं हैं, कौन-सी ऐसी वात हो गयी है कि अंग्रेजीको ही अव सरकारी भाषा वनाए रखा जाय? वास्तवमें राजनीतिक उद्देश्योंसे प्रेरित होकर अहिन्दीभाषी क्षेत्रोंके ये नेतागण पृथकतावादी दुर्भावना फैलाकर अपने-अपने क्षेत्रमें अपनी लोकप्रियता कायम रखनेके लिए ऐसे अनर्गल तर्क दे रहे हैं।

पिछले दिनों जव संसद्‌में राजभाषा संशोधन विधेयक पेश होने जा रहा था, तो मैंने स्वयं अपने एक प्रेस वक्तव्यमें कहा था : "आज जहाँ-तहाँ मैं देख रहा हूँ और अखबारोंमें पढ़ रहा हूँ कि अंग्रेजी-विरोधी छात्र-समुदाय अंग्रेजीमें अंकित नामपट्ट, विज्ञापन और इश्तिहारोंकी होली जला रहे हैं और इन छोटी-छोटी घटनाओं-को देखकर मुझे उन दिनोंकी याद आ जाती है, जव कि अंग्रेजी शासनकालमें आज शासनसूत्र सँभालनेवाली कांग्रेस पार्टीके यही नेतागण बाजारों-गलियोंमें विदेशी कपड़ोंकी होली जलाकर खादीके अनवरत प्रयोगका राष्ट्रपिताका राष्ट्रीय सन्देश घर-घर पहुँचाते थे। उसी समय जहाँ एक ओर विशुद्ध गान्धीवादी कांग्रेसजन अहिंसक उग्रताकी कार्रवाइयाँ करते थे, वहीं गरम दलके क्रान्तिकारी रेल उलटने, सरकारी इमारतों पर वम फेंकने आदिके वन्दनीय कार्य करते थे, जिनसे राष्ट्रीय चेतना उत्तरोत्तर गहरी होती जाती थी।

"...हमारा कल्याण एकमात्र इसीमें है कि मौजूदा पीढ़ी और आनेवाली पीढ़ियाँ केवल हिन्दी या भारतकी अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में विचार करें और इसीलिए अंग्रेजीका विरोध वस्तुतः हमारे राष्ट्रधर्मका प्रतीक है।

"वीस वरस तो लद गये, आखिर कव तक हम किसी विदेशी भाषाकी गुलामी स्वीकार किये रहेंगे? किसी स्वर्गीय नेताके किसी सन्दर्भ या परिस्थिति-विशेषमें अंग्रेज-परस्तोंके बीच लोकप्रियता बनाये रखनेके उद्देश्यसे दिये गए 'आश्वासन' आज राष्ट्रीय निकष पर खरे उतरते भी हैं, इस बातको हमें विचार करनेकी जरूरत है। आज वस्तुस्थिति यही है कि हम भारतीय हैं और हमारी राज और राष्ट्रभाषा केवल कोई भारतीय भाषा ही हो सकती है।"

आज मैं स्पष्ट शब्दोंमें इस तथ्यको स्वीकार करता हूँ कि मेरे इस वक्तव्यमें अभिव्यक्त विचारोंके लिए मुझे उन वहुसंख्यक राष्ट्रनायकों तथा हिन्दी-समर्थकोंसे प्रेरणा मिली थी, जिनमें महात्मा गान्धी, राजर्षि पुरुषोत्तम-दास टण्डन, सेठ जुगलकिशोर बिरला-जैसे व्यक्तियोंके नाम शामिल हैं। इन्हीं विचारकोंके कार्य-कलापोंने मुझे हिन्दी-के अध्ययनके लिए प्रेरित किया और आज मैं स्वयं जो कुछ हूँ, उसमें इन मनीषियोंका दियाहुआ वहुत-कुछ है।

स्वर्गीय बिरलाजीने हिन्दीकी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपसे काफी सेवा की थी। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके लिए राजर्षि टण्डनजीको न जाने कितना रुपया उन्होंने गुप्त और प्रत्यक्ष रूपमें दान दिया। यही नहीं, वे अन्य देशवासियोंको भी हिन्दी पढ़नेके लिए प्रेरित करते थे। भारत आकर हिन्दीका अध्ययन करनेवाले विदेशी छात्रोंको अच्छी-खासी छात्रवृत्तियाँ देते रहते थे।

सेठजीने जापानवासियोंको हिन्दी सिखानेके लिए जापानी-हिन्दी प्राइमर तैयार करवाकर उसकी लाखों प्रतियाँ जापान और इण्डोनेशियामें वितरित करवायी थीं। उनके इन समस्त कार्योंमें भी कोई संकीर्ण मनोवृत्तिका आरोपण करे, तो कमसे-कम मेरे-जैसा प्रगतिशील व्यक्ति इसे माननेको तत्पर नहीं। राष्ट्रभाषा हिन्दीके लिए की गयी उनकी निस्पृह सेवा हर राष्ट्रप्रेमीके लिए एक आदर्श प्रस्तुत करती है। ●

* * *

प्रो० डॉ० ओडोलेन स्मेकल

भारत-भारतीके महाप्राण

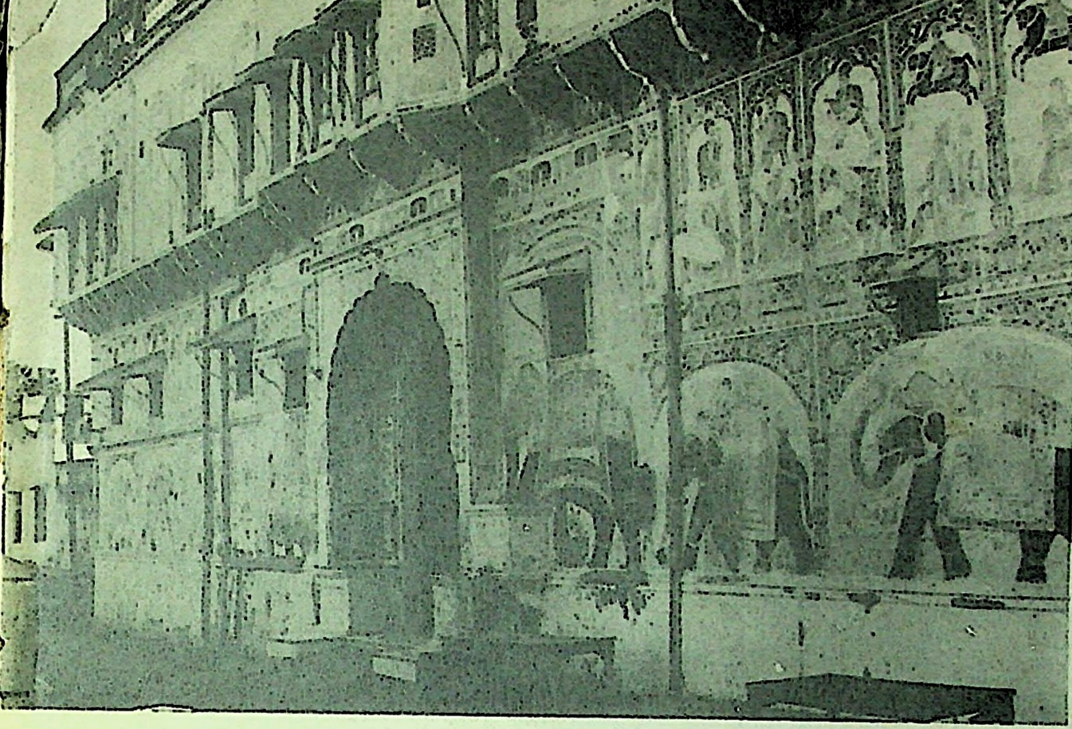
⊙ ⊙ ⊙

भारतसे सुदूर होकर, अभारतीय होते हुए भी, परमादरणीय श्री जुगलकिशोर बिरलाजीकी मृत्युका दुखद समाचार जानकर मुझे गम्भीर शोक हो रहा है। मैं भारतसे दूरस्थ एक छोटेसे देश चेकोस्लोवाकियाके प्राहा नगरमें रहता हूँ, पर मेरा हृदय भारतके साथ है, दिनरात, लगातार। दिन-प्रतिदिन हिन्दीके किसी-न-किसी कार्यमें संलग्न होता हूँ। वैसे तो भारतकी भाषाई और साहित्यिक समस्याओं पर मेरा ध्यान विशेष रूपसे केन्द्रित रहा है, किन्तु किसी भी देशकी संस्कृतिको दैनिक जीवनकी वास्तविकतासे अलग कैसे किया जा सकता है? और वास्तविकता यह है कि दानवीर श्री बिरलाका देहावसान अखिल हिन्दी जगत्की क्षति है, जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती।

विदेशोंमें अपनी दूसरी मातृभाषा हिन्दीका एक तुच्छ सेवक होनेके नाते मैं भी श्रीमान् सेठजीके न रहनेसे अनाथ व निराश्रय-सा हो गया हूँ। मेरे भारतीय-विद्यासे सम्बन्धित प्रचार, अध्यापन, शोधकार्यकी वृद्धिके लिए उनकी उदार सहायता, दुर्लभ पुस्तकोंका दान किसी छोटेसे सुदूर देशमें रहनेवाले एक हिन्दीविद्के व्यक्तिगत कार्यमें उनकी वास्तविक रुचि, इस बातका प्रमाण है कि सेठजीका हिन्दीके प्रति गम्भीर, गहरा सम्बन्ध रहा। वे हिन्दीके विकास और विदेशोंमें भी उसके प्रचार पर ध्यान देते रहे और हिन्दीको भारतकी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतिनिधि भाषा समझते थे।

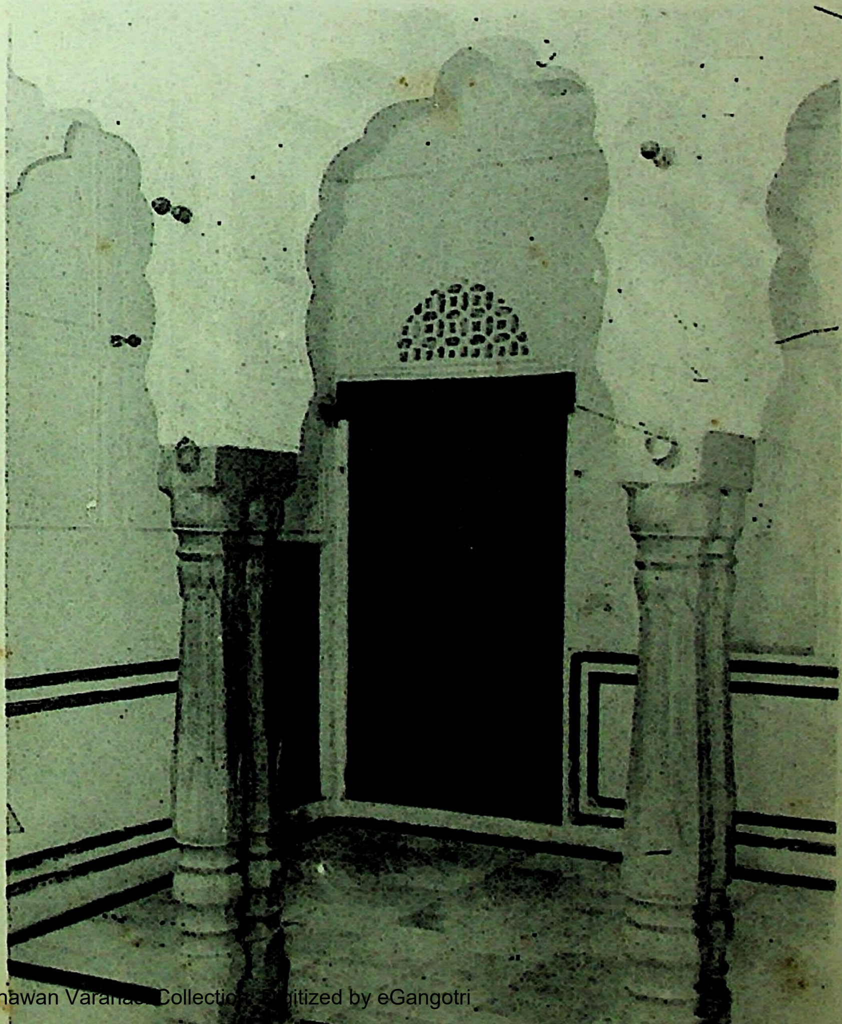
केवल इस दृष्टिसे ही देखी जाए सेठजीकी असीम उदारता, तो निस्सन्देह वे भारतीय-साहित्य और भाषाओंके वैभव, भारतीय-संस्कृतिके गौरवकी रक्षा और उसकी अभिवृद्धिके अनन्य सेवकों तथा समर्थकोंके एक ज्वलन्त उदाहरण थे। इसलिए जब मैं कहता हूँ कि हिन्दीके प्रमुख सेवकोंमें सेठ बिरलाजी अपना अत्यन्त ही आदरणीय स्थान रखते हैं, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। न केवल भारत देशकी हिन्दी, वरन् विशेषकर देश-देशान्तरोंकी हिन्दी उनकी सद्भावनाओं व अनुपम दानशीलताके लिए सदा ऋणी रहेगी।

भारतमाताके ऐसे वरद्पुत्रसे मेरा प्रथम और अन्तिम साक्षात्कार सन् १९६६में हिन्दीके विषयमें भारतमें व्याख्यान देते समय हुआ था। उनकी दृष्टिमें प्रगाढ़ मानवीय स्नेह, वाणीमें सहज प्रवाह, सशक्त चिन्तनमें उदार दृष्टिकोणसे मैं इतना प्रभावित रहा कि सदाके लिए इस साक्षात् परिचयसे मेरे भारत-विद्या सम्बन्धी कार्यको नित्य नयी स्फूर्ति, उमंग और सप्राण प्रेरणा मिलती रहेगी। निःसन्देह श्री बिरलाजी भारत-भारतीके महाप्राण थे!

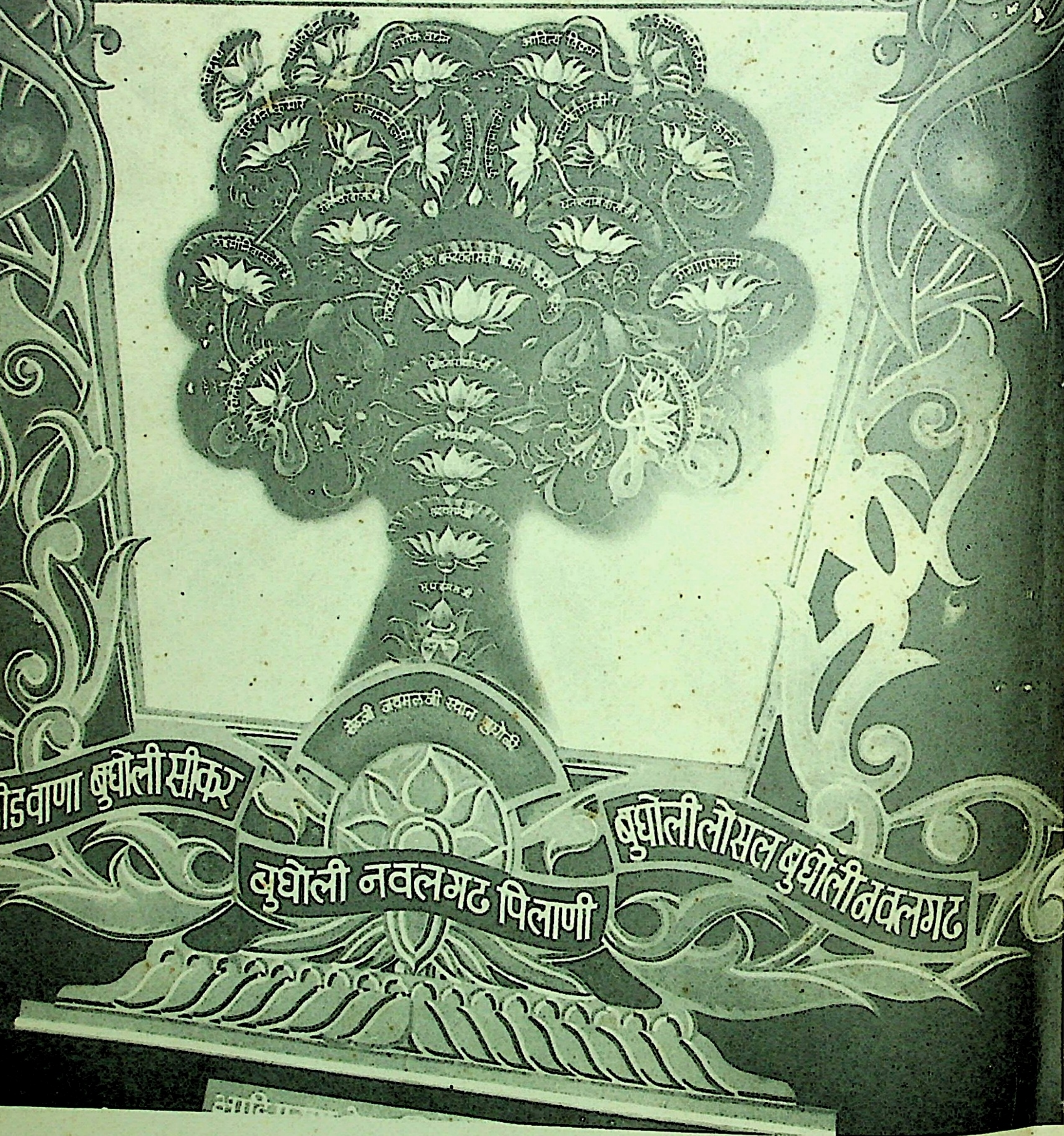


पारिवारिक चित्रावली

पिलानीकी राजा बिरला-हवेली — धर्म जिसकी नींव है, कर्म जिसकी पताका है।



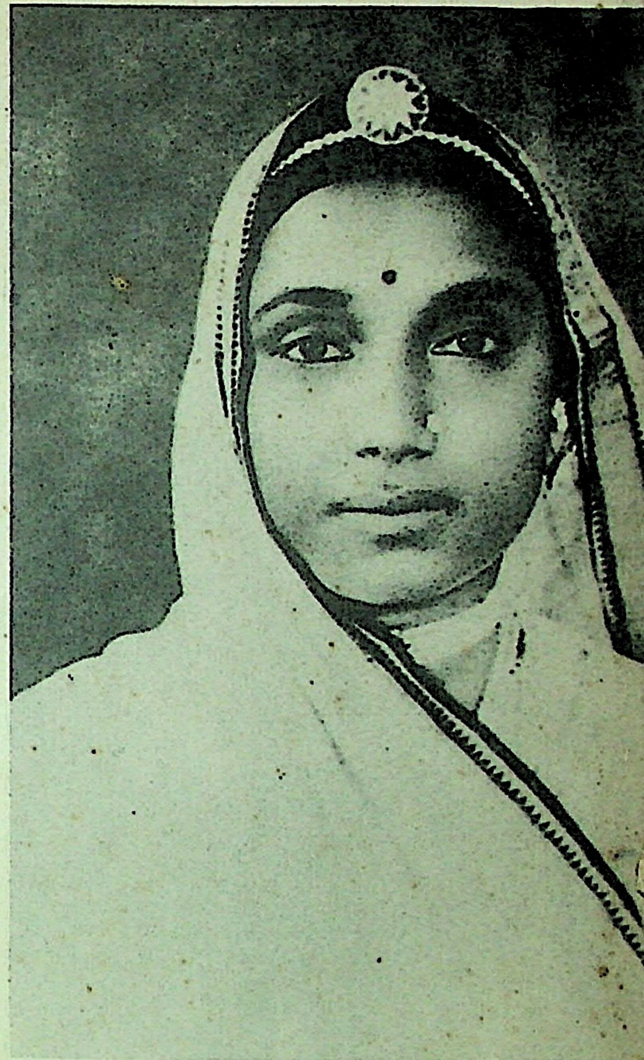
राजा बिरला-हवेली का प्रसूति-गृह — जहां धर्म जुगलकिशोर बिरला बनकर अवतरित हुआ।



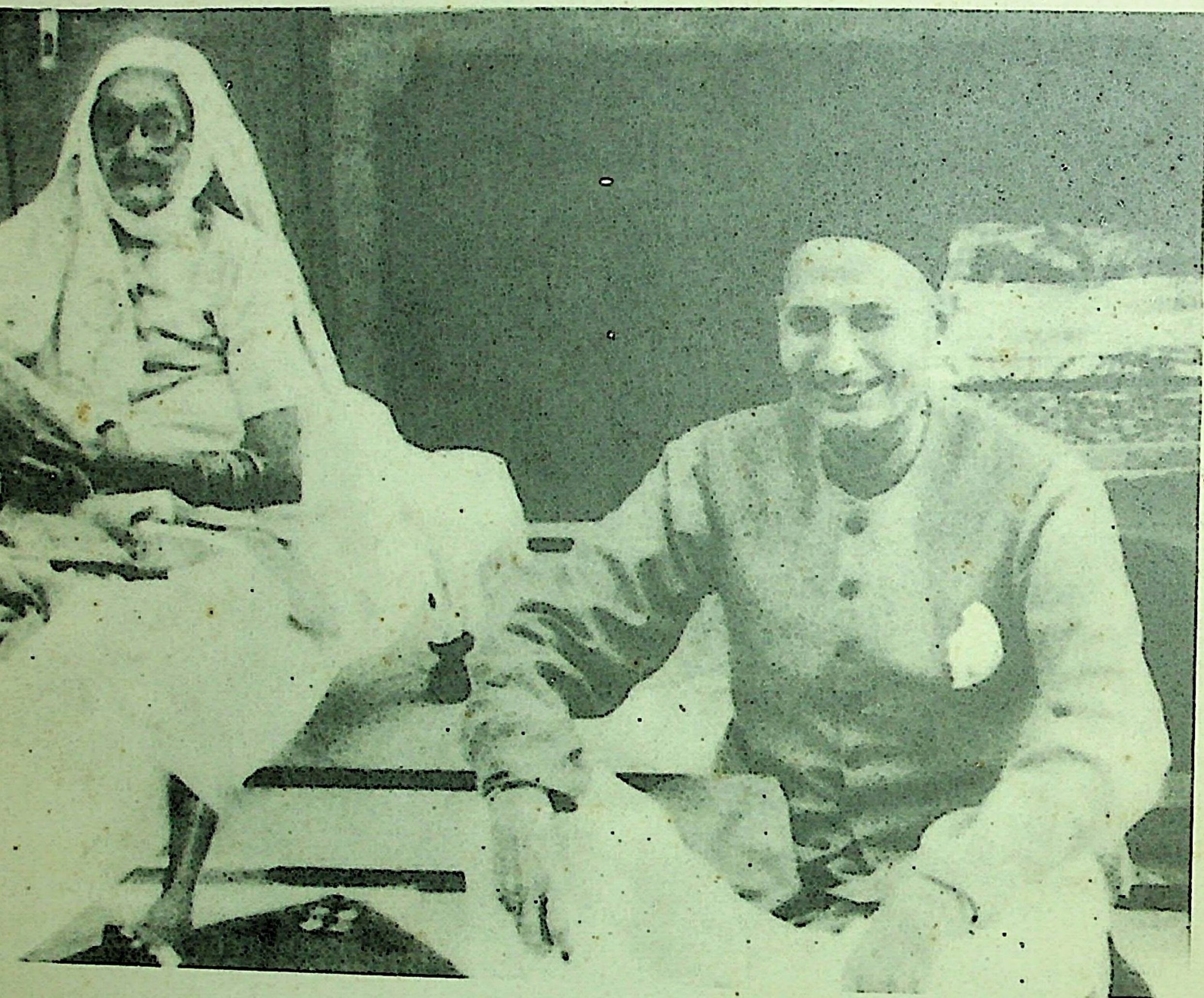
श्रीबिरला-वंशवृक्ष



तरुण-अरुण-वारिज-नयन – जुगलकिशोर बिरला



स्मृतिशेषा महादेवी – अर्द्धाङ्गिनी श्रीजुगलकिशोर बिरला



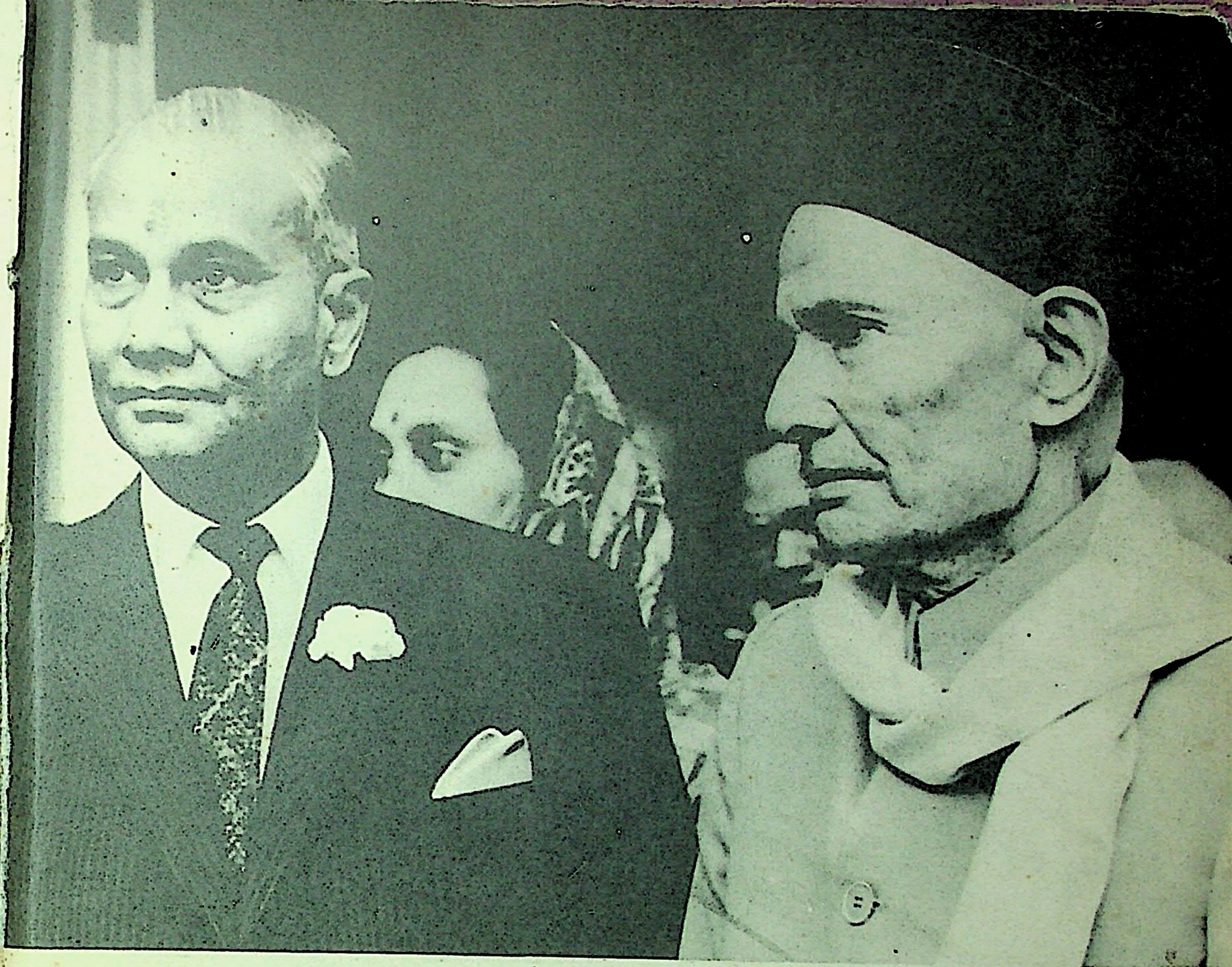
स्वर्गादपि गरीयसी जननीके चरणोंमें पुत्र जुगलकिशोर बिरला



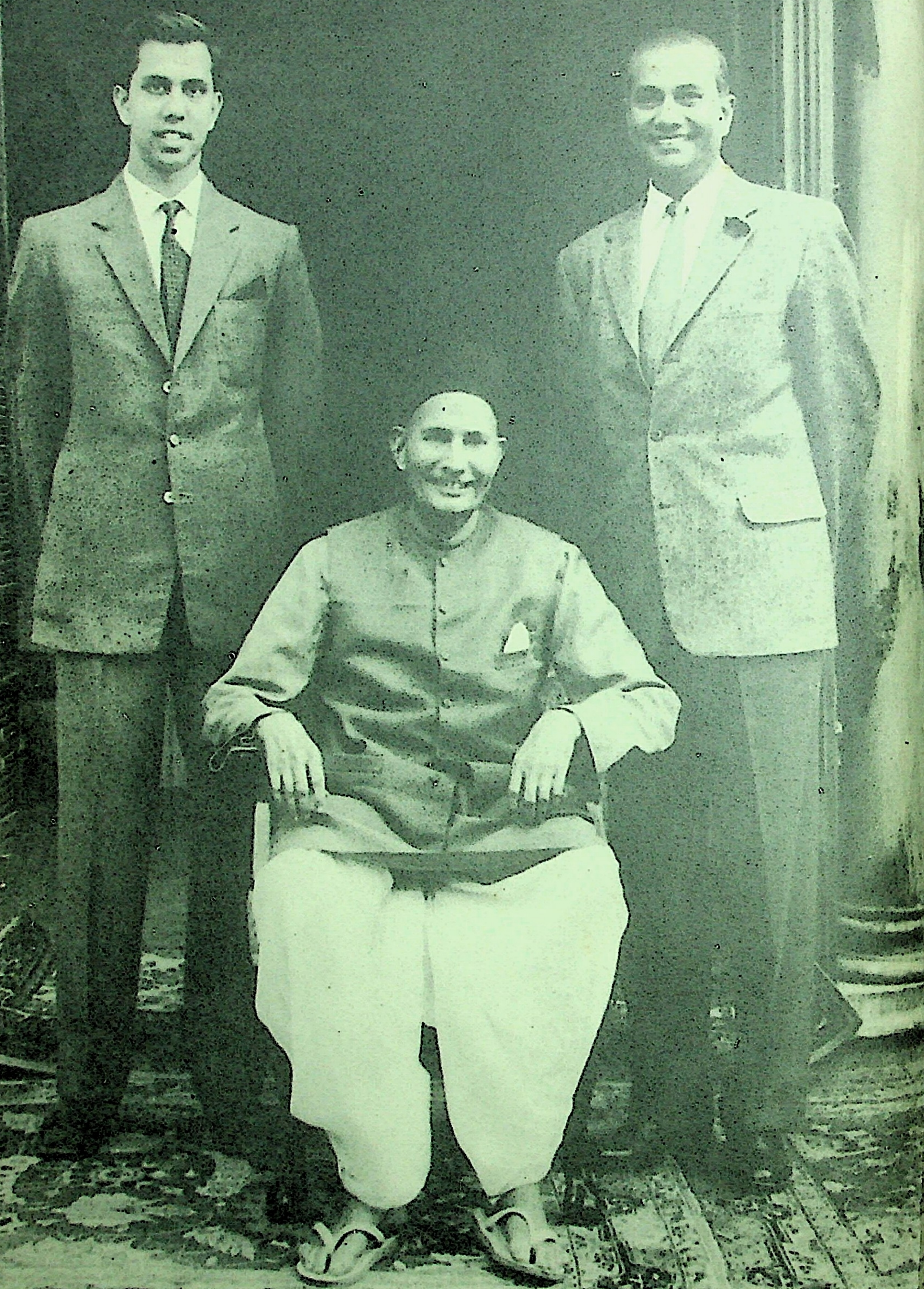
सत्य-सनेह-सील-सुखसागर — श्रीजुगलकिशोर बिरला

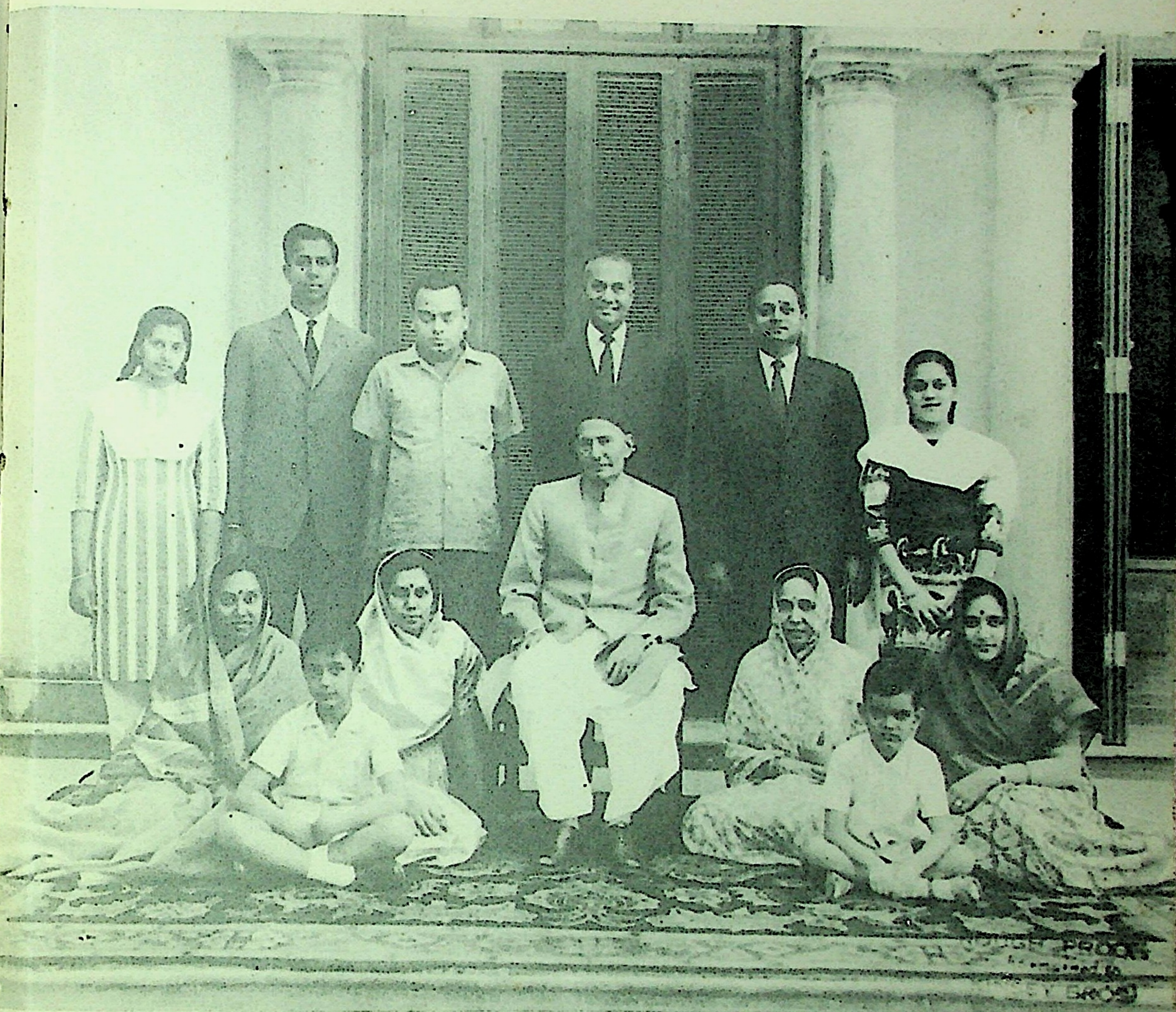


धरमधुरीण-धीर-नयनागर – श्रीजुगलकिशोर बिरला



पुनाति पित्रादीन् पुत्रः – पिता के साथ श्री लक्ष्मीनिवास बिरला



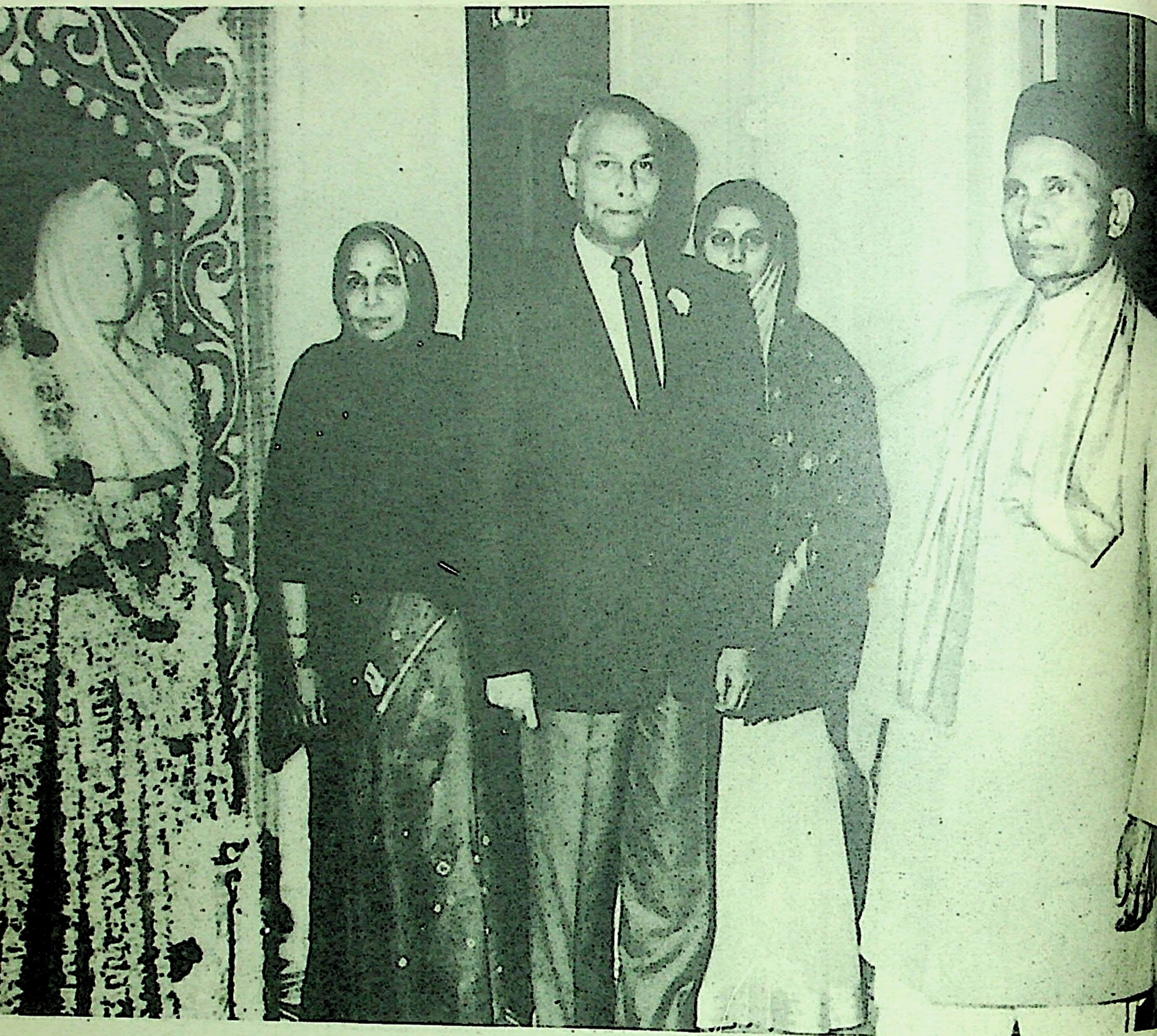


पिताकी छांह सकुटुम्ब पुत्रका उछाह

बायेंसे दायें खड़े – सौ० मंजरीबाई राजगढ़िया, श्रीसुदर्शनकुमार बिरला, श्रीललितकुमार पोद्दार, श्रीलक्ष्मीनिवास बिरला, श्रीमहाबीरप्रसाद माहेश्वरी, चि० रूमीबाई पोद्दार ।

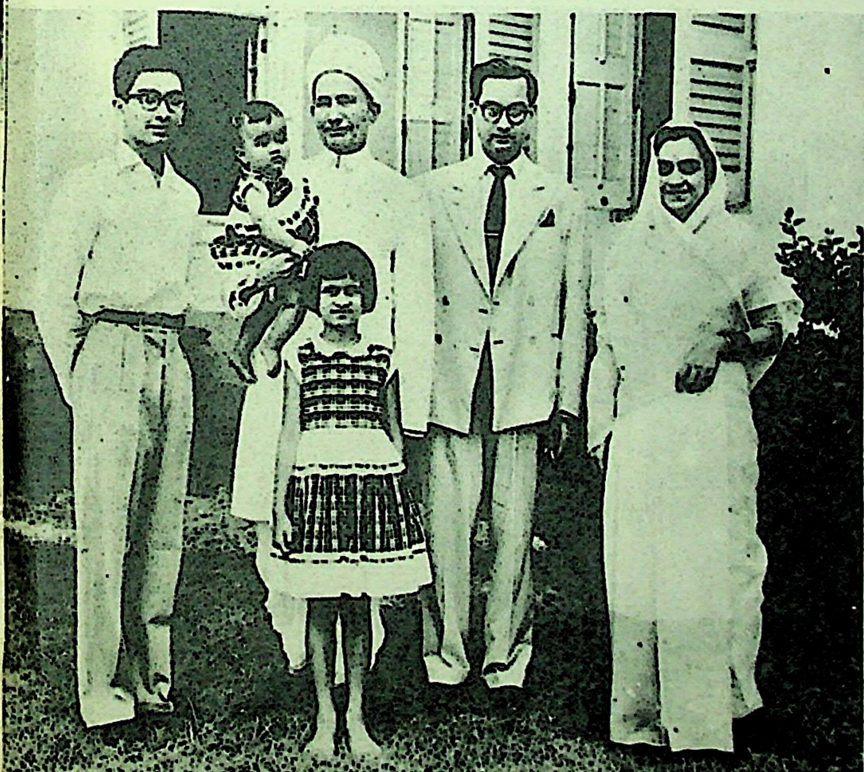
बैठे – सौ० स्नेहलता माहेश्वरी, सौ० उषादेवी पोद्दार, स्व० श्रीजुगलकिशोरजी बिरला, सौ० सुशीलादेवी बिरला, सौ० सुमंगलादेवी बिरला।

चि० सिद्धार्थकुमार बिरला चि० नन्दकिशोर

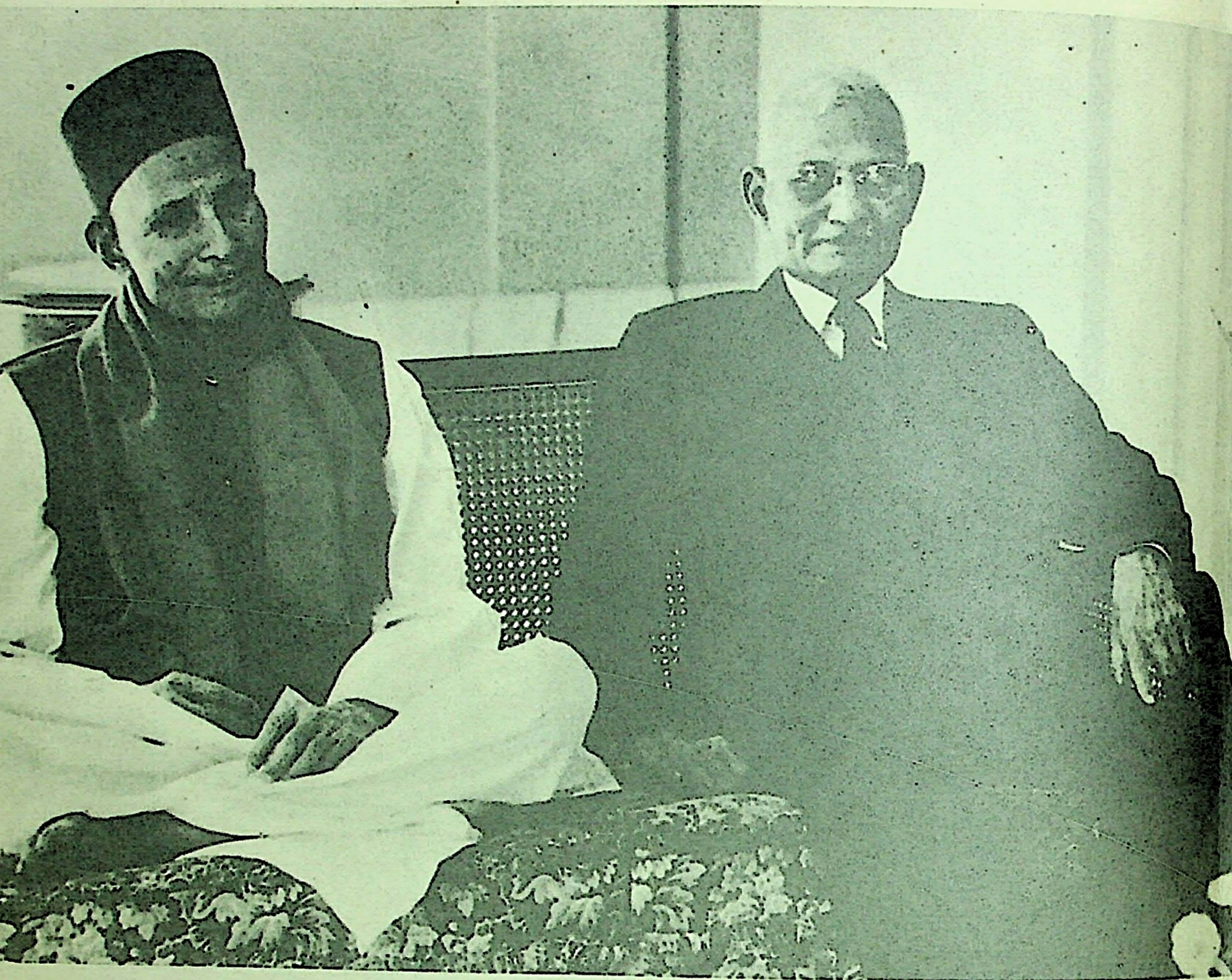


स्मृतियोंकी छाँहमें दिवंगता पत्नीकी प्रस्तर-प्रतिमाके समक्ष पुत्र, पुत्रवधू और पौत्री समेत

सहोदर-समुदाय, (बाएँसे) श्रीब्रजमोहनजी बिरला, श्रीरामेश्वरदासजी बिरला, श्रीमती जयदेवी कोठारी, श्रीमती कमलाबाई मंत्री, श्रीजुगलकिशोरजी बिरला और श्रीघनश्यामदासजी बिरला



स्वर्गीय श्रीबिरलाजी अपनी नन्ही-मुन्नी पौत्रीको गोदमें लिये हुए अनुज श्रीघनश्यानदासजी बिरलाके कनिष्ठ पुत्र श्रीवसन्तकुमारजी बिरलाके परिवारके साथ ।

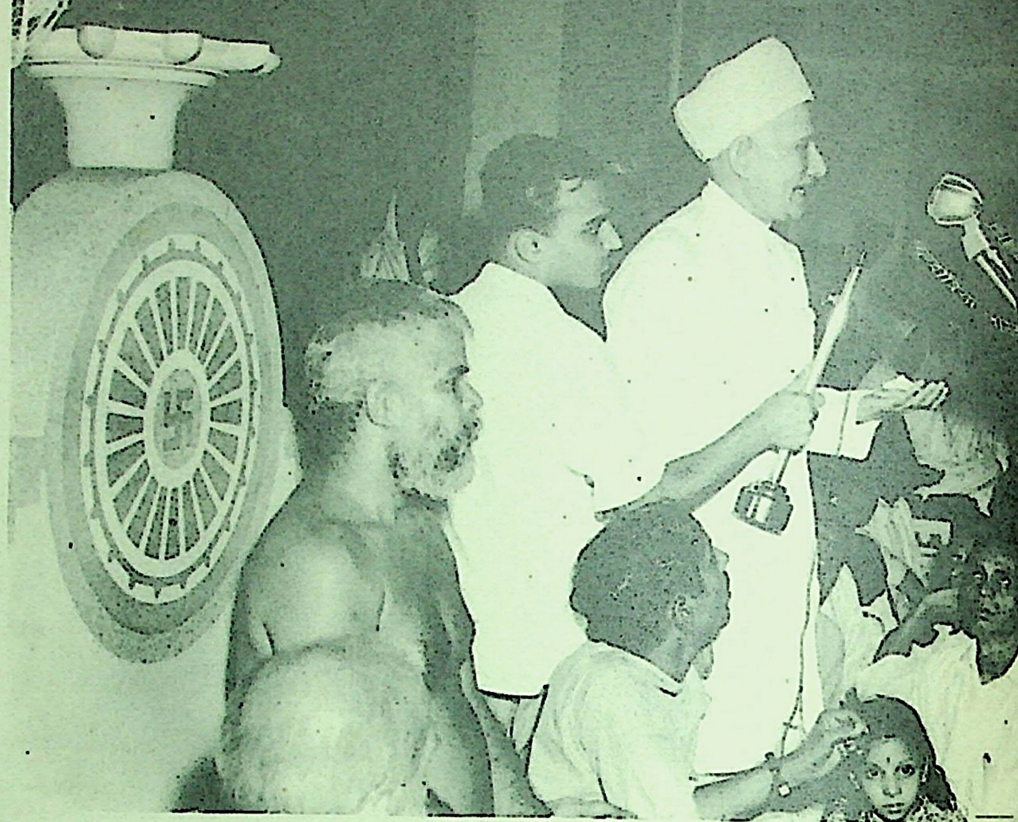


जुगल-बन्धु : श्रीजुगलकिशोर बिरला और श्रीरामेश्वरदास बिरला



अनुजद्वयकी रुझान : भाईजीकी मुस्कान बाएँसे :
श्रीव्रजमोहन बिरला, श्रीघनश्यामदास बिरला,
श्रीजुगलकिशोर बिरला

सामाजिक चित्रावली



जैन मुनि श्रीदेशभूषणजीकी वाङ्मयी अर्चना-अभ्यर्थना करते हुए श्रीबिरलाजी



महोत्सवमें अणुव्रतका भाष्य करते हुए श्रीबिरलाजी और आचार्य तुलसी



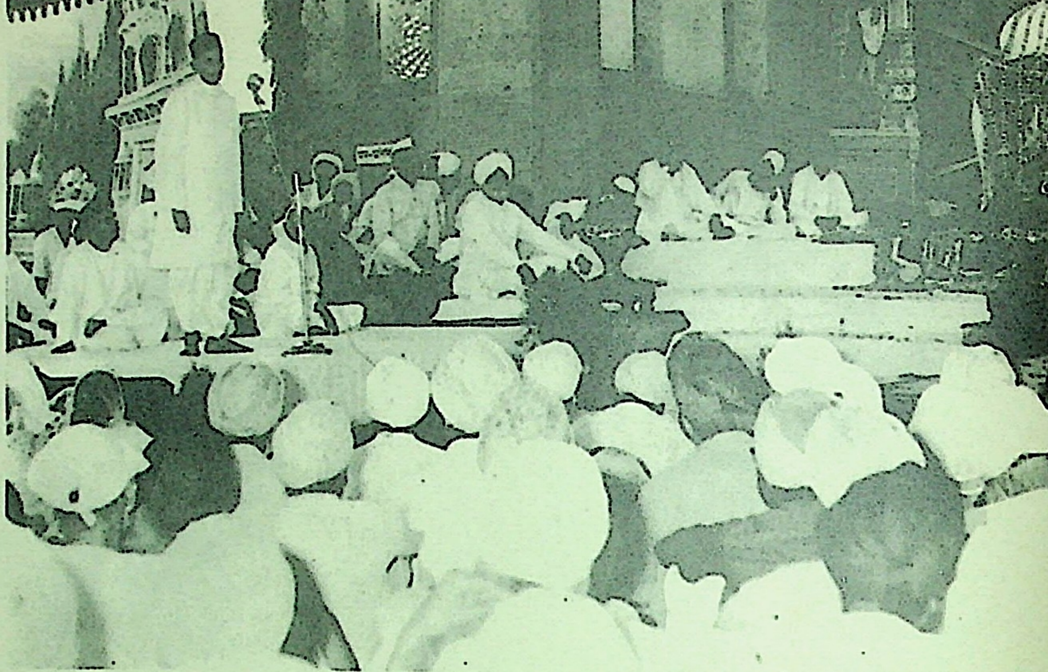
बुद्ध-जयन्ती-महोत्सवमें तथागत-चर्याकी व्याख्या करते हुए श्रीबिरलाजी



संगीतकला-मन्दिर, कलकत्ताके समारोहमें भारतीय संगीतपर प्रवचन करते हुए श्रीबिरलाजी



श्रीमनमोहन पहाड़ी द्वारा प्रस्तुत संगीतमें तन्मय श्रीबिरलाजी



गुरुद्वारा, नई दिल्लीमें वैसाखी पर्वपर सिख बन्धुओंको हिन्दुत्वका सन्देश देते हुए श्रीबिरलाजी

मारवाड़ी-रिलीफ़-सोसाइटी, कलकत्ताके समारोह में विचार-मग्न श्रीबिरलाजी



बिरला मन्दिर, नई दिल्लीके उद्यानमें श्रीलंकाके सांस्कृतिक मण्डलके प्रतिनिधियोंके साथ श्रीबिरलाजी



श्रीजुगलकिशोरजी बिरला श्रीदेवधर शर्मा के साथ स्वर्गाश्रम के घाट का निरीक्षण करते हुए



पिलानीके एन० सी० सी० सैनिकोंका सैनिक अभिवादन स्वीकार करते हुए कर्नल श्रीशुकदेव पाण्डेके साथ श्रीबिरलाजी



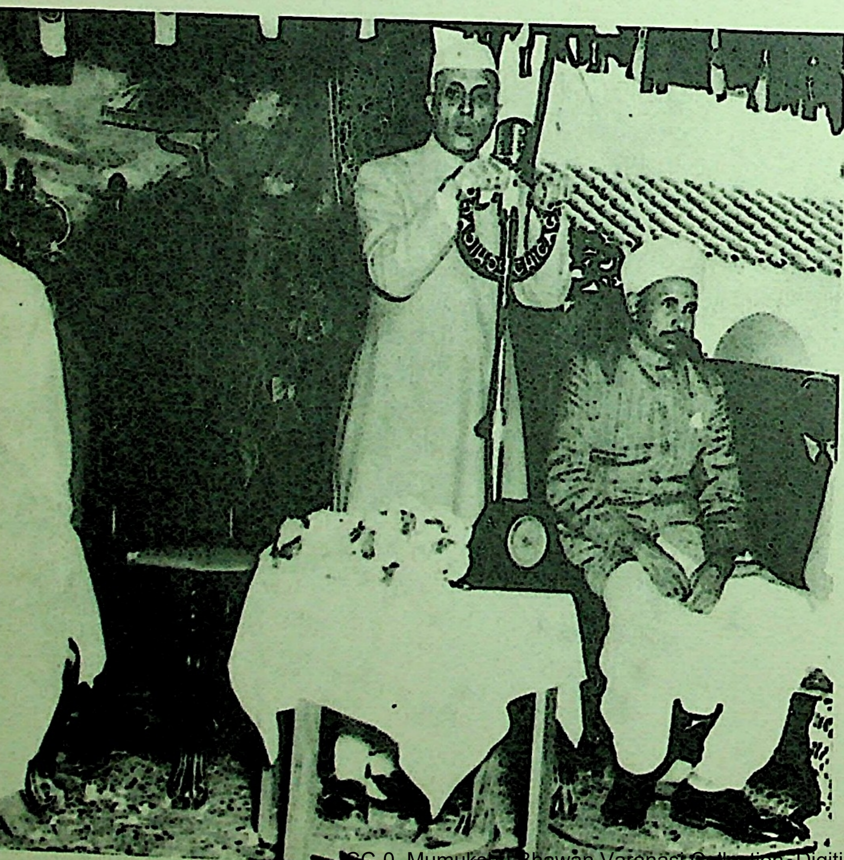
श्रीलक्ष्मीनारायण-मन्दिर, नई दिल्लीके उद्‌घाटनके अवसरपर बापू वात्सल्य-विभोर ोकर श्रीजुगलकिशोरजीको हृदयसे लगा रहे हैं

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में शान्तिनिकेतन के चीनी प्राध्यापक, महामना मालवीयजी और भारतस्थित चीनी राजदूतके साथ श्रीबिरलाजी



महामना मालवीयजीके साथ श्रीलक्ष्मीनिवास बिरला, श्रीजुगलकिशोर बिरला

धारामें निमग्न पण्डित जवाहरलाल नेहरू,
और श्रीजुगलकिशोर बिरला



सहज-वक्ता पण्डित नेहरू :
सजग श्रोता गोस्वामी गणेशदत्तजी
और श्रीजुगलकिशोरजी बिरला



विरला-मन्दिरमें श्रद्धेय अतिथि राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद : श्रद्धालु आतिथेय श्रीजुगलकिशोर बिरला



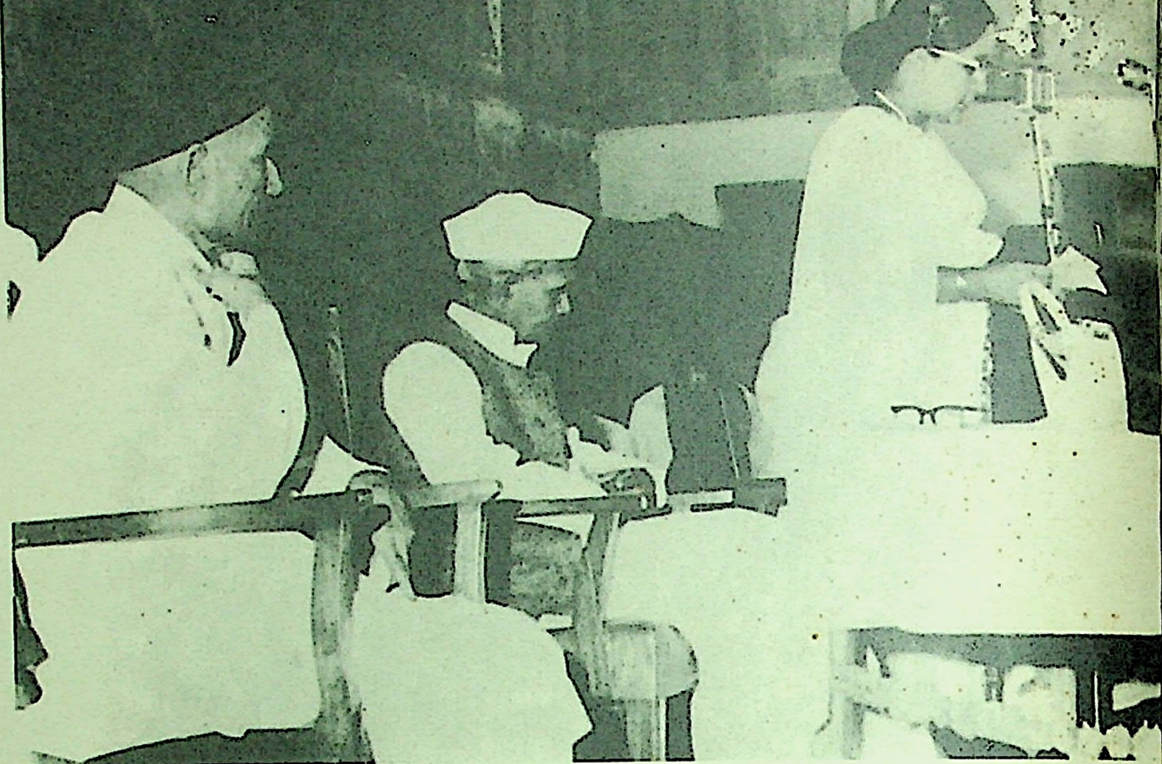
अभिनन्दन : अभिवादन अभिनन्द्य राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् : अभिनन्दक श्रीजुगलकिशोर बिरला

अभिनन्दन-पश्चात् चिन्तन



भाषण करते हुए श्रीबिरलाजी





बुद्ध-मन्दिर, नई दिल्लीमें 'बुद्धं शरणं गच्छामि' पर प्रवचन करती हुई श्रीलंकाकी प्रधानमन्त्री
श्रीमती सिरिमाओ भण्डारनायक और श्रवण करते हुए भारतके प्रधानमन्त्री
श्रीलालबहादुर शास्त्री तथा श्रीजुगलकिशोर बिरला

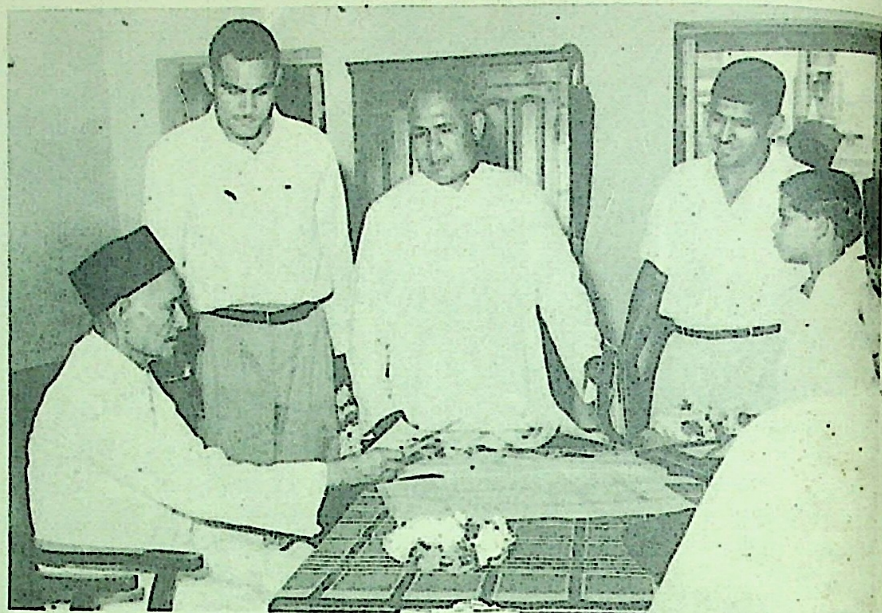


अरब राष्ट्रके प्रतिनिधिको भारत राष्ट्रकी गीता भेंट करते हुए श्रीबिरलाजी



काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके श्रीविश्वनाथ-मन्दिरके प्रकोष्ठमें उपकुलपति श्रीभगवतीजीसे विचार-विनिमय-मग्न श्रीबिरलाजी

नई दिल्लीके एक साँस्कृतिक समारोहमें लोकसभाध्यक्ष सरदार हुकुमसिंह और केन्द्रीय-मन्त्री श्रीसत्यनारायण सिंहको श्रद्धोपहार प्रदान करते हुए श्रद्धालु श्रीबिरलाजी



मल्लोंके मध्यमें श्रीबिरलाजी

श्रीजुगलकिशोर बिरला द्वारा विदेशोंमें देव-मूर्तियोंका प्रस्थापन



सामाबूला (फीजी)के 'रामायण-मन्दिर'के लिए राम, लक्ष्मण, सीता और हनुमानकी प्रतिमाएं



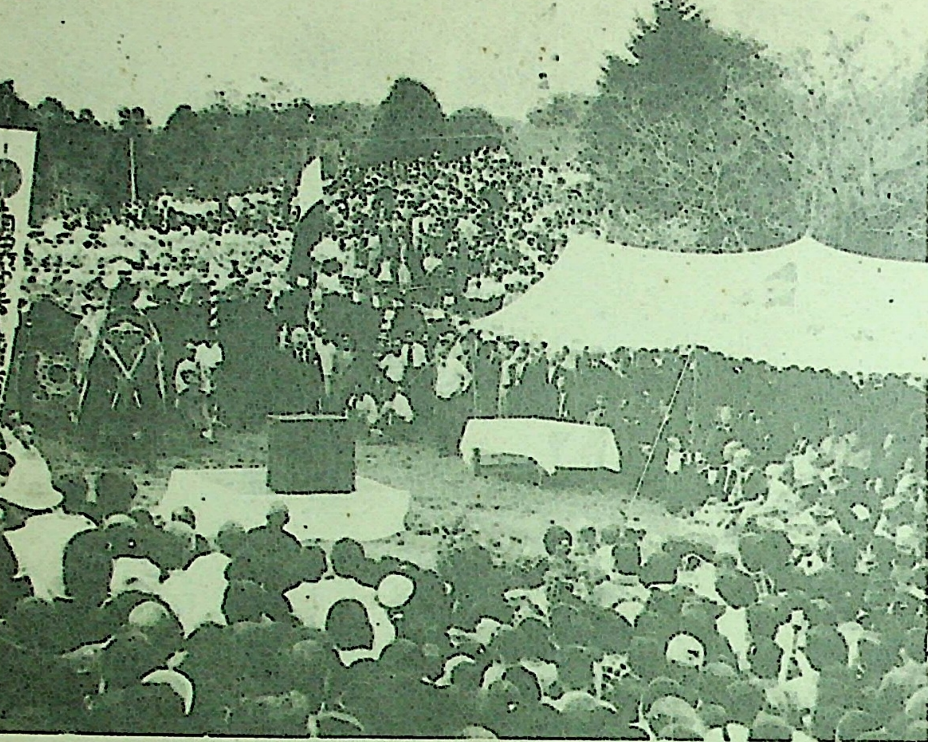
लिवरपूल (इंग्लैण्ड)के हिन्दू-मन्दिरके लिए मुरलीधर श्रीकृष्णकी

मारीशसमें श्रीकल्याणनाथ शिवालयके लिए ९ देवमूर्तियां



प्रतिमा-प्रतिष्ठाके बाद अखण्ड रामायण-यज्ञ : हिन्दू, मुसलमान, अंग्रेज सभी मिलकर अर्चना कर रहे हैं





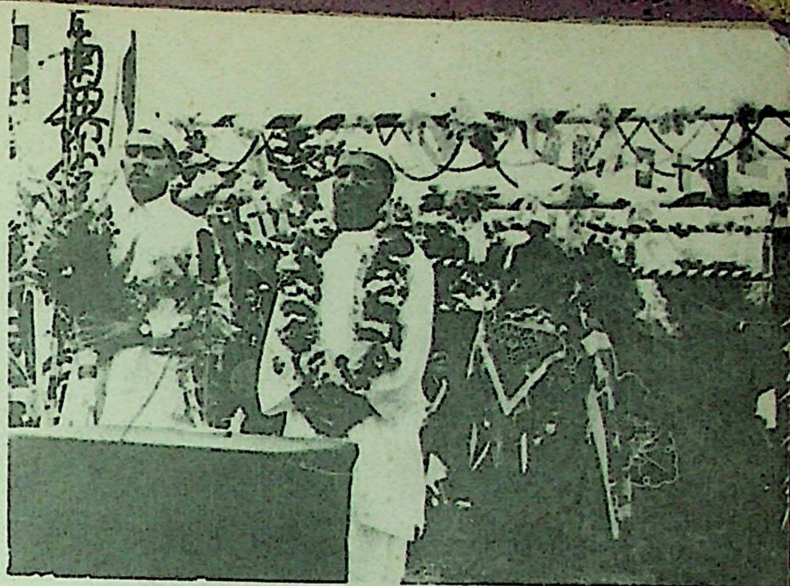


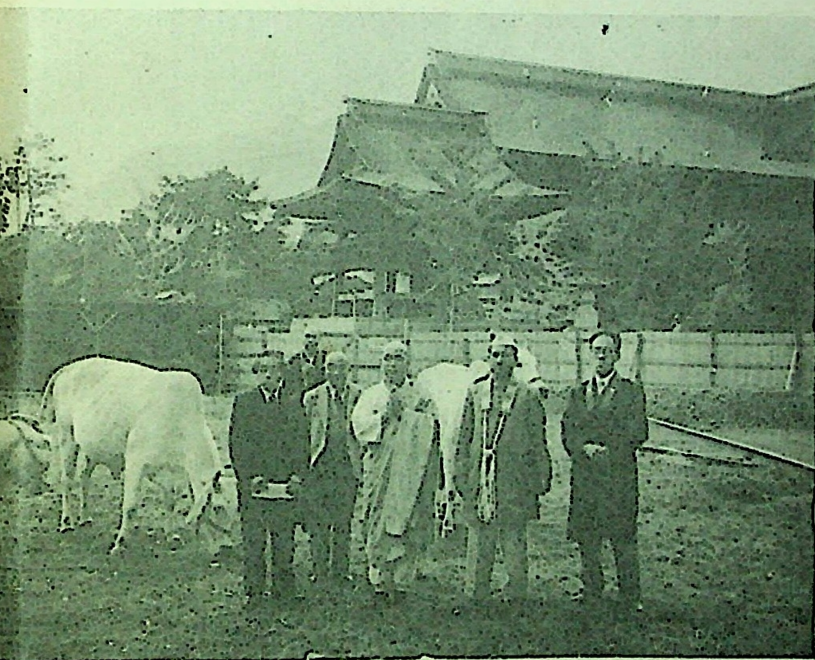


श्रीबिरलाजी की ओर से

प्रतीक गौ, वृष, तथा

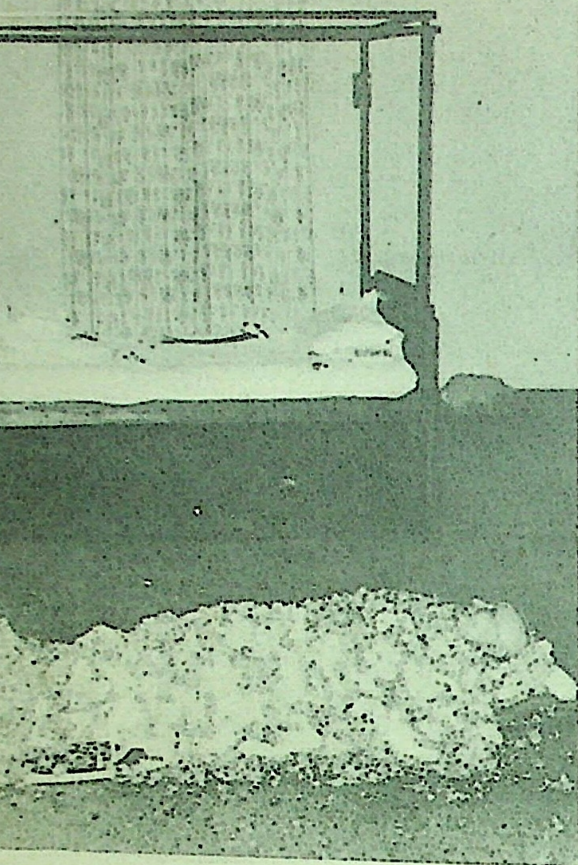
जापानद्वारा







शान्ति, समृद्धि और स्वस्तिके
गजकी प्राप्तिके उपलक्ष्यमें
आभार-प्रदर्शन



संकल्प-पुरुषका देह-त्याग



उत्तिष्ठत, जाग्रतका सन्देश देकर चिर निद्रामग्न श्रीबिरलाजी



सपरिवार शोक-संमग्न तीनों अनुज—
'मिलहिं न फेरि सहोदर भ्राता।'



बन्धु-बिछोहका शोक सागर बन आँखोंमें उमड़ पड़ा--
श्रीरामेश्वरदास बिरला और श्रीघनश्यामदास बिरला



भारतीय जनसघके अध्यक्ष श्रीअटलबिहारी वाजपेयी और
दिल्ली नगर-निगमके महापौर श्रीहंसराज गुप्त आदि द्वारा श्रद्धाञ्जलि

नश्वर शरीर चिता पर, चितामें अग्नि देते हुए शोक-विह्वल पुत्र श्रीलक्ष्मीनिवास बिरला

विद्रुम माला—जिससे श्रीबिरलाजी भगवन्नाम जपा करते थे



श्रीजुगलकिशोर बिरलाकी हस्तलिपि

मंत्र महामणि विषय व्यालके।
मेटत कठिन कुअंक भालके॥
भाय कुभाय अनख आलस हूँ...





